श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(सचित्र)

२०१२ ई०

अनुवादक, सम्पादक व टिप्पणिकर्ता

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदरत्न, वेदमार्तण्ड

प्रकाशक

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

ओ३म्

भगवती-भाष्य-समलंकृतम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(सचित्र)



अनुवादक, सम्पादक एवं टिप्पणिकर्ता

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदरत्न, वेदमार्तण्ड

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशकीय

पूज्य पिता श्रीगोविन्दराम हासानन्दजी विघ्न-बाधाओं, आपत्तियों और संकटों से जूझते हुए वैदिक साहित्य के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार में लगे रहे। अपने जीवन में उन्होंने वैदिक साहित्य की अपने सामर्थ्य से भी अधिक अभिवृद्धि की। वैदिक साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए ही उन्होंने 'वेदप्रकाश' मासिक निकालना आरम्भ किया। यह पत्र १८ वर्ष से निरन्तर निकल रहा है। अनेक छोटे और बड़े उपयोगी ग्रन्थ 'वेदप्रकाश' के माध्यम से जनता को भेंट किये जा चुके हैं।

लगभग ११ वर्ष पूर्व पिताजी का स्वर्गवास हो गया। पिताजी का उत्तरदायित्व मेरे कन्धों पर आ पड़ा। यथाशक्ति मैं उस उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रहा हूँ।

पिताजी 'वेदप्रकाश' के विशेषांक के रूप में 'रामायण' और 'महाभारत' दो ग्रन्थों को शुद्ध रूप में देना चाहते थे। रामायण उनके जीवन-काल में पूर्ण हो गया और पाठकों के हाथ में पहुँच गया।

पिताजी के निधन के पश्चात् 'वेदप्रकाश' के सम्पादन का भार मैंने स्वामीजी पर डाल दिया। स्वामीजी ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'वेदप्रकाश' के विशेषांक के रूप में दिये।

एक दिन मैंने पिताजी की अपूर्ण रही आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए स्वामीजी से 'महाभारत' अंक देने की चर्चा की। स्वामीजी ने कहा, 'मैं पहले 'रामायण' देना चाहता हूँ फिर 'महाभारत'।' स्वामीजी के 'रामायण' की अपनी ही कुछ विशेषताएँ हैं। साथ ही पहले प्रकाशित 'रामायण' की प्रतियां समाप्त हो चुकी थीं, मैं सहमत हो गया और यह पुनः प्रकाशित 'रामायण' आपके हाथ में है। तदर्थ मैं स्वामीजी का हार्दिक आभारी हूँ।

अब शीघ्र ही पाठकों को स्वामीजी द्वारा सम्पादित एवं अनूदित 'महाभारत' भी प्राप्त होगा, ऐसी मुझे आशा है।

मुझे विश्वास है कि आर्यजनता हार्दिक सहयोग मुझे प्रदान करेगी जिससे मैं भी अपने पिताजी के पदचिह्नों पर चलते हुए वैदिक साहित्य की अभिवृद्धि कर सकूँ।

—विजयकुमार

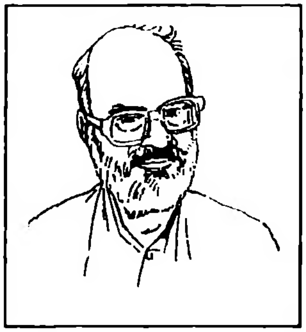
बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि रामायण के इस संस्करण को कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर नए रूप-रंग में प्रकाशित किया जाए तथा यथा स्थान चित्रों का भी समावेश किया जाए। यह इच्छा अब पूरी हो रही है। स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने अपने जीवन-काल में ही इस ग्रन्थ की कम्पोजिंग शुरू करवा दी थी तथा यथा स्थान संशोधन भी कर दिया था। प्रूफ भी उन्होंने एक बार देख लिए थे। इस तरह यह रामायण का संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण आपके हाथों में है।

इसमें कुछ प्रसंगों के रंगीन चित्र भी दिए जा रहे हैं। इन प्राचीन चित्रों का ऐतिहासिक महत्त्व है। ये महापुरुषों के वास्तविक स्वरूप अनुसार ही चित्रित हैं

—अजय

(अप्रैल २०१०)

सम्पादक-परिचय



इस ग्रन्थ के सम्पादक परमहंस जगदीश्वरानन्द सरस्वती एम०ए० वैदिक वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान्, चिन्तक और विचारक थे।

आपका जन्म २० जनवरी, सन् १९३१ को अलावलपुर तहसील नूह, जिला गुड़गाँ (हरियाणा) में हुआ था। आपकी माताजी का नाम भगवती और पिताजी का नाम लाल ग्यासी राम था। आप छह भाई थे। आपका परिवार एक प्रसिद्ध व्यवसायी परिवार है भारत में सुप्रसिद्ध भीमसेनी काजल का निर्माण आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री मुरारी लाल वैद्य ह करते थे। श्री वैद्यजी ने स्वामीजी को आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त किया हुआ था।

स्वामीजी की आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। इनकी शिक्षा की कहानी लम्बी है अनेक स्थानों पर पढ़ते हुए पाकिस्तान बनने पर ये भी अपने परिवार के साथ दिल्ली आ गये और रामजस हायर सैकण्ड स्कूल नं० ५ में अध्ययन करने लगे। नवम श्रेणी तक आप उर्दू ही पढ़ते रहे। दशम श्रेणी में आपने एकदम हिन्दी ले ली सन् १९५० में आपने दिल्ली बोर्ड से हायर सैकण्ड्री की। तत्पश्चात् आप बी०काम० में प्रविष्ट हो गये। आर्यकुमार सभ आर्यवीर दल और आर्यसमाज की गतिविधियों में बहुत अधिक भाग लेने से तथा कुछ पारिवारिक परिस्थितियों के कार आप बी०काम० में अनुत्तीर्ण हो गये। बस, आपने परीक्षाओं को तिलाञ्जलि देकर वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन मनन और चिन्तन आरम्भ कर दिया। इसी स्वाध्याय के फलस्वरूप आपने छोटे-छोटे ट्रैक्ट लिखे।

आपके एक ट्रैक्ट 'आगे बढ़ो' को पढ़कर आचार्य राजेन्द्रनाथजी शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द जी) ने आपको किस भी प्रकार एम०ए० करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि यदि आप आर्यसमाज का प्रचार करना चाहते हो तो उसके लि भी कोई पूँछ (उपाधि) होना अत्यावश्यक है। उनका एक वाक्य ही स्वामीजी के लिए प्रेरणा-प्रदीप बन गया और आप पञ्जाब विश्वविद्यालय से 'प्रभाकर' तथा बी०ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय से स १९६६ में संस्कृत में एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप निरन्तर स्वाध्याय एवं वैदिक अनुसन्धान में संलग्न रहते थे। अपने स्वाध्याय का रस औरों को भी पिलाते रह थे। आपने लगभग चालीस ग्रन्थ लिखे। इनकी विद्वानों और पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आपका व्यक्तिगत पुस्तकालय बहुत विशाल है। इतना बड़ा धार्मिक पुस्तकालय दिल्ली में शायद ही कोई हो। लेखक होने के साथ-साथ आप प्रभावशाली वक्ता भी थे।

आप पार्टी-बाज़ी से दूर थे। वेद के विद्वान् थे, उपनिषदों का आपने मन्थन किया था, रामायण और महाभारत के समालोचक थे। मत-मतान्तरों पर आपका गम्भीर अध्ययन था। सिद्धान्तों के आप मर्मज्ञ थे, वैदिक कर्मकाण्ड के विशेष थे। इन सबके साथ आप योगाभ्यासी भी थे। स्वभाव से बड़े मधुर थे, सादगी के पुञ्ज थे, सच्चरित्र और ईमानदार थे, बड़े ही मिलनसार और विनोदी थे।

आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। आपने अपना सारा जीवन वैदिकधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए अर्पित कर दिया।

१६ फरवरी, १९७५ को वसन्त पञ्चमी के ऐतिहासिक एवं पावन पर्व पर आप संन्यासाश्रम में दीक्षित हो गये तत्पश्चात् आपने सूरिनाम, ट्रीनिडाड, हालैण्ड आदि देशों में जाकर लगभग एक वर्ष तक वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजायी ३१ जनवरी २००९ को आपने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। आपकी साहित्य सेवा के लिए आपको सैदव स्मरण किय जाता रहेगा।

विषय-सूची

अयोध्याकाण्डम्

अरण्यकाण्डम्

किष्किन्धाकाण्डम्

सुन्दरकाण्डम्

युद्धकाण्डम्

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

१. ऋग्वेद
२. यजुर्वेद
३. अथर्ववेद
४. मनुस्मृति
५. महाभारत
६. हनुमन्नाटक
७. अत्रिस्मृति
८. छान्दोग्योपनिषद्
९. सत्यार्थप्रकाश—महर्षि दयानन्द सरस्वती
१०. भागवतपुराण
११. निरुक्त
१२. साकेत
१३. रामचरितमानस
१४. शिवपुराण
१५. रामायण पर भूषण एवं तिलक की टीका
१६. रामायण का अंग्रेजी अनुवाद (ग्रिफिथ)
१७. कौटिल्य-अर्थशास्त्र
१८. याज्ञवल्क्यस्मृति
१९. संस्कारविधि—महर्षि दयानन्द सरस्वती
२०. ताण्ड्य ब्राह्मण
२१. मोहमुद्गर—शंकराचार्य
२२. शतपथ ब्राह्मण
२३. कामन्दकीय
२४. श्रीमद्भगवद्गीता
२५. चाणक्यनीति
२६. हलायुधकोश
२७. रामचन्द्रिका—आचार्य केशवदास

भूमिका

आज के युग में पुस्तक चाहे छोटी हो या बड़ी उसके साथ भूमिका होना अनिवार्य है। शरीर में नाक का जो स्थान है पुस्तक में भूमिका का भी वही महत्त्व है। कुछ लेखक अपनी पुस्तकों की भूमिका दूसरों से लिखवाते हैं और कुछ स्वयं लिखते हैं। मैंने अन्य किसी से तो भूमिका लिखने की प्रार्थना नहीं की और स्वयं इस असमञ्जस में हूँ कि मैं भूमिका में क्या लिखूँ? कारण, मुझे जो कुछ कहना था वह तो मैं अनुवाद और पादटिप्पणियों में कह चुका। फिर भी परिपाटी को निभाने के लिए कुछ विचार प्रस्तुत हैं—

रामायण का महत्त्व

संसार की विभिन्न भाषाओं में जो उच्चकोटि के महाकाव्य हैं उनमें महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण का स्थान सर्वोच्च है। संसार के अन्य काव्यों में हमें महाकाव्य की अन्य विशेषताएँ भले ही मिल जाएँ, परन्तु श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में जिस आस्तिकता, धार्मिकता, प्रभुभक्ति, उदात्त एवं दिव्य भावनाओं और उच्च नैतिक आदर्शों का वर्णन मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

रामायण के सुन्दरकाण्ड को सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है क्योंकि इस काण्ड में महावीर हनुमान् के शौर्य और वीर्य का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। यह तथ्य हो सकता है, परन्तु मेरे विचार में हम किसी काण्ड को देखें प्रत्येक काण्ड शिक्षाओं और आदर्शों से ओत-प्रोत है। तनिक अयोध्याकाण्ड का अवलोकन कीजिए। कवि ने इस काण्ड में मानव के स्वभावों, भावनाओं और संघर्षों का कितना मार्मिक और हृदयहारी चित्रण किया है। इस काण्ड में राम की श्रेष्ठता का, महाराज दशरथ की दुर्बलता का, कैकेयी के दुराग्रह का, भाग्य के विरुद्ध लक्ष्मण की सिंहगर्जना का, सीता के पातिव्रत्य का, कौसल्या के गौरव का, सुमित्रा की बुद्धिमत्ता का, गुह की मित्रता का और महात्मा भरत की उदारता का भावपूर्ण चित्रण है।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण प्राचीन आर्य सभ्यता और संस्कृति का दर्पण है। राम एक आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श पति और आदर्श सम्राट् भी हैं। लक्ष्मण एक ऐसे आदर्श भाई हैं जो ज्येष्ठ भ्राता के दु:ख और सुख में, हानि और लाभ में सदा उनके साथ रहते हैं, चाहे वे नगर में हों या जंगल में। भरत एक ऐसे भाई हैं जो चक्रवर्ती राज्य को ठोकर मार देते हैं। रावण और बाली दो ऐसे पात्र हैं जो आरम्भ में फलते और फूलते हैं, परन्तु अन्त में अपने कर्मों का फल पाते हैं। सीता एक ऐसी नारी रत्न हैं जो मन, वचन और कर्म से अपने पति में अनुरक्त हैं। युवकों एवं युवतियों के चरित्र-निर्माण के लिए रामायण से बढ़कर और कोई शिक्षापूर्ण एवं नैतिक आदर्शों से युक्त ग्रन्थ नहीं हो सकता। किसी ने ठीक ही लिखा है—

Well, may the Ramayana challenge the literature of every age and country to produce a poem that can boast of such perfect characters as a Rama or a Sita. No where a else are poetry and morality so charmingly united each elevating the other, as in this really holy poem.

–Kalyana Kalpataru, April 1959 p.12

भाव यह है—वस्तुत: रामायण किसी भी युग और किसी भी देश के साहित्य को ललकार सकता है जो राम अथवा सीता के समान सर्वाङ्गीण चरित्रों या पात्रों पर गर्व कर सके। संसार के किसी भी ग्रन्थ में काव्य और नैतिकता का इतना सुन्दर सम्मिश्रण नहीं हुआ है जितना इस पवित्र काव्य में।

माता-पिता का आज्ञापालन, सत्यवादिता, प्रतिज्ञा-परिपालन, दीन, दुर्बल एवं आश्रित संरक्षण, एकपत्नीव्रत, वर्णाश्रम-मर्यादा-अनुसार आचरण, आदर्श पतिव्रत, न्यायानुकूल आचरण, भ्रातृप्रेम, त्याग, उदारता, सन्ध्या, यज्ञ आदि गुणों के चित्रण से यह ग्रन्थ संसार के लिए परम-उपकारी बन गया है।

आदि-काव्य

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण अनुष्टुप् छन्दों में लिखी गई है। तमसा नदी के तट पर व्याध द्वारा मारे गये काम-मोहित क्रौञ्चपक्षी को देखकर महर्षि वाल्मीकि के मुखकमल से

निम्न श्लोक निकल पड़ा था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

—बाल० २। ९

महर्षि वाल्मीकि से बहुत पूर्व महर्षि मनु ने मनुस्मृति की रचना अनुष्टुप् छन्द में ही की थी। और मनु ने भी बहुत पूर्व, सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेद में अनुष्टुप् छन्द में अनेक मन्त्र हैं। यहाँ दिग्दर्शन के लिए केवल एक मन्त्र प्रस्तुत है—

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः॥

—ऋ० ६। ७५। १६

उक्त श्लोक की भाँति इस मन्त्र में भी ३२ ही अक्षर हैं। जब महर्षि वाल्मीकि से पूर्व अनुष्टुप् छन्द का आविष्कार हो चुका था, वेद के अनेक मन्त्र और सम्पूर्ण मनुस्मृति अनुष्टुप् छन्द में लिखी गई थी फिर वाल्मीकीय रामायण आदि-काव्य कैसे?

यह सत्य है कि महर्षि से बहुत पूर्व अनुष्टुप् छन्द की रचना हो चुकी थी फिर भी रामायण आदि काव्य ही है। यह प्रथम श्रेणी का काव्य-ग्रन्थ ही नहीं है, अपितु सर्वप्रथम ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है। रामायण से पूर्व इस छन्द में धार्मिक ग्रन्थों की रचना ही हुई थी, ऐतिहासिक ग्रन्थों की नहीं। वाल्मीकि पहले कवि थे जिन्होंने अनुष्टुप् छन्दों में ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की। वाल्मीकीय रामायण इसलिए भी आदि-काव्य है कि इस ग्रन्थ की रचना किसी अन्य काव्य की छाया लेकर नहीं की गई।

रामायण का काल

इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि भारत का इतिहास मुसलमानों और अंग्रेजों द्वारा लिखा गया और विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में वही पढ़ाया गया। अंग्रेज संसार की आयु केवल पाँच-छह सहस्र वर्ष ही मानते थे अतः उन्होंने भारतीय इतिहास को भी पाँच-छह सहस्र वर्षों के भीतर ही सीमित रखने का प्रयत्न किया। अपनी कपोल-कल्पनाओं के आधार पर पाश्चात्य लेखकों ने वेदों का समय ईसा से पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व, महाभारत का समय ईसा से पाँच-छह सौ वर्ष पूर्व और रामायण का समय ईसा से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व निर्धारित किया। यह काल गणना सर्वथा असत्य और पक्षपात पूर्ण है। भारतीय विद्वान् श्रीराम का जन्म त्रेता के अन्त में मानते हैं। इस प्रकार वे लोग श्रीराम का समय और रामायण का रचना-काल नौ लाख वर्ष मानते हैं। हमारा विचार इस धारणा से भी मेल नहीं खाता। वायुपुराण में उल्लेख है—

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयवान्॥

—वायुपुराण ७०। ४८

अर्थात् आचार से पतित होने के कारण रावण चौबीसवें त्रेतायुग में दशरथनन्दन श्रीराम के साथ युद्ध करके बन्धु बान्धवों सहित मारा गया।

इस श्लोक में श्रीराम का काल चौबीसवाँ त्रेतायुग (वैवस्वत मन्वन्तर) बताया गया है। आज तक का गणित यह है—

चौबीसवें त्रेता से २८वें त्रेता तक चार युग बीते जिनमें

वर्ष हुए ४३,२०,००० × ४	=	१,७२,८०,००० वर्ष
द्वापर के वर्ष	=	८,६४,००० वर्ष
कलियुग के वर्ष	=	५,०७० वर्ष
कुलयोग		**१,८१,४९,०७० वर्ष**

इस प्रकार श्रीराम का काल एक करोड़, इक्यासी लाख, उनन्चास सहस्र सत्तर वर्ष होता है। रामायण श्रीराम का समकालीन इतिहास है। जिस समय श्रीराम राज्यसिंहासन पर आसीन हो गये थे उस समय महर्षि वाल्मीकि ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की थी। अतः रामायण का समय भी इतना ही है।

रामायण के काल के सम्बन्ध में यह बाह्य साक्षी है अन्तःसाक्षी हमने रामायण में ही पृष्ठ ३७५ पर दी है, वहीं देख लें।

पहले रामायण अथवा महाभारत

पहले कौन-सा ग्रन्थ लिखा गया रामायण अथवा महाभारत? पाश्चात्य लेखकों ने लिखा है कि पहले महाभारत लिखी गई फिर महाभारत के रामोपाख्यान के आधार पर वाल्मीकि रामायण की रचना हुई। यह धारणा भी सर्वथा

मिथ्या, निर्मूल, निराधार एवं कपोलकल्पित है। जैसा कि हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं, रामायण बहुत प्राचीन रचना है अत: इसकी महाभारत से बहुत पहले ही रचना हो चुकी थी। यदि रामायण महाभारत के बाद की रचना होती तो इसमें श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन, व्यास का उल्लेख होता, परन्तु ऐसा नहीं है। हाँ, इसके विपरीत तो है। महाभारत में महर्षि वाल्मीकि के नाम से एक श्लोक प्राय: शब्दश: उद्‌धृत किया गया है। देखिए इस पुस्तक का पृष्ठ ५१८।

इस विषय में हम एक और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। महाभारत के पश्चात् पुराण और उपपुराण आदि जिन ग्रन्थों की भी रचना की गई उनमें सर्वत्र 'उवाच' शैली का प्रयोग है। जैसो **'सञ्जय उवाच' 'भीष्म उवाच' 'अर्जुन उवाच'** आदि। यह 'उवाच' श्लोक का भाग नहीं है, अपितु श्लोक से सर्वथा पृथक् है। जब हम रामायण का अवलोकन करते हैं तब वहाँ हमें 'उवाच' शैली दिखाई नहीं देती। वहाँ वक्ता को जो कुछ कहना होता है वह भी श्लोक का ही भाग होता है जैसे—**'राजा वचनमब्रवीत्' 'वक्तुमेवोप-चक्रमे' 'सत्यमेतद्ब्रवीमि ते'** इत्यादि। यदि रामायण महाभारत के पश्चात् लिखी गई होती तो उसमें भी महाभारत और पुराणों की भाँति 'उवाच' शैली होती। रामायण की यह विशिष्ट रचना घोषणा-पूर्वक यह सिद्ध कर रही है कि रामायण की रचना महाभारत से बहुत पूर्व हो चुकी थी। ईसाई इतिहास लेखकों की कल्पना इन युक्ति और प्रमाणों के आधार पर हमें मान्य नहीं है।

रामायण काल्पनिक इतिहास नहीं

अंग्रेजों का यह सिद्धान्त रहा है If you want to destroy a nation, destroy its history and the nation will perish of its own accord. अर्थात् यदि तुम किसी राष्ट्र को नष्ट करना चाहते हो तो उसके इतिहास को समाप्त कर दो, राष्ट्र स्वयमेव नष्ट हो जायेगा। एक ओर इस सिद्धान्त पर आचरण करते हुए पाश्चात्य ईसाई लेखकों ने हमारे इतिहास को नाना प्रकार से विकृत कर आर्यजाति को रसातल में पहुँचाने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर दासता-युग की शिक्षा ने हमारे देश के युवक और युवतियों, लेखकों, प्रोफेसरों और रिसर्च स्कालरों के मस्तिष्कों को विकृत कर डाला। अब भारतवर्ष स्वतन्त्र है (वैसे हमारा अपना कोई तन्त्र नहीं है। हमारी सरकार ने इंगलैण्ड, अमेरिका तथा रूस आदि का तन्त्र अपनाया है जो दासमनोवृत्ति का ही सूचक है) परन्तु तेईस वर्ष पश्चात् भी हमारी शिक्षा में कोई अन्तर नहीं आया है। इस शिक्षापद्धति के द्वारा शिक्षित और दीक्षित हमारे युवक और युवतियाँ, लेखक और गवेषक तथा बड़े बड़े नेता रामायण को एक कल्पित उपन्यास ही मानते हैं, परन्तु यह है एक बहुत बड़ा भ्रम।

हठी और दुराग्रही व्यक्तियों को मनवाना तो असम्भव है, परन्तु विचारशील व्यक्तियों के लिए हम उनके विमर्शार्थ एक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं--

वाल्मीकीय रामायण के दो स्थल आपातत: परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। लीजिए, अवलोकन कीजिए—

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।

—किष्कि० २०।१४

अर्थात् हे सुग्रीव! कार्तिक मास के आरम्भ होने पर तुम रावणवध के लिए प्रयत्नशील होना।

आगे चलकर ३५वें सर्ग में हम युवराज अंगद को वानरों से कहते हुए सुनते हैं—

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिता:।
प्रस्थिता: सोऽपि चातीत: किमत: कार्यमुत्तरम्॥

—किष्कि० ३५।२४

देखो! हम लोग आश्विन मास में सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके राजधानी से निकले थे। वह सब समय व्यतीत हो गया है। अब हम लोगों को आगे क्या करना चाहिए?

इस प्रसंग में अंगद स्पष्ट ही वानरों का प्रस्थान आश्विन मास में बता रहे हैं। श्रीराम कहते हैं कि कार्तिक के आरम्भ में उद्योग प्रारम्भ करना और अङ्गद कहते हैं कि आश्विन में उद्योग प्रारम्भ हो गया था—यह स्पष्ट विरोध है।

विद्वान् इस उलझन के अनेक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु थोथी युक्तियों और दलीलों से तथ्य का निर्णय नहीं होता। वस्तुत: ये स्थल महर्षि वाल्मीकि के वास्तविक वर्णन के प्रमाण हैं।

श्रीराम उत्तरभारत के निवासी थे और अङ्गद दक्षिण

भारत के। कृष्णपक्ष के वर्णन में जो व्यवहार भेद हम आज देख रहे हैं वही भेद श्रीराम के युग में भी था। किसी भी मास का शुक्लपक्ष उत्तर और दक्षिणभारत में समान संज्ञा प्राप्त करता है। आश्विन शुक्ल को श्रीराम भी आश्विन शुक्ल कहते थे और वानर भी। परन्तु आश्विनपूर्णिमा का अगला दिन श्रीराम के लिए कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा था, उसी दिन वानरों ने प्रस्थान किया था अत: राम का वचन सत्य एवं यथार्थ है। जो दिन श्रीराम के लिए कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा था वही दिन दाक्षिणात्य वानरों के लिए आश्विन कृष्ण प्रतिपदा था। अत: युवराज अङ्गद का आश्विन में प्रयाण-वर्णन भी समञ्जस है। कृष्णपक्ष के व्यवहार भेद के कारण यह विरोध प्रतीत होता है वस्तुत: विरोध है नहीं।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में राम एवं अङ्गद के वचनों में यथार्थता की रक्षा की है। रामायण का यह स्थल यथास्थिति निरूपण का प्रबल प्रमाण है। काल्पनिक कथा में यथा यथार्थता सम्भव नहीं थी।

एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। शिवरात्रि उत्तर और दक्षिणभारत में एक ही तिथि में होती है, परन्तु हम उसे फाल्गुन कृष्ण में होना मानते हैं, और दाक्षिणात्य माघकृष्ण में। व्रत सारे भारतवर्ष में एक ही दिन होता है केवल संज्ञा का भेद है। यही बात श्रीराम और अङ्गद के वचनों में भी समझ लें।[1]

कुछ शंकाएँ और उनका समाधान

रामायण के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ और मिथ्या धारणाएँ लोगों में प्रचलित हैं। हमने अपने अनुवाद में स्थान-स्थान पर रामायण के सम्बन्ध में होनेवाली सभी शंकाओं को समाधान देने का प्रयास किया है। कुछ शंकाएँ ऐसी हैं जिनका समाधान हम पादटिप्पणियों में नहीं कर सके। उन शंकाओं का समाधान प्रस्तुत है—

अयोध्या की बनावट

महर्षि वाल्मीकि ने अयोध्या की लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई तीन योजन लिखी है। प्रश्न यह है कि अयोध्या आयताकार क्यों बनाई गई थी? आजकल की भाँति बना देते।

महर्षि वाल्मीकि ने अयोध्या का यथातथ्य वर्णन किया है और वही बनावट ठीक भी है। इस बनावट में दृष्टिकोण यह था कि प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ वायु मिल सके। यदि अयोध्या की चौड़ाई भी लम्बाई के समान ही हो जाती तो नगर के प्रत्येक नागरिक के लिए नगर से बाहर आकर स्वच्छ एवं स्वास्थ्य-प्रद वायु का सेवन कठिन हो जाता। नगर के केन्द्र से किसी भी ओर अधिक से अधिक डेढ़ योजन चलने पर प्रत्येक नागरिक नगर से बाहर निकलकर प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले सकता था। अत: अयोध्या की बनावट ठीक थी।

भरत के साथ सेना

जिस समय भरतजी श्रीराम को चित्रकूट से अयोध्या लाने के लिए गये तब वे अपने साथ एक बहुत बड़ी सेना भी ले गये। इस सेना के कारण गुह और महर्षि भरद्वाज ने उन्हें शंका की दृष्टि से देखा। लक्ष्मण ने भी यही समझा कि भरत हमारा काम तमाम करने के लिए आ रहा है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि जिस सेना के कारण सभी शंकित हुए भरतजी को उस सेना को ले जाने की आवश्यकता क्या थी?

भरतजी राज्य पर श्रीराम का अधिकार समझते थे और वे उस राज्य को शीघ्रातिशीघ्र श्रीराम को सौंपना चाहते थे। भरतजी का विचार यह था कि मैं अनुनय और विनय के द्वारा उन्हें राज्य वापस लेने के लिए सहमत कर लूँगा। यदि श्रीराम सहमत हो जाते तो चित्रकूट में ही श्रीराम का राज्याभिषेक हो जाता। राज्याभिषेक करने के लिए पुरोहित की आवश्यकता होती अत: भरतजी वसिष्ठजी को अपने साथ ले गये थे। जब श्रीराम का राजतिलक होता तब सेना द्वारा सलामी दी जाती इसलिए भरतजी सेना को भी साथ ले गये थे।

दशानन का अर्थ[2]

'रावण के दस सिर नहीं थे', इस विषय में हमने

१. इस समाधान के लिए हम स्वर्गीय भीमसेनजी शास्त्री एम०ए०, एम०ओ०एल० के हार्दिक आभारी हैं।

२. यहाँ तक इन तीन शंकाओं के समाधान के लिए हम आचार्य विश्वश्रवाजी व्यास एम०ए०, वेदाचार्य के हार्दिक आभारी हैं।

पादटिप्पणियों में अनेक स्थानों पर प्रकाश डाला है। यहाँ एक और समाधान प्रस्तुत है।

दशानन की भाँति रामायण का एक और शब्द है दशरथ। यदि दशानन का अर्थ दस मुख वाला है तो क्या दशरथ के पास दस ही रथ थे? नहीं, महाराज दशरथ के रथों की संख्या तो बहुत अधिक थी। फिर दशरथ का अर्थ क्या है? 'शब्दकल्पद्रुम' में '**दशरथ**' का अर्थ इस प्रकार दिया है—'**दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य**' जिसके रथ की गति सब दिशाओं में थी, जिसके रथ अबाध गति से सब दिशाओं में भागते थे। इस प्रकार '**दशाननः**' का अर्थ इस प्रकार हो सकता है—'**दशसु दिक्षु आननं मुखाज्ञा यस्य**' जिसकी ध्वनि दसों दिशाओं में गूँजती थी, जिसकी आज्ञा दसों दिशाओं में चलती थी।

कवि अपनी कविताओं में पर्यावाची शब्दों का प्रयोग करते ही हैं। अतः कवि ने दशशीश, दशकन्धर, दशमुख आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है।

सीता-परित्याग

धोबी के कहने से श्रीराम से सीताजी का परित्याग कर दिया था और वह भी उस स्थिति में जब कि वह गर्भवती थी—यह लोगों की मनगढ़न्त कल्पना है। श्रीराम जैसा मर्यादापालक ऐसा क्रूर एवं निर्दयतापूर्ण दुष्कर्म नहीं कर सकता।

सीता की अग्नि-परीक्षा के समय श्रीराम ने सीता से कहा था कि—

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥

—युद्ध० ६६।२३

सीता का त्याग श्रीराम के इस वचन के भी प्रतिकूल सिद्ध होगा। श्रीराम के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि '**रामो द्विर्नाभिभाषते**'—राम दो प्रकार की बातें नहीं कहता। अतः सीता-परित्याग की बात सर्वथा निराधार है।

यदि धोबी के कहने से सीताजी के त्यागने का प्रसंग उपस्थित भी हो जाता तो मेरे विचार में श्रीराम स्वयं भी राज्यसिंहासन छोड़कर वन में चले जाते।

एक बात और, यह घटना 'उत्तरकाण्ड' की है जो महर्षि वाल्मीकि की कृति नहीं है इसलिए भी सीता परित्याग की बात ठीक नहीं है।

शम्बूक-वध

श्रीराम के ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने तप करते हुए शम्बूक नामक शूद्र का वध करके उचित कार्य नहीं किया।

यह आक्षेप भी सर्वथा निराधार है। जिस राम ने भिलनी के कन्दमूल-फलों का प्रीतिपूर्वक सेवन किया वे शम्बूक के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। शम्बूकवध की कथा 'उत्तरकाण्ड' में है और 'उत्तरकाण्ड' प्रक्षिप्त है इसलिए भी यह आक्षेप निस्सार है।

रावण-वध

लोक में प्रसिद्ध है कि श्रीराम ने दशहरा- विजयादशमी के दिन रावण को मारा था और दीपावली के दिन श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ था। यह धारणा भी मिथ्या एवं कपोलकल्पित ही है। श्रीराम का राज्याभिषेक चैत्र मास में होना था। देखिए—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम्॥

—अयो० ३।४

राज्यसिंहासन के स्थान पर दूसरे ही दिन श्रीराम को वन में जाना पड़ा। चौदह वर्ष चैत्रमास में ही पूर्ण होंगे। अश्विन अथवा कार्तिक में नहीं। विजयादशमी के दिन श्रीराम ने रावण पर विजय नहीं पाई थी, अपितु इस दिन तो उद्योग आरम्भ हुआ था।

रावण का वध चैत्रमास में हुआ। जिस समय रावण अपने पुत्र इन्द्रजित् के वध से दुःखी होकर सीता को मारने के लिए उद्यत हुआ तब उसे रोकते हुए सुपार्श्व ने कहा था—

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम्।
कृत्वा निर्याह्यमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः॥

—युद्ध० ५०।१९

आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। आज आप युद्ध की पूर्ण तैयारी कीजिए और कल अमावास्या को सेना को साथ

ले विजय के लिए दुर्ग से बाहर निकलिए।

रावण का वध हो गया। रावण की अन्त्येष्टि और विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् विभीषण ने श्रीराम से निवेदन किया कि आप कुछ दिन लंका में ही विश्राम कर मुझे सेवा का अवसर प्रदान कीजिए। श्रीराम ने कहा—भरत मेरी प्रतीक्षा में है। अब मैं ठहर नहीं सकता। अब तो आप कोई ऐसा प्रबन्ध कीजिए जिससे मैं शीघ्र ही अयोध्या में पहुँच जाऊँ। इस पर विभीषण ने कहा—

अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज।
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसान्निभम्॥

—युद्ध० ६७। ७-८

हे राजकुमार! आपका कल्याण हो। मैं आपको सूर्य की भाँति देदीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा एक ही दिन में अयोध्या पहुँचा दूँगा।

इस विमान के द्वारा—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥

—युद्ध० ७०। १

चौदह वर्ष पूर्ण हो जाने पर श्रीराम पञ्चमी को भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे और बैठे हुए ऋषि को प्रणाम किया।

यहाँ यह शंका हो सकती है कौन-से मास की पञ्चमी? इसका सीधा समाधान यह है कि मास बताये बिना तिथि कही जाए तो प्रथम मास की तिथि जानी और मानी जाती है। उदाहरणार्थ 'न्यू इयर्स डे' (New Year's Day) अंग्रेजी सन् के प्रथम मास जनवरी की पहली तिथि को ही माना जाता है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि रावण का वध चैत्र में हुआ था।

यहाँ हम एक और अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के अन्त में श्रीराम के चौदह वर्ष के वनवास का एक 'तिथिपत्र' दिया हुआ है। वहाँ लिखा है—

चैत्रशुक्ल चौदस जब आई।
मर्‍यो दशाननं जग दुखदाई॥

—रामचरित मानस पृष्ठ १२६
वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई सन् १९०

इन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि श्रीराम का दशहरा औ दीपावली से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। इन पर्वों का महत्त तो कुछ और ही है।

बालकाण्ड

पाश्चात्य आलोचकों का कथन है कि आरम्भ में वाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक पाँच ही काण्ड थे। बालकाण्ड महर्षि वाल्मीकि की कृति नहीं है। यह काण्ड तो पीछे से जोड़ा गया है। पाश्चात्यों की यह धारणा भ्रममात्र ही है। बालकाण्ड में गङ्गावतरण, विश्वामित्र की तपस्या और श्रीराम पर ईश्वरत्व आरोपित करना आदि अनेक बातें निस्सन्देह महर्षि वाल्मीकि की लेखनी से नहीं लिखी गईं। ये और इस प्रकार की बहुत-सी बातें निश्चय ही इस काण्ड में प्रक्षिप्त की गई हैं। परन्तु इस प्रक्षेप के कारण सारे ही काण्ड को प्रक्षिप्त कह देना उचित नहीं। क्या महर्षि वाल्मीकि ने बिना राम की उत्पत्ति के राज्याभिषेक से ही राम का जीवन लिखना आरम्भ कर दिया? क्या कोई भी लेखक किसी महापुरुष का जीवन उसकी उत्पत्ति, बाल-लीलाओं तथा माता-पिता आदि का वर्णन न कर सीधा पच्चीस वर्ष के पश्चात् से लिखना आरम्भ कर देता है? बालकाण्ड में श्रीराम के पिता महाराज दशरथ के राज्य का वर्णन, पुत्र-प्राप्ति के लिए उनके प्रयत्न, श्रीराम आदि का जन्म, उनके संस्कार शिक्षा-दीक्षा और विवाह आदि का वर्णन है। अयोध्याकाण्ड से पूर्व इन बातों का वर्णन होना ही चाहिए। अतः बालकाण्ड प्रक्षिप्त नहीं है यह महर्षि वाल्मीकि की ही कृति है।

सुन्दरकाण्ड

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के सभी काण्ड या तो घटनाओं पर आधारित हैं अथवा स्थानों पर। जैसे बालकाण्ड और युद्धकाण्ड—ये दोनों काण्ड घटना-प्रधान हैं। अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड—इन काण्डों का नामकरण स्थानों के नाम पर किया गया है। सुन्दरकाण्ड का नामकरण न तो किसी घटना के आधार पर है और न ही किसी स्थान के आधार पर। प्रश्न होता है इस काण्ड का

यह नाम क्यों?

सुन्दरकाण्ड में सौन्दर्य का समुद्र ठाठें मार रहा है। इस काण्ड में कवि की कवित्व शक्ति पराकाष्ठा पर पहुँची हुई प्रतीत होती है। सुन्दरकाण्ड का अलौकिक सुन्दरत्व निम्न कारणों से प्रकट होता है—

१. सुन्दरकाण्ड की कथा श्रीराम के सेवक हनुमान् की पराक्रमपूर्ण गौरव-गाथा से ओत प्रोत है जिससे सर्वत्र वीररस का समुद्र उमड़ रहा है।

२. कवि ने महारानी सीता की दयनीय दशा का वर्णन ऐसे मार्मिक शब्दों में किया है कि पाषाण-हृदय भी पिघले बिना नहीं रह सकता। इस वर्णन में करुणरस का समुद्र उमड़ रहा है।

३. महारानी सीता के पातिव्रत और सौन्दर्य आदि गुणों का अनुपम चित्रण इस काण्ड में बड़ी ही विचित्रता के साथ चित्रित किया गया है।

४. सीताजी का रावण के प्रलोभनों को ठोकर मार कर उसे पवित्र हितोपदेश देना, रावण सरीखे दुष्ट व्यक्ति के लिए महान् शिक्षाप्रद है।

५. अशोकवाटिका निस्सन्देह अत्यन्त सुन्दर थी। इसकी सुन्दरता का वर्णन देखते ही बनता है। आठवें सर्ग के पहले ही श्लोक में उसे 'विचित्राम्' कहा है। अत: सुन्दर कानन में, सुन्दरी सीता को खोज निकालने का सुन्दर कार्य, सुन्दर रीति से करने तथा ४१ वें सर्ग के प्रथम श्लोक के अनुसार चित्रकानन (सुन्दर-वन) वाले प्रस्रवण पर्वत पर राम-सुग्रीव को सीता का सन्देश सुनाने के कारण इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया है।

कदाचित् इन सभी कारणों से किसी ने ठीक ही कहा है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥

उत्तरकाण्ड

हमारे विचार में उत्तरकाण्ड महर्षि वाल्मीकि की रचना नहीं है। अपने कथन की पुष्टि में मैं निम्न प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ—

१. युद्धकाण्ड के अन्त में 'फलश्रुति' दी हुई है जो किसी ग्रन्थ की समाप्ति की सूचक होती है।

२. उत्तरकाण्ड में श्रीराम के विमल एवं आदर्श चरित्र पर कीचड़ उछाला गया है। साथ ही इस काण्ड में अनेक बातें सृष्टिनियम के विरुद्ध हैं, अत: उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है।

३. रामायण की दो प्रकार की प्रतियाँ जो पहले पहल प्रकाशित हुई थीं उनमें एक का नाम गौड़ (बङ्गाल) प्रति और दूसरी का नाम बम्बई की प्रति है। बङ्गाल की प्रति में केवल छह काण्ड थे और बम्बई की प्रति में उत्तरकाण्ड सहित सात काण्ड थे। इटली देश के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ गौरेशियो ने स्वदेश भाषानुवादसहित वाल्मीकीय रामायण को महाराज सार्डिनिया की सहायता से छपवाया था उसमें भी केवल छह ही काण्ड थे।

४. वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड तृतीय सर्ग में जहाँ रामायण की कथाओं का संक्षेप है वहाँ बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की घटनाओं का सार लिखते हुए किसी भी काण्ड का नाम नहीं लिखा परन्तु अन्तिम श्लोक में "**तच्चाकरोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः।**" उत्तर-काण्ड का नाम लिखना इस सर्ग की लेखनशैली से सर्वथा विरुद्ध है अत: यह श्लोक प्रक्षिप्त है। अन्य काण्डों की भाँति विषयों का भी विशद वर्णन नहीं है अत: उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है।

५. उत्तरकाण्ड के रचयिता को यह सन्देह था कि लोग उत्तरकाण्ड को वाल्मीकीय रामायण का भाग स्वीकार नहीं करेंगे अत: उसने लिखा—

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम्।
रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम्॥

—उत्तर० १११।१

अर्थात् उत्तरसहित यहाँ तक यह आख्यान ब्रह्मपूजित है। इतना प्रसिद्ध मुख्य रामायण है जिसे महर्षि वाल्मीकि ने बनाया है। यहाँ भी 'सोत्तरम्' शब्द सन्देहजनक है। अत: यह काण्ड प्रक्षिप्त है।

६. 'चम्पू-रामायण' जो महाराज भोज के समय में लिखा गया था, में स्पष्ट लिखा है कि यह वाल्मीकीय रामायण का सार है। इस चम्पू-रामायण में युद्धकाण्ड तक का ही विषय

है अत: उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है।

यह अनुवाद क्यों ?

रामायण पर पहले ही अनेक टीकाएँ थीं फिर भी यह अनुवाद क्यों ? निस्सन्देह रामायण पर इससे पूर्व भी अनेक टीकाएँ हुई हैं। इन टीकाओं में अनेक स्थानों पर लेखक की भावना को न समझकर अर्थ का अनर्थ किया गया है। इन टीकाकारों ने दशरथ की आयु छियासठ हजार वर्ष लिख दी, राम ने ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य किया, हनुमान् आदि वानर थे, जटायु के चोंच थी, इस प्रकार की अनेक बातें लिख डालीं। हमने इस अनुवाद में प्रमाणपूर्वक शब्दों का ठीक अर्थ देकर महर्षि वाल्मीकि के अनुसार सत्य अर्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आजकल के व्यस्त मानव के पास बड़े-बड़े ग्रन्थों को पढ़ने का समय नहीं है। अत: हमने इसे महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में ही संक्षिप्त कर दिया है।

इस अनुवाद की यह भी विशेषता है कि अन्य रामायणों में जो सुन्दर और मार्मिक स्थल हैं वे भी पादटिप्पणी में दे दिये गये हैं। साथ ही पादटिप्पणी में रामायण सम्बन्धी सभी शंकाओं का समाधान भी देने का प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थ में दो सौ से अधिक पादटिप्पणियाँ हैं। ये टिप्पणियाँ इस अनुवाद की सबसे बड़ी विशेषता है।

धन्यवाद

सर्वप्रथम जगन्नियन्ता परमपिता परमात्मा का कोटिश: धन्यवाद है, जिसकी असीम अनुकम्पा और महती कृपा से यह कार्य निर्विघ्न रूप में पूर्ण हो रहा है। आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध प्रकाशक श्रीगोविन्दराम हासानन्दजी जीवन भर संघर्षों से जूझते हुए भी वैदिक साहित्य के प्रकाशन और प्रचार तथा प्रसार में लगे रहे। वे संसार से विदा हो गये परन्तु अपने प्रतिनिधि के रूप में वे श्रीविजयकुमारजी को इस कार्य के लिए नियुक्त कर गये। इतने बड़े ग्रन्थ को श्रीविजयजी ने प्रकाशित कर जनता के समक्ष उपस्थित किया तदर्थ उन्हें भी हार्दिक साधुवाद देता हूँ। पुस्तक का प्रूफ संशोधन एक शुष्ककार्य है। इस शुष्ककार्य को श्रीरामकृष्ण दासजी 'रसिक' तथा श्रीविश्वदेवजी शास्त्री ने बड़े ही मनोयोग-पूर्वक किया है। उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। प्रेस के संचालक श्रीनरेन्द्रजी तथा प्रेस के कर्मचारी विशेषकर श्रीश्यामलालजी तथा श्रीराजकुमारजी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने पुस्तक को शुद्ध रूप में मुद्रित करने का प्रयत्न किया है।

जिन पुस्तकों और लेखों से इस अनुवाद में सहायता मिली है उनके लेखकों का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मुझे न संस्कृत का ज्ञान है, न भाषा पर अधिकार है, हाँ, एक दुस्साहस अवश्य कर बैठा हूँ। ग्रन्थ कैसा बना और अनुवाद कैसा हुआ है, इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक और समालोचक ही कर सकेंगे। पाठकों के सुझाव, सम्मतियों और आलोचनाओं की प्रतीक्षा करूँगा। यदि पाठकों ने इस ग्रन्थ को अपनाया तो हमारा विचार 'मनुस्मृति' का विस्तृत भाष्य और दस सहस्र श्लोकयुक्त 'महाभारत' निकालने का भी है।

२५ दिसम्बर १९७०
वेदसदन, एच १। २ माडल टाऊन, दिल्ली-९

विदुषामनुचर:
आचार्य जगदीश विद्यार्थी

द्वितीय संस्करण

मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण निकलेगा। किन्तु यह जानकर अति हर्ष हुआ कि जनता की गुण-ग्राहकता के कारण इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। विश्वास है, जनता इसे भी उसी प्रकार अपनायेगी।

२४ जनवरी, १९७७

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

बालकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

अवतरणिका

तपः स्वाध्यायनिरतं[१] तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥ १॥

तप और स्वाध्याय में निरत, वक्ताओं में चतुर एवं मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी से तपस्वी वाल्मीकि मुनि ने पूछा—

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं[२] लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च[३] सत्यवाक्यो[४] दृढव्रतः[५]॥ २॥

---

१. महर्षि नारद कितने स्वाध्यायशील थे, यह बात निम्न वर्णन से स्पष्ट है—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्, इतिहासपुराणं पञ्चं, वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, दैवं, निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां, सर्प-देवजनविद्याम्, एतद्भगवोऽध्येमि।

—छान्दो० उ० ७। १। २

नारद ने कहा—मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—चारों वेदों को जानता हूँ। इनके अतिरिक्त इतिहास-पुराण (ब्राह्मण तथा कल्पादि) वेदों का वेद=व्याकरण तथा निरुक्त, पित्र्य=वायुविज्ञान, राशि=गणितविद्या, दैव=प्रकृतिविज्ञान, निधि=भूगर्भविद्या, वाकोवाक्य=तर्कशास्त्र, एकायन=ब्रह्मविज्ञान, इन्द्रिय-विज्ञान, भक्ति-शास्त्र, पञ्चभूतज्ञान, धनुर्वेद, ज्योतिष-शास्त्र, सर्पविज्ञान, देवजन-विज्ञान=सर्पों को वश में करनेवाली=गन्धर्व-विद्या को मैं जानता हूँ। इतना मैंने अध्ययन किया है। यह है महर्षि नारद का अद्भुत स्वाध्याय!

२. लोगों में एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का जीवन उनके उत्पन्न होने से १०,००० (दश सहस्र) वर्ष पूर्व लिख दिया था, परन्तु यह सर्वथा मिथ्या एवं भ्रान्त धारणा है। श्लोक में शब्द है **साम्प्रतम्**—जिसका अर्थ है इस समय, वर्तमानकाल में। अन्यत्र इससे भी स्पष्ट वर्णन है—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥

—बाल० २। २५

श्रीराम के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस काव्य की रचना की।

३. श्रीराम की कृतज्ञता का अवलोकन कीजिए—

कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

—अयो० १। ९

श्रीराम अपने प्रति किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं, परन्तु उनके प्रति सैकड़ों अपकार भी किये जाएँ तो भी वे उनकी ओर कभी ध्यान नहीं देते।

४. श्रीराम की प्रतिज्ञा है—

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।

—किष्किन्धा० ६। १९

न मैंने कभी असत्य भाषण किया है, न करूँगा।

५. दृढ़व्रती कैसे थे?

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

—अरण्य० ८। ७

भगवन्! इस समय इस संसार में गुणवान्, शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़ प्रतिज्ञ कौन है?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥ ३॥

सदाचार से युक्त, सब प्राणियों का हित करने वाला, विद्वान्, सामर्थ्यवान् और प्रिय-दर्शन कौन है?

आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥ ४॥

धैर्ययुक्त, काम क्रोधादि शत्रुओं का विजेता, कान्तियुक्त, ईर्ष्या तथा निन्दा न करनेवाला तथा युद्ध में क्रुद्ध होने पर देवताओं को भी भयभीत करनेवाला कौन है?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥ ५॥

हे महर्षे! ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति के सम्बन्ध में जानने की मुझे उत्कट अभिलाषा है और आप इस प्रकार के मनुष्य को जानने में समर्थ हैं।

श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्॥ ६॥

यह सुन, तीनों लोको का वृत्तान्त जाननेवाले देवर्षि नारद प्रसन्न होकर कहने लगे—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः[१]॥ ७॥

हे मुने! आपने जिन बहुत-से तथा दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है, उनसे युक्त मनुष्य के सम्बन्ध में सुनिए—मैं सोच-विचार के पश्चात् कहता हूँ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी॥ ८॥

इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न, राम नाम से लोगों में विख्यात, श्रीरामचन्द्र नियतस्वभाव (मन को वश में रखनेवाले) अतिबलवान्, तेजस्वी, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं।

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥ ९॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥ १०॥

वे श्रीराम बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, मधुरभाषी, श्रीमान्, शत्रुनाशक, विशाल कन्धोंवाले, गोल तथा मोटी भुजाओंवाले, शंख के समान गर्दनवाले, बड़ी ठोड़ीवाले और बड़े भारी धनुष को धारण करनेवाले हैं। उनके गर्दन की हड्डियाँ मांस से छिपी हुई हैं। वे शत्रु का दमन करनेवाले हैं। उनकी भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं। उनका सिर सुन्दर एवं सुडौल है, माथा चौड़ा है। वे अच्छे विक्रमशाली हैं।

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ ११॥

उनके अङ्गों का विन्यास सम है। वे न बहुत छोटे हैं, न बहुत बड़े। उनके शरीर का रंग चिकना एवं सुन्दर है। वे बड़े प्रतापी हैं। उनकी छाती उभरी हुई है और नेत्र विशाल हैं। उनके सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर हैं और वे शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं।

हे सीते! मैं अपने जीवन का बलिदान कर सकता हूँ, लक्ष्मण और तुझे भी छोड़ सकता हूँ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को और विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों के समक्ष की हो, कभी नहीं छोड़ सकता।

१. श्रीराम अवतार नहीं थे, यह बात श्लोक में पड़े शब्द 'नरः' से ही सिद्ध है। वाल्मीकि ने मनुष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया है और नारदजी ने मनुष्य का ही वर्णन किया है। अवतारवाद वेद के भी विरुद्ध है। वेद में ईश्वर को 'अजः' (ऋ० ७।३५।१३) कभी जन्म न लेनेवाला कहा है। अन्यत्र कहा है—**स पर्यगात्** (यजुः० ४०।८) वह सर्वत्र व्यापक है। जो अजन्मा है उसका जन्म कैसा? जो सर्वत्र व्यापक है वह एकदेशी कैसे हो सकता है? अवतार का अर्थ होता है उतरना। जो कभी चढ़ा ही नहीं उसका अवतरण कैसा?

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥ १२॥

वे धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, परोपकारी, कीर्तियुक्त, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र, जितेन्द्रिय और समाधि लगानेवाले हैं।

प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥ १३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥ १४॥

वे प्रजापति ब्रह्मा के समान प्रजा के रक्षक, अतिशोभावान् और सबके पोषक हैं। वे शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं। वे प्राणिमात्र के रक्षक और धर्म के प्रवर्तक हैं। वे अपने प्रजा पालनरूप धर्म के रक्षक, स्वजनों के पालक, वेद और वेदाङ्गों के मर्मज्ञ तथा धनुर्वेद में निष्णात हैं (शास्त्र और शस्त्र दोनों में प्रवीण हैं)।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥ १५॥

वे सब शास्त्रों के तत्त्वों को भली-भाँति जाननेवाले, उत्तम स्मरणशक्ति से युक्त, प्रतिभा-शाली (सूझ-बूझवाले), सर्वप्रिय, सज्जन, कभी दीनता न दिखाने वाले और लौकिक तथा अलौकिक क्रियाओं में कुशल हैं।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः[1] सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ १६॥

जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में पहुँचती हैं उसी प्रकार उनके पास सदा सज्जनों का समागम लगा रहता है। वे आर्य हैं, वे समदृष्टि हैं और सदा प्रियदर्शन हैं।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥ १७॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः॥ १८॥

वे सब गुणों से युक्त और कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले हैं। वे गम्भीरता में समुद्र के समान, धैर्य में हिमालय के तुल्य, पराक्रम में विष्णु के सदृश, प्रियदर्शन में चन्द्रमा-जैसे, क्षमा में पृथिवी की भाँति और क्रोध में कालाग्नि के समान हैं। वे दान में कुबेर के समान और सत्य-भाषण में मानो दूसरे धर्म हैं।

---

१. यहाँ श्रीराम को 'आर्य' कहा गया है। आजकल कुछ व्यक्ति आर्य शब्द से चिढ़ते हैं। वस्तुतः हम हैं आर्य ही। चारों वेदों में, मनु आदि स्मृतियों में, उपनिषदों में, रामायण, महाभारत और अठारह पुराणों में सर्वत्र हमारा नाम आर्य ही बताया गया है। वेद का तो यहाँ तक आदेश है—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ —ऋ० ९। ६३। ५

अपने आत्मा को दिव्यगुणों से अलंकृत करते हुए, तत्परता के साथ कार्य करते हुए, शत्रुओं को परे भगाते हुए सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाते हुए हम सर्वत्र विचरें।

निरुक्तकार यास्क लिखते हैं—

आर्य ईश्वरपुत्रः। —नि० ६। २६। १

आर्य का अर्थ है ईश्वर का पुत्र।

श्री अरविन्दुघोष लिखते हैं—

The word Arya expresses a particular ethical and social order of well-governed life, candour, courtesy, nobility, straight dealing, courage, gentleness, purity, humanity, compassion, protection of the weak, liberty, observance of social duties, eagerness for knowledge, respect for the wise and the learned and the social accomplishment. There is no word in human speech that has a nobler history. --Arya Vol. I P. 63

'आर्य' शब्द में उदारता, नम्रता, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, पवित्रता, दया, निर्बल-संरक्षण, ज्ञान के लिए उत्सुकता, सामाजिक कर्तव्य-पालन आदि सब उत्तम गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय भाषा में इससे उत्तम और कोई शब्द नहीं है।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

अवतरणिका

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम्॥ १॥

देवर्षि नारद के मुख से इस वृत्तान्त को सुन महर्षि वाल्मीकि ने अपने शिष्य भारद्वाजसहित नारदजी का सत्कार किया।

यथावत् पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा।
आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम्[१] ॥ २॥

देवर्षि नारद वाल्मीकि द्वारा विधिवत् सत्कृत होकर उनकी आज्ञा पा आकाश-मार्ग से चले गये।

स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा।
जगाम तमसा तीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः॥ ३॥

नारदजी के देवाश्रम चले जाने के पश्चात् वाल्मीकिजी स्नान के लिए गङ्गा के समीप तमसा नदी के तट पर पहुँचे।

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम्॥ ४॥

नदी के समीप ही उस वन में महर्षि वाल्मीकि ने मीठी बोली बोलनेवाले, सर्वदा साथ रहनेवाले एवं विहार करते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को देखा।

तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः॥ ५॥

इतने में पक्षियों के शत्रु एक व्याध ने मुनि के समक्ष ही उस जोड़े में से नर क्रौञ्च पक्षी को मार डाला।

तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम्॥ ६॥

क्रौञ्ची व्याध द्वारा मारे गये रक्त से लथपथ और पृथिवी पर छटपटाते हुए अपने पति को देखकर करुण स्वर में विलाप करने लगी।

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत॥ ७॥

व्याध द्वारा मारे गये उस पक्षी को देखकर धर्मात्मा महर्षि का हृदय द्रवित हो गया।

ततः [२]करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्॥ ८॥

उस करुणा की अनुभूति के कारण व्याध के उस कर्म को अधर्म जानकर और विलाप करती हुई क्रौञ्ची को देखकर वाल्मीकिजी के मुख से ये शब्द प्रस्फुटित हुए—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ ९॥

हे निषाद! तूने इस कामोन्मत्त नर पक्षी को मारा है[३], अतः तुझे बहुकालपर्यन्त सुख एवं शान्ति प्राप्त न हो।

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया॥ १०॥

मा निषाद—इत्यादि कहकर और हृदय में इसका अर्थ विचारने पर वाल्मीकिजी को बड़ी चिन्ता हुई कि इस पक्षी के दुःख से दुखित होकर मैंने क्या कह

---

१. रामायण काल में छोटे-छोटे हवाई जहाज अनेक व्यक्तियों के पास थे। नारदजी भी इधर-उधर भ्रमण के लिए वायुयान का ही प्रयोग करते थे। अन्यत्र भी आकाश-मार्ग में गमन करने के उदाहरण आयेंगे।

२. कविवर पन्त ने कविता की परिभाषा करते हुए ठीक ही कहा है—

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान॥

३. यह घटना आगे आनेवाली कथा की सूचक है। रावण ने श्रीराम और सीता के जोड़े में से सीता का हरण किया। रावण निषाद के समान और सीता तथा राम क्रौञ्च जोड़े के प्रतीक हैं। काव्य की दृष्टि ये यह घटना अत्यन्त रोचक एवं हृदयहारी है।

डाला।

चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः॥ ११॥

महाबुद्धिमान् और शास्त्रज्ञ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने सोच-विचार कर अपने शिष्य से कहा—

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥ १२॥

भरद्वाज! शोक-पीड़ित अवस्था में मेरे मुख से अनायास जो श्लोक निकला है, इसमें चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में समान अक्षर हैं और वीणा पर भी गाने योग्य है। यह रचना कीर्ति बढ़ानेवाली हो, इसमें कुछ भी अन्यथा न हो।

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः॥ १३॥

शिष्य ने आदेशानुसार महर्षि वाल्मीकि के उस अत्युत्तम वचन को कण्ठस्थ कर लिया, इससे मुनि शिष्य पर बहुत प्रसन्न हुए।

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः॥ १४॥

तदनन्तर मुनिवर उस तीर्थ में यथाविधि स्नान कर और उसी श्लोक पर विचार करते हुए अपने आश्रम में लौट आये[१]।

स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित्।
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः॥ १५॥

आश्रम में पहुँच, दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो ऋषिवर अपने शिष्यों को अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाने लगे।

आजगाम ततो ब्रह्मा चोवाच मुनिपुङ्गवम्।
वृत्तं कथय रामस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्॥ १६॥

इसी बीच ब्रह्माजी वहाँ आये और वाल्मीकिजी से बोले—तुम श्रीराम के चरित्र का वर्णन करो जैसा कि तुमने नारद से सुना है।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥ १७॥

जब तक इस धराधाम पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी तब तक संसार में रामायण-कथा का प्रचार प्रसार रहेगा।

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्॥ १८॥

शुद्धान्तःकरणवाले वाल्मीकिजी की समझ में यह बात आ गई कि ऐसे ही श्लोकों में मैं सम्पूर्ण रामायणकाव्य की रचना करूँ।

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥ १९॥

नारदजी से श्रीराम का चरित्र सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने धर्म-अर्थ से युक्त सर्वजन-हितकारी श्रीराम के जीवन की घटनाओं को उत्तम प्रकार से एकत्र करना आरम्भ किया।

रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च।
सभार्येण स राष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः॥ २०॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्सम्प्रपश्यति॥ २१॥

---

१. महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में लोगों में एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि वे आरम्भ में डाकू थे। रामायण में तो उनके सम्बन्ध में यही घटना उपलब्ध होती है। वाल्मीकिजी के सम्बन्ध में रामायण को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। सीताजी की पवित्रता की साक्षी देते हुए उन्होंने कहा था—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्॥

हे राम! मैं प्रचेतस मुनि का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है।

इस श्लोक के विद्यमान रहते हुए महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में यह कैसे कहा जा सकता है कि वे यौवन-अवस्था में डाकू रहे होंगे। वे वाल्मीकि कोई दूसरे हो सकते हैं। एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का होना असम्भव नहीं है।

श्रीराम लक्ष्मण-सीता और पत्नियों तथा राष्ट्र सहित दशरथजी का जो कुछ हँसना, बोलना आदि वृत्तान्त और चरित्र थे उन सबको महर्षि वाल्मीकि ने अपने धर्म-बल से यथावत् जान लिया।

स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने।
सत्यसन्धेन रामेण तत्सर्वं चान्ववैक्षत॥ २२॥

सत्यप्रतिज्ञ राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ वन में विचरते हुए जो कुछ किया था उस सबका भी मुनि वाल्मीकि ने साक्षात्कार किया।

ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं[1] पाणावामलकं यथा॥ २३॥

तदनन्तर धर्मात्मा मुनि ने एकाग्रचित्त होकर उन सब चरितों को, जो पहले हो चुके थे, हथेली पर रखे हुए आँवले की भाँति देखा।

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः।
अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः॥ २४॥

सब वृत्तान्तों को सम्यक् प्रकार जान लेने के पश्चात् महामुनि वाल्मीकिजी सर्वप्रिय श्रीराम के चरित को श्लोक-बद्ध करने के लिए उद्यत हुए।

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥ २५॥

श्रीराम के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने पर महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस सम्पूर्ण काव्य की रचना की।

❮ तृतीयः सर्गः ❯ (३)

कथा का आरम्भ—

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥ १॥

सरयू नदी के तट पर कोसल नामक एक बहुत बड़ा देश था जो सन्तुष्ट जनों से पूर्ण, समृद्धि-सम्पन्न और धन-धान्य से भरपूर था।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्॥ २॥

वहाँ विश्वप्रसिद्ध अयोध्या नाम की नगरी थी जिसे मनुष्यों में श्रेष्ठ महाराज मनु ने स्वयं बसाया था।

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा॥ ३॥

वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन (साठ मील) लम्बी और तीन योजन (पन्द्रह मील) चौड़ी थी। उसमें बड़ी सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं।

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥ ४॥

यह राजधानी एक विस्तृत राजपथ से सुशोभित थी। इस राज-पथ से अनेक सड़कें निकाली गई थीं। सड़कों पर प्रतिदिन जल छिड़का जाता था और फूल बिछाये जाते थे।

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥ ५॥

इस पुरी में राज्य को समृद्ध करनेवाले महाराज दशरथ उसी प्रकार निवास करते थे जिस प्रकार स्वर्ग (त्रिविष्टप) में इन्द्र बसते हैं।

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥ ६॥

यह नगरी तोरण-द्वारों और सुन्दर चौड़े बाजारों से युक्त थी। सब प्रकार के यन्त्र वहाँ विद्यमान थे

---

१. **पुरा यत्तत्र निर्वृत्तम्**—पहले जो कुछ हो चुका था—इससे भी यह स्पष्ट है कि रामायण की रचना श्रीराम- जन्म से पूर्व नहीं हुई थी।

तथा नाना कलाविशारद शिल्पी वहाँ वास करते थे।

सुतमागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्॥ ७॥

उसमें सूत, मागध और वन्दीजन भी रहते थे। वह नगरी अत्यन्त शोभायमान और देदीप्यमान थी। उसमें ऊँची-ऊँची अटारियोंवाले मकान थे जिन पर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। परकोटे की दीवारों पर सैकड़ों तोपें चढ़ी हुई थीं।

वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।
उद्यानाम्रवनोपेतां महतीं सालमेखलाम्॥ ८॥

वह नगरी स्त्रियों की नाट्य-समितियों से युक्त थी। उद्यान और आम के वन नगरी की शोभा को बढ़ा रहे थे। नगरी के चारों ओर साखुओं के लम्बे लम्बे वृक्ष थे।

दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसम्पूर्णां गोभिरुष्ट्रैःखरैस्तथा॥ ९॥

यह नगरी दुर्गम किलों और खाइयों से युक्त थी। शत्रु इस पर आक्रमण करने में असमर्थ थे। हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट और खच्चर स्थान स्थान पर दीख पड़ते थे।

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम्।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्॥ १०॥

उसकी शोभा विचित्र थी—राजभवनों का रंग सुनहरा था। नगरी में सुन्दर स्वरूपवती स्त्रियाँ निवास करती थीं। रत्नों के वहाँ ढेर लगे रहते थे। वहाँ सात मंजिलवाले मकान सर्वत्र दिखाई देते थे।

दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा।
नादितां भृशमयर्त्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम्॥ ११॥

वह नगरी नगाड़े, मृदङ्ग, वीणा और पणव आदि बाजों की ध्वनि से सदा प्रतिध्वनित हुआ करती थी, पृथिवीतल पर उसकी टक्कर की कोई दूसरी नगरी नहीं थी।

◀ चतुर्थः सर्गः ▶ (४)

दशरथ-राज्य का वर्णन—

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः।
दशरथो महातेजाः वसञ्जगदपालयत्॥ १॥

उस अयोध्या नगरी में वेदार्थ को जाननेवाले, सब वस्तुओं का संग्रह करनेवाले, महातेजस्वी राजा दशरथ प्रजा का पालन करते थे।

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥ २॥

उस पुरी में सब मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट, निर्लोभ और सत्यवादी थे।

नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्[1]॥ ३॥

उस नगरी में कोई ऐसा पुरुष न था जो थोड़े संग्रहवाला हो। सभी गृहस्थी धन-धान्य, गाय-बैल और घोड़ों से युक्त थे।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः[2]॥ ४॥

अयोध्यापुरी में कोई भी मनुष्य कामी, कंजूस, निर्दयी, मूर्ख और नास्तिक नहीं था।

---

१. 'साकेत' में मैथिलीशरणजी द्वारा मानो इसी श्लोक का अनुवाद मुखरित हो उठा है—

कौन है ऐसा अभागा गृह कहो।
साथ जिसके अश्व गौशाला न हो॥
धान्यधन परिपूर्ण सबके धाम हैं।
रङ्गशाला से सजे अभिराम हैं॥

२. यह व्यवस्था महाराजा अश्वपति के समय तक निर्बाध गति से चलती रही। उन्होंने घोषणापूर्वक कहा था—

सर्वे नराश्च नार्याश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः[१] ॥ ५ ॥

अयोध्यावासी सभी स्त्री और पुरुष धर्मात्मा एवं जितेन्द्रिय थे। सभी जन प्रसन्न और चरित्र में महर्षियों के समान निर्मल थे।

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न लिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते॥ ६ ॥

अयोध्या में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट और गले में माला धारण न करता हो। कोई भी अल्पभोगवाला नहीं था। कोई ऐसा न था जो तैल, फुलेल, चन्दन न लगाता हो। वहाँ कोई ऐसा मनुष्य भी नहीं था जिसके शरीर से (अस्वच्छता के कारण) दुर्गन्ध निकलती हो।

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्॥ ७ ॥

अयोध्या में कोई अशुद्ध अन्नभोजी न था। कोई भी दान न देनेवाला नहीं था। कोई भी अजितेन्द्रिय नहीं था। कोई भी ऐसा व्यक्ति न था जो बाजूबन्द और हाथों में सोने के कड़े न पहनता हो।

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न सङ्करः ॥ ८ ॥

अयोध्या में कोई मनुष्य ऐसा न था जो यज्ञ न करता हो, जो नीच स्वभाव का हो, चोर हो या वर्णसंकर हो।

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे॥ ९ ॥

अयोध्यावासी ब्राह्मण अपने नित्यकर्मों में तत्पर, जितेन्द्रिय, दानी और अध्ययनशील थे। वे प्रतिग्रह-दान लेने में हिचकते थे।

नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित्॥ १० ॥

अयोध्या में कोई भी व्यक्ति नास्तिक, असत्यवादी, अल्पश्रुत, परनिन्दाप्रिय, असमर्थ और अशिक्षित नहीं था।

नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन॥ ११ ॥

उस नगर में वेद के छहों अङ्गों को न जाननेवाला, व्रतहीन, सहस्रों से कम दान देनेवाला, दीन, पागल अथवा दुखी कोई नहीं था।

दीर्घायुषो नराःसर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे॥ १२ ॥

अयोध्यावासी सभी जन दीर्घायुवाले, धर्म और सत्य का आश्रय लेनेवाले, पुत्र-पौत्र और स्त्रियों से भरे-पूरे थे।

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः॥ १३ ॥

वहाँ के क्षत्रियगण ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुकूल चलनेवाले, वैश्य क्षत्रियों के अनुवर्ती और शूद्र अपने धर्म में लगे हुए तीनों वर्णों की सेवा करनेवाले थे।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

—छा० उ० ५। ११। ५

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई अग्निहोत्र न करनेवाला नहीं है, कोई मूर्ख नहीं है, कोई व्यभिचारी नहीं है फिर भला व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे करती है?

१. 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ने इसका अनुवाद यूँ किया है—

स्वस्थ शिक्षित शिष्ट उद्योगी सभी।
बाह्य भोगी आन्तरिक योगी सभी॥

◀ पञ्चमः सर्गः ▶ (५)

महाराज दशरथ का मन्त्रिमण्डल—

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः।
मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः॥ १॥

इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न महाराज दशरथ के अमात्य सर्वगुण सम्पन्न, विचार में निपुण, इशारों पर काम करनेवाले और महाराज की सदा भलाई चाहनेवाले थे।

अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः।
शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः॥ २॥

महाराज दशरथ के मन्त्रिमण्डल में आठ[१] अमात्य थे। वे सब अत्यन्त यशस्वी, ईमानदार और सदा राजकार्य में निरत रहनेवाले थे।

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥ ३॥

वे आठ मन्त्री थे—१. धृष्टि २. जयन्त ३. विजय ४. सिद्धार्थ ५. अर्थसाधक ६. अशोक ७. मन्त्रपाल और ८. सुमन्त्र।

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे॥ ४॥

इनके अतिरिक्त ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव दो प्रधान ऋत्विज् तथा कुछ और ऋषि भी मन्त्री के रूप में थे।

विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः।
श्रीमन्तश्च महात्मानः शास्त्रज्ञा दृढविक्रमाः॥ ५॥

ये सब मन्त्री विद्या विनय सम्पन्न, लज्जाशील, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, लक्ष्मी-सम्पन्न, महात्मा, शास्त्र के जाननेवाले और बड़े पराक्रमी थे।

तेजः क्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः।
क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः॥ ६॥

वे बड़े तेजस्वी, क्षमाशील, यशस्वी, हँसकर बोलनेवाले थे। वे काम, क्रोध और लोभ के वश होकर भी कभी झूठ न बोलनेवाले थे।

तेषामविदितं किञ्चित्स्वेषु नास्ति परेषु वा।
क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम्॥ ७॥

उन मन्त्रियों के लिए अपने राज्य में अथवा दूसरे राज्य में कोई भी किया गया या किया जानेवाला कार्य अविदित नहीं था, क्योंकि वे चरों द्वारा सब वृत्तान्त जानते रहते थे।

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः।
प्राप्तकालं यथादण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि॥ ८॥

वे सब व्यवहार-कुशल, अपने विभागों की पूर्ण जानकारी रखनेवाले और अन्याय करने पर अपने पुत्रों को भी दण्ड देनेवाले थे।

ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुंधराम्॥ ९॥

ऐसे गुणी अमात्यों से युक्त, पाप-रहित महाराज दशरथ ने पृथिवी का पालन किया।

---

१. यह मन्त्रिमण्डल मनु महाराज के अनुसार है—

सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।

—मनु० ७।५४

परीक्षित किये हुए सात या आठ मन्त्री नियुक्त करे।

❮ षष्ठः सर्गः ❯ (६)

महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ—

तस्य चैवं प्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः॥ १॥

ऐसे प्रभावशाली, धर्मज्ञ, महात्मा, पुत्र के लिए पीड़ित, महाराज दशरथ के वंश को चलानेवाला कोई पुत्र नहीं था।

चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः।
सुतार्थं वै पुत्रयागेन किमर्थं न यजाम्यहम्॥ २॥

पुत्रोत्पत्ति का उपाय सोचते हुए उन्हें ध्यान आया कि पुत्र-प्राप्ति के लिए मैं पुत्रेष्टि यज्ञ क्यों न करूँ?

अमात्यांश्चाब्रवीद्राजा निश्चितां तु कृत्वा मतिम्।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्॥ ३॥

यज्ञ करने का निश्चय कर महाराज दशरथ ने मन्त्रियों को सरयू के तट पर यज्ञभूमि ठीक करने का आदेश दिया।

नापराधो भवेत् कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे।
छिद्रं हि मृगयन्ते स्म विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः॥ ४॥

उन्होंने कहा—यह ध्यान रखा जाये कि यज्ञ की विधि पूरी करने में न तो कोई अपराध हो और न किसी को कष्ट दिया जाये, क्योंकि ऐसे यज्ञों में ब्राह्मणरूप में राक्षस लोग विघ्न खोजा करते हैं।

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति।
तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते॥ ५॥

विधिहीन यज्ञ करनेवाला शीघ्र नष्ट हो जाता है, अतः ऐसा उपाय कीजिए जिससे यह यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो।

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा।
अवज्ञया कृतं हन्याद्दातारं नात्र संशयः॥ ६॥

देखना, किसी को हँसी-दिल्लगी में भी अनादर से कोई वस्तु मत देना, क्योंकि अनादर करके देनेवाले दाता का नाश हो जाता है।

इत्युक्त्वा नृपशार्दूलः सचिवान्समुपस्थितान्।
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः॥ ७॥

यह कह और वहाँ उपस्थित मन्त्रियों को विदा कर नृपश्रेष्ठ, महा बुद्धिमान्, महाराज दशरथ रनिवास में चले गये।

ततः स गत्वा ताः पत्नीर्नरेन्द्रो हृदयप्रियाः।
उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात्॥ ८॥

घर जाकर नृपश्रेष्ठ दशरथ ने प्राणप्रिया अपनी पत्नियों से कहा—मैं पुत्रोत्पत्ति के लिए यज्ञ करूँगा, तुम भी यज्ञ की दीक्षा लो।

तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम्।
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये॥ ९॥

महाराज के मुख से इस सुखदायी संवाद को सुनकर रानियों के मुखकमल ऐसे सुशोभित हो गये जैसे वसन्तकाल में कमल-पुष्प शोभा को प्राप्त होते हैं।

❮ सप्तमः सर्गः ❯ (७)

एतत् श्रुत्वा रह सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
ऋष्यशृङ्गस्तु तेजस्वी पुत्रांस्तव विधास्यति॥ १॥

यज्ञ की चर्चा सुन सुमन्त्र ने एकान्त में महाराज दशरथ से कहा कि तेजस्वी ऋष्यशृङ्ग आपको निश्चय ही पुत्र प्रदान करेंगे।

स त्वं पुरुषशार्दूल तमानय सुसत्कृतम्।
स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः॥ २॥

हे पुरुषसिंह! आप सेना और वाहनोंसहित स्वयं वहाँ जाकर उन्हें आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाइए।

सुमन्त्रस्य वचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत्।
सान्तः पुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः॥ ३॥

सुमन्त्र का वचन सुन महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और रानियों और मन्त्रियोंसहित उस स्थान के लिए प्रस्थान किया, जहाँ ऋष्यशृङ्ग रहते थे।

आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम्।
ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम्॥ ४॥

वहाँ पहुँचकर महाराज दशरथ ने अग्नि के समान तेजस्वी द्विजों में श्रेष्ठ, ऋषिकुमार ऋष्यशृङ्ग को रोमपाद के समीप बैठे देखा।

ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः।
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ५॥

रोमपाद ने मित्रधर्म से प्रेरित हो प्रसन्नता के साथ महाराज दशरथ का विधिपूर्वक आदर सत्कार किया।

रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते।
सख्यं सम्बन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत्॥ ६॥

बुद्धिमान् शृङ्ग से रोमपाद ने दशरथजी के साथ अपनी मैत्री होने का वृत्तान्त सुनाया जिसे सुन ऋष्यशृङ्ग ने भी दशरथजी की प्रशंसा की।

एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः।
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत्॥ ७॥

इस प्रकार सत्कारपूर्वक सात-आठ दिन वहाँ रहकर महाराज दशरथ रोमपाद से बोले—

शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशांपते।
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम्॥ ८॥

हे राजन्! आपकी पुत्री शान्ता अपने पति के साथ मेरी नगरी में चले, क्योंकि एक बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है।

तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः।
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया॥ ९॥

यह सुन, रोमपाद बोले, 'बहुत अच्छा', फिर उन्होंने ऋष्यशृङ्ग से कहा कि आप अपनी पत्नी-सहित महाराज के साथ जाइए।

ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा।
स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया॥ १०॥

ऋष्यशृङ्ग जाने को तैयार हो गये और राजा रोमपाद की आज्ञानुसार अपनी पत्नीसहित दशरथजी के साथ चल पड़े।

ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात्॥ ११॥

तब महाराज दशरथ अपने मित्र रोमपाद से विदा हो प्रस्थानित हुए। मुनिवर शृङ्ग के आगमन से दशरथजी ने अपने को कृतकृत्य माना।

अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागतम्।
सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन्॥ १२॥

ऋषि प्रवर के साथ उनकी पत्नी विशालाक्षी शान्ता को आई हुई देख अन्तःपुर-वासिनी सभी रानियों ने बड़ा आनन्द मनाया।

पूज्यमाना च ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः।
उवास तत्र सुखिता कंचित्कालं सहद्विजः॥ १३॥

रानियों और विशेषकर महाराज दशरथ द्वारा सत्कृत होकर शान्ता अपने पति ऋष्यिशृङ्ग के साथ रनिवास में कुछ दिनों तक सुख से रही।

❮ अष्टमः सर्गः ❯ (८)

महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ—

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत्॥ १॥

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर जब वसन्त ऋतु का आगमन हुआ, तब महाराज की यज्ञ करने की इच्छा हुई।

ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा।
कुलस्य वर्धनं त्वं तु कर्तुमर्हसि सुव्रत॥ २॥

यज्ञ का निश्चय कर वे ऋष्यशृङ्ग से बोले—हे सुव्रत! अब आप मेरे कुल की वृद्धि के लिए उपाय कीजिए।

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम्।
लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत्॥ ३॥

मेधावी एवं वेदज्ञ ऋष्यशृङ्ग कुछ समय विचार कर, स्वस्थचित्त हो महाराज से बोले—

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि[1] प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥ ४॥

हे राजन्! मैं आपके लिए अथर्ववेद में कहे हुए मन्त्रों द्वारा विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊँगा। इसके विधिपूर्वक सम्पादन होने से आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा।

ततः प्राक्रमदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ ५॥

तदनन्तर तेजस्वी ऋषि ने पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया और विधिवत् मन्त्र पढ़कर आहुति देना आरम्भ किया।

अथ वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभाम्।
तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम्॥ ६॥
दिव्यपायससम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां समवेक्ष्याब्रवीदिदम्॥ ७॥

थोड़ी देर के पश्चात् महाराज दशरथ के आहवनीय अग्निकुण्ड से अतुल, प्रभायुक्त, स्वर्ण से निर्मित और चाँदी के पात्र से ढके, दिव्य खीर से पूर्ण पात्र को, प्यारी पत्नी के समान दोनों हाथों में लिये हुए ऋष्यशृङ्ग ने महाराज दशरथ की ओर देखकर कहा—

इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम्।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम्॥ ८॥

हे नरशार्दूल! यह खीर विद्वानों द्वारा यज्ञाग्नि में निर्मित की गई है। यह पुत्रोत्पादक प्रशस्त और आरोग्यवर्धक है। इसे आप लीजिए।

भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप॥ ९॥

इसे आप अपनी अनुरूप पत्नियों को खिलाइए। इसके प्रभाव से आपको पुत्रों की प्राप्ति होगी जिसके लिए आपने यह यज्ञ किया है।

तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्यताम्।
पात्रीं देवान्नसम्पूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम्॥ १०॥

'बहुत अच्छा'—ऐसा कह कर और प्रसन्न हो राजा दशरथ ने विद्वानों द्वारा निर्मित एवं प्रदत्त खीर से भरे स्वर्ण-पात्र को सिर झुकाकर ग्रहण किया।

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत्।
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः॥ ११॥

तदनन्तर महाराज दशरथ रनिवास में जाकर कौसल्याजी से बोले—लो यह खीर है, इससे तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥ १२॥

ऐसा कह दशरथजी ने आधी खीर कौसल्या को दी और आधी की आधी, अर्थात् चौथा भाग सुमित्रा को दिया।

कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्॥ १३॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्॥ १४॥

तदनन्तर पुत्रोत्पत्ति के लिए जो पहली आधी

---

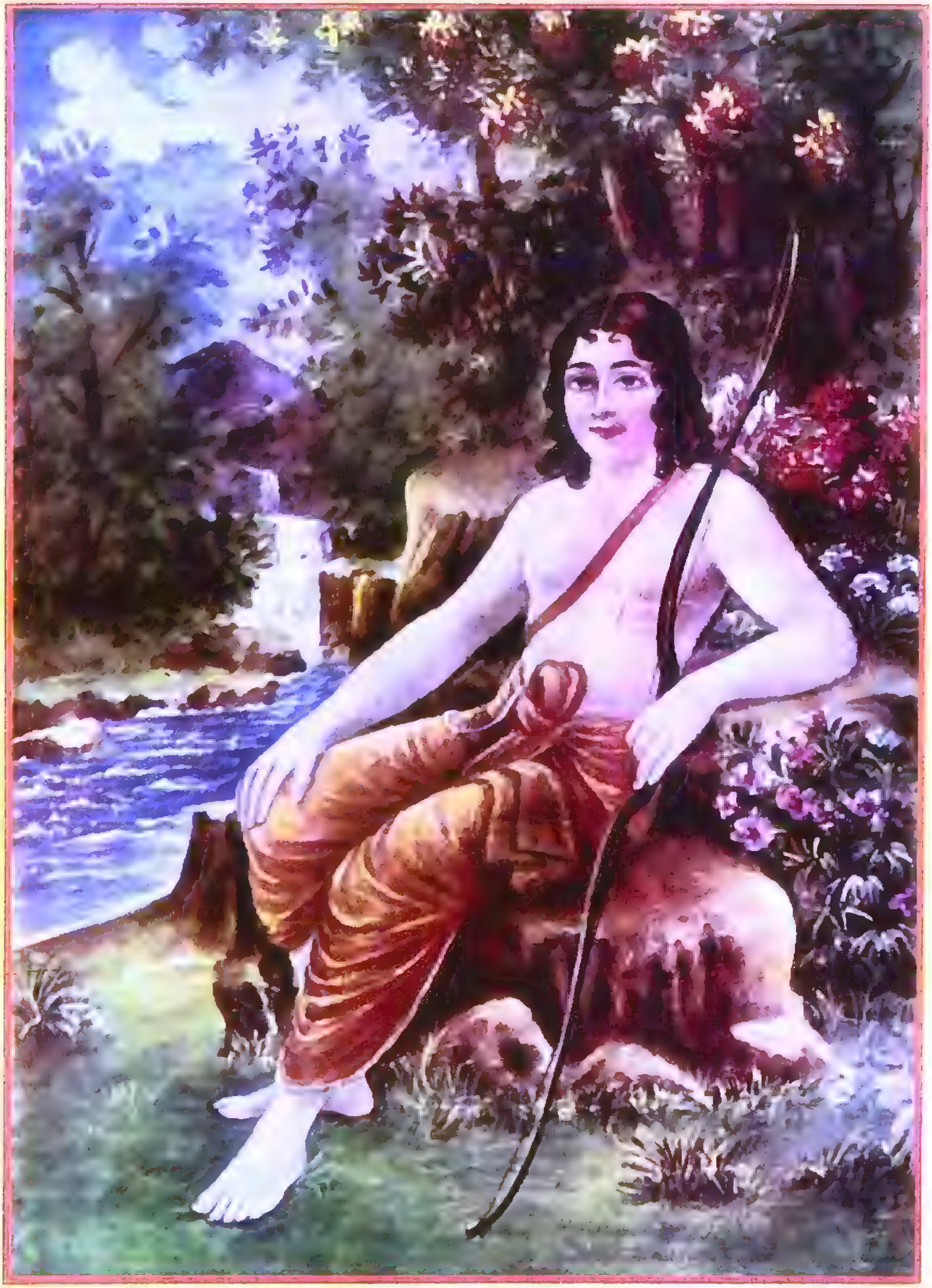
१. अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में पुत्रेष्टि का संकेत मिलता है—

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि॥

—अथर्व० ६।११।१

शमी (छौंकड़) वृक्ष पर जो पीपल उगता है वह पुत्र उत्पन्न करने का साधन है। यह पुत्र-प्राप्ति का उत्तम साधन है। वह हम स्त्रियों को देते हैं।

अथर्ववेद में इसी प्रकार के और भी बहुत-से प्रयोग हैं।



अयोध्यापति राम

खीर बची थी वह कैकेयी को दी, फिर कुछ सोचकर महामति दशरथ ने कैकेयी को दी खीर का चौथा भाग पुनः सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार राजा ने यह खीर रानियों को पृथक् पृथक् बाँट दी।

ताश्चैवं पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः।
सम्मानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः॥ १५॥

महाराज दशरथ की वे सुन्दर स्त्रियाँ उस खीर को खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने अपने-आपको भाग्यवती माना।

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-
ऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा॥ १६॥

तदनन्तर तीनों उत्तमाङ्गनाओं ने महाराज द्वारा पृथक्-पृथक् प्रदत्त खीर को खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजवाले गर्भों को धारण किया।

≺ नवमः सर्गः ≻ (९)

रामादि जन्म एवं बाल्यकाल—

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिनराज्ञा वै पृथिवीश्वराः।
यथार्हं पूजितास्तेन मुदिताः प्रययुर्देशान्॥ १॥

यज्ञ के समाप्त होने पर बाहर से आये राजा लोग दशरथजी द्वारा सत्कृत हो अपने देशों को लौट गये।

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।
अनुगम्यमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता॥ २॥

ऋष्यशृङ्ग भी अपनी पत्नी शान्ता सहित महाराज से विदा हो अपने स्थान को चल दिये। दशरथजी उन्हें पहुँचाने के लिए कुछ दूर उनके साथ गये।

एवं विसृज्य तान् सर्वान्प्रविवेश पुरीं श्रीमान्।
उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन्॥ ३॥

इस प्रकार यज्ञ में आये सब महानुभावों को विदा कर दशरथजी ने नगर में प्रवेश किया और सन्तानोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥ ४॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
गृहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।
कौसल्या जनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥ ५॥

यज्ञ समाप्ति के पश्चात् छह ऋतुएँ व्यतीत होने पर बारहवें मास में चैत्र की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में जब कि पाँच ग्रह (सूर्य, मङ्गल, वृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर) अपने उच्च स्थान में स्थित थे। कर्क लग्न में तथा चन्द्रमा के साथ वृहस्पति के उदय होने पर कौसल्याजी के गर्भ से श्रीराम का जन्म हुआ।

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ॥ ६॥

सत्य-पराक्रमी भरत कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को उत्पन्न किया।

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥ ७॥

भरतजी का जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ। आश्लेषा नक्षत्र और कर्कलग्न में सूर्योदय होने पर लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥ ८॥

इनके जन्मावसर पर सामगान-कर्त्ताओं ने मधुर गान किया। अप्सराएँ नाचने लगीं, उत्तम जाति के नगाड़े बजाये जाने लगे तथा ऊपर से फूल बरसाये गये।

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायं जनाकुलाः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसंकुलाः।
गायनैश्च विराविण्यो वादकैश्च तथाऽपरैः॥ ९॥

उस समय अयोध्या में एक उत्सव मनाया गया जिसमें स्त्री और पुरुषों की अपार भीड़ थी। मार्ग स्त्री पुरुषों से भरपूर थे।

प्रदेयाँश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥ १०॥

इस उत्सव में महाराज दशरथ ने सूत, मागध और बन्दीगणों को पारितोषिक दिये तथा ब्राह्मणों को धन और सहस्त्रों गौएँ प्रदान कीं।

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाऽकरोत्।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम्॥ ११॥

ग्यारह दिन बीत जाने पर चारों बालकों का नामकरण संस्कार किया गया। कौसल्या के पुत्र का नाम राम और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत रखा गया।

सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥ १२॥

सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा गया। यह नामकरण-संस्कार महर्षि वसिष्ठजी द्वारा सम्पन्न कराया गया।

ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि।
अददद् ब्राह्मणानां च रत्नौघममितं बहु॥ १३॥

इस दिन महाराज ने ब्राह्मणों और पुरवासियों को भोजन कराया और ब्राह्मणों को बहुमूल्य रत्न प्रदान किये।

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्॥ १४॥

इन सब बालकों के निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कार भी महाराज ने यथा-समय कराये।

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः॥ १५॥

चारों ही राजकुमार वेद के जाननेवाले, शूरवीर, परोपकारी, ज्ञानी और सर्वगुण-सम्पन्न थे।

तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः॥ १६॥

उनमें भी महातेजस्वी और सत्यपराक्रमी श्रीराम निर्मल चन्द्रमा की भाँति सबके प्यारे थे।

बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः॥ १७॥

शोभा को बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी बाल्यकाल से ही लोकहितैषी श्रीराम के अतिप्रिय थे।

सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः॥ १८॥

कान्ति-सम्पन्न लक्ष्मणजी श्रीराम को अपने शरीर से भी बढ़कर मानते थे। वे राम के बहिर्गत दूसरे प्राण ही थे।

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना॥ १९॥

श्रीराम को लक्ष्मण के बिना नींद भी नहीं आती थी और लक्ष्मण को दिये बिना वे कभी कोई मीठा पदार्थ भी नहीं खाते थे।

यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः।
तदैवं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्॥ २०॥

जब श्रीराम घोड़े पर सवार हो शिकार खेलने के लिए जाते तो लक्ष्मणजी भी धनुष हाथ में ले उनके पीछे हो लिया करते थे।

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः॥ २१॥

इसी प्रकार शत्रुघ्न भरत को भरत शत्रुघ्न को प्राणों से भी अधिक प्रिय था।

ते यदा ज्ञानसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः॥ २२॥
तेषामेवंप्रभावानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम्।
पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा॥ २३॥

जब वे चारों राजकुमार ज्ञान-सम्पन्न, सब गुणों से युक्त, लज्जाशील, कीर्तिमान्, सर्व विषयों में निष्णात और दीर्घदर्शी हुए तब उनके प्रभाव और तेज को देखकर दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए जैसे ब्रह्माजी लोकपालों

खीर बची थी वह कैकेयी को दी, फिर कुछ सोचकर महामति दशरथ ने कैकेयी को दी खीर का चौथा भाग पुनः सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार राजा ने यह खीर रानियों को पृथक् पृथक् बाँट दी।

ताश्चैवं पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः।
सम्मानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः॥ १५॥

महाराज दशरथ की वे सुन्दर स्त्रियाँ उस खीर को खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने अपने-आपको भाग्यवती माना।

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-
ऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा॥ १६॥

तदनन्तर तीनों उत्तमाङ्गनाओं ने महाराज द्वारा पृथक्-पृथक् प्रदत्त खीर को खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजवाले गर्भों को धारण किया।

➤ नवमः सर्गः ➤ (९)

रामादि जन्म एवं बाल्यकाल—

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिनराज्ञा वै पृथिवीश्वराः।
यथार्हं पूजितास्तेन मुदिताः प्रययुर्देशान्॥ १॥

यज्ञ के समाप्त होने पर बाहर से आये राजा लोग दशरथजी द्वारा सत्कृत हो अपने देशों को लौट गये।

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।
अनुगम्यमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता॥ २॥

ऋष्यशृङ्ग भी अपनी पत्नी शान्ता सहित महाराज से विदा हो अपने स्थान को चल दिये। दशरथजी उन्हें पहुँचाने के लिए कुछ दूर उनके साथ गये।

एवं विसृज्य तान् सर्वान्प्रविवेश पुरीं श्रीमान्।
उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन्॥ ३॥

इस प्रकार यज्ञ में आये सब महानुभावों को विदा कर दशरथजी ने नगर में प्रवेश किया और सन्तानोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥ ४॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
गृहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।
कौसल्या जनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥ ५॥

यज्ञ समाप्ति के पश्चात् छह ऋतुएँ व्यतीत होने पर बारहवें मास में चैत्र की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में जब कि पाँच ग्रह (सूर्य, मङ्गल, वृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर) अपने उच्च स्थान में स्थित थे। कर्क लग्न में तथा चन्द्रमा के साथ वृहस्पति के उदय होने पर कौसल्याजी के गर्भ से श्रीराम का जन्म हुआ।

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ॥ ६॥

सत्य-पराक्रमी भरत कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को उत्पन्न किया।

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥ ७॥

भरतजी का जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ। आश्लेषा नक्षत्र और कर्कलग्न में सूर्योदय होने पर लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥ ८॥

इनके जन्मावसर पर सामगान-कर्त्ताओं ने मधुर गान किया। अप्सराएँ नाचने लगीं, उत्तम जाति के नगाड़े बजाये जाने लगे तथा ऊपर से फूल बरसाये गये।

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलाः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसंकुलाः।
गायनैश्च विराविण्यो वादकैश्च तथाऽपरैः॥ ९॥

से।

ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः।
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः॥ २४॥

वे नरसिंह भी वेदाध्ययन में रत, पितृ-सेवा में तत्पर और धनुर्विद्या में अति प्रवीण हो गये।

◀ दशमः सर्गः ▶ (१०)

विश्वामित्रजी का आगमन—

अथ राजा दशरथो राजकार्यप्रसङ्गतः।
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायश्च मन्त्रिणः॥ १॥

एक दिन महाराज दशरथ अपने उपाध्याय और मन्त्रियों के साथ कुछ राज्य सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे।

तस्य चिन्तमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः।
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ २॥

वे परामर्श कर ही रहे थे कि इसी बीच में महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी वहाँ पधारे।

स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह।
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्॥ ३॥

महाराज से मिलने की अभिलाषा से वे द्वारपाल से बोले कि तुम शीघ्र जाकर महाराज को सूचना दो कि गाधिपुत्र विश्वामित्र आये हैं।

ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा।
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा॥ ४॥

उन्होंने राजभवन में जाकर विश्वामित्रजी के आगमन का संवाद महाराज दशरथ से निवेदन किया।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः।
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः॥ ५॥

द्वारपालों से विश्वामित्र का आगमन सुनकर दशरथजी प्रसन्न हो और वसिष्ठजी को साथ ले विश्वामित्रजी से मिलने के लिए उसी प्रकर चले जिस प्रकर इन्द्र ब्रह्माजी से मिलने जाते हैं।

स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम्।
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत्॥ ६॥

तेज से देदीप्यमान और कठोर नियमों का पालन करनेवाले तपस्वी विश्वामित्रजी को देख राजा दशरथ ने प्रसन्न हो उन्हें अर्घ्य अर्पण किया।

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम्॥ ७॥

विश्वामित्रजी ने शास्त्रोक्त विधि से राजा के अर्घ्य को ग्रहणकर उनका कुशल-मङ्गल पूछा।

पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च।
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत्सुधार्मिकः॥ ८॥

फिर विश्वामित्रजी ने महाराज के नगर, कोश, राज्य, कुटुम्ब और इष्टमित्रों की कुशलता पूछी।

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुङ्गवः।
ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह॥ ९॥

फिर विश्वामित्रजी ने वसिष्ठजी की कुशल पूछी। तदनन्तर अन्य महाभाग वामदेव आदि सब ऋषियों से यथाक्रम कुशल-मङ्गल पूछा।

ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम्।
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः॥ १०॥

विश्वामित्रजी से सत्कृत वे सब प्रसन्न मन महाराज के सभा-भवन में गये और यथोचित आसनों पर बैठ गये।

अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम्।
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्॥ ११॥

तब प्रसन्नचित एवं उदार राजा दशरथ महामुनि विश्वामित्रजी से बोले—

यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै॥ १२॥

प्रणष्टस्य यथालाभो यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥
कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः॥ १३॥

हे महर्षे! आपके आगमन से मुझे वैसा ही हर्ष हुआ है जैसा कि अमृत के मिलने से, सूखी खेती को वर्षा से, अपुत्रक को पुत्र होने से, नष्ट हुई वस्तु के मिलने से और महोत्सवों में जो आनन्द होता है वैसा ही मैं आपके आगमन को समझता हूँ। मैं आपका स्वागत करता हूँ। कहिए आपके दर्शनों से आनन्दित मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ।

पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्टया प्राप्तोऽसि मानद।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्॥ १४॥

ब्रह्मन्! आप दान के पात्र हैं। मेरे अहोभाग्य हैं जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने अपने शुभागमन से मुझे मान दिया है। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा जीवन सुजीवन हो गया।

ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति।
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थपरिवृद्धये॥ १५॥

अब आप बताइए, आप किस कार्य के लिए यहाँ पधारे हैं। मैं चाहता हूँ कि आपकी सेवा करके मैं अनुगृहीत होऊँ।

कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत।
कर्त्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम॥ १६॥

हे कौशिक! आप अपने कार्य के बारे में सन्देह मत कीजिए। मैं आपके सब कार्य पूर्ण करूँगा, क्योंकि आप मेरे पूज्य हैं।

➤ एकादशः सर्गः ➤ (११)

विश्वामित्र द्वारा राम की याचना और दशरथ का मोह—

तत् श्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम्।
हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ १॥

राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ के अद्भुत और विस्तृत वचनों को सुन महातेजस्वी विश्वामित्र हर्षित होकर बोले—

सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः।
महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः॥ २॥

हे नृपशार्दूल! ऐसे वचन आप जैसे इक्ष्वाकुवंशी और वसिष्ठजी के यजमान को छोड़कर और कौन कहेगा।

यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम्।
कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः॥ ३॥

हे राजशार्दूल! अब मैं अपने हृदय की बात कहता हूँ, उसके अनुसार कार्य कर आप अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिए।

अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ॥ ४॥

हे नरश्रेष्ठ! आजकल मैं यज्ञ-सिद्धि के लिए दीक्षा धारण किये हुए हूँ। उस यज्ञ में दो राक्षस विघ्न उपस्थित किया करते हैं।

स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि॥ ५॥

हे नृपश्रेष्ठ! सत्यपराक्रमी, काकपक्षधारी और शूरवीर अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को मुझे दे दीजिए।

शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा।
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने॥ ६॥

मेरे द्वारा रक्षित श्रीराम अपने दिव्य तेज से न केवल मेरे यज्ञ की ही रक्षा करेंगे, अपितु राक्षसों को भी नष्ट कर देंगे।

श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः।
त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति॥ ७॥

मैं इसके कल्याण के लिए ऐसी अनेक विधियाँ

और क्रियाएँ बताऊँगा जिससे इसकी ख्याति तीनों लोकों (जल, स्थल, नभ) में हो जायेगी।

यदि ते धर्मलाभं च यशश्च परमं भुवि।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि॥ ८॥

यदि आप संसार में अपने पुण्य और यश को स्थिर रखना चाहते हैं तो श्रीराम को मुझे दे दीजिए।

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः।
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ ९॥

धर्मात्मा, महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी धर्मार्थ-युक्त ऐसा वचन कहकर चुप हो गये।

तत् श्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत्॥ १०॥

विश्वामित्र के कथन को सुन दशरथ मुहूर्त भर को मूर्छित हो गये तदनन्तर सचेत होने पर वे बोले—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥ ११॥

महर्षे! कमलनेत्र श्रीराम तो अभी पन्द्रह ही वर्ष का है। मैं उसे किसी भी प्रकार राक्षसों से लड़ने योग्य नहीं समझता।

इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः।
अनया सहितो गत्वा योद्धाऽहं तैर्निशाचरैः॥ १२॥

मेरे पास जो अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं स्वामी हूँ इसे साथ ले जाकर मैं उन राक्षसों से युद्ध करूँगा।

इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मे ऽस्त्रविशारदाः।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि॥ १३॥

ये मेरे महापराक्रमी, शूरवीर, युद्ध-विद्या में प्रवीण, वेतन-भोगी योद्धा राक्षसों से युद्ध करने में समर्थ हैं। आप इन्हें ले जाइए, राम को मत ले जाइए।

अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि।
यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः॥ १४॥

मैं स्वयं धनुषबाण हाथ में लेकर युद्धभूमि में खड़े होकर जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, आपके यज्ञ की रक्षा करता हुआ राक्षसों से युद्ध करूँगा।

अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि।
बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम्॥ १५॥
न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः।
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि ते ध्रुवम्॥ १६॥

मैं स्वयं वहाँ चलता हूँ। आप राम को न ले जाइए, क्योंकि श्रीराम अभी बालक है। वह न तो अनुभवी है और न शत्रु के बलाबल को समझ सकता है और न युद्धविद्या में ही कुशल है। वह राक्षसों से लड़ने योग्य नहीं है, क्योंकि राक्षस कपटयुद्ध करनेवाले होते हैं।

विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे।
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि॥ १७॥

राम के वियोग में मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, अतः हे मुनिवर! आप श्रीराम को न ले जाइए।

यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत।
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय॥ १८॥

यदि आप राम को ही ले जाना चाहते हैं तो मुझे और चतुरंगिणी (रथ, हाथी, घोड़ा, पैदल) सेना को भी साथ ले चलिए।

षष्टिर्वर्षसहस्राणि[१] जातस्य मम कौशिक।
दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि॥ १९॥

हे विश्वामित्र! साठ वर्ष की अवस्था में बड़े कष्ट उठाकर मैंने इसे प्राप्त किया है, अतः आप राम को न ले जाइए।

चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने[२] च न रामं नेतुमर्हसि॥ २०॥

चारों राजकुमारों में मेरा परम स्नेह राम के ही

१. सहस्र का अर्थ एक भी होता है, अतः सहस्र वर्ष का अर्थ हुआ एक वर्ष और "षष्टिर्वर्षसहस्राणि" का अर्थ हुआ साठ वर्ष।

२. मनुजी ने ज्येष्ठ पुत्र को ही धर्मज माना है—
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः।
—मनु० ९। १०७
ज्येष्ठ पुत्र ही धर्मज है, अन्य तो कामज होते हैं।

ऊपर है। वह धर्मप्रधान और ज्येष्ठ है, अतः आप श्रीराम को न ले जाइए।

किं वीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते।
कथं प्रमाणाः के चैतान्रक्षन्ति मुनिपुङ्गव॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वे राक्षस कितने पराक्रमी हैं, किसके पुत्र हैं, आकार-प्रकार में कैसे हैं और उनके सहायक कौन-कौन हैं?

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः॥ २२॥
तेन संचोदितौ द्वौ तु राक्षसौ सुमहाबलौ।
मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः॥ २३॥

महाराज के वचन सुन विश्वामित्रजी बोले—हे राजन्! महर्षि पुलस्त्य के वंश में उत्पन्न रावण नाम का एक राक्षस है। उसी की प्रेरणा से बड़े बलवान् दो राक्षस—मारीच और सुबाहु यज्ञों में विघ्न डाला करते हैं।

इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा।
नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः॥ २४॥

विश्वामित्र के वचनों को सुन दशरथ ने कहा—उस दुरात्मा रावण का सामना तो मैं भी नहीं कर सकता।

स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके।
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम्॥ २५॥

हे धर्मज्ञ! हे ब्रह्मन्! आप मुझ पर और मेरे बच्चे पर कृपा करें। मैं अपने बाल-पुत्र को कदापि नहीं दूँगा।

➤ द्वादशः सर्गः ➤ (१२)

विश्वामित्र जी का क्रोध और वसिष्ठ का दशरथ को समझाना—

तत् श्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम्।
समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १॥

दशरथ के पुत्रस्नेह से सिक्त वचनों को सुन विश्वामित्रजी क्रुद्ध होकरे बोले—

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्वं प्रतिज्ञां हातुमिच्छयसि।
राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः॥ २॥

हे राजन्! आप रघुवंश में उत्पन्न होकर भी कार्य करने की प्रतिज्ञा करके उस प्रतिज्ञा को तोड़ना चाहते हैं। यह बात रघुवंशियों[१] के लिए विपरीत है और कुल-परम्परा के प्रतिकूल है।

यदिदं ते क्षमं राजन् गमिष्यामि यथागतम्।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सबान्धवः॥ ३॥

राजन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं चला। आप इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करते हुए बन्धु-बान्धवों सहित प्रसन्न रहिए।

तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः।
नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

विश्वामित्र के कुपित होने पर व्रत-परायण एवं धैर्यशील वसिष्ठजी ने दशरथ से कहा—

इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः।
धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि॥ ५॥

महाराज! आप इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न साक्षात् धर्म की दूसरी मूर्ति हैं। आप श्रीमान्, धैर्यवान् और श्रेष्ठ व्रतों को धारण करनेवाले हैं, अतः आप धर्म का त्याग न करें।

त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि॥ ६॥

आप तीनों लोकों में धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं, अतः

---

१. रघुकुल की परम्परा के सम्बन्ध में तुलसीदासजी ने मानो इसी श्लोक को अपने समक्ष रख कर कहा है—

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाये पर वचन न जाई॥

आप अपने धर्म की रक्षा कीजिए, अधर्म का आचरण मत कीजिए।

प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः।
इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय॥ ७॥

हे राजन्! जो प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण नहीं करता उसके इष्ट[१] और पूर्त[२] का फल नष्ट हो जाता है, अतः आप राम को भेज दें।

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः।
गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा॥ ८॥

श्रीराम अस्त्रविद्या में कुशल हों या न हों, विश्वामित्र से रक्षित राम का राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। अरे! यदि अग्निचक्र अमृत का रक्षक हो तो क्या कोई उसे पा सकता है?

महावीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महायशाः।
न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि॥ ९॥

विश्वामित्रजी महापराक्रमी, महातेजस्वी और महायशस्वी हैं, अतः इनके साथ राम को भेजने में तनिक भी संदेह न कीजिए।

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते॥ १०॥

विश्वामित्रजी स्वयं उन राक्षसों को मारने में समर्थ हैं। ये तो आपके पुत्र के हित के लिए ही उसे आपसे माँगने आये हैं।

➤ त्रयोदशः सर्गः ➤ (१३)

राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ प्रस्थान—

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम्।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्॥ १॥

वसिष्ठजी के समझाने पर दशरथजी ने राम और लक्ष्मण[३] को बुलवाया।

कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च।
पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम्॥ २॥

भेजते समय माता और पिता दशरथ ने गमन-कालिक स्वस्तिवाचन[४] किया तथा पुरोहित वसिष्ठ ने मङ्गल सूक्तों से राम को अभिमन्त्रित किया।

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना॥ ३॥

महाराज दशरथ ने पुत्रों का सिर सूँघकर और प्रसन्नचित हो उन्हें विश्वामित्र को सौंप दिया।

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात्॥ ४॥

सबसे आगे विश्वामित्रजी थे, उनके पीछे यशस्वी रामचन्द्र और उनके पीछे धनुष हाथ में लिये काकपक्षधारी लक्ष्मणजी चले जाते थे।

---

१. **इष्ट**—अश्वमेधादि यज्ञ।

२. **पूर्त**—कुंआ, तालाब, बावड़ी आदि बनवाना।

३. यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि विश्वामित्र ने तो केवल राम को माँगा था, उन्होंने लक्ष्मण का तो नाम भी नहीं लिया, फिर लक्ष्मण को राम के साथ क्यों भेजा गया। इसका उत्तर यह है कि उस परिवार में लक्ष्मण के बिना राम की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। जब दशरथ ने राम को भेजने का निश्चय किया तो लक्ष्मण को भी बुला भेजा, क्योंकि वे जानते थे कि लक्ष्मण श्रीराम के साथ अवश्य जायेगा।

महर्षि वाल्मीकि ने राम-लक्ष्मण का सम्बन्ध यूँ वर्णित किया है—

रामस्य दक्षिणो बाहुः नित्यं प्राणो बहिश्चरः।

—अरण्य० २२।१९

लक्ष्मण, राम के दक्षिणबाहु थे। वे राम के दूसरे प्राण के तुल्य थे जो राम के शरीर से बाहर रहकर कार्य करता था।

४. हम यहाँ एक मन्त्र देते हैं। जो अधिक देखना चाहें वे

अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे।
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ ५॥

अयोध्या से डेढ़ योजन (साढ़े सात मील) दूर सरयू के दक्षिण तट पर पहुँच, विश्वामित्र श्रीराम से मधुर वाणी में बोले—

गृहाण वत्स सलिलं मा भूत्कालस्य पर्ययः।
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामति बलां तथा॥ ६॥

हे वत्स! जल्दी से आचमन कर लो और मन्त्र-समूहरूप बला और अतिबला नामक विद्या को ग्रहण करो।

न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैऋताः॥ ७॥

इनके प्रभाव से न तो तुम्हें थकावट होगी, न कभी ज्वर आयेगा, न रूप में विकार आयेगा। सुप्त अवस्था में अथवा असावधान अवस्था में भी राक्षस आपको दबा न सकेंगे।

न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन।
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव॥ ८॥

हे राम! इस विद्या को ग्रहण करने पर सम्पूर्ण पृथिवी पर कोई भी तुम्हारे बाहुबल की समानता न कर पावेगा, पृथिवी पर ही क्या त्रिलोक में भी तुम्हारे समान कोई नहीं होगा।

न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ॥ ९॥

इस विद्या को प्राप्त कर लेने पर हे निष्पाप! सौभाग्य, चतुरता, ज्ञान, बुद्धि से कार्य के निश्चय करने और प्रत्युत्तर देने में इस संसार में कोई भी तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा।

बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम॥ १०॥

पुरुषोत्तम राम! सब विद्याओं की माता बला और अतिबला नाम विद्याओं के प्रभाव से भूख और प्यास भी तुम्हें व्याकुल न करेगी।

बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव।
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि॥ ११॥

हे राघव! इन दोनों विद्याओं के पढ़ लेने से तुम्हारा यश सम्पूर्ण संसार में फैल जायेगा।

ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः।
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः॥ १२॥

यह सुन प्रसन्नवदन राम ने आचमन कर तथा पवित्र हो आत्मस्वरूप के जाननेवाले विश्वामित्र से वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कीं।

विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भूरिविक्रमः।
सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः॥ १३॥

उन विद्याओं को सीख लेने पर पराक्रमी श्रीराम उसी प्रकार सुशोभित हुए जैसे शरदऋतु में सूर्य शोभित होता है।

गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजे।
ऊषुस्तां रजनीं तीरे सरय्वां सुसुखं त्रयः॥ १४॥

इसके अनन्तर दोनों भाइयों ने गुरु के समान विश्वामित्र की चरण-सेवा आदि कर वह रात सरयू के तट पर विश्वामित्रजी के साथ आनन्द-पूर्वक बिताई।

महर्षि दयानन्दकृत 'संस्कार-विधि' का स्वस्तिवाचन प्रकरण देखें—

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते।
नात्रवखादो अस्ति वः॥ —ऋ० १।४१।४

हे सूर्य-समान सन्मार्गगामी नागरिको! इस संसार में सत्पथगामी के लिए मार्ग सुगम तथा कण्टक-रहित होता है। इस मार्ग में आपको कोई हानि नहीं है।

≺ चतुर्दशः सर्गः ≻ (१४)

शिवाश्रम में विश्राम—

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे॥ १ ॥

रात्रि व्यतीत होने पर विश्वामित्रजी सूखे पत्तों के बिछौनों पर सोये हुए राम-लक्ष्मण से बोले—

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम्॥ २ ॥

हे कौसल्यानन्दन! नरशार्दूल राम! प्रातःकाल होने को है, उठो और प्रातः कृत्य (शौच, स्नान, सन्ध्या) आदि कर डालो।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नृपात्मजौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्॥ ३ ॥

दोनों राजकुमार परमोदार महर्षि के वचन सुनकर उठ बैठे, फिर स्नान और आचमन कर वे गायत्री का जप करने लगे।

कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम्।
अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः॥ ४ ॥

अपने दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो दोनों राजकुमारों ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और आगे चलने को तैयार हुए।

तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम्।
ददृशास्ते ततस्तत्र सरय्वाः सङ्गमे शुभे॥ ५ ॥

चलते-चलते वे उत्तम जलवाली गङ्गा नदी पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने गङ्गा और सरयू नदी का सङ्गम देखा।

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम्।
बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः॥ ६ ॥

उस सङ्गम-स्थल पर अनेक वर्षों से घोर तप में लगे हुए पवित्रात्मा ऋषियों का एक आश्रम था।

तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम्।
ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः॥ ७ ॥

उस पवित्राश्रम को देख राम और लक्ष्मण प्रसन्न हुए और महात्मा विश्वामित्रजी से बोले—

कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान्।
भगवञ्श्रोतुमिच्छावः परं कौतूहलं हि नौ॥ ८ ॥

भगवन्! यह पवित्र आश्रम किसका है? इस समय यहाँ कौन रहता है? हम दोनों इस आश्रम का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक हैं।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः।
अब्रवीत् श्रूयतां राम शिवाश्रमस्त्वयं पुण्यः॥ ९ ॥

राजकुमारों का प्रश्न सुन विश्वामित्रजी मुस्करा कर बोले—हे राम! सुनो, यह पुण्याश्रम शिवजी का है।

इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन।
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम्॥ १० ॥

हे शुभदर्शन राम! आज की रात्रि हम यहीं व्यतीत

---

१. श्रीराम '**वेदाङ्गतत्त्वज्ञः**' (बाल० १। १४) वेद को जाननेवाले थे। वेद में दोनों समय सन्ध्या करने का विधान है—

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ —ऋ० १। १। ७५

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति के लिए हम प्रतिदिन सायं और प्रातः बुद्धि और कर्मों से आपको धारण करते हुए, नमस्कार करते हुए आपको प्राप्त होते हैं।

गायत्री मन्त्र निम्न है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। —यजुः० ३६। ३

श्रीराम इसी गायत्री का जप करते थे। हमें भी इसी का जप करना चाहिए। यही परम जप है—

सावित्र्यास्तु परं नास्ति।

—अत्रिः स्मृति १। ११

करेंगे और कल नदी पार कर आगे प्रस्थान करेंगे।

अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुण्यमाश्रमम्।
स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम॥ ११॥

हे राम! स्नान कर, पवित्र होकर, जप और यज्ञ से निवृत्त हो हम इस आश्रम में प्रवेश करेंगे।

तेषां संवदतां तत्र मुनयो हर्षमागमन्।
अर्घ्यं पाद्यं तथाऽऽतिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे॥ १२॥

उन्हें वहाँ वार्त्तालाप करते देख ऋषि लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विश्वामित्रजी को अर्घ्य और पाद्य अर्पण कर उनका आतिथ्य किया।

तत्र वासिभिरानीता मुनिभिः सुव्रतैः सह।
न्यवसन्सुसुखं तत्र कामाश्रमपदे तदा॥ १३॥
कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ।
रमयामास धर्मात्मा कौशिको मुनिपुङ्गवः॥ १४॥

सुव्रतधारी आश्रमवासी मुनि उन तीनों को आश्रम में ले आये। तीनों ने सुखपूर्वक उस कामाश्रम (शिवाश्रम) में वास किया। महर्षि विश्वामित्र ने अनेक मनोरञ्जक कथाएँ सुनाकर राम लक्ष्मण का मनोरञ्जन किया।

➤ पञ्चदशः सर्गः ➤ (१५)

ताटका-वध की प्रेरणा—

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिन्दमौ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ॥ १॥

प्रभातकाल होने पर शत्रुओं का दमन करनेवाले वे दोनों राजकुमार नित्यकर्मों से निवृत्त हो विश्वामित्रजी को आगे कर नदी तट पर पहुँचे।

ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः।
उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमथाब्रुवन्॥ २॥

आश्रमवासी व्रतधारी मुनिगण एक उत्तम नौका उपस्थित कर विश्वामित्रजी से बोले—

आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत् कालस्य पर्ययः॥ ३॥

अब आप विलम्ब न कर, राजपुत्रों सहित नौका पर सवार हो जाइए। आपकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो।

विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीनभिपूज्य च।
ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरङ्गमाम्॥ ४॥

विश्वामित्रजी "तथा अस्तु" कह और उन ऋषियों का सत्कार कर सागरगामिनी उस नदी के पार पहुँचे।

तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ।
स वनं घोरसंकाशं दृष्ट्वा नृपवरात्मजः।
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्॥ ५॥

दक्षिण तट पर पहुँच, नाव से उतर के मन्द गति से आगे चले। चलते हुए दोनों राजकुमारों ने एक भयानक निर्जन वन देखा। उस वन को देख श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—

अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणनादितम्।
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः॥ ६॥

अहो! यह वन तो बड़ा भयानक प्रतीत होता है। इसमें झींगुर झंकार रहे हैं, बड़े-बड़े भयंकर जीवों के नाद से परिपूर्ण है और भास पक्षी भीषण शब्द कर रहे हैं।

नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः।
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चोप शोभितम्॥ ७॥

बाज पक्षी अनेक प्रकार की भयावह बोलियाँ बोल रहे हैं। इस वन में सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी भी दीख पड़ते हैं।

धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः।
संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्वेतद्दारुणं वनम्॥ ८॥

धव, असगन्ध, अर्जुन, बिल्व, तेन्दुआ, पाढल और बेरी के वृक्षों से व्याप्त यह कौन सा वन है?

तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः।
श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम्॥ ९॥

यह सुन, महातेजस्वी विश्वामित्रजी बोले—हे वत्स! सुनो, मैं बतलाता हूँ यह वन किसका है।

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ॥ १०॥

पहले यहाँ पर देवलोक के समान स्थितिवाले धन-धान्य से भरपूर और समृद्ध मलद और करूष नाम के दो देश बसे हुए थे।

कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षी वै कामरूपिणी।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत्॥ ११॥

कुछ काल पश्चात् एक स्वेच्छाचारिणी यक्षिणी इधर आ निकली जिसमें अनेक हाथियों का बल है (अनेक हाथियों को पछाड़ने का सामर्थ्य है)।

ताटका नामं भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः।
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्र पराक्रमः॥ १२॥

हे राम! तेरा कल्याण हो। उसका नाम ताटका है। वह सुन्द की स्त्री है। उसका पुत्र मारीच इन्द्र के समान पराक्रमी है।

वृत्तबाहुर्महावीर्यो विपुलास्यतनुर्महान्।
राक्षसो भैरवाकारो नित्यं त्रासयते प्रजाः॥ १३॥

गोल-गोल भुजाओंवाला, महा-पराक्रमी, बड़े मुखवाला और भयानक शरीरवाला वह राक्षस मारीच नित्य ही प्रजा को सताया करता है।

इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव।
मलदांश्च करूषाँश्च ताटका दुष्टचारिणी॥ १४॥

हे राघव! वह दुष्ट ताटका मलद और करूष दोनों देशों को नित्य ही उजाड़ा करती है।

सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने।
अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः॥ १५॥

वह यक्षिणी इस मार्ग को रोके हुए यहाँ से आधा योजन दूर रहती है, अतः अब हमें ताटका के वन में चलना चाहिए।

स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम्।
मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः॥ १६॥

मेरे आदेश से तुम अपने पराक्रम से उस यक्षिणी का वधकर इस स्थान को पुनः निष्कण्टक बना दो।

एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम्।
गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम्॥ १७॥

हे राम! तुम इस दुष्टा, अत्यन्त कठोर हृदय और दुष्ट पराक्रमवाली ताटका को मार कर गौ और ब्राह्मण का हित साधन करो।

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्त्तव्यं राजसूनुना॥ १८॥

हे नरोत्तम! तुम्हें ऐसी स्त्री का वध[१] करने में घृणा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि चारों वर्णों का हितसाधन राजकुमार का कर्त्तव्य होता है।

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा॥ १९॥

प्रजा की रक्षा के लिए अच्छा या बुरा कर्म, पालक वा अपवाद सहित कर्म को भी करना ही चाहिए।

राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते॥ २०॥

दुष्टों का वध राजकार्यों में नियुक्त पुरुषों का सनातन धर्म है। हे राम! यह ताटका अधर्मिणी है, अतः इसे मार डालो।

---

१. विश्वामित्रजी का यह उपदेश सर्वथा उचित और वेदानुकूल है। वेद में राजा के लिए आदेश है—

इन्द्र जहि पुमान्सं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥
—अथर्व० ८।४।२४

हे राजन्! पीड़ा देनेवाले पुरुष को और छल-कपट से दूसरों का नाश करनेवाली स्त्री का विनाश कर दो। उनकी गर्दनों को काटकर उन्हें नष्ट कर दो। ऐसे दुष्ट स्त्री-पुरुष दूसरे दिन तक जीवित न रहें।

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्॥ २१॥

हे नृप! सुनते हैं कि पूर्वकाल में इन्द्र ने प्रजा को सतानेवाली विरोचन की पुत्री मन्थरा का वध किया था।

विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी दृढव्रता।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता॥ २२॥

इसी प्रकार हे राम! विष्णु ने भृगु की पत्नी, शुक्र की माता को जो इन्द्र को मारना चाहती थी, मार डाला था।

एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः।
अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषत्तमैः।
तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृपः॥ २३॥

हे राजपुत्र! ऐसे ही और भी बहुत-से महात्माओं ने अधर्मयुक्त स्त्रियों को मारा है। तुम भी मेरी आज्ञा से घृणा छोड़कर इसे मार डालो।

➤ षोडशः सर्गः ➤ (१६)

ताटका-वध—

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः॥ १॥

विश्वामित्रजी के उत्साह-वर्धक वचनों को सुन श्रीराम ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥ २॥

आपके कथनानुसार ताटका को मार कर मैं गौ और ब्राह्मण का हित साधन करने तथा इस देश के निवासियों को सुखी करने के लिए तैयार हूँ।

एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बद्ध्वा मुष्टिमरिन्दमः।
ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन नादयन्॥ ३॥

ऐसा कह, धनुष हाथ में ले, धनुष की डोरी को टंकार कर राम ने घोर शब्द किया जिससे दशों दिशाएँ गूँज उठीं।

तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
श्रुत्वा चाभ्यद्रवत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिःसृतः॥ ४॥

उस शब्द को सुन वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित हो उस ओर तेजी से दौड़ी जिस ओर शब्द हुआ था।

तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्।
प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत॥ ५॥

उस लम्बी-चौड़ी, क्रोधित, भयंकर और विकराल मुखवाली राक्षसी को देख श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः।
भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च॥ ६॥

हे लक्ष्मण! इस यक्षिणी का शरीर कैसा भयंकर है। कायर लोगों के हृदय तो इसे देखते ही काँप उठते होंगे।

एनां पश्य दुराधर्षां मायाबलसमन्विताम्।
विनिवृत्तां करोम्यद्य हृतकर्णाग्रनासिकाम्॥ ७॥

मैं इस विकट मायाविनी और दुर्जेया के कान, नाक काटकर इसे अभी भगाये देता हूँ।

न ह्येनमुत्सहे हन्तुं स्त्रीस्वभावेन रक्षिताम्।
वीर्यं चास्या गतिं चैव हन्यामिति हि मे मतिः॥ ८॥

स्त्री होने के नाते मैं इसे मारना नहीं चाहता, परन्तु मैं इसके हाथ-पैर तोड़कर इसे दुष्टकर्म करने योग्य न रहने दूँगा।

एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता।
उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत॥ ९॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर ताटका क्रोध से पागल हो दोनों हाथों को उठाकर राम की ओर ही झपटी।

दृष्ट्वा गाधिसुतः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्।
अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्टचारिणी॥ १०॥

यह देख विश्वामित्रजी ने राम से कहा—हे राम! इस दुष्टा पापिनी पर अधिक दया दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

यज्ञविघ्नकरी यक्षी पुरावर्धेत मायया।
वध्यतां तावदेवैषा पुरा सन्ध्या प्रवर्तते॥ ११॥

इस दुष्टा यज्ञ-विघ्नकारिणी यक्षिणी का बल और अधिक न बढ़ने पावे, अतः इसे सायंकाल होने से पूर्व ही यमलोक पठा दो।

तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव।
शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च॥ १२॥

उसे बिजली की भाँति वेग से अपनी ओर आते देख राम ने उसकी छाती में एक ऐसा बाण मारा कि वह पृथिवी पर गिर पड़ी और मर गई।

ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः।
मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

मुनि विश्वामित्र ताटका के वध से प्रसन्न हो राम का सिर सूँघ कर बोले—

इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन।
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम॥ १४॥

हे शुभदर्शन राम! आज की रात हम यहीं निवास करेंगे। प्रातःकाल अपने आश्रम को प्रस्थान करेंगे।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथात्मजः।
उवास रजनीं तत्र ताटकाया वने सुखम्॥ १५॥

विश्वामित्र के वचन को सुन श्रीराम प्रसन्न हुए। वह रात्रि उन्होंने ताटका-वन में ही व्यतीत की।

➤ सप्तदशः सर्गः ➤ (१७)

विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्रदान—

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम्॥ १॥

वह रात्रि वहाँ बिता कर विश्वामित्रजी मुस्करा कर मधुरवाणी से श्रीराम से बोले—

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः॥ २॥

हे राम! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ और प्रसन्नता-पूर्वक सब अस्त्र तुम्हें देता हूँ।

देवासुरगणान्वापि सगन्धर्वोरगान्भुवि।
यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि॥ ३॥

इन अस्त्रों के द्वारा तुम सुर, असुर, गन्धर्व और नाग आदि शत्रुओं को अपने वश में करके जीत लोगे।

तानि दिव्यानि भद्रं ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।
दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव॥ ४॥

हे राम! मैं इन सब अस्त्रों को तुम्हें देता हूँ। लो, यह महादिव्य दण्डचक्र है।

धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च।
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च॥ ५॥

हे वीर! धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और अति प्रचण्ड ऐन्द्रास्त्र भी लो।

वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव॥ ६॥

हे नृपश्रेष्ठ! वज्रास्त्र, महादेवास्त्र, ब्रह्मशिर और ऐषीक को भी ग्रहण करो।

ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम्।
गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे॥ ७॥

हे महाबाहो! मैं यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र देता हूँ। मोदकी और शिखरी—ये दो गदाएँ भी ग्रहण करो।

प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज।
धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च॥ ८॥

हे काकुत्स्थ राम! मैं तुम्हें अत्यन्त उग्र धर्मपाश और कालपाश नामक अस्त्र भी देता हूँ।

वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम्।
अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन॥ ९॥

हे रघुनन्दन! मैं तुम्हें वरुण का 'वरुणपाश' अस्त्र देता हूँ। शुष्क और आर्द्र दो अशनियाँ भी देता हूँ।

ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा।
आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः॥ १०॥

मैं तुम्हें पैनाक और नारायण अस्त्र भी प्रदान करता हूँ और आग्नेयास्त्र जिसको शिखर भी कहते हैं, देता हूँ।

वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ।
अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च॥ ११॥
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव।
कङ्कालं मुसलं घोरं कपालमथ कङ्कणम्॥ १२॥

हे राम! यह लो प्रथम नामक वायव्यास्त्र, हयशिरास्त्र और क्रौञ्चास्त्र। ये दो शक्तियाँ भी लो। भयंकर कङ्काल, मुसल, कपाल और कङ्कण भी तुम्हें देता हूँ।

वधार्थं रक्षसां यानि ददाम्येतानि सर्वशः।
वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः॥ १३॥

विद्याधर और नन्दन नामवाले अस्त्र जो राक्षसों को मारने के लिए उपयोगी हैं—तुम्हें प्रदान करता हूँ।

असिरत्नं महाबाहो ददामि नृवरात्मज।
गन्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः॥ १४॥

हे राजकुमार! यह उत्तम तलवार भी तुम्हें देता हूँ और यह लो 'मानव' नामवाला गन्धर्वास्त्र।

प्रस्वापनं प्रशमनं दद्मि सौम्यं च राघव।
वर्षणं शोषणं चैव सन्तापनविलापने॥ १५॥

ये हैं प्रस्वापन (सुलानेवाला) प्रशमन, सौम्य, वर्षण. शोषण, सन्तापन और विलापन (रुलाने-वाला) अस्त्र।

मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः॥ १६॥

ये हैं कामोत्पादक दुर्धर्ष मदनास्त्र और मोहित करनेवाला पैशाचास्त्र।

प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः।
तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम्॥ १७॥

हे महायशस्वी नरशार्दूल! यह लो तामस और महाबली सौमन अस्त्र।

संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज।
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मयाधरं परम्॥ १८॥

हे महाबली! ये लो संवर्त्त, दुर्धर्ष, मौसल, सत्यास्त्र और परमास्त्र—मायाधर।

सौरं तेजप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम्।
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम्॥ १९॥

यह लो शत्रु के तेज को खींचनेवाला तेजप्रभ नामक अस्त्र और ये हैं—सोमास्त्र, शिशिरास्त्र और त्वाष्ट्रास्त्र।

दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम्।
एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान्।
गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज॥ २०॥

ये हैं दारुण भगास्त्र, शीतेषु और मानव नामक अस्त्र। हे महाबाहो राम! तुम इन महाबली, कामरूपी कार्यवाहक अस्त्रों को शीघ्र ग्रहण करो।

स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा।
तान्यस्त्राणि तदा विप्रो राघवाय न्यवेदयत्॥ २१॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने पवित्र हो और पूर्व की ओर मुख कर वे सब अस्त्र श्रीराम को दे-दिये। (उनके चलाने और रोकने की विधि बता दी)।

ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम्।
अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे॥ २२॥

तत्पश्चात् प्रसन्नमन श्रीराम विश्वामित्रजी का अभिवादन कर आगे चलने को तैयार हुए।

◀ अष्टादशः सर्गः ▶ (१८)

सिद्धाश्रम—

गच्छन्नेव च काकुत्स्थे विश्वामित्रमथाब्रवीत्।
किमेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः॥ १॥

चलते-चलते श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—मुने! पर्वत के समीप जो काला मेघ-सा दीख पड़ता है वह क्या है?

वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतूहलं हि मे।
दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च॥ २॥

यहाँ से वह वृक्षों का झुण्ड-सा प्रतीत होता है। उसे देखकर मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है। वह अनेक वन-पशुओं से युक्त, दर्शनीय और मनोहर-सा जान पड़ता है।

नाना प्रकारैः शकुनैर्वल्गुनादैरलङ्कृतम्।
निस्सृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात्॥ ३॥

यह स्थान मधुर शब्द करनेवाले पक्षियों से निनादित हो रहा है। ऐसा लगता है अब हम भयंकर एवं रोमाञ्चकारी वन से पार हो गये हैं।

संप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः।
तव यज्ञस्य विघ्नाय दुरात्मानो महामुने॥ ४॥

हे महामुने! क्या हम लोग आपके आश्रम पर पहुँच गये हैं जहाँ दुराचारी, ब्रह्महत्यारे राक्षस आपके यज्ञों में विघ्न किया करते हैं।

अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः।
विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमपचक्रमे॥ ५॥

अद्वितीय राम के उस वन के सम्बन्ध में पूछने पर विश्वामित्रजी बोले—

इह राम महाबाहो विष्णुर्देववरः प्रभुः।
तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहातपाः॥ ६॥

हे राम! देव-प्रजा में श्रेष्ठ महातपस्वी विष्णु ने तप करने के लिए यहाँ निवास किया था।

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः॥ ७॥

पहले यह आश्रम महात्मा वामन का था। यहाँ पर उनका तप सिद्ध हुआ था। इसी से इसका नाम सिद्धाश्रम प्रसिद्ध[1] है।

मयापि भक्त्या तस्यैष वामनस्योपभुज्यते।
एतमाश्रमायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः॥ ८॥

महात्मा वामन में भक्ति होने के कारण मैं भी इसी आश्रम का उपभोग करता हूँ। इसी आश्रम में आकर राक्षस लोग उपद्रव किया करते हैं।

अत्रैव पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः।
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम्॥ ९॥

हे पुरुषसिंह! इसी आश्रम में उन दुराचारियों का वध करना होगा। हे राम! आज हम उसी उत्तम सिद्धाश्रम को चलते हैं।

तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम।
इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम्।
प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः॥ १०॥

हे वत्स! यह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही तुम्हारा भी है। यह कह राम-लक्ष्मण को साथ लेकर आश्रम में प्रविष्ट होते हुए विश्वामित्र अत्यन्त शोभित हुए।

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः।
उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन्॥ ११॥

विश्वामित्रजी को देख सिद्धाश्रम-वासियों ने उठकर उनका स्वागत किया।

यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥ १२॥

जिस प्रकार आश्रम-वासियों ने विश्वामित्र का सम्मान किया उसी प्रकार उन्होंने राजकुमारों का भी आतिथ्य-सत्कार किया।

---

१. आजकल सिद्धाश्रम को 'बक्सर' कहते हैं।

मुहूर्तमथ विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ।
प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ॥ १३॥

थोड़ी देर विश्राम कर शत्रुहन्ता दोनों राजकुमारों ने हाथ जोड़ कर विश्वामित्रजी से कहा—

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुङ्गव।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव॥ १४॥

आपका मङ्गल हो। आप आज ही यज्ञ आरम्भ कर दीजिए। यह सिद्ध आश्रम है। इसका नाम सार्थक हो और आपका वचन सत्य हो।

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महानृषिः।
प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः॥ १५॥

यह सुन महातेजस्वी ऋषिवर विश्वामित्र ने नियमपूर्वक जितेन्द्रिय हो दीक्षा में प्रवेश किया। (यज्ञारम्भ किया)

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च॥ १६॥
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥ १७॥

दोनों कुमारों ने सावधानतापूर्वक रात्रि व्यतीत की। प्रातः होते ही दोनों राजकुमारों ने उठकर सन्ध्या की। तदनन्तर नियमानुसार आचमनपूर्वक पवित्र होकर गायत्री मन्त्र का जप किया, फिर अग्निहोत्र करके आसन पर विराजमान विश्वामित्रजी को प्रणाम किया।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

मारीच और सुबाहु राक्षसों का पराभव—

अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिन्दमौ।
देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः॥ १॥

दैनिक कर्त्तव्यों से निवृत्त हो, देशकाल को जाननेवाले, शत्रुहन्ता दोनों राजकुमार देशकाल का विचार कर विश्वामित्रजी से बोले—

भगवञ्श्रोतुमिछावो यस्मिन्काले निशाचरौ।
संरक्षणीयौ तो ब्रह्मन्नातिवर्तेत तत्क्षणम्॥ २॥

हे भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि उन दोनों राक्षसों से किस समय रक्षा करनी है। हे ब्रह्मन्! कहीं ऐसा न हो कि वह समय ही बीत जाये।

एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया।
सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ॥ ३॥

इस प्रकार कहते हुए और युद्ध के लिए शीघ्रता करते हुए उन दोनों राजकुमारों की प्रशंसा कर आश्रम-निवासी मुनियों ने कहा—

अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतं राघवौ युवाम्।
दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति॥ ४॥

हे राजकुमारो! आप छह दिन तक यज्ञ की रक्षा करें। विश्वामित्रजी यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं वे छह दिन तक मौन रहेंगे।

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्॥ ५॥

यशस्वी और आलस्य-रहित वे दोनों राजकुमार, उन मुनियों के वचन सुन, छह दिन तक उस आश्रम की रक्षा करते रहे।

अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि समागते।
आकाशे च महाञ्शब्दो प्रादुरासीद्भयानकः॥ ६॥

पांच दिन तो निर्विघ्न समाप्त हो गये। छठे दिन आकाश में भयानक शब्द हुआ।

मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचराश्च ये।
आगम्य भीमसङ्काशा रुधिरौघमवासृजन्॥ ७॥

मारीच, सुबाहु और उनके साथ अन्य भयङ्कर राक्षसों ने यज्ञवेदी पर रुधिर की वर्षा की।

तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः।
लक्ष्मणं त्वभिसंप्रेक्ष्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ८॥

उन्हें अपनी ओर आते देख कमलनेत्र श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर बोले---

पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्राक्षसान्पिशिताशनान्।
मानवास्त्रसमाधूताननिलेन यथा घनान्॥ ९॥

हे लक्ष्मण! तनिक इन दुराचरी और मांसभक्षक राक्षसों को तो देखो। जैसे वायु बादलों को भगा देता है उसी प्रकार मैं इन्हें मानवास्त्र से अभी उड़ाता हूँ।

मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम्।
चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघव॥ १०॥

(यह कह) परमोदार श्रीराम ने क्रुद्ध हो एक चमचमाता मानवास्त्र मारीच की छाती में मारा।

निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः॥ ११॥

मारीच को भागते हुए देख श्रीराम लक्ष्मण से बोले—अब मैं इन निर्दयी और दुष्टाचारियों का भी वध करूँगा।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव।
विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः॥ १२॥
सुबाहूरसि चिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि।
शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः॥ १३॥

श्रीलक्ष्मणजी से ऐसा कह, अपना हस्त-लाघव दिखाते हुए राम ने आग्नेयास्त्र निकाला और सुबाहु की छाती में मारा। उस बाण से विद्ध सुबाहु भूमि पर गिर पड़ा और मर गया। शेष बचे राक्षसों को श्रीराम ने वायव्यास्त्र चला कर नष्ट कर दिया।

स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा॥ १४॥

उन विघ्नकारी समस्त राक्षसों को मारने पर राम मुनियों से इस प्रकार पूजित हुए जैसे असुरों को मारने पर इन्द्र पूजित हुए थे।

अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः।
निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥ १५॥

यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने पर महर्षि विश्वामित्र दशों दिशाओं को उपद्रव-रहित देख, श्रीराम से बोले--

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः।
स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत्॥ १६॥

हे महाबाहो! मैं कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु-आज्ञा का अच्छी प्रकार पालन किया है। हे यशस्विन् राम! तुमने सचमुच इस आश्रम का नाम सिद्धाश्रम चरितार्थ कर दिया। इस प्रकार राम की प्रशंसा कर मुनि विश्वामित्र दोनों कुमारों के साथ सन्ध्या करने लगे।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

मिथिला को प्रस्थान—

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ।
ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ १॥

वीरवर एवं प्रसन्नचित राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्रजी का कार्य पूर्ण कर रात्रि को आनन्द-पूर्वक उसी आश्रम में शयन किया।

प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान् स हितावभिजग्मतुः॥ २॥

प्रातःकाल सन्ध्या आदि कर्मों से निवृत्त हो वे दोनों विश्वामित्रजी तथा अन्य ऋषियों के पास गये।

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम्।
ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ॥ ३॥

अग्नि के समान देदीप्यमान मुनि को प्रणाम कर मधुरभाषी राम और लक्ष्मण मधुर वचन बोले—

इमौ स्म मुनिशार्दूल किङ्करौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम्॥ ४॥

हे मुनिशार्दूल! हम दोनों आपके दास उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिए, हम आपकी क्या सेवा करें?

एवमुक्तास्ततस्ताभ्यां सर्व एव महर्षयः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन्॥ ५॥

उन दोनों राजकुमारों के ऐसा कहने पर, विश्वामित्रजी को आगे करके सब महर्षि बोले—

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति।
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम्॥ ६॥

हे नरश्रेष्ठ! धर्मिष्ठ मिथिलाधिपति जनक के यहाँ एक बड़ा यज्ञ हो रहा है। हम सब लोग वहाँ जा रहे हैं।

त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि।
अद्भुतं च धनूरत्नं तत्रैकं द्रष्टुमर्हसि॥ ७॥

हे नरशार्दूल! आप हमारे साथ चलेंगे। वहाँ चलने पर आप एक अद्भुत और श्रेष्ठ धनुष देख सकोगे।

एवमुक्त्वा मुनिवरः सर्षिसङ्घः सकाकुत्स्थः।
उत्तरां दिशिमुद्दिश्य प्रस्थातुमपचक्रमे॥ ८॥

ऐसा कह कर मुनि विश्वामित्र ऋषियों और राजकुमारों को साथ ले उत्तर दिशा की ओर रवााना हुए।

तं व्रजन्तं मुनिवरं मृगपक्षिगणाश्चैव।
अनुजग्मुर्महात्मानो विश्वामित्रं तपोधनम्॥ ९॥
निवर्तयामास ततः पक्षिसङ्घान्मृगानपि।
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे।
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणकूले समागताः॥ १०॥

विश्वामित्रजी के चलते ही उस आश्रम के हिरण और पक्षी भी तपोधन महात्मा विश्वामित्रजी के पीछे हो लिये।

परन्तु विश्वामित्रजी ने उन पशु-पक्षियों को लौटा दिया।

जब वे लोग बहुत दूर निकल गये और सूर्य अस्त होने लगा तो उन्होंने शोण (सोन) नदी के तट पर डेरे डाले।

तेऽस्तंगते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य निषेदुरमितौजसः॥ ११॥

सूर्यास्त होने पर उन लोगों ने स्नान कर सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र किया। तदनन्तर वे विश्वामित्रजी को आगे करके बैठ गये।

अथ रामो महातेजा विश्वामित्रं महामुनिम्।
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं कौतूहलसमन्वितम्॥ १२॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीराम ने मुनिवर विश्वामित्रजी से कौतूहलपूर्वक पूछा—

भगवन्को न्वयं देशः समृद्धवनशोभितः।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ १३॥

भगवन्! यह हरे-भरे वनों से युक्त देश कौन-सा है, मैं यह जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे इसका ठीक-ठीक वृत्तान्त बताइए।

चोदितो राम-वाक्येन कथयामास सुव्रतः।
तस्य देशस्य निखिलमृषिमध्ये महातपाः॥ १४॥

श्रीराम के पूछने पर तपस्वी और व्रतशील विश्वामित्रजी ने अन्य ऋषियों के मध्य में उस देश का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

गङ्गा के तट पर—

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणकूले महर्षिभिः।
निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ १॥

विश्वामित्रजी ने ऋषियों सहित वह रात्रि शोण नदी पर व्यतीत की। प्रातःकाल होने पर वे राम से बोले—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायभिरोचय॥ २॥

हे राम! उठो, प्रातःकाल हो चुका। तुम्हारा कल्याण हो। अब सन्ध्योपासन कर चलने की तैयारी करो।

तत् श्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम्।
पश्यन्तस्ते प्रयाता वै वनानि विविधानि च॥ ३॥

मुनिवर का यह वचन सुन श्रीराम प्रातः कृत्यों से निवृत्त हुए, फिर वे सब लोग विविध वनों को देखते हुए आगे चले।

ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा।
जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम्॥ ४॥

जब वे चलते हुए पर्याप्त दूर निकल गये तो दोपहर के समय उन्हें मुनियों से सेवित श्रेष्ठ गङ्गा दृष्टिगोचर हुई।

तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम्।
बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सह राघवाः॥ ५॥

हंस और सारसों से सुशोभित उस पुण्य-सलिला गङ्गा को देखकर राम-लक्ष्मण सहित सब ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम्।
ततः स्नात्वा हुत्वा चैव प्राश्य चामृतवद्धविः॥ ६॥
विविशुर्जाह्नवी तीरे शुचौ मुदित मानसाः।
विश्वामित्रं महात्मानं परिवार्य समन्ततः॥ ७॥

वे सब लोग गङ्गा के तट पर ठहर गये। स्नान, सन्ध्या, यज्ञ कर यज्ञशिष्टान्न को खाने के पश्चात् वे सब लोग प्रसन्नचित्त हो विश्वामित्रजी के चारों ओर बैठ गये।

सम्प्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत्।
भगवञ्श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम्॥ ८॥

तब प्रसन्नचित्त श्रीराम ने कहा—भगवन्! मैं त्रिपथगा गङ्गा का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।

तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः।
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत्॥ ९॥

राम के इस प्रकार पूछने पर तपोधन विश्वामित्रजी ने ऋषियों के मध्य में बैठे हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

➤ द्वाविंशः सर्गः ➤ (२२)

विशाला नगरी में—

ततः प्रभातविमले विश्वामित्रं महामुनिम्।
उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिन्दमः॥ १॥

विमल प्रभात होने पर दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो श्रीराम विश्वामित्रजी से बोले—

गता भगवती रात्रिः श्रोतव्यं परमाद्भुतम्।
तराम सरितां श्रेष्ठां पुण्यां त्रिपथगां नदीम्॥ २॥

हे महर्षे! रात्रि तो अद्भुत कथा सुनते हुए ही व्यतीत हो गई। आइए, अब नदियों में श्रेष्ठ त्रिपथगामिनी गङ्गा नदी को पार करें।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः।
सन्तारं कारयामास सर्षिसङ्घः स राघवः॥ ३॥

महात्मा राम के ये वचन सुन विश्वामित्रजी ऋषिगण और राजकुमारों के साथ गङ्गा के पार हुए।

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं तदा।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्॥ ४॥

गङ्गाजी के उत्तर तट पर पहुँच ऋषियों को विदाकर, वे गङ्गा के किनारे बैठ गये। तभी उन्होंने विशाला नाम की नगरी को देखा।

ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा॥ ५॥

तदनन्तर विश्वामित्रजी दोनों राजकुमारों को साथ ले स्वर्ग के समान सुन्दर और रमणीक विशाला नगरी में गये।

अथ रामो महाप्राज्ञो विश्वामित्रं महामुनिम्।
पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा विशालामुत्तमां पुरीम्॥ ६॥

तब बुद्धिमान् राम ने हाथ जोड़कर विश्वामित्र-जी से विशालापुरी का इतिहास पूछा—

कतमो राजवंशोऽयं विशालायां महामुने।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते परं कौतूहलं हि मे॥ ७॥

हे मुने! आपका कल्याण हो। कृपया बताइए इस पुरी में किस वंश का राजा राज्य करता है। यह जानने के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्य मुनिपुङ्गवः।
आख्यातुं तत्समारेभे विशालायाः पुरातनम्॥ ८॥

मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी राम का वह वचन सुन, विशाला नगरी का प्राचीन इतिहास कहने लगे।

एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा।
दितिं यत्र तपः सिद्धामेव परिचचार सः॥ ९॥

हे राम! यह वही स्थान है जहाँ इन्द्र ने तपः-सिद्धा माता दिति की सेवा की थी।

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुसायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः॥ १०॥
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता।
सम्प्रति पुरीं शासति सुमतिर्नाम दुर्जयः॥ ११॥

हे पुरुषसिंह! इक्ष्वाकु के परम धार्मिक पुत्र विशाल ने, जो अलम्बुसा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, यह नगरी बसाई थी। इस समय दुर्जय सुमति इस पुरी पर शासन करते हैं।

इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।
दीर्घायुषा महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः॥ १२॥

महाराज इक्ष्वाकु की कृपा से विशाला नगरी के सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी एवं धार्मिक होते रहे हैं।

इहाद्य रजनीं राम सुखं वत्स्यामहे वयम्।
श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि॥ १३॥

हे राम! आज की रात हम यहीं विश्राम करेंगे और कल राजा जनक से भेंट करेंगे।

सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्।
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्यागच्छन्महायशाः॥ १४॥

महातेजस्वी एवं यशस्वी राजा सुमति विश्वामित्र का आगमन सुन उनके स्वगतार्थ आये।

पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः।
प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत्॥ १५॥

उपाध्याय और परिवार जनों के साथ उनका स्वागत-सत्कार कर एवं कुशल पूछ कर वे विश्वामित्रजी से कहने लगे—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे विषयं मुने।
संप्राप्तो दर्शनं चैव नास्ति धन्यतरो मम॥ १६॥

हे मुने! मैं धन्य हूँ। मैं अनुगृहीत हूँ जो आपने मेरे राज्य में पधार कर मुझे दर्शन दिये। मुझसे बढ़कर धन्य आज और कोई नहीं है।

❮ त्रयोविंशः सर्गः ❯ (२३)

अहल्या-उद्धार—

ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्ये राघवौ।
उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मण भी राजा सुमति से सत्कृत हो एक रात वहाँ ठहरे। दूसरे दिन वे मिथिलापुरी को प्रस्थानित हुए।

मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः।
पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्॥ २॥

मिथिलापुरी के उपवन में एक पुराने, निर्जन, किन्तु रमणीक आश्रम को देखकर श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—

इदमाश्रमसंकाशं किं न्विदं मुनिवर्जितम्।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् कस्यायं पूर्व आश्रमः॥ ३॥

यह स्थान आश्रम के समान लगता है, परन्तु यह मुनियों से रहित है। यह क्या है ? भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि यह आश्रम पहले किसका था।

तत् श्रुत्वा राघवेणोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ ४॥

श्रीराम का यह कथन सुन वाक्यविशारद (बोलने में चतुर) महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र बोले—

गौतमस्य नरश्रेष्ठ आश्रमोऽयं महात्मनः।
स चेह तप आतिष्ठदहल्यासहिता पुरा॥ ५॥

हे राम! पूर्वकाल में यह गौतम का आश्रम था। इस आश्रम में उन्होंने बहुत समय तक अहल्या के साथ तप किया था।

कदाचिद्दिवसे राम ततो दूरं गते मुनौ।
तस्यान्तरं विदित्वा तु सहस्राक्षः शचीपतिः॥ ६॥
मुनिवेषधरोऽहल्यामिदं वचनमब्रवीत्।
सङ्गमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे॥ ७॥

हे राम! एक दिन गौतम कहीं दूर निकल गये। गौतम को आश्रम में अनुपस्थित देखकर इन्द्र गौतम का रूप धारण कर आश्रम में आये और अहल्या से बोले—हे सुन्दरी! मैं तेरे साथ मैथुन करना चाहता हूँ।

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात्॥ ८॥

हे रघुनन्दन! मुनि-वेष धारण किये हुए इन्द्र को पहचान कर भी दुष्टा अहल्या ने प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र के साथ सम्भोग किया।

अथ सङ्गम्य तु तया निश्चक्रामोटजात्ततः।
स सम्भ्रमात्त्वरन् राम शंकितो गौतमं प्रति॥ ९॥

हे राम! इस प्रकार अहल्या से समागम करके गौतम के डर से शंकित इन्द्र उस कुटी से बाहर निकला।

गौतमं स ददर्शाथ प्रविशन्तं महामुनिम्।
दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विवर्णवदनोऽभवत्॥ १०॥

जैसे ही इन्द्र बाहर निकला उसने गौतम को कुटी में प्रवेश करते हुए देखा। गौतम को देखते ही इन्द्र भयभीत हो गया और उसका चेहरा पीला पड़ गया।

अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः।
दुर्वृत्तं वृत्तसम्पन्नो रोषाद्वचनमब्रवीत्॥ ११॥

गौतम ने इन्द्र को अपना रूप धारण किये हुए देख और उनके मुखमण्डल से यह जानकर कि वे असत् कर्म करके आ रहे हैं उन्हें क्रोध में भरकर यह शाप दिया—

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते।
अकर्तव्यमिदं तस्माद्विफलस्त्वं भविष्यसि॥ १२॥

अरे दुष्ट! मेरा रूप धारण करके तूने यह कुकर्म किया है, अतः तू नपुंसक हो जा। (दुराचारी नपुंसक हो ही जाएगा)।

तथा शप्त्वा स वै शक्रमहल्यामपि शप्तवान्।
वस वर्षसहस्राणि तपयन्ती भस्मशायिनी॥ १३॥

इन्द्र को शाप देकर गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया—तू कठोर तप करती हुई और भूमि के ऊपर शयन करती हुई बहुत वर्षों तक यहाँ निवास कर।

तदागच्छ महातेज आश्रमं पुण्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम्॥ १४॥

हे महातेजस्वी! अब तुम पुण्यात्मा गौतम के आश्रम में पधारो और इस देवरूपिणी अहल्या का उद्धार करो।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघव सह लक्ष्मणः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य तमाश्रममथाविशत्॥ १५॥

विश्वामित्र के ये वचन सुन राम और लक्ष्मण ने उन्हें आगे कर उस आश्रम में प्रवेश किया।

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्या सुरासुरैः।
राघवौ तु ततस्तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा॥ १६॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि अहल्या तप के तेज से देदीप्यमान हो रही थी और सुर तथा असुर कोई भी उससे दृष्टि नहीं मिला सकता था। श्रीराम और

लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर उसके पैर छूए[१]।

पाद्यमर्घ्यं तथाऽतिथ्यं चकार सुसमाहिता।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो जगाम मिथिलां ततः॥ १७॥

अहल्या ने भी अर्घ्य-पाद्य आदि द्वारा उनका आतिथ्य किया। दोनों राजकुमार उस आतिथ्य को ग्रहण कर मिथिलापुरी में गये।

◀ चतुर्विंशः सर्गः ▶ (२४)

मिथिलापुरी में—

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्॥ १॥

तब विश्वामित्रजी को आगे करके श्रीराम-लक्ष्मण ईशानकोण (उत्तर-पूर्व के मध्य की दिशा) की ओर चलकर जनक की यज्ञशाला में पहुँचे।

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा च नृपतिस्तदा।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः॥ २॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम्।
प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः॥ ३॥

विश्वामित्रजी के आने का संवाद सुन अपने चरित्रवान् पुरोहित शतानन्दजी को आगे कर विनय युक्त महाराज जनक अपने ऋत्विजों सहित अर्घ्य आदि का सामान ले तुरन्त वहाँ पहुँचे।

प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम्॥ ४॥

महाराज जनक के आतिथ्य को स्वीकार कर विश्वामित्रजी ने उनके राज्य की कुशलता और यज्ञ की निर्विघ्नता पूछी।

स तांश्चाथ मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्यायपुरोधसः।
यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत्॥ ५॥

फिर ऋत्विज तथा पुरोहित सहित सब ऋषियों की भी कुशलता पूछकर विश्वामित्रजी सबके साथ आनन्द से मिले।

अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत।
अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे सफलता दैवतैः कृता॥ ६॥

तब राजा जनक हाथ जोड़कर बोले—विद्वानों की कृपा से मेरे यज्ञ में जो कमी थी वह आज पूर्ण हुई।

---

१. बाबा तुलसीदासजी ने अहल्या की कथा इस प्रकार लिखी है—

आश्रम एक दीख मग माहीं।
खगमृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।
सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥
गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥
परसत पद पावन सोक नसावन
प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जल सुखदायक
सनमुख होइ कर जोरि रही॥

यह कथा आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से सर्वथा विरुद्ध है, कपोलकल्पित एवं अप्रामाणिक है।

वाल्मीकिजी ने अहल्या का शिला होना कहीं नहीं लिखा है। अतः राम का शिला को पैर लगाना और उस शिला का स्त्री बन जाना—यह सारी कथा सृष्टि-नियम के विरुद्ध और गप्प है।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित कथा में राम और लक्ष्मण ने अहल्या को तप से देदीप्यमान देखा और दोनों भाइयों ने प्रसन्न होकर उसके चरण पकड़ लिये। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अहल्या ऋषि-पत्नी थी। राम क्षत्रिय राजकुमार थे। वे अहल्या के पैर कैसे लगा सकते थे?

अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गवः।
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह॥ ७॥

भगवन्! आज आपके दर्शन कर मुझे यज्ञ का फल प्राप्त हो गया। आपके मुनियों सहित यज्ञशाला में पधारने से मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं प्रहृष्टवचनस्तदा।
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः॥ ८॥

विश्वामित्रजी से ऐसा कह, प्रसन्न मुख हाथ जोड़कर उन्होंने पुनः पूछा—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ।
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ॥ ९॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ॥ १०॥
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ भूषयन्ताविमं देशम्।
कस्य पुत्रौ मुनिश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ११॥

भगवन्! आपका कल्याण हो! ये दोनों कुमार पराक्रम में देवताओं के समान हैं। ये गज (हाथी) सिंह, शार्दूल और वृषभ[1] (साँड) के समान गतिवाले हैं। दोनों ही वीर हैं। इनकी आँखें कमल के समान विशाल हैं, इन्होंने तलवार, तर्कश और धनुष धारण किये हुए हैं, सौन्दर्य में ये अश्विनी कुमारों के समान हैं, इनका यौवन फूट रहा है। इस देश को शोभायमान करते हुए ये पैदल ही क्यों आये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! ये किसके पुत्र हैं। यह सब मैं जानना चाहता हूँ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः।
न्यवेदयत् महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ॥ १२॥
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा॥ १३॥

महाराज जनक के ये वचन सुन विश्वामित्रजी कहने लगे—ये दोनों महाराज दशरथ के सुपुत्र हैं। ऐसा कह उन्होंने उन दोनों का सिद्धाश्रम में रहना और राक्षसों के वध करने का वृत्तान्त कहकर यह भी कहा कि ये आपके धनुष को देखने आये हैं।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसन्निधौ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम्॥ १४॥

विश्वामित्रजी के वचनों को सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण के सामने राजा जनक ने हाथ जोड़ कर कौशिकजी से कहा—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव।
यज्ञं काकुत्स्थसहितः प्राप्तवानसि कौशिक॥ १५॥

हे कौशिक! मैं अपने को धन्य मानता हूँ और आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि आप राम-लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञ में पधारे हैं।

श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः।
स्वागतं तपतांश्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि॥ १६॥

हे महातेजस्विन्! कल प्रभात काल फिर मुझे दर्शन दीजिए। हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः।
प्रदक्षिणं चकाराथ सोपाध्यायः सबान्धवः॥ १७॥

तदनन्तर महाराज जनक ने अपने उपाध्याय और बन्धु-बान्धवों सहित विश्वामित्रजी की प्रदक्षिणा की ओर चले गये।

---

१. गोविन्दराजजी ने इन गतियों की व्याख्या इस प्रकार की है—१. 'गाम्भीर्यगमने गजतुल्यौ'—गाम्भीर्य गमन में हाथी के समान गतिवाले। २. 'पराभिभवनार्ह गमने सिंहतुल्यौ'—दूसरे का पराभव करने के लिए जाते समय सिंह के समान चलनेवाले। ३. 'भयंकरगमने शार्दूलतुल्यौ' --गर्वसहित चलने में साँड के समान।

◀ पञ्चविंशः सर्गः ▶ (२५)

राजसभा में जनक का धनुष और सीता का परिचय देना—

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः।
विश्वामित्रो महात्मानमाजुहाव सराघवम्॥ १॥

प्रातःकाल होने पर नित्यकर्मों से निवृत्त हो राजा जनक ने दोनों कुमारों सहित विश्वामित्रजी को बुला भेजा।

तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह॥ २॥

शास्त्रविधि के अनुसार विश्वामित्र एवं राम-लक्ष्मण की पूजा कर धर्मात्मा जनक बोले—

भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि त्वानघ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम्॥ ३॥

भगवन्! आपका स्वागत है। हे निष्पाप! मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिए, क्योंकि मैं आपके द्वारा आज्ञा किये जाने योग्य हूँ।

एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना।
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ४॥

जनकजी के ऐसा कहने पर वाक्यविशारद मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी ने कहा—

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति॥ ५॥

लोक में प्रसिद्ध, क्षत्रियवंश में उत्पन्न दशरथ के ये दोनों पुत्र उस श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं जो आपके यहाँ रखा है।

एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम्।
श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिहि तिष्ठति॥ ६॥

यह सुन राजा जनक ने विश्वामित्रजी से कहा जिस प्रयोजन के लिए यह धनुष रखा है उसे सुनिए।

वीर्यशुल्केति मे कन्या नाम्ना सीतेति विश्रुता।
योगिन्या स्तनयां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्॥ ७॥
वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुङ्गव।
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम्।
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम्॥ ८॥

योगिनी[1] के गर्भ से उत्पन्न सीता नाम से प्रसिद्ध मेरी वीर्यशुल्का (पराक्रम दिखाकर प्राप्त करने योग्य) कन्या को युवा होते हुए देख उसके साथ विवाह करने के लिए अनेक राजा लोग आये। मैंने उन राजाओं

---

१. सीता के सम्बन्ध में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह पृथिवी से उत्पन्न हुई थी और प्रक्षेपकों ने इस प्रकार के श्लोक बनाकर रामायण में डाल दिये। रामायण के ध्यान-पूर्वक अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सीता पृथिवी से उत्पन्न नहीं हुई। सीता को स्थान-स्थान पर जनक '**ममात्मजा**' मेरी पुत्री कहते हैं। सीताजी ने ऊर्मिला (लक्ष्मण की पत्नी) को अनुजा कहा है। अनुजा का अर्थ है—**पश्चाज्जायत इति**। जो पीछे उत्पन्न हो, अतः सिद्ध हुआ कि सीता पृथिवी से उत्पन्न नहीं हुई थी।

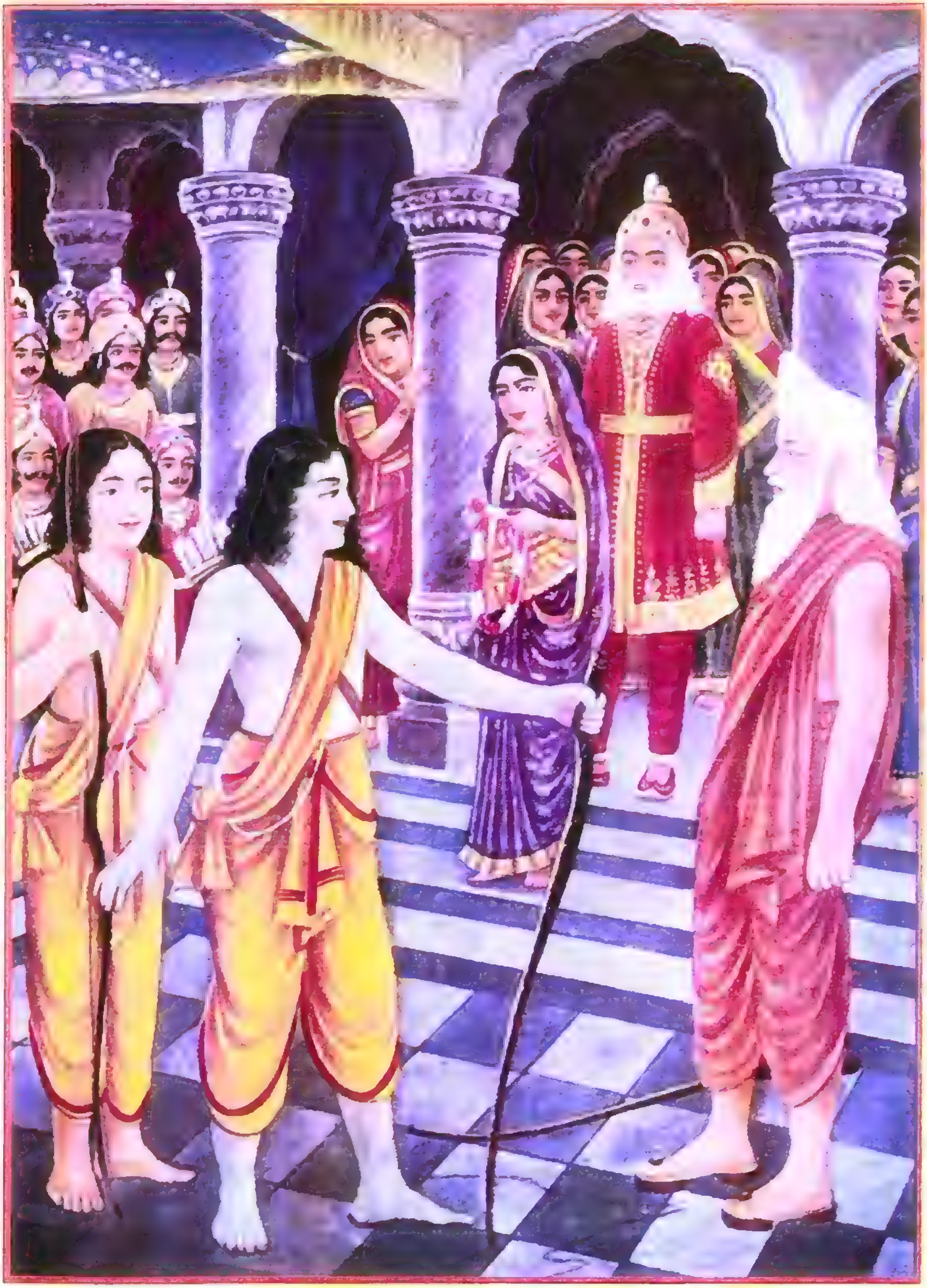
तुलसी-रामायण में सीता को पृथिवी से उत्पन्न होना दिखाया गया है, परन्तु सत्य बात उनके मुख से भी निकल ही गई है—

तात जनक तनया यह सोई।
धनुष यज्ञ जेहि कारण होई॥

यहाँ सीता को स्पष्ट ही जनक-तनया—जनक की पुत्री कहा है।

विवाह के अवसर पर राम की ३५ पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है और सीताजी की २२ पीढ़ियों का। नामों का उल्लेख वंश-शुद्धि के लिए होता है। यदि सीता पृथिवी से उत्पन्न हुई थी तो कुल परम्परा बताने का क्या प्रयोजन? कुल-परम्परा का वर्णन ही यह सिद्ध करता है कि सीता जनकजी की औरस पुत्री थी।

शिवपुराण में सीताजी की माता का नाम योगिनी बताया गया है—



सीता स्वयम्वर

से कहा कि यह कन्या वीर्यशुल्का है, अतः बिना पराक्रम की परीक्षा लिए मैं अपनी कन्या किसी को नहीं दूँगा।

ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुङ्गव।
मिथिलामप्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब सब राजा इकट्ठे होकर अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए मिथिला में आये।

तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहृतम्।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेपि वा॥ १०॥

उनकी परीक्षा के लिए मैंने यह धनुष उनके सम्मुख रखवाया, परन्तु उनमें से कोई भी उसका चिल्ला न चढ़ा सका।

तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन॥ ११॥

हे महामुने! पराक्रम की डींग हाँकनेवाले उन राजाओं को अल्पवीर्य समझ कर मैंने लौटा दिया।

हे तपोधन! (इसके पश्चात् जो हुआ) उसे सुनो—

ततः परमकोपेन राजानो मुनिपुङ्गव।
अरुन्धन्मिथिलां सर्वे वीर्यसंदेहमागताः॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब उन हीन पराक्रम राजाओं ने मिलकर मिथिला को घेर लिया।

परं भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः।
अवीर्या वीर्यसंदिग्धाः सामात्याः पापकारिणः॥ १३॥

परन्तु अन्त में वे भीरु, वीरता की झूठी डींग हाँकनेवाले राजा मेरे द्वारा परास्त होकर अपने मन्त्रियों सहित चारों दिशाओं में भाग गये।

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम्।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह वही दिव्य धनुष है। हे सुव्रत! मैं इसे राम-लक्ष्मण को भी दिखलाऊँगा।

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम्॥ १५॥

यदि राम इस धनुष पर चिल्ला चढ़ा देंगे तो मैं कर्मणा क्षत्राणी अपनी पुत्री सीता इन्हें प्रदान कर दूँगा।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

धनुष-भङ्ग और दशरथ के पास दूत भेजना—

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः।
धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम्॥ १॥

राजा जनक की बात सुनकर विश्वामित्रजी ने कहा—राजन्! वह धनुष श्रीराम को दिखाइए।

ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम्॥ २॥

तब राजा जनक ने मन्त्रियों को आदेश दिया कि गन्ध और पुष्पमालाओं से भूषित धनुष ले आओ।

तामादाय तु मञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः॥ ३॥

जिस पेटी में वह धनुष रखा था उस लोहे की पेटी को लाकर मन्त्रियों ने देवतुल्य राजा से कहा—

इदं धनुर्वरं राजन् पूजितं सर्वराजभिः।
मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शयैनं यदीच्छसि॥ ४॥

धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च।
तस्या कन्या महालक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति॥
—शि० पु० पार्वती खण्ड २। २९

अर्थात् जनक की दूसरी पत्नी योगिनी धन्य है जिसकी कन्या सीता नाम से प्रसिद्ध होगी।

इस विषय के कुछ प्रमाण हमने अपनी पुस्तक 'मर्यादा-पुरुषोत्तम राम' में भी संगृहीत किये हैं, वहाँ देख लें।

हे मिथिलाधीश्वर! राजेन्द्र! यह धनुष जिसकी सब जनक राजाओं ने पूजा की है, उपस्थित है। अब आप जिसको चाहें उसे दिखाइए।

तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत।
विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ॥ ५॥

मन्त्रियों की बात सुन राजा जनक ने हाथ जोड़ कर विश्वामित्र तथा राम लक्ष्मण से कहा—

तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुङ्गव।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह धनुषों में श्रेष्ठ धनुष आ गया है। हे महाभाग! आप इसे राजकुमारों को दिखाइए।

विश्वामित्रस्तु धर्मात्माश्रुत्वा जनकभाषितम्।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत्॥ ७॥

धर्मात्मा विश्वामित्र राजा जनक के इन वचनों को सुन राम से बोले—वत्स! इस धनुष को देखा।

महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत्॥ ८॥

विश्वामित्रजी का आदेश पा राम उस पेटी को जिसमें धनुष था खोलकर और धनुष को देखकर बोले—

इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा॥ ९॥

हे ब्रह्मन्! अब मैं इस श्रेष्ठ धनुष को हाथ लगाता हूँ। मैं इसे उठाकर इस पर चिल्ला (रोदा) चढ़ाने का भी प्रयत्न करूँगा।

बाढमित्यब्रवीद्राजा मुनिश्च समभाषत।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः॥ १०॥

राजा और मुनि विश्वामित्र के 'बहुत अच्छा' कहने पर श्रीराम ने उस धनुष को बड़ी सरलता से बीच से पकड़ कर उठा लिया।

पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः।
आरोपयत्स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः॥ ११॥

सहस्रों मनुष्यों के समक्ष श्रीराम ने बिना प्रयास ही उस पर रोदा भी चढ़ा दिया।

आरोपयित्वा धर्मात्मा पूर्यामास वीर्यवान्।
तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः॥ १२॥

महायशस्वी एवं बलवान् श्रीराम ने चिल्ला चढ़ाने के पश्चात् ज्योंही उसे खेंचा उस धनुष के बीच से टूटकर दो टुकड़े[१] हो गये।

तस्य शब्दो महानासीन्मोहिताश्च नराः सर्वे।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ॥ १३॥

धनुष के टूटने से घोर शब्द हुआ। उस शब्द से विश्वामित्र, राजा जनक, राम और लक्ष्मण को छोड़कर शेष सभी लोग स्तब्ध हो गये।

प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुङ्गवम्॥ १४॥

कुछ देर में लोगों की स्तब्धता भङ्ग होने पर घबराहट से मुक्त (जनक को घबराहट इस बात की

१. वाल्मीकि-रामायण में धनुष-भङ्ग का इतना ही वर्णन है। सन्त तुलसीदासजी ने जो वर्णन किया है वह आदि कवि के विरुद्ध होने से अग्राह्य है और साथ ही असम्भव गप्प भी। अवलोकन कीजिए—

भूप सहस दस एकहि बारा।
लगे उठावन टरइ न टारा॥

जिस धनुष को दस सहस्र राजा एक ही साथ उठाने लगे वह कितना बड़ा होगा, तनिक कल्पना कीजिए अथवा उसे उठानेवाले राजा नहीं, अपितु कीड़े मकोड़े होंगे।

वस्तुतः सीता का स्वयंवर नहीं हुआ यह तो समाह्वय था। स्वयंवर का अर्थ है—'कन्या का स्वेच्छा से पति को वरण करना'। यहाँ सीता ने अपनी इच्छा से राम को पसन्द नहीं किया है, अपितु राजा जनक ने ही उसे वीर्यशुल्का घोषित किया था।

जब स्वयंवर ही नहीं हुआ तो दस सहस्र राजाओं का एक साथ एकत्रित होना और सबका एक साथ मिलकर धनुष को उठाना गपोड़े के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

थी कि राम भी धनुष का चिल्ला न चढ़ा सके तो सीता का विवाह कैसे होगा ?) वाक्पटु राजा जनक हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे बोले—

भगवन्दुष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया॥ १५॥

भगवन्! मैंने दशरथ पुत्र राम का पराक्रम देख लिया है। इनका पराक्रम अत्यद्भुत, कल्पना और तर्क से परे हैं।

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्॥ १६॥

मेरी पुत्री सीता दशरथनन्दन श्रीराम को पतिरूप में प्राप्त करके मेरे वंश की कीर्ति फैलायेगी।

मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता॥ १७॥

हे कौशिक! मैंने सीता के विवाह के लिए 'वीर्यशुल्क' की जो प्रतिज्ञा की थी वह पूर्ण हो गई। अब मैं प्राणों से भी बढ़कर प्रिय सीता को राम के लिए दूँगा।

भवतोऽनुमते ब्रह्मन् शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः॥ १८॥

हे ब्रह्मन्! हे कौशिक! यदि आपकी अनुमति हो तो मेरे मन्त्री रथ पर सवार हो शीघ्र अयोध्या को जायें।

राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः॥ १९॥

और महाराज दशरथ को विनययुक्त वाक्यों से वीर्यशुल्का सीता के विवाह की सूचना देकर और यहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर यहाँ ले आवें।

कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः।
अयोध्यां प्रेषयामाम धर्मात्मा कृतशासनम्॥ २०॥

विश्वामित्रजी के 'तथास्तु' कहने पर राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर उन्हें समझा और कुशलपत्र देकर अयोध्या के लिए रवाना किया।

➤ सप्तविंशः सर्गः ➤ (२७)

दशरथ की मिथिला चलने के लिए तैयारियाँ—

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम्॥ १॥

जनक की आज्ञा पा वे दूत शीघ्रगामी रथों में आरूढ हो मार्ग में तीन रात्रि व्यतीत कर चौथे दिन अयोध्या में पहुँचे। उस समय उनके घोड़े थक गये थे।

राज्ञो भवनमासाद्य द्वारस्थानिदमब्रुवन्।
शीघ्रं निवेद्यतां राज्ञे दूतान्नो जनकस्य च॥ २॥

राजभवन की ड्योढ़ी पर जा उन्होंने द्वारपालों से कहा कि शीघ्र महाराज से निवेदन करो कि राजा जनक के दूत आपके दर्शन करना चाहते हैं।

इत्युक्ता द्वारपालास्ते राघवाय न्यवेदयन्।
ते राजवचनाद्दूता राजवेश्म प्रवेशिताः॥ ३॥

दूतों के ऐसा कहने पर द्वारपालों ने महाराज से निवेदन किया। तब राजा की आज्ञा से वे दूत राजभवन में भेजे गये।

ददृशुर्देवसङ्काशं वृद्धं दशरथं नृपम्।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः॥ ४॥
राजानं प्रयता वाक्यमब्रुवन् मधुराक्षरम्।
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम्॥ ५॥
मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंयुक्तया गिरा।
जनकस्त्वां महाराज पृच्छते स पुरः सरम्॥ ६॥
पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत्॥ ७॥

वहाँ देवोपम वृद्ध महाराज दशरथ के दर्शन कर, उनके सौजन्य को देख उन्होंने निर्भय हो हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से ये मधुर वचन कहे—महाराज!

मिथिलेश्वर विदेहराज जनक ने बारम्बार मधुर और स्नेहयुक्त वाणी से उपाध्याय, पुरोहित और कर्मचारियों सहित आपका और आपके पुरवासियों का कुशल मङ्गल पूछा है। आपकी कुशल-मङ्गल पूछकर उन्होंने विश्वामित्रजी की अनुमति से आपको यह सन्देश भेजा है—

पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा।
सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरः सरैः॥ ८॥
यदृच्छयाऽगतैर्वीरैर्निर्जिता तव पुत्रकैः।
अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने॥ ९॥

यह तो आपको ज्ञात ही है कि मेरी कन्या वीर्यशुल्का है। मेरी उस कन्या को मेरे सौभाग्य से विश्वामित्र के साथ आकर आपके पुत्र ने जीत लिया है, अतः मैं अपनी वीर्यशुल्का पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करना चाहता हूँ।

प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि।
सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः॥ १०॥
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ।
प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि॥ ११॥

मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूँ, अतः आप मुझे आज्ञा दीजिए। हे महाराज! आप अपने उपाध्याय और पुरोहितों सहित यहाँ पधार कर अपने राजकुमारों को देखिए और मेरी प्रीति को निबाहिए।

दूतवाक्यं तु तत् श्रुत्वा राजा परमहर्षितः।
वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत्॥ १२॥

दूतों के कथन को सुन महाराज बड़े प्रसन्न हुए और वसिष्ठ, वामदेव तथा अनय ऋषियों से कहने लगे।

गुप्तः कुशिकपुत्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विदेहेषु वसत्यसौ॥ १३॥

विश्वामित्र से रक्षित कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ आजकल मिथिलापुरी में हैं।

दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना।
सम्प्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति॥ १४॥

राजा जनक ने श्रीराम का पराक्रम भली-भाँति देख लिया है। अब वह अपनी पुत्री सीता का विवाह श्रीराम से करना चाहते हैं।

यदि वो रोचते वृत्तं[१] जनकस्य महात्मनः।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥ १५॥

यदि आपको यह बात ठीक लगे तो हमें शीघ्र मिथिलापुरी पहुँचना चाहिए जिससे समय का अतिक्रमण न हो।

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः।
सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः॥ १६॥

महाराज का वचन सुन मन्त्रियों और ऋषियों ने कहा, "यह तो बहुत अच्छी बात है।" तब महाराज ने प्रसन्न होकर मन्त्रियों से कहा—तो कल ही यहाँ से चल देना चाहिए।

मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रेण रात्रिं परमसत्कृताः।
ऊषुः मुदिताः सर्वे गुणैः सर्वैः समन्विताः॥ १७॥

महाराजा दशरथ ने जनक के मन्त्रियों का (जो दूत बन कर आये थे) बड़ा सत्कार किया और उन लोगों ने वह रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत की।

---

१. **'यदि वो रोचते वृत्तम्'**—'यदि आपको उचित लगे' इन शब्दों को देखने से विदित होता है कि रामायण काल में राजा लोग अपने घरेलू मामलों में भी ऋषियों और मन्त्रियों की सलाह लिया करते थे।

➤ अष्टाविंशः सर्गः ➤ (२८)

राजा जनक द्वारा दशरथ का आतिथ्य—

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत्॥ १॥

रात्रि व्यतीत होने पर उपाध्याय और बन्धुओं सहित प्रसन्न, राजा दशरथ ने मन्त्री सुमन्त्र से कहा—

चतुरङ्गबलं सर्वं शीघ्रं निर्यातु सर्वशः।
ममाज्ञासमकालं च यानयुग्यमनुत्तमम्॥ २॥

मेरी आज्ञा से समस्त चतुरङ्गिणी सेना शीघ्र तैयार की जाये। रथ और पालकी आदि उत्तम यान भी शीघ्र चलें।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा॥ ३॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे।
यथा कालात्ययो न स्याद् दूता हि त्वरयन्ति माम्॥ ४॥

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय और कात्यायन—ये सब ब्राह्मण आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी शीघ्र तैयार कराओ। ऐसा करो जिससे देर न हो, क्योंकि ये दूत चलने के लिए शीघ्रता कर रहे हैं।

वचनात्तु नरेन्द्रस्य सा सेना चतुरङ्गिणी।
राजानमृषिभिःसार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात्॥ ५॥

जब महाराज दशरथ ऋषियों के साथ प्रस्थानित हुए तब उनकी आज्ञा से चतुरङ्गिणी सेना उनके पीछे-पीछे चली।

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान्।
राजा तु जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत्॥ ६॥

चार दिन मार्ग में बिताकर महाराज दशरथ जनकपुर में पहुँचे। राजा जनक ने उनका आना सुन उनके स्वागत की तैयारी की।

ततो राजनमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम्।
मुदितो जनको राजा हर्षं च परमं ययौ॥ ७॥

राजा जनक, वृद्ध महाराज दशरथजी से मिल कर और भी अधिक प्रसन्न हुए।

उवाच च नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितः।
स्वागतं ते महाराज दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥ ८॥

नरश्रेष्ठ जनक हर्षित होकर नृपश्रेष्ठ दशरथजी से बोले—महाराज! मैं आपका स्वागत करता हूँ। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आप यहाँ पधारे हैं।

दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः।
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः॥ ९॥

यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठ भी सब ऋषियों के साथ इस प्रकार यहाँ पधारे हैं जैसे देवताओं के साथ इन्द्र पधारते हैं।

दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्।
राघवैः सह सम्बन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महात्मभिः॥ १०॥

सौभाग्य से मेरे सारे विघ्न दूर हो गये और वीरों में श्रेष्ठ रघुवंशियों के साथ सम्बन्ध होने से मेरा कुल भी प्रतिष्ठित हो गया।

श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि।
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसत्तमैः॥ ११॥

हे नरेन्द्र! कल प्रातःकाल यज्ञ समाप्त होने पर ऋषियों की सम्मति से विवाह-संस्कार सम्पन्न कराइए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १२॥

राजा के वचनों को सुन ऋषियों के मध्य में विराजमान बोलनेवालों में चतुर महाराज दशरथ ने कहा—

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम्॥ १३॥

हमने तो यह सुन रखा है कि—'दान दाता के अधीन होता है'—अतः हे धर्मज्ञ! जैसा आप कहेंगे हम वैसा ही करेंगे।

तद्धर्मिष्ठं यशस्यं च वचनं सत्यवादिनः।
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः परं विस्मयमागतः॥ १४॥

सत्यवादी महाराज दशरथ के ऐसे धर्मयुक्त और यश बढ़ानेवाले वचन को सुनकर जनक बड़े विस्मित[१] हुए।

ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे।
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन्सुखम्॥ १५॥

तदनन्तर ऋषियों ने भी परस्पर मिल-भेंट कर बड़ी प्रसन्नता के साथ वह रात्रि वहाँ व्यतीत की।

राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः।
उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः॥ १६॥

राजा दशरथ भी अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को देख अत्यन्त आनन्दित हुए और जनक से सत्कृत हो वहाँ सुखपूर्वक वास किया।

➤ एकोनत्रिंशः सर्गः ➤ (२९)

कुशध्वज को बुलाना—इक्ष्वाकुवंश-कथन

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम्॥ १॥

प्रातः महर्षियों की सहायता से अपने यज्ञ को समाप्त कर राजा जनक पुरोहित शतानन्द से बोले—

भ्राता मम महातेजा यवीयानतिधार्मिकः।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम्॥ २॥

अत्यन्त धार्मिक, तेजस्वी एवं बलवान् मेरा छोटा भाई (सांकाश्य नामक) सुन्दरपुरी में रहता है।

वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम्।
सांकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानमिव पुष्पकम्॥ ३॥

सांकाश्य नगरी के चारों ओर जल की खाई है और वह भाँति-भाँति के यन्त्रों से युक्त है। पास ही इक्षु नदी है जिसका मधुर जल कुशध्वज पीते हैं। वहाँ के निवासी धार्मिक हैं तथा वह पुरी पुष्पक विमान के आकार की है।

तमहं द्रष्टुमिच्छमि यज्ञगोप्ता स मे मतः।
प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह॥ ४॥

मेरे यज्ञ में सामग्री आदि भेजकर सहायता करनेवाले अपने प्रिय भाई को मैं देखना चाहता हूँ। वह भी विवाहोत्सव में सम्मिलित हो आनन्द भोगे।

एवमुक्ते तु वचने शतानन्दस्य सन्निधौ।
आगताः केचिदव्यग्रा जनकस्तान्समादिशत्॥ ५॥

राजा जनक शतानन्दजी से इस प्रकार कह ही रहे थे कि कई कुशल दूत वहाँ आ पहुँचे। राजा ने उन्हें शीघ्र जाने की आज्ञा दी।

शासनात्तु नरेन्द्रस्य प्रययुः शीघ्रवाजिभिः।
सांकाश्यां ते समागत्य ददृशुश्च कुशध्वजम्॥ ६॥

महाराज की आज्ञा पा वे शीघ्रगामी दूत घोड़ों पर सवार हो सांकाश्यपुरी पहुँच कर राजा कुशध्वज से मिले और—

न्यवेदयन्यथावृत्तं जनकस्य च चिन्तनम्।
तद्वृत्तं नृपतिः श्रुत्वा दूतश्रेष्ठैर्महाजवैः॥ ७॥

महाराज जनक का सन्देश निवेदन किया। दूतों द्वारा महाराज का सन्देश पाकर—

आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः।
स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम्॥ ८॥

राजा जनक की आज्ञा से वे मिथिलापुरी में आकर धर्मवत्सल महाराज जनक से मिले।

सोऽभिवाद्य शतानन्दं राजानं चातिधार्मिकम्।
राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत॥ ९॥

महाराज जनक और पुरोहित शतानन्द को प्रणाम कर वे राजाओं द्वारा बैठने योग्य आसन पर बैठे।

---

१. विस्मित होने का कारण यह था कि जब राजा जनक की प्रतिज्ञानुसार सीता रामचन्द्रजी की हो चुकी तो दशरथ ऐसा विनम्र वचन क्यों कहते हैं। भाव यह है कि जनक सीता का दान नहीं करते वह तो वीर्यशुल्का है।

उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितौजसौ।
प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम्॥ १०॥
गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमैक्ष्वाकुमतिप्रभम्।
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम्॥ ११॥

जब दोनों भाई आसन पर बैठ गये तो उन दोनों वीरों ने अपने मन्त्री सुदामा को महाराज दशरथ के पास भेजते हुए कहा कि तुम दोनों कुमार और मन्त्रियों सहित महाराज दशरथ को बुला लाओ।

औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम्।
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत्॥ १२॥

मन्त्री ने डेरे पर जाकर महाराज दशरथ के सामने जा उन्हें अभिवादन किया और कहा—

अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः।
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम्॥ १३॥

हे वीर अयोध्या-नरेश! मिथिलाधिपति जनक, राजकुमारों, उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्शन करना चाहते हैं।

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तदा।
सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते॥ १४॥

उस मन्त्री के वचन सुन महाराज दशरथ ऋषि और बन्धु बान्धवों सहित वहाँ गये जहाँ जनक थे।

वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत्।
विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥ १५॥

वहाँ जाकर वाक्कुशल महाराज दशरथ ने जनकजी से कहा—महाराज! आपको तो विदित है कि वसिष्ठजी इक्ष्वाकु कुल के देवता हैं।

वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः॥ १६॥
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम्।
तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोहितम्॥ १७॥

महर्षि वसिष्ठ ही हमारे सब कृत्यों में बोलनेवाले हैं, अतः महर्षि विश्वामित्र और अन्य ऋषियों के परामर्श से ये ही हमारी वंश-परम्परा का वर्णन करेंगे। जब दशरथ ऐसा कहकर चुप हुए तो महर्षि वसिष्ठ पुरोहित सहित जनक से कहने लगे---

मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्॥ १८॥

मनु प्रथम प्रजापति थे। मनु से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ जो अयोध्या का प्रथम राजा था।

इक्ष्वाकोऽस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः।
कुक्षेरथात्मजः श्रीमन्विकुक्षिरुदपद्यत॥ १९॥

इक्ष्वाकु के पुत्र श्रीमान् कुक्षि और कुक्षि के विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्।
बाणस्य तु महातेजा अनरण्यो महायशाः॥ २०॥

विकुक्षि के पुत्र बाण थे जो अत्यन्त तेजस्वी और प्रतापी थे। बाण के महातेजस्वी और महायशस्वी अनरण्य हुए।

अनरण्यात्पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि।
त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः॥ २१॥

अनरण्य का पुत्र पृथु और पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ। त्रिशंकु के धुन्धुमार नामक महायशस्वी पुत्र हुआ।

धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः।
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः॥ २२॥

धुन्धुमार के पुत्र तेजस्वी एवं महारथी युवनाश्व थे। युवनाश्व के पृथिवीपति मान्धाता हुए।

मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसन्धिरुदपद्यत।
सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित्॥ २३॥

मान्धाता का पुत्र सुसन्धि हुआ। सुसन्धि के ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित दो पुत्र हुए।

यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः।
भरतात्तु महातेजा असितो नाम जातवान्॥ २४॥

ध्रुवसन्धि के पुत्र यशस्वी भरत और भरत के महातेजस्वी असित उत्पन्न हुए।

यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः।
हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशिबिन्दवः॥ २५॥

हैहय, तालजंघ और शशिबिन्दु—ये तीनों शूरवीर पड़ौसी राजा असित के शत्रु हो गये।

तांस्तु प्रतियुध्यन्वै युध्ये राज्यात्प्रवासितः।
हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा॥ २६॥

उन्होंने असित को युद्ध में हराकर राज्य से बाहर निकाल दिया। तब राजा असित अपनी दोनों पत्नियों सहित हिमालय पर चले गये।

असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान्।
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतम्॥ २७॥

निर्बल असित वहाँ जाकर मर गये। उस समय उनकी दोनों स्त्रियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना गया है।

एका गर्भविनाशाय सपत्न्यै सगरं ददौ।
सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत्॥ २८॥

सौत के गर्भ को नष्ट करने के लिए एक ने विष दे दिया। विष सहित पुत्र उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सगर हुआ।

सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान्।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः॥ २९॥

सगर के असमञ्ज, असमञ्ज के अंशुमान, अंशुमान के दिलीप और दिलीप के भगीरथ उत्पन्न हुए।

भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा।
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः॥ ३०॥

भगीरथ के ककुत्स्थ और ककुत्स्थ के रघु हुए। रघु का पुत्र महातेजस्वी प्रवृद्ध राक्षस के तुल्य हुआ।

कल्माषपादो ह्यभवत्तस्माज्जातश्च शङ्खणः।
सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्॥ ३१॥

पीछे यह कल्माषपाद भी कहलाया। कल्माषपाद का पुत्र शंखन, शंखन के सुदर्शन और सुदर्शन के अग्निवर्ण उत्पन्न हुए।

शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः।
मरोःप्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात्॥ ३२॥

अग्निवर्ण के शीघ्रग, शीघ्रग के मरु, मरु के प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक का पुत्र अम्बरीष हुआ।

अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः।
नहुषस्य ययातिश्च नाभागस्तु ययातिः॥ ३३॥

अम्बरीष का पुत्र सत्यपराक्रमी नहुष हुआ, नहुष के ययाति और ययाति के नाभाग उत्पन्न हुए।

नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत्।
अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ३४॥

नाभाग के पुत्र अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ, दशरथ के पुत्र ये दोनों भाई राम-लक्ष्मण हैं।

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम्।
इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम्॥ ३५॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि॥ ३६॥

हे नरश्रेष्ठ! आदि से ही विशुद्ध वंशवाले, धर्मिष्ठ, सत्यवादी और इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राम-लक्ष्मण के लिए मैं आपकी पुत्रियाँ माँगता हूँ। अनुरूप वरों को अनुरूप कन्या आपको देना उचित ही है।

◀ त्रिंशः सर्गः ▶ (३०)

जनक-वंश वर्णन—

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः।
श्रोतुमर्हसि भद्र ते कुलं नः परिकीर्तितम्॥ १॥

वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर, जनकजी हाथ जोड़ उनसे कहने लगे—हे महर्षे! आपका मङ्गल हो, अब मेरे कुल की परम्परा सुनिए।

प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः।
वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कन्यादान के समय कुलीन को अपने कुल का वर्णन करना चाहिए, अतः आप सुनिए- -

राजाभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः॥ ३॥

अपने शुभ-कर्मों द्वारा तीनों लोकों में प्रसिद्ध धर्मात्मा, सत्यवादी तथा वीरों में उत्तम निमि नाम का एक राजा था।

तस्यपुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः॥ ४॥

निमि के मिथि नामक पुत्र हुआ। मिथि के जनक हुए (इसी जनक राजा के नाम पर हमारे कुल के सब राजा जनक कहलाते हैं)। इन आदि जनक के उदावसु हुए।

उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः।
नन्दिवर्धनपुत्रस्तु सुकेतुर्नाम नामतः॥ ५॥

उदावसु का पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन हुआ और नन्दिवर्धन के पुत्र सुकेतु हुए।

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः॥ ६॥

सुकेतु के धर्मात्मा देवरात हुए और देवरात का पुत्र राजर्षि बृहद्रथ हुआ।

बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान्।
महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः॥ ७॥

बृहद्रथ का पुत्र महावीर अत्यन्त वीर और प्रतापी था। महावीर का पुत्र सत्यपराक्रमी और धैर्यशाली सुधृति हुआ।

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः॥ ८॥

सुधृति के धर्मात्मा धृष्टकेतु और धृष्टकेतु के राजर्षि हर्यश्व हुए।

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः॥ ९॥

हर्यश्व का पुत्र मरु, मरु का प्रतीन्धक और प्रतीन्धक का पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ हुआ।

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः॥ १०॥

कीर्तिरथ के देवमीढ, देवमीढ के विबुध और विबुध का पुत्र महीध्रक हुआ।

महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत॥ ११॥

महीध्रक के महाबली कीर्तिरात हुए और कीर्तिरात के राजर्षि महारोमा हुए।

महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत॥ १२॥

महारोमा का पुत्र धर्मात्मा स्वर्णरोमा हुआ और स्वर्णरोमा के राजर्षि हर्षरोमा हुए।

तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः॥ १३॥

धर्मात्मा हर्षरोमा के दो पुत्र हुए। उनमें बड़ा मैं हूँ और दूसरा वीर कुशध्वज है।

ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव।
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय च॥ १४॥
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्।
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्ददामि न संशयः॥ १५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रीतिपूर्वक दो वधू आपको देता हूँ—सीता श्रीराम के लिए और ऊर्मिला लक्ष्मणजी के लिए। आपका कल्याण हो! वीर्यशुल्का सीता को जो देवकन्या के समान है और दूसरी ऊर्मिला को में तीन बार कहकर देता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है।

≺ एकत्रिंशः सर्गः ≻ (३१)

चारों भाइयों के विवाह-सम्बन्ध का निश्चय—

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम्॥ १॥

जनक के ऐसा कहने पर वसिष्ठजी के अभिप्रायानुसार मुनि विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा—

अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुङ्गव।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन॥ २॥

हे राजन्! इक्ष्वाकु और विदेह—दोनों ही कुल आश्चर्यमय और असीम महिमावाले हैं। इनके समान अन्य कुल नहीं है।

सदृशो धर्मसंबन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
रामलक्ष्मणयो राजन्सीता चोर्मिलया सह॥ ३॥

राजन्! राम और सीता का तथा लक्ष्मण और ऊर्मिला का विवाह-सम्बन्ध गुण-कर्म-स्वभाव और रूपसौन्दर्य—सब बातों में अनुरूप है।

वक्तव्यं व नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम।
भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः॥ ४॥

हे राजन्! यह होने पर भी मुझे इस पर कुछ वक्तव्य है, उसे सुनिए। आपका छोटा भाई धर्मज्ञ जो कुशध्वज है—

अस्य धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि।
सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे॥ ५॥

इस धर्मात्मा कुशध्वज की दो कन्याओं को जो इस संसार में अपने सौन्दर्य में सर्वश्रेष्ठ हैं, वधू बनाने के लिए मैं माँगता हूँ।

भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः।
वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः॥ ६॥

हे राजन्! एक कन्या बुद्धिमान् भरत के लिए और दूसरी शत्रुघ्न के लिए हम माँगते हैं।

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः।
लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः॥ ७॥

महाराज दशरथ के चारों पुत्र रूप-यौवन-सम्पन्न लोकपालों के समान हैं और देवों के समान पराक्रमी हैं।

उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्याताम्।
इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः॥ ८॥

हे राजेन्द्र! भरत-शत्रुघ्न के सम्बन्ध से आप दोनों भाई इक्ष्वाकु कुल को बाँधिए। इक्ष्वाकु कुल भी निर्दोष है और आप भी पुण्यकर्मी हैं।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ॥ ९॥

वसिष्ठजी सम्मत विश्वामित्रजी के वचन सुन, महाराज जनक हाथ जोड़कर दोनों ऋषियों से बोले—

कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम्॥ १०॥

मैं इस कुल को धन्य समझता हूँ, क्योंकि हम दोनों राजाओं के सदृश कुल-सम्बन्ध की आप स्वयं आज्ञा दे रहे हैं।

एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ॥ ११॥

आपका कल्याण हो। आपकी आज्ञानुसार ही कार्य होगा। कुशध्वज की कन्याओं का विवाह भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया जायेगा।

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः॥ १२॥

हे महामुने! एक ही दिन चारों महाबली राजकुमार चारों राजपुत्रियों का पाणि-ग्रहण करें।

तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः।
राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १३॥

विदेहराज जनक के ऐसा कहने पर रघुवंशी राजा

दशरथ प्रसन्न हो जनकजी से बोले—

युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः॥ १४॥

हे मिथिलेश्वर! आप दोनों भाइयों में असंख्य गुण हैं। आप दोनों ने ऋषियों और राजाओं का अच्छा सत्कार किया है।

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम्।
श्राद्धकर्माणि[1] सर्वाणि विधास्यामीति चाब्रवीत्॥१५

आपका कल्याण हो। अब मैं अपने डेरे पर जाकर श्रद्धा से किये जानेवाले अतिथि-सत्कार आदि कृत्यों को विधिपूर्वक सम्पन्न करूँगा।

तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा।
मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः॥ १६॥

इस प्रकार जनकजी से विदा हो दोनों ऋषियों को आगे कर महाराज दशरथ तुरन्त चल दिये।

स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम्॥ १७॥

डेरे पर जाकर महाराज दशरथ ने विधिपूर्वक एवं श्रद्धा सहित अतिथि सत्कार आदि किया और अगले दिन प्रातःकाल होते ही गोदान-संस्कार[2] किया।

गवां शतसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः।
एकैकशो ददौ राजा पुत्राननुद्दिश्य धर्मतः॥ १८॥

महाराज दशरथ ने धर्मपूर्वक एक लाख गौएँ राजपुत्रों की मङ्गल-कामना के निमित्त एक-एक करके ब्राह्मणों को दीं।

स्वर्णशृङ्गाः सम्पन्ना सवत्साः कांस्यदोहनाः।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः॥ १९॥

सुवर्ण के सींगोंवाली, दुधार, बछड़ों और कांसे के दोहन पात्रों सहित चार लाख गाएँ दान कीं।

वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः।
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः॥ २०॥

पुत्रवत्सल महाराज दशरथ ने पुत्रों के कल्याण के लिए बहुत-सा धन गोदान के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दिया।

◀ द्वात्रिंशः सर्गः ▶ (३२)

विवाह-संस्कार—

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम्।
तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजितसमुपेयिवान्॥ १॥

जिस दिन दशरथजी ने गोदान किया उसी दिन युधाजित् भी मिथिलापुरी पहुँचे।

पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत्॥ २॥

(युधाजित्) केकयराज का पुत्र और भरत का मामा था। दशरथजी से मिल उनकी कुशलक्षेम पूछ, वे बोले—

केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत्।
येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम्॥ ३॥

महाराज! केकयराज ने स्नेहपूर्वक आपको अपना कुशल संवाद कहा है। आप जिन लोगों का कुशल चाहते हैं वे सब (हम लोग) सम्प्रति कुशल हैं।

स्वस्त्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामौ महीपतिः।
तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन॥ ४॥

हे राजेन्द्र! केकयराज भरतजी को देखना चाहते

---

१. '**श्राद्धकर्माणि**' का अर्थ मृतक-श्राद्ध नहीं है। मृतक श्राद्ध तो अवैदिक और तर्क-रहित है, फिर विवाहावसर पर तो उसका कोई प्रकरण भी नहीं हो सकता, अतः ऊपर जो अर्थ दिया है वही सम्यक् है।

२. रामायण-काल में विवाह से पूर्व गोदान-संस्कार करने की प्रथा थी। इसमें हृष्ट-पुष्ट गौएँ ब्राह्मणों को दी जाती थीं।

हैं इसलिए पहले मैं अयोध्या गया था।

श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान्।
मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते॥ ५॥
त्वरयाऽभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम्।
अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम्॥ ६॥
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत्।
ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः॥ ७॥

जब मैंने वहाँ सुना कि आप राजकुमारों का विवाह करने के लिए जनकपुर आये हुए हैं तो मैं अपने भाँजे को मिलने के लिए इधर चला आया। महाराज दशरथ ने अपने नातेदार (साले) को आया देख उसका आदर-सम्मान किया। तदनन्तर राजकुमारों सहित उन्होंने वह रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत की।

प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि तत्त्ववित्।
ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्॥ ८॥

प्रातः नित्यकर्मों से निवृत्त होकर महाराज दशरथ ऋषियों सहित यज्ञशाला में गये।

युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः।
भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः॥ ९॥
वसिष्ठं पुरतः कृत्वा महर्षीनपरानपि।
वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत्॥ १०॥

विवाह के लिए नियत शुभ मुहूर्त में भूषणों से भूषित राम अपने भाइयों के साथ वैवाहिक वेश धारण किये हुए वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों को आगे करके वहाँ (विवाह-मण्डप में) पहुँचे। तब भगवान् वसिष्ठ ने राजा जनक से कहा—

राजादशरथो राजन् कृतकौतुमङ्गलैः।
पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठ दातारमभिकाङ्क्षते॥ ११॥

हे राजन्! महाराज दशरथ अपने राजकुमारों से आरम्भिक मङ्गल कृत्य (ईश्वर-स्तुतिप्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ) करा चुके हैं। हे नरश्रेष्ठ! अब वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना।
प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित्॥ १२॥

महात्मा वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर श्रेष्ठ दाता महातेजस्वी एवं परम धार्मिक जनकजी बोले—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्षते।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव॥ १३॥

महाराज को क्या मेरे किसी द्वारपाल ने रोका है? वे किसकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं? अपने घर के भीतर आने में क्या हिचक है। जैसा यह मेरा राज्य है वैसा ही उनका भी है।

तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा।
प्रवेशयामास सुतान् सर्वानृषिगणानपि॥ १४॥

जनकजी के उस कथन को सुन महाराज दशरथ ने राजकुमारों और ऋषियों सहित मण्डप में प्रवेश किया।

ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक॥ १५॥
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो।
तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः।
अग्निमाधाय वेद्यां तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम्॥ १६॥

तदनन्तर राजा जनक ने वसिष्ठजी से कहा—ऋषिवर! अन्य ऋषियों सहित आप लोकप्रिय राम की विवाह सम्बन्धी सब क्रियाएँ कराइए। यह सुन और जनकजी से 'बहुत अच्छा' कह महर्षि वसिष्ठ ने विधिवत् मन्त्र उच्चारण कर वेदी में अग्नि स्थापित की।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा॥ १७॥

फिर सीताजी को आभूषणों से अलंकृत कर वेदी के निकट श्रीराम के सम्मुख बैठाया।

अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥ १८॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥ १९॥

तब राजा जनक कौसल्यानन्दवर्धन श्रीराम से बोले—हे राम! मेरी पुत्री सीता आज से आपकी

सहधर्मिणी हुई। आप इसे लीजिए और अपने हाथ से इसका हाथ पकड़िए। यह महाभागा पतिव्रता सदा छाया की भाँति आपकी अनुगामिनी रहेगी। आप दोनों का मङ्गल हो।

एवं दत्वा तदा सीतामब्रवीज्जनको राजा।
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलां च ममात्मजाम्॥ २०॥
प्रतीछ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः।
तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषतः॥ २१॥

इस प्रकार सीता को श्रीराम को समर्पित कर राजा जनक बोले—हे लक्ष्मण! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम भी शीघ्र आकर मेरी पुत्र का पाणिग्रहण करो। विलम्ब मत करो, फिर राजा जनक ने भरतजी से कहा—

पाणिं गृह्णीष्व माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन।
शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीज्जनकेश्वरः॥ २२॥

हे भरत! तुम माण्डवी का पाणिग्रहण करो। तदनन्तर राजा जनक ने शत्रुघ्न से कहा—

श्रुत्कीर्त्या महाबाहो पाणिं गृह्ण्ष्व पाणिना।
सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः[1]॥ २३॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः[2]।
जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन्॥ २४॥

हे शत्रुघ्न! तुम श्रुतकीर्ति का हाथ पकड़ो। हे रघुवंशियो! तुम सब अपनी पत्नियों के साथ सौम्य तथा श्रेष्ठाचारवाले होओ। शीघ्र पाणिग्रहण करो जिससे समय का अतिक्रमण न हो। राजा जनक के इस प्रकार कहने पर चारों राजकुमारों ने चारों राजकुमारियों के हाथ पकड़े।

काकुत्स्थैश्च गृहीतेषु ललितेषु च पाणिषु।
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सुभास्वरा॥ २५॥

पाणिग्रहण हो चुकने पर उनके ऊपर उत्तम पुष्पों की खूब वर्षा की गई।

ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः॥ २६॥

इस प्रकार (पुष्पवृष्टि होते हुए) और बाजों के बजते हुए, उन कुमारों ने तीन अग्नि की प्रदक्षिणा कर अपनी अपनी पत्नियों को ग्रहण[2] किया।

अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्विसङ्घः सबान्धवः॥ २७॥

तदनन्तर सब राजकुमार अपनी पत्नियों सहित जनवासे को गये। महाराज दशरथ भी ऋषियों और बान्धवों सहित पुत्रों को निहारते हुए डेरे पर आ गये।

---

१. ग्रिफिथ महोदय ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

Now, Raghu's sons, may all of you,
Be gentle to your wives and true,
keep well the vows you make today
Let not occasion slip away.

२. आइए, यहाँ विवाह के समय राम और सीताजी की अवस्था निर्णय कर लें। कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार है कि विवाह के समय सीता की अवस्था छह वर्ष और राम की अवस्था तेरह वर्ष थी, परन्तु यह विचार सर्वथा मिथ्या और भ्रामक है।

जब श्रीराम विश्वामित्रजी के साथ आये तो उनकी अवस्था १५ वर्ष की थी। (देखिए बा० ११/११) यहाँ राम को ऊनषोडशवर्ष कहा गया है। जिस समय श्रीराम-लक्ष्मण मिथिलापुरी पहुँचे हैं तो जनक उन्हें "समुपस्थितयौवनौ"-जिन्होंने यौवन में पैर रखा है, कहते हैं। आयुर्वेद-ग्रन्थों के अनुसार यौवन पचीस वर्ष की अवस्था में आरम्भ होता है, अतः यह निश्चित है कि विवाह के समय राम की अवस्था २५ वर्ष से कम नहीं थी। वे १५ वर्ष की अवस्था में घर से निकले और २५ वर्ष की अवस्था में जनकपुर में पहुँचे। सीता की अवस्था भी उस समय १८ वर्ष की थी। वेद में कहा है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्व० ११।५।१८

ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। यदि विवाह के समय सीता की अवस्था ६ वर्ष की

≺ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ≻ (३३)

बारात की वापसी और परशुराम से मुठभेड़—

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम्॥ १॥

विवाहोपरान्त दूसरे दिन प्रातःकाल महर्षि विश्वामित्र दोनों राजाओं (जनक, दशरथ) से विदा माँग हिमालय पर चले गये।

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः॥ २॥

मिथिला-नरेश जनक ने बहुत-सा दहेज दिया। उन्होंने एक लाख तो गौएँ प्रदान कीं।

कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान्कोट्यम्बराणि च।
हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम्॥ ३॥

बहुत-से बहुमूल्य दुशाले रेशमी वस्त्र और रेशम सदृश अन्य उत्तम वस्त्र भी दिये। अनेक सुन्दर और सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल भी दिये।

ददौ कन्यापिता तासां दासीदासमनुत्तमम्।
हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तनां विद्रुमस्य च॥ ४॥
ददौ परमसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम्।
दत्वा बहुधनं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम्॥ ५॥
प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः।
राजाप्ययोध्याधिपतिः सहपुत्रैर्महात्मभिः॥ ६॥
ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम सबलानुगः।
गच्छन्तं स नरव्याघ्रः सर्षिसङ्घं स राघवम्॥ ७॥
ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्न्यं तं राजा राजविमर्दनम्॥ ८॥

जनक ने उन कन्याओं को बहुत से दास और दासियाँ दीं। अत्यन्त प्रसन्न चित्त जनक ने बहुत-सा सोना, चाँदी, मोती और मूँगे दिये। इस प्रकार बहुत सारा धन देकर राजा जनक दशरथजी से आज्ञा माँग अपने राजभवन में गये। महाराज दशरथ भी कुमारों को साथ लिये हुए तथा ऋषियों को आगे कर सेना सहित चल दिये। इस प्रकार ऋषियों और श्रीराम के साथ जाते हुए महाराज दशरथ ने भयंकर रूप धारण किये हुए, जटाजूट-धारी, भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र, राजाओं का मान मर्दन करनेवाले परशुराम को देखा।

कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः॥ ९॥

वे कैलास के समान दुर्धर्ष, कालाग्नि के समान दुस्सह, तेज से प्रकाशमान और पामर लोगों द्वारा दुर्निरीक्ष्य थे।

स्कन्धे चासाद्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्।
प्रगृह्य शरमुख्यं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम्॥ १०॥

उनके कन्धे पर परशु (फरसा) था तथा बिजली के समान देदीप्यमान धनुष और बाण को लिये हुए

थी क्या उसका ब्रह्मचर्य-काल छह वर्ष में ही समाप्त हो गया था।

गोस्वामी तुलसीदासजी के चित्रण से भी यह बात स्पष्ट है कि विवाह के समय सीता की अवस्था छह वर्ष नहीं थी—

रंग भूमि जब सिय पगुधारी।
देखि रूप मोहे नर नारी॥
सीय चकित चित रामहि चाहा।
भये मोह वस सब नर नाहा॥

क्या छह वर्ष की सीता को देखकर ही सब लोग चकित हो गये थे? क्या छह वर्ष की अबोध सीता को यह भी ज्ञान हो गया था कि राम से ही विवाह करना चाहिए? है इन प्रश्नों का कोई उत्तर!

एक बात और। सीता की अवस्था छह वर्ष थी तो ऊर्मिला की अवस्था ५ वर्ष ही होगी। श्रुतकीर्ति और माण्डवी जो जनक के छोटे भाई की पुत्रियाँ थीं, उनकी अवस्था इस हिसाब से चार और तीन वर्ष की रही होगा। क्या यही अनर्गल प्रलाप मान लिया जाये?

वे ऐसे जान पड़ते थे मानो त्रिपुरासुर को मारने के लिए शिवजी आये हों।

तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम्।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे जपहोमपरायणाः॥ ११॥
सङ्गता मुनयः सर्वे सञ्जल्पुरथो मिथः।
कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्र नोत्सादयिष्यति॥ १२॥

दहकती हुई अग्नि के तुल्य दीप्त और भयानक रूपधारी परशुराम को देख जपहोम में तत्पर वसिष्ठादि सब ऋषि मुनि इकट्ठे होकर आपस में कहने लगे कि पितृवध से क्रुद्ध हुआ यह परशुराम कहीं क्षत्रिय कुल को निर्मूल तो नहीं करेगा ?

पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः।
क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम्॥ १३॥

क्षत्रियों का नाश करके पहले तो इनका क्रोध शान्त हो चुका था। अब क्या इनकी इच्छा पुनः क्षत्रियों का नाश करने की है ?

एवमुक्त्वाऽर्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम्।
ऋषियो रामरामेति वचो मधुरमब्रुवन्॥ १४॥

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर ऋषिगण अर्घ्य लेकर घोर रूपधारी परशुराम के समक्ष आये और राम ! राम ! ऐसा मधुर वचन कहने लगे।

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान्।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत॥ १५॥

प्रतापी परशुराम ऋषियों द्वारा प्रदत्त उस आतिथ्य को ग्रहण कर श्रीरामचन्द्रजी से बोले--

➤ चतुस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३४)

राम-परशुराम संवाद—

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्॥ १॥

हे दशरथनन्दन वीर! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत सुना जाता है। मिथिला में तुमने जो धनुष तोड़ा है वह भी हमने सुना है।

तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्त्वया।
तत् श्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्य परमं शुभम्॥ २॥

उस धनुष का तोड़ा जाना आश्चर्यजनक एवं अचिन्त्य है। उसी का वृत्तान्त सुन मैं एक दूसरा धनुष लेकर यहाँ आया हूँ।

तदिदं घोरसङ्काशं जामदग्न्यं महद्धनुः।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च॥ ३॥

यह भयंकर धनुष जमदग्नि का है। (अथवा इसका नाम जामदग्न्य है।) इस पर तीर चढ़ा कर आप अपना बल प्रदर्शित करें।

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽस्य प्रपूरणे।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव॥ ४॥

इस धनुष पर तीर चढ़ाने से तुम्हारे बल को जानकर हम उसकी प्रशंसा करेंगे और तुम्हारे साथ द्वन्द्व-युद्ध करेंगे।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा।
विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥

परशुराम के ये वचन सुनकर दशरथ उदास हो गये और दीनतापूर्वक हाथ जोड़ कर बोले—

क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि॥ ६॥

हे परशुरामजी ! आप तो तपस्वी ब्राह्मण हैं, आपका क्षत्रियों पर जो कोप था वह शान्त हो गया है, अतः आप मेरे बाल-पुत्रों को अभय-दान प्रदान कीजिए।

भार्गवाणां कुले जातः स्वाध्यायव्रतशालिनाम्।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं निक्षिप्तवानसि॥ ७॥

स्वाध्यायशील भार्गवकुल में उत्पन्न आप तो इन्द्र के समक्ष प्रतिज्ञा कर अपने हथियार त्याग चुके हैं। (ब्राह्मण होकर प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं।)

स त्वं धर्मपरो भूत्वा काश्यपाय वसुन्धराम्।
दत्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः॥ ८॥

धर्मपरायण होकर और सारी पृथिवी का राज्य काश्यप को प्रदान कर आप तो महेन्द्राचल पर रहने के लिए चले गये थे।

ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्नयः प्रतापवान्।
अनादृत्यैव तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत॥ ९॥

महाराज दशरथ की इन बातों की अवहेलना कर वे श्रीराम से बोले- -

योजयस्व धनुःश्रेष्ठे शरं परपुरञ्जयम्।
यदि शक्नोषि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः॥ १०॥

हे शत्रुओं के पुरों को जीतनेवाले! इस धनुष पर बाण चढ़ाइए। हे काकुत्स्थ! यदि तुमने इस पर बाण चढ़ा दिया तो मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।

◀ पञ्चत्रिंशः सर्गः ▶ (३५)

परशुराम का पराभव—

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा।
गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत्॥ १॥

परशुरामजी के वचन सुन श्रीराम अपने पिता महाराज दशरथ के गौरव से (पिता का आदर कर) मन्दस्वर से बोले—

श्रुत्वानसि यत्कर्म कृत्वानसि भार्गव।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः॥ २॥

हे परशुरामजी! आपने जो कर्म किये हैं, वे सब मैं सुन चुका हूँ। आपने अपने पिता के मारनेवालों से जो बदला लिया है वह भी मुझे ज्ञात है।

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ ३॥

परन्तु आप जो यह समझते हैं कि हम वीर्यहीन हैं, हममें क्षात्र-धर्म का अभाव है यह ठीक नहीं है। आज आप मेरा पराक्रम देखिए।

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य शरासनम्।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः॥ ४॥

ऐसा कह और क्रुद्ध हो पराक्रमी राम ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण खींच लिया।

आरोप्य सधनू रामः शरं सज्यं चकार ह।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्॥ ५॥

श्रीराम ने उस पर चिल्ला चढ़ा कर और तीर को खेंच कर क्रुद्ध हो परशुराम से कहा—-

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥ ६॥

हे भार्गव! एक तो आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं, दूसरे आप विश्वामित्रजी के सम्बन्धी (विश्वामित्रजी की बहन के पौत्र) हैं, अतः इस बाण को आपके ऊपर छोड़कर मैं आपके प्राण तो लेना नहीं चाहता।

इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान्।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः॥ ७॥

किन्तु इस बाण से या तो आपकी गति को (अर्थात् लङ्गड़ा करके चलने-फिरने की शक्ति को) अथवा बल और तप द्वारा प्राप्त आपकी कीर्ति को नष्ट करूँगा। आप जो चाहें वही किया जाए।

तेजोऽभिहतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः।
रामं कमलपत्राक्षं मन्दं मन्दमुवाच ह॥ ८॥

श्रीराम के तेज के समक्ष जब परशुरामजी जड़ के समान वीर्यहीन हो गये तब वे कमलनेत्र राम से धीरे-धीरे कहने लगे।

काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुन्धरा।
विषये मे न वस्तव्यमिति मां काश्यपोऽब्रवीत्॥ ९॥

हे राम! क्षत्रियों का वध करके जब मैंने यह भूमि काश्यप मुनि को दी थी तब उन्होंने कहा था

कि आज से तुम हमारी भूमि या राज्य में न बसना।

सोऽहं गुरुवचः कुर्वन् पृथिव्यां न वसे निशाम्।
तदिमां त्वं गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव॥ १०॥

अतः गुरुवचन का पालन करता हुआ मैं रात्रि में पृथिवी पर नहीं रहता, इसलिए हे राघव! आप मेरे चलने-फिरने की शक्ति को नष्ट न कीजिए।

लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया।
जहि ताञ्छरमुख्येन मा भूत्कालस्य पर्ययः॥ ११॥

हे राम! हमने तप द्वारा जो कीर्ति और यश[१] प्राप्त किया है उसको इस बाण से समाप्त कर दीजिए। जल्दी कीजिए इस कार्य में विलम्ब न हो।

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान्।
रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम्॥ १२॥

जब प्रतापी परशुराम ने श्रीराम से ऐसा कहा तब श्रीराम ने उस उत्तम बाण को छोड़ दिया।

स हतान्दृश्य रामेण स्वाँल्लोकाँस्तपसार्जितान्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः॥ १३॥

परशुराम तप से अर्जित अपने यश और कीर्ति को राम द्वारा विनष्ट देखकर, उनकी प्रदक्षिणा कर अपने स्थान को चले गये।

➤ षट्त्रिंशः सर्गः ➤ (३६)

अयोध्या-आगमन, भरतशत्रुघ्न का ननिहाल-गमन—

अभिवाद्ये ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन्।
पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः॥ १॥

परशुराम के चले जाने पर श्रीराम वसिष्ठादि ऋषियों को प्रणाम कर और अपने पिताजी को विकल देखकर बोले—

जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता॥ २॥

परशुरामजी गये, अब आप अपनी चतुरङ्गिणी सेना को अयोध्या चलने की आज्ञा दीजिए।

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम्।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय राघवम्॥ ३॥

राम का यह कथन सुन महाराज दशरथ ने अपने पुत्र को बाहुओं से आलिङ्गन कर उसका माथा सूँघा।

गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः।
पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च॥ ४॥

परशुरामजी का जाना सुन दशरथ अत्यन्त

---

१. परशुराम ने अपने तप और बल के द्वारा कहीं आकाश में कोई लोक संगृहीत नहीं किया था। अपितु अपने तप और भुजबल से इक्कीस बार क्षत्रियों का विध्वंस करके जो यश और कीर्ति प्राप्त की थी उसी को यहाँ लोक शब्द से कहा गया है। राम ने उसे परास्त कर उसके सारे गर्व और गौरव को, यश और कीर्ति को धूल में मिला दिया। क्या परशुराम का एक उदीयमान योद्धा से पराजित हो जाना उसके यश को बट्टा नहीं लगाता?

विशेष—महर्षि वाल्मीकि ने परशुराम की घटना का वर्णन उस समय किया है जब बारात अयोध्या के लिए लौट रही है। इसके विपरीत तुलसीदासजी ने इस घटना का वर्णन धनुष-भङ्ग के तुरन्त पश्चात् मिथिलापुरी में ही किया है। दूसरी बात तुलसीदासजी के वर्णन में लक्ष्मणजी बीच-बीच में बोलते हैं, परशुराम को चिढ़ाते हैं और उन्हें क्रोध दिलाते हैं। यतिवर लक्ष्मण का ऐसा चित्रण आर्यमर्यादा और शील के सर्वथा विरुद्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है, तुलसीदासजी लक्ष्मणजी का नहीं, अपितु ठाकुरों का चित्रण कर रहे हैं।

महर्षि वाल्मीकिजी के वर्णन में श्रीलक्ष्मण मौन हैं और यही शालीनता एवं शिष्टता है।

इस प्रकार चाहे हम प्रामाणिकता की दृष्टि से देखें अथवा आर्य आचार-विचार और मर्यादा की दृष्टि से, आदिकवि वाल्मीकि का वर्णन ही उपयुक्त है।

आनन्दित हुए। उन्होंने अपना और अपने पुत्र का पुनर्जन्म माना।

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम्।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्‌घुष्टनिनादिताम्॥ ५॥

महाराज ने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया और शीघ्र ही ध्वजा एवं पताकाओं से सुशोभित और बाजों की ध्वनि से निनादित अयोध्यापुरी में प्रवेश किया।

सिक्तराजपथारम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम्।
राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलवादिभिः॥ ६॥

अयोध्या की सड़कें जल से सिक्त थीं, उन पर पुष्प बिखरे हुए थे। महाराज के आगमन से प्रसन्नमुख नगर-निवासी अनेक प्रकार के आशीर्वादात्मक वचन बोले रहे थे।

सम्पूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलङ्कृताम्।
पौरैः प्रत्युद्‌गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः॥ ७॥

ऐसी अलंकृत और नागरिक जनों से पूर्ण अयोध्या में महाराज दशरथ ने प्रवेश किया। पुरवासी ब्राह्मणों ने नगर से आगे बढ़ उनका हार्दिक स्वागत किया।

पुत्रैरनुगतः श्रीमान् श्रीमद्‌भिश्च महायशाः।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम्॥ ८॥

महायशस्वी एवं श्रीमान् महाराज दशरथ अपने पुत्रों सहित अपने हिमालय के समान श्वेत राजभवन में प्रविष्ट हुए।

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा।
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः॥ ९॥

उधर कौसल्या, सुमित्रा और बिचली कैकेयी तथा अन्य राज-परिवार की स्त्रियाँ वधुओं को उतारने में जुटीं।

ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपपत्नयः॥ १०॥

राजपत्नियाँ महाभागा सीता, यशस्विनी ऊर्मिला और कुशध्वज की दोनों पुत्रियों को महलों में लिवा ले गईं।

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः॥ ११॥

तदनन्तर चारों राजपुत्रियाँ अभिवादन करने योग्यों का अभिवादन करके अपने पतियों के साथ एकान्त में रमण करने लगीं।

कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः।
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः॥ १२॥

विवाहित, अस्त्र-विद्या में निपुण, धन से युक्त और मित्रों सहित चारों राजकुमार पिता की सेवा करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे।

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम्।
भरतं कैकेयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः॥ १३॥

कुछ समय व्यतीत होने पर राजा दशरथ कैकेयीपुत्र भरत से कहने लगे—

अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक।
त्वां नेतुमागतो वीर युधाजिन्मातुलस्तव॥ १४॥

हे पुत्र! केकयराज का पुत्र तुम्हारा मामा युधाजित् तुम्हें लेने के लिए आया है।

श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकेयीसुतः।
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा॥ १५॥

कैकेयीपुत्र भरत महाराज दशरथ के ये वचन सुन, शत्रुघ्न सहित जाने की तैयारी करने लगे।

आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
मातृश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ॥ १६॥

तदनन्तर नरश्रेष्ठ वीरवर भरत अपने पिता, दयालु भाई राम तथा कौसल्यादि माताओं से आज्ञा ले, शत्रुघ्न सहित चले गये।

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
पितरं देवसङ्काशं पूजयामासतुस्तदा॥ १७॥

भरतजी के चले जाने पर राम और लक्ष्मण अपने देवतुल्य पिता की सेवा करने लगे।

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामो धर्मात्मा प्रियाणि च हितानि च॥ १८॥

धर्मात्मा राम पिताजी की आज्ञानुसार पुरवासियों के लिए प्रिय और हितकर राज्यकार्य करने लगे।

मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः।
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत॥ १९॥

वे नियमपूर्वक माताओं की सेवादि मातृकार्य और गुरुओं के गुरुकार्य समय-समय पर देखने-भालने लगे।

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तदा।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः॥ २०॥

श्रीराम के ऐसे शील, स्वभाव और व्यवहार से महाराज दशरथ, ब्राह्मण, व्यापारीवर्ग और सभी राष्ट्रवासी सन्तुष्ट थे।

रामस्तु सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून्।
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः॥ २१॥

श्रीराम सदा सीता के हृदय-मन्दिर में विराजमान रहते थे। इस प्रकार राम ने सीता के साथ बहुत ऋतुओं (बारह वर्ष तक) विहार किया।

॥ इति बालकाण्डम्॥

— o —

बालकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	**३६**
श्लोक-संख्या	**६०८**
टिप्पणियाँ	**३९**

अयोध्याकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

राम के राज्याभिषेक का निश्चय—

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदाऽनघः।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः॥ १॥

मामा के घर जाते हुए महात्मा भरत निष्पाप एवं शत्रुओं का हनन करनेवाले शत्रुघ्न को भी प्रीतिपूर्वक अपने साथ ले गये।

स तत्र न्यवसद् भ्रात्रा सह सत्कारसत्कृतः।
मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः॥ २॥

भरतजी अपनी ननिहाल में अपने लघु भ्राता शत्रुघ्नसहित सत्कृत होकर रहने लगे। उनके मामा उनसे पुत्रवत् स्नेह करते थे।

तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः।
भ्रातारौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम्॥ ३॥

सब प्रकार से सन्तुष्ट रखे जाने पर भी दोनों वीर भाइयों को प्रायः अपने वृद्ध पिता महाराज दशरथ का स्मरण हो आता था।

राजाऽपि महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ।
उभौ भरतशत्रुघ्नौ महेन्द्रवरुणोपमौ॥ ४॥

महातेजस्वी दशरथ भी महेन्द्र और वरुण के समान परदेश गत राजकुमारों को स्मरण किया करते थे।

सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभः।
स्वशरीराद् विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः॥ ५॥

तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः॥ ६॥

यद्यपि अपने शरीर से निकली हुई चारों भुजाओं के समान चारों ही राजकुमार महाराज दशरथ को प्रिय थे, तथापि उन चारों में महातेजस्वी श्रीराम पर दशरथजी का विशेष अनुराग था, क्योंकि वे सब प्राणियों में ब्रह्मा के समान अत्यन्त गुणवान् थे।

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः॥ ७॥

श्रीराम अत्यन्त रूपवान्, महाशक्तिशाली, दुर्गुणों से रहित, पृथिवी पर अनुपम और गुणों में दशरथ ही के समान थे।

स तु नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥ ८॥

वे सदा प्रसन्नचित रहते और सबसे मधुर बोलते थे। यदि कोई उनके प्रति कठोर वचन भी बोलता तो भी वे प्रत्युत्तर में कोई कठोर बात नहीं कहते थे।

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥ ९॥

श्रीराम किसी प्रकार किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते थे और किसी ने उनके प्रति सैकड़ों अपकार[१] किये हों तो भी उनका स्मरण न करते थे।

---

१. इस विषय में श्रीराम के जीवन की एक घटना का अवलोकन कीजिए। चित्रकूट में बैठे हुए श्रीराम और लक्ष्मण वार्त्तालाप में संलग्न हैं। लक्ष्मणजी भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

हे राम! भरतजी भी सारे भोग-विलासों को छोड़ आपकी ही भाँति तप कर रहे हैं। वे भूमि पर सोते हैं, शीतल जल से स्नान करते हैं, परन्तु—

(उन्हें भूल जाते थे)।

सानुक्राशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्शुचिः॥ १०॥

वे दयालु, क्रोध को वश में रखनेवाले, ब्राह्मणों का सम्मान करनेवाले, दीनों पर दया करनेवाले, धर्म को जाननेवाले, जितेन्द्रिय एवं पवित्र थे।

स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः।
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः॥ ११॥

दशरथनन्दन श्रीराम श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे। उनके इन गुणों के कारण ही प्रजा के लोग उन्हें बाहर रहनेवाले अपने प्राण के समान प्रेम करते थे।

सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित्।
इष्वस्त्रे च पितुः श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः॥ १२॥

श्रीराम सब विद्याओं और ब्रह्मचर्य-व्रत में स्नान किये हुए, अर्थात् विद्यास्नातक और व्रतस्नातक थे। वे अङ्गों सहित वेदों को जाननेवाले और बाण-विद्या में अपने पिताजी से भी बढ़कर थे।

धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसम्मतः।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः॥ १३॥

वे धनुर्विद्या विशारदों में श्रेष्ठ थे, अतिरथों से पूजित थे, शत्रुओं पर आक्रमण तथा प्रहार करने और सैन्य सञ्चालन में कुशल थे।

तं समीक्ष्य महाराजो युक्तं समुदितैर्गुणैः।
निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजममन्यत॥ १४॥

श्रीराम को लोकोत्तर गुणों से विभूषित देखकर महाराज दशरथ ने शुभ गुणों से युक्त मन्त्रियों के साथ परामर्श कर उन्हें युवराज पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया।

नानानगर वास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतीन्॥ १५॥

इस अवसर पर महाराज दशरथ ने नाना नगरों और अन्य देशों के प्रधान राजाओं को बुलवाया।

न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्॥ १६॥

महाराज ने शीघ्रता के कारण[१] केकयराज और जनकजी को नहीं बुलाया यह सोचकर कि उनको यह शुभ समाचार पीछे मिल ही जायेगा।

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥

—अरण्य० ११।१७

जिसका पति महाराजा दशरथ जैसा हो, जिसका पुत्र साधु भरत जैसा हो, वह माता कैकेयी किस प्रकार ऐसे क्रूर स्वभाव की हुई?

श्रीराम लक्ष्मण द्वारा की गई माता कैकेयी की इस निन्दा को सहन न कर सके। उन्होंने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥

—अरण्य० ११।१९

हे भाई लक्ष्मण! तुझ मझली माता कैकेयी की निन्दा मत करो। तुम तो इक्ष्वाकुनाथ भरत की ही चर्चा करो। यह है श्रीराम का अपकारों को भूलने का स्वभाव!

१. केकयराज और जनक को न बुलाने का कारण राजनीतिक थे, परन्तु कैकेयी का विवाह दशरथ के साथ इस शर्त पर हुआ था कि उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह राजगद्दी का अधिकारी होगा। यदि केकयराज और जनक—इन दोनों को भी बुलाया जाता तो निश्चित था कि जनक श्रीराम का पक्ष लेते और केकयराज भरत का। इस प्रकार इन दोनों में ही युद्ध ठन जाता। इस स्थिति को टालने के लिए महाराज दशरथ ने दोनों में से किसी को भी सूचना नहीं दी।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

परिषद् द्वारा श्रीराम के राज्याभिषेक का अनुमोदन—

ततः परिषदं सर्वमामन्त्र्य वसुधाधिपः।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः॥ १॥

तत्पश्चात् महाराज दशरथ ने समस्त परिषद् को बुलाकर हितकारी, हर्षजनक और प्रथित=सबको सुनाई पड़ने योग्य वचन कहा—

विदितं भवतामेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम्।
पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम्॥ २॥

जिस प्रकार हमारे पूर्वज नरेन्द्रों ने पुत्रवत् इस विशाल राज्य का पालन किया है, यह तो आप लोगों को ज्ञात ही है।

सोऽहमिक्ष्वाकुभिः सर्वैर्नरेन्द्रैः प्रतिपालितम्।
श्रेयसा योक्तुमिच्छामि सुखार्हमखिलं जगत्॥ ३॥

मैं इक्ष्वाकुवंशी राजाओं द्वारा प्रतिपालित सम्पूर्ण राज्य को सुख और कल्याण से युक्त करना चाहता हूँ।

मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता।
प्रजा नित्यमनिद्रेण यथाशक्त्यभिरक्षिताः॥ ४॥

मैंने भी अपने पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करते हुए प्रमाद-रहित यथाशक्ति प्रजा का पालन किया है।

इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरिता हितम्।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छायायां जरितं मया॥ ५॥

प्रजाजनों के हित की कामना करते हुए इस श्वेत राजछत्र के नीचे मेरा यह शरीर जराजीर्ण हो गया है।

जीर्णस्य शरीरस्य विश्रान्तिमभिरोचये।
राजप्रभावजुष्टां हि दुर्वहामजितेन्द्रियैः॥ ६॥
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन्।
सोऽहं विश्राममिच्छामि रामं कृत्वा प्रजाहिते॥ ७॥

अब मैं चाहता हूँ कि इस जीर्ण शरीर को विश्राम दूँ। पराक्रम द्वारा सेवन करने योग्य और अजितेन्द्रिय पुरुषों से न उठा सकने योग्य इस संसार के धर्मरूपी धुरा को ढोते हुए अब मैं थक गया हूँ, अतः राम को राजकार्य में लगाकर मैं विश्राम ग्रहण करना चाहता हूँ।

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥ ८॥

यदि मेरा यह विचार उचित और योग्य हो तो आप मुझे अनमुति दें, अथवा जो करना उचित हो वह बतलावें।

इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन्नृपा नृपम्।
वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इव बर्हिणः॥ ९॥

महाराज दशरथ के इन वचनों को सुन सब राजा लोगों ने वैसी ही प्रसन्नता प्रकट की जैसे बरसते हुए बादल को देखकर मोर प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे तत्र हर्षसमीरितः।
जनौघोद्घुष्टसन्नादो मेदिनीं कम्पयन्निव॥ १०॥

उस समय राजाओं तथा अन्य उपस्थित जनों ने प्रसन्न हो, "वाह, वाह," "ठीक, बहुत ठीक" कह कर इतने जोर से आनन्द प्रकट किया कि राजसभा-भवन भी काँपता-सा प्रतीत हुआ।

ब्राह्मणा जनमुख्याश्च पौरजानपदैः सह।
समेत्य ते मन्त्रयित्वा चोचुर्दशरथं नृपम्॥ ११॥

महाराज दशरथ के मनोभावों को जानकर वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों, राजाओं तथा नगर और राज्य के प्रधान-प्रधान लोगों ने परस्पर विचार-विमर्श कर दशरथजी से कहा—

अनेकवर्षवयसो वृद्धस्त्वमसि पार्थिव।
स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व पार्थिवम्॥ १२॥

हे राजन्! आप राज्य करते-करते बहुत वृद्ध हो गये हैं, अतः अब आप श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दीजिए।

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्।
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम्॥ १३॥

हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि महाबाहु एवं महाबली श्रीराम एक बड़े हाथी पर बैठकर और सिर के ऊपर राजछत्र लगाए हुए चलें और हम यह शुभ दृश्य देखें।

इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा तेषां मनः प्रियम्।
अजानन्निव जिज्ञासुरिदं वचनमब्रवीत्॥ १४॥

महाराज दशरथ ने, उन सबके ये प्रिय वचन सुन उनके मन का अभीष्ट जानने के लिए, अनजान मनुष्य की भाँति उनसे पूछा—

श्रुत्वैवं वचनं यन्मे राघवं पतिमिच्छथ।
राजानः संशयोऽयं मे किमिदं ब्रूत तत्त्वतः॥ १५॥

हे राजाओ! मेरे कहते ही आप राम को राजा बनाने के लिए तैयार हो गये, इससे मेरे मन में एक संशय उत्पन्न हो गया है, आप लोग ठीक-ठीक उत्तर देकर उसका निवारण कीजिए।

कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति।
भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं ममात्मजम्॥ १६॥

जब मैं धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन कर रहा हूँ, फिर आप लोग मेरे पुत्र को युवराज क्यों बनाना चाहते हैं? (क्या मैं ठीक-ठीक शासन नहीं कर रहा हूँ?)

ते तमूचुर्महात्मानः पौरजानपदैः सह।
बहवो नृप कल्याणगुणाः पुत्रस्य सन्ति ते॥ १७॥

यह सुनकर वे राजा आदि समस्त पुरुष बोले— हे राजन्! आपके पुत्र में प्रजा के कल्याण-कारक बहुत-से गुण हैं।

गुणान्गुणवतो देव देवकल्पस्य धीमतः।
प्रियानानन्दनान्कृत्स्नान्प्रवक्ष्यामोऽद्य ताञ्शृणु॥ १८॥

हे राजन्! देवों के समान गुणवाले और बुद्धिमान् श्रीराम के प्रिय और आनन्ददायक गुणों का हम वर्णन करते हैं, आप सुनिए—

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः।
इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशाम्पते॥ १९॥

हे प्रजाओं के स्वामिन्! सत्यपराक्रमी श्रीराम दिव्य गुणों से इन्द्र के समान हो रहे हैं, अतः वे इक्ष्वाकुवंशी राजाओं में सबसे श्रेष्ठ हैं।

रामः सत्यपुरुषो लोके सत्यः धर्मपरायणः।
साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह॥ २०॥

सत्यपरायण श्रीराम लोक में वस्तुतः श्रेष्ठ पुरुष हैं। उन्हीं से धर्म और अर्थ को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

प्रजासुखत्वे चन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये साक्षाच्छचीपतेः॥ २१॥

प्रजा को सुख देने में श्रीराम चन्द्रमा के तुल्य, क्षमा करने में पृथिवी के समान, बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य और पराक्रम में साक्षात् इन्द्र के समान हैं।

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च शीलवाननसूयकः।
क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः॥ २२॥

वे धर्मज्ञ, सत्यवादी, शीलयुक्त, ईर्ष्या से रहित, शान्त, दुःखियों को सान्त्वना देनेवाले, मधुर-भाषी, कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं।

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति॥ २३॥

मनुष्यों पर कोई आपत्ति आने पर वे स्वयं दुःखी होते हैं और उत्सव के समय पिता की भाँति प्रसन्न होते हैं।

सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।
स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः॥ २४॥

श्रीराम सदा सत्य बोलनेवाले, महाधनुर्धर, वृद्धों की सेवा करनेवाले, जितेन्द्रिय, हँसकर बोलनेवाले और सब प्रकार से धर्म का सेवन करनेवाले हैं।

नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येव नियमाद्वध्यानवध्ये न च कुप्यति॥ २५॥

उनका क्रोध और प्रसन्नता कभी निरर्थक नहीं होती। वे मारने योग्य को मारते ही हैं (चाहे वह आत्मीय जन ही क्यों न हो) और अवध्यों पर कभी

क्रोध नहीं करते।

दान्तैः सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसञ्जननैर्नृणाम्।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः॥ २६॥

श्रीराम यम नियम आदि पालन में कष्ट-सहिष्णु हैं। प्रजाजनों के प्रीतिमात्र हैं, स्वजनों में प्रीति उत्पन्न करानेवाले हैं इन गुणों से अलंकृत श्रीराम रश्मियों से युक्त सूर्य की भाँति देदीप्यमान हैं।

तमेवं गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्।
लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी॥ २७॥

इन सब गुणों से युक्त सत्यपराक्रमी श्रीराम को लोकपालों की भाँति पृथिवी अपना राजा बनाना चाहती है।

राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम्॥ २८॥

हम लोग आपके पुत्र श्रीराम को जो नील कमल के समान श्याम हैं और शत्रुनाशक हैं, युवराज देखना चाहते हैं।

◀ तृतीयः सर्गः ▶ (३)

राम को उपदेश—

तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः।
प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः॥ १॥

उन हाथ जोड़े हुए राजाओं की प्रार्थना को सुनकर महाराज उनसे ये प्रिय एवं हितकर वचन बोले—

अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ॥ २॥

अहो! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, यह मेरा महान् सौभाग्य है जो आप लोग मेरे ज्येष्ठ और प्रिय पुत्र राम को युवराज बनाना चाहते हैं।

इति प्रत्यर्च्य तान्राजा ब्राह्मणानिदमब्रवीत्।
वसिष्ठं वामदेवं च तेषामेवोपशृण्वताम्॥ ३॥

इस प्रकार नगर और जनपद के प्रमुख लोगों को प्रसन्न कर, उन्हीं के समक्ष महाराज दशरथ ने वसिष्ठ और वामदेव आदि ब्राह्मणों से कहा—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम्॥ ४॥

इस श्रेष्ठ और पवित्र चैत्र मास में, जिसमें वन पुष्पों में सुशोभित हो रहे हैं, श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए तैयारी कीजिए।

राज्ञस्तूपरते वाक्ये जनघोषो महानभूत्।
शनैस्तमिस्मन्प्रशान्ते च जनघोषे नराधिपः॥ ५॥

वसिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत्।
अभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम्।
तदद्य भगवन् सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि॥ ६॥

महाराज दशरथ के वचन समाप्त होने पर महान् जनघोष हुआ। धीरे-धीरे उस जनघोष के शान्त होने पर दशरथजी ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी से कहा—श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए जो कृत्य करने हों और जो सामग्री चाहिए उसकी आज्ञा दीजिए।

तत् श्रुत्वा भूमिपालस्य वसिष्ठो द्विजसत्तमः।
आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान् युक्तान् कृताञ्जलीन्॥ ७॥

राजा का यह वचन सुन द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ ने राजा के सम्मुख हाथ जोड़े, सावधान बैठे हुए मन्त्रियों को आदेश दिया—

सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन् सर्वौषधीरपि।
शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक् च मधुसर्पिषी॥ ८॥
अहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि।
चतुरङ्गबलं चैव गजं च शुभलक्षणम्॥ ९॥
चामरव्यञ्जने श्वेते ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम्।
शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम्॥ १०॥
हिरण्यशृंगमृषभं समग्रं व्याघ्रचर्म च।
यच्चान्यत्किञ्चिदेष्टव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम्॥ ११॥

सुवर्ण आदि रत्न, बलीन्-यज्ञ की सामग्री और

सब ओषधियाँ, श्वेत पुष्प की मालाएँ, लाजा-धान की खीलें, पृथक् पृथक् पात्रों में शहद एवं घृत, नये वस्त्र, रथ और सब अस्त्र शस्त्र, चतुरङ्गिणी सेना, शुभ लक्षणोंवाला हाथी, दो चँवर, सफेद ध्वजा और छत्र, अग्नि के समान देदीप्यमान स्वर्ण-निर्मित सौ कलश, स्वर्ण के मढ़े हुए सींगों-वाले बैल, अखण्डित (नखादि सहित) व्याघ्र-चर्म तथा और जो कुछ चाहिए सब तैयार करो।

आबध्यन्तां पताकाश्च राजमार्गश्च सिच्यताम्।
एवं व्यादिश्य विप्रौ तौ क्रियास्तत्र सुनिष्ठितौ॥ १२॥
कृतमित्येव चाब्रूतामभिगम्य जगत्पतिम्।
ततः सुमन्त्रं द्युतिमान् राजा वचनमब्रवीत्॥ १३॥

चारों ओर पताकाएँ बाँधी जाएँ और सड़कों पर छिड़काव कराया जाये। इस प्रकार वसिष्ठ और वामदेव ने मन्त्रियों को आज्ञा देकर तथा सब कामों को ठीक-ठाक कर, महाराज के पास जाकर इन सब बातों की सूचना दी। तब महातेजस्वी महाराज दशरथ ने सुमन्त्र से कहा—

रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति।
स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात्॥ १४॥
रामं तत्रानयाञ्चक्रे रथेन रथिनां वरम्।
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः॥ १५॥

आप धर्मात्मा श्रीराम को शीघ्र बुला लाओ। सुमन्त्र 'तथास्तु' कहकर राजाज्ञा से रथियों में श्रेष्ठ राम को रथ में बैठाकर महाराज दशरथ के पास लाया। महाराज आते हुए श्रीराम को देखते देखते तृप्त नहीं होते थे।

स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके।
नाम स्वं श्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः॥ १६॥

श्रीराम ने महाराज के समीप जा, हाथ जोड़ और अपना नाम लेकर[1] पिता के चरणों में[2] प्रणाम किया।

तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः।
गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम्॥ १७॥
तस्मै चाभ्युदितं सम्यङ् मणिकाञ्चनभूषितम्।
दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम्॥ १८॥

जब महाराज ने देखा कि श्रीराम हाथ जोड़े हुए उनके समीप खड़े हैं तो उन्होंने राम का हाथ पकड़ कर उन्हें अपने गले से लगाया तथा अपने समान ऊँचे स्वर्णमय एवं रत्न-जटित उत्तम आसन पर बैठने की आज्ञा दी।

तदासनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः।
स्वयैव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः॥ १९॥

उस आसन पर बैठे हुए श्रीराम वैसे ही देदीप्यमान एवं सुशोभित हुए जैसे सूर्य उदय होने पर सुमेरु पर्वत स्वयमेव प्रकाशित हो उठता है।

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम्।
स तं सस्मितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतां वरः॥ २०॥

पुत्रवानों से श्रेष्ठ महाराज दशरथ अपने पुत्र की

---

१. यह वैदिक परिपाटी है। महर्षि मनु लिखते हैं—

अभिवादत्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन्।
असौ नामाऽहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत॥

—मनु० २।१२२

विप्र=विद्वान् अपने से बड़े को अभिवादन करके अपना नाम भी बताये। जैसे—

'अभिवादये रामोऽहं भोः।'

वृद्धों को नमस्कार करने से क्या लाभ है? महर्षि मनु (२।१२१) लिखते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥

जो नमस्कार करने के स्वभाववाला है और प्रतिदिन वृद्धों की सेवा करता है उसके आयु, विद्या, यश और बल—इन चारों की वृद्धि होती है।

२. अभिवादन कैसे करना चाहिए—

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः॥

—मनु० २।७२

अलग-अलग हाथ करके गुरु के पैर छुए, दाहिने हाथ से दाहिना और बायें हाथ से बायां।

ऐसी शोभा देखकर परम प्रसन्न हुए और मुस्करा कर श्रीराम से बोले—

ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः।
उत्पन्नस्त्वं गुणश्रेष्ठो मम रामात्मजः प्रियः॥ २१॥

तुम मेरी ज्येष्ठा पत्नी के अनुरूप ही मेरे पुत्र हो, तुममें सब उत्तम गुण विद्यमान हैं और तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो।

यतस्त्वया प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः।
तस्मात्त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि॥ २२॥

क्योंकि तुमने अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न कर रखा है, इसलिए तुम कल पुष्य नक्षत्र में युवराज पद को प्राप्त करो।

कामतस्त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानसि।
गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्र वक्ष्यामि ते हितम्॥ २३॥

यद्यपि तुम स्वभाव से ही विनम्र एवं गुण-सम्पन्न हो तथा स्नेहवश मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ।

भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः।
कामक्रोधसमुत्थानि त्यजेथा व्यसनानि च॥ २४॥

तुम्हें योग्य है कि और अधिक विनय को धारण करके सदा जितेन्द्रिय बनो तथा काम और क्रोध[1] से उत्पन्न व्यसनों को छोड़ दो।

परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा।
अमात्यप्रभृतीः सर्वाः प्रकृतीश्चानुरञ्जय॥ २५॥

परोक्ष=दूतादि द्वारा और प्रत्यक्ष=स्वयं जाँच-पड़ताल की वृत्ति को धारण करके अमात्यादि सब प्रकृतियों[2] को सदा प्रसन्न रखो।

कोष्ठागारायुधागारैः कृत्वा सन्निचयान् बहून्।
तुष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम्॥ २६॥
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः।
तस्मात्पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचार॥ २७॥

अन्न के भण्डार को तथा अस्त्र शस्त्रों के भण्डार को सदा अन्न और अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह से बढ़ाते रहो। देखो! जो राजा अपनी प्रजा को प्रसन्न रखकर राज्य करता है उससे उसके मित्र ऐसे ही प्रसन्न रहते हैं जैसे देवता अमृतपान से प्रसन्न होते हैं, अतः हे वत्स! तुम अपने-आपको संयम में रखकर जैसा मैंने कहा है वैसा ही आचरण करो।

तत् श्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः।
त्वरिताः शीघ्रमभ्येत्य कौसल्याय न्यवेदयन्॥ २८॥

महाराज दशरथ के ये वचन सुन श्रीराम के

---

१. महर्षि मनु के अनुसार काम और क्रोध से उत्पन्न होनेवाले दोष निम्न हैं—

मृगयाक्षादिवास्वप्नः परिवादस्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥

—मनु० ७।४७

काम से उत्पन्न होनेवाले दोष—१. शिकार करना, २. जुआ खेलना, ३. दिन में सोना, ४. दूसरों की झूठी निन्दा करना, ५. स्त्रियों में आसक्ति, ६. मद्यपान, ७. नाचना, ८. गाना, ९. बजाना और १०. व्यर्थ इधर-उधर घूमना—ये दस कामज व्यसन हैं।

पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥

—मनु० ७।४८

क्रोध से उत्पन्न होनेवाले दोष—१. चुगली करना, २. बिना विचारे कार्य करना, ३. द्रोह करना, ४. ईर्ष्या रखना, ५. असूया=दूसरों के गुणों में दोष=दर्शन करना, ६. अधर्मयुक्त बुरे कामों में धन व्यय करना, ७. बिना अपराध कठोर वचन या विशेष दण्ड देना और ८. कठोर भाषण—ये आठ क्रोधज व्यसन हैं।

२. चाणक्य के अनुसार प्रकृतियाँ निम्न हैं—

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।

—कौटिल्य अर्थशास्त्र ६।१।१

१—स्वामी=राजा, २—आमात्य=मन्त्री आदि, ३—जनपद= देशवासी, ४—दुर्ग, ५—कोश, ६—दण्ड=सेना और ७—मित्र—ये सात प्रकृतियाँ कहाती हैं।

प्रियकारी मित्रों ने यह शुभ संवाद तुरन्त महारानी कौसल्या को जा सुनाया।

सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च।
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा॥ २९॥

स्त्रियों में श्रेष्ठा कौसल्या ने इस शुभ सूचना को सुन संवाद देनेवालों को सोना, विविध रत्न और गौएँ देने का आदेश दिया।

अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः।
ययौ स्वं द्युतिमद्वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः॥ ३०॥

इतने में श्रीराम भी महाराज दशरथ को प्रणाम कर और रथ पर आरूढ़ हो अपने सुन्दर भवन की ओर गये। मार्ग में लोगों की भीड़ ने उनका अभिनन्दन किया।

❮ चतुर्थः सर्गः ❯ (४)

माता का आशीर्वाद—

अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा।
सूतमाज्ञापयामास रामं पुनरिहानय॥ १॥

अथ मन्त्रियों को विदा करने के पश्चात् महाराज दशरथ ने अन्तःपुर में प्रवेश करके सुमन्त्र को आज्ञा दी कि श्रीराम को पुनः यहाँ ले आओ।

प्रतिगृह्य स तद्वाक्यं सूतः पुनरुपाययौ।
रामस्य भवनं शीघ्रं राममानयितुं पुनः॥ २॥

सुमन्त्र महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्रीराम को पुनः बुला लाने के लिए शीघ्र राम के भवन में गये।

द्वाःस्थैरावेदितं तस्य रामायागमनं पुनः।
श्रुत्वैव चापि रामस्तं प्राप्तं शङ्कान्वितोऽभवत्॥ ३॥

जब द्वारपालों ने सूत के पुनः आने की सूचना दी तब श्रीराम सारथि के पुनरागमन की बात सुन कर शंकित हुए।

प्रवेश्य चैनं त्वरितो रामो वचनमब्रवीत्।
यदागमनकृत्यं ते भूयस्तद्ब्रूह्यशेषतः॥ ४॥

उस सूत को शीघ्र ही अन्दर बुलाकर श्रीराम ने कहा—"तुम्हारे पुनः आने का जो प्रयोजन है वह कहो।"

तमुवाच ततः सूतो राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति।
श्रुत्वा प्रमाणमत्र त्वं गमनायेतराय वा॥ ५॥

सुमन्त्र ने कहा—महाराज आपसे मिलना चाहते हैं, आप जैसा उचित समझें करें, जाने या न जाने में आप स्वतन्त्र हैं।

इति सूतवचः श्रुत्वा रामोऽथ त्वरयान्वितः।
प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरेश्वरम्॥ ६॥

सारथि के वचनों को सुनकर श्रीराम शीघ्रता-पूर्वक महाराज से मिलने के लिए राजभवन में गये।

तं श्रुत्वा समनुप्राप्तं रामं दशरथो नृपः।
प्रवेशयामास गृहं विवक्षुः प्रियमुत्तमम्॥ ७॥

श्रीराम का आगमन सुन, उत्तम एवं प्रिय वार्त्ता करने के इच्छुक महाराज दशरथ उन्हें अपने निजगृह में ले गये।

प्रदिश्य चास्मै रुचिरमासनं पुनरब्रवीत्।
राम वृद्धोऽस्मि दीर्घायुर्भुक्ता भोगा मयेप्सिताः।
अन्नवद्भिः क्रतुशतैस्तथेष्टं भूरिदक्षिणैः॥ ८॥

श्रीराम को सुन्दर आसन पर बैठने का संकेत कर वे बोले—हे राम! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैंने बहुत दिन राज्य करके मनमाने सुख भोगे तथा अन्नदानपूर्वक प्रचुर दक्षिणावाले सैकड़ों यज्ञ भी कर चुका हूँ।

न किञ्चिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात्।
अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि॥ ९॥

तुम्हारे अभिषेक के अतिरिक्त मुझे और कोई कार्य करना शेष नहीं है, अतः अब मैं तुमसे जो कुछ कहूँ वैसा करो।

अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम्।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ॥ १० ॥

इस समय सारी प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती हैं, अतः हे वत्स! मैं तुम्हारा युवराजपद पर अभिषेक करता हूँ।

अपि चाद्याशुभान् राम स्वप्ने पश्यामि दारुणान्।
सनिर्घाता महोल्काश्च पतिता हि महास्वनाः ॥ ११ ॥

(किन्तु मुझे इस कामना के पूर्ण होने में विघ्न पड़ता दिखाई देता है, क्योंकि) हे राम! आजकल मुझे रात्रि में भयंकर एवं अशुभ स्वप्न दिखाई देते हैं। स्वप्न में मुझे आकाश से भीषण शब्द के साथ उल्कापात होते दिखाई देते हैं।

प्रायेण हि निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे।
राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां वाऽऽपदमृच्छति ॥ १२ ॥

इस प्रकार के निमित्तों के उपस्थित होने पर प्रायः राजा की मृत्यु हो जाती है अथवा उस पर कोई भारी विपत्ति आती है।

तद्यावदेव मे चेतो न विमुञ्चति राघव।
तावदेवाभिषिञ्चस्व चला हि प्राणिनां मतिः ॥ १३ ॥

अतः हे राघव! जब तक मेरा चित्त ठीक है, मैं होश-हवास में हूँ, तभी तक अपना अभिषेक करा लो, क्योंकि मनुष्य की मति का कुछ भरोसा नहीं।

तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम्।
श्वस्त्वाऽहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परन्तप ॥ १४ ॥

हे शत्रुनाशक! कल पुष्य नक्षत्र में तुम अपना अभिषेक करा लो। मेरा मन मुझे शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहा है, अतः कल ही तुम्हारा अभिषेक हो जाये।

तस्मात्त्वयाद्यप्रभृति निशेयं नियतात्मना।
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशयिना ॥ १५ ॥

अतः आज से ही तुम सपत्नीक नियमानुसार व्रत-उपवास करके पत्थर की चौकी पर कुशा बिछा कर शयन करना।

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्वद्य समन्ततः।
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि ॥ १६ ॥

तुम्हारे मित्र सावधान होकर चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें, क्योंकि इस प्रकार के कार्यों में अनेक विघ्नों की सम्भावना होती है।

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥ १७ ॥

जब तक भरत अपने मामा के घर है, तभी तक तुम्हारे राज्याभिषेक का उपयुक्त समय है, ऐसा मेरा मत है।[1]

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥
किन्तु चित्तं मनुष्याणामनितयमिति मे मतिः।
सतां तु धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघवा ॥ १९ ॥

यद्यपि तुम्हारे भाई सज्जन हैं, बड़े भाई के कथनानुसार चलनेवाले हैं, धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय हैं, परन्तु मनुष्यों का मन चञ्चल होता है और धार्मिक एवं साधु-पुरुषों का मन भी चलायमान हो जाता है।

इत्युक्तः सोऽभ्यनुज्ञातः श्वोभाविन्यभिषेचने।
व्रजेति रामः पितरमभिवाद्याभ्ययाद् गृहम् ॥ २० ॥

हे वत्स! कल को होनेवाले अपने अभिषेक का स्मरण रखो। अब अपने घर को जाओ। पिता की

---

१. महाराज दशरथ के साथ कैकेयी का विवाह इस शर्त पर हुआ था कि कैकेयी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राजगद्दी का अधिकारी होगा। उस समय अन्य किसी रानी के कोई सन्तान नहीं थी, अतः दशरथ ने यह शर्त स्वीकार कर ली। अब कौसल्या के गर्भ से उत्पन्न राम ज्येष्ठ राजकुमार है। कहीं कैकेयी उस बात को स्मरण कर भरत को भड़का न दे इसी आशंका से उन्होंने कहा है कि जब तक भरत अपनी ननिहाल में है तभी तक तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाना चाहिए।

आज्ञा पा पिता का अभिवादन कर राम अपने घर चले गये।[१]

प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञोद्दिष्टेऽभिषेचने।
तत्क्षणेन च निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरं ययौ॥ २१॥

राजा दशरथ द्वारा अभिषेक की आज्ञा के अनन्तर श्रीराम अपने भवन में गये फिर वहाँ से वे तुरन्त अपनी माता के भवन में चले गये।

तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम्।
वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम्॥ २२॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि माता कौसल्या रेशमी साड़ी पहने हुए, उपासना-गृह में बैठी हुई, मौन-व्रत धारण किये हुए प्राणिमात्र के मङ्गल की कामना कर रही हैं।

प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा।
सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम्॥ २३॥

सुमित्रा और लक्ष्मण वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे। कौसल्याजी ने रामाभिषेक के प्रिय संवाद को सुनकर सीता को भी वहीं बुलवा लिया था।

तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च।
उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं तदा॥ २४॥

उसी समय श्रीराम भी वहाँ पहुंचे, वे माता को प्रणाम कर और उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे—

अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि।
भविता श्वोऽभिषेकोऽयं यथा मे शासनं पितुः॥ २५॥

हे माता! पिताजी ने मुझे प्रजापालन की आज्ञा दी है, अतः मुझे कल ही पिताजी की आज्ञा से राजभार ग्रहण करना होगा।

एतत् श्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालभिकाङ्क्षितम्।
हर्षबाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत॥ २६॥

यह सुनकर चिरकाल से राम-राज्याभिषेक की प्रतीक्षा करनेवाली कौसल्या, नेत्रों में आनन्द के आँसू भर श्रीराम से बोली—

वत्स राम चिरंजीव हतास्ते परिपन्थिनः।
ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय॥ २७॥

हे राम! तू चिरञ्जीवी हो। तेरे शत्रुओं का नाश हो। राजलक्ष्मी पाकर तुम मेरे और सुमित्रा के बन्धु बाँधवों को आनन्दित करो।

इत्येवमुक्तो मात्रेदं रामो भ्रातरमब्रवीत्।
प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव॥ २८॥

माताजी की ये बातें सुन, श्रीराम विनीत भाव से हाथ जोड़कर बैठे हुए अपने लघु भ्राता लक्ष्मण की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥ २९॥

हे लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथिवी का शासन करो। तुम मेरे दूसरे आत्मा के समान हो, अतः यह लक्ष्मी तुम्हें प्राप्त हुई है।

सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं च हि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥ ३०॥

हे लक्ष्मण! तुम अभीष्ट भोगों और राज्यफल को भोगो। मेरा जीवन और राज्य सभी कुछ तुम्हारे लिए है।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च।
अभ्यनुज्ञाप्या सीतां च जगाम स्वं निवेशनम्॥ ३१॥

लक्ष्मणजी से ऐसा कह और दोनों माताओं को प्रणाम कर तथा सीताजी के जाने के विषय में अनुज्ञा पाकर श्रीराम अपने निवास-स्थान को चले गये।

---

१. ये बातें गोपनीय थीं, अतः सबके सामने कहने योग्य नहीं थीं, इसलिए दशरथ ने राम को दोबारा बुलाया था और उन्हें अपने निजी गृह में ले जाकर ये बातें कही थीं।

◀ पञ्चमः सर्गः ▶ (५)

यौवराज्याभिषेक सम्बन्धी व्रत-अनुष्ठान—

संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत्॥ १॥

उधर महाराज दशरथ कल होनेवाले अभिषेक के विषय में राम को सूचित कर, पुरोहित वसिष्ठ को बुलाकर उनसे बोले—

गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन।
श्रीयशोराज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रतम्॥ २॥

हे तपोधन! राम के पास जाइए और उनसे कल्याण, यश और राज्य प्राप्ति के लिए पत्नी सहित उपवास कराइए।

तथैति स च राजानमुक्त्वा वेदविदांवरः।
स्वयं वसिष्ठो भगवान् ययौ रामनिवेशनम्॥ ३॥

वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ "बहुत अच्छा" कह कर स्वयं श्रीराम के घर गये।

स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम्।
प्रियार्हं हर्षयन् राममित्युवाच पुरोहितः॥ ४॥

महर्षि वसिष्ठ श्वेत बादलों के समान सफेद रंगवाले भवन में पहुंच कर श्रीराम को हर्षित करते हुए बोले—

प्रसन्नस्ते पिता राम यौवराज्यमवप्स्यसि।
उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया॥ ५॥

हे राम! तुम्हारे पिता तुम पर प्रसन्न हैं। कल तुम्हारा राज्याभिषेक होगा, अतः आज आप सीता सहित उपवास करें।

इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतम्।
मन्त्रवित् कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः॥ ६॥

यह कहकर वेदमन्त्रवित् मुनिवर वसिष्ठ ने नियत व्रत श्रीराम एवं सीताजी से उस रात्रि को उपवास कराया।

ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः।
अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात्॥ ७॥

तदनन्तर राजगुरु वसिष्ठ राम द्वारा भली भाँति सम्मानित एवं सत्कृत होकर अपने निवास-स्थान को चले गये।

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्॥ ८॥

वसिष्ठजी के चले जाने पर श्रीराम एवं विशालाक्षी सीता दोनों स्नान कर और शुद्ध मन से एकाग्रचित्त होकर परमपिता परमात्मा की उपासना में लग गये।

एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिविबुध्य सः।
पूर्वां सन्ध्यामुपासीनो जजाप यतमानसः॥ ९॥

जब एक प्रहर रात्रि शेष रही तब वे उठे और प्रातःकालीन सन्ध्योपासन कर, एकाग्रचित्त होकर गायत्री का जप करने लगे।

ततः पौरजनः सर्वः श्रुत्वारामाभिषेचनम्।
प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभयितुं पुरीम्॥ १०॥

प्रातःकाल होने पर, श्रीराम के राज्याभिषेक की बात सुनकर, पुरवासी नगर को सजाने लगे।

कृतपुष्पोपहारश्च धूपगन्धाधिवासितः।
राजमार्गः कृतः श्रीमान् पौरै रामाभिषेचने॥ ११॥

रामाभिषेक के उपलक्ष्य में पुरवासियों ने राजमार्ग को फूल-मालाओं से सुशोभित और धूप की सुगन्ध से सुगन्धित किया।

सभासु चैव सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च।
ध्वजाः समुच्छ्रिताश्चित्राः पताकाश्चाभवंस्तदा॥ १२॥

सभी सभा-भवनों पर और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर रंग-बिरंगी ध्वजा और पताकाएँ फहराई गईं।

अलंकारं पुरस्यैवं कृत्वा तत्पुरवासिनः।
आकाङ्क्षमाणा रामस्य यौवराज्याभिषेचनम्॥ १३॥

इस प्रकार नगर को सजाकर पुरवासी श्रीराम के युवराज-पद पर अभिषिक्त किये जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

⮜ षष्ठः सर्गः ⮞ (६)

मन्थरा का परिताप—

ज्ञातिदासी यतोजाता कैकेय्यास्तु सहोषिता।
प्रासादं चन्द्रसङ्काशमारुरोह यदृच्छया॥ १॥

रानी कैकेयी की एक कुलदासी थी। यह मायके से ही उसके साथ आई थी और सदा उसी के साथ रहती थी। इसका नाम मन्थरा था। जिस दिन राम राज्याभिषेक की घोषण हुई उस दिन सायंकाल वह अकस्मात् चन्द्रमा के समान श्वेत एवं सुन्दर राजप्रासाद पर चढ़ी।

सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम्।
अयोध्यां मन्थरा तस्मात्प्रासादादन्ववैक्षत॥ २॥

उस प्रासाद से मन्थरा ने देखा कि अयोध्या की सड़कों पर छिड़काव किया गया है और स्थान-स्थान पर पुष्पमालाएँ लटक रही हैं।

संप्रहृष्टजनाकीर्णां ब्रह्मघोषाभिनादिताम्।
प्रहृष्टवरहस्त्यश्वां सं प्रणर्दितगोवृषाम्॥ ३॥

(उसने देखा) सब लोग उत्सव में मस्त हैं। चारों ओर वेदध्वनि हो रही है। मनुष्यों का तो कहना ही क्या हाथी, घोड़े, गौ-बैल तक आनन्द में भर कर हर्षध्वनि कर रहे हैं।

प्रहृष्टमुदितैः पौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम्।
अयोध्यां मन्थरा दृष्ट्वा परं विस्मयमागता॥ ४॥

अयोध्यावासी आनन्दमग्न होकर घूम रहे हैं। बड़ी-बड़ी पताकाएँ फहरा रही हैं, मालाएँ बँधी हुई हैं। इस प्रकार की अलंकृत अयोध्यापुरी को देखकर मन्थरा बड़ी चकित हुई।

प्रहर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्।
अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा॥ ५॥

मन्थरा ने पास ही खड़ी हुई अत्यन्त प्रफुल्लित श्वेत रेशमी साड़ी पहिने हुए रामचन्द्रजी की धात्री से पूछा—

उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती।
राममाता धनं किं नु जनेभ्यः सम्प्रयच्छति॥ ६॥

आज हर्ष-विभोर सती राम-माता कौसल्या किस प्रयोजन से प्रेरित होकर मनुष्यों को धन बाँट रही है।

अतिमात्रप्रहर्षोऽयं किं जनस्य च शंस मे।
कारयिष्यति किं वापि संप्रहृष्टो महीपतिः॥ ७॥

अयोध्यावासियों के अत्यानन्दित होने का कारण क्या है? महाराज दशरथ भी अत्यन्त प्रसन्न हैं—क्या वे कोई अनुपम कार्य करनेवाले हैं—यह सब मुझे बता।

विदीर्यमाणा हर्षेण धात्री तु परयामुदा।
आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवश्रियम्॥ ८॥

मन्थरा के इस प्रकार पूछने पर, हर्ष से प्रफुल्लित उस धात्री ने कुब्जा से राम को प्राप्त होनेवाली राज्यलक्ष्मी का वृत्तान्त कह सुनाया।

श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन राघवम्।
राजा दशरथो राज्यमभिषेचयितानघम्॥ ९॥

उसने कहा—कल प्रातःकाल होते ही पुष्य-नक्षत्र में महाराज दशरथ जितक्रोध एवं निष्पाप श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त करेंगे।

धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता।
कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत॥ १०॥

धात्री के ये वचन सुनकर कुबड़ी मन्थरा ईर्ष्या में भर कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचे महल से उतरी।

सा दह्यमाना कोपेन मन्थरा पापदर्शिनी।
शयानामेत्य कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत्॥ ११॥

क्रोध में जलती हुई, भलाई में भी बुराई देखनेवाली वह मन्थरा शयनागार में जाकर और सोती हुई कैकेयी को जगाकर उससे बोली—

उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते।
उपप्लुतमघौघेन किमात्मानं न बुध्यसे॥ १२॥

हे मूढ ! उठ ! पड़ी पड़ी क्या सोती है ? तेरे ऊपर तो बड़ा भारी भय आ रहा है। क्या तू अपने दुःख को भी नहीं समझती ?

अक्षय्यं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम्।
रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥ १३॥

हे देवि ! अब तेरे सत्यानाश का समय आ पहुँचा है, क्योंकि राजा दशरथ श्रीराम को युवराज बनाना चाहते हैं।

उपवाह्य स दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु।
काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके॥ १४॥

उस दुष्टात्मा दशरथ ने भरत को तो तेरे माता पिता के घर भेज दिया है। अब वह कल प्रातः ही निष्कण्टक राज्य पर राम का अभिषेक करना चाहता है।

मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्सा शुभानना।
उत्तस्थौ हर्षसम्पूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी॥ १५॥

मन्थरा के वचन सुन हर्ष-परिपूर्ण सुन्दरमुखी कैकेयी शरत्कालीन चन्द्रमा के समान शय्या से उठी।

अतीव सा तु संहृष्टा कैकेयी विस्मयान्विता।
एकमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्॥ १६॥

उसने अत्यन्त हर्षित एवं आश्चर्य चकित हो अपना एक बहुमूल्याभूषण कुब्जा को प्रदान किया।

दत्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाब्रवीदिदम्॥ १७॥

नारी श्रेष्ठ कैकेयी मन्थरा को अपना आभूषण देकर और उसकी ओर देखकर बोली—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यासि परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं भूयः किं वा करोमि ते॥ १८॥

हे मन्थरे ! तूने मुझे परम प्रिय संवाद सुनाया है। इस सुखद संवाद को सुनने के बदले में मैं तुझे और क्या उपहार दूँ ?

रामे वा भरते वाऽहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टाऽस्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥ १९॥

मैं राम और भरत में कोई विशेष भेद नहीं देखती, अतः महाराज यदि श्रीराम को राज्य देते हैं तो मुझे उनके कार्य से सन्तोष है।

◀ सप्तमः सर्गः ▶ (७)

मन्थरा-कैकेयी संवाद—

मन्थरा तवभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं च तत्।
उवाचेदं तो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता॥ १॥

कैकेयी की बात सुनकर, कैकेयी द्वारा प्रदत्त आभूषण को परे फेंककर उसका अनादर करते हुए मन्थरा बड़े क्रोध और दुःख के साथ कहने लगी—

हर्षं किमिदमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे।
शोकसागरमध्यस्थं नात्मानमवबुध्यसे॥ २॥

हे मूर्खे ! तू शोक के स्थान पर हर्षित क्यों हो रही है ? क्या तुझे यह नहीं सूझता कि तू शोकसागर में डूबी जा रही है।

शोचामि दुर्मतित्वं ते का हि प्राज्ञा प्रहर्षयेत्।
अरेः सपत्नीपुत्रस्य वृद्धिं मृत्योरिवागताम्॥ ३॥

मुझे तेरी दुर्बुद्धि पर तरस आता है, क्या कोई भी बुद्धिमती स्त्री अपने लिए मृत्यु के समान, सौत के शत्रु सदृश पुत्र की उन्नति देखकर प्रसन्न हो सकती है।

भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद्भयम्।
तद्विचिन्त्य विषण्णास्मि भयं भीताद्धि जायते॥ ४॥

रामचन्द्र के ही समान भरत का भी राज्य पर अधिकार है, इसलिए राम को भरत से भय है, यह ठीक भी है, क्योंकि डरे हुए से ही भय हुआ करता है। यही सोच कर मैं दुःखी हूँ। (क्योंकि जब राम राजा होंगे तो भरत को मरवा डालेंगे।)

विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः।
भयात्प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम्॥ ५॥



कैकेयी-मन्थरा

श्रीराम राजनीति-विशारद हैं। वे परम चतुर और समयानुसार तुरन्त कार्य करनेवाले हैं, अतः भरत को रामचन्द्र से भय उपस्थित देख मैं भय से काँप रही हूं।

सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते।
यौवराज्येन महता श्वः पुष्येण द्विजोत्तमैः॥ ६॥

निश्चय ही इस समय तो कौसल्या सौभाग्यवती है जिसके पुत्र श्रीराम का कल प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र में ब्राह्मणों द्वारा राज्याभिषेक होगा।

प्राप्तां सुमहतीं प्रीतिं प्रतीतां तां हतद्विषम्।
उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीव त्वं कृताञ्जलिः॥ ७॥

तुझे कौसल्या के सामने, जो सम्पूर्ण पृथिवी की स्वामिनी होगी, जो प्रीति को प्राप्त और जिसके शत्रु नष्ट हो जायेंगे—हाथ जोड़ कर दासी के समान खड़ा रहना होगा।

एवं चेत्त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि।
पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यभावं गमिष्यति॥ ८॥

इस प्रकार हमारे साथ तुझे भी कौसल्या की दासी बनना पड़ेगा और तेरा पुत्र भरत राम का दास बनेगा।

तां दृष्ट्वा परमप्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः।
रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंस ह॥ ९॥

मन्थरा को इस प्रकार प्रसन्नता से राम की निन्दा करते हुए देख कैकेयी श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए कहने लगी—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्शुचिः।
रामो राज्ञः सुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥ १०॥

श्रीराम धर्मज्ञ, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी, पवित्र और महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं अतएव वे ही सब प्रकार से राज्य पाने के योग्य हैं।

यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च सोऽनुशुश्रुते हि माम्॥ ११॥

मुझे जैसा भरत प्रिय है वैसा ही तथा उससे भी अधिक राम प्रिय हैं, क्योंकि राम कौसल्या से भी अधिक मेरी सेवा करते हैं।

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तथा।
मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः॥ १२॥

यदि श्रीराम को राज्य मिलेगा तो वह राज्य भरत का ही है, क्योंकि श्रीराम अपने भाइयों को भी अपने समान ही मानते हैं।

कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत्॥ १३॥

कैकेयी की बातें सुन मन्थरा बहुत दुःखी हुई और दीर्घनिःश्वास लेकर बोली—

अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुध्यसे।
शोकव्यसनविस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे॥ १४॥

अनर्थ को सर्थ समझनेवाली अरी मूर्खे! शोक के महासागर में डूबती हुई भी तू अपने आपको नहीं समझती?

भविता राघवो राजा राघवस्यानु यः सुतः।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते॥ १५॥

जब श्रीराम राजा बनेंगे तो उनके पश्चात् उनका पुत्र राजा होगा। इस प्रकार भरत तो राज्य से भ्रष्ट ही हो जायेगा।

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम्।
देशान्तरं वा नयिता लोकान्तरमथापि वा॥ १६॥

मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि राम अकण्टक राज्य पाकर भरत को या तो देश-निकाला दे देगा अथवा उसे जान से मरवा डालेगा।

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः।
अश्विनोरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम्॥ १७॥

लक्ष्मणजी राम की रक्षा करेंगे और राम लक्ष्मण की। इन दोनों का भ्रातृत्व अश्विनीकुमारों की भाँति प्रसिद्ध है।

तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किञ्चित्करिष्यति।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादिति न संशयः॥ १८॥

अतएव श्रीराम लक्ष्मण का कुछ भी अनिष्ट नहीं करेंगे, परन्तु भरत का अनिष्ट करने में वे कभी नहीं चूकेंगे—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

तस्माद्राजगृहाद्देवि वनं गच्छतु ते सुतः।
एतद्धि रोचते मह्यं भृशं चापि हितं तव॥ १९॥

इसलिए मेरी समझ में तो इसी में तुम्हारी भलाई है कि भरतजी ननिहाल से ही भागकर वन में चले जायें। (क्योंकि मारे जाने की अपेक्षा वन में रहना उत्तम है। यदि जीते रहे तो कभी अच्छे दिन आयेंगे ही।)

दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया।
राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यातेयत्[१]॥ २०॥

तूने अपने सौभाग्य के मद में भरकर कौसल्या के साथ जो दुर्व्यवहार किया है क्या कौसल्या तुझसे उस सबका बदला नहीं लेगी?

◀ अष्टमः सर्गः ▶ (८)

कैकेयी का कोपभवन-प्रवेश—

एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत्॥ १॥

जब मन्थरा ने कैकेयी को इस प्रकार की पट्टी पढ़ाई तब क्रोध के मारे कैकेयी का मुख लाल हो गया। वह दीर्घ एवं गरम श्वास लेकर बोली—

---

१. कैकेयी और मन्थरा संवाद का जो चित्रण मैथिली शरण गुप्त ने किया है वह भी अतीव मनोहारी है। हम उसे यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। लीजिए, पढ़िए—

मन्थरा बोली निस्संकोच—
"आपको भी तो है कुछ सोच?"
हँसी रानी सुनकर यह बात,
उठी अनुपम आभा अवदात।
"सोच है मुझको निस्सन्देह,
भरत जो है मामा के गेह
सफल करके निज निर्मल दृष्टि,
देख वह सका न यह सुख-सृष्टि!"
ठोक कर अपना क्रूर कपाल,
जताकर यही कि फूटा भाल,
किंकरी ने तब कहा तुरन्त—
"हो गया भोलेपन का अन्त।
सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
समझ जो सके न अर्थानर्थ।
भरत को करके घर से त्याज्य,
राम को देते हैं नृप राज्य।
भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह।"
कहा कैकेयी ने सक्रोध,
"दूर हो दूर अभी निर्बोध!
सामने से हट अधिक न बोल,
द्विजिह्वे! रस में विष मत घोल।"
किया दासी ने उसे प्रणाम,
और वह चली गई अविराम।
गई दासी, पर उसकी बात
दे गई मानो कुछ आघात—
'भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह!'
पवन भी मानो उसी प्रकार,
शून्य में करने लगा पुकार—
'भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह!'
गूँजते थे रानी के कान,
तीर-सी लगती थी वह तान—
'भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह!'
मूर्ति-सी बनी हुई उस ठौर,
खड़ी रह सकी न अब वह और
गई शयनालय में तत्काल,
गभीरा सरिता-सी थी चाल॥

अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम्।
यौवराज्ये च भरतं क्षिप्रमेवाभिषेचये॥ २॥

मैं आज ही राम को वन में भेजती हूँ और शीघ्र ही भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त कराती हूँ।

इदं त्विदानीं सम्पश्य केनोपायेन मन्थरे।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथञ्चन॥ ३॥

हे मन्थरे! इस समय कोई ऐसा उपाय सोच जिससे भरत को ही राज्य मिले, राम को किसी भी प्रकार राज्य न मिले।

एवमुक्ता तु सा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी।
रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत्॥ ४॥

कैकेयी के ऐसा कहने पर पापिन मन्थरा श्रीराम का सर्वनाश करने के लिए कैकेयी से बोली—

पुरा दैवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
अगच्छत्त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत॥ ५॥

एक बार जब तुम्हारे पति देवासुर-संग्राम में सब राजर्षियों सहित इन्द्र की सहायता करने गये थे तब तुझे भी अपने साथ ले गये थे।

तत्राकरोन्महद्युद्धं राजा दशरथस्तदा।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः॥ ६॥

वहाँ पर महाराज दशरथ ने उन असुरों के साथ घोर युद्ध किया। राक्षसों ने भी महाराज के सारे शरीर को छलनी कर डाला।

अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया॥ ७॥

जब महाराज मूर्छित हो गये तब तू उन्हें रणक्षेत्र से बाहर ले गई। जब वहाँ भी उन पर प्रहार होने लगे तब तुमने बड़े यत्न से उनकी रक्षा की।

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरौ॥ ८॥
गृह्णीयामिति तत्तेन तथेत्युक्तं महात्मना।
अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथिता पुरा॥ ९॥

हे शुभदर्शने! उस समय महाराज दशरथ ने प्रसन्न होकर तुझे दो वर दिये और कहा कि जो इच्छा हो सो माँग। तब तूने कहा था कि अच्छा जब आवश्यकता होगी तब माँग लूँगी। मैं तो इन सब बातों से अनभिज्ञ थी। वहाँ से लौट कर तूने ही ये सब बातें मुझे बताई थीं।

तौ वरौ याच भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्राजनं च रामस्य त्वं वर्षाणि चतुर्दश॥ १०॥

उन वरों में से एक से तू भरत का राज्याभिषेक और दूसरे से श्रीराम का चौदह वर्षों के लिए वनवास माँग ले।

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति॥ ११॥

इन चौदह वर्षों में जब तक राम वन में रहेंगे तब तक सब प्रजाजनों का तेरे पुत्र के प्रति अनुराग बढ़ जाने से इसका राज्य अटल हो जायेगा।

क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते।
शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी॥ १२॥

हे अश्वपति पुत्रि! इन वरों को पाने के लिए तू मैले वस्त्र पहन कर बिना बिछौना बिछाये क्रुद्ध होकर कोपभवन में जाकर भूमि पर लेट जा।

मा स्मैनं प्रत्युदीक्षेथा मा चैनमभिभाषथाः।
रुदन्ती चापि तं दृष्ट्वा जगत्यां शोकलालसा॥ १३॥

जब महाराज दशरथ आवें तब तू न तो उनकी ओर देखना और न उनसे कुछ बात करना—केवल शोकातुर होकर भूमि पर पड़ी रहना।

दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः।
त्वत्कृते स महाराजो विशेदपि हुताशनम्॥ १४॥

तुम अपने पति को सदा प्रिय रही हो, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम्हारे लिए महाराज अग्नि में भी कूद सकते हैं।

मणिमुक्तासुवर्णं च रत्नानि विविधानि च।
दद्याद्दशरथो राजा मा स्म तेषु मनः कृथाः॥ १५॥

परन्तु स्मरण रखना—महाराज तुझे कितनी ही मणियाँ, मोती, सोना और भाँति-भाँति की बहुमूल्य वस्तुएँ देना चाहें तो तू उनमें फँसना मत।

यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्य राघवः।
व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम्॥ १६॥

जब महाराज दशरथ स्वयं तुझे भूमि से उठा कर वरदान देने को समुद्यत हों तब महाराज से प्रतिज्ञा आदि कराकर यह वर माँगना—

रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्याः पार्थिवर्षभः॥ १७॥

हे नृपश्रेष्ठ! राम को चौदह वर्ष के लिए वन में भेजो और भरत का राज्याभिषेक करो।

एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति।
भरतश्च हतामित्रस्तव राजा भविष्यति॥ १८॥

इतने दीर्घ समय तक वन में रहने पर राम की प्रीति लोगों के हृदय से निकल जायेगी और तुम्हारे पुत्र भरत शत्रु रहित होकर राजा बनेंगे।

येन कालेन रामश्च वनात्प्रत्यागमिष्यति।
तेन कालेन पुत्रस्ते रूढमूलो भविष्यति॥ १९॥

जब तक राम वन से लौटेंगे तब तक भरत के राज्य की नींव दृढ़ हो जायेगी।

गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणि राजानमनुदर्शय॥ २०॥

हे कल्याणि! जब जल बहकर बाहर निकल जाये तब बांध बाँधने से क्या लाभ? अतः उठ और अपने कार्यसाधन में लग और महाराज को यह दिखला दे कि मैं क्या कर सकती हूँ।

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता॥ २१॥

इस प्रकार मन्थरा द्वारा प्रोत्साहित की हुई, विशाल नेत्रोंवाली कैकेयी, सौभाग्य के मद से गर्वित मन्थरा सहित कोप-भवन में पहुँची।

अनेकशतसाहस्त्रं मुक्ताहारं वराङ्गना।
अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च॥ २२॥

वहाँ पहुँचते ही कैकेयी ने कई लाख के मोतियों के एक हार को तथा अन्य मूल्यवान् आभूषणों को उतार कर पृथिवी पर फेंक दिया।

तया तान्यपविद्धानि मूल्यान्याभरणानि च।
अशोभयन्त वसुधां नक्षत्राणि यथा नभः॥ २३॥

भूमि पर बिखरे हुए वे आभूषण ऐसे जान पड़ते थे जैसे आकाश में तारागण सुशोभित होते हैं।

क्रोधागारे निपतिता सा बभौ मलिनाम्बरा।
एकवेणीं दृढां बद्ध्वा गतसत्त्वेव किन्नरी॥ २४॥

मैले वस्त्र पहने हुए कोप-भवन में पड़ी कैकेयी सब केशों को एकत्र कर और एक दृढ़ गाँठ लगा स्वर्गलोक से गिरी हुई किन्नरी के समान जान पड़ती थी।

ततो हेमोपमा तत्र कुब्जावाक्यवशंगता।
संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत्॥ २५॥

उस समय स्वर्ण के समान रंगवाली कैकेयी, कुबड़ी मन्थरा की बातों में आ, भूमि पर लेटकर मन्थरा से कहने लगी—

इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यति क्षितिम्॥ २६॥

हे कुब्जे! या तो तुझे महाराज को मेरे यहाँ मरने की सूचना देनी पड़ेगी या राम को वन जाना पड़ेगा और भरत को राज्य मिलेगा।

न सुवर्णेन मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भोजनैः।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते॥ २७॥

अब मुझे आभूषणों से, रत्नों से और स्वादिष्ट भोजनों से कोई प्रयोजन नहीं है। अब तो यदि राम का राज्याभिषेक हुआ तो मेरे प्राणों का यहीं अन्त हो जायेगा।

◀ नवमः सर्गः ▶ (९)

दशरथ द्वारा कैकेयी की अनुनय-विनय—

आज्ञाप्य तु महाराजो राघवस्याभिषेचनम्।
प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी॥ १॥

उधर महाराज दशरथ मन्त्रियों को राम के राज्याभिषेक की आज्ञा देकर यह शुभ एवं प्रिय संवाद अपनी रानियों को सुनाने के लिए अन्तःपुर में आये।

स कैकेया गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः।
न ददर्श प्रियां राजा कैकेयीं शयनोत्तमे॥ २॥

सबसे पहले वे कैकेयी के श्रेष्ठ भवन में पधारे, परन्तु वहाँ उन्हें कैकेयी दिखाई नहीं दी।

अपश्यन् दयितां भार्यां पप्रच्छ विषसाद च।
न हि तस्य पुरा देवी तां वेलामत्यवर्तत॥ ३॥

प्रिया भार्या कैकेयी को वहाँ न देखकर वे प्रतिहारियों से पूछने लगे। जब उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला तो वे बहुत उदास हुए, क्योंकि इससे पूर्व कैकेयी ने उस समय का अतिक्रमण कभी नहीं किया था।

यथापुरमविज्ञाय स्वार्थलिप्सुमपण्डिताम्।
प्रतिहारी त्वथोवाच संत्रस्ता रचिताञ्जलिः॥ ४॥

महाराज ने विवेकशून्य और स्वार्थलिप्सु कैकेयी के बारे में एक प्रतिहारी से पूछा। उसने हाथ जोड़कर डरते हुए कहा—

देव दीवी भृशं क्रुद्धा क्रोधागारमभिद्रुता।
प्रतिहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः॥ ५॥

हे देव! देवीजी तो अत्यन्त कुपित होकर क्रोधागार में चली गयी हैं। प्रतिहारी की बात सुन कर महाराज अत्यन्त दुःखी हुए।

तत्र तां पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम्।
प्रतप्त इव दुःखेन सोऽपश्यज्जगतीपतिः॥ ६॥

कोपभवन में जाकर उन्होंने देखा कि कैकेयी अत्यन्त बुरी अवस्था में भूमि पर पड़ी हुई है। यह देख महाराज अति सन्तप्त हुए।

परिमृश्य च पाणिभ्यामभिसन्त्रस्तचेतनः।
कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम्॥ ७॥

वे डरते-डरते अपने हाथों से उसके शरीर को सहलाने लगे, फिर कामातुर महाराज दशरथ ने उस कमलनयनी कैकेयी से कहा—

न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम्।
देवि केनाभियुक्तासि केन वासि विमानिता॥ ८॥

हे देवि! हमें पता नहीं तेरे क्रोध का कारण क्या है? क्या किसी ने तुम्हारी निन्दा की है अथवा किसी ने तुम्हारा अपमान किया है।

भूतोपहतचित्तेव मम चित्तप्रमाथिनी।
सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वभिंतुष्टाश्च सर्वशः॥ ९॥

हे प्राणप्रिये! तुम व्याधिग्रस्त मनुष्य की भाँति भूमि पर क्यों लेट रही हो? हमारे यहाँ सब रोगों की चिकित्सा करनेवाले और हमारे द्वारा दान-मानादि से सन्तुष्ट कुशल वैद्य हैं।

सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि।
कस्य वा ते प्रियं कार्यं केन वा विप्रियं कृतम्॥ १०॥

वे वैद्य तुझे रोग-रहित कर देंगे। हे भामिनी! मुझे यह तो बताओ कि तुम्हें क्या रोग है? यदि तुम्हें कोई रोग नहीं है तो क्या किसी का प्रिय करना चाहती हो अथवा किसी ने तुम्हारा अप्रिय किया है।

कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम्।
मा रोदीर्मा च कार्षीस्त्वं देवि सम्परिशोषणम्॥ ११॥

हे देवि! किसका उपकार किया जाये और किसका अपकार किया जाये। तुम रोओ मत और अपने शरीर का परिशोषण मत करो।

अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् कोऽप्यकिञ्चनः॥ १२॥

हे देवि! तुम्हारी इच्छानुसार किस अवध्य को मृत्युदण्ड दिया जाये किस वध्य को मुक्त किया जाये। किस दरिद्र को धनवान बनाया जाये और किस धनी

का धन हरण किया जाये।

करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे।
यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुन्धरा॥ १३॥

मैं धर्म से अपने पुण्य-कर्मों की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं वही करूँगा। देख! इस पृथिवी-मण्डल पर जहाँ तक सूर्य घूमता है वहाँ तक सारी पृथिवी मेरे राज्याधिकार में है।

तत्त्वं मे ब्रूहि कैकेयि यतस्ते भयमागतम्।
तत्ते व्यपनयिष्यामि नीहारमिव भास्करः॥ १४॥

हे कैकेयी! तू ठीक-ठीक बता तुझे किस बात का डर है। हम उस डर को इसी प्रकार दूर कर देंगे जैसे सूर्यदेव कुहरे को दूर कर देते हैं।

तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदप्रियम्।
परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे॥ १५॥

इस प्रकार महाराज द्वारा मनाये जाने पर कैकेयी कुछ कुछ आश्वस्त हुई, परन्तु महाराज को पीड़ित करने के लिए उनसे अति दुःखदायी एवं अप्रिय वचन कहने लगी।

➤ दशमः सर्गः ➤ (१०)

कैकेयी का वर माँगना—

नास्मि विप्रकृता देव केन चिन्नावमानिता।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामि त्वया कृतम्॥ १॥

हे देव! न तो मैं रोगग्रस्त हूँ और न ही किसी ने मेरा अपमान किया है। मेरा अभिप्राय तो कुछ और है जिसे मैं आपसे पूरा कराना चाहती हूँ।

प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि।
अथ ते व्याहरिष्यामि यदभिप्रार्थितं मया॥ २॥

यदि आप मेरा वह कार्य करने को उद्यत हों तो उसे करने की प्रतिज्ञा करो। तत्पश्चात् मेरा जो अभीष्ट है उसे मैं कहूँगी।

तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मितः।
कामी हस्तेन संगृह्य मूर्धजेषु भुविस्थिताम्॥ ३॥

कैकेयी का यह वचन सुन काम से पीड़ित महाराज दशरथ भूमि पर पड़ी हुई कैकेयी के केशों को सहलाते हुए उससे बोले—

अविलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम।
मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते॥ ४॥

हे सौभाग्यगर्विते! क्या तुझे पता नहीं कि पुरुषसिंह श्रीराम को छोड़ कर मुझे अन्य कोई भी प्राणी तुझसे प्रिय नहीं है।

तेनाजय्येन मुख्येन राघवेण महात्मना।
शपे ते जीवनार्हेण ब्रूहि यन्मनसेच्छसि॥ ५॥

तुमसे भी अधिक प्रिय, शत्रुओं में अजेय, सबसे मुख्य श्रीराम की मैं शपथ खाता हूँ। तू जो चाहती है सो कह।

बलमात्मनि पश्यन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि।
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे॥ ६॥

अपने स्नेह-बल को देखते हुए तुझे मुझ पर सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं अपने पुण्य-कर्मों की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं तेरी कामना को पूर्ण करूँगा।

तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः।
व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम्॥ ७॥

महाराज की बातों से प्रसन्न हो कैकेयी ने सामने खड़े हुए यमराज के समान महाभयंकर अपनी वह बात राजा से कही—

स्मर राजन् पुरा वृत्तं तस्मिन् दैवासुरे रणे।
तत्र त्वां च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा॥ ८॥

हे राजन्! उस पुरानी घटना को स्मरण करो जब देवासुर-संग्राम में शत्रु ने तुम्हें पराक्रमहीन कर दिया था और तुम मृतप्राय हो गये थे।

तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः।
जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ॥ ९॥

हे देव! उस समय मैंने जागकर आपकी प्राणरक्षा के लिए सारथि बनकर यत्न किया था। मेरे द्वारा रक्षित हुए होश में आने पर आपने मुझे दो वर दिये थे।

तौ तु दत्तौ वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम्।
तवैव पृथिवीपाल सकाशे सत्यसङ्गरः॥ १०॥

हे देव! सत्यवादिन्! पृथिवीपाल! उन दोनों वरों को मैंने तुम्हारे पास धरोहर के रूप में रख दिया था। उन्हीं दोनों वरों को अब मैं तुमसे माँगती हूँ।

योऽभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः।
अनेनैवाभिषेकेन भरतो मेऽभिषिच्यताम्॥ ११॥
नवपञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनजटाधारी रामो भवतु तापसः॥ १२॥

श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए जो सामान एकत्र किया गया है उससे मेरे पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया जाये। (यह तो एक वर हुआ और दूसरा वर यह है कि) श्रीरामचन्द्रजी जटावल्कल धारण कर चौदह वर्ष तक तपस्वियों के वेश में वनों में रहें।

एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वनम्॥ १३॥

बस यही मेरी परम कामना है। मैं आपके दिये हुए वर ही माँगता हूँ। मैं आज ही राम को वन जाते हुए देखना चाहती हूँ।

➤एकादशः सर्गः ➤ (११)

दशरथ का परिताप—

ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः।
चिन्तामभिसमापेदे शोकोपहतचेतनः॥ १॥

कैकेयी के इन कठोर वचनों को सुनकर महाराज दशरथ बहुत चिन्तित हुए और शोक से मूर्छित हो गये।

चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः।
कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा॥ २॥

देर तक मूर्छित रहकर जब वे सचेत हुए तो अत्यन्त दुःखी हुए और क्रोध में भरकर कैकेयी को इस प्रकार देखा मानो उसे भस्म कर देंगे। तदनन्तर वे बोले—

नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि।
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा॥ ३॥

अरी नृशंसे! दुष्ट चरित्रवाली! कुल का सत्यानाश करनेवाली! हमने या राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है?

सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः।
तस्यैव त्वमनर्थाय किन्निमित्तमिहोद्यता॥ ४॥

श्रीराम तो तेरे साथ सदा माता के समान व्यवहार करते हैं, फिर तू उसका अनर्थ करने के लिए क्यों तैयार हुई है?

जीवलोको यथा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम्।
अपराधं किमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम्॥ ५॥

जब सब लोग श्रीराम के गुणों की प्रशंसा कर रहे हैं तब मैं कौन-सा दोष लगाकर ऐसे प्रिय पुत्र का त्याग करूँ?

कौसल्यां वा सुमित्रां वा त्यजेयमपि वा श्रियम्।
जीवितं वात्मनो रामं न त्वेव पितृवत्सलम्॥ ६॥

मैं कौसल्या, सुमित्रा और अपने राज्य को भी त्याग सकता हूँ, परन्तु अपने जीवनस्वरूप पितृभक्त श्रीराम को नहीं त्याग सकता।

तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्॥ ७॥

सूर्य के बिना संसार स्थिर रह सकता है, जल के बिना अन्न जीवित रह सकता है, परन्तु श्रीराम के बिना मेरे शरीर में प्राण नहीं रह सकते।

तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये।
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे॥ ८॥

हे अनिष्ट निश्चय करनेवाली! तू अपना हठ छोड़ दे। मैं अपना सिर तेरे चरणों में रखता हूँ, तू प्रसन्न हो जा।

इक्ष्वाकूणां कुले देवि सम्प्राप्तः सुमहानयम्।
अनयो नयसम्पन्ने यत्र ते विकृता मतिः॥ ९॥

हे देवि! नीति-सम्पन्न इक्ष्वाकुओं के कुल में यह बड़ा अनर्थ हो रहा है, क्योंकि राज्याभिषेक के मङ्गल अवसर पर तेरी मति विकृत हो रही है। भाव यह है कि अच्छे लोगों की बुद्धि बिगड़ने से कुल में अनिष्ट[1] होता है।

ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।
बहुशो हि सुबाले त्वं कथाः कथयसे मम॥ १०॥

हे बाले! तुम मुझसे बहुधा यह कहा करती थी कि तुझे महात्मा भरत के समान ही श्रीराम प्रिय हैं।

तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः।
कथं रोचयसे भीरु नव वर्षाणि पञ्च च॥ ११॥

हे भीरु! हे देवि! उसी धर्मात्मा यशस्वी राम का चौदह वर्ष तक वन में रहना तुझे कैसे अच्छा लगता है।

रामो हि भरताद् भूयस्तव शुश्रूषते सदा।
विशेषं त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये॥ १२॥

भरत की अपेक्षा श्रीराम तेरी अधिक सेवा करते हैं। हमें तो तुझमें राम से अधिक भरत की भक्ति है—ऐसा दिखाई नहीं देता।

शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनक्रियाम्।
कस्ते भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र मनुजर्षभात्॥ १३॥

तनिक सोच तो सही श्रीराम को छोड़कर और कौन तेरी इतनी सेवा, सम्मान और आज्ञा-पालन करेगा?

बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम्।
परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते॥ १४॥

अन्तःपुर में सहस्रों स्त्रियों और नौकरों में से किसी के भी द्वारा श्रीराम का परिवाद सकारण निन्दा या अपवाद-निष्कारण निन्दा नहीं सुनी गई।

सान्त्वयन् सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा।
गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः॥ १५॥

मनुजश्रेष्ठ श्रीराम शुद्ध मन से सब प्राणियों को सान्त्वना देता हुआ देशवासियों को प्रिय कार्यों से अपने वश में रखता है।

सत्येन लोकाञ्जयति दीनान्दानेन राघवः।
गुरूञ्शुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥ १६॥

श्रीराम प्रजा को सत्य से, दीनों को दान से, गुरुओं को सेवा से और युद्ध में शत्रुओं को धनुष द्वारा जीतता है।

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥ १७॥

सत्य, दान, तप, त्याग, मैत्री, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुओं की सेवा—ये सब गुण श्रीराम में निश्चय ही विद्यमान हैं।

तस्मिन्नार्जवसम्पन्ने देवि देवोपमे कथम्।
पापमाशंससे राम महर्षिसमतेजसि॥ १८॥

हे देवि! विनययुक्त, देवों के समान उपमावाले और महर्षियों के समान तेजस्वी श्रीराम को तू वनवास का क्लेश क्यों देना चाहती है?

क्षमा यस्मिन् दमस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
अविहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम॥ १९॥

जिस राम में क्षमा, तप, त्याग, सत्यभाषण, धार्मिकता, कृतज्ञता और प्राणियों के प्रति अहिंसा का भाव जैसे अलौकिक सद्गुण विद्यमान हैं उस राम के बिना मेरी क्या दशा होगी?

---

१. किसी नीतिकार ने ठीक ही कहा है—

प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।

इस बात को सन्त तुलसीदासजी ने यूँ व्यक्त किया है—

जा को प्रभु दारुण दुःख देहीं।
ताकर मति पहले हरि लेहीं॥

मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि॥ २०॥

हे कैकेयि! मैं वृद्ध हूँ। मेरा अन्त समय निकट है। इस समय मेरी अवस्था शोचनीय है। मैं तेरे समक्ष गिड़गिड़ा रहा हूँ। तू मेरे ऊपर दया कर।

पृथिव्यां सागरान्तायां यत्किञ्चिदधिगम्यते।
तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वां मन्युराविशेत्॥ २१॥

इस समुद्र से घिरी हुई पृथिवी पर जो कुछ भी है, मैं वह सब कुछ तुझे देने के लिए तैयार हूँ, तू क्रोध मत कर।

अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माधर्मो मामिह स्पृशेत्॥ २२॥

हे कैकेयि! मैं तेरे समक्ष हाथ जोड़ता हूँ, तेरे पाँव छूता हूँ। तू राम की रक्षक बन और मुझे प्रतिज्ञा भंग के पाप से बचा।

इति दुःखाभिसन्तप्तं विलपन्तमचेतनम्।
घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम्॥ २३॥
पारं शोकार्णवस्याशु प्रार्थयन्तं पुनः पुनः।
प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रातरं वचः॥ २४॥

इस प्रकार शोक से सन्तप्त, विलाप करते हुए, उन्मत्त जैसी अवस्था में विद्यमान, कैकेयी को घूरते हुए, शोक-सागर से पार उतरने की बार-बार याचना करते हुए महाराज दशरथ से कैकेयी अत्यन्त क्रुद्ध होकर ये कठोर वचन बोली—

यदि दत्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे।
धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि॥ २५॥

हे राजन्! यदि तुम वर देकर उसके लिए पश्चात्ताप कर रहे हो तो हे वीर! संसार में तुम्हें धार्मिक कौन कहेगा?

शैब्यः श्येनकपोतीये स्वमांसं पक्षिणे ददौ।
अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम्॥ २६॥

देखो! तुम्हारे ही वंश में राजा शैब्य ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए बाज पक्षी को अपने शरीर का मांस देकर भी कबूतर के प्राणों की रक्षा की थी। इसी प्रकार राजा अलर्क ने अपने नेत्र निकाल कर एक अन्धे ब्राह्मण को दे दिये थे जिससे उन्हें उत्तम कीर्ति प्राप्त हुई।

सागरः समयं कृत्वा न वेलामतिवर्तते।
समयं माऽनृतं कार्षीः पूर्ववृत्तमनुस्मरन्॥ २७॥

मनुष्य की तो बात ही क्या, जड़ पदार्थ समुद्र भी नियम बाँध कर उस मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता—अपने तट से बाहर नहीं जाता, इसलिए हे राजन्! पूर्व घटित बातों का स्मरण करते हुए अपनी प्रतिज्ञा को असत्य मत कीजिए।

स त्वं धर्मं परित्यज्य रामे राज्येऽभिषिच्य च।
सह कौसल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते[1]॥ २८॥

हे दुष्टात्मा राजन्! इस समय तेरी बुद्धि बिगड़ गई है, इसीलिए तू धर्म का परित्याग कर राम को राज्य पर अभिषिक्त करके कौसल्या के साथ आनन्दपूर्वक विहार करना चाहता है।

भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वाऽनृतम्।
यत्त्वया संश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥ २९॥

अब चाहे धर्म हो या अधर्म, सत्य हो या असत्य, तुमने मेरे साथ जो प्रतिज्ञा की है, वह पूरी करनी होगी, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

अहं हि विषमद्यैव पीत्वा बहु तवाग्रतः।
पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते॥ ३०॥

यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर श्रीराम को राज्य दोगे तो तुम्हारे सामने ही मैं हलाहल विष का पान कर अपने प्राण दे दूँगी।

भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।
यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्॥ ३१॥

हे नरेन्द्र! मैं अपनी और भरत की शपथ खाकर तुमसे कहती हूँ कि मैं राम को वन में भेजे बिना किसी बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकती।

---

१. कैकेयी का महाराज दशरथ के लिए 'दुर्मति' शब्द का प्रयोग सर्वथा अविवेकपूर्ण है।

एतावदुक्त्वा वचनं कैकेयी विरराम ह।
विलपन्तं च राजानं न प्रतिव्याजहार सा॥ ३२॥

इतना कहकर कैकेयी चुप हो गई। महाराज विलाप करते रहे, परन्तु उसने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्॥ ३३॥

कैकेयी के श्रीराम को वन में भेजने के भयंकर निश्चय और उसकी शपथ को स्मरण कर महाराज दशरथ ने "हा राम!" कहकर एक दीर्घ निःश्वास लिया और जड़ से कटे हुए पेड़ की भाँति भूमि पर गिर पड़े।

दीनयाऽऽतुरया राजा इति होवाच कैकयीम्।
अनर्थमिममर्थाभं केन त्वमुपदर्शिता॥ ३४॥

फिर दीन और आतुर वाणी के साथ राजा ने कैकेयी से कहा—तुझे इस अनर्थ=अनिष्ट को अर्थ=इष्ट के रूप में किसने समझाया है?

नृशंसे पापसङ्कल्पे क्षुद्रे दुष्कृतकारिणि।
किन्नु दुःखमलीकं वा मयि रामे च पश्यसि॥ ३५॥

अरी नृशंसे! पापिन्! ओछे स्वभाववाली! हे कुकर्मिन्! मैंने या श्रीराम ने तेरा कौन-सा अपराध किया है?

न कथञ्चिदृते रामाद्भरतो राज्यमावसेत्।
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्॥ ३६॥

राम के समक्ष भरत कभी भी राज्य ग्रहण नहीं करेगा, क्योंकि मैं भरत को श्रीराम से भी अधिक धर्मात्मा मानता हूँ।

किं मां वक्ष्यन्ति राजानो नानादिग्भ्यः समागताः।
बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत्॥ ३७॥

देश देशान्तरों से आये लोग मुझे क्या कहेंगे? आश्चर्य के साथ वे यही कहेंगे कि दशरथ निपट बाल-बुद्धि है, इतने दिनों तक इसने राज्य किस प्रकार किया।

किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते।
किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम्॥ ३८॥

श्रीराम को वन में भेजने पर उसकी माता कौसल्या हमसे क्या कहेगी? और ऐसा अनिष्ट कार्य कर मैं उसे क्या उत्तर दूँगा?

यदा यदा च कौसल्या दासीवच्च सखीव च।
भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति[१]॥ ३९॥
सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा।
न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव॥ ४०॥

जब समय-समय पर कौसल्या, जो सेवा करने में दासी के समान, रहस्य में सखी के समान, धर्मकृत्यों में स्त्री के समान, हितैषियों में सगी बहन के समान, आग्रहपूर्वक सुस्वादु भोजन कराने में माता के समान, सदा प्रिय कामना करनेवाली (भला चाहनेवाली), सदा प्रिय बोलनेवाली, सभी पुत्रों से निरन्तर प्रेम करनेवाली, उपस्थित होती रही है तब-तब हे देवि! सत्कार करने योग्य होने पर भी मैंने तेरे कारण उसका सत्कार नहीं किया (कहीं तू यह न समझ ले कि मैं तुझसे प्रेम नहीं करता।)

इदानीं तत्तपति मां यन्मया सुकृतं त्वयि।
अपथ्यव्यञ्जनोपेतं भुक्तमन्नमिवातुरम्॥ ४१॥

---

१. किसी नीतिज्ञ ने कहा है—

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी,
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मेऽनुकूला क्षमया धरित्री,
भार्या च षाड्गुणवतीह दुर्लभा॥

कार्य में मन्त्री की भाँति परामर्श देनेवाली, सेवादि में दासी के समान काम करनेवाली, भोजन कराने में माता के समान, शयन के समय रम्भा के समान सुख देनेवाली, धर्म के अनुकूल चलनेवाली और क्षमा करने में पृथिवी के समान—इन छह गुणों से युक्त स्त्री दुर्लभ होती है। महाराज दशरथ को कौसल्या के रूप में ऐसी ही दुर्लभ पत्नी मिली हुई थी।

तेरे प्रति मैंने जो सद्व्यवहार किया था उसका आज मुझे उसी प्रकार पश्चात्ताप हो रहा है जिस प्रकार स्वादिष्ट, किन्तु कुपथ्य भोजन कर रोगी को पश्चात्ताप होता है।

अनार्या इति मामार्याः पुत्रविक्रायिकं ध्रुवम्।
धिक्करिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा॥ ४२॥

हा! आर्य—श्रेष्ठ पुरुष अब मुझे अनार्य और पुत्र-विक्रेता कहकर उसी प्रकार धिक्कारेंगे जिस प्रकार सुरापान करनेवाले ब्राह्मण को लोग गली कूचों में सर्वत्र धिक्कारते हैं।

तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति।
बालिशो बत कामात्मा राजा दशरथो भृशम्।
स्त्रीकृते यः प्रियं पुत्रं वनं प्रस्थापयिष्यति॥ ४३॥

अवश्य ही सारा संसार यह कहकर हमारी निन्दा करेगा कि राजा दशरथ बड़ा कामी और लड़क-बुद्धिवाला है जो स्त्री के कहने से अपने प्यारे पुत्र को वन में भेज रहा है।

वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्षितः।
भोगकाले महत्कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते॥ ४४॥

वेद के स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के धारण और गुरुओं की सेवा से जिसका शरीर कृश हो गया था अब गृहस्थाश्रम में जब उसके शरीर के हृष्ट-पुष्ट होने का समय आया तब उसे, फिर शारीरिक कष्ट उठाने पड़ेंगे।

स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति।
राघवे हि वनं प्राप्ते सर्वलोकस्य धिक्कृतम्॥ ४५॥

वन जाने के लिए कहते ही वह "बहुत अच्छा" ही कहेगा और श्रीराम के वन जाने पर सब लोग मुझे ही धिक्कारेंगे।

कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह।
प्रक्षिप्य नरके[1] सा त्वं कैकेयि सुखिता भव॥ ४६॥

हे कैकेयि! मुझे कौसल्या, सुमित्रा और तीनों पुत्रों को दुःख में धकेलकर तू सुखी हो।

प्रियं चेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनं भवेत्।
मा स्म मे भरतः कार्षीत्प्रेतकृत्यं गतायुषः॥ ४७॥

यदि श्रीराम का वनगमन भरत को प्रिय लगे तो जब मैं मर जाऊँ तब भरत मेरा दाहकर्म-संस्कार न करे।

मृते मयि गते रामे वनं पुरुषपुङ्गवे।
सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि॥ ४८॥

जब मैं मर जाऊँ और पुरुषश्रेष्ठ राम वन में चला जाए तब तू विधवा होकर अपने पुत्र सहित राज्य करना।

धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपराः सदा।
न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम्॥ ४९॥

स्त्रियों को धिक्कार है! ये धूर्त और स्वार्थ परायण[2] होती हैं। नहीं-नहीं, मैं सब स्त्रियों को ऐसा नहीं कहता, केवल भरत की माता को ही कहता हूँ।

प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा
सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज।
न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं
ममाहितं केकयराजपांसने॥ ५०॥

अरी केकयराज-कुलकलङ्किनी! चाहे तू उदास हो, चाहे कुपित हो (अथवा जल कर मर जा) तू विष खाकर मर जा, चाहे पत्थर से सिर फोड़ डाल अथवा गढ़ा खोदकर पृथिवी में समा जा, परन्तु तेरी इस कठोर बात को जिसके करने में मेरा सरासर अहित है, मैं कभी न मानूँगा।

---

१. रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोविन्दराज ने नरक का अर्थ इस प्रकार किया है—
अत्र नरकः शब्देन दुःखं लक्ष्यते।
यहाँ नरक शब्द का अर्थ दुःख है।

२. महाराज दशरथ ने पहले दुःख एवं क्षोभ के कारण स्त्रीमात्र की निन्दा की, परन्तु जब उन्हें कौसल्या आदि का ध्यान आया तो उन्होंने अपने कथन का लक्ष्य केवल भरत की माता को बनाकर उसमें संशोधन कर दिया।

न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं
विनाऽऽत्मजेनात्मवतः कुतो रतिः।
ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि,
स्पृशामिपादावपि ते प्रसीद मे॥ ५१॥

श्रीराम के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता, फिर सुख और प्रीति की तो चर्चा ही व्यर्थ है। हे देवि! देख अब भी मान जा, मेरा अनिष्ट मत कर। मैं तेरे पैरों में पड़ता हूँ, मुझ पर प्रसन्न हो।

स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्
स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया।
पपात दैव्याश्चरणौ प्रसारिता—
वुभावसंस्पृश्य यथाऽतुरस्तथा॥ ५२॥

(जब धमकाने और खुशामद करने पर भी कैकेयी न मानी तब) महाराज दशरथ अनाथों के समान गिड़गिड़ाते हुए और अपने हृदय को कैकेयी के अधीन कर उसके फैलाये हुए चरणों को छूए बिना वैसे ही मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े जैसे मरणोन्मुख रोगी मूर्छा आने पर गिर पड़ता है।

➤ द्वादशः सर्गः ➤ (१२)

दशरथ का विलाप—

अनर्थरूपासिद्धार्था ह्यभीता भयदर्शिनी।
पुनराकारयामास तमेव वरमङ्गना॥ १॥

जब पापरूपा कैकेयी का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ तो वह भय-रहित हो महाराज को भय दिखाते हुए, फिर वही वर माँगने के लिए बोली—

त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः।
मम चेमं वरं कस्माद्विधारयितुमिच्छसि॥ २॥

हे महाराज! आप तो अपने-आपको सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ होने की श्लाघा किया करते हो, फिर मेरे वरों को क्यों नहीं देना चाहते?

एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा।
प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो मुहूर्तं विह्वलन्निव॥ ३॥

कैकेयी के ऐसा कहने पर महाराज थोड़ी देर के लिए विकल हो गये, फिर वे क्रुद्ध होकर बोले—

अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान्।
रामो लब्धो महाबाहुः स कथं त्यज्यते मया॥ ४॥

मैंने बहुत दिनों तक पुत्रहीन रहकर बड़े कष्टों से महापराक्रमी श्रीराम को प्राप्त किया है। अब मैं उसे कैसे त्याग सकता हूँ?

शूरश्च कृतविद्यश्च जितक्रोधः क्षमापरः।
कथं कमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते॥ ५॥

शूरवीर, विद्वान्, क्रोध को जीतनेवाले=शान्त स्वभाव, क्षमाशील, कमलनयन श्रीराम को मैं कैसे निर्वासित कर सकता हूँ?

नृशंसे पापसंकल्पे रामं सत्यपराक्रमम्।
किं विप्रियेण कैकेयि प्रियं योजयसे मम॥ ६॥

हे क्रूर एवं पापसंकल्पवाली कैकेयि! तू मेरे प्यारे और सत्य पराक्रमी श्रीराम को किसलिए वन भिजवा रही है।

तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः।
अस्तमभ्यागमत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत॥ ७॥

व्याकुल-चित्त महाराज दशरथ के इस प्रकार विलाप करते-करते सन्ध्या हो गई और रात चढ़ने लगी।

सा त्रियामा तथाऽऽर्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता।
राज्ञो विलपतस्तस्य न व्यभासत शर्वरी॥ ८॥

वह तीन प्रहरवाली रात्रि पूर्ण चन्द्रमा से युक्त होने पर भी दुःखी एवं विलाप करते हुए महाराज दशरथ को आनन्द न दे सकी।

तथैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः।
विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः॥ ९॥

महाराज दशरथ बार बार गर्म आहें भर, आकाश की ओर टकटकी लगाये, रोगपीड़ित की तरह विलाप करते हुए कहने लगे—

न प्रभातं तवेच्छामि निशे नक्षत्रभूषणे।
क्रियातां मे दया भद्रे रचितोऽयं मयाञ्जलिः॥ १०॥

हे नक्षत्रों से सुशोभित रात्रि! मैं तेरा प्रभातकाल नहीं चाहता (प्रभात होने पर मुझे रामगमनरूपी दुःख देखना पड़ेगा) हे कल्याणप्रद रात्रि! मेरे ऊपर दया कर मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ।

एवमुक्त्वा ततो राजा कैकेयीं चेदमब्रवीत्।
साधुवृत्तस्य दीनस्य त्वद्गतस्य गतायुषः॥ ११॥
प्रसादः क्रियतां भद्रे देवि राज्ञो विशेषतः।
शून्ये न खलु सुश्रोणि मयेदं समुदाहृतम्॥ १२॥

यह कहकर महाराज कैकेयी से बोले—साधु आचरणवाले, दीन, तेरी शरण में आये हुए और थोड़े दिन जीनेवाले मुझ राजा पर हे देवि! कृपा कर। मैंने रामराज्याभिषेक की घोषणा एकान्त में नहीं, अपितु भरी सभा में की है (अतः यदि राम का राज्याभिषेक नहीं हुआ तो मेरी बड़ी निन्दा होगी, इसलिए तू मेरे ऊपर कृपा कर)।

ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः
प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम्।
समीक्ष्य पुत्रस्य विवासनं प्रति
क्षितौ विसंज्ञो निपपात दुःखितः॥ १३॥

उपर्युक्त वचनों से असन्तुष्ट, प्रतिकूल ही कहनेवाली, प्रिया कैकेयी को राम-वनवास के प्रति दृढ़ निश्चयवाली जानकर महाराज अत्यन्त दुःखी हुए। वे मूर्छित और चेष्टा-रहित होकर भूमि पर गिर पड़े।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

कैकेयी का उपालम्भ—

पुत्रशोकार्दितं पापा विसंज्ञं पतितं भुवि।
विचेष्टमानमुद्वीक्ष्य सैक्ष्वाकमिदमब्रवीत्॥ १॥

पुत्र-शोक से पीड़ित, मूर्छित अवस्था में भूमि पर पड़े हुए और विविध प्रकार की चेष्टा करते हुए महाराज दशरथ को देख वह पापिन कैकेयी बोली—

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः।
सत्यमाश्रित्य हि मया त्वं च धर्मप्रचोदितः॥ २॥

धर्म के मर्मज्ञ सत्य को ही परम धर्म बतलाते हैं, उसी सत्य का आश्रय लेकर मैं आपको धर्मपालन की प्रेरणा करती हूँ, अर्थात् वर देने के लिए तुमसे कहती हूँ।

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनैवाप्यते परम्॥ ३॥

एकमात्र प्राप्य स्थान ब्रह्म सत्य है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, अक्षय वेद भी सत्य हैं, सत्य से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

सत्यं समनुवर्तस्व यदि धर्मे धृता मतिः।
स वरः सफलो मेऽस्तु वरदो ह्यसि सत्तम॥ ४॥

हे राजन्! यदि सत्य में आपका विश्वास है तो सत्य का पालन करते हुए मुझे मेरे माँगे हुए दोनों वर दीजिए, क्योंकि आप श्रेष्ठ वर देनेवाले हो।

धर्मस्येहाभिकामार्थं मम चैवाभिचोदनात्।
प्रव्राजय सुतं रामं त्रिः खलु त्वां ब्रवीम्यहम्॥ ५॥

धर्म की अभिवृद्धि के लिए तथा मेरी प्रेरणा से आप श्रीराम को वन भेज दीजिए। मैं यह बात तीन बार कहती हूँ, अर्थात् मेरे निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

समयं च ममाद्येमं यदि त्वं न करिष्यसि।
अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम्॥ ६॥

हे राजन्! यदि आप इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो आपके द्वारा परित्यक्त हुई मैं यहीं आपके सामने अपने प्राण त्याग दूँगी।

एवं प्रचोदितो राजा कैकेय्या निर्विशङ्कया।
नाशकत्पाशमुन्मोक्तुं बलिरिन्द्रकृतं यथा॥ ७॥

जब कैकेयी ने निर्भीक होकर इस प्रकार कहा तब महाराज उस सत्यपाश से अपने आपको उसी प्रकार मुक्त न कर सके जिस प्रकार राजा बलि इन्द्र के पाश से नहीं छूट सके थे।

उद्भ्रान्तहृदयश्चापि विवर्णवदनोऽभवत्।
स धुर्यो वै परिस्पन्दन्युगचक्रान्तरं यथा॥ ८॥

महाराज दशरथ का हृदय व्याकुल एवं चेहरा पीला हो गया और उनकी दशा दो पहियों के बीच में घूमनेवाले धुरे की भाँति अस्थिर हो गई।

विह्वलाभ्यां च नेत्राभ्यामपश्यन्निव स भूपतिः।
कृच्छ्राद्धैर्येण संस्तभ्य कैकेयीमिदमब्रवीत्॥ ९॥

चिन्ता और शोक के कारण महाराज इतने विह्वल हो गये कि उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण कर उन्होंने कैकेयी से कहा—

यस्ते मन्त्रकृतः[१] पाणिरग्नौ पापे मया धृतः।
तं त्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया॥ १०॥

हे पापिन्! विवाह के समय यज्ञाग्नि के सामने वैदिक मन्त्रोच्चारणपूर्वक मैंने जो तेरा हाथ पकड़ा था उसे आज मैं छोड़ता हूँ। तेरे पुत्र भरत का भी तेरे साथ त्याग करता हूँ। तुम दोनों से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

प्रयाता रजनी देवि सूर्यस्योदयनं प्रति।
अभिषेकं गुरुजनस्त्वरयिष्यति मां ध्रुवम्॥ ११॥

हे देवि! अब रात्रि समाप्त होने को है और सूर्य उदय होनेवाला है, अतः गुरुजन एवं प्रजाजन निश्चय ही मुझे राम राज्याभिषेक के लिए जल्दी करने को कहेंगे।

रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम्॥ १२॥
त्वया सपुत्रया नैव कर्तव्या सलिलक्रिया[२]।
व्याहन्तास्यशुभाचारे यदि रामाभिषेचनम्॥ १३॥

श्रीराम के अभिषेक के लिए तैयार किये गये शुभ पदार्थों से राम का अभिषेक तो न होगा, किन्तु उनसे राम अन्त्येष्टि क्रिया करेगा। हे दुष्ट विचारवाली! याद रख, यदि तू रामाभिषेक में विघ्न डालेगी तो मेरी मृत्यु पर मेरी अन्त्येष्टि अपने पुत्र भरत सहित तुम मत करना, राम ही मेरी अन्त्येष्टि-क्रिया करेगा।

तां तथा ब्रुवतस्तस्य भूमिपस्य महात्मनः।
प्रभाता शर्वरी पुण्या चन्द्रनक्षत्रशालिनी॥ १४॥

महात्मा दशरथ के कैकेयी से इस प्रकार कहते-कहते चन्द्र तथा नक्षत्र-माला से सुशोभित रात्रि समाप्त हो गई और पुण्य प्रभात हो गया।

वसिष्ठो गुणसम्पन्नः शिष्यैः परिवृतस्तदा।
उपसंगृह्य सम्भारान् प्रविवेश पुरोत्तमम्[३]॥ १५॥

उधर रात्रि व्यतीत होने पर अपने शिष्यों से घिरे

---

१. विवाह के समय वर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता है—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—ऋ० १०।८५।३६

हे वरानने! मैं सौभाग्य के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू मुझ पति के साथ जरावस्था को सुखपूर्वक प्राप्त हो। सकल ऐश्वर्ययुक्त, न्यायकारी, सर्वजगदुत्पादक जगद्धारक परमात्मा और सभा-मण्डप में बैठे हुए विद्वान् गृहस्थाश्रम-कर्म के अनुष्ठान के लिए तुझे तेरे लिए सौंपते हैं।

२. मृतक शरीर को स्नान कराने से अन्त्येष्टि कर्म आरम्भ होता है, अतः उसे सलिल-क्रिया कहते हैं।

३. **प्रविवेश पुरोत्तमम्**—इससे जान पड़ता है कि वसिष्ठ आदि ऋषिगण जो महाराज दशरथ के मन्त्रिमण्डल में थे बस्ती में नहीं रहते थे। वे नगर के कोलाहल से दूर एकान्त-शान्त में रहा करते थे। वे आज के मिनिस्टरों की भाँति चालीस-चालीस और पचास-पचास सहस्र रुपये के फर्नीचर से सुसज्जित कोठियों में नहीं रहते थे।

हुए गुणसम्पन्न महर्षि वसिष्ठ ने अभिषेक सम्बन्धी सामग्रियों सहित पुरी में प्रवेश किया।

सिक्तसम्मार्जितपथां पताकोत्तमभूषिताम्।
विचित्रकुसुमाकीर्णां नानास्रग्भिर्विराजिताम्॥ १६॥

(जब महर्षि वसिष्ठ नगरी में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने देखा कि) राजधानी की सब सड़कें स्वच्छ थीं, उन पर छिड़काव किया गया था। जिधर देखो उधर ध्वजा एवं पताकाएँ फहरा रही थीं। भाँति-भाँति के विचित्र फूल सड़कों पर फैले हुए थे और स्थान-स्थान पर पुष्प-मालाएँ लटक रही थीं।

संहृष्टमनुजोपेतां समृद्धविपणापणाम्।
चन्दनागरुधूपैश्च सर्वतः परिधूपिताम्॥ १७॥
तां पुरीं समतिक्रम्य पुरन्दरपुरोपमाम्।
ददर्शान्तःपुरं श्रीमान् नानाध्वजगणायुतम्॥ १८॥

वह नगरी सुप्रसन्न मनुष्यों से भरी हुई थी, बाजार की दुकानों में अनेक प्रकार के माल भरे हुए थे। वह नगरी चन्दन और अगर की सुगन्धि से सुवासित हो रही थी। इस प्रकार की इन्द्रपुरी के तुल्य अयोध्या पुरी में से जाते हुए उन्होंने राजमहल को देखा। उस राजमहल पर नाना प्रकार के झण्डे फहरा रहे थे।

तदन्तःपुरमासाद्य व्यतिचक्राम तं जनम्।
वसिष्ठः परमप्रीतः परमर्षिर्विवेश ह॥ १९॥

भीड़ को हटाते हुए महर्षि वसिष्ठ किसी प्रकार अन्तःपुर के द्वार पर पहुँचे और अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

स त्वपश्यद्विनिष्क्रान्तं सुमन्त्रं नाम सारथिम्।
द्वारे मनुजसिंहस्य सचिवं प्रियदर्शनम्॥ २०॥
तमुवाच महातेजाः सूतपुत्रं विशारदम्।
वसिष्ठः क्षिप्रमाचक्ष्व नृपतेर्मामिहागतम्॥ २१॥

भीतर जाते समय अन्तःपुर के द्वार पर उनकी भेंट मनुजश्रेष्ठ दशरथ के सारथि शोभनमूर्ति सुमन्त्र से हुई। महातेजस्वी वसिष्ठजी ने क्रिया-कुशल सूत-पुत्र सुमन्त्र से कहा—महाराज को मेरे यहाँ आने का समाचार शीघ्र कह दीजिए।

इति तस्य वचः श्रुत्वा सूतपुत्रो महात्मनः।
स्तुवन्नृपशारर्दूलं प्रविवेश निवेशनम्॥ २२॥

महात्मा वसिष्ठ के इन वचनों को सुनकर सूत-पुत्र सुमन्त्र महाराज की स्तुति करते हुए अन्दर प्रविष्ट हुए।

स समीपस्थितो राज्ञस्तामवस्थामजज्ञिवान्।
वाग्भिः परमतुष्टाभिरभिष्टोतुं प्रचक्रमे॥ २३॥

सुमन्त्र महाराज दशरथ के निकट पहुँच गये, परन्तु महाराज की वास्तविक स्थिति को न जानने के कारण प्रसन्नता प्रकट करनेवाले वचनों के द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

ततः स राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः।
वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि॥ २४॥

तब धर्मज्ञ महाराज, दशरथ, जो रामाभिषेक न होने के कारण दुःखी थे और जिनकी आँखें लाल हो गई थीं, सुमन्त्र की ओर देखकर बोले—हे सुमन्त्र! अपने स्तुति-वचनों से मेरे हृदय को और क्यों छेद रहे हो?

सुमन्त्रः करुणं श्रुत्वा दृष्ट्वा दीनं च पार्थिवम्।
प्रगृहीताञ्जलिः किञ्चित्तस्माद्देशादपाक्रमत्॥ २५॥

सुमन्त्र महाराज दशरथ के ये करुण वचन सुन और उनकी दीनावस्था देखकर, हाथ जोड़ जहाँ पहले खड़े थे उस स्थान से कुछ दूर हट गये।

यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः।
यदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह॥ २६॥

जब महाराज दीनता के कारण और कुछ न बोल सके तब अपना काम बनाने में निपुण कैकेयी सुमन्त्र से बोली—

सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्॥ २७॥

हे सुमन्त्र! राम के अभिषेक के आनन्द में मग्न होने के कारण महाराज सारी रात जागते रहे। रातभर जागरण के कारण थके हुए इस समय वे सो रहे हैं।

तद् गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम्।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा॥ २८॥

अतः हे सूत! तुम शीघ्र जाओ और यशस्वी राजकुमार राम को यहाँ बुला लाओ। इस विषय में सोच-विचार की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।
तत् श्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्॥ २९॥

इस पर सुमन्त्र ने कहा—हे भामिनि! मैं महाराज की आज्ञा के बिना कैसे जाऊँ? मन्त्री की यह बात सुन महाराज दशरथ ने कहा--

सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्।
निर्जगाम स च प्रीत्या त्वरितो राजशासनात्॥ ३०॥

सुमन्त्र! मैं सुन्दर राम को देखना चाहता हूँ, जाओ और उसे शीघ्र लिवा लाओ। श्रीराम के बुलाने में महाराज की आज्ञा समझ वे प्रसन्न होते हुए वहाँ से चल दिये।

◀ चतुर्दशः सर्गः ▶ (१४)

श्रीराम को बुलाने के लिए सुमन्त्र का प्रेषण—

स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रणिपत्य तम्।
निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत्॥ १॥

महाराज के वचनों को सुन और उनको प्रणाम कर सुमन्त्र राजभवन से चल दिये। वे अत्यन्त प्रसन्न थे कि आज राम का राज्याभिषेक होगा।

प्रपन्नो राजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम्।
हृष्टः प्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन्॥ २॥

सुमन्त्र रंग-बिरंगी ध्वजा और पताकाओं से सुशोभित राजमार्ग पर उपस्थित हो इधर-उधर देखते-भालते हर्षित होते हुए शीघ्रता से चलने लगे।

ततो ददर्श रुचिरं कैलासशिखरप्रभम्।
रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसमप्रभम्॥ ३॥

थोड़ी ही देर में सुमन्त्र ने मनोहर कैलास पर्वत के शिखर के समान उज्ज्वल और इन्द्र-भवन के समान सुन्दर राम-भवन को देखा।

उपस्थितैः समाकीर्णं जनैरञ्जलिकारिभिः।
उपादाय समाक्रान्तैस्तथा जानपदैर्जनैः॥ ४॥

उस समय वहाँ अनेक लोग हाथ जोड़े हुए उपस्थित थे। वहाँ अनेक राष्ट्रों के लोग भी थे जो श्रीराम को उपहार देने के लिए भेंट की वस्तुएँ लिये हुए उपस्थित थे।

स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम्।
प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित्॥ ५॥

सुमन्त्र अन्तःपुर के उस द्वार को जिस पर लोगों की बड़ी भीड़ थी लाँघ कर भीतर के द्वार पर पहुँचे, जहाँ भीड़ न थी।

प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया॥ ६॥

द्वारपालों द्वारा सुमन्त्र के आने का समाचार सुन और उन्हें अपने पिता का अन्तरङ्ग समझ कर श्रीराम ने उन्हें भीतर ही बुलवा लिया जिससे सुमन्त्र प्रसन्नता अनुभव करे।

तं वैश्रवणसङ्काशमुपविष्टं स्वलंकृतम्।
ददर्श सूतः पर्यङ्के सौवर्णे सोत्तरच्छदे॥ ७॥

सुमन्त्र ने भीतर जाकर देखा कि श्रीराम गद्दा-चादर आदि से सुसज्जित स्वर्ण-पलंग पर, कुबेर जैसे आभूषण धारण किये हुए बैठे हैं।

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत्[1]॥ ८॥

श्रीराम अपने तेज से मध्याह्न के सूर्य की भाँति देदीप्यमान हो रहे थे। शिष्टाचार में निष्णात सुमन्त्र ने

१. अनुप्रासालंकार की कैसी सुन्दर छटा है!

वरदाता श्रीराम का नम्रतापूर्वक अभिवादन किया।

प्राञ्जलिस्तु सुखं पृष्ट्वा विहारशयने स्थितम्।
राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रो राजसत्कृतः॥ ९॥

महाराज से सम्मानित सुमन्त्र ने हाथ जोड़कर शय्या पर विराजमान श्रीराम से कुशल-क्षेम पूछकर यह कहा—

कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति।
महिष्या सह कैकेय्या गम्यतां तत्र मा चिरम्॥ १०॥

हे कौसल्या के सुपुत्र! कैकेयी सहित महाराज दशरथ आपको देखना चाहते हैं। आप वहाँ शीघ्र चलिए।

एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः।
ततः सम्मानयामास सीतामिदमुवाच ह॥ ११॥

सुमन्त्र की बात सुन पुरुषसिंह, तेजस्वी श्रीराम अति प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक सीताजी से बोले—

देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे।
मन्त्रयेते ध्रुवं किञ्चिदभिषेचनसंहितम्॥ १२॥

हे देवि! माता कैकेयी और पिताजी एकत्र बैठे हुए अवश्य ही मेरे अभिषेक के विषय में विचार-विमर्श कर रहे हैं।

लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा।
सञ्चोदयति राजानं मदर्थमदिरेक्षणे॥ १३॥

हे सुलोचने! मेरा अनुमान है कि मेरी हितैषिणी, चतुरा कैकेयी महाराज का अभिप्राय जानकर मेरे अभिषेक के लिए महाराज को प्रेरित कर रही होगी।

अहं शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिम्।
सह त्वं परिवारेण सुखमास्स्व रमस्व च॥ १४॥

अब मैं तुरन्त यहाँ से जाकर महाराज के दर्शन करूँगा। तुम यहाँ अपनी सखियों के साथ आनन्द मनाओ।

अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुकमङ्गलः।
निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात्॥ १५॥

इस प्रकार सीताजी को आदेश देकर, अपने राज्याभिषेक के लिए मङ्गलाचारपूर्वक श्रीराम सुमन्त्र के साथ अपने भवन से प्रस्थानित हुए।

ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम्।
वैयाघ्रं पुरुषव्याघ्रो राजितं राजनन्दनः॥ १६॥

तदनन्तर दशरथनन्दन पुरुषसिंह श्रीराम उस दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए जो अग्नि के समान चमकता था और जो व्याघ्रचर्म से मढ़ा हुआ था।

छत्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः।
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः॥ १७॥

श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण हाथ में छत्र और चँवर लिये हुए रथ में पीछे बैठकर उनकी रक्षा कर रहे थे।

❮ पञ्चदशः सर्गः ❯ (१५)

श्रीराम का पिता के पास आगमन—

स राजकुलमासाद्य मेघसङ्घोपमैः शुभैः।
सन्निवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात्॥ १॥

चलते-चलते श्रीराम राजभवन में पहुँचे। वह राजभवन मेघ समूह के समान जान पड़ता था। साथ के सब लोगों को अन्तिम ड्योढ़ी पर छोड़कर श्रीराम ने अन्तःपुर में प्रवेश किया।

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे।
कैकेयीसहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता॥ २॥

अन्तःपुर में जाकर श्रीराम ने देखा कि महाराज दशरथ कैकेयी के साथ सुन्दर आसन पर विराजमान हैं। वे दीन और दुःखी हैं तथा उनके मुख का रंग फीका पड़ गया है।

स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः॥ ३॥

श्रीराम ने जाते ही पहले अत्यन्त विनीत भाव से पिता के चरणों में शीश झुकाया, फिर बड़ी सावधानी से माता कैकेयी के चरणों का स्पर्श किया।

रामेत्युक्त्वा च वचनं बाष्पर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्॥ ४॥

श्रीराम को देखकर महाराज दशरथ केवल 'राम !' ही कह सके, क्योंकि फिर महाराज के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी तथा उनका कण्ठ गद्‌गद हो गया, फिर वे न तो कुछ देख ही सके और न बोल ही सके।

अचिन्त्यकल्पं हि पितुस्तं शोकमुपधारयन्।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि॥ ५॥

अपने पिताजी की ऐसी असम्भावित दशा देख और उनके शोक का कारण न जानकर श्रीराम ऐसे विक्षुब्ध हुए जैसे पूर्णमासी के दिन समुद्र क्षुब्ध होता है।

चिन्तयामास च तदा रामः पितृहिते रतः।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति॥ ६॥

सदा पिता के हित में लगे रहनेवाले राम विचारने लगे कि क्या कारण है कि पिताजी (इतनी प्रसन्नता के अवसर पर भी) न तो मुझसे प्रसन्न हैं और न ही मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं।

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति।
तस्य मामद्य सम्प्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते॥ ७॥

और दिन तो पिताजी क्रुद्ध होने पर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाया करते थे, परन्तु आज मुझे देखकर उन्हें कष्ट क्यों हो रहा है।

स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः।
कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत्॥ ८॥

इस चिन्ता में श्रीराम का मुँह उतर गया। दीनों की भाँति शोक-पीड़ित और द्युतिहीन श्रीराम कैकेयी को अभिवादन करके ये वचन बोले—

कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद्येन मे पिता।
कुपितस्तन्मयाचक्ष्व त्वं चैवैनं प्रसादय॥ ९॥

यदि अज्ञानवश मुझसे कोई अपराध हो गया हो जिससे पिताजी मुझसे अप्रसन्न हैं तो आप मुझे उस अपराध को बतायें और मेरी ओर से आप इन्हें प्रसन्न करें=मनायें।

अतोषयन् महाराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे॥ १०॥

महाराज का कहना न मानकर, उनको असन्तुष्ट एवं कुपित कर मैं एक मुहूर्त भी जीना नहीं चाहता।

एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना।
उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्माहतं वचः॥ ११॥

जब श्रीराम ने कैकेयी से उपर्युक्त वचन कहे तब निर्लज्जा कैकेयी ने यह धृष्टता एवं स्वार्थपूर्ण वचन कहा—

न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किञ्चन।
किञ्चन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नाभिभाषते॥ १२॥

हे राम! न तो महाराज तुमसे अप्रसन्न हैं, न ही इनके शरीर में कोई रोग है। इनके मन में कोई बात है जिसे तुम्हारे भय से ये कहते नहीं।

यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम्॥ १३॥

यदि तुम यह बात स्वीकार करो कि महाराज उचित या अनुचित जो कुछ कहें उसे करोगे तो मैं तुम्हें सब कुछ बतला दूँ।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम्।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसन्निधौ॥ १४॥

कैकेयी के द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर श्रीराम अत्यन्त व्यथित हुए। उन्होंने महाराज के समीप बैठी हुई कैकेयी से कहा—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके॥ १५॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥ १६॥

अहो! धिक्कार है!! हे देवि! आपको ऐसा कहना उचित नहीं। महाराज की आज्ञा से मैं जलती चिता में कूद सकता हूँ, हलाहल विष का पान कर सकता हूँ और समुद्र में छलाँग लगा सकता हूँ।[१] अपने गुरु,

---

१. कैसी अद्‌भुत पितृभक्ति है!

हितकारी, राजा और पिता के आदेश से ऐसा कौन-सा कार्य है जिसे मैं न कर सकूँ ?

तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते[१]॥ १७॥

हे देवि! महाराज दशरथ को जो भी अभीष्ट है वह तू मुझसे कह। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनकी आज्ञा का पालन करूँगा। माता! सदा स्मरण रख राम दो प्रकार की बात नहीं कहता (राम जो कहता है, वही करता है।)।

तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम्।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम्॥ १८॥

तब अनार्या–क्षुद्राशया कैकेयी उस सरल स्वभाव एवं सत्यवादी श्रीराम से ये कठोर वचन बोली—

पुरा दैवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे॥ १९॥

हे राम! पूर्वकाल में देवासुर-संग्राम में शत्रु के बाणों से पीड़ित और मेरे द्वारा रक्षित तुम्हारे पिता ने मेरी सेवाओं से प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे।

अत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव॥ २०॥

हे राम! उन दो वरों में से मैंने एक से तो 'भरत का राज्याभिषेक' और दूसरे से 'तुम्हारा आज ही दण्डकारण्य-गमन' माँगा है।

यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु॥ २१॥

हे नरश्रेष्ठ! यदि तुम अपने पिता को और अपने-आपको सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करना चाहते हो तो मैं जो कुछ कहूँ उसे सुनो।

सन्निदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम्।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च॥ २२॥

तुम पिता की आज्ञा के पालन में स्थिर तत्पर रहो। जैसा कि उन्होंने प्रतिज्ञा की है—तुम्हें चौदह वर्ष के लिए वन में चले जाना चाहिए।

भरतस्त्वभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम्।
त्वदर्थे विहितं राजा तेन सर्वेण राघव॥ २३॥

हे राम! महाराज दशरथ ने तुम्हारे राज्याभिषेक के लिए जो सामग्री एकत्र कराई है उससे भरत का राज्याभिषेक हो।

सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
अभिषेकमिमं त्यक्त्वा जटाजिनधरो वस॥ २४॥

तुम इस अभिषेक को त्याग कर तथा जटा और मृगचर्म धारण कर चौदह वर्ष तक दण्डक वन में वास करो।

भरतः कोसलपुरे प्रशास्तु वसुधामिमाम्।
नानारत्न-समाकीर्णां सवाजिरथकुञ्जराम्॥ २५॥

भरत कोसलपुर में रहकर विभिन्न प्रकार के रत्नों से भरपूर तथा घोड़े, रथ और हाथियों सहित इस राज्य का प्रशासन करे।

एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः।
शोक-संक्लिष्ट-वदनो न शक्नोति निरीक्षितुम्॥ २६॥

यही कारण है कि महाराज करुणा से पूर्ण हैं, शोक से उनका मुख शुष्क हो रहा है और वे तुम्हारी ओर देख भी नहीं सकते।

एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्॥ २७॥

हे रघुनन्दन! तुम महाराज की इस प्रतिज्ञा को

---

१. हनुमन्नाटक में इस सम्बन्ध में एक सुन्दर श्लोक है—
द्विः शरं नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते॥
—हनुम० १।४८

राम दो बार बाण को धारण नहीं करते, अर्थात् दो बार एक बाण को नहीं चलाते अथवा एक ही बाण से शत्रु का काम तमाम कर देते हैं। राम दो बार आश्रितों को स्थापित नहीं करते, अर्थात् एक ही बार भली प्रकार यथास्थान नियुक्त कर देते हैं। वे याचकों को दो बार नहीं देते, अर्थात् एक ही बार में दरिद्रों के दारिद्र्य का नाश कर देते हैं। राम दो बातें नहीं कहते, अर्थात् एक बार कही हुई प्रतिज्ञा का पालन करते हैं।

पूर्ण करो। राम! महान् सत्य के पालन द्वारा तुम महाराज का उद्धार करो।

इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां
न चैव रामः प्रविवेश शोकम्।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो
राजा तु पुत्रव्यसनाभितप्तः॥ २८॥

कैकेयी के इस प्रकार के कठोर वचन बोलने पर भी श्रीराम को कोई शोक नहीं हुआ, परन्तु महाराज दशरथ जो पहले ही दुःखी थे, राम के सम्भावित वियोग के कारण होनेवाले दुःख से अति व्याकुल हुए।

◀ षोडशः सर्गः ▶ (१६)

राम की प्रतिज्ञा—

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम्।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत्॥ १॥

शत्रु-संहारक श्रीराम मृत्यु के समान पीड़ा-दायक कैकेयी के उस अप्रिय वचन को सुनकर तनिक भी दुःखी न हुए और उससे बोले—

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाजिनधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्॥ २॥

''बहुत अच्छा'' ऐसा ही होगा। महाराज की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए मैं जटा और वल्कल वस्त्र धारण कर अभी नगर को छोड़कर वन को जाऊँगा।

परन्तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः।
नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः॥ ३॥

किन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि अजेय तथा शत्रु-संहारक महाराज पूर्ववत् मुझसे बोलते क्यों नहीं।

अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहतीव मे।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्॥ ४॥

एक मानसिक दुःख मेरे हृदय को बुरी तरह से जला-सा रहा है कि महाराज ने भरत के अभिषेक के विषय में स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहा।

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥ ५॥

महाराज की तो बात ही क्या मैं तो तेरे कहने से ही प्रसन्नतापूर्वक भाई भरत के लिए राज्य ही नहीं, अपितु सीता, अपने प्राण, इष्ट और धन सब कुछ वार सकता हूँ।

सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकेयी।
प्रस्थानं श्रद्दधाना हि त्वारयामास राघवम्॥ ६॥

श्रीराम के इस वचन को सुन कैकेयी अति प्रसन्न हुई। राम के वनगमन के सम्बन्ध में विश्वस्त होकर वह श्रीराम को शीघ्रता करने के लिए प्रेरित करने लगी।

तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम्।
राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि॥ ७॥

हे राम! तुम वन जाने को उत्सुक हो तो विलम्ब ठीक नहीं। तुम शीघ्र ही वन की यात्रा आरम्भ करो।

व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते।
नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम्॥ ८॥

महाराज स्वयं तुमसे वन जाने के लिए नहीं कह रहे हैं, इसका कारण केवल लज्जा है, यह कोई बात नहीं। तुम इस चिन्ता को मन से निकाल दो।

यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादभित्वरन्।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा॥ ९॥

हे राम! जब तक तुम नगर से वन को नहीं चले जाते तब तक महाराज न स्नान करेंगे और न भोजन ही करेंगे।

धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः।
मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन् पर्यङ्के हेमभूषिते॥ १०॥

कैकेयी के इन वचनों को सुनकर महाराज 'तुझे धिक्कार, शोक' यह कहते हुए और अत्यन्त शोक-पीड़ित हो तथा निःश्वास छोड़ते हुए मूर्च्छित होकर स्वर्ण-मण्डित पलंग पर गिर पड़े।

रामोऽप्युत्थाय राजानं कैकेय्याऽभिप्रचोदितः।
कशयेवाहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः॥ ११॥

श्रीराम ने महाराज दशरथ को उठाया और कैकेयी द्वारा प्रेरित चाबुक से आहत घोड़े की भाँति के वन जाने के लिए शीघ्रता करने लगे।

तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोपमम्।
श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्॥ १२॥

भावी जीवन में घोर दुःखों को उत्पन्न करने-वाले दुष्टा कैकेयी के उन अप्रिय वचनों को सुनकर भी राम व्यथित नहीं हुए। वे कैकेयी से बोले—

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम्॥ १३॥

हे देवि! मैं धन–राज्यादि-ऐश्वर्य का आकांक्षी होकर संसार में नहीं रहना चाहता। मुझे तो आप केवल ऋषियों के समान धर्मनिष्ठ समझें।

यदत्रभवतः किञ्चिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत्॥ १४॥

यदि मैं अपने प्राण देकर भी पूज्य पिताजी का अभीष्ट कार्य कर सकूँ तो उस कार्य को किया हुआ ही समझो, अर्थात् पिताजी को प्रसन्न करने के लिए तो मैं प्राण भी दे सकता हूँ, वन जाने की तो बात ही क्या है!

न ह्यतो धर्माचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥ १५॥

पिताजी की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करने से बढ़कर संसार में कोई धर्माचरण है ही नहीं।

अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम्।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश॥ १६॥

पूज्य पिताजी के न कहने पर भी मैं आपके ही आदेश से चौदह वर्ष तक निर्जन वन में वास करूँगा।

न नूनं मयि कैकेयि किञ्चिदाशंससे गुणान्।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥ १७॥

हे सती! कैकेयि! मेरे लिए आप पिताजी से भी अधिक पूज्य हैं, परन्तु आप मेरे स्वभाव (माता-पिता की आज्ञा पालन) को नहीं जान पाईं। यदि जानतीं तो ऐसी तुच्छ बात पिताजी से न कहतीं।

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम्।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम्॥ १८॥

अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मेरे दण्डक वन जाने में इतनी ही देर है कि मैं माता कौसल्या से आज्ञा ले लूँ और सीताजी को समझा दूँ।

भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः॥ १९॥

आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे भरत ठीक प्रकार से राज्य का पालन करें और पिताजी की सेवा शुश्रूषा करें, क्योंकि पुत्र के लिए यही सनातन धर्म है।

स रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखहतः पिता।
शोकादशक्नुवन्बाष्पं प्ररुरोद महास्वनम्॥ २०॥

अत्यधिक दुःख से आहत महाराज दशरथ श्रीराम के इन वचनों को सुनकर शोक के कारण कुछ बोल तो न सके, परन्तु वे फूट-फूट कर रोने लगे।

वन्दित्वा चरणौ रामो विसंज्ञस्य पितुस्तदा।
कैकेय्याश्चाप्यनायार्या निष्पपात महाद्युतिः॥ २१॥

महातेजस्वी श्रीराम ने मूर्च्छित पिता के चरणों की वन्दना की, फिर अनार्या कैकेयी के चरण स्पर्श किये।

स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम्।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृज्जनम्॥ २२॥

पिताजी और कैकेयी की प्रदक्षिणा करके तथा अन्तःपुर से बाहर निकल कर श्रीराम ने अपने इष्ट-मित्रों को देखा।

तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनु जगाम ह।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्धनः[१] ॥ २३ ॥

श्रीराम के पीछे पीछे सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले, अत्यन्त क्रुद्ध तथा आँखों में आँसू भरे हुए लक्ष्मणजी भी चले।

न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥ २४ ॥

राज्याभिषेक न होने के कारण सहज कान्तियुक्त, लोकप्रिय श्रीराम की मुख-द्युति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। जिस प्रकार चन्द्रक्षय= कृष्णपक्ष में चन्द्रमा का निरन्तर क्षीण होना शीतल-किरण चन्द्रमा के सौन्दर्य और लोकप्रियता को कम नहीं कर पाता इसी प्रकार राज्य-नाश होने पर भी श्रीराम की शोभा पूर्ववत् ही थी।

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥ २५ ॥

यद्यपि श्रीराम अखिल पृथिवी का राज्य छोड़कर वन जा रहे थे तथापि जीवन-मुक्त महा-योगीश्वर की भाँति उनके मन में किसी को किसी प्रकार का विकार दिखाई नहीं दिया।

सर्वो ह्यभिजनः श्रीमान् श्रीमतः सत्यवादिनः।
नालक्षयत रामस्य किञ्चिदाकारमानने[२] ॥ २६ ॥

श्रीराम के समीपस्थ लोगों ने भी जो सजधज कर अभिषेक में सम्मिलित होने के लिए आये थे, सत्यवादी श्रीराम के मुख पर कोई विकार नहीं देखा।

प्रतिषिध्य शुभं छत्रं व्यजने च स्वलंकृते।
विसर्जयित्वा स्वजनं रथं पौरांस्तथा जनान् ॥ २७ ॥
धारयन्मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च।
प्रविवेशात्मवान्वेश्म मातुरप्रियशंसिवान् ॥ २८ ॥

श्रीराम ने शुभ छत्र और अलंकृत चंवर हटवा दिया, फिर रथ को तथा अपने इष्ट मित्रों, पुरवासियों और बाहर के लोगों को विदा कर पिता के दुःख को मन में धारण किये हुए और अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर आत्मविजयी राम इस अप्रिय घटना को सुनाने के लिए माता कौसल्या के महल में प्रविष्ट हुए।

➤ सप्तदशः सर्गः ➤ (१७)

कौसल्या का क्रन्दन—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥ १ ॥

नित्य व्रत-परायण कौसल्या उस समय रेशमी वस्त्र धारण किये हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निहोत्र कर रही थीं।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥ २ ॥

सदा माता को प्रसन्न करनेवाले पुत्र को चिरकाल पश्चात् आया देखकर माता कौसल्या प्रसन्न होकर उसकी ओर इस प्रकार दौड़ी जिस प्रकार घोड़ी अपने बछेरे को देखकर उसकी ओर दौड़ती है।

---

१. लक्ष्मणजी श्रीराम के साथ गये थे इसका उल्लेख १४। १७ में हो चुका है। श्रीराम अन्दर चले गये और लक्ष्मणजी शयनागार के बाहर खड़े होकर श्रीराम और कैकेयी के वार्तालाप को सुनते रहे। मूल में इस वार्तालाप के सुनने का उल्लेख नहीं है, परन्तु उक्त श्लोक से यह बात स्पष्ट है।

२. महर्षि वसिष्ठ ने श्रीराम की इस अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया है—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकार-विभ्रमः ॥

—अज्ञात

राज्याभिषेक के लिए बुलाये जाने पर और वनगमन का आदेश दिये जाने पर—दोनों स्थितियों में मैंने श्रीराम के मुखमण्डल पर कोई विकार नहीं देखा।

स मातरमभिक्रान्तमुपसंगृह्य राघवः।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामुपाघ्रातश्च मूर्धनि॥ ३॥

श्रीराम ने समीप आई माता के चरण छुए। माता ने उसके दोनों हाथ पकड़ उसे हृदय से लगाया और उसका सिर सूँघा।

तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः।
कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः॥ ४॥

तदनन्तर कौसल्या पुत्र-स्नेहवश दुर्जेय अपने पुत्र से ये हितकारी वचन बोली—

वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम्।
प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले॥ ५॥

हे पुत्र! तू धर्मशील, वृद्ध, महात्माओं और राजर्षियों की आयु और कीर्ति को प्राप्त कर तथा कुलोचित धर्म के पालन में सदा निरत रह।

सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव।
अद्यैव हि त्वां धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥ ६॥

हे राम! तुम अब सत्यप्रतिज्ञ महाराज के दर्शन करो, क्योंकि वे धर्मात्मा आज तुम्हारा यौवराज्यपद पर अभिषेक करेंगे।

दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः।
मातरं राघवः किञ्चित् प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत्॥ ७॥

यह कहकर माता ने उसे भोजन करने के लिए कहा और बैठने के लिए आसन दिया। श्रीराम उस आसन का स्पर्शकर और हाथ जोड़कर बोले—

देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम्।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च॥ ८॥

हे देवि! आपके लिए सीता और लक्ष्मण के लिए जो महान् भय उपस्थित हो गया है निश्चय ही आप उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानतीं।

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे।
विष्टारासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः॥ ९॥

मैं तो अब दण्डक वन में जा रहा हूँ, अतः तब इस आसन से मेरा क्या प्रयोजन? अब तो मेरे लिए कुशासन पर बैठने का समय आ गया है।

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
स्वादूनि हित्वा भोज्यानि फलमूलकृताशनः[१]॥ १०॥

अब मैं स्वादु पदार्थों को छोड़कर कन्द, मूल एवं फलों से जीवन-निर्वाह करते हुए चौदह वर्ष तक घोर निर्जन वन में वास करूँगा।

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति।
मां पुनर्दण्डकारण्ये विवासयति तापसम्॥ ११॥

महाराज दशरथ भाई भरत को युवराज पद दे रहे हैं और मुझे तापस वेष बनाकर वन में रहने की आज्ञा दी है।

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता॥ १२॥

श्रीराम के इन वचनों को सुनकर देवी कौसल्या कुल्हाड़े से काटी हुई वृक्ष की डाली की भाँति सहसा भूमि पर गिर पड़ी—मानो आकाश से कोई तारा गिर पड़ा हो।

तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्॥ १३॥

कटे कदली-स्तम्भ के समान भूमि पर पड़ी हुई, सुखों के योग्य चेतना-शून्य माता कौसल्या को राम ने झट उठाकर बैठाया।

सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे॥ १४॥

जो कौसल्या सुख पाने योग्य थी उसने दुःखी हो लक्ष्मण को सुनाते हुए पास बैठे पुरुषसिंह श्रीराम से कहा—

यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः॥ १५॥

हे राम! यदि तू इस वियोग-जन्य शोक के लिए उत्पन्न ही न होता तो सन्तानहीन होने की ग्लानि ही

१. पश्चिमोत्तरीय संस्करण में यही पाठ है और यही पाठ उचित भी है।

मन में रहती। यह पुत्र वियोग जन्य दु:ख तो न देखना पड़ता।

एक एव हि वन्ध्याया: शोको भवति मानस:।
अप्रजाऽस्मीति सन्तापो न ह्यन्य: पुत्र विद्यते॥ १६॥

क्योंकि वन्ध्या को केवल एक ही मानसिक दु:ख होता है कि मैं नि:सन्तान हूँ परन्तु पुत्र! उसे अन्य कोई सन्ताप तो नहीं होता।

अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम्।
कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविकाम्॥ १७॥

हे राम! पूर्णिमा के चन्द्रमा की छटा के समान शोभायमान तेरे मुखड़े को न देखकर मैं अभागी किस प्रकार अपना दीन जीवन बिताऊँगी।

स्थिरं तु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते।
प्रावृषीव महानद्या: स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा॥ १८॥

मेरा यह हृदय बड़ा कठोर जान पड़ता है जो कि वर्षाकाल में महानदी के नये जल से छूते हुए किनारे के समान टूट फूट नहीं जाता।

स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं
न भिद्यते यद् भुवि नावदीर्यते।
अनेन दु:खेन च देहमर्पितं
ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते॥ १९॥

निश्चय ही मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है जो ऐसे दु:ख से युक्त होने पर भी फटता नहीं है। दु:ख से सारा शरीर व्याप्त है तो भी यह कटकर भूमि पर नहीं गिरता। इससे यही निश्चय होता है कि असमय में किसी को मृत्यु भी उठाकर नहीं ले जाती।

❮ अष्टादश: सर्ग: ❯ (१८)

लक्ष्मण का आक्रोश—

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम्।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वच:॥ १॥

इस प्रकार विलाप करती हुई राम-माता कौसल्या जी से दु:खी लक्ष्मण यह समयोचित वचन बोले—

न रोचते ममाप्येतदार्ये यद्राघवो वनम्।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत्स्त्रिया वाक्यवशंगत:॥ २॥

आर्ये! मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती कि स्त्री के वशवर्ती महाराज के कहने से श्रीराम राजलक्ष्मी को छोड़कर वन चले जायें।

नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम्।
येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघव:॥ ३॥

मुझे श्रीराम का कोई ऐसा अपराध या दोष दिखाई नहीं देता जिससे उन्हें वनवास के लिए राष्ट्र से निकाला जाये।

न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नर:।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि दोषमुदाहरेत्॥ ४॥

मैं लोक में किसी मित्र या शत्रु को भी नहीं देखता जो पीठ पीछे भी उनका दोष बतला सके।

देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम्।
अवेक्षमाण: को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात्॥ ५॥

देवतुल्य, सरल स्वभाव, जितेन्द्रिय, शत्रुओं पर भी कृपा करनेवाले पुत्र को पाकर कौन धर्मात्मा पिता उसको अकारण छोड़ देगा?

तदिदं वचनं राज्ञ: पुनर्बाल्यमुपेयुष:।
पुत्र: को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन्॥ ६॥

ऐसी बालबुद्धि रखनेवाले राजा के वनगमन रूपी आदेश को राजनीति-विशारद कौन पुत्र स्वीकार कर सकता है?

यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नर:।
तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम्॥ ७॥

(फिर लक्ष्मणजी श्रीराम को सम्बोधित करते हुए बोले) हे भाई! लोगों में इस समाचार के फैलने से पूर्व ही आप मेरे साथ मिलकर इस राज्य को अपने

अधीन कर लें।

मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः॥ ८॥

हे राघव! जब मैं साक्षात् मृत्यु के समान धनुष हाथ में लेकर आपकी रक्षा करूँगा, फिर किसकी शक्ति है जो आपकी ओर आँख उठाकर भी देख सके?

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये॥ ९॥

हे पुरुषपुङ्गव! यदि कोई विरोध में खड़ा होगा तो मैं तीक्ष्ण बाणों से सारी अयोध्या को मनुष्यों से शून्य कर दूँगा।

भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वाऽस्य हितमिच्छति।
सर्वानेतान्वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते॥ १०॥

जो भरत के पक्षपाती अथवा हितैषी हैं मैं उन सभी को मार डालूँगा। मैं कोमल नहीं बनूँगा, क्योंकि सीधा-सरल व्यक्ति सदा ही दबाया जाता है।

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या स दुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसङ्गं वध्यतां वध्यतामपि॥ ११॥

यदि कैकेयी द्वारा उकसाये जाने पर हमारे दुष्ट पिता हमारे शत्रु बन जायें तो अवध्य होने पर भी निःसंकोच होकर उन्हें मार डालना चाहिए।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ १२॥

यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्तव्या-कर्तव्य को भूल जाये और उल्टे मार्ग पर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना चाहिए।

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥ १३॥

(लक्ष्मणजी पुनः कौसल्याजी से बोले—) हे देवि! मैं सत्य की, धनुष की, अपने दान की तथा इष्ट-अग्निहोत्र की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं हर प्रकार से श्रीराम का अनुरागी हूँ।

दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥ १४॥

हे देवि! श्रीराम जलती हुई अग्नि में अथवा वन में जहाँ भी प्रवेश करेंगे आप मुझे वहाँ पहले से ही विद्यमान देखेंगी।

हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु॥ १५॥

जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार मैं अपने पराक्रम से आपके सारे कष्टों को अभी नष्ट किये डालता हूँ, आप और श्रीराम देखते रहें।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः।
उवाच रामं कौसल्या रुदन्ती शोकलालसा॥ १६॥

महात्मा लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर शोकाकुल कौसल्या रोती हुई श्रीराम से बोली—

भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते॥ १७॥

हे वत्स! अपने भाई लक्ष्मण की बात तूने सुन ली। अब जो तुझे उचित जान पड़े सो कर।

न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्।
विहाय शोकसन्तप्तां गन्तुमर्हसि मामितः॥ १८॥

मेरी सपत्नी कैकेयी की अधर्मयुक्त बात सुनकर तुझे मुझ शोक-सन्तप्ता अपनी माता को छोड़कर यहाँ से जाना उचित नहीं।

धर्मज्ञ यदि धर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम्॥ १९॥

हे धर्मज्ञ! यदि तू धर्मिष्ठ है और तुझे धर्माचरण ही करना है तो यहाँ रहकर मेरी शुश्रूषा कर, क्योंकि माता की सेवा से बढ़कर उत्तम और कौन-सा धर्म है?

यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
त्वां नाहमनुजानामि न गन्तव्यमितो वनम्॥ २०॥

जैसे तेरे लिए महाराज पूज्य हैं वैसे ही उनसे अधिक मैं पूज्या हूँ। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं

देती, अत: तुम्हें वन में नहीं जाना चाहिए।

त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा।
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम्॥ २१॥

तेरे वियोग में न तो मुझे सुख है और न जीने की अभिलाषा है। तेरे साथ रहकर मेरे लिए तिनके खाकर रहने में भी भलाई है।

यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम्॥ २२॥

यदि तू मुझ शोक सन्तप्ता को यहाँ छोड़कर वन में चला गया तो मैं अनशन करके बैठ जाऊँगी और अपने प्राण दे दूँगी।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

राम का कौसल्या को समझाना—

विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम्॥ १॥

इस प्रकार विलाप करती हुई दीन दु:खी कौसल्या को देख धर्मात्मा श्रीराम उससे ये धर्मयुक्त वचन बोले—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्॥ २॥

हे माता! मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन कर सकूँ, अत: मैं तुझे प्रणाम कर, तुझे प्रसन्न कर और तेरी अनुमति ले वन जाना चाहता हूँ।

तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत्।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ ३॥

माता से इस प्रकार कहने के पश्चात् वक्ताओं में श्रेष्ठ और धनुष-धारियों में लब्धकीर्ति श्रीराम लक्ष्मणजी से बोले—

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम्।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम्॥ ४॥

हे लक्ष्मण! मेरे प्रति तुम्हारा जो अत्यधिक स्नेह है उसे मैं जानता हूँ। तुम्हारे पराक्रम, बल और अजेय तेज को भी जानता हूँ।

मम मातुर्महद्दुःखमतुलं शुभलक्षण।
अभिप्रायमविज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च॥ ५॥

हे शुभलक्षण वीर! मेरी माता तो धर्म और आत्मसंयम का रहस्य न जानने के कारण महाशोक से कातर हो रही हैं (तू तो सब कुछ जानता है, फिर माताजी की हाँ-में-हाँ मिलाकर धर्म विरुद्ध बात क्यों कहता है?)।

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमेतच्च पितुर्वचनमुत्तमम्॥ ६॥

लोक में धर्म ही परम पुरुषार्थ है। धर्म में ही सत्य प्रतिष्ठित है। पिताजी की आज्ञा भी धर्मानुमोदित होने के कारण माता की आज्ञा से उत्कृष्ट है, अत: पितृ-आज्ञा ही पालनीय है।

संश्रुत्य पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता॥ ७॥

हे वीर! धर्मरूपी फल की इच्छा रखनेवाले पुरुष को पिता, माता या ब्राह्मण की आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा करके उससे पीछे नहीं हटना चाहिए।

सोऽहं न शक्ष्यामि पितुर्नियोगमतिवर्तितुम्।
पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याऽहं प्रचोदितः॥ ८॥

इसलिए मैं पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। हे वीर! पिता के आदेश से ही कैकेयी ने यह बात मुझे कही हैं।

तदेनां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम्।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम्॥ ९॥

अत: हे लक्ष्मण! क्षात्रधर्म का अनुगमन करने-वाली इस दुष्ट बुद्धि को तू छोड़ दे। धर्म का आश्रय

ले, उग्रता का नहीं। मेरी बुद्धि का अनुगमन कर।

तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद् भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः।
उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसा नतः॥ १०॥

श्रीराम स्नेहपूर्वक लक्ष्मण को इस प्रकार समझा कर, फिर हाथ जोड़ और सिर झुका कर कौसल्याजी से बोले—

अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम्।
शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे॥ ११॥

हे देवि! अब मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिए। आपको मेरे प्राणों की शपथ है। आप मेरे लिए दुःखी न हों और मेरे लिए स्वस्तिवाचन करें।

शोकः सन्धार्यतां मातर्हृदयेसाधु मा शुचः।
वनवासादिहैष्यामि पुनः कृत्वा पितुर्वचः॥ १२॥

हे माता! शोकातुर पिता को समझा-बुझाकर शान्त कर और तू स्वयं भी किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। मैं पिताजी की आज्ञा पूर्ण कर वन से घर लौट आऊँगा।

त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः॥ १३॥

आपको, मुझे, वैदेही को, लक्ष्मण और सुमित्रा को पिताजी की आज्ञा में रहना चाहिए, यही सनातन धर्म=शिष्टाचार है।

अम्ब संहृत्य सम्भारान्दुःखं हृदि निगृह्य च।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम्॥ १४॥

हे माता! अभिषेकार्थ एकत्र सामग्रियों को एक ओर हटा दे। अपने दुःख को हृदय में धारण कर और मेरे वनवास के औचित्य को समझा कर मझे वन जाने की अनुमति प्रदान कर।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

दैव और पुरुषार्थ पर राम-लक्ष्मण संवाद—

अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम्।
श्वसन्तमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम्॥ १॥
आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम्।
उवाचेदं स धैर्येण धारयन् सत्त्वमात्मवान्॥ २॥

श्रीराम के अभिषेक में विघ्न उत्पन्न होने से दुःखी, अत्यधिक प्रेम के कारण राम के वियोग को सहने में असमर्थ, कैकेयी पर क्रुद्ध हो हाथी के समान श्वास लेते हुए, रोष से चढ़ी हुई आँखों-वाले अपने प्रिय भाई और हितैषी मित्र लक्ष्मण को अपने पास बुलाकर आत्मवान् राम धैर्य से चित्त को धारण किये हुए उससे बोले—

निगृह्य रोषं शोकं च धैर्यमाश्रित्य केवलम्।
अवमानं निरस्येमं गृहीत्वा हर्षमुत्तमम्॥ ३॥

हे भाई! अब तुम क्रोध और शोक को त्याग कर धैर्य धारण करो और मेरे वनगमनरूपी अपमान को भूलकर प्रसन्न हो जाओ।

कृतान्तस्त्वेव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने।
राज्यस्य च वितीर्णस्य पुनरेव निवर्तने॥ ४॥
कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम पीडने।
यदि भावो न दैवोऽयं कृतान्तविहितो भवेत्॥ ५॥

हे लक्ष्मण! मेरे वनवास और पिता द्वारा प्रदत्त राज्य के छिन जाने में दैव=भाग्य को ही कारण समझो। इसमें किसी का कुछ बस नहीं। यदि दैव मेरे प्रतिकूल न होता तो मुझे पीड़ा देने के लिए कैकेयी की बुद्धि कभी ऐसी नहीं होती।

कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान्।
यस्य न ग्रहणं किञ्चित्कर्मणोऽन्यत्र दृश्यते॥ ६॥

हे लक्ष्मण! दैव से कौन युद्ध कर सकता है, क्योंकि दैव का प्रत्यक्ष कर्मों के फल-भोग के रूप में ही होता है और किसी रूप में नहीं।

सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ।
यच्च किञ्चत्तथा भूतं ननु दैवस्य कर्म तत्[१] ॥ ७॥

देखो! सुख दुःख, भय क्रोध, लाभ हानि और जीवन-मरण तथा अन्य बातें जो इन्हीं के समान हैं—ये सब दैव=भाग्य के अधीन हैं।

ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रपीडिताः।
उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ॥ ८॥

कठोर तप करनेवाले ऋषि भी दैव के द्वारा प्रेरित होकर कठोर तपस्या से अर्जित नियमों का त्याग कर काम-क्रोधादि के कारण ऋषिपद से भ्रष्ट हो जाते हैं।

असङ्कल्पितमेवेह यदकस्मात्प्रवर्तते।
निवर्त्यारम्भमारब्धं ननु दैवस्य कर्म तत्॥ ९॥

जिस कार्य को करने का कभी विचार भी न किया हो और वह अकस्मात् हो जाये तथा प्रयत्न द्वारा आरम्भ किया हुआ कार्य अनायास रुक जाये— इसी को दैव कहते हैं।

मा च लक्ष्मण सन्तापं कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये।
राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः॥ १०॥

हे लक्ष्मण! मुझे राज्याधिकार न मिलने के लिए तुम सन्ताप मत करो, क्योंकि विवेचन करने से राज्य और वनवास में कुछ भी अन्तर नहीं, अपितु मेरे लिए तो वनवास ही महान् कल्याणकारी है।

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽग्रजमब्रवीत्।
अस्थाने सम्भ्रमो यस्य जातो वै सुमहानयम्॥ ११॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी अपने भाई राम से बोले—धर्मदोष के प्रसङ्ग से आपको यह बड़ा भ्रम उत्पन्न हो गया है।

यथा दैवमशौण्डीरं शौण्डीर क्षत्रियर्षभ।
किं नाम कृपणं दैवमशक्तमभिशंससि॥ १२॥

हे शौण्डीर-दैव की प्रतिकूलता को दूर करने में समर्थ क्षत्रियश्रेष्ठ! आप सामर्थ्यहीन, अशक्त एवं तुच्छ दैव की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

विक्लबो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते॥ १३॥

जो पौरुषहीन और कायर पुरुष है वही भाग्य का अनुवर्तन करता है, वीर और धीर पुरुष दैव का अनुसरण नहीं करते।

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुष सोऽवसीदति॥ १४॥

जो पुरुष अपने पुरुषार्थ से दैव को दबा सकता है, उसका न तो दैव कुछ बिगाड़ सकता है और न वह कभी दुःखी होता है।

द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च।
दैव मानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति॥ १५॥

आज लोग भाग्य और पुरुषार्थ के पराक्रम को देखें। दैव और पुरुषार्थ में कौन बलवान् है, आज इसका निर्णय हो जायेगा।

अद्य मत्पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः।
यद्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम्॥ १६॥

जिन लोगों ने दैव के कारण आपके राज्याभिषेक को नष्ट होते देखा है वे आज मेरे पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को भी नष्ट होते हुए देखेंगे।

न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः॥ १७॥

मेरी ये दोनों भुजाएँ शोभा के लिए नहीं हैं, न मेरा यह धनुष शृङ्गार करने के लिए कोई आभूषण ही है। मेरी तलवार केवल कमर में लटकाने के लिए नहीं है और ये बाण खम्भे की भाँति सहारा लेने के लिए नहीं है। ये सब तो शत्रुओं का मान मर्दन करने के लिए हैं।

---

१. गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक अन्य प्रसंग में इसका अनुवाद यूँ किया है--

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणे प्रगृहीतशरासने।
कथं पुरुषमानी स्यात्पुरुषाणां मयि स्थिते॥ १८॥

जब मैं गोह की खाल के दस्ताने पहनकर धनुष हाथ में लूँगा तब मैं देखूँगा कि वह कौन-सा अभिमानी वीर है जो मेरा सामना करता है।

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां—
तवासुहृत्प्राणयशः सुहृज्जनैः।
यथा तवेयं वसुधा वशे भवेत्
तथैव मां शाधि तवास्मि किङ्करः॥ १९॥

बताइए आपका कौन-सा शत्रु आज मेरे द्वारा मारा जाकर अपने प्राण, यश और मित्रों से रहित हो जाए। जिस प्रकार इस पृथिवी का राज्य आपके हस्तगत हो जाए मुझे वैसी ही आज्ञा दीजिए। मैं आपका दास हूँ।

विमृज्य बाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत्
स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः।
उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं
निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथे॥ २०॥

तब रघुकुल की कीर्ति को बढ़ानेवाले राम लक्ष्मण के आँसू पोंछकर एवं उन्हें बार बार सान्त्वना देकर बोले—हे सौम्य! मैं माता-पिता की आज्ञा के अधीन हूँ, यही सन्मार्ग है।

एकविंशः सर्गः (२१)

माता द्वारा वन-गमन की अनुमति—

तं समीक्ष्य त्ववहितं पितुर्निर्देशपालने।
कौसल्या बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत्॥ १॥

जब कौसल्या ने देखा कि धर्मिष्ठ राम पिता की आज्ञा-पालन में दृढ़ हैं तो वे रुँधे हुए कण्ठ से बोलीं—

अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः।
मयि जातो दशरथात्कथमुञ्छेन वर्तयेत्॥ २॥

जिसने कभी दुःख नहीं सहा वह धर्मात्मा, सबसे प्रिय बोलनेवाला, दशरथ द्वारा मेरे उदर से उत्पन्न राम वन में उञ्छवृत्ति[1] से जीवन निर्वाह कैसे करेगा?

यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते।
कथं स भोक्ष्यते नाथो वने मूलफलान्ययम्॥ ३॥

जिसके नौकर-चाकर भी मिष्टान्न और उत्तम भोजन खाते हैं वह राम वन में कन्द-मूल फल कैसे खायेगा?

नूनं तु बलवाँल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन्।
लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि॥ ४॥

निश्चय ही भाग्य ही लोक में बलवान् है तभी तो लोक में सबका प्रिय होकर भी तुझे वन में जाना पड़ रहा है।

त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान्।
प्रधक्ष्यति यथा कक्षं चित्रभानुर्हिमात्यये॥ ५॥

हे पुत्र! तुझसे विहीन मुझे यह वनगमन रूप महान् शोकाग्नि उसी प्रकार जलाकर भस्म कर देगी जैसे हेमन्त ऋतु के बीतने पर गर्मी में प्रचण्ड किरणवाला सूर्य घास को जला देता है।

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति।
अहं त्वानुऽगमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि॥ ६॥

वत्स! क्या गाय अपने बछड़े के पीछे नहीं जाती? जैसे जहाँ बछड़ा जाता है वहीं गाय जाती है उसी प्रकार मैं भी तेरे पीछे-पीछे जहाँ कहीं तू जायेगा, वहीं चलूँगी।

तथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम्॥ ७॥

१. खेत कट जाने के पश्चात् जो दाने पड़े रह जाते हैं, उन्हें चुन-चुन कर उनसे जीवन निर्वाह करना उञ्छवृत्ति कहलाती है।

माता द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर पुरुष श्रेष्ठ राम अत्यन्त दु:खित अपनी माता से बोले—

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति॥ ८॥

हे माता! कैकेयी ने महाराज को धोखा दिया है, मैं वन में जा रहा हूँ और आप भी उन्हें त्याग देंगी तो वे निश्चय ही जीवित न बचेंगे।

भर्तुः किल परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसाऽपि विगर्हितः॥ ९॥

पति का परित्याग करना स्त्री के लिए सबसे बड़ी क्रूरता है, अत: ऐसे निन्द्य कर्म की तो आपको मन में भी कल्पना नहीं करनी चाहिए।

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः।
शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः॥ १०॥

जब तक मेरे पिता महाराज दशरथ जीवित हैं तब तक आप उनकी सेवा करें, यही परम्परागत सनातन धर्म है।

मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः॥ ११॥

हे देवि! मुझे और आपको पिताजी की आज्ञा अवश्य माननी चाहिए, क्योंकि वे आपके पति हैं, गुरु हैं, श्रेष्ठ हैं और सबके स्वामी एवं पूज्य हैं।

जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः॥ १२॥

जब तक स्त्री जीये, उसे उचित है कि वह अपने पति को ही अपना देवता और स्वामी समझे। इस समय आपके और मेरे स्वामी महाराज ही हैं।

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा।
भर्तारं नानुवर्तेत सा तु पापगतिर्भवेत्॥ १३॥

जो श्रेष्ठ स्त्री व्रतोपवास तो करती है, परन्तु अपने पति की सेवा नहीं करती वह पाप की भागिनी होती है।

भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
एष धर्मः पुरादृष्टो लोके वेदे श्रुतः स्मृतः॥ १४॥

पति की सेवा से नारी उत्तम स्वर्ग=सुख विशेष को प्राप्त होती है। स्त्रियों के लिए पति सेवा ही प्राचीन लोकाचार सिद्ध, वेद[1] और स्मृत्यनुकल[2] धर्म है।

एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत्॥ १५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर आँखों में आँसू भर, पुत्र-शोक से पीड़ित कौसल्या राम से कहने लगी—

गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः॥ १६॥

हे प्रिय पुत्र राम! जब तूने वन में जाने का दृढ़ निश्चय ही कर लिया है तो मुझमें शक्ति नहीं कि तुझे रोक सकूँ। हे वीर! सचमुच काल बहुत बलवान् है।

गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु तदा विभो।
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा॥ १७॥

पुत्र! निश्चिन्त होकर जाओ! हे तेजस्वी! तेरा सदा कल्याण हो। तेरे वन से लौट आने पर मैं दु:ख-रहित हो जाऊँगी।

---

१. वेद में कहा है—

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्॥

—अथर्व० १४।१।४२

मन की प्रसन्नता, सन्तान, उत्तम सौभाग्य, धन और सुख को चाहनेवाली हे स्त्री! तू पति की सेवा-शुश्रूषा द्वारा पति के धर्म-कार्यों में अनुकूल वर्तनेवाली होकर अमृताय=मोक्ष-सुख के साथ अपने को सम्बन्धित कर।

२. मनु महाराज ने लिखा है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतः नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

—मनु० ५।१५५

स्त्रियों के लिए पृथक् न कोई यज्ञ है, न व्रत और न उपवास। केवल पति की सेवा से ही वह घर में पूजित होती है।

यं पालयसी धर्मं त्वं धृत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥ १८॥

हे राघवशार्दूल! जिस धर्म का तुम नियमपूर्वक पालन कर रहे हो वही धर्म तुम्हारी सब ओर से रक्षा[१] करे।

राक्षसानां पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम्।
क्रव्यादानां च सर्वेषां मा भूत्पुत्रक ते भयम्॥ १९॥

हे पुत्र! राक्षस, पिशाच, भयंकर एवं क्रूर कर्म करनेवाले और मांसभक्षी जीवों से तुम्हें कोई भय न हो।

आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः।
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः॥ २०॥

तेरा मार्ग मङ्गल रूप हो और तेरा पराक्रम सिद्ध हो। आकाश और पृथिवी के पदार्थों से तेरी बार-बार रक्षा हो।

इतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना
समाप्य च स्वत्ययनं यथाविधि।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं
पुनः पुनश्चापि निपीड्य सस्वजे॥ २१॥

इस प्रकार आँखों से आँसू भरे हुए कौसल्या ने यथाविधि स्वस्तिवाचन को समाप्त कर राम की बार-बार प्रदक्षिणा की तथा उसे पकड़कर हृदय से लगाया।

तथा तु देव्या स कृतप्रदक्षिणो
निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः।
जगाम सीतानिलयं महायशाः।
स राघवः प्रज्वलितः स्वया श्रिया॥ २२॥

जब देवी कौसल्या राम की प्रदक्षिणा कर चुकीं तब श्रीराम ने भी बार-बार उनके चरण छुए, फिर अपनी कान्ति से दीप्त महायशस्वी राम सीताजी के घर गये।

❮ द्वाविंशः सर्गः ❯ (२२)

श्रीराम का सीता को हितोपदेश—

वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी।
तदेव हृदि तस्याश्च राजपुत्रं प्रतीक्षते॥ १॥

तपस्विनी सीताजी ने श्रीराम ने वनगमन आदि का वृत्तान्त अभी नहीं सुना था। उसके हृदय में तो राज्याभिषेक की ही बात थी। वह राम के आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

प्रविवेशाथ रामस्तु स्वं वेश्म सुविभूषितम्।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः॥ २॥

इतने ही में लज्जा से मुख नीचा किये हुए श्रीराम ने प्रसन्न जनों से परिपूर्ण एवं सुभूषित अपने गृह में प्रवेश किया।

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम्।
अपश्यच्छोकसन्तप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम्॥ ३॥

सीताजी शोक एवं चिन्ता से व्याकुल श्रीराम को देख काँपती हुई आसन से उठ खड़ी हुईं।

तां दृष्ट्वा सा हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः॥ ४॥

धर्मात्मा श्रीराम सीता को देख अपने मानसिक शोक के वेग को छिपा न सके और यह प्रकट हो

---

१. धर्म-पालन मनुष्य की रक्षा करता है। महर्षि मनु ने कहा है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥

—मनु० ८। १५

मारा हुआ धर्म मनुष्य को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, अतः धर्म का हनन=लोप नहीं करना चाहिए। ऐसा न हो कि मारा हुआ धर्म ही मार दे।

गया।

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम्।
आह दुःखाभिसन्तप्ता किमिदानीमिदं प्रभो॥ ५॥

श्रीराम के स्वेद से युक्त, शोकान्वित एवं कान्तिहीन मुख को देख स्वयं दुःख-संतप्त होकर सीताजी ने राम से पूछा—प्रभो! यह क्या हुआ?

इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः।
सीते तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम्॥ ६॥

सीताजी के ऐसे दुःख-पूर्ण वचन सुनकर राम बोले—हे सीते! पूज्य पिताजी ने मुझे वन जाने की आज्ञा दी है।

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया।
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम्॥ ७॥

मुझे चौदह वर्ष तक दण्डक वन में रहना पड़ेगा। निर्जन वन को प्रस्थान करने से पूर्व मैं तुम्हें मिलने के लिए आया हूँ।

भरतस्य समीपे तु नाहं कथ्यः कदाचन।
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्॥ ८॥

देखना! तुम भरत के समक्ष मेरी प्रशंसा कभी मत करना, क्योंकि ऐश्वर्य-सम्पन्न पुरुष दूसरे की स्तुति सहन नहीं कर सकते।

याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम्।
व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयानघे॥ ९॥

हे पापरहित कल्याणि! मेरे मुनियों द्वारा सेवित वन को चले जाने पर तुझे व्रत-उपवास[१] आदि पूर्वक रहना चाहिए, अर्थात् शृङ्गार आदि नहीं करना चाहिए।

काल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम नरेश्वरः॥ १०॥

प्रातःकाल उठकर यथाविधि सन्ध्या आदि कृत्यों से निवृत्त होकर मेरे पिता महाराज दशरथ को नित्य नमस्कार करना।

माता च मम कौसल्या वृद्धा सन्तापकर्शिता।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति॥ ११॥

मेरी माता कौसल्या एक तो वृद्धा हैं, दूसरे मेरे वनगमन से दुःखी हैं, अतः उनका सम्मान करना तू अपना धर्म समझना।

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः॥ १२॥

मेरी जो अन्य माताएँ हैं, उनकी भी तुम नित्य वन्दना करना। मेरी वे माताएँ भी स्नेह, सौहार्द एवं लालन पालन के कारण माता कौसल्या के समान ही हैं।

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥ १३॥

भाई भरत और शत्रुघ्न को जो मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं, तुम अपने भाई और पुत्र की तरह देखना।

विप्रियं न च कर्तव्यं भरतस्य कदाचन।
स राजा प्रभुश्चैव देशस्य च कुलस्य च॥ १४॥

तुम कभी भरत के विरुद्ध आचरण मत करना, क्योंकि वे देश के राजा और कुल के स्वामी हैं।

आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः।
राजानः सम्प्रसीदन्ति कुप्यन्ति विपर्यये॥ १५॥

देखो! शील से, अर्थात् अकुटिल भाव से आराधना और प्रयत्नपूर्वक सेवा किये जाने पर राजा लोग प्रसन्न होते हैं और इसके विपरीत आचरण करने से कुपित हो जाते हैं।

---

१. यह उपदेश धर्मशास्त्र के अनुकूल है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है—

क्रीडा शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका॥

—या० स्मृ० १।८४

जिसका पति परदेश गया हो उसे क्रीड़ा, शृङ्गार, नाटकादि देखना, दूसरों के साथ हँसी-मजाक करना और दूसरों के घर जाना छोड़ देना चाहिए।

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये
त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्।
तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम॥ १६॥

हे प्राणप्रिय! मैं तो वन जाता हूँ। हे भामिनि! तुम्हें यहीं अयोध्या में रहना होगा। मेरी तुम्हारे लिए यही शिक्षा है कि तुम ऐसा आचरण करना जिससे तुमसे कोई बुरा न माने।

➤ त्रयोविंशः सर्गः ➤ (२३)

सीताजी की वन-गमन के लिए याचना—

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत्॥ १॥

राम के ऐसा कहने पर प्राणप्रिया, प्रियवादिनी सीता ने स्नेहवश क्रुद्ध होकर पति से कहा—

किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम्।
त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरात्मज॥ २॥

हे श्रेष्ठ राजकुमार राम! आप यह कैसी हल्की बात कह रहे हैं, इसे सुनकर तो मुझे हँसी आती है।

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते॥ ३॥
भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि॥ ४॥

हे आर्यपुत्र! पिता, माता, भ्राता, पुत्र तथा पुत्र-वधू—ये सब अपने-अपने पुण्यों का भोग करते हुए अपने-अपने कृतकर्मानुकूल सुख-दुःख प्राप्त करते हैं, परन्तु हे नरकेसरी! पति के भाग्य को एक स्त्री (अर्द्धाङ्गिनी होने के कारण) ही भोगती है, इसलिए आपके वन जाने के आदेश के साथ मुझे भी वन जाने की आज्ञा मिल गई।

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥ ५॥

स्त्रियों के साथ लोक-परलोक में न पिता, न पुत्र, न भाई-बन्धु, न माता और न सखि-सहेलियाँ ही साथी होती हैं। स्त्रियों के लिए तो एक पति ही सर्वदा उनका सर्वस्व होता है।

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्॥ ६॥

हे राम! यदि आप आज ही दुर्गम वन को प्रस्थान करेंगे तो मैं कुश-कण्टकों को रौंदती हुई तुम्हारे आगे-आगे चलूँगी।

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु॥ ७॥

हे वीर! नित्य आपकी सेवा करती हुई तथा नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई मैं मधु तथा सौरभ-युक्त वनों में आपके साथ विहार करूँगी।

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती सह त्वया॥ ८॥

मैं वन में उत्पन्न फल-मूलों को खाकर ही अपना निर्वाह कर लूँगी। आपके साथ वन में रहते हुए मैं आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूँगी।

इच्छामि सरितः शैलान्पल्वलानि वनानि च।
द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता॥ ९॥

मैं आप जैसे बुद्धिमान् प्राणनाथ से रक्षित होकर झीलों, पर्वतों, तालाबों और वनों को सर्वत्र देखना चाहती हूँ।

हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः।
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण सङ्गता॥ १०॥

मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जैसे वीर पति के साथ मैं हंस और सारस पक्षियों से सेवित तथा सुन्दर खिली हुई कमलिनियों से युक्त सरोवरों को सुखपूर्वक देखूँ।

अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यं यतव्रता।
सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी॥ ११॥

हे विशालाक्ष! मैं यम नियमों आदि व्रतों का पालन करती हुई उनमें स्नान करूँगी और आनन्द-पूर्वक जलक्रीड़ा भी करूँगी।

एवं वर्षसहस्राणां शतं वाऽहं त्वया सह।
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि न हि मे मतः॥ १२॥

इस प्रकार आपके साथ चाहे सैकड़ों-सहस्रों वर्ष बीत जाये तो भी मुझे न जान पड़ेंगे। आपके साथ रहने के सुख के समक्ष मैं स्वर्ग-सुख को भी कुछ नहीं समझती।

स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव।
त्वया मम नरव्याघ्र नाहं तमपि रोचये॥ १३॥

हे नरकेसरी राम! आपके बिना यदि मुझे स्वर्ग में भी रहना पड़े तो मुझे पसन्द नहीं है।

अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं
मृगायुतं वानरवारणैर्युतम्।
वने निवत्स्यामि तथा पितुर्गृहे
तवैव पादावुपगृह्य संयता॥ १४॥

मैं आपके साथ उस दुर्गम वन में चलूँगी जो वानर, हाथी और अन्य वन-पशुओं से भरे हुए हैं। संयमपूर्वक आपके चरणों की सेवा करती हुई मैं वहाँ उसी प्रकार सुखपूर्वक वास करूँगी जिस प्रकार अपने पिता के घर में रहती थी।

➤ चतुर्विंशः सर्गः ➤ (२४)

श्रीराम द्वारा वन के कष्टों का वर्णन—

स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः।
न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन्॥ १॥

धर्मवत्सल श्रीराम वन के कष्टों का स्मरण कर धर्मज्ञा सीता के बहुत कहने पर भी उसे अपने साथ वन ले जाने को उद्यत नहीं हुए।

सान्त्वयित्वा पुनस्तां तु बाष्पपर्याकुलेक्षणाम्।
निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह॥ २॥

आँखों में आँसू भरी हुई सीताजी को सान्त्वना देते हुए धर्मात्मा श्रीराम ने उसे वन-गमन से रोकने के लिए कहा—

सीते महाकुलीनाऽसि धर्मे च निरता सदा।
इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम्॥ ३॥

हे सीते! तुम उच्चकुल में उत्पन्न और सदा धर्मपालन में लगी रहती हो, अतः तुम यहीं रहकर धर्म का आचरण करो जिससे मेरे मन को शान्ति प्राप्त हो।

सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाऽबले।
वने दोषा हि बहवो वसतस्तान्निबोध मे॥ ४॥

हे अबले सीते! जो मैं कहता हूँ तुम वैसा ही करो। वनवास में अनेक कष्ट होते हैं। मैं उन्हें बतलाता हूँ। तुम ध्यान से सुनो।

गिरिनिर्झरसम्भूता गिरिकन्दरवासिनाम्।
सिंहानां निनाददुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम्॥ ५॥

पहाड़ों की गुफाओं में रहनेवाले सिंहों की दहाड़ तथा पर्वतीय झरनों के गिरने से होनेवाले भयंकर शब्द सुनने में बड़े दुःखप्रद होते हैं। इसी कारण वन बहुत दुःखदायी है।

क्रीडमानाश्च विस्रब्धा मत्ताः शून्ये महामृगाः।
दृष्ट्वा समभिवर्तन्ते सीते दुःखमतो वनम्॥ ६॥

हे सीते! निर्जन वन में निःशंक होकर क्रीड़ा करनेवाले सिंहादि वन्य जन्तु, मनुष्य को देखते ही उन पर टूट पड़ते हैं, इसलिए वन बहुत दुःखदायी है।

सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यश्च दुस्तराः।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम्॥ ७॥

मगरों से युक्त अत्यन्त कीचड़वाली नदियाँ जिन्हें मतवाले हाथी भी पार नहीं कर सकते—जहाँ पर विद्यमान हैं ऐसे वन बहुत दुःखदायी हैं।

लता कण्टकसङ्कीर्णाः कृकवाकूपनादिताः।
निरपाश्च सुदुर्गाश्च मार्गा दुःखमतो वनम्॥ ८॥

प्रायः वनों के मार्ग पैरों में लिपट जानेवाली बेलों और पाँव में चुभ जानेवाले काँटों से परिपूर्ण होते हैं। वहाँ वनमुर्ग बोला करते हैं। मार्ग में जल नहीं मिलता और मार्ग भयंकर होते हैं, अतः वन बहुत दुःखदायी है।

सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयं भग्नासु भूतले।
रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखतरं वनम्॥ ९॥

वनों में श्रम से थके हुए व्यक्ति को रात्रि में भूमि पर अपने आप गिरे हुए पत्तों की शय्या पर सोना पड़ता है, इसलिए वन बहुत दुःखदायी है।

अहोरात्रं च सन्तोषः कर्तव्यो नियतात्मना।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम्॥ १०॥

हे सीते! वन में सायं-प्रातः वृक्षों से स्वयं गिरे हुए फल खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है, अतः वन कष्टदायक हैं।

उपवासश्च कर्तव्यो यथाप्रायेण मैथिलि।
जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारिणा॥ ११॥

हे मैथिलि! वन में यथाशक्ति उपवास भी करना पड़ता है और वस्त्रों के स्थान पर वृक्ष की छाल पहननी पड़ती है।

अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चात्र नित्यशः।
भयानि च महान्त्यत्र ततो दुःखतरं वनम्॥ १२॥

वनों में भयंकर आँधियाँ चलती हैं तथा घोर अन्धकार रहता है, भूख बहुत लगती है तथा अनेक प्रकार के भय होते हैं, अतः वन बहुत कष्टदायक है।

सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि।
चरन्ति पृथिवीं दर्पात्ततो दुःखतरं वनम्॥ १३॥

हे भामिनि! वन में विशालकाय अजगर बड़े दर्प के साथ घूमा करते हैं, इसलिए वन दुःखदायी है।

पतङ्गा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह।
बाधन्ते नित्यमबले तस्माद् दुःखतरं वनम्॥ १४॥

हे अबले! वहाँ कीट पतङ्ग, बिच्छू, पिस्सू तथा मच्छर नित्य सताया करते हैं, अतः वन बहुत क्लेशकारक है।

क्रोधलोभौ विमोक्तव्यौ कर्तव्या तपसे मतिः।
न भेतव्यं च भेतव्ये नित्यं दुःखमतो वनम्॥ १५॥

हे सीते! वन में क्रोध और लोभ को त्यागकर तप में मन लगाना पड़ता है और डरने योग्य वस्तुओं से भी निर्भय रहना होता है, इसलिए वन दुःखप्रद है।

तदलं ते वनं गत्वा क्षमं न हि वनं तव।
विमृशन्निह पश्यामि बहुदोषकरं वनम्॥ १६॥

तुम वन में जाने का विचार छोड़ दो, क्योंकि वन तुम्हारे रहने योग्य स्थान नहीं है। मैं जब विचार करता हूँ तब मुझे वन में कष्ट-ही-कष्ट दिखाई पड़ते हैं।

➤ पञ्चविंशः सर्गः ➤ (२५)

श्रीराम द्वारा सीता को वन-गमन की अनुमति—

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता।
प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

राम के इन वचनों को सुन दुःखी सीता ने आँसू बहाते हुए मन्द-स्वर से कहना आरम्भ किया—

ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति।
गुणानित्येव तान्वीक्षे तव स्नेहपुरस्कृताम्॥ २॥

हे राम! वनवास में होनेवाले जिन दोषों का आपने वर्णन किया है तुम्हारे स्नेह के सामने वे सब गुण दिखलाई पड़ते हैं।

वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल।
प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः॥ ३॥

हे वीर! वनवास के दुःखों को मैं अच्छी प्रकार जानती हूँ, परन्तु ये दुःख उन्हीं को होते हैं जो अजितेन्द्रिय होते हैं, अन्यों को नहीं।

प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं वै बहुविधं प्रभो।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया॥ ४॥

हे प्रभो! मैंने पहले भी कई बार वनक्रीड़ा के लिए प्रार्थना की थी। अब वह अवसर स्वयं आ गया, अतः आप मुझे अपने साथ वन ले चलें।

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम्॥ ५॥

हे काकुत्स्थ राम! आपमें पूर्ण शक्ति रखने वाली, पतिव्रता, दीन, सुख-दुःख में सम रहने वाली और आपके सुख-दुःख में समान भाग लेनेवाली मुझको आप अपने साथ वन में ले चलें।

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्॥ ६॥

यदि मुझ दुखिया को तुम अपने साथ नहीं ले जाओगे तो मैं विष खाकर, अग्नि में जलकर अथवा पानी में डूब कर अपने प्राण दे दूँगी।

एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति।
नानुमेने महाबाहुः काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत्॥ ७॥

इस प्रकार श्रीराम के साथ वन में जाने के लिए सीता ने अनेक प्रकार से प्रार्थना की, परन्तु राम ने उन्हें वन जाने की अनुमति नहीं दी और वन न जाने के लिए अनेक प्रकार से समझाया।

सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिलि जनकात्मजा।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम्॥ ८॥

श्रीराम के द्वारा समझाये जाने पर सीता प्रणय और रोष से राम का उपहास करते हुए बोली—

किं त्वाऽमन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥ ९॥

हे राम! यदि मेरे पिता मिथिलेश यह जानते कि तुम आकार मात्र के पुरुष हो, व्यवहार में स्त्री हो तो वे कभी मेरा विवाह तुम्हारे साथ कर तुम्हें अपना दामाद न बनाते।

अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद्यद्धि वक्ष्यति।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे॥ १०॥

अहो! खेद है। लोग अज्ञानवश कहते हैं कि राम सूर्य के समान तेजस्वी हैं, परन्तु वास्तव में इनमें तेज है ही नहीं।

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते।
यत्परित्यक्तुकामास्त्वं मामनन्यपरायणाम्॥ ११॥

हे राम! आप किसलिए दुःखी हैं अथवा आपको किस बात का भय है जो आप अपनी अनन्य भक्ता धर्मपत्नी को यहाँ छोड़कर वन जाना चाहते हैं?

तपो वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह।
न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः॥ १२॥

चाहे तुम तप करो या वनवास करो अथवा स्वर्गवास—मुझे तो तुम्हारे साथ रहना ही उचित है। मुझे मार्ग चलने में कुछ भी परिश्रम नहीं होगा।

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया॥ १३॥

मार्ग में आपके साथ चलते समय कुश, काश, सरकण्डे आदि तथा काँटेदार वृक्ष मेरे लिए रूई तथा कोमल मृगचर्म के स्पर्श की भाँति जान पड़ेंगे।

महावातसमुद्भूतं यन्मामपकरिष्यति।
रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम्॥ १४॥

हे राम! आँधी से उड़कर जो धूल मेरे शरीर पर आ पड़ेगी उसे मैं चन्दन के समान समझूँगी।

शाद्वलेषु यथा शिश्ये वनान्ते वनगोचर।
कुथास्तरणतल्पेषु किं स्यात्सुखतरं ततः॥ १५॥

हे वनगोचर! जब मैं वन में हरी-हरी घास के बिछौने पर सोऊँगी तब मुझे पलंग पर बिछे कोमल गलीचे पर सोने से भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

पत्रं मूलं फलं यत्त्वमल्पं वा यदि वा बहु।
दास्यसि स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम्॥ १६॥

जो भी थोड़े या अधिक पत्र, मूल, फल आप स्वयं मुझे लाकर दिया करेंगे। वे मेरे लिए अमृतरस के समान होंगे।

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः।
आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च॥ १७॥

वन में ऋतु-फलों और ऋतु-पुष्पों का उपभोग करती हुई मैं माता पिता तथा राज भवन का स्मरण नहीं करूँगी।

न च तत्र गतः किञ्चिद्द्रष्टुमर्हसि विप्रियम्।
मत्कृते न च ते शोको न भविष्यामि दुर्भरा॥ १८॥

मेरे कारण वन में न तो आपको कोई क्लेश होगा, न कोई शोक होगा और मैं आपके लिए भारभूत भी नहीं बनूँगी।

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना।
इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह॥ १९॥

आपके साथ रहने में मुझे सर्वत्र स्वर्ग के समान सुख है और आपके विना सर्वत्र नरक है। यही सब कुछ सोचकर आप प्रसन्नता-पूर्वक मुझे अपने साथ वन में ले चलें।

अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसि।
विषमद्यैव पास्यामि मा विशं द्विषतां वशम्॥ २०॥

यदि आप न डरनेवाली मुझे वन में अपने साथ ने ले जायेंगे तो मैं आपके सामने ही अपने प्राण दे दूँगी, किन्तु जिन दुष्टों ने आपके राज्याभिषेक में विघ्न डाला है उनके वश में नहीं रहूँगी।

पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम्।
उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम्॥ २१॥

हे नाथ! आपके वन जाने के पश्चात् भी तो दुःख से मुझे मरना ही है, अतः आप द्वारा परित्यक्त होकर इसी समय मर जाना अच्छा है।

इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रिणि चैकं च दुःखिता॥ २२॥

मैं आपके वियोग के शोक को एक क्षण भी नहीं सह सकती तब चौदह वर्षों के वियोग को कैसे सह सकती हूँ?

इति सा शोकसन्तप्ता विलप्य करुणं बहु।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम्॥ २३॥

इस प्रकार शोक से सन्तप्त, शिथिल अङ्गोंवाली सीता करुण विलाप कर, पति का गाढ़ आलिंगन कर उच्च स्वर से रोने लगी।

तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम्।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा॥ २४॥

तब श्रीराम ने मूर्च्छित प्राय और शोकविकल सीता का अपनी भुजाओं से आलिंगन करके उसे विश्वास दिलाते हुए कहा—

न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
न हि मेऽस्ति भयं किञ्चित्स्वयम्भोरिव सर्वतः॥ २५॥

हे देवि! तुम्हारे दुःख को देखकर मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगा (तुम्हारा यह कहना कि मैं भय के कारण तुम्हें वन में नहीं ले जाना चाहता उचित नहीं, क्योंकि) ब्रह्मा के समान मुझे कहीं भी किसी प्रकार का भय नहीं है।

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे॥ २६॥

(तुम्हारा यह कहना भी ठीक नहीं कि मैं तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हूँ, क्योंकि) मैं सब भाँति तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ, परन्तु मुझे तुम्हारे मन का अभिप्राय ज्ञात नहीं था, इसलिए मुझे तुम्हारा वन-गमन पसन्द नहीं था।

यत्सृष्टाऽसि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥ २७॥

हे मैथिलि! यदि तुम मेरे साथ वनवास के लिए निर्मित की गई हो तो मैं तुम्हें इसी प्रकार नहीं छोड़ सकता जैसे शीलयुक्त–चरित्रवान् मनुष्य अपनी कीर्ति को नहीं छोड़ सकता।

धर्मस्तु गजनासोरु सद्भिराचरितः पुरा।
तं चाहमनुवर्तेऽद्य यथा सूर्यं सुवर्चला॥ २८॥

हे हाथी के सूँड के समान जाँघोंवाली! पहले के सज्जन लोग जैसा धर्माचरण कर गये हैं मैं भी उसी का आचरण करूँगा और तू भी कर। जैसे सुवर्चला नक्षत्र सूर्य का अनुसरण करता है इसी प्रकार तू भी मेरा अनुसरण कर।

न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि।
वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम्॥ २९॥

हे जनकनन्दिनी! निश्चय ही मैं अपनी इच्छा से वन नहीं जा रहा हूँ, अपितु सत्य के पाश में बँधे हुए पिता की आज्ञा पालनार्थ ही मैं वन जा रहा हूं।

एष धर्मस्तु सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता।
आज्ञां चाहं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे॥ ३०॥

हे श्रेष्ठ कटि-प्रदेशवाली! पिता और माता का कहना मानना ही पुत्र के लिए धर्म है, अतः माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर मैं जीना उचित नहीं समझता।

यत्त्रयं तत्त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते॥ ३१॥

तीन की (माता, पिता और आचार्य) आराधना से तीनों लोगों की आराधना हो जाती है। संसार में इनसे बढ़कर और कोई पवित्र वस्तु नहीं है। हे सुन्दर नयने! इसीलिए मैं पिताजी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

न सत्यं दानमानौ वा न यज्ञाश्चाप्तदक्षिणाः।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्हिता॥ ३२॥

हे रीते! मनुष्यों के लिए सत्य, दान, मान और दक्षिणा सहित यज्ञ वैसे हितकारी नहीं हैं जैसी पिता की सेवा।

स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चदपि दुर्लभम्॥ ३३॥

माता-पिता की सेवा करनेवाले मनुष्य के लिए स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

स मां पिता तथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः॥ ३४॥

अतः सत्य और धर्म-मार्ग में स्थित मेरे पिता मुझे जो आज्ञा दे रहे हैं मैं वैसा ही आचरण करना चाहता हूँ, क्योंकि यही सनातन धर्म है।

मम सन्ना मतिः सीते त्वां नेतुं दण्डकावनम्।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता॥ ३५॥

हे सीते! पहले तो तेरे मन के अभिप्राय को न जानने के कारण मेरी इच्छा तुझे वन में ले जाने की नहीं थी, परन्तु अब तेरी दृढ़ता देख मैंने तुझे अपने साथ दण्डक वन में ले जाने का निश्चय कर लिया है।

सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च।
व्यवसायमतिक्रान्ता सीते त्वमतिशोभनम्॥ ३६॥

हे सीते! तूने मेरे साथ जो वन जाने का निश्चय किया है यह मेरे और तुम्हारे कुल के अनुरूप ही है।

आरभस्व गुरुश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते॥ ३७॥

हे सुन्दर कटिवाली! अब वनवास की तैयारी करो। इस समय तेरे विना मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता।

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम्।
देहि चाशंसमानेभ्यः सन्त्वरस्व च मा चिरम्॥ ३८॥

स्तुतिपाठ करनेवाले ब्राह्मणों को रत्न आदि उत्तम पदार्थ और भिक्षुकों को भोजन देकर जल्दी चलने की तैयारी करो, देर न होने पाये।

ततः प्रहृष्टा प्रतिपूर्णमानसा
यशस्विनी भर्तुरवेक्ष्य भाषितम्।
धनानि रत्नानि च दातुमङ्गना
प्रचक्रमे धर्मभृतां मनस्विनी॥ ३९॥

मनस्विनी एवं यशस्विनी सीता अपना मनोरथ पूर्ण हुआ जानकर अति प्रसन्न हुई और पति के वचनानुसार धर्मात्माओं को धन और रत्नादि प्रदान करने लगी।

◀ षड्विंशः सर्गः ▶ (२६)

लक्ष्मण को भी अनुमति—

एवं श्रुत्वा तु संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन्॥ १॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः।
सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम्॥ २॥

श्रीराम और सीताजी के इस प्रकार संवाद आरम्भ होने से पूर्व ही लक्ष्मण वहाँ पहुँच गये थे। इस संवाद को सुनकर उनकी आँखों में आँसू भर आये। इस दुःख को सहने में असमर्थ लक्ष्मण ने भाई के चरणों का गाढ़ालिंगन कर महायशस्वी सीता और महाव्रत धारी श्रीराम से कहा—

यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम्।
अहं त्वाऽनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः॥ ३॥

यदि आपने सिंह और हाथियों से युक्त वनों में जाने का निश्चय कर ही लिया है तो मैं धनुष धारण कर आपके आगे-आगे चलूँगा।

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं वाऽपि लोकानां कामये न त्वया विना॥ ४॥

हे राम! आपके बिना मैं देवलोक में जाना, अमरत्व=मोक्ष प्राप्त करना तथा संसार के ऐश्वर्य आदि कुछ भी नहीं चाहता।

एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत्॥ ५॥

वनवास के लिए दृढ़निश्चयी लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर श्रीराम ने उन्हें अनेक प्रकार समझाया और वन जाने से रोका तो लक्ष्मणजी बोले—

अनुज्ञातश्च भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम्।
किमिदानीं पुनरिदं क्रियते मे निवारणम्॥ ६॥

हे भाई! आपने मुझे तो पहले ही वन जाने की स्वीकृति[१] दे दी थी, फिर आप मुझे क्यों रोक रहे हैं।

ततोऽब्रवीत् महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः।
स्थितं प्राग्गामिनं वीरं याचमानं कृताञ्जलिम्॥ ७॥

तब वन में जाने के लिए उद्यत, हाथ जोड़ कर वन जाने की याचना करते हुए अपने समक्ष खड़े लक्ष्मण से महातेजस्वी श्रीराम ने कहा- –

स्निग्धो धर्मरतो वीर सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राता चापि सखा च मे॥ ८॥

हे लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्म में रत, सदैव सन्मार्ग पर चलनेवाले हो। तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो, मेरे अनुवर्ती, मेरे भाई एवं मित्र भी हो।

मयाऽद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम्।
को भरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम्॥ ९॥

(अतः तुम्हारे मेरे साथ चलने से मुझे सब प्रकार लाभ ही होगा, परन्तु) यदि तुम मेरे साथ वन को चल दिये तो यहाँ यशस्विनी माता कौसल्या और सुमित्रा की सेवा-शुश्रूषा कौन करेगा?

तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थमिमं चर॥ १०॥

---

१. वस्तुतः रामायण में स्पष्ट रूप से श्रीराम ने लक्ष्मण को वन ले चलने की कोई स्वीकृति नहीं दी थी। लक्ष्मणजी ने श्रीराम के मुख से निःसृत निम्न श्लोक से यह आशय निकाला है—

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥

—अयो० २२।१३

हे सीते! भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं। तुम उनकी देख-भाल के लिए अयोध्या में ही रहो।
लक्ष्मण राम और सीता के संवाद को सुन रहे थे। बस, उन्होंने सोचा कि मैं सीता द्वारा रक्षित व्यक्तियों में नहीं हूँ। श्रीराम वन में ले जाना चाहते हैं।

अतः लक्ष्मण! तुम यहीं रहकर स्वयं अथवा महाराज का अनुग्रह प्राप्त कर अथवा जैसे भी हो आर्या कौसल्या आदि का भरण पोषण करो। मेरे इस उचित आदेश का पालन तुम्हें करना ही चाहिए।

एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता।
धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान्॥ ११॥

हे धर्मज्ञ! ऐसा करने से मेरे प्रति तुम्हारी परम भक्ति प्रदर्शित होगी और साथ ही माताओं की सेवा से तुम्हें बड़ी भारी कीर्ति भी प्राप्त होगी।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्॥ १२॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर बोलनेवालों में चतुर श्रीलक्ष्मण ने वाक्य-विशारद श्रीराम से कहा—

तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नात्र संशयः॥ १३॥

हे वीर! आपके प्रताप से भरतजी कौसल्या और सुमित्रा की सेवा-शुश्रूषा करेंगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

यदि दुष्टो न रक्षेत भरतो प्राप्य श्रीमिमाम्।
तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः॥ १४॥

यदि दुष्ट भरत इस उत्तम राज्य को पाकर माताओं की सेवा नहीं करेगा तो मैं उस नीच और नृशंस को मार डालूँगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

कौसल्या बिभृयादार्या सहस्त्रमपि मद्विधान।
यस्याः सहस्त्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुजीविनाम्॥ १५॥

जिसके नौकर-चाकर सहस्त्रों ग्रामों के स्वामी हैं वह आर्या कौसल्या मेरे जैसे सहस्त्रों व्यक्तियों का भरण पोषण कर सकती है। (अतः उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है।)

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्पते॥ १६॥

अतः आप मुझे अपना अनुचर बनाइए। इसमें कोई अधर्म नहीं होगा। आपके ऐसा करने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और आपका भी काम निकलेगा।

धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थनमनुदर्शयन्॥ १७॥

(काम क्या निकलेगा) ? मैं बाण-सहित धनुष तथा खनित्र=कुदाल और टोकरी लेकर आपको मार्ग दिखाता हुआ आपके आगे-आगे चलूँगा।

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्॥ १८॥

मैं आपके लिए प्रतिदिन कन्दमूल-फल तथा तपस्वियों के भोजन करने योग्य अन्य श्रेष्ठ वस्तुएँ भी ला दिया करूँगा।

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम्।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम्॥ १९॥

श्रीराम लक्ष्मण के इन वचनों को सुन अति प्रसन्न हो उससे बोले—हे लक्ष्मण! जाओ, अपनी माता और सुहृज्जनों से वन-गमन की आज्ञा ले आओ।

◀ सप्तविंशः सर्गः ▶ (२७)

राम और लक्ष्मण द्वारा धन-दान—

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परन्तप॥ १॥

(जब लक्ष्मणजी आज्ञा प्राप्त करके लौट आये तब राम उनसे बोले) हे भाई! मेरे पास जो धन है मैं इसे ब्राह्मणों और तपस्वियों को देना चाहता हूँ, अतः इस कार्य में मेरी सहायता करो।

उवाचेदं धनाध्यक्षं धनमानीयतामिति।
ततोऽस्य धनमाजह्रुः सर्वमेवोपजीविनः॥ २॥

फिर उन्होंने कोशाध्यक्ष से धन लाने के लिए

कहा। आज्ञा पाते ही नौकरों ने लाकर धन का ढेर लगा दिया।

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सह लक्ष्मणः।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यः ह्यदापयत्॥ ३॥

तब लक्ष्मण सहित राम ने वह धन ब्राह्मणों, वृद्धों और दीन-दुःखियों में वितरित कर दिया।

तत्रासीत्पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः।
उञ्छवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली॥ ४॥

वहाँ पर पिंगल--हल्के पीले वर्णवाला गर्ग-गोत्री, त्रिजट नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह उञ्छवृत्ति से निर्वाह करता था। वह नित्य फावड़ा, कुदाल और हल लेकर वन जाता और फल-मूल जो कुछ वहाँ मिलते उनसे अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता।

तं वृद्धं तरुणी भार्या बालानादाय दारकान्।
अब्रवीद्ब्राह्मणं वाक्यं दारिद्र्येणाभिपीडिता॥ ५॥
अपास्य फालं कुद्दालं कुरुष्व वचनं मम।
रामं दर्शय धर्मज्ञं यदि किञ्चिदवाप्स्यसि॥ ६॥

दारिद्र्य दुःख से पीड़ित वृद्ध की तरुणी भार्या छोटे-छोटे बच्चों को उसके सामने लाकर बोली— अब इस फावड़े और कुदाल को तो परे फेंको और जैसा मैं कहूँ वह कार्य करो। यदि तुम धर्मज्ञ श्रीराम के पास जाओ तो तुम्हें भी कुछ प्राप्ति हो जायेगी।

भार्याया वचनं श्रुत्वा शाटीमाच्छाद्य दुश्छदाम्।
स प्रातिष्ठत पन्थानं यत्र रामनिवेशनम्॥ ७॥

स्त्री का वचन सुन वृद्ध ब्राह्मण फटे-पुराने चिथड़ों से किसी प्रकार अपना शरीर ढाँप कर श्रीराम के घर की ओर चल दिया।

स राजपुत्रमासाद्य त्रिजटो वाक्यमब्रवीत्।
निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महायशः॥ ८॥
उञ्छवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति।
तमुवाच तदा रामः परिहाससमन्वितम्॥ ९॥
गवां सहस्रमप्येकं न तु विश्राणितं मया।
परिक्षिपसि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसि॥ १०॥

वहाँ जा त्रिजट ने राजकुमार श्रीराम से कहा- हे महायशस्वी राजकुमार! मैं निर्धन हूँ तथा बहुत बाल-बच्चेवाला हूँ। मैं उञ्छवृत्ति से निर्वाह करता हूँ। मेरे ऊपर भी दया-दृष्टि होनी चाहिए। यह सुन श्रीराम ने उससे परिहासपूर्वक कहा—मैंने अपनी असंख्य गौओं में से अभी एक सहस्र गायें भी नहीं दी हैं। तुम अपना डण्डा फेंको। जितनी दूर तुम्हारा डण्डा जा गिरेगा उतने बीच में जितनी गायें खड़ी हो सकेंगी उतनी गायें मैं तुम्हें दूँगा।

स शाटीं त्वरितः कट्यां सम्भ्रान्तः परिवेष्ट्य ताम्।
आविध्य दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगितः॥ ११॥

श्रीराम की यह बात सुन त्रिजट ने वह चिथड़ा कस कर तुरन्त कमर में लपेटा और डण्डे को घूमा कर अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे फेंका।

स तीर्त्वा सरयूपारं दण्डस्तस्य कराच्च्युतः।
गोव्रजे बहुसाहस्रे पपातोक्षाणसन्निधौ॥ १२॥

उसके हाथ से छूटा हुआ वह डण्डा सरयू नदी के उस पार जहाँ सहस्रों गाय और साँडों का झुण्ड था, जा गिरा।

तं परिष्वज्य धर्मात्मा आ तस्मात्सरयूतटात्।
आनयामास ता गोपैस्त्रिजटस्याश्रमं प्रति॥ १३॥

श्रीराम ने उस ब्राह्मण को गले से लगाया और सरयू के किनारे तक की उन सब गौओं को गोपालों के द्वारा त्रिजट के आश्रम में भिजवा दिया।

उवाच च ततो रामस्तं गार्ग्यमभिसान्त्वयन्।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम॥ १४॥

तत्पश्चात् उस गर्ग-गोत्री ब्राह्मण को सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीराम ने कहा—हे ब्राह्मण! क्रोध न करना, मैंने आपके साथ परिहास किया था।

➤ अष्टाविंशः सर्गः ➤ (२८)

दशरथ-समाश्वासन—

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ॥ १॥

इस प्रकार राम-लक्ष्मण और सीता ने ब्राह्मणों को बहुत सारा धन दिया। तदनन्तर वे तीनों महाराज दशरथ से मिलने गये।

पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा।
ऊचुर्बहुविधा वाचः शोकोपहतचेतसः॥ २॥

अपने छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीता सहित पैदल जाते हुए श्रीराम को देखकर लोग अत्यन्त दुःखी थे और अनेक प्रकर की बातें कह रहे थे।

निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद्विप्रवासनम्।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम्॥ ३॥

कोई कहता—लोग अपने गुणहीन पुत्र को भी घर से बाहर नहीं निकालते, फिर ऐसे पुत्र का जिसने अपने चरित्र से सब लोगों को अपने वश में कर लिया है, निर्वासन कैसे हो सकता है ?

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥ ४॥

कोई कहता—केवल सदाचार ही नहीं, अपितु अहिंसा, दया, विद्या, सुशीलता, दम=इन्द्रियदमन और शम=चित्त की शान्ति—ये छह गुण पुरुषश्रेष्ठ राम को शोभित कर रहे हैं।

उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च।
एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम्॥ ५॥

कोई कहता—हम लोग बाग-बगीचा, खेती-बाड़ी और घर-द्वार का परित्याग करके धर्मात्मा श्रीराम के पीछे-पीछे उनके दुःख-सुख के साथी बन कर जायँगे।

इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः।
शुश्राव रामः श्रुत्वा च न विचक्रेऽस्य मानसम्॥ ६॥

श्रीराम लोगों के मुख से विविध प्रकार की बातें सुनते जाते थे, परन्तु इन बातों से उनके मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।

स तु वेश्म पितुर्दूरात्कैलासशिखरप्रभम्।
अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः॥ ७॥

धर्मात्मा श्रीराम मतवाले हाथी की तरह कि विक्रम प्रदर्शित करनेवाली चाल से धीरे-धीरे कैलास शिखर की कान्ति के समान दिखाई देनेवाले अपने पिता के भवन की ओर जाने लगे।

विनीतवीरपुरुषं स प्रविश्य नृपालयम्।
ददर्शावस्थितं दीनं सुमन्त्रमविदूरतः॥ ८॥

राजमहल के द्वार पर वीर लोग विनीत भाव से खड़े थे। श्रीराम उनके पास से आगे बढ़े और थोड़ी ही दूर पर उन्होंने उदास मन खड़े हुए सुमन्त्र को देखा।

ततः कमलपत्राक्षः श्यामो निरुपमो महान्।
उवाच रामस्तं सूतं पितुराख्याहि मामिति॥ ९॥

कमलनेत्र, श्यामवर्ण अनुपम एवं महागुणी श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा कि पिताजी को हमारे आने की सूचना दो।

स रामप्रेषितः क्षिप्रं तं वर्धयित्वा राजानम्।
भयविक्लवया वाचा मन्दया श्लक्ष्णमब्रवीत्॥ १०॥

राम के द्वारा प्रेषित सुमन्त्र ने भीतर जाकर महाराज का अभिवादन कर डरते-डरते धीमे स्वर में ये मधुर वचन बोले—

अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः।
सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वामिदानीं दिदृक्षते॥ ११॥

महाराज! पुरुषसिंह आपके पुत्र द्वार पर खड़े हैं, सब सुहृज्जनों से विदा हो वे आपके दर्शन करने के लिए आए हैं।

स सत्यवादी धर्मात्मा गाम्भीर्यात्सागरोपमा।
उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम्॥ १२॥

सुमन्त्र की बात सुन सत्यवादी, धर्मात्मा और गम्भीरता में समुद्र के समान महाराज दशरथ ने सुमन्त्र से कहा- -हे सुमन्त्र! मेरे पुत्र को यहाँ ले आओ।

स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तदा।
जगामाभिमुखस्तूर्णं सकाशं जगतीपतेः॥ १३॥

तब सुमन्त्र श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर शीघ्र महाराज दशरथ के निकट चले।

स राजा पुत्रमायन्तं दृष्ट्वा दूरात्कृताञ्जलिम्।
उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृत्तः॥ १४॥

उस समय दुःखी एवं स्त्रियों से घिरे हुए महाराज दशरथ दूर से ही हाथ जोड़े हुए पुत्र को आते देखकर तुरन्त अपने आसन से उठ खड़े हुए।

सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः।
तमसम्प्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः॥ १५॥

वे श्रीराम को देखकर उनकी ओर बड़े वेग से दौड़े, परन्तु दुःखी राजा उन तक न पहुँच मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन्॥ १६॥

राम और लक्ष्मण ने भुजाओं को पकड़कर महाराज को उठाया और सीता सहित रोते हुए उन्हें पलंग पर ले जाकर बैठाया।

अथ रामो मुहूर्त्तेन लब्धसंज्ञं महीपतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा शोकार्णवपरिप्लुतम्॥ १७॥

जब एक मुहूर्त पश्चात् महाराज सचेत हुए तब शोक-समुद्र में डूबे हुए महाराज दशरथ को राम हाथ जोड़कर बोले—

आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम्॥ १८॥

हे महाराज! मैं आपसे वन-गमन की आज्ञा लेने आया हूँ। आप हम सब लोगों के स्वामी हैं। मैं दण्डक वन में जा रहा हूँ। आप एक बार मुझे कृपा-दृष्टि से देखिए।

लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेति मां वनम्।
कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः॥ १९॥

लक्ष्मण और सीता को भी मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिए। मैंने अनेक उचित कारण बतला इन्हें रोकना चाहा, परन्तु ये रुकते नहीं, जाना चाहते हैं।

अनुजानीहि सर्वान्नः शोकमुत्सृज्य मानद।
लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिव प्रजाः॥ २०॥

हे सबको मान देनेवाले! आप शोक का परित्याग कर हम सबको वैसे ही आज्ञा दीजिए जैसे प्रजापति अपनी प्रजा को देते हैं।

प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः।
उवाच राजा सम्प्रेक्ष्य वनवासाय राघवम्॥ २१॥

व्याकुलता-रहित राम को वन जाने की आज्ञा की प्रतीक्षा करते जान महाराज दशरथ उनकी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर बोले—

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायास्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥ २२॥

हे राम! कैकेयी ने वरदान के द्वारा मुझे धोखा दिया है, अतः तुम मुझे बन्दी बनाकर बलपूर्वक अयोध्या के राजा बनो।

एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतांवरः।
प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा पितरं वाक्यकोविदः॥ २३॥

महाराज के ऐसा कहने पर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ और बोलने में चतुर श्रीराम हाथ जोड़कर पिताजी से बोले—

भवान्वर्ष सहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे कार्यं त्वयाऽनृतम्॥ २४॥

राजन्! आप अनेक वर्षों तक पृथिवी का पालन करें। मैं आपको मिथ्यावादी नहीं बनाना चाहता। मैं अवश्य वन में वास करूँगा।

नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप॥ २५॥

हे नराधिप! चौदह वर्ष वन में निवास कर और

अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर मैं पुन: आपकी चरण-सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।

रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयतः।
कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत्॥ २६॥

सत्यरूपी पाश में बँधे हुए कैकेयी द्वारा प्रेरित दु:खी और रोते हुए महाराज दशरथ अपने प्रिय पुत्र राम से बोले—

श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च।
गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम्॥ २७॥

हे वत्स! इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख के लिए, पुन: लौट जाने के लिए तुम निश्चिन्त होकर वन जाओ। तुम्हारा मार्ग शुभ एवं निर्भय हो।

न हि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्तव।
विनिवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दन॥ २८॥

हे रघुनन्दन! तुम सत्य-पालन में दृढ़ और धर्म में मन लगानेवाले हो, अत: तुम्हें इनसे हटा कर दूसरे मार्ग पर चलाने की शक्ति किसी में नहीं है।

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
एकाहदर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम्॥ २९॥

परन्तु पुत्र! आज की रात्रि तो तुम किसी प्रकर यहीं रह जाओ। एक दिन तो और मैं तुम्हारे साथ रहने का सुख भोग लूँ।

दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव त्वया।
मत्प्रियार्थं प्रियांत्यक्त्वा यद्यासि विजनं वनम्॥ ३०॥

पुत्र राम! तुम यह अत्यन्त दुष्कर कार्य कर रहे हो जो मेरा प्रिय करने के लिए, तुम अपने सब प्रियजनों को छोड़कर वन जा रहे हो।

न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव।
छन्नया चलितस्त्वस्मि स्त्रिया छन्नाग्निकल्पया॥ ३१॥

हे वत्स! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारा वन जाना मुझे अभिमत नहीं है, परन्तु क्या करूँ मैं भस्म में छिपी हुई अग्नि की भाँति भयंकर एवं कुटिल अभिप्रायवाली कैकेयी की चाल में फँस गया हूँ।

वञ्चना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि।
अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याऽभिप्रचोदितः॥ ३२॥

मैं कुलकलङ्किनी कैकेयी के जिस जाल में फँस गया हूँ तुम इसके कहने में आकर उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना चाहते हो।

न चैतदाश्चर्यतमं यस्त्व ज्येष्ठः सुतो मम।
अपानृतकथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि॥ ३३॥

पुत्र! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो, अत: तुम अपने पिता को सत्यवादी ठहराना चाहते हो।

अथ रामस्तथा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत्॥ ३४॥

इस प्रकार अति दु:खी पिता के वचन सुन लक्ष्मण सहित श्रीराम दीनतापूर्वक बोले—

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान्प्रदास्यति।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे॥ ३५॥

आज वनगमन से प्रतिज्ञा पालन रूपी जो पुण्य-फल मुझे प्राप्त होगा वह कल वन जाने पर प्राप्त नहीं हो सकता, अत: यहाँ से शीघ्र चले जाना ही मैं अपनी अन्य सब कामनाओं की अपेक्षा उत्तम समझता हूँ।

नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं च मैथिलीम्।
नैव सर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं नैव जीवितम्॥ ३६॥

हे महाराज! मैं न राज्य चाहता हूँ न सुख, न मुझे सीता की इच्छा है और न राज-भोगों की। मैं स्वर्ग भी नहीं चाहता। यहाँ तक कि मैं अपना जीवन भी नहीं चाहता। (तब क्या चाहता हूँ?)

त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे॥ ३७॥

मैं आपको सत्यवादी देखना चाहता हूँ, मिथ्यावादी नहीं। आप देवता-स्वरूप हैं। यह बात मैं आपके सामने सत्य और धर्म की शपथ खाकर कहना चाहता हूँ।

न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो।
न शोकं धारयस्वैनं न हि मेऽस्ति विपर्ययः॥ ३८॥

हे तात! रात भर की तो बात ही क्या, मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकता। प्रभो! अब आप धैर्य धारण कीजिए। मेरा संकल्प अब बदल नहीं सकता।

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये॥ ३९॥

जब कैकेयी ने मुझे कहा कि "राम! तुम वन जाओ" और मैंने "बहुत अच्छा" कहकर स्वीकार किया—अपने इस कथन का पालन करना भी मेरे लिए अनिवार्य है।

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्।
तस्माद्दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः॥ ४०॥

हे तात! पिता देवताओं का भी देवता होता है, अतः आपको परम देवता समझ मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला
मया विसृष्टा भरताय दीयताम्।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्
वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम्॥ ४१॥

मैं अयोध्या और पृथिवी के राज्य को छोड़कर जाता हूँ, आप इसे भरत को दे दीजिए। मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ चिरकाल तक वनवास के लिए जाऊँगा।

फलानि मूलानि च भक्षयन्वने
गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृत्तिः॥ ४२॥

नाना प्रकार के विचित्र वृक्षों से सुशोभित वन में प्रवेश करके वहाँ फल और मूल खाता हुआ तथा नदियों और सरोवरों को देखता हुआ मैं सुखपूर्वक रहूँगा। आप भी प्रसन्न एवं सुखी हों।

एवं स राजा व्यसनाभिपन्नः
शोकेन दुःखेन च ताप्यमानः।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो
मोहं गतो नैव चिचेष्ट किञ्चित्॥ ४३॥

यह सुन महाराज दशरथ क्लेशित तथा शोक एवं दुःख से सन्तप्त हो श्रीराम का आलिंगन कर, मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मोह को प्राप्त वे बिलकुल निश्चेष्ट हो गये।

देव्यस्ततः संरुरुदुः समेता-
स्तां वर्जयित्वा नरेदवपत्नीम्।
रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्च्छां
हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम्॥ ४४॥

उस समय कैकेयी को छोड़कर और सब स्त्रियाँ कौसल्या के पास एकत्र होकर रोने लगीं। रोते-रोते सुमन्त्र भी मूर्च्छित हो गये। वहाँ सर्वत्र हाहाकार मच गया।

➤ एकोनत्रिंशः सर्गः ➤ (२९)

सुमन्त्र द्वारा कैकेयी की भर्त्सना—

ततो निर्धूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत्।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य सुमन्त्रः प्रत्यभाषत॥ १॥

मूर्च्छा भङ्ग होने पर सहसा सिर पीटकर, हाथों को मल कर और दीर्घ निःश्वास लेते हुए सुमन्त्र बोले—

यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम्।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः॥ २॥

हे देवि! तूने अपने महाराज दशरथ का ही परित्याग कर दिया, अतः मैं तुझे पति की हत्या करनेवाली और कुल का नाश करनेवाली मानता हूँ।

माऽवमंस्था दशरथं भर्तारं वरदं पतिम्।
भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते॥ ३॥

कैकेयि! तू अपने पति का तिरस्कार मत कर। वे तुम्हारे पति, रक्षक और वर देनेवाले हैं। स्त्रियों के लिए पति की इच्छा के अनुसार चलना करोड़ों पुत्रों के स्नेह से भी बढ़कर है।

यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये।
इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तल्लोपयितुमिच्छसि॥ ४॥

देखो! राजा के मरने पर राज्य का स्वामी अवस्थानुसार ज्येष्ठ पुत्र होता है। क्या तुम महाराज दशरथ के जीवित रहते ही इक्ष्वाकुकुल की इस प्राचीन व्यवस्था का लोप करना चाहती हो।

राजा भवतु ते पुत्रो भरतः शास्तु मेदिनीम्।
वयं तत्र गमिष्यामो यत्र रामो गमिष्यति॥ ५॥

अच्छी बात है—तम्हारा पुत्र भरत राजा हो और वह पृथिवी पर शासन करे। हम लोग तो वहीं जायेंगे जहाँ श्रीराम जा रहे हैं।

आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम्।
आचरन्त्या न विदृता सद्यो भवति मेदिनी॥ ६॥

मुझे बड़ा आश्चर्य यह है कि तुम्हारे इस दुष्टाचरण को देखकर भी यह पृथिवी फट क्यों नहीं जाती।

आम्रं छित्त्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु यः।
यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास्य मधुरो भवेत्॥ ७॥

कौन ऐसा मूर्ख मनुष्य होगा जो मधुर फल देनेवाले आम के पेड़ को कुल्हाड़ी से काट कर उस कड़वे नीम के पेड़ को सींचेगा, जो दूध से सींचने पर भी कभी मीठे फल नहीं दे सकता।

अभिजातं हि ते मन्ये यथामातुस्तथैव च।
न हि निम्बात्स्रवेत्क्षौद्रं लोके निगदितं वचः॥ ८॥

नीम से कभी मधु नहीं टपकता—यह लोकोक्ति ठीक ही है। यही कारण है जैसी तुम्हारी माता थीं वैसे ही तुम भी निकलीं—

सत्यश्चाद्य प्रवादोऽयं लौकिकः प्रतिभाति मा।
पितॄन्समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गनाः॥ ९॥

यह लौकिक प्रवाद मुझे ठीक ही प्रतीत होता है कि पुत्र पिता के स्वभाववाले और लड़कियाँ माता के स्वभाववाली होती हैं।

नैवं भव गृहाणेदं यदाह वसुधाधिपः।
भर्तुरिच्छामुपास्वेह जनस्यास्य गतिर्भव॥ १०॥

देखो! तुम अपनी माता जैसी मत बनो और महाराज का कहना मानो। अपने पति की इच्छा के अनुसार आचरण करके तुम उनकी रक्षा करो।

मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम्।
भर्तारं लोकभर्तारमसद्धर्ममुपादधाः॥ ११॥

हे देवि! तुम पापों से प्रोत्साहित होकर इन्द्र के समान तेजस्वी, प्रजापालक पति से यह निन्दित कर्म (बड़े के सामने छोटे को राज्य) मत करवाओ।

परिवादो हि ते देवि महांल्लोके चरिष्यति।
यदि रामो वनं याति विहाय पितरं नृपम्॥ १२॥

हे देवि! यदि श्रीराम अपने पिता महाराज दशरथ को छोड़कर वन में चले गये तो संसार में तुम्हारी बहुत निन्दा होगी।

इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि।
सुमन्त्रः क्षोभयामास भूय एव कृताञ्जलिः॥ १३॥

इस प्रकार सुमन्त्रजी ने राजसभा में हाथ जोड़कर कोमल और कठोर वचनों से कैकेयी को बार-बार क्षुब्ध किया।

नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते।
न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा॥ १४॥

परन्तु कैकेयी न तो क्षुब्ध हुई और न उसे कोई पश्चात्ताप ही हुआ। उसके मुख की रंगत में भी कोई अन्तर नहीं आया।

◀ त्रिंश: सर्ग: ▶ (३०)

सिद्धार्थ का कैकेयी को समझाना—

ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया।
सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनः पुनः॥ १॥

जब सुमन्त्र के कहने सुनने का भी कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ तब अपनी प्रतिज्ञा से दुःखी इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ गरम आहें भरते हुए सुमन्त्र से बोले—

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम्॥ २॥

हे सुमन्त्र! श्रीराम के साथ जाने के लिए विविध प्रकार के रत्नों से युक्त चतुरंगिणी सेना शीघ्र तैयार करो।

धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने॥ ३॥

अन्न तथा धन के जो मेरे निजी भण्डार हैं वे सब भी निर्जन वन में रहनेवाले श्रीराम के साथ जायें।

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे मुखेन परिशुष्यता।
राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

महाराज के ऐसा कहने पर कैकेयी का मुख सूख गया और वह महाराज के सम्मुख यह वचन बोली—

राज्यं गतजनं साधो पीतमण्डां सुरामिव।
निरास्वाद्यतमं शून्यं भरतो नाभिपत्स्यते॥ ५॥

हे साधो! सारहीन सुरा की भाँति धन-धान्य से रहित जन-शून्य, अतः उपभोग के अयोग्य राज्य को भरत नहीं लेगा।

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत्।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति॥ ६॥

तुम्हारे ही वंश में राजा सगर ने 'असमञ्ज' नाम से विख्यात अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य-भोगों से वञ्चित करके निकाल दिया था। इसी प्रकार श्रीराम भी राज्य-भोगों से रहित ही वन को जाये।

एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत्।
व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तं नावबुध्यत॥ ७॥

कैकेयी के ऐसा कहने पर महाराज ने कहा "तुम्हें धिक्कार है।" वहाँ बैठे अन्य लोग भी कैकेयी की इस बात को सुनकर लज्जित हो गये, परन्तु कैकेयी तनिक भी लज्जित न हुई।

ततः वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः।
शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत्॥ ८॥

तब वृद्ध, पवित्र आचरणवाले और महाराज के अत्यन्त प्रिय सिद्धार्थ नामक सचिव ने कैकेयी से कहा—

असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथि दारकान्।
सरय्वाः प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः॥ ९॥

हे देवि! (असमञ्ज और राम की क्या तुलना) असमञ्ज तो बड़ा दुष्ट-बुद्धि था। वह सड़क पर खेलते हुए बालकों को पकड़ पर सरयू में फेंक दिया करता था और इस कृत्य से प्रसन्न होता था।

इत्येवमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः।
रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते॥ १०॥

इस पाप के कारण धार्मिक राजा सगर ने अपने दुष्ट-चरित्र ज्येष्ठ पुत्र को देश से निकाल दिया था, परन्तु राम ने ऐसा कौन-सा पाप किया है जिसके कारण इनको वनवास दिया जा रहा है?

न हि कञ्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम्।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम्॥ ११॥

हम लोग राम में कोई दोष नहीं देखते। वे तो कलंक-रहित चन्द्रमा के समान निष्पाप हैं।

अदुष्टस्य हि सन्त्यागः सत्पथे निरतस्य च।
निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मनिरोधनात्॥ १२॥

हे देवि! सज्जन एवं सुमार्ग पर चलनेवाले पुरुष का परित्याग करने से अधर्म होता है और ऐसा अधर्म

इन्द्र के तेज को भी नष्ट कर देता है।

तदलं देवि रामस्य श्रिया विहतया त्वया।
लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः परिवादः शुभानने॥ १३॥

हे देवि! राम के राज्याभिषेक की शोभा नष्ट करने से तुम्हें क्या लाभ? इस कार्य से विरत हो जाओ। हे सुमुखि! तुम्हें लोकापवाद से भी बचना चाहिए।

श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो राजा श्रान्ततरस्वनः।
शोकोपहतया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत्॥ १४॥

सिद्धार्थ के ऐसे वचन सुन महाराज दशरथ ने शोक से विकल हो बहुत धीमे स्वर में कैकेयी से कहा—

एतद्वचो नेच्छसि पापवृत्ते
हितं न जानासि ममात्मनो वा।
आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा
चेष्टा हि ते साधुपथादपेता॥ १५॥

हे पापिन्! तुझे सिद्धार्थ की बात भी अच्छी नहीं लगी। मेरी और तेरी भलाई किसमें है तुम यह भी नहीं जानतीं। तुम कुत्सित मार्ग पर चलने की कुचेष्टा कर रही हो। तुम्हारा प्रयत्न सज्जनोचित मार्ग से विपरीत चलने का ही है।

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामं
राज्यं परित्यज्य धनं सुखं च।
सहैव राज्ञा भरतेन च त्वं
यथासुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम्॥ १६॥

अतः मैं राज्य, सुख और धन सब कुछ छोड़कर राम के साथ वन जाऊँगा। तुम अपने पुत्र भरत के साथ सदा के लिए सुखपूर्वक राज्य का उपभोग करो।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

वल्कल-वस्त्र-धारण—

महामात्र-वचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा।
अभ्यभाषत वाक्यं तु विनयज्ञो विनीतवत्॥ १॥

प्रधानमन्त्री सिद्धार्थ के वचनों को सुनकर विनयमूर्ति श्रीराम ने नम्रतापूर्वक महाराज दशरथ से कहा—

त्यक्तभोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवतः।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः॥ २॥

हे महाराज! जब मैं राज-भोगों को छोड़ चुका और वन में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों से अपना निर्वाह करना स्वीकार कर चुका, फिर मेरे साथ सेना आदि भेजने की क्या आवश्यकता है?

यो हि दत्त्वा गजश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम्॥ ३॥

जो मनुष्य हाथी दान करके हाथी बाँधने की रस्सी न देना चाहे, तो उस उत्तम हाथी देनेवाले को रस्सी की ममता से क्या लाभ?

तथा मम सतां श्रेष्ठं किं ध्वजिन्या जगत्पते।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे॥ ४॥

हे सज्जनश्रेष्ठ जगत्पते! मुझे सेना से क्या प्रयोजन? यह सेना आदि सब कुछ मैं भरत के लिए देता हूँ। मेरे लिए तो वल्कल वस्त्र मँगवा दीजिए।

खनित्रपिटके चोभे समानयत गच्छतः।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम॥ ५॥

मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहना है, अतः कन्दमूल-फल खोदने और काटने के लिए मुझे एक कुदाल और एक टोकरी मँगवा दीजिए जिससे मैं अब शीघ्र वन को प्रस्थान करूँ।

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम्।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा॥ ६॥

उस जन-समुदाय के बीच में निर्लज्ज कैकेयी स्वयं वल्कल वस्त्र ले आयी और श्रीराम से बोली—

''लो, इन्हें पहनो।''

स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्या प्रतिगृह्य ते।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह॥ ७॥

पुरुषसिंह श्रीराम ने कैकेयी से वे वल्कल वस्त्र ले लिये और अपने बहुमूल्य महीन वस्त्रों को उतार कर मुनि-वस्त्रों को धारण कर लिया।

लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः॥ ८॥

लक्ष्मणजी ने भी पिता के सामने ही सुन्दर वस्त्रों को उतार कर तापस वस्त्र धारण कर लिये।

समीक्ष्य चीरं सा सीता भर्तारमिदमब्रवीत्।
कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः॥ ९॥

उस वल्कल को देख सीता ने अपने पति श्रीराम से कहा—वनवासी मुनि वल्कल वस्त्र कैसे पहना करते हैं?

कृत्वा कण्ठे च सा चीरमेकमादाय पाणिना।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा॥ १०॥

तब इस कार्य में अकुशल सीता उस वल्कल का एक सिरा गले में लपेट और दूसरा सिरा हाथ में पकड़ लज्जित हो वहाँ खड़ी रहीं।

तस्यास्तत्क्षिप्रमागम्य रामो धर्मभृतां वरः।
चीरं बबन्ध सीतयाः कौशेयस्योपरि स्वयम्॥ ११॥

सीता की ऐसी देशा देखकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीराम ने तुरन्त उसके समीप आकर रेशमी वस्त्रों के ऊपर उस चीर को स्वयं बाँध दिया।

चीरे गृहीते तु तया समीक्ष्य नृपतेर्गुरुः।
निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ १२॥

सीता को चीर धारण किये हुए देखकर महाराज दशरथ के गुरु वसिष्ठजी ने सीता को वल्कल वस्त्र पहनने के लिए मना कर कैकेयी से कहा—

अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनि।
वञ्चयित्वा च राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसे॥ १३॥

अयि दुर्बद्धे! कुलकलङ्किनि! महाराज को धोखा देकर तू मर्यादा का उल्लंघन कर चुकी। अस्तु, जो हुआ सो हुआ, अब तो मर्यादा के भीतर रहो।

न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्॥ १४॥

हे दुःशीले! देवी सीता वन को नहीं जायेगी, अपितु श्रीराम के वन से लौटने तक राजसिंहासन पर बैठकर राज्यशासन करेगी।

अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण सङ्गता।
वयमप्यनुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति॥ १५॥

यदि सीता राम के साथ वन गई तो हम लोग ही नहीं, किन्तु सारे अयोध्यावासी राम के साथ वन चले जायेंगे।

भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम्॥ १६॥

भरत और शत्रुघ्न भी चीर धारण करके तपस्वियों के वेश में अपने बड़े भाई के साथ वनवासी हो जायेंगे।

ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह।
त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता॥ १७॥

जब इस राज्य की भूमि मनुष्यों से शून्य हो जायेगी—केवल वृक्ष-ही-वृक्ष ही रह जायेंगे तब कुटिल व्यवहार करनेवाली, प्रजा की अहितकारिणी तू अकेली वृक्षों पर राज्य करना।

न ह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमर्हति।
त्वयि वा पुत्रवद्वस्तुं यदि जातो महीपतेः॥ १८॥

महाराज द्वारा अप्रसन्नतापूर्वक प्रदत्त इस राज्य को भरत यदि वह महाराज का पुत्र होगा तो कभी भी ग्रहण नहीं करेगा और न तेरे साथ पुत्रवत् व्यवहार करेगा।

यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यति।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति॥ १९॥

भले ही तुम पृथिवी छोड़ आकाश में चली जाओ, अर्थात् मर जाओ, तो भी अपने कुल के आचार को जाननेवाला भरत कुलाचार के विरुद्ध आचरण कभी न करेगा।

तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम्।
लोके हि न स विद्यते यो न राममनुव्रतः॥ २०॥

तुम भरत की भलाई सोच उसे राज्य दिला रही हो, परन्तु तुम उसका अप्रिय ही कर रही हो, क्योंकि लोक में ऐसा कोई भी नहीं है जो श्रीराम का अनुगामी न हो।

द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशुव्यालमृगद्विजान्।
गच्छतः सह रामेण पादपांश्च तदुन्मुखान्॥ २१॥

मनुष्यों की तो बात ही क्या, तुम देखोगी कि पशु, सर्प, मृग और पक्षी भी श्रीराम के साथ वन जायेंगे। वृक्ष भी राम को जाते देख, उनके साथ स्नेह में आसक्त हो उनकी ओर झुक जायेंगे।

अथोत्तमान्याभरणानि देवि
देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम्।
न चीरमस्याः प्रविधीयतेति
न्यवारयत्तद्वसनं वसिष्ठः॥ २२॥

हे देवि! चीर को हटा कर अपनी वधू को उत्तम वस्त्र और आभूषण दो। यह सीता चीर पहनने योग्य नहीं है। इस प्रकार कहकर वसिष्ठजी ने सीता को चीर धारण कराने के लिए मना किया।

एकस्य रामस्य वने निवासः
त्वया वृतः केकेयराजपुत्रि।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या
वसत्वरण्ये सह राघवेन॥ २३॥

हे केकेयराजपुत्रि! तुमने अकेले राम के लिए वनवास माँगा था, अतः सीता वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर वन में जाये और राम के साथ निवास करे।

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा॥ २४॥

विप्रश्रेष्ठ तथा अमित प्रभावशाली राजगुरु वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर भी सीता ने उस चीर को नहीं उतारा। उतारती क्यों, वह तो अपने प्यारे पति के समान ही वल्कल वस्त्र धारण कर वन में रहना चाहती थी।

◀ द्वात्रिंशः सर्गः ▶ (३२)

वन-गमन की आज्ञा—

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत्।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति॥ १॥

सनाथा सीता को अनाथा के समान चीर वस्त्र धारण करते देख वहाँ उपस्थित जन-समुदाय चिल्लाया—"दशरथ! तुम्हें धिक्कार है।"

स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत्।
कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हति॥ २॥

तब महाराज दशरथ गर्म श्वास छोड़कर अपनी पत्नी से बोले—कैकेयि! सीता कुश-चीर धारण करके वन में नहीं जायेगी।

रामेण यदि ते पापे किञ्चित्कृतमशोभनम्।
अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे॥ ३॥

माना कि श्रीराम ने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा था, परन्तु अरे पापिन्! मुझे बता तो सही, सीता ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था।

इतीव राजा विलपन्महात्मा
शोकस्य नान्तं स ददर्श किञ्चित्।
भृशातुरत्वाच्च पपात भूमौ
तेनैव पुत्रव्यसने निमग्नः॥ ४॥

महाराज दशरथ इस प्रकार विलाप कर और अपने शोक का कहीं अन्त न देख अत्यन्त आतुर हो भूमि पर गिर पड़े और पुत्र-वियोग-जन्य दुःख में डूब

गये।

एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः सम्प्रस्थितो वनम्।
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत्॥ ५॥

इस प्रकार कहते हुए और सिर झुका कर बैठे हुए महाराज दशरथ से वन जाने के लिए उद्यत श्रीराम ने कहा—

इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी।
मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम्॥ ६॥

हे धर्मिष्ठ! मेरी यह यशस्विनी माता कौसल्या मेरे विना शोक-सागर में डूब जायेगी।

अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि।
पुत्रशोकं यथा नर्च्छेत्त्वया पूज्येन पूजिता॥ ७॥

इन्होंने पहले कभी दुःख नहीं देखा। यह अत्यन्त सम्मान के योग्य हैं। आप पूज्य हैं। आप इसका ऐसा सम्मान करें जिससे इन्हें पुत्र-शोक न होने पावे।

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम्।
समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः॥ ८॥

राम के इन वचनों को सुन और उन्हें स्त्रीसहित मुनिवेश धारण किये हुए देखकर महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गये।

स मुहूर्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः।
विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन्॥ ९॥

एक मुहूर्त अचेत रहकर महाबाहु दशरथ दुःखित हो राम का स्मरण कर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे—

मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः।
प्राणिनो हिंसिता वापि तस्मादिदमुपस्थितम्॥ १०॥

प्रतीत होता है कि मैंने पूर्वजन्म में बहुत-सी गायों को उनके बछड़ों से अलग कर दिया था अथवा बहुत-से प्राणियों का वध किया था इसी से मेरे ऊपर यह दुःख आ पड़ता है।

एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण पिहितेक्षणः।
रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक ह॥ ११॥

ऐसा कहकर महाराज के नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने एक बार 'राम' कहा, किन्तु इसके आगे वे कुछ बोल न सके।

संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात्स महीपतिः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत्॥ १२॥

थोड़ी देर में जब महाराज सचेत हुए तब उन्होंने आँखों में आँसू भर कर सुमन्त्र से कहा—

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम्॥ १३॥

तुम उत्तम घोड़ों से युक्त, सवारी के योग्य उत्तम रथ लाओ और महाभाग राम को उस पर सवार करा कर नगर से बाहर पहुँचा आओ।

राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः।
योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलङ्कृतम्॥ १४॥

महाराज दशरथ की आज्ञा पाकर सुमन्त्र शीघ्र ही घोड़े जोतकर अलंकृत रथ को वहाँ ले आये।

तं रथं राजपुत्राय सूतः कनकभूषितम्।
आचचक्षेऽञ्जलिं कृत्वा युक्तं परमवाजिभिः॥ १५॥

उस स्वर्ण-विभूषित और उत्तम घोड़ों से युक्त रथ को राजकुमार राम के सामने खड़ाकर सुमन्त्र ने हाथ जोड़कर कहा—"रथ तैयार है।"

राजा सत्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसञ्चये।
उवाच देशकालज्ञं निश्चितं सर्वतः शुचिम्॥ १६॥

तदनन्तर महाराज दशरथ ने पवित्र आचरणवाले तथा देश-काल के जाननेवाले धनाध्यक्ष को बुलाकर कहा—

वासांसि च महार्हाणि भूषणानि वराणि च।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय॥ १७॥

उत्तम वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण जो सीताजी के लिए चौदह वर्ष के लिए पर्याप्त हों—शीघ्र लाओ।

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः।
प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायै सममेव तत्॥ १८॥

महाराज दशरथ की आज्ञा पा धनाध्यक्ष कोशागार

में गया और निर्दिष्ट सारी वस्तुएँ लाकर सीताजी को दे दीं।

सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम्।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः॥ १९॥

उत्तम कुल में उत्पन्न तथा वन को प्रस्थान करनेवाली सीता ने उन विचित्र और उत्तम आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया।

तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्।
अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम्॥ २०॥

तब कौसल्या ने उत्तम आचरणवाली सीता को हृदय से लगाया और उसका मस्तक सूँघ कर यह कहा--

असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन्सततं सत्कृताः प्रियैः।
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः॥ २१॥

जो स्त्रियाँ पति द्वारा सदैव सत्कृत और सम्मानित होने पर भी विपत्तिकाल में पति का आदर-सम्मान नहीं करतीं वे स्त्रियाँ असती=कुलटा कहलाती हैं।

एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहात्यपि॥ २२॥

कुलटा स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि पति की सम्पन्न अवस्था में सुख भोग कर भी पति की विपन्नावस्था में उस पर दोष लगाती हैं और छोड़ भी देती हैं।

असत्यशीला विकृता दुर्ग्राह्यहृदयाः सदा।
युवत्यः पापसङ्कल्पाः क्षणमात्राद्विरागिणः॥ २३॥

कुलटा स्त्रियाँ असत्य बोलनेवाली तथा विकृत विचारवाली होती हैं। उनके मन की बात बड़ी कठिनाई से जानी जाती है, वे हृदय-शून्य होती हैं, वे अपने को सदा यौवन-सम्पन्न समझती हैं, उनके संकल्प पापपूर्ण होते हैं। वे क्षणमात्र में अपने पतियों को त्याग देती हैं।

न कुलं न कृतं विद्यां न दत्तं नापि संग्रहम्।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः॥ २४॥

प्रशस्त कुल, किया हुआ उपकार, धर्म-विद्या, वस्त्राभूषणों का दान और वैवाहिक बन्धन--कोई भी बात इन कुलटा स्त्रियों के मन को वश में नहीं कर सकती, क्योंकि ये चञ्चल हृदयवाली होती हैं।

साध्वीनां तु स्थितानां हि शीले सत्ये श्रुते शमे।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेकी विशिष्यते॥ २५॥

(कुलटा एवं असती स्त्रियों के लक्षण समझा कर अब कौसल्याजी सती-साध्वी स्त्रियों के लक्षण बताती हैं—)

सती-साध्वी एवं पतिव्रता स्त्रियाँ कुलोचित आचरणवाली, सत्य में आस्था रखनेवाली, वेद के अनुसार आचरण करनेवाली और शान्तचित्त-वाली होती हैं। ऐसी स्त्रियों के लिए उनका पति ही उनका सर्वस्व होता है।

स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो मम।
तव दैवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा॥ २६॥

अतः वनवास के लिए उद्यत तू मेरे पुत्र राम का कभी अपमान मत करना, क्योंकि चाहे वह धनी है अथवा निर्धन तेरे लिए तो वह देवता के समान ही पूज्य एवं मान्य है।

विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता॥ २७॥

तब सीताजी अपनी सास के इन धर्म और अर्थयुक्त वचनों को सुन कौसल्या के समक्ष हाथ जोड़कर बोलीं—

करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम्।
अभिज्ञाऽस्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे॥ २८॥

हे आर्ये! आपने मुझे जो उपदेश दिया है मैं तदनुसार ही आचरण करूँगी। पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए यह मैं जानती हूँ, क्योंकि मैं माता-पिता के मुख से यह सब सुन चुकी हूँ।

न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हति।
धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा॥ २९॥

हे आर्ये! आप असती स्त्रियों के साथ मेरी तुलना



राम वनगमन

न करें। जैसे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना चन्द्रमा से पृथक् नहीं हो सकती उसी प्रकार मैं भी धर्म से कभी विचलित नहीं हो सकती।

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा॥ ३०॥

जैसे बिना तार के वीणा नहीं बजती, बिना पहिये का रथ नहीं चलता उसी प्रकार बिना पति के स्त्री भी सुख नहीं पाती चाहे वह सौ पुत्रोंवाली ही क्यों न हो।

मितं ददाति हि पिता मितं माता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥ ३१॥

पिता, माता तथा पुत्र—ये सब परिमित सुख के देनेवाले हैं, परन्तु पति अमित सुख का देनेवाला है, अतः ऐसी कौन अभागी स्त्री होगी जो पति का आदर-सम्मान न करेगी?

साऽहमेवंगता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरा वरा।
आर्ये किमवमन्येहं स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम्॥ ३२॥

मैंने धर्म के मर्म को जाननेवाले श्रेष्ठ लोगों से पतिव्रत धर्म का रहस्य जाना है। यह जानकर कि पति ही स्त्री का सबसे बड़ा देवता है मैं पति का अनादर कैसे कर सकती हूँ?

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयङ्गमम्।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम्॥ ३३॥

सीता के हृदयस्पर्शी मनोहर वचनों को सुनकर शुद्धान्तःकरण कौसल्या जो राम के वनगमन से दुःखी हो आँसू गिरा रही थीं, सहसा हर्षित हो उठीं।

तां प्राञ्जलिरभिक्रम्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम्।
रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत्॥ ३४॥

तदनन्तर सब माताओं में सर्वश्रेष्ठा एवं सम्मानिता माता कौसल्या की परिक्रमा कर परम धर्मात्मा श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा—

अम्ब मा दुःखिता भूस्त्वं पश्य त्वं पितरं मम।
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च॥ ३५॥

हे माता! मेरे वनवास से दुःखित होकर तुम व्यथित हृदय से कभी पिताजी को दुःखी मत करना, क्योंकि वनवास के ये चौदह वर्ष ऐसे कट जायेंगे जैसे सोने में एक रात कट जाती है।

➤ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३३)

वन की ओर प्रस्थान—

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम्॥ १॥

तत्पश्चात् दीन-दुःखी राम, लक्ष्मण और सीता ने महाराज दशरथ को चरण स्पर्शपूर्वक प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की।

तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सीतया सह।
राघवः शोकसम्मूढो जननीमभ्यवादयत्॥ २॥

शोक से सन्तप्त श्रीराम ने पिताजी से आज्ञा ले सीता सहित अपनी माता कौसल्या को प्रणाम किया।

अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत्।
अथ मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः॥ ३॥

श्रीराम के प्रणाम कर चुकने पर लक्ष्मण ने कौसल्या को प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने अपनी माता सुमित्रा के चरण छुए।

तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत्।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति॥ ४॥

लक्ष्मण को प्रणाम करते हुए देख माता सुमित्रा रोते हुए बोली—पुत्र! तुम वनवासी राम की सेवा-शुश्रूषा में प्रमाद मत करना।

व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत्॥ ५॥

हे निष्पाप लक्ष्मण! ये विपत्ति में हों या सम्पत्ति में तुम्हारे आश्रय-दाता ये ही हैं। संसार में सज्जनों

का यही धर्म है कि वे अपने बड़ों की आज्ञानुसार चलें।

इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम्।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च॥ ६॥

इस रघुकुल का सनातन और उचित सदाचार है—दान देना, व्रतचर्या का पालन करना, यज्ञ करना और संग्राम में शरीर त्याग करना।

लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वा सा संसिद्धं प्रियराघवम्।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम्॥ ७॥

श्रीराम के स्नेह-भाजन लक्ष्मण को वनगमन के लिए उद्यत देख सुमित्राजी उसे बार-बार कहने लगीं—जाओ! पुत्र, जाओ।

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्[१] ॥ ८॥

हे वत्स! (यदि वन में माता, पिता और अयोध्या का स्मरण आये तो) श्रीराम को तुम अपना पिता दशरथ समझना और सीता को मेरे समान अपनी माता समझना तथा वन को ही अयोध्या समझना। तुम सुखपूर्वक प्रस्थान करो।

ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।
रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः॥ ९॥

तब सुमन्त्र हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले—हे महायशस्वी रामचन्द्र! आपका कल्याण हो। आप रथ पर सवार हों।

तं रथं सूर्यसङ्काशं सीता हृष्टेन चेतसा।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः॥ १०॥

तब सुमुखी, प्रसन्न-चित्त एवं वस्त्राभूणों से अलंकृत सीता सूर्य के समान देदीप्यमान रथ पर आरूढ़ हो गई।

अथो ज्वलनसङ्काशं चामीकरविभूषितम्।
तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ११॥

तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण भी उस सुवर्ण विभूषित और आयुधों से सुसज्जित रथ पर सवार हुए।

सीतातृतीयानारूढान् दृष्ट्वा धृष्टमचोदयत्।
सुमन्त्रः सम्मतानश्वान् वायुवेगसमाञ्जवे॥ १२॥

सुमन्त्र ने सीता-सहित राम, लक्ष्मण को रथ में बैठे देख वायु के समान वेगवान् श्रेष्ठ अश्वों से युक्त रथ को सावधानी के साथ आगे बढ़ाया।

प्रतियाते महारण्यं चिररात्राय राघवे।
बभूव नगरे मूर्छा बलमूर्छा जनस्य च॥ १३॥

श्रीराम के वनवासी होने पर सभी व्याकुल हो उठे, हाथी पागल हो गये, घोड़े हिनहिनाने लगे और सम्पूर्ण अयोध्या नगरी शब्दायमान हो उठी।

ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्ता सलिलं यथा॥ १४॥

अयोध्या के सभी बालक और बूढ़े व्याकुल हो श्रीराम के रथ के पीछे वैसे ही दौड़ने लगे जैसे धूप से सन्तप्त व्यक्ति पानी की ओर दौड़ता है।

पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुभृश निःस्वनाः॥ १५॥

कोई तो रथ के अगल-बगल और कोई रथ के पीछे श्रीराम को देखने के लिए ऊपर को मुँह उठाये चले जाते थे। सबके मुख अश्रुओं से पूर्ण थे और वे चिल्ला-चिल्ला कर सुमन्त्र से कह रहे थे—

संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति॥ १६॥

हे सूत! घोड़ों की रास कड़ी करो और रथ को

---

१. गोस्वामी तुलसीदास के मुख से इस श्लोक का अर्थ इस चौपाई में मुखरित हो उठा है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥

धीरे धीरे चलाओ। हमें राम का दर्शन कर लेने दो, क्योंकि फिर हमारे लिए इनका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा।

अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात्॥ १७॥

उधर राजभवन में दीन-दुःखी महाराज दशरथ शोक से विकल रानियों के सहित यह कहते हुए पैदी ही निकल पड़े कि "मैं अपने पुत्र को देखूँगा।"

रामो याहीति सूतं तं तिष्ठेति स जनस्तदा।
उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः॥ १८॥

इधर राम तो रथ शीघ्र हाँकने को कहते और उधर प्रजाजन कहते हैं कि रथ धीरे-धीरे चलाओ। ऐसी स्थिति में सुमन्त्र न तो रथ को तीव्र गति से चला सकते और न मार्ग में खड़ा ही कर सकते थे।

ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम्॥ १९॥

श्रीराम के रथ के पीछे महाराज दशरथ को महादुःखपूर्ण अवस्था में पैदल ही आते देखकर राम के रथ के पीछे चलनेवाले लोग हाहाकार करने लगे।

अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम्।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि॥ २०॥

लोगों का रोना और चिल्लाना सुन राम पीछे की ओर मुड़े तो उन्होंने देखा कि अत्यन्त दुःखी और भ्रान्तचित्त महाराज दशरथ एवं माता कौसल्या उनके पीछे पैदी ही चली आ रही हैं।

पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ।
दृष्ट्वा सञ्चोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम्॥ २१॥

सदा सवारी पर चलनेवाले, जिन्होंने कभी सुख को छोड़ दुःख जाना ही नहीं, उन्हें रथ के पीछे पैदल चलते देख श्रीराम ने सुमन्त्र से रथ को शीघ्र हाँकने के लिए कहा।

तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा॥ २२॥

इधर तो महाराज दशरथ सुमन्त्र से कहते थे 'ठहरो ठहरो,' उधर श्रीराम कहते थे 'जल्दी चलो, जल्दी चलो'। उस समय सुमन्त्र की वही दशा हुई जो दो चक्रों के बीच में आये मनुष्य की होती है। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये कि किसकी आज्ञा का पालन करें।

नाश्रौषमिति राजानमुपलब्धोऽपि वक्ष्यसि।
चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत्॥ २३॥

श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा—जब तुम लौटकर आओगे और महाराज पूछें कि तुमने रथ क्यों नहीं ठहराया तो कह देना कि अत्यन्त कोलाहल के कारण मैंने आपकी बात सुनी नहीं, क्योंकि इस समय जो दुःख हो रहा है वह यहाँ ठहरने से और भी अधिक होगा।

रामस्य च वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम्।
व्रजतोऽपि हयाञ्शीघ्रं चोदयामास सारथिः॥ २४॥

तब श्रीराम की आज्ञा पा और नगर निवासियों को वापस लौटने के लिए कह सुमन्त्र ने चलते हुए घोड़ों को और शीघ्र हाँकने का प्रयत्न किया।

न्यवर्तत जनो राज्ञो रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्।
मनसाप्यश्रुवेगैश्च न न्यवर्तत मानुषम्॥ २५॥

जब रथ शीघ्रता से चला तो राजा के कर्मचारी एवं सम्बन्धी तो मन से श्रीराम की प्रदक्षिणा करके शरीर से लौट आये, परन्तु मन से नहीं। पुरवासी जन मन से भी नहीं लौटे, इसीलिए उनका अश्रुवेग भी नहीं थमा।

यमिच्छेत्पुनरायान्तं नैनं दूरमनुव्रजेत्।
इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः॥ २६॥

"जिसका शीघ्र पुनरागमन चाहे उसे पहुँचाने के लिए दूर तक नहीं जाना चाहिए"—मन्त्रियों ने इस प्रकार की बात महाराज से कही।

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नं
प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो
व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः॥ २७॥

पसीने से तर, खिन्न-चित्त, सर्वगुण-सम्पन्न महाराज दशरथ मन्त्रियों की बात सुन रामचन्द्र की ओर टकटकी लगाये कौसल्या के साथ वहीं खड़े हो गये।

➤ चतुस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३४)

दशरथ का विलाप—

यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत।
नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत् सञ्जहारात्मचक्षुषी॥ १॥

जब तक श्रीराम के रथ के पहियों से उड़ती हुई धूल दिखाई देती रही तब तक महाराज दशरथ ने अपने मन और नेत्रों को उधर से नहीं हटाया।

न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः।
तदाऽऽर्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले॥ २॥

परन्तु जब रथ के पहियों से उड़ती हुई धूल भी अदृश्य हो गई तब महाराज आर्त और विषाद-पूर्ण होकर पृथिवी पर गिर पड़े।

अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं तमुत्थाप्य नराधिपम्।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्षिता॥ ३॥

तब धूल-धूसरित महाराज दशरथ को उठाकर शोक से पीड़ित कौसल्या वहाँ से लौट पड़ी।

राज्ञो नातिबभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा।
विललाप च दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन्॥ ४॥

उस समय महाराज दशरथ ऐसे कान्तिहीन हो गये जैसे ग्रहण के समय सूर्य कान्तिरहित हो जाता है। वे पुत्र का स्मरण कर दुःखी होकर विलाप करने लगे।

अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन् मनुजाधिपः।
उवाच मृदु मन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम्॥ ५॥

विलाप करते-करते महाराज का गला भर आया। तब उन्होंने अति क्षीण स्वर में दीन भाव से मृदु और अल्पार्थवाची ये वचन कहे—

कौसल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम्।
न ह्यन्यत्र मयाश्वासो हृदयस्य भविष्यति॥ ६॥

मुझे शीघ्र राममाता कौसल्या के घर में पहुँचा दो, क्योंकि मेरे हृदय को और कहीं भी शान्ति नहीं मिलेगी।

इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शिनः।
कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेशयत विनीतवत्॥ ७॥

महाराज दशरथ के ऐसा कहने पर द्वारपालों ने उन्हें महारानी कौसल्या के घर में ले जाकर पलंग पर लिटा दिया।

ततस्तस्य प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम्।
अधिरुह्यापि शयनं बभूवं लुलितं मनः॥ ८॥

कौसल्या के घर में पहुँचने और पलंग पर शयन करने पर भी महाराज दशरथ का मन अशान्त ही रहा।

अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः।
अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत्॥ ९॥

अपने लिए कालरात्रि के समान आई हुई उस अर्द्धरात्रि में महाराज दशरथ ने कौसल्या से कहा—

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते॥ १०॥

हे देवि कौसल्ये! मैं तुमको देख नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि श्रीराम-दर्शन के लिए उनके पीछे गई मेरी दृष्टि भी तक नहीं लौटी है, अतः तुम मुझे अपने हाथों से स्पर्श करो।

तं राममेवानुविचिन्तयन्तं
समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम्।
उपोपविश्याधिकमार्तरूपा
विनिःश्वसन्ती विललाप कृच्छ्रम्॥ ११॥

राम की ही चिन्ता करते हुए पलंग पर लेटे हुए महाराज दशरथ को देखकर महारानी कौसल्या बहुत दुःखी हुईं। वे उनके पलंग के समीप बैठ गईं और

अत्यन्त दुःखी हो लम्बे-लम्बे श्वास लेकर विलाप करने लगीं।

➤ पञ्चत्रिंशः सर्गः ➤ (३५)

नागरिकों की प्रार्थना—

अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः॥ १॥

सत्यपराक्रमी महात्मा राम में अनुरक्त होने के कारण पुरवासी सभी लोग वनवासी राम के पीछे हो लिये।

निवर्तितेऽपि च बलात्सुहृद्धर्मेण राजनि।
नैव ते संन्यवर्तन्त रामस्यानुगता रथम्॥ २॥

सुहृद्धर्म (जिसको शीघ्र बुलाना अभीष्ट हो उसे पहुँचाने दूर तक न जाये) के अनुसार महाराज दशरथ को तो बलपूर्वक लौटा दिया गया, परन्तु जो पुरवासी श्रीराम के रथ के पीछे जा रहे थे वे नहीं लौटे।

य याच्यमानः काकुत्स्थः स्वाभिः प्रकृतिभिस्तदा।
कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत॥ ३॥

वे सब लोग श्रीराम से अयोध्या लौट चलने की बार-बार प्रार्थना कर रहे थे, परन्तु श्रीराम अपने पिता को सत्यवादी सिद्ध करने के लिए वन की ओर ही चले जाते थे।

अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव।
उवाच रामः स्नेहेन ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव॥ ४॥

वे लोग श्रीराम को उत्कण्ठापूर्वक उसी प्रकार देखते थे जैसे प्यासा जल को देखता है। प्रजाजनों का अपने में ऐसा दृढ़ अनुराग देख श्रीराम स्नेह-पूर्वक उन लोगों से वैसे ही बोले जैसे पिता अपने पुत्रों से बोलता है।

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा निवेश्यताम्॥ ५॥

हे अयोध्यावासियो! आप लोगों का जो प्रेम और सम्मान मेरे प्रति है, मेरी प्रसन्नता के लिए इससे भी अधिक प्रेम और सम्मान आप लोग भरत के लिए प्रदर्शित करें।

स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः।
करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च॥ ६॥

कैकेयी के आनन्द को बढ़ानेवाले भरत चरित्रवान् हैं। वे अवश्य ही आपके लिए यथोचित, हितकर और प्रिय कार्य करेंगे।

ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्यगुणान्वितः।
अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः॥ ७॥

वे अल्पवय होने पर भी ज्ञानवृद्ध, कोमलचित्त और पराक्रमी हैं। वे सब प्रकार से आपके राजा होने योग्य हैं। वे तुम लोगों की हर प्रकार से रक्षा करेंगे।

यथा यथा दाशरथिर्धर्म एव स्थितोऽभवत्।
तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयन्॥ ८॥

उस समय जैसे-जैसे राम पितृवचन पालनरूपी धर्म में दृढ़ता प्रदर्शित करते थे। वैसे-वैसे पुरवासी श्रीराम को ही अपना राजा बनाने की कामना प्रकट करते थे।

ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा।
वयः प्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः॥ ९॥

उन लोगों में वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और तपोवृद्ध— तीन प्रकार के ब्राह्मण थे। इनमें से वयोवृद्धता के कारण जिनके सिर हिल रहे थे वे दूर से ही ये वचन बोले—

वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरङ्गमाः।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तरि॥ १०॥

हे वेगवान् एवं उत्तम जाति के घोड़ो! तुम वापस लौटो। यदि तुम अपने स्वामी राम का हित चाहते हो तो आगे मत बढ़ो।

एवमार्तप्रलापांस्तान् वृद्धान् प्रलपतो द्विजान्।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह॥ ११॥

इस प्रकार दु:खपूर्वक विलाप करनेवाले ब्राह्मणों को देखकर श्रीराम सहसा रथ से नीचे उतर गये।

पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतः सहलक्ष्मणः।
सन्निकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः॥ १२॥

सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम पैदल ही वन की ओर चलने लगे और जब तक वे लोग राम के समीप नहीं पहुँच गये तब तक ये तीनों धीरे-धीरे चलते रहे।

गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा रामं संभ्रान्तचेतसः।
ऊचुः परमसन्तप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः॥ १३॥

जब ब्राह्मणों ने देखा कि प्रार्थना करने पर भी श्रीराम लौटते नहीं, अपितु वन की ओर ले ही जाते हैं तब वे अत्यन्त विकल और शोक से सन्तप्त हो श्रीराम से बोले—

ब्राह्मण्यं कृत्स्नमेतत्त्वां ब्रह्मण्यमनुगच्छति।
द्विजस्कन्धाधिरूढास्त्वामग्नयोऽप्यनुयान्त्यमी॥ १४॥

हे राम! तुम ब्राह्मणों के हितकारी हो, इसलिए यह अखिल ब्राह्मण-समूह भी आपके पीछे आ रहा है और वे अपने कन्धे पर अग्निदेव (अग्निहोत्र का सामान अरणि आदि) को भी साथ-साथ ला रहे हैं।

या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी।
त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी॥ १५॥

हे वत्स! हमारा मन अभी तक केवल वेद के स्वाध्याय की ओर लगा रहता था, किन्तु अब उस ओर न लग आपकी वनयात्रा की ओर लगा हुआ है, अर्थात् तुम्हारे पीछे हमने स्वाध्याय भी छोड़ दिया है। (तुम घर का क्या प्रबन्ध करके आये हो, तुम्हारी स्त्रियाँ कैसे रहेंगी—इस शंका का समाधान करते हुए वे कहते हैं—)

हृदयेष्वेव तिष्ठन्ति वेदा ये नः परं धनम्।
वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः॥ १६॥

हमारा परम धन जो है वह तो हमारे हृदय में है, अर्थात् हमें चोरी का कोई भय नहीं है। हमारी स्त्रियाँ अपने पातिव्रत्य धर्म से अपनी रक्षा करती हुई घरों में रहेंगी।

न पुनर्निश्चयः कार्यस्त्वद्गतौ सुकृता मतिः।
त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद्धर्ममपेक्षितुम्॥ १७॥

हमें अब और किसी बात का निश्चय नहीं करना है। हमने तो आपके साथ चलने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, परन्तु जब तुम हमारी आज्ञा का उल्लंघन कर धर्म की उपेक्षा करोगे तब धर्ममार्ग का अनुसरण कौन करेगा?

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः।
शिरोभिर्निभृताचार महीपतनपांसुलैः॥ १८॥

हे अटल आचरणवाले राम! हंस के समान श्वेत केशोंवाले हम वृद्ध ब्राह्मण आपको साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना करते हैं कि तुम वन को मत जाओ।

बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने॥ १९॥

इन ब्राह्मणों में कुछ ऐसे भी हैं जो आरम्भ किये हुए यज्ञों को अधूरा छोड़कर आये हैं। हे वत्स! उन यज्ञों की समाप्ति आपके लौटने पर ही निर्भर करती है। (यदि आप न लौटे तो यज्ञों में विघ्न डालने का दोष आपको ही प्राप्त होगा।)

भक्तिमन्ति हि भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च।
याचमानेषु राम त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय॥ २०॥

केवल हम ही नहीं, अपितु पशु, पक्षी, वृक्ष आदि भी आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि तुम वापस लौट चलो, अतः आप अपने भक्तों के प्रति प्रेम का परिचय दो।

एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्॥ २१॥

इस प्रकार श्रीराम को लौटाने के लिए चिल्लाते हुए उन ब्राह्मणों को तमसा नदी दिखाई पड़ी जो मानो मार्ग रोककर श्रीराम को आगे बढ़ने से रोक रही थी।

ततः सुमन्त्रोऽपि रथाद्विमुच्य
श्रान्तान्हयान्सम्परिवर्त्य शीघ्रम्।
पीतोदकांस्तोयपरिप्लुताङ्ग—
नचारयद्वै तमसाविदूरे॥ २२॥

तमसा के तीर पर पहुँच कर सुमन्त्र ने थके हुए घोड़ों को रथ से खोल दिया और उनकी थकावट मिटाने के लिए उन्हें भूमि पर लिटाया, फिर उन्हें पानी मिला और स्नान करा कर तमसा के तट के समीप चराने लगे।

◀ षट्त्रिंशः सर्गः ▶ (३६)

नागरिकों को भुलावा—

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः।
सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

तमसा नदी के तट पर ठहरकर सीता की ओर देखते हुए श्रीराम लक्ष्मणजी से कहने लगे—

इयमद्य निशापूर्वा सौमित्रे प्रस्थिता वनम्।
वनवासस्य भद्रं ते स नोत्कण्ठितुमर्हसि॥ २॥

हे लक्ष्मण! हमारी वनयात्रा की यह प्रथम रात्रि है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम अयोध्या नगर के लिए उत्कण्ठित मत होना।

अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम्।
सस्त्रीपुंसा गतानस्माञ्शोचिष्यति न संशयः॥ ३॥

आज मेरे पूज्य पिता की राजधानी अयोध्या नगरी के स्त्री-पुरुष वनवास में आये हुए हम लोगों के लिए शोक कर रहे होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम्।
अपि वाऽन्धौ भवेतां तु रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः॥ ४॥

मुझे अपने पिता और यशस्विनी माता कौसल्या की बड़ी चिन्ता है। कहीं वे हम लोगों के लिए रोते-रोते अन्धे न हो जाएँ।

भरतस्यानृशंसत्वं विचिन्त्याहं पुनः पुनः।
नानुशोचामि पितरं मातरं चापि लक्ष्मण॥ ५॥

हे महाबाहो लक्ष्मण! जब मैं भरत के दयालु स्वभाव का बार-बार चिन्तन करता हूँ तब माता-पिता की ओर से निश्चिन्त हो जाता हूँ।

त्वया कार्यं नरव्याघ्र मामनुव्रजता कृतम्।
अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणमर्थे सहायता॥ ६॥

हे नरकेसरी! वनवास में मेरे साथ आकर तुमने बहुत उत्तम कार्य किया है। यदि तुम न आते तो सीता की रक्षा के मुझे कोई अन्य सहायक ढूँढ़ना पड़ता।

अद्भिरेव तु सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम्।
एतद्धि रोचते मह्य वन्येऽपि विविधे सति॥ ७॥

हे लक्ष्मण! यद्यपि वन में अनेक प्रकार के कन्दमूल-फल विद्यमान हैं तथापि मेरी इच्छा है कि आज की रात्रि केवल जल पीकर व्यतीत की जाये।

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं सुमन्त्रमपि राघवः।
अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सौम्येत्युवाच ह॥ ८॥

लक्ष्मण से ऐसा कहकर श्रीराम सुमन्त्र से बोले—हे सौम्य! तुम भी सावधानी से घोड़ी की देख-भाल करो।

सोऽश्वान् सुमन्त्रः संयम्य सूर्येऽस्तं समुपागते।
प्रभूतयवसान् कृत्वा बभूव प्रत्यनन्तरः॥ ९॥

सूर्यास्त होने पर सुमन्त्र ने घोड़ों को बाँध दिया और उन्हें यथेष्ट घास आदि डालकर अन्य कामों में लग गये।

उपास्य तु शिवां सन्ध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपस्थिताम्।
रामस्य शयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह॥ १०॥

सायंकालीन सन्ध्या का समय उपस्थित होने पर उन लोगों ने सन्ध्या की, फिर रात्रि आई हुई देख

सुमन्त्र ने लक्ष्मण की सहायता से श्रीराम के शयन के लिए शय्या का निर्माण किया।

तां शय्यां तमसातीरे वीक्ष्य वृक्षदलैः कृताम्।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सभार्यः संविवेश ह॥ ११॥

तमसा नदी के तट पर वृक्षों के पत्तों से निर्मित उस शय्या को देख श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता सहित उस शय्या पर लेटकर विश्राम किया।

सभार्यं सम्प्रसुप्तं तं भ्रातरं वीक्ष्य लक्ष्मणः।
कथयामास सूताय रामस्य विविधान् गुणान्॥ १२॥

श्रीराम को सीता-सहित सोते देखकर लक्ष्मणजी उठे और सूत से श्रीराम के विविध गुणों का बखान करने लगे।

जाग्रतो ह्येव तां रात्रिं सौमित्रेरुदितो रविः।
सूतस्य तमसातीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान्॥ १३॥

इस प्रकार सुमन्त्र के साथ श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए तथा लक्ष्मण के जागते हुए वह रात्रि व्यतीत हुई और सूर्योदय हुआ।

उत्थाय तु महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्॥ १४॥

श्रीराम (मध्य रात्रि में) उठ और उन प्रजाजनों को सोते देख शुभ लक्षणवाले लक्ष्मण से बोले—

अस्मद्व्यपेक्षान् सौमित्रे निरपेक्षान् गृहेष्वपि।
वृक्षमूलेषु संसुप्तान् पश्य लक्ष्मण साम्प्रतम्॥ १५॥

हे लक्ष्मण! ये लोग घर-बार छोड़ हमारा पीछा कर रहे हैं। देखो तो, वृक्षों के नीचे पड़े हुए ये कैसे सो रहे हैं।

यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मान्निवर्तने।
अपि प्राणा न सिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥ १६॥

ये पुरवासी लोग हम लोगों को लौटाने का जो प्रयत्न कर रहे हैं उससे प्रतीत होता है कि ये लोग प्राण दे देंगे, परन्तु अपना निश्चय नहीं त्यागेंगे।

यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु।
रथमारुह्य गच्छाम पन्थानमकुतोभयम्॥ १७॥

अतः जब तक ये लोग सो रहे हैं तब तक हम सब रथ पर आरूढ़ हो तुरन्त यहाँ से चल दें। मार्ग में कोई भय नहीं है।

अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम्।
रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति॥ १८॥

श्रीराम का कथन सुन लक्ष्मणजी ने धर्म-मूर्ति राम से कहा—हे प्राज्ञ! आपका विचार मुझे भी पसन्द है, अतः आप शीघ्र रथ पर सवार हो जाइए।

अथ रामोऽब्रवीच्छ्रीमान् सुमन्त्रं युज्यतां रथ।
गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छ शीघ्रमितः प्रभो॥ १९॥

तदनन्तर श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा—हे प्रभो! शीघ्र रथ तैयार कीजिए, क्योंकि मैं यहाँ से शीघ्र ही वन में जाऊँगा।

सूतस्ततः सन्त्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः।
योजयित्वाऽथ रामाय प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्॥ २०॥

श्रीराम की आज्ञा पा सुमन्त्र उत्तम घोड़ों को रथ में जोतकर ले-आये और हाथ जोड़कर निवेदन किया—

अयं युक्तो महाबाहो रथस्ते रथिनां वर।
त्वमारोहस्व भद्रं ते ससीतः सहलक्ष्मणः॥ २१॥

हे रथियों में श्रेष्ठ! रथ तैयार है। आप सीता और लक्ष्मण सहित इस पर आरूढ़ हों।

मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमास्थाय सारथे॥ २२॥

पुरवासियों को भ्रम में डालने के लिए श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा—हे सारथे! पहले उत्तर की ओर रथ हाँको।

मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः।
यथा न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः॥ २३॥

शीघ्रतापूर्वक थोड़ी दूर उत्तर में जाकर, फिर रथ को लौटा लाओ। सावधानतापूर्वक इस प्रकार रथ हाँको जिससे पुरवासी यह न जान पायें कि हम किस ओर गये हैं।

रामस्य वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स सारथिः।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत्॥ २४॥

श्रीराम के वचन को सुन सुमन्त्र ने वैसा ही किया और रथ को लौटा कर श्रीराम के सामने खड़ा कर दिया।

तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः।
शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम्॥ २५॥

तब श्रीराम धनुष-कवच आदि सामान और साथियों के साथ रथ पर आरूढ़ हुए और भँवरों वाली तथा वेग से बहनेवाली तमसा नदी को पार किया।

◀ सप्तत्रिंशः सर्गः ▶ (३७)

नगरवासियों का विलाप करते हुए अयोध्या लौटना—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना।
कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनस्विनः॥ १॥

रात्रि के समाप्त होने पर प्रातःकाल जब पुरवासी जागे तक राम को न देख वे मनस्वी लोग दीन हो करुणायुक्त ये वचन बोले—

धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहृतचेतसः।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम्॥ २॥

धिक्कार है हमारी उस निद्रा को जिससे अचेत होकर अब हम विशाल वक्षस्थलवाले महाबाहु श्रीराम को नहीं देख रहे हैं।

यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान्।
कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः॥ ३॥

जो राम हम पुरवासियों को अपने औरस सन्तान की भाँति पालते थे वे रघुकुलश्रेष्ठ हमें छोड़कर वन में क्यों चले गये?

इहैव निधनो यामो महाप्रस्थानमेव वा।
रामेण रहितानां हि किमर्थं जीवितं हि नः॥ ४॥

या तो हम लोग यहीं प्राण दे देंगे अथवा हिमालय में जा गलकर मर जायेंगे, क्योंकि बिना राम के हमारे जीने का क्या प्रयोजन?

सन्ति शुष्काणि काष्ठानि प्रभूतानि महान्ति च।
तैः प्रज्वाल्य चितां सर्वे प्रविशामोऽथ पावकम्॥ ५॥

यहाँ पर प्रचुर मात्रा में बड़ी-बड़ी सूखी लकड़ियाँ पड़ी हैं। इनकी विशाल चिता प्रज्ज्वलित कर हम लोग उसमें प्रविष्ट हो जायें।

किं वक्ष्यामो महाबाहुरनसूयः प्रियंवदः।
नीतः स राघवोऽस्माभिरिति वक्तुं कथं क्षमम्॥ ६॥

अयोध्या लौटकर हम लोगों से क्या कहेंगे। महाबाहु, ईर्ष्या-रहित और प्रियवादी राम को हम वन में छोड़ आये हैं—यह तथ्य हम कैसे कह सकेंगे?

निर्यातास्तेन वीरेण सह नित्यं जितात्मना।
रहितास्तेन च पुनः कथं पश्याम तां पुरीम्॥ ७॥

हम तो वीर एवं जितेन्द्रिय श्रीराम के साथ रहने के लिए घर से निकले थे। अब हम उनको वन में छोड़ क्या मुँह लेकर अयोध्या पुरी जायेंगे?

ततो मार्गानुसारेण गत्वा किञ्चित्क्षणं पुनः।
मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुताः॥ ८॥

वे लोग श्रीराम के जाने के मार्ग का अनुसरण कर कुछ दूर उत्तर की ओर गये, परन्तु जब उन्हें आगे गमन-मार्ग का कोई चिह्न न मिला तब वे अत्यन्त दुःखी हुए।

रथस्य मार्गनाशेन न्यवर्तन्त मनस्विनः।
किमिदं किं करिष्यामो दैवेनपोपहता इति॥ ९॥

जब रथ के आगे जाने का मार्ग न मिला तब वे मनस्वी लोग लौट आये और परस्पर कहने लगे—यह क्या हुआ? अब हम क्या करें? हमारा भाग्य ही खोटा है।

ततो यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः।
अयोध्यामगमन् सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम्॥ १०॥

तब वे अयोध्यावासी अत्यधिक उदास होकर जिस मार्ग से गये थे उसी मार्ग से अयोध्या लौट आये जहाँ सभी सज्जनवृन्द दु:खी हो रहे थे।

आलोक्य नगरीं तां च क्षयव्याकुलमानसाः।
आवर्तयन्त तेऽश्रूणि नयनैः शोकपीडितैः॥ ११॥

अयोध्या नगरी की विपन्न अवस्था को देखकर व्याकुल चित्तवाले वे अयोध्या-निवासी अत्यन्त शोकाकुल होकर आँखों से आँसू बहाने लगे।

चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम्।
अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः॥ १२॥

चन्द्रमा से रहित आकाश अथवा जल विहीन समुद्र की भाँति आनन्दहीन उस अयोध्या नगरी को देखकर वे लोग खिन्न हो गये।

◀ अष्टात्रिंशः सर्गः ▶ (३८)

गुह से भेंट—

रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम्।
जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन्॥ १॥

उधर रात्रि व्यतीत होते-होते श्रीराम भी अपने पिताजी की आज्ञा का स्मरण करते हुए बहुत दूर निकल गये।

तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा।
उपास्य स शिवां सन्ध्यां विषयान्तं व्यगाहत॥ २॥

चलते-चलते कल्याणमयी रात्रि व्यतीत हो गई तब प्रात:काल की मङ्गलमयी सन्ध्या-उपासना कर के वे, फिर चलने लगे और उत्तर कोसल की दक्षिण सीमा पर पहुँचे गये।

ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम्।
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम्॥ ३॥

तदनन्तर वे वेदश्रुति (बेसवा) नामक निर्मल जल से पूर्ण नदी को पार कर अगस्त्य नक्षत्र से सेवित दक्षिण दिशा की ओर चले।

गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शिवजलां नदीम्।
गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम्॥ ४॥

फिर बहुत देर तक चलने के पश्चात् उन्होंने निर्मल शीतल जलवाली और सागर में जाकर मिलनेवाली तथा जिसके तट पर गोसमूह विचरण कर रहा था—उस गोमती नदी को पार किया।

गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम्॥ ५॥

गोमती नदी को पार कर श्रीराम ने अत्यन्त वेगवान् घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर मयूर तथा हंसों से शब्दायमान स्यन्दिका=सई नदी को पार किया।

स महीं मनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा।
स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्॥ ६॥

स्यन्दिका नदी पार कर श्रीराम ने सीताजी को वह भूमि दिखाई जो महाराज मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दी थी। वह बहुत विस्तृत थी और उस पर अनेक राष्ट्र बसे हुए थे।

ततो धान्यधनोपेतान् ब्रह्मघोषाभिनादितात्।
रथेन पुरुषव्याघ्रः कोसलानत्यवर्तत॥ ७॥

तदनन्तर श्रीराम धन-धान्य से भरपूर, वेदध्वनि से गुंजायमान कोसल देश की सीमा से पार हुए।

तत्र त्रिपथगां दिव्यां शिवतोयामशैवलाम्।
ददर्श राघवो गङ्गां पुण्यामृषिनिषेविताम्॥ ८॥

चलते-चलते श्रीराम ने कोसल राज्य की दक्षिण सीमा पर पवित्र, शीतल-जलयुक्त तथा शैवाल रहित, तीन पथों में बहनेवाली, ऋषियों से सेवित, दिव्य तथा रमणीय गङ्गा को देखा।

तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः।
सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे॥ ९॥

नाना प्रकार की लहरियों और तरङ्गों से युक्त उस गङ्गा को देखकर महारथी राम ने सुमन्त्र से कहा—हे सूत! आज हम यहीं निवास करेंगे।

लक्ष्मणश्च सुमन्त्रश्च वाढमित्येव राघवम्।
उक्त्वा तमिङ्गुदीवृक्षं तदोपययतुर्हयैः॥ १०॥

श्रीराम के ये वचन सुन लक्ष्मण और सुमन्त्र ने कहा—"बहुत अच्छा" और वे रथ को इंगुदी के वृक्ष के पास ले गये।

रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः।
रथादवातरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः॥ ११॥

इक्ष्वाकुनन्दन श्रीराम उस रमणीक वृक्ष के पास पहुँच, सीता और लक्ष्मण सहित रथ से उतर पड़े।

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति[१] विश्रुतः॥ १२॥

वहाँ शृङ्गवेरपुर में श्रीराम का प्राणप्रिय मित्र निषाद जाति का गुह नामवाला राजा राज्य करता था। उसके पास चतुरङ्गिणी सेना थी।

स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम्।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः॥ १३॥

उसने जब सुना कि श्रीराम उसके प्रदेश में आये हैं तो वह बूढ़े मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवों सहित श्रीराम के पास मिलने आया।

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सः॥ १४॥

निषादराज गुह को देर से ही आते देखकर श्रीराम लक्ष्मण सहित कुछ दूर आगे जा उनसे मिले।

तमार्तः सम्परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत्।
यथाऽयोध्या तथेयं ते राम किं करवाणि ते॥ १५॥

श्रीराम को मुनि-वेश में देख अत्यन्त दुःखी निषादराज राम का आलिंगन कर उनसे बोला—

जैसी आपके लिए अयोध्या है वैसी ही इस नगरी को समझें और मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ।

ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियम्।
ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम्॥ १६॥
अर्घ्यं चोपानयत्क्षिप्रं वाक्यं चेदमुवाच ह।
स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही॥ १७॥

आप जैसा माननीय और प्रिय अतिथि किसको प्राप्त होगा—ऐसा कहकर अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ और अर्घ्य आदि स्वागत-वस्तुओं को राम के समीप लाकर गुह बोला—हे महाबाहो! मैं आपका स्वागत करता हूँ। यह सम्पूर्ण पृथिवी आपकी ही है।

वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेदमुपस्थितम्।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते॥ १८॥

आप हमारे स्वामी और हम आपके सेवक हैं। आप इस सम्पूर्ण राज्य पर शासन कीजिए। ये भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य=चटनी आदि पदार्थ खाने के लिए तथा सोने के लिए उत्तम बिछौने और घोड़ों के लिए घास एवं दाना भी उपस्थित है।

गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वथा वयम्॥ १९॥
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसन्दर्शनेन च।
भुजाभ्यां साधु पीनाभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्॥ २०॥

गुह के ऐसा कहने पर श्रीराम ने कहा—आपने मेरे पास पैदल आकर जो इतना स्नेह प्रदर्शित किया उससे मेरा आदर-सम्मान हो गया। मैं आप पर बहुत

---

१. लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि गुह केवट=मल्लाह था, परन्तु उक्त श्लोक से यह बात मिथ्या सिद्ध होती है। गुह न नाविक था और न नाविकों का चौधरी, अपितु वह उनका राजा था। यह बात "वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैः"—वह बूढ़े मन्त्रियों से घिरा हुआ था—इस कथन से भी पुष्ट होती है। गुह स्थपतिः—निषादों का राजा कहलाता था।

प्रसन्न हूँ, फिर मोटी और विशाल भुजाओं से गुह का आलिंगन करते हुए श्रीराम ने कहा—

दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च धनेषु च॥ २१॥

हे गुह! आपको बन्धु-बान्धवों सहित नीरोग देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आपके राष्ट्र में, मित्रों में तथा इस वन के भूभाग में कुशल तो है?

यदेतद्भवता किञ्चित्प्रीत्या समुपकल्पिताम्।
सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे॥ २२॥

मेरे लिए बड़े प्रेम से आप जो वस्तुएँ लाये हैं मैं उन सबको स्वीकार करता हूँ, परन्तु इन दान की वस्तुओं का मैं उपयोग नहीं करूँगा।

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं च माम्।
विद्धि प्राणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्॥ २३॥

मैं तो कुशचीर और मृग-चर्म धारण करता हूँ तथा फल एवं कन्दमूल खाता हूँ। इस समय आप मुझे वनवासी तपस्वियों के धर्म में दीक्षित समझें।

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित्।
एतावताऽत्र भवता भविष्यामि सुपूजितः॥ २४॥

आपकी इन वस्तुओं में से मैं केवल घोड़ों के खाने की वस्तुओं को ही स्वीकार करूँगा, अन्य कोई वस्तु नहीं। केवल इतने ही से मैं आपके द्वारा अपने को सम्मानित समझूँगा।

अश्वानां प्रतिपानं च खादनं चैव सोऽन्वशात्।
गुहस्तत्रैव पुरुषांस्त्वरितं दीयतामिति॥ २५॥

यह सुन गुह ने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि घोड़ों के खाने पीने की सम्पूर्ण वस्तुएँ, इन्हें तुरन्त प्रदान करो।

ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्॥ २६॥

तदनन्तर वल्कल का दुपट्टा ओढ़े हुए श्रीराम ने सायंकाल की सन्ध्या समाप्त की। उस दिन लक्ष्मणजी द्वारा लाये गये जल को ही उन्होंने भोजन के रूप में स्वीकार किया।

तस्य भूमौ शयनास्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः॥ २७॥

जब श्रीराम और सीता इंगुदी के वृक्ष के नीचे भूमि पर लेट गये तब लक्ष्मण ने जल लाकर दोनों के पैर धोये और वही वृक्ष के समीप बैठ गये।

गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्।
अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः॥ २८॥

निषादराज गुह सुमन्त्र और लक्ष्मण के साथ बातचीत करता हुआ, धनुष-बाण लेकर राम की रक्षा में तत्पर रात्रिभर जागता रहा।

एकोनचत्वारिंशः सर्गः (३९)

गुह और लक्ष्मण का वार्तालाप—

तं जाग्रतमदम्भेन भ्रातुरर्थाय लक्ष्मणम्।
गुहः सन्तापसन्तप्तो राघवं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

लक्ष्मण से—जो भाई की रखवाली करते हुए बड़ी सावधानी से जाग रहे थे—गुह सन्तप्त होकर बोला—

इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता।
प्रत्याश्वसिहि साध्वस्यां राजपुत्र यथासुखम्॥ २॥

हे लक्ष्मण! तुम्हारे सोने के लिए यह शय्या तैयार है। हे राजकुमार! आप इस पर सुखपूर्वक विश्राम करें।

उचितोऽयं जनः सर्वः क्लेशानां त्वं सुखोचितः।
गुप्त्यर्थं जागरिष्यामः काकुत्स्थस्य वयं निशाम्॥ ३॥

---

१. सोने से पूर्व पैर धोना आयुर्वेद की दृष्टि से लाभदायक है।

मैं हर प्रकार के क्लेश सहने का अभ्यासी हूँ और आपका जीवन सुख में व्यतीत हुआ है, अतः आप सो जाइए। हम लोग श्रीराम की रक्षा के लिए रात भर जागेंगे।

न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येतदहं सत्यं सत्येनैव च ते शपे॥ ४॥

(यदि आपको यह सन्देह हो कि आपके सोने के पश्चात् मैं भी सो जाऊँगा तो सुनो) इस संसर में श्रीराम से बढ़कर मेरा और कोई प्रिय पात्र नहीं है। मैं यह बात सत्य की शपथ खाकर सत्य ही कह रहा हूँ।

सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वतो ज्ञातिभिः सह॥ ५॥

अतः मैं अपने बन्धु-बान्धवों सहित हाथ में धनुष बाण लेकर सीता सहित सोये हुए अपने प्रिय मित्र राम की हर प्रकार से रक्षा करूँगा।

लक्ष्मणस्तं तदोवाच रक्ष्यमाणास्त्वयाऽनघ।
नात्र भीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता॥ ६॥

यह सुन लक्ष्मणजी ने गुह से कहा—हे पुण्य-आत्मन्! आपके संरक्षण में हमें किसी प्रकार का भय नहीं है, परन्तु मुझे अपने कर्त्तव्य-पालन का ध्यान है।

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा॥ ७॥

जब सीता सहित श्रीराम भूमि पर पड़े सो रहे हैं तब मेरा यह कर्त्तव्य नहीं कि मैं पड़कर सुख से सो जाऊँ अथवा अपने जीते रहने या अपनी सुख-सुविधा के लिए प्रयत्न करूँ।

परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत॥ ८॥

राजकुमार महात्मा लक्ष्मण ने दुःख-पूरित हृदय से शोकाकुल होकर बैठे-बैठे ही सारी रात बिता दी।

◀ चत्वारिंशः सर्गः ▶ (४०)

गङ्गा के पार—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्॥ १॥

रात्रि व्यतीत होकर जब प्रभात हुआ तब विशाल वक्ष स्थलवाले महायशस्वी राम शुभ-लक्षणयुक्त लक्ष्मणजी से बोले—

भास्करोदयकालोऽयं गता भगवती निशा।
तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरङ्गमाम्॥ २॥

देखो! भगवती रात्रि का अवसान हो गया। अब सूर्य उदय होना चाहते हैं, अतः हे सौम्य! सागरगामिनी अत्यन्त वेगवती इस गङ्गा को हम लोग पार करें।

विज्ञाय रामस्य वचो गुहो राघवमब्रवीत्।
उपस्थितेयं नौर्देव भूया किं करवाणि ते॥ ३॥

राम के अभिप्राय को जानकर गुह ने श्रीराम से निवेदन किया—देव! नौका तैयार है। आज्ञा कीजिए आपकी और क्या सेवा करूँ।

अथोवाच महातेजा रामो गुहमिदं वचः।
कृतकामोऽस्मि भवता शीघ्रमारोप्यतामिति॥ ४॥

तब महातेजस्वी श्रीराम ने गुह से कहा—आप के द्वारा मैं सफल-मनोरथ हुआ। अब आप शीघ्रतापूर्वक हमारा सब सामान नौका पर रखवा दीजिए।

ततः कलापान् संनह्य खड्गौः बद्ध्वा च धन्विनौ।
जग्मतुर्येन तौ गङ्गा सीतया सह राघवौ॥ ५॥

ऐसा कहकर दोनों भाई धनुष-बाण धारण कर और कवच से सुसज्जित होकर सीता सहित उस तट की ओर चले जहाँ नाव थी।

राममेवं तु धर्मज्ञमुपगम्य विनीतवत्।
किम हं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्॥ ६॥

गङ्गा के तट पर पहुँचे हुए धर्मात्मा श्रीराम के

पास जाकर एवं नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर सुमन्त्र श्रीराम से बोले- –हे कृपानिधान! अब मुझे क्या आज्ञा है?

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम।
रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम्॥ ७॥

श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा—अब तुम यहाँ से लौट जाओ। मैंने यहाँ तक ही रथ स्वीकार किया था। अब हम रथ को छोड़कर पैदल ही महावन में प्रस्थान करेंगे।

आत्मानं त्वभ्यनुज्ञातमवेक्ष्यार्तः स सारथिः।
सुमन्त्रः पुरुषव्याघ्रमैक्ष्वाकमिदमब्रवीत्॥ ८॥

''तुम लौट जाओ'' अपने लिए इस आज्ञा को सुन सुमन्त्र अत्यन्त दुःखी हो नरकेसरी इक्ष्वाकुवंशीय श्रीराम से बोले—

न मन्ये ब्रह्मचर्येऽस्ति स्वधीते वा फलोदयः।
मार्दवार्जवयोर्वाऽपि त्वां चेद्व्यसनमागतम्॥ ९॥

यदि आप वनवास को कष्टमय समझ वन में न आते तो मैं आप लोगों के ब्रह्मचर्य-पालन, वेदाध्ययन, दयालुता और नम्रता को निष्फल ही समझता।

सह राघव वैदेह्या भ्रात्रा चैव वने वसन्।
त्वं गतिं प्राप्स्यसे वीर त्रींल्लोकांस्तु जयन्निव॥ १०॥

हे राघव! लक्ष्मण और सीता सहित वन में वास करने से आपकी संसार में वैसी ही कीर्ति होगी जैसी कि तीनों लोकों को जीतने से किसी की हो सकती है।

वयं खलु हता राम ये त्वयाप्युपवञ्चिताः।
कैकेय्या वशमेष्यामः पापाया दुःखभागिनः॥ ११॥

हे राम! आपके त्याग देने से हम लोगों का तो अब मरण ही है, क्योंकि हम अभागों को अब क्रूरकर्मा पापिनी कैकेयी के वश में रहना पड़ेगा।

इति ब्रुवन्नात्मसमं सुमन्त्रः सारथिस्तदा।
दृष्ट्वा दूरगतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम्॥ १२॥

इस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल बोलते हुए सारथि सुमन्त्र श्रीराम का बहुत काल तक वन जाना निश्चित जान, दुःखी हो चिरकाल तक रोते रहे।

ततस्तु विगते बाष्पे सूतं स्पृष्टोदकं शुचिम्।
रामस्तु मधुरं वाक्यं पुनः पुनरुवाच तम्॥ १३॥

कुछ देर रोते रहने के पश्चात् जब सुमन्त्र आचमन करके पवित्र हुए तब श्रीराम ने मधुर वाणी से सुमन्त्र से कहा—

इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये।
यथा दशरथो राजा मां न शोचयेत्तथा कुरु॥ १४॥

हे तात! मन्त्रियों में तुमसे बढ़कर इक्ष्वाकुवंश का शुभ-चिन्तक मुझे कोई दूसरा दिखाई नहीं देता, अतः आप ऐसा उपाय करें जिससे पिताजी मेरे गमन के लिए दुःखी न हों।

अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम्।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः॥ १५॥

जिन्होंने आज तक कभी दुःख नहीं देखा, जो आर्य=श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय और वृद्ध हैं ऐसे पूज्य पिताजी के चरणों में मेरी ओर से प्रणाम कर उन्हें यह कहना—

नैवाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च मैथिली।
अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति च॥ १६॥

मुझे, लक्ष्मण और सीता को न अयोध्या छूटने का शोक है और न वनवासी होने का ही कोई दुःख है।

चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसि क्षिप्रमागतान्॥ १७॥

चौदह वर्ष का वनवास समाप्त करने पर आप लक्ष्मण और सीता सहित मुझे शीघ्र ही, फिर अयोध्या में आया हुआ देखेंगे।

एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे।
अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः॥ १८॥

हे सुमन्त्र! महाराज से यह कहकर मेरी माता कौसल्या, अन्य देवियों और माता कैकेयी से भी ये बातें बार-बार कह देना।

आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम्।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च॥ १९॥

माता कौसल्या से चरणस्पर्श-पूर्वक मेरी, सीता और लक्ष्मण की कुशलक्षेम और आरोग्यता कहना।

निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः शोककर्शितः।
तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत्॥ २०॥

इस प्रकार समझा-बुझा कर जब श्रीराम ने सुमन्त्र को लौटाना चाहा तब सुमन्त्र उनकी बातें सुन, स्नेहवश श्रीराम से बोले—

कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम्।
तव तावद्वियोगेन पुत्रशोकाकुलामिव॥ २१॥

हे राम! जो अयोध्या नगरी आपके वियोग से पुत्र-वियोग के समान व्याकुल हो रही है, उस नगरी में मैं आपके बिना लौट कर कैसे जाऊँगा?

दैन्यं हि नगरी गच्छेद् दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम्।
सूतावशेषं स्व सैन्यं हतवीरमिवाहवे॥ २२॥

इस शून्य रथ को देखकर सम्पूर्ण अयोध्या नगरी इस प्रकार दीनता को प्राप्त हो जायेगी जिस प्रकार संग्राम में महारथी के मर जाने पर सूतावशेष रथ को देखकर सेना की होती है।

अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया।
नीतोऽसौ मातुलकुलं सन्तापं मा कृथा इति॥ २३॥

अयोध्या में जाकर मैं देवी कौसल्या से क्या कहूँगा? क्या मैं यह कहूँ कि मैं तुम्हारे पुत्र को मामा के घर पहुँचा आया हूँ, अब आप शोक न करें।

तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि॥ २४॥

हे अनघ! मैं आपके बिना अयोध्या नहीं लौटूँगा। आप मुझे भी अपने साथ वन में चलने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

यदि मे याचमानस्य त्यागमेव करिष्यसि।
सरथोऽग्निं प्रवेक्ष्यामि त्यक्तमात्र इह त्वया॥ २५॥

यदि इतना गिड़गिड़ाने पर भी आप मेरा त्याग ही करेंगे तो आपके द्वारा परित्यक्त मैं रथ सहित अग्नि में प्रविष्ट हो, भस्म हो जाऊँगा।

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्यं भवितुं प्रत्यनन्तरः।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः॥ २६॥

आप प्रसन्न हों और मुझे अपना अनुचर बनाकर अपने साथ ले चलें। आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे कह दें—हे सुमन्त्र! तुम मेरे साथ वन को चलो।

वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः।
यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः॥ २७॥

मेरी यह परम अभिलाषा है कि वनवास की समाप्ति पर मैं इसी रथ में बैठाकर आपको अयोध्यापुरी में ले चलूँ।

एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः।
रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत्॥ २८॥

सुमन्त्र के इस प्रकार दीनतापूर्वक बार-बार प्रार्थना करने पर भृत्यवत्सल श्रीराम सुमन्त्र से बोले—

जानामि परमां भक्तिं मयि ते भर्तृवत्सल।
शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः॥ २९॥

हे स्वामिभक्त सुमन्त्र! अपने प्रति तुम्हारे अनुराग को मैं भली-भाँति जानता हूँ, परन्तु मैं जिस कारणवश तुम्हें अयोध्या भेज रहा हूँ, उसे सुनो।

नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः॥ ३०॥

तुम्हारे अयोध्या लौटने पर तुम्हें देखकर मेरी मझली माता कैकेयी को यह विश्वास हो जायेगा कि राम वन को चला गया।

परितुष्टा हि सा देवी वनवासं गते मयि।
राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम्॥ ३१॥

मेरे वनगमन का विश्वास होने पर वह सन्तुष्ट हो जायेगी और पूज्य पिताजी के धार्मिक और सत्यवादी होने में भी उसे कोई शंका नहीं रहेगी।

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सरथस्त्वं पुरीं व्रज।
सन्दिष्टश्चासि यानार्थांस्तांस्तान् ब्रूयास्तथा तथा॥ ३२॥

हे सुमन्त्र! मेरी तथा महाराज दशरथ की प्रसन्नता के लिए तुम अयोध्यापुरी लौट जाओ और मैंने जो-

जो सन्देश जिस जिसके लिए दिये हैं वे सब उस-उसके पास ज्यों के त्यों पहुँचा दो।

इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।
गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत्॥ ३३॥

सुमन्त्र को इस प्रकार बारम्बार समझा-बुझा और सान्त्वना प्रदान कर श्रीराम गुह से ये उत्साहवर्द्धक एवं युक्तियुक्त वचन बोले—

नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने।
अवश्यं ह्याश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्गतो विधिः॥ ३४॥

हे निषाद! अब मेरे लिए ऐसे वन में जहाँ आत्मीयजन रहते हों, रहना उपयुक्त नहीं। अब हम कहीं पर्णकुटी बना कर उसमें वास करेंगे। (यह गुह की उस बात का उत्तर है जो उसने अपने राज्य का शासन करने और वहीं रहने के लिए श्रीराम से कही थी।)

जटा कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय।
तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत्॥ ३५॥

मैं जटाधारण कर वन में प्रवेश करूँगा, इसलिए हे गुह! तुम बरगद का दूध ले आओ। यह सुन गुह तुरन्त ही बरगद का दूध ले आया।

लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः।
दीर्घबाहुर्नरव्याघ्रो जटिलत्वमधारत्॥ ३६॥

श्रीराम ने उस बरगद के दूध से अपनी और लक्ष्मण की जटा बनाई। महाबाहु एवं पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण जटा रखकर तपस्वी बन गये।

तौ तदा चीरवसनौ जटामण्डलधारिणौ।
अशोभेतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ३७॥

उस समय चीर-वसन तथा जटामण्डल धारण करनेवाले वे दोनों भाई ऋषियों की भाँति सुशोभित हुए।

ततो वैखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणाः।
व्रतमादिष्टवान् रामः सहायं गुहमब्रवीत्॥ ३८॥

तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण वानप्रस्थ मार्ग का अवलम्बन और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण कर अपने सहायक निषादराज से बोले—

अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा।
भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम्॥ ३९॥

हे गुह! तुम सेना, कोश, दुर्ग और राष्ट्र की रक्षा में सदा सावधान रहना, क्योंकि मेरी सम्मति में राज्य का संचालन और रक्षण बहुत कठिन कार्य है।

ततस्तं समनुज्ञाय गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः।
जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः॥ ४०॥

इस प्रकार गुह को समझाकर इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीराम निश्चिन्त होकर फुर्ति से सीता और लक्ष्मण के साथ घाट की ओर चल दिये।

स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः।
तित्तीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ४१॥

गंगा नदी के तट पर नाव को उपस्थित देख श्रीराम ने वेगवती गङ्गा को पार उतरने की इच्छा से लक्ष्मणजी से कहा—

आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः।
सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम्॥ ४२॥

हे नरकेसरी! सामने उपस्थित नौका पर मनस्विनी सीता को चढ़ाकर तुम भी इस पर सवार हो जाओ।

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन्।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः॥ ४३॥

भाई की ऐसी आज्ञा पा तदनुसार ही लक्ष्मण ने पहले सीताजी को नाव पर चढ़ाया और फिर स्वयं भी आरूढ़ हुए।

अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः।
ततो निषादाधिपतिर्गुहो ज्ञातीनचोदयत्॥ ४४॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीराम स्वयं भी नाव पर चढ़े। सबके नाव पर सवार हो जाने के पश्चात् गुह ने अपने बन्धुओं को नाव चलाने की आज्ञा दी।

राघवोऽपि महातेजा नावमारुह्य तां ततः।
ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः॥ ४५॥

महातेजस्वी राम ने नाव पर बैठ ब्राह्मण और क्षत्रियों के सदृश अपने कल्याण के लिए नावारोहण

सम्बन्धी वेद-मन्त्रों[1] का जप किया।

ततस्तैश्चोदिता सा नौः कर्णधारसमाहिता।
शुभस्फ्यवेगाभिहता शीघ्रं सलिलमत्यगात्॥ ४६॥

कुशल नाविक द्वारा सञ्चालित वह नौका वेगवान् पतवार और डाँडों के जोर से शीघ्रतापूर्वक जल में चलने लगी।

तीरं तु दक्षिणं प्राप्य नावं हित्वा नरर्षभः।
प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परन्तपः॥ ४७॥

शत्रु-मर्दन पुरुषोत्तम श्रीराम ने दक्षिण तट पर पहुँच कर नाव को छोड़ दिया तथा अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ वहाँ से आगे के लिए प्रस्थान किया।

अथाब्रवीन् महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम्।
भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा॥ ४८॥

चलते हुए, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—देखो! जन रहित स्थान हो या जन सहित, तुम सीता की रक्षा में सदा सावधान रहना।

अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु।
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि त्वां च सीतां च पालयन्॥ ४९॥

हे लक्ष्मण! तुम तो आगे चलो और तुम्हारे पीछे सीता चले। तुम्हारे दोनों के पीछे तुम्हारी रक्षा करता हुआ मैं चलूँगा।

श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः।
अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः॥ ५०॥

श्रीराम के ये वचन सुन लक्ष्मण आगे, उनके पीछे सीता और सीता के पीछे श्रीराम चले।

स लोकपालप्रतिमप्रभावस्
तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम्।
ततः समृद्धाञ्शुभसस्यमालिनः
क्रमेण वत्सान् मुदितानुपागमत्॥ ५१॥

लोकपालों के समान अमित प्रभाववाले तथा वर देनेवाले महात्मा राम उस महानदी=गङ्गा को पार करके थोड़ी ही देर में धन-धान्य से समृद्ध, रमणीय तथा प्रसन्न लोगों से परिपूर्ण वत्स देश में जा पहुँचे।

◀ एकचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४१)

राम का विलाप—

वृक्षमेकमुपागम्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम्॥ १॥

लोकाभिराम श्रीराम विश्राम के लिए एक वृक्ष के नीचे जा टिके। वहाँ अपनी सायंकालीन सन्ध्या से निवृत्त होकर वे लक्ष्मणजी से बोले—

ध्रुवमद्य महाराजो दुःखं स्वपिति लक्ष्मण।
कृतकामा तु कैकेयी तुष्टा भवितुमर्हति॥ २॥

हे लक्ष्मण! निश्चय ही आज पिताजी दुःख की नींद सोयेंगे और सफल-मनोरथ कैकेयी आज प्रसन्न होगी।

---

१. नौका में बैठते समय निम्न मन्त्र का जाप किया जाता है—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥

—ऋ० १०।६३।९

महर्षि दयानन्द ने 'संस्कार-विधि' विवाह-प्रकरण में एक अन्य मन्त्र दिया है। निम्न मन्त्र को बोलकर नौका में बैठना चाहिए—

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।

और नौका से उतरते समय—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥

—ऋ० १०।५३।८

अपीदानीं तु कैकेयी सौभाग्यमदमोहिता।
कौसल्यां च सुमित्रां च सम्प्रबाधेत मत्कृते॥ ३॥

मुझे डर है कि कहीं सौभाग्यमद से गर्वित कैकेयी मेरे कारण माता कौसल्या और सुमित्रा को सताती न हो।

मा स्म मत्कारणाद्देवी सुमित्रा दुःखमावसेत्।
अयोध्यामित एव त्वं काल्ये प्रविश लक्ष्मण॥ ४॥

मेरे कारण कौसल्या एवं सुमित्रा कष्ट न भोगने पावें, अतः हे लक्ष्मण! तुम कल ही अयोध्या पहुँच जाओ।

विलप्योपरतं रामं गतार्चिषमिवानलम्।
समुद्रमिव निर्वेगमाश्वासयत लक्ष्मणः॥ ५॥

जब विलाप कर श्रीराम ज्वाला रहित अग्नि और वेग रहित समुद्र के समान शान्त हो गये तब लक्ष्मणजी उन्हें समझाने लगे—

नैतदौपायिकं राम यदिदं परितप्यसे।
विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ॥ ६॥

हे राम! आपको इस प्रकार सन्तप्त होना उचित नहीं, क्योंकि आपके दुःखी होने से मुझे और सीताजी को भी दुःख होता है।

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ॥ ७॥

हे राम! मैं और सीता आपके बिना एक क्षण भी उसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते जिस प्रकार जल से निकली हुई मछली एक क्षण भर भी नहीं जी सकती।

न हि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं वाऽपि त्वया विना॥ ८॥

हे शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले! मैं आपके विना न तो अपने पिता को, न अपने सहोदर शत्रुघ्न को और न अपनी जननी माता सुमित्रा को ही देखना चाहता हूँ। यही नहीं मुझे तो आपके बिना स्वर्ग जाने की भी इच्छा नहीं है।

स लक्ष्मणस्योत्तमपुष्कलं वचो
निशम्य चैवं वनवासमादरात्।
समाः समस्ता विदधे परन्तपः
प्रपद्य धर्मं सुचिराय राघवः॥ ९॥

इस प्रकार लक्ष्मण की उपदेशपूर्ण उत्तम बातों को आदरपूर्वक सुनकर शत्रुहन्ता राम ने वानप्रस्थाश्रमोचित नियमों का पालन करते हुए चौदह वर्ष तक वन में रहने का निश्चय किया।

➤ द्विचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४२)

भरद्वाज के आश्रम में—

ते तु तस्मिन्महावृक्षे उषित्वा रजनीं शिवाम्।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतस्थिरे॥ १॥

वे तीनों उस सुन्दर रात्रि को महावट वृक्ष के नीचे बिताकर प्रातःकाल विमल भुवनभास्कर के उदय होने पर वहाँ से आगे चल दिये।

यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाऽभिप्रवर्तते।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम्॥ २॥

जिस स्थान पर भागीरथी गङ्गा और यमुना का सङ्गम होता था, उस स्थान को अपना लक्ष्य बनाकर वे महावन में होकर चले जाते थे।

यथा क्षेमेण सम्पश्यन् पुष्पितान् विविधान्द्रुमान्।
निवृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ ३॥

मार्ग में सुखपूर्वक उठते-बैठते तथा फल-फूलों से परिपूर्ण वनों की शोभा निहारते हुए वे चले जाते थे। जब थोड़ा दिन शेष रहा तब श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुद्गतम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः[१]॥ ४॥

१. किसी संस्कृत कवि ने इस प्रसङ्ग का चित्रण यूँ किया

हे लक्ष्मण! देखो, प्रयाग के चारों ओर जो धुआँ उठ रहा है वह मानो भगवान् अग्निदेव की पताका फहरा रही है। इससे प्रतीत होता है कि महर्षि भरद्वाज का आश्रम यहीं कहीं पास ही है।

नूनं प्राप्ताःस्म संभेदं गङ्गायमुनयोर्वयम्।
तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणोर्वारिघर्षजः॥ ५॥

निश्चय ही हम लोग गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर पहुँच गये हैं, क्योंकि दोनों नदियों के परस्पर संघर्षण का शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहा है।

धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे।
गङ्गायमुनयोः सन्धौ प्रापुर्निलयं मुनेः॥ ६॥

इस प्रकार सुखपूर्वक चलते हुए एवं परस्पर वार्तालाप करते हुए वे दोनों धनुर्धारी भाई सूर्य के अस्त होते-होते गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर स्थित महर्षि भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे।

हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागं कृताञ्जलिः।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीताया चाभ्यवादयत्॥ ७॥

महाभाग महर्षि भरद्वाज को जो अभी-अभी अग्निहोत्र समाप्त करके चुके थे, देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता सहित उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन् रामलक्ष्मणौ।
भार्या ममेयं वैदेही कल्याणी जनकात्मजा॥ ८॥

अपना परिचय देते हुए राम ने कहा—भगवन्! हम दोनों राम और लक्ष्मण महाराज दशरथ के पुत्र हैं औ यह कल्याणी सीता मेरी धर्मपत्नी और राजा जनक की पुत्री है।

पित्रा नियुक्ता भगवन् प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम्।
धर्ममेव चरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः॥ ९॥

भगवन्! हम लोग पिताजी की आज्ञानुसार तपोवन में प्रवेश करेंगे और फल मूल खाते हुए धर्म का आचरण करेंगे।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः॥ १०॥

बुद्धिमान् राजकुमार राम के इस वचन को सुनकर धर्मात्मा भरद्वाज उनके स्वागतार्थ चरण धोने के लिए जल, अर्घ्य-मुख धोने के लिए जल और मधुपर्क लाये।

नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान्।
तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवान्वकल्पयत्॥ ११॥

महर्षि भरद्वाज ने उनके लिए नाना प्रकार के अन्न, रस तथा वन में उत्पन्न होनेवाले फल-फूल दिये और रहने के लिए स्थान आदि की व्यवस्था की।

प्रतिगृह्य च तामर्चामुपविष्टं स राघवम्।
भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा॥ १२॥

महर्षि के उस आतिथ्य को स्वीकार कर जब श्रीराम निवृत्त होकर बैठ गये तब महर्षि भरद्वाज

है—

किमयं दृश्यते तात धूमपुञ्जोऽयमग्रतः।
प्रयागो दृश्यते तात यजन्तेऽत्र महर्षयः॥

लक्ष्मणजी ने पूछा—हे भाई! ये जो सामने धूमपुञ्ज-सा उठ रहा है वह क्या है? यह सुन श्रीराम ने उत्तर दिया—भाई लक्ष्मण! यह प्रयाग है। यहाँ महर्षि लोग यज्ञ करते हैं। यह उसी का धुआँ है।

प्रयाग का नाम प्रयाग क्यों हुआ—'**प्रकृष्टेन यजते यस्मिन् स प्रयागः**'—जिसमें प्रकृष्टरूप से यज्ञ हो उसका नाम प्रयाग है।

किसी अन्य कवि ने एक अत्यन्त सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

यदि कदापि पुरा पतिताश्रवः
श्रुतिगता हि द्विजा न च वाऽन्यथा।
परमियं वसुधाऽत्र विना क्रतुं
परिव्रताऽश्रुजलैरिति चित्रता॥

प्राचीनकाल में यदि किसी की आँखों से आँसू निकलते थे तो केवल यज्ञ के धुआँ से वेद के विद्वानों की आँखों से। अन्यथा प्रजा की आँखों से कभी आँसू निकलते ही नहीं थे। यह भारतवर्ष की विचित्रता थी।

उनसे ये धर्मयुक्त वचन बोले—

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्यामि त्वामिहागतम्।
श्रुतं तव मया चेदं विवासनमकारणम्॥ १३॥

हे काकुत्स्थ! बहुत दिनों के पश्चात् आज मैं पुनः तुम्हें इस आश्रम में आया हुआ देखता हूँ। आपके अकारण वनवास के विषय में भी मैंने सुन लिया है।

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम्॥ १४॥

महानदियों—गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर यह पवित्र, रम्य तथा एकान्त खुला स्थान है। आप यहाँ सुखपूर्वक वास करें।

एवमुक्तः स वचनं भरद्वाजेन राघवः।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः॥ १५॥

भरद्वाज के ऐसा कहने पर सब प्राणियों के हित में रत श्रीराम यह शुभ वाक्य बोले—

भगवन्नितः आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम्॥ १६॥
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये॥ १७॥

भगवन्! यह वास-स्थान जनपद और पुरवासी लोगों को बहुत निकट पड़ेगा, अतः मुझे और सीताजी को देखने के लिए वे लोग सरलतापूर्वक यहाँ आ जाया करेंगे, इसलिए मुझे यहाँ रहना उचित नहीं जान पड़ता।

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा॥ १८॥

भगवन्! कोई ऐसा एकान्त और उत्तम स्थान आश्रम के लिए बताइए जहाँ सुख पाने योग्य सीताजी का मन लग सके।

एतत् श्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः।
राघवस्य ततो वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत्॥ १९॥

श्रीराम के इन वचनों को सुन महामुनि भरद्वाज उनसे यह अर्थपूर्ण वचन बोले—

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः सर्वतः सुखदर्शनः॥ २०॥

हे वत्स! यहाँ से दस कोस पर महर्षियों से सेवित, चारों ओर नयनाभिराम दृश्यों से युक्त, पवित्र पर्वत है, वहाँ पर तुम सुखपूर्वक निवास कर सकोगे।

तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः।
प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतः कथाः॥ २१॥

प्रयाग में महर्षि के पास में आये हुए राम से अनेक प्रकार की विचित्र और मनोहर कथा-वार्ता होते हुए पुण्यमयी रात्रि आ गई।

सीता तृतीयः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम्॥ २२॥

सुख से रहने योग्य राम, लक्ष्मण एवं सीता ने मार्ग चलने से परिश्रान्त होकर वह रात्रि महर्षि भरद्वाज के रम्य आश्रम में सुखपूर्वक व्यतीत की।

➤ त्रिचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४३)

यमुना के पार—

उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिन्दमौ।
महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति॥ १॥

शत्रुओं का दमन करनेवाले श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि भरद्वाज के आश्रम में एक रात्रि बिताकर, प्रातःकाल होते ही महर्षि को प्रणाम कर चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थानित हुए।

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः य चकार ह।
प्रस्थितांश्चैव तान् प्रेक्ष्य पिता पुत्रानिवान्वगात्॥ २॥

महर्षि भरद्वाज ने उनके लिए स्वस्त्ययन=वेद मन्त्रों का पाठ किया। उनको वहाँ से प्रस्थित हुआ देख महर्षि कुछ दूर उनके पीछे-पीछे गये जिस प्रकार

पिता अपने योग्य पुत्रों के पीछे जाता है।

अथ पन्थानमावेद्य महर्षिः संन्यवर्तत।
उपावृत्ते मुनौ तस्मिन् रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ३॥

कुछ दूर उनके साथ जा और उन्हें मार्ग बता महर्षि लौट आये। जब भरद्वाज लौट गये तब श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

कृतपुण्याः स्म सौमित्रे मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते।
इति तौ पुरुषव्याघ्रौ मन्त्रयित्वा मनस्विनौ॥ ४॥
सीतामेवाग्रतः कृत्वा कालिन्दीं जग्मतुर्नदीम्।
अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतोवहां नदीम्॥ ५॥
चिन्तामापेदिरे सर्वे नदीजलतितीर्षवः।
तौ काष्ठसङ्घाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्॥ ६॥

हे लक्ष्मण! हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं तभी तो मुनिवर भरद्वाज हमारे ऊपर इतनी अनुकम्पा कर रहे हैं। मनस्वी एवं नरकेसरी दोनों राजकुमार इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सीताजी को आगे करके यमुना नदी के पास पहुँचे। अत्यन्त वेगवाली उस यमुना नदी के पास पहुँच कर वे सब सोचने लगे कि इस नदी को किस प्रकार पार किया जाए। सोच-विचार के पश्चात् दोनों भाइयों ने बहुत सारी लकड़ियाँ एकत्र कर एक बेड़ा तैयार किया।

आरोप्य सीतां प्रथमं सङ्घाटं परिगृह्य तौ।
ततः प्रतरेतुर्युक्तौ वीरौ दशरथात्मजौ॥ ७॥

सीताजी को उस बेड़े पर बैठाकर राम और लक्ष्मण उस बेड़े को पकड़ कर उसे प्रसन्नतापूर्वक तैराने लगे।

ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात्।
श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम्॥ ८॥

यमुना को पार कर और उस बेड़े को वहीं छोड़ वे यमुना तट के वन से प्रस्थान करते हुए श्यामवर्ण, हरे-हरे पत्तोंवाले तथा शीतल छाया से युक्त एक वट वृक्ष के नीचे पहुँचे।

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते
शुभे वने वारणवानरायुते।
समं नदीवप्रमुपेत्य सम्मतं
निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः॥ ९॥

दोनों भाइयों ने सीता सहित उस मनोहर वन में जो मयूरों के शब्दों से निनादित तथा हाथी और वानरों से युक्त था, विहार कर नदी तट पर एक सुन्दर, समतल स्थान पर जो सीताजी को भी पसन्द था— निर्भय होकर वास किया।

◀ चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ▶ (४४)

चित्रकूट में निवास—

अथ रात्र्यां व्यतीतायामवसुप्तमनन्तरम्।
प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुनन्दनः॥ १॥

रात्रि व्यतीत होने पर श्रीराम ने स्वयं जागकर कुछ-कुछ सोये हुए भाई लक्ष्मण को धीरे-धीरे जगाया[१]।

सौमित्रे शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम्।
सम्प्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परन्तप॥ २॥

हे लक्ष्मण! देखो, ये वन के तोता, मैना, कोयल आदि पक्षी कैसे मधुर स्वर से चहक रहे हैं। हे परन्तप!

---

१. लोक में ऐसी भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि लक्ष्मणजी वनवास के चौदह वर्षों में न तो सोये ही थे और न ही वे कोई आहार लेते थे। उक्त श्लोक से लक्ष्मणजी के न सोने के प्रवाद का खण्डन हो जाता है। जब वे सोते ही नहीं थे तो राम ने उन्हें जगाया कैसे? इस श्लोक के अनुवाद में तिलक टीकाकार लिखते हैं—

एतेन चतुर्दशवर्षपर्यन्तं लक्ष्मणः स्वापहीनोऽनाहारश्चेति लोकप्रवादोऽपास्तः।

मार्ग चलने के लिए यही उत्तम समय है, अतः हमें यहाँ से चल देना चाहिए।

स सुप्तः समये भ्रात्रा लक्ष्मणः प्रतिबोधितः।
जहौ निद्रां च तन्द्रां च प्रसक्तं च पथि श्रमम्॥ ३॥

जब श्रीराम ने सोये हुए लक्ष्मणजी को जगाया तब उन्होंने निद्रा, आलस्य और मार्ग चलने की थकावट को त्याग दिया।

ततः उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम्।
पन्थानमृषिणाऽदिष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः॥ ४॥

तदनन्तर वे सब उठकर तथा यमुना के पवित्र जल में स्नान करके ऋषि के बताये हुए मार्ग से चित्रकूट की ओर चल दिये।

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्॥ ५॥

इस प्रकार सीता को साथ लिये हुए परस्पर वार्तालाप करते हुए एवं पैदल चलते हुए वे मनोरम एवं रम्य चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे।

मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे॥ ६॥

(उस पर्वत पर पहुँच कर श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—) हे सौम्य! यह पर्वत कैसा मनोहर है! यह अनेक प्रकार के वृक्ष और लताओं से युक्त तथा अनेक प्रकार के फल एवं मूलों से परिपूर्ण होने के कारण कैसा रमणीक दीख पड़ता है। हम लोगों का निर्वाह यहाँ सरलतापूर्वक हो जायेगा।

मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्शिलोच्चये।
अयं वासो भवेत्तावदत्र सौम्य रमेमहि॥ ७॥

इस उन्नत पर्वत पर महात्मा और मुनि लोग भी निवास करते हैं। यह स्थान वास करने योग्य है, अतः हे सौम्य! हम लोग यहीं पर आनन्दपूर्वक रहेंगे।

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥ ८॥

ऐसा निश्चय कर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता—तीनों ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में जा, उन्हें हाथ जोड़कर प्रमाण किया।

तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित्।
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तु निवेद्य च॥ ९॥

धर्मज्ञ महर्षि वाल्मीकि ने प्रसन्न होकर उनका सत्कार किया और "आपका स्वागत हो"—ऐसा कहकर बैठने के लिए आसन दिया।

सन्निवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः।
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः॥ १०॥

श्रीराम महर्षि वाल्मीकि को अपना यथोचित परिचय दे और वनवास का कारण बतला लक्ष्मणजी से बोले—

लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः॥ ११॥

हे लक्ष्मण! तुम उत्तम एवं दृढ़ काष्ठों को एकत्र कर यहाँ वास के लिए एक पर्णकुटी बनाओ, क्योंकि हे सौम्य! यहाँ बसने की मेरी हार्दिक इच्छा है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान्।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः॥ १२॥

यह सुन शत्रु-मर्दन लक्ष्मणजी विविध प्रकार के काष्ठ ले आये और उनसे एक पर्णशाला निर्मित की।

तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां
यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम्।
वासाय सर्वे विविशुः समेताः
सभां यथा देवगणाः सुधर्माम्॥ १३॥

जिस प्रकार देवगण सुधर्मा नामक सभा में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मण और सीता ने एक साथ वृक्षों के पत्तों से आच्छादित, उचित स्थान पर निर्मित, मनोहर एवं वायुरहित पर्णशाला में रहने के लिए प्रवेश किया।

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं
नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्।
ननन्द रामो मृगपक्षिजुष्टां
जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात्॥ १४॥

सुन्दर एवं रमणीक चित्रकूट पर्वत पर पहुँच कर

तथा मृगों और पक्षियों से युक्त स्वच्छ, मधुर जलवाली प्रसिद्ध माल्यवती नदी को प्राप्त करके श्रीराम ऐसे आनन्दित हुए कि अयोध्या के प्रवास के दुःख को भूल गये।

(**विशेष**—यहाँ तक महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम के अयोध्या से चित्रकूट तक की यात्रा का वर्णन किया है। अगले सर्ग से राम-वियोग में अयोध्या में घटित घटनाओं का आरम्भ होता है। स्मरण रहे श्रीराम अयोध्या से चित्रकूट पाँच दिन में पहुँचे थे। तीन दिन उन्होंने केवल जल पीकर निर्वाह किया, चौथे दिन से कन्दमूल-फल आदि का सेवन प्रारम्भ किया।)

◀ पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४५)

सुमन्त्र की वापसी—

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान्।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः॥ १॥

श्रीराम से आज्ञा पा सुमन्त्र उत्तम घोड़ों को रथ में जोतकर, अत्यन्त उदास हो अयोध्या नगरी की ओर चल दिये।

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह॥ २॥

शृङ्गवेर पुर से प्रस्थानित होकर दूसरे दिन सायंकाल सुमन्त्र आनन्द रहित अयोध्या नगरी में पहुँचे।

सुमन्त्रमभियान्तं तं शतशोऽथ सहस्रशः।
क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः॥ ३॥

सुमन्त्र को नगर में आया देख सैकड़ों, सहस्रों नागरिक सुमन्त्र की ओर दौड़ पड़े और उससे पूछने लगे—श्रीराम कहाँ हैं?

तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम्।
अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि धार्मिकेण महात्मना॥ ४॥

सुमन्त्र ने उन्हें बताया कि गङ्गा के तट पर पहुँच कर जब धार्मिक महात्मा राम ने मुझे लौटने की आज्ञा दी तब मैं यहाँ आया हूँ।

ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा जनाः।
अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति च चुक्रुशुः॥ ५॥

श्रीराम को गङ्गा पार उतरा जानकर अश्रुपूर्ण मुख अयोध्यावासी 'अहो धिक्कार' ऐसा कहते हुए दीर्घ श्वास लेते हुए 'हा राम! हा राम!' कहकर विलाप करने लगे।

शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम्।
हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम्॥ ६॥

स्थान-स्थान पर टोलियों में खड़े हुए लोगों को सुमन्त्र ने यह कहते हुए सुना—हा! हम लोग तो मारे गये जो इस रथ में श्रीराम को नहीं देख रहे हैं।

स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम्॥ ७॥

राजमार्ग में इस प्रकार का विलाप सुन सुमन्त्र ने अपना मुँह ढक लिया और वे बड़ी शीघ्रता से महाराज दशरथ के देवोपम भवन की ओर चले।

अभिगम्य तमासीनं नरेन्द्रमभिवाद्य च।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत्॥ ८॥

महाराज के पास पहुँच कर सुमन्त्र ने उन्हें प्रणाम किया और श्रीराम ने जो सन्देश दिया था उसे ज्यों-का-त्यों महाराज से निवदेन कर दिया।

स तूष्णीमेव तत् श्रुत्वा राजा विभ्रान्तचेतनः।
मूर्च्छितो न्यपतद् भूमौ रामशोकाभिपीडितः॥ ९॥

महाराज ने इन बातों को शान्तिपूर्वक सुना। तदनन्तर पुत्र-वियोग शोक से व्याकुल होने के कारण

वे मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े।[१]

सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत्॥ १०॥

सुमित्रा की सहायता से महारानी कौसल्या ने भूमि पर पड़े हुए महाराज को उठाया और उनसे बोली—

इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे॥ ११॥

हे महाभाग! दुष्कर कर्म करनेवाले श्रीराम के इस दूत से, जो वन से लौटे हैं, आप वार्तालाप क्यों नहीं करते?

अद्येममनयं कृत्वा व्यपत्रपसि राघव।
उत्तिष्ठ सुकृतं तेऽस्तु शोके न स्यात्सहायता॥ १२॥

हे राघव! राम के वनवासरूपी अन्याय को करके अब आप लज्जित क्यों होते हैं। उठो, उठो, आपका कल्याण हो। अब इस शोक से कोई लाभ नहीं।

देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विस्रब्धं प्रतिभाष्यताम्॥ १३॥

हे देव! जिसके भय से आप सुमन्त्र से राम-विषयक वार्तालाप नहीं कर रहे हो, वह कैकेयी यहाँ नहीं है, अतः आप निःशंक होकर बातचीत करें।

सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा।
धरण्यां निपताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी॥ १४॥

महाराज से ऐसा कहकर शोकाकुल कौसल्या का कण्ठ भर आया और वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं।

≺ षट्चत्वारिंशः सर्गः ≻ (४६)

दशरथ-विलाप—

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतः पुनः।
अथाजुहाव तं सूतमुवाच परमार्तवत्॥ १॥

कुछ देर पश्चात् जब महाराज उपचार द्वारा सचेत हुए तब उन्होंने सूत को बुलाकर अत्यन्त दीन एवं दुःखी होकर कहा—

सूत यद्यस्ति ते किञ्चिन् मया तु सुकृतं कृतम्।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः सन्त्वरयन्ति माम्॥ २॥

हे सूत! यदि मैंने तुम्हारा लेशमात्र भी उपकार किया हो तो तुम मुझे शीघ्र राम के पास पहुँचा दो, क्योंकि मेरे प्राण शरीर से निकलने के लिए शीघ्रता कर रहे हैं।

यद्यद्यापि ममैवाज्ञा निवर्तयतु राघवम्।
न शक्ष्यामि विना रामं मुहूर्तमपि जीवितुम्॥ ३॥

अथवा यदि अब भी श्रीराम मेरी आज्ञा मान वन से लौट सकें तो तुम जाकर उन्हें लौटा लाओ, क्योंकि राम के बिना मैं एक मुहूर्त भी जी नहीं सकता।

अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम्।
इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम्॥ ४॥

हा! इससे भी अधिक क्या कोई दुःख की बात होगी कि मैं मरते समय भी इक्ष्वाकुकुलनन्दन श्रीराम को नहीं देख सकता।

हा राम रामानुज हा हा वैदेही तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्॥ ५॥

हा राम! हा लक्ष्मण! हा तपस्विनी सीता! तुम

---

१. किसी कवि ने इस घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है—

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः॥

मन्त्रिप्रवर! रथ में राम हैं? यदि रथ राम से खाली है तो निश्चय ही काल ने इसे मुझे लेने के लिए भेजा है।

नहीं जानते कि मैं अनाथ के समान अत्यन्त कष्ट से मर रहा हूँ।

इति विलपति पार्थिवे प्रनष्टे
करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवी
भयमगमत्पुनरेव राममाता॥ ६॥

महाराज दशरथ जब राम के लिए अत्यन्त करुणापूर्ण विलाप करते-करते मूर्छित हो गये तब राममाता महारानी कौसल्या देवी को उनके ऐसे वचन सुन दुगुणा भय हुआ—कौसल्या भयभीत हुई कि कहीं महाराज के प्राण पखेरु न उड़ जाएँ।

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः।
धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत्॥ ७॥

तदनन्तर रोगग्रस्त के समान भूमि पर निर्जीव-सी पड़ी हुई एवं काँपती हुई कौसल्या सुमन्त्र से बोली—

नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः।
तान् विना क्षणमप्यत्र जीवितुं नोत्सहे ह्यहम्॥ ८॥

हे सूत! जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता हैं तुम मुझे भी वहीं ले चलो, क्योंकि उनके विना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती।

निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान्नय मामपि।
अथ तान्नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम्॥ ९॥

रथ को वापस लौटाओ और मुझे भी दण्डक वन में पहुँचा दो। यदि मैं उनके पास न पहुँच सकी तो यमालय-श्मशान में पहुँच जाऊँगी, अर्थात् मर जाऊँगी।

बाष्पवेगोपहतया स वाचा सज्जमानया।
इदमाश्वासयन् देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्॥ १०॥

यह सुन सुमन्त्र विकल हो तथा हाथ जोड़कर, गला रुँध जाने के कारण स्खलित वाणी से कौसल्या देवी को सान्त्वना देते हुए बोले—

न शोच्यास्ते न चात्मानः शोच्यो नापि जनाधिपः।
इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम्॥ ११॥

हे देवि! तुम राम, लक्ष्मण एवं सीता के लिए, अपने लिए और महाराज के लिए तनिक भी चिन्ता मत करो। पिता की आज्ञा मानकर वन जाने का श्रीराम का आदर्श-चरित चिरकाल तक संसार में प्रतिष्ठित रहेगा।

◀ सप्तचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४७)

कौसल्या का उपालम्भ और दशरथ का उन्हें प्रसन्न करना—

वनं गते धर्मरते रामे रमयतां वरे।
कौसल्या रुदती स्वार्ता भर्तारमिदमब्रवीत्॥ १॥

प्रियतम धर्मनिष्ठ राम के वन-गमन के कारण विकल हो रुदन करती हुई कौसल्या अपने पति महाराज दशरथ को उपालम्भ देते हुए बोली—

यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः॥ २॥

तीनों लोकों में आपकी यह कीर्ति फैली हुई है कि महाराज बड़े दयालु, उदार और प्रियवादी हैं।

त्वया त्वकरुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः।
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने॥ ३॥

परन्तु आपने राम आदि मेरे प्रियजनों को राज्य से निर्वासित कर बड़ा निर्दयता-पूर्ण कार्य किया है। जो सुख से रहने योग्य थे वे दीन होकर वन में मारे-मारे फिर रहे हैं।

द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रदृष्टः सनातनः।
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते॥ ४॥

यदि तुम द्विजों द्वारा आचरित, शास्त्रोक्त सनातन धर्म को मानते तो क्या ऐसे धर्म-निरत पुत्र को कभी देश-निकाला दे सकते थे?

गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नेह विद्यते॥ ५॥

हे महाराज! नारी के लिए प्रथम आश्रय पति, दूसरा पुत्र और तीसरा सहारा निकट सम्बन्धियों का होता है। स्त्री के लिए चौथा कोई सहारा नहीं है।

तत्र त्वं चैव मे नास्ति रामश्च वनमाश्रितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा निहता त्वया॥ ६॥

इन आश्रयों में आप तो मेरे हैं ही नहीं, दूसरे सहारे राम को आपने वन में भेज दिया। आपको छोड़कर मैं वन में भी नहीं जा सकती, अतः आपने मेरा सर्वनाश ही कर दिया।

हतं त्वया राज्यमिदं सराष्ट्रं
हतस्तथाऽऽत्मा सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्राऽस्मि हताश्च पौराः
सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ॥ ७॥

आपने राम को वन भेजकर अनेक छोटे राज्यों सहित इस विशाल राज्य का, मन्त्रियों सहित अपना, पुत्र सहित मेरा और समस्त अयोध्यावासियों का सत्यानाश कर दिया। आपके इस कार्य से केवल दो ही प्रसन्न हैं—आपकी पत्नी कैकेयी और आपका पुत्र भरत।

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया।
श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः॥ ८॥

इस प्रकार शोकसन्तप्त तथा क्रुद्ध कौसल्या के उक्त कठोर वचनों को सुनकर महाराज दुःखी होकर सोचने लगे—

तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम्।
यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना॥ ९॥

सोचते सोचते उन्हें अपना एक पूर्वकृत[१] पाप कर्म स्मरण हो आया जिसे शब्दवेधी बाण चलाननेवाले दशरथ ने पहले कभी अज्ञान-वश कर डाला था।

विमनास्तेन शोकेन रामशोकेन च प्रभुः।
द्वाभ्यामपि महाराजः शोकाभ्यामन्वतप्यत॥ १०॥

उस शोक से तथा राम के वियोग से महाराज उदास हो गये। दोनों शोकों से महाराज सन्तप्त एवं विकल हो गये।

दह्यमानः स शोकाभ्यां कौसल्यामाह भूपतिः।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः॥ ११॥

इन दोनों शोकों से दग्ध और दुःखित महाराज दशरथ काँपते हुए हाथ जोड़कर तथा मुख नीचा करके कौसल्या को प्रसन्न करने के लिए उससे बोले—

प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाऽञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि॥ १२॥

हे कौसल्या! मैं हाथ जोड़ कर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। तुम प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि तुम तो दयालु हो और विरोधियों के साथ भी प्रेम करती हो, फिर अपनों के साथ तो कहना ही क्या?

भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान् निर्गुणोऽपि वा।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम्॥ १३॥

हे देवि! यह तो तुम जानती ही हो कि धर्म का आचरण करनेवाली स्त्री के लिए उसका पति ही—चाहे वह गुणवान् हो या निर्गुण—प्रत्यक्ष देवता होता है।

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा।
नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम्॥ १४॥

सदा धर्माचरण में तत्पर और संसार की भलाई-बुराई तथा ऊँच-नीच को समझनेवाली तुम्हें शोक-सन्तप्त होने पर भी मुझ दुःखी से ऐसे अप्रिय वचन कहना उचित नहीं।

तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम्।
कौसल्या व्यसृजद् बाष्पं प्रणालीव नवोदकम्॥ १५॥

दुःखी महाराज के करुणापूर्ण वचनों को सुनकर

१. इसका विस्तार सहित वर्णन अगले सर्ग में है।

कौसल्या के नेत्रों से इस प्रकार अश्रुधारा बह निकली जिस प्रकार नालियों से वर्षा का जल बहता है।

सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम्।
सम्भ्रमादब्रवीत्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः॥ १६॥

कौसल्या ने महाराज के पद्म के समान जुड़े हुए दोनों हाथों को अपने सिर पर रख लिया। वह रोती हुई भयभीत होकर घबराहट के साथ शीघ्रतापूर्वक बोली—

प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतिताऽस्मि ते।
याचितास्मि हता देव हन्तव्याहं नहि त्वया॥ १७॥

हे देव! आप प्रसन्न हों। मैं अपना सिर आपके चरणों में रखकर आपको प्रणाम करती हूँ। आपका मुझसे याचना करना मेरे लिए मरने के समान कष्टदायी है। आप मुझसे क्षमा न माँग कर मेरे अनुचित कथन के लिए मुझे दण्ड दें।

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमतः।
उभयोर्लोकयोर्वीर पत्या या सम्प्रसाद्यते॥ १८॥

प्रशंसनीय एवं बुद्धिमान् पति जिस स्त्री को विनती करके प्रसन्न करता है—वह स्त्री दोनों लोकों की नहीं रहती।

जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम्।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम्॥ १९॥

हे धर्मज्ञ! मैं स्त्री-धर्म को जानती हूँ और यह भी मानती हूँ कि आप सत्यवादी हैं। मैंने जो कुछ कहा वह सब पुत्र शोक से विकल होकर कहा था।

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः॥ २०॥

शोक मनुष्य के धैर्य को नष्ट कर देता है, शोक शास्त्रज्ञान को नष्ट कर देता है, शोक सर्वनाश कर देता है। शोक से बढ़कर मनुष्य का और कोई शत्रु नहीं है।

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽद्य गण्यते।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम॥ २१॥

राम को वन गये आज पाँचवीं रात्रि है, किन्तु राम वियोग जनित शोक के कारण मेरे लिए तो यह पाँच वर्षों के समान हैं।

एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः।
मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत॥ २२॥

कौसल्याजी के इस प्रकार विनम्रतापूर्ण वचन कहते-कहते सूर्य अस्त हो गया और रात्रि आ गई।

तथा प्रसादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्॥ २३॥

देवी कौसल्या द्वारा कहे गये वाक्यों से प्रसन्न और शोक से उत्पीड़ित होने के कारण महाराज को नींद आ गई।

◀ अष्टचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४८)

श्रवणकुमार-वध कथा—

स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम्।
अर्धरात्रे दशरथः संस्मरन् दुष्कृतं कृतम्॥ १॥

श्रीराम के वन जाने के पश्चात् छठी रात को आधी रात के समय महाराज दशरथ को अपने एक पाप-कृत्य का स्मरण हो आया।

स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत्॥ २॥

पुत्र-शोक से पीड़ित महाराज दशरथ अपने उस पापकर्म का स्मरण कर पुत्र-वियोग से सन्तप्त कौसल्या से बोले—

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः॥ ३॥

हे कल्याणि! मनुष्य अच्छा या बुरा—जैसा भी कर्म करता है उस भले या बुरे कर्म का फल कर्ता को अवश्य मिलता है।

कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृघ्नुः स शोचति फलागमे॥ ४॥

जो व्यक्ति पलाश ढाक के लाल लाल पुष्पों को देखकर फल पाने की अभिलाषा से आम के पेड़ों को कटवा कर पलाश वृक्ष को सींचता है, फल लगने के समय फल न पाकर उसे निश्चय ही पछताना पड़ता है।

सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम्।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः॥ ५॥

हे देवि! मैंने भी आम के वृक्ष को काटकर पलाश के वृक्ष को सींचा है। अब फलागमन काल में श्रीराम को त्याग कर मुझ दुष्टमति को पछताना पड़ रहा है।

लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम्॥ ६॥

हे कौसल्ये! अपनी कुमारावस्था में अपने को शब्दवेधी कहला कर प्रसिद्ध होने की कामना से धनुष धारण कर मैंने वह पाप किया था।

तदिदं मेऽनुसम्प्राप्तं देवि दुःखं स्वयं कृतम्।
सम्मोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम्॥ ७॥

हे देवि! वही स्वयं किया हुआ मेरा पाप दुःख के रूप में मुझे इस प्रकार प्राप्त हो रहा है जिस प्रकार अज्ञानवश बालक विष खाकर कष्ट सहता है।

देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम्।
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मम कामविवर्धिनी॥ ८॥

देवि! यह उस समय की बात है जब तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं हुआ था और मैं युवराज था। उन्हीं दिनों एक बार काम के वेग को उत्तेजित करनेवाली वर्षा ऋतु आई।

तस्मिन्नतिसुख काले धनुष्मान् कवची रथी।
व्यायामकृतसङ्कल्पः सरयूमन्वगां नदीम्॥ ९॥

उस अत्यन्त सुखद समय में मैं शिकार खेलने की इच्छा से कवच धारण कर, धनुष हाथ में ले, रथ पर बैठकर सरयू नदी के तट पर गया।

निपाने महिषं रात्रौ गजं वाऽभ्यागतं नदीम्।
अन्यं वा श्वापदं कञ्चिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः॥ १०॥

रात्रि में जल पीने के लिए नदी के घाट पर आनेवाले वन भैंसे, हाथी अथवा अन्य किसी बनैल पशु को मारने का इच्छुक मैं उस समय इन्द्रियों के अधीन हो गया था।

अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः।
अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः॥ ११॥

इसी बीच अन्धकारयुक्त प्रदेश में जल भरते हुए घड़े का शब्द सुन मैंने समझा कोई हाथी चिंघाड़ रहा है। मुझे दिखलाई कुछ न पड़ा। मैंने केवल शब्द ही सुना।

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम्।
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्य त्वपातयम्॥ १२॥

मैंने तर्कस से सर्पविष सदृश तीक्ष्ण और चमचमाता हुआ बाण निकालकर उस हाथी को बेधने की इच्छा से शब्द की ओर लक्ष्य करके छोड़ दिया।

अमुञ्चं निशितं बाणमहमाशीविषोपमम्।
तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः॥ १३॥

मैंने ज्योंही भयंकर सर्पविष के समान तीक्ष्ण उस बाण को छोड़ा त्योंही मुझे उस स्थान पर किसी वनवासी का शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ा।

हा हेति पततस्तोये बाणाभिहतमर्मणः।
तस्याहं करुणं श्रुत्वा निशिलालपतो बहु॥ १४॥
तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः।
अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम्॥ १५॥

बाण से मर्माहत होकर गिरते हुए किसी व्यक्ति का हाय! हाय! शब्द हुआ। उस करुणापूर्ण वाणी को सुनकर मैं बहुत दुःखी हुआ। दीन और उदास होकर मैं सरयू तट के उस स्थान पर पहुँचा जहाँ एक तपस्वी बाण से घायल पड़ा था।

अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम्।
पांसु शोणितदिग्धाङ्गं शयानं शरपीडितम्॥ १६॥

उस तपस्वी के सिर की जटाएँ बिखरी हुई थीं,



श्रवण कुमार

घड़े का जल फैल गया था। शरीर रक्त एवं धूल से व्याप्त था। वह भूमि पर पड़ा था और बाण की व्यथा से तड़फड़ा रहा था।

स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतसम्।
इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा॥ १७॥

मुझे भयभीत और विकल जान अपने दोनों नेत्रों से मेरी और देखकर और मुझे अपनी नेत्राग्नि से दग्ध करते हुए वह यह कठोर वचन बोला—

किं तवापकृतं राजन् वने निवसता मया।
एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि॥ १८॥
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे।
तौ कथं दुर्बलान्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ॥ १९॥

राजन्! वन में निवास करनेवाले मैंने आपका क्या बिगाड़ा था? आपने अपने एक ही बाण से मेरे मर्मस्थलों को घायल कर मेरे माता-पिता को भी, जो दुर्बल तथा अन्धे हैं एवं मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए प्यासे बैठे होंगे, मार डाला।

पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव।
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वां स कुपितः शपेत्॥ २०॥

हे राजन्! अब आप शीघ्र मेरे पिताजी के पास जाकर उन्हें यह समाचार दो। उनके पास जाकर आप उन्हें प्रसन्न करें जिससे वे आपको शाप न दे दें।

विशल्य कुरु मां राजन् मा भूत्ते मनसो व्यथा।
तस्य त्वाताम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम्।
स मामुद्वीक्ष्य सन्त्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः॥ २१॥

हे राजन्! तुम शोक मत करो और मेरे इस बाण को निकाल दो। उसकी दीन-हीन एवं कातर अवस्था देखकर मैंने बाण खेंच लिया। बाण खेंचते ही उस मुनिपुत्र ने अत्यन्त भयभीत हो मेरी ओर देखा और अपने प्राण छोड़ दिये।

◀ एकोनपञ्चाशः सर्गः ▶ (४९)

दशरथ का परलोक-गमन—

ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा।
आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः॥ १॥

(महाराज ने अपने कथन को जारी रखते हुए कहा—) मुनिपुत्र श्रवणकुमार के प्राण छोड़ने पर अपने कर्त्तव्य का निश्चयकर, मुनिपुत्र के कलश में जल भरकर उसे उठा उसके बतलाये मार्ग से मैं मुनि के आश्रम में गया।

तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ॥ २॥

उस आश्रम में पहुँच कर मैंने पंख-रहित पक्षियों के समान श्रवणकुमार के दुर्बल, अन्धे, जराजीर्ण और रक्षारहित माता-पिता को देखा।

पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत।
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय॥ ३॥

मेरे पैरों की आहट सुनकर उस मुनि ने कहा—हे वत्स! इतनी देर क्यों कर रहे हो, शीघ्र जल लाओ।

मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सज्जमानया।
हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतचित्त इवाब्रुवम्॥ ४॥

उस मुनि को देख, अत्यधिक भयभीत होकर लड़खड़ाती जिह्वा से अस्पष्ट अक्षरों में मैंने कहा—

क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः।
सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम्॥ ५॥

हे महात्मन्! मैं दशरथ नामक क्षत्रिय हूँ। मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। अपने कर्मों के द्वारा सज्जनगर्हित तथा पाप से जनित इस दुःख को प्राप्त हुआ हूँ।

भगवञ्शब्दमालक्ष्य मया गजजिघांसुना।
विसृष्टोऽम्भसि नाराचस्तेन तेऽभिहितः सुतः॥ ६॥

भगवन्! हाथी के शिकार के धोखे में शब्दवेधी बाण चलाकर मैंने जल भरने के लिए गये हुए आपके

पुत्र को मार डाला है।

स तत् श्रुत्वा वचः क्रूरं ममोक्तमघशंसिना।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम्॥ ७॥

मेरे किये हुए पापकर्म का दारुण वृत्तान्त मेरे ही मुख से सुनकर उस महातेजस्वी मुनि ने हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझसे कहा—

यद्येतदशुभं कर्म न त्वं मे कथयेः स्वयम्।
फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा॥ ८॥

हे राजन्! यदि आप अपने इस अधार्मिक और अशोभनीय कर्म को स्वयं मुझसे न कहते तो इस अधर्म से शीघ्र ही आपके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जाते।

अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं तेनैव जीवसि।
अपि ह्यद्य कुलं न स्यादिक्ष्वाकूणां कुतो भवान्॥ ९॥

हे राजन्! तुमने अज्ञान से यह कर्म किया है इसलिए अभी तक तुम जीवित हो। यदि आप जान-बूझकर ऐसा कर्म करते तो आज ही सारे रघुकुल का नाश हो जाता तुम्हारी तो बात ही क्या?

नय नौ नृपं तं देशमिति मां चाभ्यभाषत।
अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम्॥ १०॥

हे राजन्! अब तुम हम दोनों को उस स्थान पर ले चलो जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है। हम दोनों अपने पुत्र का दर्शन करना चाहते हैं। हे कौसल्ये! ऐसा उस मुनि ने मुझे कहा।

अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ।
अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया॥ ११॥

मैंने अकेले ही अत्यन्त दुःखित श्रवणकुमार के माता-पिता को वहाँ ले जाकर उसके मृत शरीर का स्पर्श कराया।

तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चास्येदमब्रवीत्॥ १२॥

वे दोनों तपस्वी अपने मृत पुत्र का स्पर्श करके उसके शरीर पर गिर पड़े, फिर उसका पिता कहने लगा—

नाभिवादयसे माऽद्य न च मामभिभाषसे।
किन्नु शेषेऽद्य भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि॥ १३॥

हे वत्स! तूने आज न तो मेरा अभिवादन किया और न ही तू मुझसे बोल रहा है। तू भूमि पर क्यों पड़ा है? तू मुझसे रुष्ट है?

इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम्।
कथं वत्स भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम्॥ १४॥

हे वत्स! इस अन्धी, तपस्विनी, दुःखिनी एवं पुत्रवत्सला तेरी बूढ़ी माता का भरण पोषण अब मैं कैसे करूँगा?

तिष्ठ मा मा गमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति।
श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः॥ १५॥

हे पुत्र! ठहरो, आज तुम यमपुरी को मत जाओ। कल तुम अपनी माता और मेरे साथ ही चलना।

उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने।
क्षिप्रमेव गमिष्यामस्त्वया सह यमक्षयम्॥ १६॥

तेरे बिना हम दोनों शोकार्त, अनाथ और दीन होकर इस वन में पड़े हैं। तुम्हारे बिना हम दोनों भी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे।

एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत्।
ततोऽस्मै कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया॥ १७॥

इस प्रकार वह दीन तपस्वी बार-बार करुणापूर्ण विलाप कर स्त्री सहित अपने मृत पुत्र को जलाञ्जलि= मृतक शरीर का स्नान आदि कराने में प्रवृत्त हुआ।

स कृत्वा तूदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम्॥ १८॥

महातेजस्वी तपस्वी ने भार्या सहित झटपट पुत्र को जलाञ्जलि देकर, हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए मुझसे कहा—

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं गमिष्यसि॥ १९॥

जिस प्रकार आज मैं पुत्रवियोग से दुःखी हो रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी अपने प्राणप्रिय पुत्र के शोक में प्राण त्यागोगे।

एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात्॥ २०॥

इस प्रकार मुझे शाप दे तथा नाना प्रकार से विलाप करते हुए चिता की अग्नि में देह को भस्म कर वे दोनों स्वर्ग चले गये।

तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम्।
तदा बाल्याकृतं देवि शब्दवेध्यनुकर्षिणा॥ २१॥

हे देवि! स्मरण करते हुए आज मुझे अपना वह पापकर्म स्मरण हो आया जो मैंने मूर्खतावश शब्दवेधी बाण चलाकर किया था।

तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः।
इत्युक्त्वा स रुदंस्त्रस्तो भार्यामाह च भूमिपः॥ २२॥

हे देवि! उसी पापरूप कर्म का फल आज मेरे सामने है। यह कह मृत्यु-भय से त्रस्त होकर रोते हुए महाराज दशरथ कौसल्या से कहने लगे—

यदहं पुत्रशोकेन सन्त्यक्ष्याम्यद्य जीवितम्।
चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये साधु मां स्पृश॥ २३॥

पुत्रशोक के कारण अब मैं प्राण त्याग रहा हूँ। हे कौसल्ये! अब मैं तुम्हें आँखों से देख नहीं पा रहा हूँ, अतः तुम मेरे शरीर का स्पर्श करो।

चक्षुषा त्वां नपश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम्॥ २४॥

हे कौसल्ये! आँखों से तू मुझे दिखाई नहीं देती और मेरी स्मरण-शक्ति भी नष्ट होती जा रही है। उधर यमराज के दूत चलने के लिए शीघ्रता कर रहे हैं।

अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये।
न हि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम्॥ २५॥

इससे बढ़कर मुझे और क्या दुःख होगा कि मैं मरते समय भी सत्यपराक्रमी, धर्मात्मा राम को नहीं देख रहा हूँ।

हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हाऽद्य क्वासि गतः सुत॥ २६॥

हा राघव! हा महाबाहो! हा मेरे शोकों को नष्ट करनेवाले! हा पिता के प्राणप्रिय पुत्र! रघुकुल-दीपक! तुम कहाँ हो?

हा कौसल्ये विनश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि॥ २७॥

हा कौसल्ये! हा तपस्विनी सुमित्रे! हा कुलनाशिनी, शत्रुरूपा दयाहीना कैकेयि! आज मैं प्राण छोड़ रहा हूँ।

इति रामस्य मातुश्च सुमित्रायाश्च सन्निधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तसुपागमत्॥ २८॥

इस प्रकार राममाता कौसल्या और सुमित्रा के समीप महाराज दशरथ ने पुत्रशोक में विलाप करते हुए अपने प्राण त्याग दिये।

❮ पञ्चाशः सर्गः ❯ (५०)

रानियों का विलाप और दशरथ के शव को तेलपात्र में रखना—

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रुश्य पतेतुर्धरणीतले॥ १॥

कौसल्या और सुमित्रा महाराज को देखकर तथा उनके शरीर को स्पर्श कर (उन्हें मृतक जान) 'हा नाथ!' कहकर चिल्लाती हुई पछाड़ खाकर पृथिवी पर गिर पड़ीं।

कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधं शोककर्षिता।
उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्याभाषत॥ २॥

फिर शोक से दुर्बल, आँखों में आँसू भरे हुए, महारानी कौसल्या महाराज दशरथ का सिर अपनी गोद में रखकर कैकेयी को उपालम्भ देते हुए बोली—

सकामा भव कैकेयि भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।
त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि॥ ३॥

हे निर्दयी एवं नियम-विरुद्ध आचरण करनेवाली कैकेयि! महाराज को परलोकवासी बनाकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब तुम निष्कण्टक राज्य भोगो।

विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम।
विपथे सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे॥ ४॥

राम तो मुझे छोड़कर वन चला गया, पतिदेव स्वर्गवासी हो गये। दुर्गम पथ में साथियों से हीन पथिक की भाँति अब मुझे जीने की इच्छा नहीं है।

भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः।
इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः॥ ५॥

देव-तुल्य अपने पति का परित्याग कर कौन स्त्री जीवित रहना पसन्द करेगी? हाँ, कैकेयी अवश्य जीयेगी, क्योंकि उसने अपने धर्म का त्याग कर दिया है।

तां ततः सम्परिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम्।
व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः॥ ६॥

अपने पति का आलिङ्गन कर विलाप करती हुई उस तपस्विनी कौसल्या को व्यवहार-कुशल मन्त्रियों ने वहाँ से हटाया।

तैलद्रोण्यामथामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्॥ ७॥

मन्त्री लोगों ने तेलपूर्ण पात्र में महाराज के शव को रख दिया जिससे शव बिगड़े नहीं। तदनन्तर वे वसिष्ठ आदि गुरुजनों की आज्ञा से अन्य राज्यकर्मों को करने लगे।

न तु संस्करणं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः।
सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम्॥ ८॥

समयोचित कर्तव्यों को जाननेवाले मन्त्रियों ने पुत्रों के बिना महाराज का अन्त्येष्टि-संस्कार करना उचित नहीं समझा, अतः उन्होंने महाराज के शरीर को तेलपात्र में रखवा दिया।

गते तु शोकास्त्रिदिवं नराधिपे
महीतलस्थासु नृपाङ्गनासु च।
निवृत्तचारः सहसा गतो रविः
प्रवृत्तचारा रजनी ह्युपस्थिता॥ ९॥

लोकपति महाराज दशरथ के स्वर्ग सिधारने पर उनकी सब रानियाँ भूमि पर पड़ी रुदन कर रही थीं। इतने में ही अंशुमाली अपनी किरणों समेत अस्त हो गये और अन्धकार से आवृत्त रात्रि उपस्थित हो गई।

◀ एकपञ्चाशः सर्गः ▶ (५१)

राजा-रहित राष्ट्र की दुर्दशा का वर्णन—

व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः॥ १॥

रात्रि के व्यतीत हो जाने पर सूर्योदय के पश्चात् राजकार्य में सहयोग देनेवाले अधिकारी एवं ब्राह्मणवर्ग—सभी लोग एकत्र हुए।

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः॥ २॥
एते द्विजा सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम्॥ ३॥

महायशस्वी मार्कण्डेय, मौद्गल्य वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और जाबालि—ये ब्राह्मण मन्त्रियों सहित आकर सर्वश्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठजी को सम्बोधित कर अपना अपना अभिप्राय कहने लगे।

स्वर्गतश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह॥ ४॥

महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। श्रीराम वन में हैं और तेजस्वी लक्ष्मण भी उन्हीं के साथ चले गये।

उभौ भरतशत्रुघ्नौ कैकेयेषु परन्तपौ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने॥ ५॥

शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले राजकुमार भरत और शत्रुघ्न केकय देश के राजा अपने मातामह के रमणीय राजगृह में निवास कर रहे हैं।

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव राजा कश्चिद्विधीयताम्।
अराजकं[१] हि नो राष्ट्रं न विनाशमवाप्नुयात्॥ ६॥

अतः इक्ष्वाकुवंशीय किसी पुरुष को आज ही राजा नियुक्त करना चाहिए जिससे सम्राट्हीन हमारा यह राष्ट्र नष्ट न हो।

नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः।
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा॥ ७॥

सम्राट् हीन देश में बिजली की चमक सहित महागर्जन करनेवाला विद्युन्माली नाम का मेघ अपने दिव्य जल से पृथिवी को नहीं सींचता।

नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे॥ ८॥

अराजक राष्ट्र में कृषक खेतों में बीज नहीं बोते तथा पुत्र पिता के और स्त्री अपने पति के अधीन नहीं रहती, अर्थात् सब स्वतन्त्र हो जाते हैं।

अराजके धनं नास्ति भार्याप्यराजके।
इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके॥ ९॥

अराजक देश में धन नहीं रहने पाता (क्योंकि चोर-डाकू लूट लेते हैं।) स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं और घर में नहीं रहतीं। जब सब ओर भय एवं आतंक का साम्राज्य होता है तब सत्य का व्यवहार भी कैसे हो सकता है?

नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः।
उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च॥ १०॥

अराजक देश में शुभ-अशुभ कर्मों के लिए लोग सभा नहीं करते, न रमणीक उद्यान लगवाते (दण्ड भय न होने के कारण लोग वृक्ष काट डालते हैं।) और न यज्ञशाला आदि बनवाते हैं।

नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः।
सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः॥ ११॥

अराजक देश में शान्त, दान्त, व्रती और यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण लोग (विघ्न के भय से) दीर्घ समय तक चलनेवाले महायज्ञ भी नहीं करते।

नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः।
ब्राह्मणा वसुसम्पन्ना विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः॥ १२॥

सम्राट्-हीन राज्य में धन-धान्य से परिपूर्ण ब्राह्मण लोग भी ऋत्विजों को यथोचित दक्षिणा नहीं देते।

नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः॥ १३॥

अराजक राज्य में नट और नर्तक भी प्रसन्न नहीं रहते तथा राष्ट्रोन्नति के लिए उत्सव या सम्मेलन भी नहीं होते।

---

१. इस सम्पूर्ण सर्ग में अराजकता के दोषों का वर्णन है। यह सर्ग वेद के दो मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या है। वेद में अराजकता के दोषों का कथन निम्न रूप में हुआ है—

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभिवर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥

—अथर्व० ५। १९। १५

अराजक राष्ट्र में वर्षा नहीं होती, समिति अराजक राज्य को योग्य नहीं समझती। अराजक राष्ट्र शत्रु की तो बात ही क्या मित्र को भी अपने वश में नहीं कर सकता। यजुर्वेद में अराजक राज्य की इससे भी अधिक स्पष्ट शब्दों में निन्दा की गई है। देखिए—

यवासकौ शकुन्तिका हलगिति वञ्चति।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका॥

—यजुः० २३। २२

जिस प्रकार बड़ी चिड़िया के सामने छोटी चिड़िया दबी रहती है उसी प्रकार अराजक देश में प्रजा दबी रहती है। जैसे छोटी दरार में मोटी वस्तु घुसेड़ने से वह छिन्न-भिन्न हो जाती है वैसे ही अराजक देश में प्रजा की दशा होती है। अराजक देश में प्रजा का विनाश होता है, अतः अराजक देश प्रजा का घातक होता है।

नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः।
कथाभिरनुरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः॥ १४॥

नरपति हीन राज्य में लेन-देन अथवा क्रय विक्रय करनेवालों में विवाद उपस्थित होने पर मुकदमों के ठीक निर्णय नहीं होते। अराजक देश में कथावाचक उत्तम कथाएँ कहकर कथाप्रेमियों को सन्तुष्ट नहीं करते।

नाराजके जनपदे उद्यानानि समागताः।
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः॥ १५॥

अराजक राष्ट्र में कुमारियाँ स्वर्णभूषणों से अलंकृत होकर क्रीड़ा करने के लिए सायंकाल वाटिका में नहीं जातीं।

नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रगामिभिः।
नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारीभिः सह कामिनः॥ १६॥

अराजक राष्ट्र में विलासी लोग शीघ्रगामी यानों पर आरूढ़ होकर अपनी स्त्रियों को साथ ले वन-विहार के लिए नहीं जाते।

नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः।
शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः॥ १७॥

अराजक राष्ट्र में कृषक और गौओं की रक्षा करनेवाले धनवान् लोग सुरक्षित नहीं रहते। वे लोग अपने घर के द्वार खोलकर सुख से सो भी नहीं सकते।

नाराजके जनपदे बद्धघण्टा विषाणिनः।
अटन्ति राजमार्गेषु कुञ्जरा षष्टिहायनाः॥ १८॥

अराजक राष्ट्र में साठ वर्ष की अवस्था वाले, लम्बे-लम्बे दाँतोंवाले हाथी घण्टों को टनटनाते हुए राजमार्ग पर चल सकते। (गुण्डे उनके दाँत ही काट लें।)

नाराजके जनपदे शरान् संततमस्यताम्।
श्रूयते तलनिर्घोष इष्वस्त्राणामुपासने॥ १९॥

अराजक देश में बाणविद्या का अभ्यास करनेवाले धनुर्धरों के हस्ततल का शब्द भी सुनाई नहीं देता।

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः।
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः॥ २०॥

अराजक जनपद में दूर देश में व्यापार करनेवाले वणिक् लोग बहुत-सा माल लेकर, निर्भय होकर यात्रा नहीं कर सकते।

नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी।
भावयन्नात्मनात्मानं यत्रसायंगृहो मुनिः॥ २१॥

अराजक देश में एकाकी विचरण करनेवाला, आत्मा को परमात्मा में लगानेवाला मुनि सन्ध्याकाल होने पर जहाँ चाहे वहाँ डेरा नहीं डाल सकता। सायंकाल होने पर उसे भी किसी सुरक्षित स्थान पर निवास करना पड़ता है।

नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्तते।
न चाप्यराजके सेना शत्रून् विषहते युधि॥ २२॥

अराजक राष्ट्र में प्रजा का योग-क्षेम[१] नहीं होता। अराजक देश की सेना राष्ट्र की प्रतिद्वन्द्वी सेना का सामुख्य=मुकाबला कर उसे जीत भी नहीं सकती।

यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम्।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम्॥ २३॥

जैसे बिना जल की नदी अथवा बिना घास का वन तथा गोपाल के बिना गौएँ होती हैं वैसे ही राजा के बिना राष्ट्र हो जाता है।

ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसोः।
तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गतः॥ २४॥

जिस प्रकार रथ का ज्ञापक चिह्न उसकी ध्वजा होती है, अग्नि का ज्ञान धुएँ से होता है इसी प्रकार हम लोगों का प्रकाशन चिह्न महाराज दशरथ दिवंगत हो गये। (इस समय यह देश अराजक है।)

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित्।
मत्स्या इव नरा नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥ २५॥

---

१. अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति का नाम योग और प्राप्त वस्तुओं की रक्षा का नाम क्षेम है।

अराजक देश में कोई किसी का नहीं होता। जैसे बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है उसी प्रकार लोग एक दूसरों को मार कर खा जाते हैं।

ये हि सम्भिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः।
तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः॥ २६॥

जो लोग वर्णाश्रम-लोग की मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर नास्तिक हो जाते हैं, परन्तु राजदण्ड के भय से दबे रहते हैं वे भी अराजक देश में राजदण्ड के भय से निर्भय हो फलने फूलने लगते हैं।

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः॥ २७॥

जैसे नेत्र शरीर का कल्याण करने में सदा सतर्क तत्पर रहता है उसी प्रकार राजा भी सत्य तथा धर्म की रक्षा के लिए सदा तैयार रहता है।

राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्॥ २८॥

राजा ही धर्म का प्रवर्तक होता है, राजा ही कुलोचित कुलाचार का प्रवर्तक है। राजा ही राष्ट्र के लोगों का माता-पिता तथा पूर्ण हितकारी होता है।

यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः।
विशेष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः॥ २९॥

अपने कर्त्तव्य का भली-भाँति पालन करने-वाला चरित्रवान् राजा—यम, कुबेर, इन्द्र और वरुण से भी बड़ा होता है।

अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी॥ ३०॥

शिष्ट और अशिष्टों का विभाग कर, अपने चरित्रबल से सम्पूर्ण राष्ट्र को आलोकित करने-वाला राजा न हो तो अन्धकार से आवृत्त दिन के समान अच्छे बुरे का भी ज्ञान न रहे, कोई किसी को न पूछे।

जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम्।
नातिक्रमामहे सर्वे वेलां प्राप्येव सागरः॥ ३१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! महर्षे! महाराज के जीवित रहते हुए भी हम लोग आपकी आज्ञा का सदा इस प्रकार पालन करते रहे जिस प्रकार समुद्र अपनी वेला का उल्लंघन नहीं करता।

स नः समीक्ष्य द्विजवर्य वृत्तं
नृपं विना राज्यमरण्यभूतम्।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं
त्वमेव राजानमिहाभिषिञ्च॥ ३२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आपके प्रति हम लोगों का आज तक जो व्यवहार रहा है उसे देखकर—यह राज्य जो राजा के न रहने के कारण वन के समान हो रहा है इसे पुनः नगर के रूप में परिणत करने के लिए किसी इक्ष्वाकुवंशीय अथवा अन्य किसी को—शीघ्र ही राजपद पर अभिषिक्त कीजिए।

➤ द्विपञ्चाशः सर्गः ➤ (५२)

भरत-शत्रुघ्न को बुलाने के लिए दूत भेजना—

तेषां हि वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
मित्रामात्यगणान् सर्वान् ब्राह्मणांस्तानिदं वचः॥ १॥

उन ऋषियों की बातों को सुनकर वसिष्ठजी हितैषी मन्त्रियों और ब्राह्मणों को सम्बोधित करते हुए बोले—

यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन समन्वितः॥ २॥

महाराज दशरथ जिस भरत को राज्य दे गये हैं, वे भरत अपने भाई शत्रुघ्न के साथ अपने मामा के गृह पर सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं।

तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितैर्हयैः।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम्॥ ३॥

अतः शीघ्र ही तीव्रवेगवाले घोड़ों पर सवार हो ज्ञान सम्पन्न दूत दोनों भाइयों को लेने के लिए जायें। इसके अतिरिक्त इस विषय में और क्या विचार हो सकता है?

गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन्।
तेषां तु वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

तब सभा में उपस्थित सभी लोगों ने महर्षि वसिष्ठ से कहा—"हाँ, दूत जाएँ।" उनका यह कथन सुन वसिष्ठजी बोले—

एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन।
श्रूयतामितिकर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः॥ ५॥

हे सिद्धार्थ! विजय! जयन्त! अशोक! नन्दन! तुम सब लोग यहाँ आओ। इस समय तुम्हें जो करना है वह मैं बताता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः।
त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम॥ ६॥

तुम सब शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार होकर शीघ्र राजगृह नामक पुर को जाओ। वहाँ शोकरहित होकर भरत को मेरा सन्देश देना—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया॥ ७॥

पुरोहित और सब मन्त्रियों ने आपसे कुशल कहा है और साथ ही यह भी कहा है कि तुम शीघ्र यहाँ से अयोध्या के लिए प्रस्थान करो, क्योंकि तुम्हारे द्वारा कोई आवश्यक कार्य कराना है।

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम्।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामिमं क्षयम्॥८॥

सावधान! रघुवंशियों के तेजक्षय=सर्वनाश का दुःखद समाचार कि श्रीराम वन चले गये और महाराज दशरथ दिवंगत हो गये—ये बात भरत से मत कहना।

कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च।
क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत॥ ९॥

केकयराज अश्वपति और भरत के लिए इन रेशमी वस्त्रों और बहुमुल्य सुन्दर आभूषणों को लेकर तुम शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो।

ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम्।
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः सन्त्वरिता ययुः॥ १०॥

(महर्षि वसिष्ठ के ये वचन सुन) वे दूत यात्रा की आवश्यक सामग्री तथा पाथेय (मार्ग का भोजन आदि) और महर्षि वसिष्ठजी की आज्ञा ले, शीघ्र ही वहाँ से चल दिये।

पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहव्याघ्रमृगद्विपान्।
ययुः पथाऽतिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः॥ ११॥

स्वामी की आज्ञा पालन में तत्पर वे लोग मार्ग में अनेक प्रकार के सिंह, व्याघ्र, हिरण तथा हाथियों को देखते हुए, उस लम्बे मार्ग पर चले जाते थे।

ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टेन पथा ततः।
गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा॥ १२॥

थके हुए घोड़ोंवाले उन दूतों ने उस लम्बे मार्ग को तय करके शीघ्रतापूर्वक गिरिव्रज-राजगृह नामक केकयराज के श्रेष्ठपुर=राजधानी में प्रवेश किया।

भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं
भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम्।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता
रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः॥ १३॥

अपने स्वामी का प्रिय करने लिए, रघुकुल की रक्षा के लिए तथा उसी वंश के व्यक्ति को राज्य प्रदान कराने के लिए बड़े आदर के साथ वे दूत शीघ्रतापूर्वक उसी रात में गिरिव्रज नामक नगरी में प्रविष्ट हुए।

◀ त्रिपञ्चाशः सर्गः ▶ (५३)

भरत का दुःस्वप्न—

यामेव रात्रिं ते दूताः प्रविशन्ति स्म तां पुरीम्।
भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोऽयमप्रियः॥ १॥

जिस रात्रि में वे दूत उस नगर में प्रविष्ट हुए उसी रात में भरत ने भी एक अत्यन्त अशुभ स्वप्न देखा।

व्युष्टामेव तु तां रात्रिं दृष्ट्वा तं स्वप्नमप्रियम्।
पुत्रो राजाधिराजस्य सुभृशं पर्यतप्यत॥ २॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखे हुए उस स्वप्न का स्मरण कर राजाधिराज दशरथ के पुत्र भरत अत्यन्त दुःखी हुए।

तप्यमानं समाज्ञाय वयस्याः प्रियवादिनः।
आयासं हि विनेष्यन्तः सभायां चक्रिरे कथाः॥ ३॥

उन्हें घबराया हुआ देख उनके समवयस्क और प्रियवादी मित्र उनकी उदासीनता दूर करने के लिए सभा में नाना प्रकार की कथाएँ कहने लगे।

वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च॥ ४॥

भरत को प्रसन्न करने के लिए उनमें से कोई तो वाद्य बजाने लगे, कोई नाचने और थिरकने लगे, कोई नाट्य करने लगे और कोई-कोई हँसाने-वाले चुटकुले कहने लगे।

स तैर्महात्मा भरतः सखिभिः प्रियवादिभिः।
गोष्ठीहास्यानि कुर्वद्भिर्न प्राहृष्यत राघवः॥ ५॥

भरत के प्रिय चाहनेवाले उन मित्रों के द्वारा भरत को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये जाने पर भी भरतजी की उदासी दूर न हो सकी।

तमब्रवीत्प्रियसखो भरतं सखिभिर्वृतम्।
सुहृद्भिः पर्युपासीनः किं सखे नानुमोदसे॥ ६॥

मित्रों के मध्य बैठे हुए भरत के एक अत्यन्त अन्तरंग मित्र ने पूछा—हे मित्र! हम लोगों के इतना प्रयत्न करने पर भी आप हर्षित क्यों नहीं होते?

एवं ब्रुवाणं सुहृदं भरतः प्रत्युवाच तम्।
शृणु त्वं यन्निमित्तं मे दैन्यमेतदुपागतम्॥ ७॥

मित्र के इस प्रकार पूछने पर भरतजी ने उत्तर दिया—हे मित्र! मेरे उदास होने का कारण सुनो।

स्वप्ने पितरमद्राक्षं मलिनं मुक्तमूर्धजम्।
पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमयह्रदे॥ ८॥

मैंने स्वप्न में अपने पिताजी को म्लान-मुख, सिर के बाल खोले हुए तथा पर्वत की चोटी से गोबर के गन्दे गड्ढे में गिरते देखा है।

प्लवमानश्च मे दृष्टः स तस्मिन्गोमयह्रदे।
पिबन्नञ्जलिना तैलं हसन्नपि मुहुर्मुहुः॥ ९॥

मैंने यह भी देखा है कि वे उस गोबर के तालाब में मेढक की भाँति कूदते हुए, बार-बार हँसकर और अञ्जलि भर-भरकर तेल पी रहे हैं।

ततस्तिलोदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधःशिराः।
तैलेनाभ्यक्तसर्वाङ्गस्तैलमेवावगाहत॥ १०॥

मैंने यह भी देखा कि तिलमिश्रित भात खाकर, बार-बार मस्तक नीचे झुकाकर, सारे शरीर में तेल लगाकर वे उसी तेल में डूब गये।

स्वप्नेऽपि सागरं शुष्कं चन्द्रं पतितं भुवि।
उपारुद्धां च जगतीं तमसेव समावृताम्॥ ११॥

मैंने दूसरा स्वप्न यह देखा कि—समुद्र सूख गया है, चन्द्रमा पृथिवी पर गिर पड़ा है और सारी पृथिवी पर अन्धेरा छाया हुआ है।

त्वरमाणश्च धर्मात्मा रक्तमाल्यानुलेपनः।
रथेन खरयुक्तेन प्रयातो दक्षिणामुखः॥ १२॥

महाराज दशरथ शरीर में लाल चन्दन लगाए हुए और लाल पुष्पों की माला पहने हुए, गधों से जुते रथ में बैठकर शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशा को गये हैं।

एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम्।
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति॥ १३॥

इस प्रकार का जो भयानक स्वप्न मैंने रात्रि में देखा है उससे यह निश्चय बोध होता है कि मेरी, राम, महाराज दशरथ अथवा लक्ष्मण की मृत्यु होगी।

नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि।
अचिरात्तस्य धूमाग्रं चितायां सम्प्रदृश्यते॥ १४॥

जो मनुष्य स्वप्न में गधे जुते हुए रथ पर सवार होकर यात्रा करता है, थोड़े ही दिनों में उसकी चिता से धुआँ निकलता दिखाई देता है।

एतन्निमित्त दीनोऽहं तन्न वः प्रतिपूजये।
शुष्यतीव च मे कण्ठो न स्वस्थमिव मे मनः॥ १५॥

इसी कारण मैं दुःखी हूँ। इसी कारण मुझे आप लोगों की बातें अच्छी नहीं लगतीं। मेरा गला सूखा जा रहा है और मेरा मन अस्वस्थ हो रहा है।

➤ चतुःपञ्चाशः सर्गः ➤ (५४)

भरत का अयोध्या के लिए प्रस्थान—

भरते ब्रुवति स्वप्नं दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
प्रविश्यासह्यपरिखं रम्यं राजगृहं पुरम्॥ १॥

भरत अपने इष्टमित्रों से स्वप्न की बात कह ही रहे थे कि इतने में थके-मादे अयोध्या के दूत, दुर्लंघ्य परिखा (=खाई)-वाले रमणीय राजगृह नामक पुर में प्रविष्ट हुए।

समागम्य च राज्ञा च राजपुत्रेण चार्चिताः।
राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु तमूचुर्भरतं वचः॥ २॥

दूतों ने केकयराज अश्वपति से भेंटकर और राजकुमार युधाजित् से सत्कृत हो महाराज को प्रणाम कर, भरतजी से कहा—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया॥ ३॥

पुरोहित वसिष्ठ और सभी मन्त्रियों ने आपकी कुशलता पूछी है और कहा है कि तुम शीघ्र अयोध्या चले आओ, यहाँ एक अत्यन्त आवश्यक कार्य उपस्थित हुआ है।

इमानि च महार्हाणि वस्त्रान्याभरणानि च।
प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय॥ ४॥

हे विशालाक्ष! ये महामूल्यवान् वस्त्र और आभूषण उन लोगों ने भेजे हैं। इन्हें आप अपने मामाजी को दे दीजिए।

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
दूतानुवाच भरतः कामैः सम्प्रतिपूज्य तान्॥ ५॥

भरत ने उन सम्पूर्ण वस्तुओं को लेकर बड़े प्रेम के साथ वे वस्त्राभूषण अपने नाना और मामा को दिये। तदनन्तर दूतों का जलपान आदि से सत्कार कर भरतजी ने उनसे पूछा—

कच्चित्सुकुशली राजा पिता दशरथो मम।
कच्चिच्चारोगता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि॥ ६॥

मेरे पिता महाराज दशरथ कुशलपूर्वक तो हैं? महात्मा राम और लक्ष्मण स्वस्थ और सानन्द तो हैं?

आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः॥ ७॥

धर्मानुष्ठानों में रत, धर्मज्ञा, धर्मोपदेश करने-वाली आर्या=उदारशीला, बुद्धिमान् श्रीराम की माता कौसल्य नीरोग तो हैं?

कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य साऽरोगा चापि मध्यमा॥ ८॥

धर्म के मर्म को समझनेवाली, वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता, मध्यमा रानी सुमित्रा कुशल-पूर्वक तो हैं?

आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह॥ ९॥

सदा स्वार्थ में तत्पर, उग्र एवं क्रोध स्वभाव वाली, अपने को सबसे बढ़कर बुद्धिमती समझने

वाली मेरी माता कैकेयी तो स्वस्थ हैं ? चलते समय उन्होंने क्या मेरे लिए कोई सन्देशा भी दिया था ?

एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना।
ऊचुः सप्रश्रयं वाक्यमिदं तं भरतं तदा॥ १०॥

बुद्धिमान् भरतजी के ये वचन सुन, दूतों ने नम्रतापूर्वक कहा—

कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि।
श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः॥ ११॥

हे पुरुषसिंह! आप जिनका कुशल चाहते हैं वे सब कुशलपूर्वक हैं। इस समय लक्ष्मी आपका वरण करने के लिए उद्यत है, अतः आप यात्रा के लिए अपना रथ जुड़वाइए।

दूतैः सञ्चोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह।
राजन् पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः॥ १२॥

उन दूतों की प्रेरणा से भरत ने अपने नानाजी से कहा—हे राजन्! मैं पिताजी के पास जाना चाहता हूँ, क्योंकि दूत मुझे ले चलने के लिए जल्दी कर रहे हैं।

भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम्॥ १३॥

भरत की बात सुन केकयराज अश्वपति ने भरत का मस्तक सूँघकर यह कहा—

गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परन्तप॥ १४॥

हे तात! मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ। कैकेयी तुम जैसे पुत्र को पाकर सुपुत्रवती हुई है। हे शत्रुसूदन! तुम वहाँ पहुँचकर अपनी माता और पिता से मेरा कुशलक्षेम कह देना।

पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः।
तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १५॥

पुरोहित वसिष्ठजी, अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा धनुर्धारी श्रीराम और लक्ष्मण--दोनों भाइयों से भी मेरा कुशलक्षेम कह देना।

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान् कम्बलानजिनानि च।
अभिसत्कृत्य कैकयो भरताय धनं ददौ॥ १६॥

भरत को विदा करते हुए केकयराज ने उत्तम हाथी, बहुमूल्य शाल-दुशाले और मृगचर्म—इन वस्तुओं की प्रशंसा करते हुए, भरत को दिये।

ऐरावतानैन्द्रशिरान् नागान् वै प्रियदर्शनान्।
खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान् मातुलोऽस्मै धनं ददौ॥ १७॥

भरत के मामा युधाजित् ने उन्हें ऐरावत तथा ऐन्द्र जाति के सुन्दर हाथी और उत्तम जाति के शीघ्रगामी खच्चर दिये।

अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान् व्याघ्रवीर्यबलान्वितान्।
दंष्ट्रायुधान्महाकायान्शुनश्चोपायनं ददौ॥ १८॥

इनके अतिरिक्त अन्तःपुर में पले हुए भीमकाय और बलवीर्य में व्याघ्र के तुल्य, बड़े-बड़े दाँतोंवाले बहुत-से कुत्ते भी भरत को भेंट किये।

स दत्तं केकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत।
भरतः कैकेयीपुत्रो गमनत्वरया तदा॥ १९॥

केकयराज द्वारा प्रदत्त उन वस्तुओं को प्राप्त करके भी भरत प्रसन्न नहीं हुए। कैकेयीनन्दन भरत जाने के लिए शीघ्रता करने लगे।

स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम्।
रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ॥ २०॥

अतः अपने नाना अश्वपति और मामा युधाजित् से आज्ञा माँग शत्रुघ्न सहित रथ में सवार हो भरत ने वहाँ से प्रस्थान किया।

≺ पञ्चपञ्चाशः सर्गः ≻ (५५)

भरत का अयोध्या में आगमन—

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान्।
भरतः क्षिप्रमागच्छत्सुपरिश्रान्तवाहनः॥ १॥

पराक्रमी भरत राजगृह से निकलकर पूर्व की ओर चले और घोड़ों के थक जाने पर भी बहुत शीघ्र ही वे अयोध्या नगरी में पहुँचे।

अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं वाक्यमब्रवीत्।
एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विन॥ २॥

अयोध्या को दूर से ही देखकर राजकुमार भरत ने सारथि से कहा—यह पुरी जगत्-प्रसिद्ध स्वच्छ एवं हरे-भरे उद्यानों से पूर्ण यशस्विनी अयोध्या प्रतीत नहीं होती।

यज्वभिर्गुणसम्पन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णा राजर्षिपरिपालिता॥ ३॥
अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान्।
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम्॥ ४॥

अत्यन्त समृद्धिशालिनी, राजर्षियों द्वारा पालित अयोध्यापुरी में पहले यज्ञकर्ता, गुणी एवं वेदों के पारंगत विद्वानों के वेदपाठ का तुमुल शब्द सुनाई पड़ता था, चारों ओर नर-नारियों का भी कोलाहल सुनाई देता था—वह सब आज मुझे सुनाई नहीं देता।

न ह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः।
निर्यान्तो वाऽभियान्तो वा नरमुख्या यथापुरम्॥ ५॥

रथ, हाथी और घोड़ों पर आरूढ़ होकर जैसे पहले लोग आते-जाते दिखाई देते थे वैसे आज दिखाई नहीं देते।

अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च।
निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति मे मनः॥ ६॥

अनिष्ट-सूचक अनेक प्रकार के अपशकुनादि और भयंकर निमित्तों को देखकर मेरा मन दुःखी हो रहा है?

सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु।
तथा ह्यसति संमोहे हृदये सीदतीव मे॥ ७॥

हे सूत! इन भयंकर अपशकुनों को देख मुझे प्रतीत होता है कि हमारे बन्धु-बान्धवों का कुशलपूर्वक होना अत्यन्त दुर्लभ है। घबराने का कारण न होने पर भी मेरा हृदय बैठा जा रहा है।

किमहं त्वरयानीतः कारणेन विनाऽनघ।
अशुभाशङ्कि हृदयं शीलं च पततीव मे॥ ८॥

हे अनघ! बिना कारण बताये हुए मुझे अयोध्या क्यों बुलाया गया है। मेरे मन में अनेक प्रकार की अशुभ शंकाएं उत्पन्न हो रही हैं और धैर्य टूट सा रहा है।

श्रुता नो यादृशाः पूर्वं नृपतीनां विनाशने।
आकारांस्तानहं सर्वानिह पश्यामि सारथे॥ ९॥

हे सारथे! राजाओं के मरने पर जो अमाङ्गलिक लक्षण या आकार-प्रकार मैंने सुन रखे थे, आज उन सभी लक्षणों को मैं यहाँ देख रहा हूँ।

अलक्ष्मीकानि पश्यामि कुटुम्बिभवनान्यहम्।
अपेतमाल्यशोभान्यप्यसंमृष्टाजिराणि च॥ १०॥

गृहस्थों के भवन मुझे विचित्र ध्वजाओं और बन्दनवारों से रहित देख पड़ते हैं। किसी भी गृहस्थ के द्वार पर पुष्पमालाएँ लटकती दिखाई नहीं देतीं। सब घरों के आँगन बिना झाड़े-बुहारे पड़े हैं।

दृश्यन्ते वणिजोऽप्यद्य न यथापूर्वमत्र वै।
ध्यानसंविग्नहृदया नष्टव्यापारयन्त्रिताः॥ ११॥

यहाँ के व्यापारी पहले की भाँति प्रफुल्लचित्त दिखाई नहीं देते। चिन्ता के कारण इनका हृदय उद्वेलित हो रहा है और व्यापार नष्ट होने के कारण इनकी सारी गति अविरुद्ध हो गई है।

मलिनं चाश्रुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम्।
सस्त्रीपुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे॥ १२॥

मैले वस्त्र धारण किये हुए, आँखों में आँसू भरे

हुए, दीन, चिन्ताग्रस्त, दुबले-पतले और घबराए हुए स्त्री-पुरुष ही मुझे नगर में दिखाई पड़ रहे हैं।

बहूनि पश्यन् मनसोऽप्रियाणि
यान्यन्यदा नात्र पुरे बभूवुः।
अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः
पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म॥ १३॥

इस प्रकार के अनेक अप्रिय दृश्यों को जो इससे पूर्व अयोध्या में उन्होंने कभी नहीं देखे थे, देखकर सिर नीचा किये हुए हर्षशून्य भरतजी ने अपने पिता महात्मा दशरथ के गृह में प्रवेश किया।

◀ षट्पञ्चाशः सर्गः ▶ (५६)

भरत का सन्ताप—

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये॥ १॥

पिताजी को उनके भवन में न देख भरतजी अपनी माता का दर्शन करने के लिए उनके गृह में गये।

अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम्।
उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम्॥ २॥

बहुत दिन के पश्चात् प्रवास से लौटे हुए अपने प्रिय पुत्र भरत को देख कैकेयी हर्षित होकर सोने के आसन से उठ खड़ी हुई।

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्।
भरतः प्रतिजग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ॥ ३॥

महात्मा भरत ने शोभाहीन अपनी माता के गृह में प्रवेश कर माता के शुभ चरणों को छूकर प्रणाम किया।

तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम्।
अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे॥ ४॥

कैकेयी भरतजी का मस्तक सूँघ, उसे हृदय से लगा और गोदी में बैठा कर उससे पूछने लगी—

आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव।
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि॥ ५॥

हे वत्स! तुम्हारे नाना अश्वपति और मामा युधाजित् तो कुशलपूर्वक हैं न? प्रवास में तुम सुखपूर्वक तो रहे? यह सब मुझे बतलाओ।

एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः।
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः॥ ६॥

माता के इन प्रिय प्रश्नों के पूछने पर कमलनेत्र राजपुत्र भरत ने अपनी माता को वहाँ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बा वक्तुमर्हसि॥ ७॥

आपके पूज्य पिता और मेरे नाना तथा मामा युधाजित् कुशलपूर्वक हैं। हे माता! अब मैं जो कुछ पूछूँ वह मुझे बताइए।

शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः।
न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे॥ ८॥

स्वर्णभूषित आपका यह पलंग महाराज के बिना सूना क्यों है? राजकीय भृत्यवर्ग भी मुझे प्रसन्न दिखाई नहीं दे रहे हैं।

राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने।
तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः॥ ९॥

महाराज प्रायः आपके ही भवन में रहा करते थे, यही समझ कर मैं उनके दर्शन करने के लिए यहाँ आया था, किन्तु मैं उन्हें यहाँ भी नहीं देख रहा हूँ।

पितुर्ग्रहीष्ये चरणौ तं ममाख्याहि पृच्छतः।
आहोस्विदम्ब ज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने॥ १०॥

मुझे बताओ कि पिताजी कहाँ हैं? मैं उनके चरणयुगल में प्रणाम करूँगा। पिताजी ज्येष्ठा माता

कौसल्या के घर में तो नहीं हैं ?

तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्घोरमप्रियम्।
अजानन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता॥ ११॥

राज्यलोभ से मोहित सम्पूर्ण वृत्तान्त को जाननेवाली कैकेयी महाराज का वृत्तान्त न जानने-वाले भरत से प्रिय संवाद के रूप में यह घोर अप्रिय वचन बोली—

या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः॥ १२॥

पुत्र! जो गति सारे प्राणियों की होती है, तुम्हारे पूज्य पिता भी उसी गति को प्राप्त हुए। तेजस्वी, यज्ञशील, महात्मा दशरथ सज्जनों की गति को प्राप्त हुए हैं।

तत् श्रुत्वा भरतो वाक्यं हा हतोऽस्मीत्युक्त्वा शुचिः।
पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः॥ १३॥

कैकेयी की यह बात सुनकर निष्कपट भरत पितृशोक से व्याकुल होकर और 'हाय मैं मारा गया' ऐसा कहकर सहसा भूमि पर गिर पड़े।

स रुदित्वा चिरं कालं भूमौ विपरिवृत्य च।
जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः॥ १४॥

चिरकाल तक भूमि पर लेट कर और रोते हुए शोकाक्रान्त भरत ने अपनी माता से कहा—

अभिषेक्ष्यति रामं नु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
इत्यहं कृतसङ्कल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्॥ १५॥

हे माता! महाराज श्रीराम का राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं कोई यज्ञानुष्ठान करेंगे ऐसा संकल्प कर मैंने प्रसन्न होकर अपनी यात्रा आरम्भ की थी।

तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम्॥ १६॥

परन्तु यहाँ तो मैं उलटा ही देख रहा हूँ। अपने सदा हितैषी पिताजी को न देखने के कारण मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

अम्ब केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते।
धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम्॥ १७॥

हे माता! पिताजी को कौन-सा रोग था कि मेरे आने से पूर्व ही वे परलोकवासी हो गये। श्रीराम आदि बन्धु धन्य हैं जिन्होंने पिताजी का अन्त्येष्टि-संस्कार किया।

क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।
येन मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति॥ १८॥

हा! महाराज का वह सुखस्पर्शी हाथ जो मेरे धूलधूसरित शरीर को झाड़ा करता था अब कहाँ गया ?

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि धीमतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ १९॥

अच्छा, अब जो मेरे भ्राता, पिता और बन्धु हैं, जिन बुद्धिमान् का मैं दास हूँ, उस सरल-स्वभाव राम के विषय में मुझे बताओ, वे कहाँ हैं ?

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥ २०॥

धर्मानुरागी और विवेकी जनों के लिए बड़ा भाई ही पिता के तुल्य होता है। इस समय वे ही मेरा आश्रय हैं, मैं उनकी चरणवन्दना करूँगा।

धर्मविद्धर्मनित्यश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः।
आर्यः किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः॥ २१॥

धर्मज्ञ, धर्म का अनुष्ठान करनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और दृढ़व्रत पूज्य पिताजी मेरे विषय में क्या आज्ञा कर गये हैं।

पश्चिमं साधु सन्देशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः।
इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत्॥ २२॥

मैं अपने विषय में पिताजी का अन्तिम सन्देश सुनना चाहता हूँ। भरत के इस प्रकार पूछने पर कैकेयी ने यथार्थ बात कही।

रामेति राजा विलपन् हा सीते लक्ष्मणेति च।
स महात्मा परं लोकं गतो गतिमतां वरः॥ २३॥

तुम्हारे पिता हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीते! इस प्रकार विलाप करते हुए परलोकवासी हो गये।

इमां तु पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव।
कालधर्मपरिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः॥ २४॥

बन्धन बँधे हुए गजराज की भाँति कालधर्म से विवश होकर तुम्हारे पिताजी ने अन्तिम समय कहा था—

सिद्धार्थास्ते नरा राममागतं सीतया सह।
लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम्॥ २५॥

जो लोग सीता सहित श्रीराम और महाबाहु लक्ष्मण को वन से लौटा हुआ देखेंगे वे ही सफल मनोरथ होंगे।

तत् श्रुत्वा विषसादैवं द्वितीयाप्रियशंसनात्।
विषण्णवदनो भूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम्॥ २६॥

इस दूसरी अप्रिय बात को सुनकर भरतजी और अधिक दुःखी हुए, फिर विषादपूर्ण मुखवाले भरत ने माताजी से पूछा—

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समं गतः॥ २७॥

माता! वे धर्मात्मा और कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले राम इस समय भाई लक्ष्मण और सीता के साथ कहाँ गये हैं?

तथा पृष्टा यथातत्त्वमाख्यातुमपचक्रमे।
माताऽस्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंसया॥ २८॥

भरत के इस प्रकार पूछने पर कैकेयी ने यह समझकर कि भरत राम-वनगमन से प्रसन्न होगा, महाराज दशरथ-मरण की बात कहने के पश्चात् दूसरी अप्रिय बात कहनी आरम्भ की।

स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम्।
दण्डकान् सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः॥ २९॥

हे वत्स! वे राजकुमार राम वल्कल-वस्त्र धारण कर सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक नामक महावन में चले गये हैं।

तत् श्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे॥ ३०॥

राम-वनगमन की बात सुनकर भरत भाई के चरित्र की आशंका से भयभीत हो गये। अपने वंश के माहात्म्य तथा कीर्ति को लक्ष्य में रखकर भरतजी ने अपनी माता से पूछा—

कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित्।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः॥ ३१॥

हे माता! क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन छीना था? अथवा क्या राम ने बिना अपराध किसी धनाढ्य या निर्धन की हत्या की थी।

कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः॥ ३२॥

क्या राम ने किसी पर-स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखा था? मेरे भ्राता राम को किस अपराध के कारण दण्डक वन में भेजा गया।

एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना।
उवाच वचनं हृष्टा मूढा पण्डितमानिनी॥ ३३॥

महात्मा भरत के इस प्रकार पूछने पर अपने-आपको पण्डिता माननेवाली वह मूर्खा प्रसन्न होकर बोली—

न ब्राह्मणधनं किञ्चिद्धृतं रामेण धीमतः।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः।
न रामः परदारांश्च चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥ ३४॥

वत्स! बुद्धिमान् राम ने न तो किसी ब्राह्मण के धन का अपहरण किया और न ही किसी धनी अथवा दरिद्र का वध किया। राम परस्त्री को तो आँख उठाकर भी नहीं देखता।

मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्यैवाभिषेचनम्।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्॥ ३५॥

हे पुत्र! जब मैंने राम के राज्याभिषेक की बात सुनी तब मैंने तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिए राज्य और राम के लिए वनवास माँगा।

स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाऽकरोत्।
रामश्च सह सौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया॥ ३६॥

सत्यप्रतिज्ञ तुम्हारे पिता ने मेरी याचना को स्वीकार कर लक्ष्मण और सीता के साथ राम को वनवास दे दिया।

तमपश्यन्प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः।
पुत्रशोकपरिद्यूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान्॥ ३७॥

महायशस्वी महाराज दशरथ अपने प्रिय पुत्र राम को न देखने के कारण, पुत्र-शोक से पीड़ित हो पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम्॥ ३८॥

हे धर्मज्ञ! अब तुम राजपद को स्वीकार करो, क्योंकि मैंने यह सब कुछ तुम्हारे ही लिए किया है।

तत्पुत्र शीघ्रं विधिना विधिज्ञैः
वसिष्ठमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः।
सङ्काल्य राजानमदीनसत्त्व
मात्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व॥ ३९॥

इसलिए हे पुत्र! तुम विधि के जाननेवाले वसिष्ठादि प्रमुख द्विजों के साथ महापराक्रमी अपने पिता का अन्त्येष्टि-संस्कार कराओ तथा पृथिवी पति पद पर अपना अभिषेक कराओ।

➤ सप्तपञ्चाशः सर्गः ➤ (५७)

भरत द्वारा कैकेयी की निन्दा—

श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ।
भरतो दुःखसन्तप्त इदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

पिता का मरण और दोनों भाइयों के वनगमन का वृत्तान्त जानकर दुःख से सन्तप्त हो भरत कैकेयी से कहने लगे—

किन्नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च॥ २॥

पिता और पितृतुल्य भाई रहित होने के कारण मेरा तो सर्वनाश हो गया। ऐसी शोच्य दशा में मुझे राज्य से क्या प्रयोजन?

दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवादधाः।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्॥ ३॥

तुमने महाराज दशरथ की हत्या कर और राम को वनवासी बना मुझे दुःख-पर-दुःख दिया है, मानो कोई कटे हुए घाव पर नमक छिड़क दे।

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि॥ ४॥

अरे पापिष्टे! तुमने महाराज को मार डाला। अरी कुलनाशिनी! तुमने मोहवश इस कुल का सम्पूर्ण सुख एवं वैभव नष्ट कर डाला।

ननु त्वार्योऽपि धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम्।
वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते॥ ५॥

मेरे ज्येष्ठ और धर्मात्मा भाई राम तुम्हारे साथ सदा उत्तम व्यवहार ही करते रहे। बड़ों के पदचिह्नों पर चलनेवाले वे तुम्हारी भी ऐसी ही सेवा करते थे जैसी अपनी जननी कौसल्या की।

तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते॥ ६॥

मेरी ज्येष्ठा माता कौसल्या भावी विपत्ति को जानने पर भी धर्मानुकूल तेरे साथ सगी बहन का-सा व्यवहार करती थी।

तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम्।
प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसि॥ ७॥

उसी सरल-हृदया कौसल्या के धर्मात्मा पुत्र को चीर और वल्कल पहनाकर तुमने वन में भिजवा दिया, हे पापिनी! फिर भी तुझे दुःख क्यों नहीं होता?

अपापदर्शनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम्।
प्रव्राज्य चीरवसनं किन्नु पश्यसि कारणम्॥ ८॥

पवित्रात्मा, वीर, यशस्वी और उदार राम को वल्कल-वस्त्र पहनाकर और वन में भिजवा कर तुमने क्या फल पाया?

अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन् रामलक्ष्मणौ।
केन शक्तिप्रभावने राज्यं रक्षितुमुत्सहे॥ ९॥

मैं उन पुरुषसिंह राम और लक्ष्मण के देखे बिना किस शक्ति के बल पर इस राज्य की रक्षा कर सकता हूँ।

अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा।
सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्धिनीम्॥ १०॥

अथवा यदि मैं साम-दान आदि उपायों से और बुद्धिबल से इस राज्य-भार को उठा भी लूँ तो भी अपने ही पुत्र के प्रति स्नेह करनेवाली, तेरे इस मनोरथ को मैं पूरा न होने दूँगा।

उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी।
साधुचारित्रविभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता॥ ११॥

अरे पापदर्शिनि! हमारे पूर्वजों की प्रथा को कलङ्कित करनेवाली यह पापपूर्ण बुद्धि तुममें कहाँ से उत्पन्न हुई?

अस्मिन् कुले हि पूर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्तन्ते समाहिताः॥ १२॥

रघुवंश की यह परम्परा है कि बड़ा भाई ही राज्य का अधिकारी होता है और छोटे भाई उसके अधीन सब कार्य करते हैं।

न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये।
निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम्॥ १३॥

हे पाप-निश्चये! मैं तुम्हारे इस मनोरथ को कभी पूरा नहीं होने दूँगा। मैं स्वजनप्रिय अपने भाई राम को वन से लौटा कर लाऊँगा।

किन्नु तेऽदूषयद्राजा रामो वा भृशधार्मिकः।
ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ॥ १४॥

भला बताओ तो महाराज दशरथ ने और परम धार्मिक राम ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुमने महाराज को तो मार दिया और राम को वन में निकाल दिया।

त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः।
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः॥ १५॥

तेरे ही कारण मेरे पिताजी मृत्यु का ग्रास हुए और मेरे भाई राम वनवासी हुए। संसार में मेरे लिए तुमने अपयश का बीज बोया है।

न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः।
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः॥ १६॥

तुम बुद्धिमान् एवं धर्मात्मा अश्वपति की कन्या कहलाने योग्य नहीं हो। मेरे पिता के कुल को नष्ट करने के लिए तुम तो उस घर में राक्षसी पैदा हुई हो।

अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चापि जायते[1]।
तस्मात्प्रियतमो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः॥ १७॥

पुत्र माता के अङ्ग-प्रत्यङ्ग और हृदयकमल से उत्पन्न होता है, अतः वह माता का अत्यधिक प्रिय होता है। अन्य बान्धव तो केवल प्रिय होते हैं। (ऐसी परम प्रिय वस्तु का वियोग माता के लिए कितना दुःखदायी होगा तुमने यह भी नहीं विचारा।)

आनाय्य च महाबाहुं कौसल्याया महाबलम्।
स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम्॥ १८॥

मैं महाबली, विशाल भुजावाले कौसल्यानन्दन राम को वन से लौटाकर स्वयं मुनि-सेवित वन में प्रवेश करूँगा।

अहमप्यवनिं प्राप्ते रामे सत्यपराक्रमे।
कृतकृत्यो भविष्यामि विप्रवासितकल्मषः॥ १९॥

सत्यपराक्रमी भ्राता राम के अयोध्या में लौटकर राज्य प्राप्त कर लेने पर मैं सफल मनोरथ हो जाऊँगा तथा श्रीराम के निर्वासन के पाप का मार्जन कर सकूँगा।

इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशचोदितः।
पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः॥ २०॥

भरतजी इस प्रकार विलाप करते-करते तोमर और अङ्कुश के प्रहार से उत्पीड़ित हाथी के समान क्रोध में भरकर पृथिवी पर गिर पड़े और सर्प की भाँति फुंकारें मारने लगे।

---

१. यह श्लोक 'शतपथ-ब्राह्मण' के निम्न वचन से साम्य रखता है—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे॥

—शत० ब्रा० १४।९।४।८

◀ अष्टपञ्चाशः सर्गः ▶ (५८)

भरत की शपथें—

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रामिदमब्रवीत्॥ १॥

इस प्रकार रोते-चिल्लाते हुए भरतजी के कण्ठ स्वर को पहचान महारानी कौसल्या सुमित्रा से बोली—

आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेया भरतः सुतः।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम्॥ २॥

जान पड़ता है—क्रूरकर्मा कैकेयी का पुत्र भरत आ गया है। मैं उस दीर्घदर्शी भरत को देखना चाहती हूँ।

एवमुक्त्वा सुमित्रां सा विवर्णा मलिना कृशा।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना॥ ३॥

सुमित्रा से ऐसा कह, राम वियोग के कारण अति दुर्बल, कान्तिहीन मुखवाली कौसल्या थर-थर काँपती हुई और अचेत-सी भरत की ओर चली।

स तु रामानुजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा।
प्रतस्थे भरतो यत्र कौसल्याया निवेशनम्॥ ४॥

उधर राजकुमार भरत ने भी उसी मार्ग से अपने भाई शत्रुघ्न के साथ कौसल्या के राजमहल की ओर प्रस्थान किया।

ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम्॥ ५॥

मार्ग में जाते हुए भरत और शत्रुघ्न कौसल्या को देखकर बहुत दुःखी हुए। वे दुःख-पीड़ित तथा चेतनाशून्य होकर भूमि पर गिरी माता को लिपट गये और रोने लगे।

रुदन्तौ रुदतीं दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी।
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता॥ ६॥

भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को रोते देखकर अत्यन्त दुःखित मनस्विनी आर्या कौसल्या भरत को अपने हृदय से लगा रोते हुए यह बोली—

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥ ७॥

तुम्हें राज्य की अभिलाषा थी, लो! तुम्हें यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त हो गया, परन्तु खेद है कि कैकेयी ने अत्यन्त क्रूरकर्म करके यह राज्य प्राप्त किया है।

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी॥ ८॥

मेरे पुत्र को वल्कल वस्त्र पहना और वन भेजकर इस क्रूरदर्शिनी ने क्या फल पाया?

क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः॥ ९॥

कैकेयी को चाहिए कि मुझे भी वहाँ शीघ्र भेज दे जहाँ ज्ञान-विज्ञानपूर्ण, सुवर्ण जैसे शरीर-वाला महायशस्वी मेरा पुत्र राम निवास कर रहा है।

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः॥ १०॥

अथवा मैं स्वयं सुमित्रा को साथ लेकर तथा अग्निहोत्र को आगे कर (साथ लेकर) सहर्ष वहाँ चली जाऊँगी जहाँ राम है।

कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि।
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रः पुत्रो मे तप्यते तपः॥ ११॥

अथवा तुम स्वयं मुझे वहाँ पहुँचा आओ जहाँ पुरुषसिंह मेरा पुत्र राम तप कर रहा है।

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम्।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया॥ १२॥

तुम्हें तो कैकेयी ने धन-धान्य तथा हाथी, घोड़े और रथों से परिपूर्ण यह राज्य दिलवा ही दिया है।

इत्यादि बहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः सम्भर्त्सितोऽनघः।
विव्यथे भरतस्तीव्रं व्रणे तुद्येव सूचिना॥ १३॥

इत्यादि अनेक कठोर वाक्यों द्वारा कौसल्या ने जब निष्पाप भरत को फटकारा तब भरतजी को ऐसा

क्लेश हुआ जैसा घाव में सुई चुभोने से होता है।

पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्भ्रान्तचेतनः।
विलप्य बहुधाऽसंज्ञो लब्धसंज्ञस्ततः स्थितः॥ १४॥
एवं विलपमानां तां भरतः प्राञ्जलिस्तदा।
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम्॥ १५॥

कौसल्या के इन कठोर वचनों को सुनकर भरतजी उद्विग्न होकर माता के चरणों मे गिर पड़े। बहुत प्रकार से विलाप करके वे मूर्छित हो गये। जब उन्हें होश आया तब वे हाथ जोड़कर शोकाक्रान्त और नाना प्रकार से विलाप करती हुई कौसल्या से कहने लगे—

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकिल्बिषम्।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थिरां जानासि राघवे॥ १६॥

हे आर्ये! राम-वनगमन के विषय में अनभिज्ञ और निर्दोष होने पर भी आप मुझे दोष क्यों देती हैं? श्रीराम में मेरा कैसा अगाध प्रेम है यह बात आप जानती ही हैं।

कृता शास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत्तस्य कदाचन।
सत्यसन्धः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ १७॥

सत्यव्रती, सज्जन-श्रेष्ठ आर्य राम के वनगमन में जिसने परामर्श दिया हो उस अभागे की बुद्धि कभी भी शास्त्रानुगामी न हो (अर्थात् वह वेदादि शास्त्रों को न पढ़ सके।)

प्रेष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु।
हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः[1]॥ १८॥

जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों वह पापात्मा नीच जाति का सेवक हो। उस भाग्यहीन व्यक्ति को वह पाप लगे जो सूर्य की ओर मुख करके मल-मूत्र त्याग करनेवाले और सोती हुई गौ को लात मारनेवाले को लगता है।

कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम्।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः॥ १९॥

नौकर से बहुत-सा काम कराकर उसे मजदूरी न देनेवाले स्वामी को जो पाप लगता है वही पाप उस भाग्यहीन को लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हैं।

परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत्।
सततं द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २०॥

श्रीराम जिसके परामर्श से वन भेजे गये हैं उसे वही पाप लगे जो पुत्रवत् प्रजा का पालन करनेवाले राजा के प्रति विद्रोह करनेवाले को लगता है।

बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षतः प्रजाः।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २१॥

जो सम्राट् प्रजा से छठा भाग 'कर' लेकर भी प्रजा की रक्षा न करे उस अन्यायी राजा को जो पाप लगता है वही पाप उस व्यक्ति को लगे जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हैं।

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम्।
तां विप्रलपतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २२॥

यज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा करके जो पीछे दक्षिणा न दे ऐसे मिथ्यावादी को जो पाप लगता है वही पाप उसे लगे जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हैं।

हस्त्यश्वरथसम्बाधे युद्धशस्त्र समाकुले।
मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २३॥

हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर

---

१. सूर्य की ओर मुख करके मल-मूत्र त्यागनेवाले और गौ को लात मारनेवाले के लिए वेद में वध-दण्ड का विधान है। देखिए—

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ्ङ सूर्यं च मेहते।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम्॥

—अथर्व० १३।१।५६

सूर्य की ओर मुख करके मल-मूत्र त्यागने से सिर दर्द आदि अनेक रोग हो जाते हैं। जो गौ हमें अमृत तुल्य उत्तम दूध पिलाती है उसे लात मारना ठीक नहीं।

भी जो संग्राम में वीरोचित कार्य न करे, अर्थात् युद्ध से पराङ्मुख होकर भागे ऐसे कायर व्यक्ति को जो पाप लगता है वही पाप उस व्यक्ति को लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों।

उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २४॥

जिसके परामर्श से राम वन गये हैं वह दुष्टात्मा बुद्धिमान् गुरु द्वारा उपदिष्ट परलोकसाधक एवं सूक्ष्म तत्त्ववाले शास्त्र को भूल जाए।

मा च तं व्यूढबाह्वंसं चन्द्रार्कसमतेजसम्।
द्राक्षीद्राज्यस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २५॥

जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हैं वह विशालबाहु, समुन्नत-स्कन्ध और चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्वी श्रीराम का राज्याभिषेक न देख सके, अर्थात् तब तक जीवित न रहे, मर जाए।

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः।
गुरूंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः[1]॥ २६॥

ब्रह्मयज्ञ=सन्ध्या, देवयज्ञ=अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ किये बिना जो व्यक्ति खीर, तिल, चावल खाता और बकरी का दूध पीता है तथा गुरु को देखकर खड़े न होनेवाले और गुरु को प्रणाम न करनेवाले व्यक्ति को जो पाप लगता है वही पाप उस पापी को लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों।

गाश्च स्पृस्तु पादेन गुरून्परिवदेत्स्वयम्।
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यन्तं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २७॥

गौ को पैर से छूनेवाले, गुरुजनों की निन्दा करनेवाले और मित्रों से द्रोह करनेवाले पतितों को जो पातक लगता है वही पातक उसे लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हैं।

विश्वासात्कथितं किञ्चित्परिवादं मिथः क्वचित्।
विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २८॥

परस्पर विश्वासपूर्वक कही हुई निन्दाजनक बातों को जो दुष्टात्मा प्रकाशित कर देता है उस विश्वासघाती को जो पाप लगता है वही पाप उसे लगे जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हों।

अकर्ता ह्यकृतज्ञश्च त्यक्तात्मा निरपत्रपः।
लोके भवतु विद्वेष्यो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ २९॥

---

१. यह श्लोक वैदिक विधान का संकेत कर रहा है। वेद में कहा है—

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्।
—अथर्व० ९।६ (३) ७

श्रोत्रिय की अतिथि संज्ञा है। उसके खाने से पूर्व नहीं खाना चाहिए।

महर्षि मनु ने कहा है—

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥
—मनु० ३।११८

जो केवल अपने लिए पकाता है वह पाप ही खाता है। यज्ञशेष ही सज्जनों का भोजन है। यह सनातन विधान है।

मनुस्मृति और रामायण की इस विचारधारा का समर्थन योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भी किया है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
—गीता ३।१३

यज्ञ से बचे को खानेवाले सब पापों से छूट जाते हैं। केवल जो अपने लिए पकाते हैं वे पापी तो पाप ही खाते हैं।

गुरु को अभिवादन के सम्बन्ध में महर्षि मनु का ओदश है—

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्॥
—मनु० २।११९

गुरु के प्रयोग में आनेवाले आसन अथवा शय्या पर स्वयं न बैठे। यदि स्वयं आसन अथवा शय्या पर बैठा हो और गुरु आ जायें तो शय्या अथवा आसन से उठकर उन्हें 'नमस्ते' कहनी चाहिए।

वह उपकार का बदला न देनेवाला, कृतघ्न, सज्जनों से बहिष्कृत, निर्लज्ज और लोक में निन्दित हो जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हैं।

पुत्रैर्दारैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः।
स एको मृष्टमश्नातु[1] यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३०॥

जिसकी अनुमति से राम वन गये हों उसे वह पाप लगे जो पाप उस मनुष्य को होता है जो सामने बैठे हुए नौकर-चाकर, स्त्री और पुत्र को न देकर अकेला ही स्वादु पदार्थ खाता है।

अप्राप्य सदृशान् दाराननपत्यः प्रमीयताम्।
अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३१॥

वह अनुकूल पत्नी को बिना पाये पुत्रहीन होकर मर जाए तथा वह यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं को बिना किये ही मर जाए जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हों।

माऽऽत्मनः सन्ततिं द्राक्षीत्स्वेषु दारेषु दुःखितः।
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३२॥

जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों वह अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न अपनी सन्तान को देखे बिना दुःखी होकर मर जाए।

राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते।
भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्॥ ३३॥

राजा, स्त्री, बालक और वृद्ध के वध करने और निरपराध स्वामिभक्त नौकर को त्यागने से जो पाप होता है वही पाप उसको हो जिसकी अनमुति से आर्य राम वन गये हैं।

लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च।
सदैव बिभृयादभृत्यान् यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३४॥

लाख, माँस, मधु[2]-शराब, लोह[3]-मछली पकड़ने का काँटा और विष का विक्रय कर अपने आश्रित जनों का पालन करनेवाले को जो पाप लगता है वही पाप उसे लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हो।

संग्रामे समुपोढे तु शत्रुपक्षभयङ्करे।
पलायमानो बध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३५॥

जो मनुष्य भयङ्कर सैन्यदल देखकर युद्ध से पराङ्मुख होकर भागता हुआ मारा जाए ऐसे पापी को जो पातक लगता है अथवा संग्राम से भागे हुए शत्रु को मारनेवाले को जो पाप लगता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों।

कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृत्तः।
भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३६॥

जिसके परामर्श से राम वन गये हैं उसे वह पाप लगे जो उन्मत्त की भाँति चिथड़े लपेटे, मुर्दे की खोपड़ी हाथ में लिए द्वार-द्वार पर भीख माँगते हुए पृथिवी पर भ्रमण करनेवाले को लगता है।

मद्ये प्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः।
कामक्रोधाभिभूतस्तु यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३७॥

जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों वह मनुष्य सदा मद्य पीने, पर-स्त्रीगमन और जुआ खेलने में अत्यन्त आसक्त हो और सदा काम-क्रोध से

ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते॥

—मनु० २।१२०

गुरु अथवा वृद्धजन के आने पर युवकों के प्राण ऊपर को चलने लगते हैं। They become nervous. वे घबरा जाते हैं। उठकर नमस्कार कर लेने पर वह घबराहट दूर हो जाती है।

१. वेद में कहा है—

केवलाघो भवति केवलादी। —ऋ० १०।११७।६

अकेला खानेवाला पापी होता है।

२. मधु का अर्थ शहद भी होता है, परन्तु माँस के साथ पठित होने के कारण यहाँ शराब अर्थ ही समीचीन है।

३. लोह का अर्थ लोहा भी होता है और रक्त भी। लोहा बेचना पाप नहीं है। रक्त की बात माँस में आ गई है, अतः हमने लोह का अर्थ किया है मछली पकड़ने का काँटा। यही अर्थ संगत है।

अभिभूत हो।

मा स्म धर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम्।
अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३८॥

जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हों उसका मन धर्म में न लगे, वह अधर्म का सेवन करे और कुपात्रों को बहुत-सा दान दे।

सञ्चितान्यस्य वित्तानि विविधानि सहस्रशः।
दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ३९॥

जिसके परामर्श से राम वन गये हों उसकी विधिपूर्वक कमायी हुई धन-सम्पति को दस्यु लोग लूट ले जाएँ।

उभे सन्ध्या शयानस्य[1] यत्पापं परिकल्पते।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४०॥

सायं और प्रातःकाल की दोनों सन्धियों में सोनेवाले व्यक्ति को जो पाप लगता है वही पाप उस व्यक्ति को लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन में गये हैं।

यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्॥ ४१॥

आग लगनेवाले, गुरु-स्त्रीगामी और मित्रद्रोही को जो पाप लगता है वही पाप उस नीच को लगे जिसकी सम्मति से आर्य राम वन में गये हों।

देवतानां पितॄणां च मातापित्रोस्तथैव च।
मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४२॥

जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों उसे विद्वान्, रक्षक और माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा का जो पुण्य प्राप्त होता है वह प्राप्त न हो। अथवा माता-पिता आदि की सेवा न करनेवाले को जो पाप लगता है राम को वन में भेजनेवाले को भी वही पाप लगे।

सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सञ्जुष्टात्कर्मणस्तथा।
भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४३॥

वह सज्जनों के समाज से, सज्जनों की कीर्ति और सत्कर्मों से एकदम च्युत हो जाए जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हों।

अपास्य मातुशुश्रूषामनर्थे सोऽवतिष्ठताम्।
दीर्घबाहुर्महावक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४४॥

जिसके परामर्श से दीर्घबाहु और विशालवक्ष श्रीराम वन में गये हैं वह माता की सेवा से विमुख होकर अनर्थकारी कार्यों में प्रवृत्त हो, अर्थात् उसे मातृ-सेवा विमुख होने तथा अधर्म कार्यों में रत होने का पाप लगे।

बहुपुत्रो[2] दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः।
स भूयात्सततं क्लेशी यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४५॥

जिसकी सम्मति से आर्य राम वन में गये हैं वह

---

१. वेद में कहा है—

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे।

—अथर्व० ७।१३।२

एक वैदिक वीर गर्जना करते हुए कहता है—मैं अपने शत्रुओं के तेज को ऐसे ही खींच लेता हूँ जैसे उदय होता हुआ सूर्य उस समय सोनेवालों के तेज का हरण कर लेता है।

महर्षि मनु ने कहा है—

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्।

—मनु० ४।५५

सन्ध्याकाल में भोजन, शयन और यात्रा न करें। क्यों? इसका उत्तर वृद्ध चाणक्य ने दिया है—

कुचेलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

—चा० नीति० १५।४

मैले वस्त्र पहननेवाला, जिसके दाँत मैले हैं, जो बहुत अधिक खानेवाला है, जो कठोर बोलनेवाला है, जो सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोता है ऐसे व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु ही क्यों न हो।

२. वेद में कहा है—

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश। —ऋ० १।१६४।३२

बहुत सन्तानवाले बहुत दुःख उठाते हैं।

बहुत सन्तानवाला और दरिद्र हो, वह ज्वर रोग से ग्रस्त होकर अत्यधिक क्लेश को प्राप्त हो।

आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम्।
अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४६॥

जो पाप कुछ प्राप्ति की आशा से प्रशंसा करनेवाले दीनों तथा ऊपर दृष्टि किये हुए भिक्षुकों की आशाओं[1] पर तुषारापात करने से होता है, वही पाप उस व्यक्ति को लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों।

मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुनोऽशुचिः।
राज्ञो भीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४७॥

जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हों वह व्यक्ति कपट-प्रिय, चुगलखोर--इधर-की-उधर लगानेवाला, बेईमान और अधर्मी हो तथा सदा राजभय से त्रस्त रहे।

ऋतुस्नातां सतीं भार्यामृतुकालानुरोधिनीम्।
अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४८॥

जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हों उस दुष्टात्मा को वह पाप लगे जो ऋतुस्नात, पतिव्रता, ऋतुकाल में पति की कामना करनेवाली स्त्री को रतिदान न देनेवाले पुरुष को लगता है।

धर्मदारान् परित्यज्य परदारान्निषेवताम्।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ४९॥

आर्य राम जिसकी अनुमति से वन में गये हों उस मूढ़ को वही पाप लगे जो उस दुष्ट को लगता है जो पाणिगृहीत पत्नी को छोड़ तथा धर्मानुकूल रति का त्याग करके परस्त्री का सेवन करता है।

विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत्।
तदेव प्रतिपद्येत यस्यार्योनुमते गतः॥ ५०॥

जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हैं उसे वह पाप लगे जो उस ब्राह्मण को लगता है जिसके पुत्र भूख से बिलबिला कर मर जाएँ और वह उनका पालन न कर सके।

पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके।
यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ५१॥

पेय जल को दूषित करनेवाले तथा विष देनेवाले को जो पाप लगता है, वह अकेला ही उस पाप को प्राप्त हो जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हों।

ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः।
बालवत्सां च गां दोग्धुर्यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ५२॥

ब्राह्मण के होनेवाले सत्कार में विघ्न डालनेवाले और छोटे बछड़ेवाली गौ का दूध दुहनेवाले को जो पाप होता है वही पाप उसे लगे जिसकी अनुमति से आर्य राम वन गये हैं।

तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयेत्।
लभेत तस्य यत्पापं यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ५३॥

पानी होने पर भी प्यासे व्यक्ति को बहाना बनाकर टाल देनेवाले पुरुष को जो पाप लगता है वही पाप उसे लगे जिसके परामर्श से आर्य राम वन गये हैं।

भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः।
तस्य पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ५४॥

एक-दूसरे को जीतने के उद्देश्य से शास्त्रीय विचार में प्रवृत्त दो विद्वानों का मध्यस्थ बन, पक्षपात से प्रेरित हो, अपने प्रियजन का पक्षपात करनेवाले को जो पाप लगता है वही पाप उसे लगे जिसकी सम्मति से आर्य राम वन गये हैं।

विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः।
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तो निपपात ह॥ ५५॥

पति तथा पुत्र से विहीन माता कौसल्या को इस प्रकार आश्वासन देते हुए राजपुत्र भरत दुःखी होकर पृथिवी पर गिर पड़े।

तथा तु शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम्।
भरतं शोकसन्तप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत्॥ ५६॥

तब कष्टकारी शपथों को लेनेवाले, शोक से सन्तप्त

---

१. वेद का आदेश है—

पृणीयादिन्नाधमानाय। —ऋ० १०।११७।५

याचक की कामना पूरी करनी ही चाहिए।

और चेतनाहीन भरत से कौसल्या बोली—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे॥ ५७॥

हे पुत्र! तुम्हारी शपथों से मेरा यह दुःख और अधिक बढ़ रहा है। शपथ लेते हुए तुम मेरे प्राणों को अवरुद्ध कर रहे हो।

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो मे सतां लोकानवाप्स्यसि॥ ५८॥

हे वत्स! यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा शुभ लक्षणयुक्त अन्तरात्मा धर्म से विचलित नहीं हुआ। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, अतः तुम सज्जनों के पद को प्राप्त करोगे।

इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता॥ ५९॥

यह कहकर महाबाहु भ्रातृवत्सल भरत को गोद में ले और हृदय से लगा महारानी कौसल्या दुःखपूर्वक रोने लगीं।

एवं विलपमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः।
मोहाच्च शोकसंरोधाद्बभूव लुलितं मनः॥ ६०॥

उधर इस प्रकार विलाप करते हुए दुःख-पीड़ित महात्मा भरत का मन मोह एवं शोकोद्वेग के कारण विह्वल हो उठा।

➤ नवपञ्चाशः सर्गः ➤ (५९)

दशरथ का अन्त्येष्टि-संस्कार—

तमेवं शोकसन्तप्तं भरतं कैकेयीसुतम्।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः॥ १॥

भरतजी को इस प्रकार शोकसन्तप्त देखकर बोलनेवालों में श्रेष्ठ, सुवक्ता महर्षि वसिष्ठ यह उत्तम वचन बोले—

अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम्॥ २॥

हे परमयशस्वी राजपुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। अब शोक समाप्त करो। अब समय हो चुका है, अतः महाराज की महायात्रा की तैयारी करो।

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्॥ ३॥

पृथिवी पर पड़े हुए धर्मात्मा भरतजी ने वसिष्ठजी का वचन सुन, मन्त्रियों द्वारा महाराज की अन्त्येष्टि का सम्पूर्ण प्रबन्ध कराया।

उद्धृतं तैलसंरोधात्स तु भूमौ निवेशितम्।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूपतिम्॥ ४॥

महाराज के मृतशरीर को तेल-पात्र से निकाल कर भूमि पर रखा गया। तेल में पड़े रहने के कारण उनका शरीर पीला पड़ गया था तथापि ऐसा जान पड़ता था कि वे गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं।

शिबिकायामथारोप्य नानारत्नपरिष्कृते।
बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूहुः परिचारिकाः॥ ५॥

तदनन्तर महाराज के शव को रत्नजटित पालकी में रखकर, अत्यन्त उदास और रोते हुए परिचारकगण उस पालकी को उठाकर ले चले।

हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च।
प्रकिरन्तो जना मार्गं नृपतेरग्रतो ययुः॥ ६॥

लोग महाराज के शव के आगे-आगे स्वर्ण, चाँदी तथा उत्तम वस्त्रों को लुटाते जाते थे।

चन्दनागरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा।
देवदारूणि चाहृत्य चितां चक्रुस्तथापरे॥ ७॥

(श्मशान में पहुँचकर) चन्दन, अगर, गुग्गुल, सरल, पद्मक तथा देवदारु आदि सामग्रियों द्वारा लोगों ने चिता का निर्माण किया।

ततः संवेशयामासुश्चितामध्येऽथ भूमिपम्।
तथा हुताशनं दत्वा जेपुस्तस्य तमृत्विजः॥ ८॥

तदनन्तर महाराज दशरथ के शव को चिता पर रखकर ऋत्विज् लोगों ने मन्त्रपूर्वक प्रेत्याग्नि में आहुतियाँ दीं।

शिबिकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः।
नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तदा॥ ९॥

महाराज की शोकसन्तप्त सब रानियाँ भी यथा योग्य पालकी तथा रथ आदि यानों में बैठ वृद्ध रक्षकों के साथ नगर के बाहर चिता-स्थल पर पहुँचीं।

प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्।
स्त्रियश्च शोकसन्तप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा॥ १०॥

फिर ऋत्विजों और कौसल्या आदि रानियों ने अत्यन्त शोक-सन्तप्त होकर महाराज की प्रज्ज्वलित चिता की प्रदक्षिणा की।

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्वराङ्गनाः॥ ११॥

तदनन्तर विवशतापूर्वक रोती हुई और विलाप करती हुई वे सब रानियाँ अपने-अपने यानों द्वारा सरयू के तट पर जाकर उतरीं।

कृतोदकं ते भरतेन सार्धं
नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा
भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम्॥ १२॥

भरत के साथ मन्त्री, पुरोहित और रानियों ने सरयू नदी में स्नान किया। स्नान से निवृत्त हो सब लोग आँखों से आँसू बहाते हुए नगर में प्रविष्ट हुए तथा व्रतपूर्वक भूमि पर शयन करते हुए दस दिन तक राजकीय शोक मनाया।

ततःप्रभातसमये दिवसेऽथ त्रयोदशे।
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह॥ १३॥

तेरहवें दिन प्रभात वेला में वसिष्ठजी भरत को उठाकर कहने लगे—

त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे॥ १४॥

हे विभो! तुम्हारे पिताजी की अन्त्येष्टि का यह तेरहवाँ दिन है, अतः अब भस्म सहित अस्थि संचयन करने में देर क्यों कर रहे हो?

त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवतुमर्हसि॥ १५॥

सभी मनुष्यों में तीन द्वन्द्व [भूख-प्यास, दुःख सुख और जन्म-मरण] सामान्य रूप से लगे हुए हैं। इनको दूर करना सम्भव नहीं, अतः तुम्हें इस प्रकार दुःखी नहीं होना चाहिए।

सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च।
श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ॥ १६॥

[इधर वसिष्ठजी ने भरत को इस प्रकर समझाया और उधर] तत्त्वज्ञ सुमन्त्र ने शत्रुघ्न को उठाकर उन्हें धैर्य एवं सान्त्वना प्रदान करते हुए प्राणियों की उत्पत्ति एवं विनाश का रहस्य समझाया।

उत्थितौ च नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ।
वर्षातपपरिक्लिन्नौ पृथगिन्द्रध्वजाविव॥ १७॥

पुरुषसिंह एवं यशस्वी जब वे दोनों भाई उठकर खड़े हुए तब वे ऐसे जान पड़ते थे मानो वर्षा और धूप के कारण मुर्झाई हुई दो इन्द्रध्वजाएँ अलग-अलग खड़ी हों।

❮ षष्टितमः सर्गः ❯ (६०)

कुब्जा को घसीटना—

अथ यात्रां समीहन्तं शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।
भरतं शोकसन्तप्तमिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

पिता के अन्त्येष्टि-कृत्य के पश्चात् लक्ष्मण-अनुज शत्रुघ्न शोकसन्तप्त तथा राम के पास जाने के इच्छुक भाई भरत के पास आकर बोले—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्॥ २॥

भाई! जो राम दु:ख और संकट में प्राणिमात्र के आश्रय हैं और सामर्थ्ययुक्त हैं—जब वे ही स्त्रीसहित वन में निकाल दिये गये तब हमारे दु:खों की तो बात ही क्या है।

बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥ ३॥

[यदि राम ने उस समय संकोचवश कुछ नहीं कहा तो] बलवान् और पराक्रमी लक्ष्मणजी ने पिताजी को बन्दी बनाकर श्रीराम को क्यों नहीं बचाया?

पूर्वमेव तु निग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ।
उत्पथं यः समारूढो नार्या राजा वशं गतः॥ ४॥

जब महाराज स्त्री के वशवर्ती होकर अन्याय करने के लिए उद्यत हुए थे तब लक्ष्मण को उचित था कि नीति और अनीति का विचार छोड़ महाराज को पहले ही बन्दी बना लेते।

इति सम्भाषमाणे तु शत्रुघ्ने लक्ष्मणानुजे।
प्राग्द्वारेऽभूत्तदा कुब्जा सर्वाभरणभूषिता॥ ५॥

शत्रुघ्न इस प्रकार भरत से वार्तालाप कर ही रहे थे कि मूल्यवान् अलंकारों से अलंकृत कुबड़ी मन्थरा पूर्व द्वार पर दीख पड़ी।

तां समीक्ष्य तदा द्वाःस्थो भृंश पापस्य कारिणीम्।
गृहीत्वाऽकरुणां कुब्जां शत्रुघ्नाय न्यवेदयन्॥ ६॥

उस समय उस महापापिन मन्थरा को देख, द्वारपालों ने उसे निर्दयतापूर्वक पकड़कर शत्रुघ्न के सामने उपस्थित किया और बोले—

यस्याः कृते वने रामो न्यस्तदेहश्च वः पिता।
सेयं पापा नृशंसा च तस्याः कुरु यथामतिः॥ ७॥

हे शत्रुघ्न! जिसके कारण श्रीराम वनवासी और आपके पिता परलोकवासी हुए वह यही दयाहीन और पापिन मन्थरा है। आप जैसा उचित समझें इसके साथ वैसा व्यवहार करें।

एवमुक्तास्तु तेनाशु सखीजनसमावृता।
गृहीता बलवत्कुब्जा सा तद्गृहमनादयत्॥ ८॥

द्वारपालों के ऐसा कहने पर शत्रुघ्न ने सखियों से घिरी हुई उस कुब्जा को ऐसे जोर से पकड़ा कि उसके चीत्कार से सारा भवन निनादित हो उठा।

स च रोषेण ताम्राक्षः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
विचकर्ष तदा कुब्जां क्रोशन्तीं धरणीतले॥ ९॥

शत्रुओं का मान-मर्दन करनेवाले शत्रुघ्न लाल-लाल आँखें किये हुए चीत्कार करती हुई कुब्जा को भूमि पर पटककर इधर उधर घसीटने लगे।

तां प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति॥ १०॥

शत्रुघ्न को कुपित देख भरत बोले—हे तात! प्राणिमात्र के लिए स्त्रियाँ अवध्य हैं, अतः तुम इसे क्षमा कर दो।

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन मातृघातकम्॥ ११॥

(यदि स्त्रियाँ अवध्य न होतीं और) धर्मात्मा राम मुझे मातृघाती समझकर मुझसे घृणा न करते तो मैं इस अक्षम्य अपराध करनेवाली दुष्टा कैकेयी को कभी का मार डालता।

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां च हि धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥ १२॥

यदि राम को कुब्जा के मारे जाने का पता चल गया तो वे धर्मात्मा हम दोनों से बात भी नहीं करेंगे।

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।
न्यवर्तत ततो रोषत्तां मुमोच च मन्थराम्॥ १३॥

भरत के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न का क्रोध शान्त हुआ और उन्होंने मन्थरा को छोड़ दिया।

एकषष्टितमः सर्गः (६१)

यात्रा के लिए मार्ग-शोधन—

ततः प्रभातसमये दिवसे च चतुर्दशे।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन्॥ १॥

चौदहवें दिन प्रात:काल सब मन्त्रिगण मिलकर भरतजी के पास आये और उनसे कहने लगे—

गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः।
रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम्॥ २॥

हमारे पूज्यों के भी पूज्य महाराज दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम और महाबलवान् लक्ष्मण को वन में भेजकर स्वयं स्वर्गवासी हो गये।

त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्रमहायशः।
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्षभ॥ ३॥

हे महायशस्वी राजकुमार! अब तुम हमारे राजा बनो। आप अपना राज्याभिषेक करा कर हम सबका पालन करो।

भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः।
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः॥ ४॥

तब व्रतधारी भरतजी उन सब लोगों से बोले—देखिए! हमारे कुल में सदा से ही ज्येष्ठ राजकुमार का राजसिंहासन पर बैठना उचित माना गया है।

नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः।
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च॥ ५॥

आप जैसे कुशल एवं व्यक्तियों को मुझे आदेश नहीं देना चाहिए। श्रीराम हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। वे ही हमारे सम्राट् होंगे। उनके स्थान में मैं चौदह वर्ष वनवास करूँगा।

युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात्॥ ६॥

आप लोग महती चतुरङ्गिणी (अश्व, गज, रथ, पैदल) सेना तैयार करें। मैं रघुकुल-शिरोमणि ज्येष्ठ भ्राता राम को लौटा लाऊँगा।

क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमानि च।
रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः॥ ७॥

मैं आज्ञा देता हूँ कि सड़कों की मरम्मत करनेवाले कारीगर लोग आगे जाकर ऊँची नीची भूमिवाले मार्ग को ठीक करें। उनके पीछे रक्षक और दुर्गम मार्ग के शोधक भी जाएँ।

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः।
करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे॥ ८॥

भरतजी की आज्ञानुसार भूमि प्रदेश के जाननेवाले भूमि के नापतौल करने में दक्ष लोग फावड़े, कुदाल आदि उपयोगी सामान लेकर आगे-आगे चले।

लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव च।
जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान् द्रुमान्॥ ९॥

ये लोग मार्ग को ठीक करने के अभिप्राय से लता, वल्ली, झाड़, ठूँठ, पत्थर और अनेक प्रकार के वृक्षों को जो मार्ग में पड़ते थे, कूट काटकर रास्ता बनाते जाते थे।

अवृक्षेषु च देशेषु केचिद्वृक्षानरोपयन्।
केचित्कुठारैष्टङ्कैश्च दात्रैश्छिन्दन् क्वचित्क्वचित्॥ १०॥

जिस प्रदेश में वृक्ष नहीं थे वहाँ पर उन लोगों ने वृक्ष लगाये और कहीं कुल्हाड़ियों से वृक्षों को काटा, कहीं-कहीं टाँकियों से पत्थरों को तोड़ा और कहीं हँसुओं से लताओं को काटा।

अपरे वीरणस्तम्बान् बलिनो बलवत्तराः।
विधमन्ति स्म दुर्गाणि स्थलानि च ततस्ततः॥ ११॥

कुछ लोगों ने अत्यन्त दृढ़ ठूँठों को जो उखाड़े नहीं उखड़ सकते थे, जलाकर साफ कर दिया और जितने ऊँचे-नीचे मार्ग और दुर्गम स्थान थे उन सबको ठोक-पीटकर तथा मिट्टी से पाटकर समतल कर दिया।

अपरेऽपूरयन् कूपान् पांसुभिः श्वभ्रमायतम्।
निम्नभागांस्ततः केचित्समांश्चक्रुः समन्ततः॥ १२॥

कुछ लोग मार्ग में आनेवाले कूपों और गड्ढों को मिट्टी से पाटते और नीची भूमि को मिट्टी से भरकर बराबर करते चले जाते थे।

ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः।
मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः॥ १३॥

उन शिल्पियों ने सेना के जाने के मार्ग को चूने की गचों से ठीक कर दिया। सड़क के इधर उधर विकसित फूलोंवाले वृक्ष लगाये गये। सड़कों के दोनों और पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं और पक्षिगण मस्ती में आकर चहचहा रहे थे।

चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः।
बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः॥ १४॥

चन्दन के जल के छिड़काव और नाना प्रकार की फूली हुई लताओं से सेना का वह मार्ग देवमार्ग की भाँति शोभायमान था।

◀ द्विषष्टितमः सर्गः ▶ (६२)

भरत द्वारा राज्यग्रहण से इनकार—

ततो नन्दीमुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः।
तुष्टुवुर्वाग्विशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंहितैः॥ १॥

जब वह नन्दीमुखी रात्रि (आनन्दमयी रात्रि, वह रात्रि जो किसी माङ्गलिक उत्सव से परिपूर्ण हो। इस रात्रि में श्रीराम को वन से लौटाने का उद्योग आरम्भ हुआ था) थोड़ी शेष रही तब राजवंश के स्तुति विशेषज्ञ सूत-मागध, मङ्गल-स्तवन के द्वारा भरतजी की स्तुति करने लगे।

ततः प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं सन्निवर्त्य च।
नाहं राजेति चाप्युक्त्वा शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्॥ २॥

उस स्तवन को सुन भरत जागे और यह कहकर कि "मैं राजा नहीं हूँ" उन्होंने उस स्तुतिघोष को बन्द करवाया, फिर वे शत्रुघ्न से बोले—

पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत्।
विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः॥ ३॥

हे शत्रुघ्न! देखो! कैकेयी ने संसार का कैसा भीषण अपकार किया है और महाराज दशरथ भी मुझ पर महान् दुःखों का भार छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।

तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः।
परिभ्रमति राजश्रीर्नौरिवाकर्णिका जले॥ ४॥

उन महात्मा धर्मराज की यह धर्ममूलक राजलक्ष्मी इस समय जल में नाविक विहीन नौका के समान इधर-उधर मारी-मारी फिर रही है।

यो हि नः सुमहान्नाथः सोऽपि प्रव्राजितो वनम्।
अनया धर्ममुत्सृज्य मात्रा मे राघवः स्वयम्॥ ५॥

जो मेरे श्रेष्ठ रक्षक और अवलम्ब राम थे, धर्म का त्याग करनेवाली इस माता कैकेयी ने उस रघुकुलभूषण को वन में भिजवा दिया।

तथा तस्मिन् विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित्।
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः॥ ६॥

इधर भरतजी इस प्रकार विलाप कर रहे थे उधर राजधर्म के ज्ञाता महामुनि वसिष्ठ ने महाराज दशरथ के सभाभवन में प्रवेश किया।

स काञ्चनमयं पीठं परार्घ्यास्तरणावृतम्।
अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास च॥ ७॥

वेदज्ञ, महामुनि वसिष्ठ गुद्गुदे आसन से युक्त एक स्वर्णमय सिंहासन पर जा बैठे और दूतों को आदेश दिया—

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यानमात्यान् गणवल्लभान्।
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः॥ ८॥

तुम लोग बहुत शीघ्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, राजभक्त मन्त्रियों और सेनापतियों को बुला लाओ,

क्योंकि एक अत्यन्त आवश्यक कार्य करना है।

स राजभृत्यं शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम्।
युधाजितं सुमन्त्रं च ये च तत्र हिता जनाः॥ ९॥

यशस्वी भरत और शत्रुघ्न को उनके निजी सेवकों सहित, युधाजित् और सुमन्त्र आदि मन्त्रियों को तथा अन्य जो राजपरिवार के हितैषी हैं, उन सबको बुला लाओ।

ततो हलहलाशब्दः सुमहान् समपद्यत।
रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम्॥ १०॥

कुछ ही देर में दूतों द्वारा बुलाये गये लोग रथों, घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर आने लगे। उस समय महान् कोलाहलपूर्ण शब्द हुआ।

ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः।
प्रत्यनन्दन् प्रकृतयो यथा दशरथं तथा॥ ११॥

जिस प्रकार देवमण्डल इन्द्र को देख हर्षपूर्वक उसका सम्मान करते हैं उसी प्रकार भरत को सभा में प्रविष्ट होते देख अयोध्या की सम्पूर्ण जनता ने उनका सत्कार करते हुए ऐसी प्रसन्नता प्रकट की मानो वे महाराज दशरथ के सभाप्रवेश पर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हों।

आसनानि यथान्यायमार्याणां विशतां तदा।
इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत्॥ १२॥

जब वे श्रेष्ठ लोग यथायोग्य अपने-अपने आसनों पर बैठ गये तब राजपुरोहित वसिष्ठजी ने ये मधुर वचन कहे—

तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन्।
धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव॥ १३॥

हे तात भरत! धर्माचरण करते हुए महाराज दशरथ धन-धान्ययुक्त और समृद्धिशालिनी पृथिवी का राज्य तुम्हें देकर स्वर्गवासी हो गये।

रामस्तथा सत्यधृतिः सतां धर्ममनुस्मरन्।
नाजहात्पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः॥ १४॥

सत्यव्रतधारी राम ने सज्जनों के पथ का अनुसरण करते हुए पितृ-वचन-पालनरूपी धर्म का त्याग वैसे ही नहीं किया जैसे चन्द्रमा अपनी चाँदनी का त्याग नहीं करता।

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम्।
तद्भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय॥ १५॥

पिता और भाई द्वारा प्रदत्त इस निष्कण्टक राज्य का तुम भोग करो और मन्त्रिमण्डल को प्रसन्न करते हुए शीघ्र ही अपना राज्याभिषेक कराओ।

तत् श्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः।
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया॥ १६॥

गुरु वसिष्ठ के ये वचन सुन धर्मात्मा भरत बहुत दुःखी हुए। अपनी कुल परम्परा (ज्येष्ठ राजकुमार ही राजा होता है) को जाननेवाले भरतजी ने अपने कर्त्तव्य निश्चय की आकांक्षा से अपने अग्रज श्रीराम का स्मरण किया।

सबाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा।
विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्॥ १७॥

उस समय तरुण भरत कलहंस-स्वर के समान घर-घर शब्दों में विलाप करने लगे और सभा में वसिष्ठजी की इन बातों की निन्दा करने लगे।

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत्॥ १८॥

भरतजी ने कहा—ब्रह्मचर्यपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन कर स्नातकपद प्राप्त तथा धर्मानुकूल आचरण करनेवाले, बुद्धि के अगाध सागर श्रीराम के राज्य को मेरे जैसा शास्त्र के मत को जाननेवाला कैसे छीन सकता है?

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः॥ १९॥

आपके कथनानुसार यदि मैं इस राज्य को ग्रहण कर अनार्यों से सेवित और सुख-शान्ति से वञ्चित करनेवाले महापातक को करूँ तो मैं इक्ष्वाकुकुल की धवल कीर्ति को कलंकित करनेवाला कुलदूषक समझा जाऊँगा।

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः।
हर्षान् मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः॥ २०॥

भरत के इस धर्मानुकूल वचन को सुनकर, राम से प्रेम करनेवाले जितने सभासद् वहाँ उपस्थित थे उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे।

सर्वोपायं च वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं वनात्।
यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि वने तत्रैव वत्स्यामि॥ २१॥

भरतजी ने आगे कहा—मैं श्रीराम को लौटाने के लिए सब प्रकार के उपाय करूँगा, फिर भी यदि राम को न लौटा सका तो मैं भी वन में ही वास करूँगा।

विष्टिकर्मान्तिकाः सर्वे मार्गशोधकतक्षकाः।
प्रस्थापिता मया पूर्वं यात्राऽपि मम रोचते॥ २२॥

मैंने पहले ही अवैतनिक तथा पारिश्रमिक लेकर काम करनवाले चतुर मार्गशोधकों और बढ़इयों को मार्ग ठीक करने के लिए भेज दिया है। अब स्वयं राम के पास जाने के लिए यात्रा करनेवाला हूँ।

एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः।
समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम्॥ २३॥

ऐसा कहकर भ्रातृवत्सल एवं धर्मात्मा भरत ने सम्मति देनेवालों में श्रेष्ठ, पास ही बैठे हुए सुमन्त्र से यह कहा—

तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात्।
यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बलं चैव समानय॥ २४॥

हे सुमन्त्र! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र यहाँ से जाओ और सारे नगर में मेरी यात्रा की घोषणा कर दो और सेना को भी चलने का आदेश दो।

एवमुक्तः सुमन्त्रस्तु भरतेन महात्मना।
प्रहृष्टः सोऽदिशत्सर्वं तथा संदिष्टमिष्टवत्॥ २५॥

महात्मा भरत की आज्ञा पा सुमन्त्र ने प्रसन्न हो यथा निर्देश सभी कार्य कर दिये।

➤ त्रिषष्टितमः सर्गः ➤ (६३)

भरत का वन को प्रस्थान और गुह से भेंट—

ततः समुत्थितः काल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम्।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाङ्क्षया॥ १॥

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही राजकुमार भरत ने सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर राम के दर्शन की अभिलाषा से वन की ओर प्रस्थान किया।

अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोधसः।
अधिरुह्य हयैर्युक्तान् रथान् सूर्यरथोपमाम्॥ २॥

भरतजी के रथ के आगे-आगे मन्त्री और पुरोहितवर्ग सूर्य के समान देदीप्यमान, उत्तम घोड़ों से युक्त रथों पर बैठकर चला।

कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी।
रामानयनसंहृष्टा ययुर्यानेन भास्वता॥ ३॥

कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या श्रीराम को लौटाने के लिए प्रसन्न हो परम दीप्तिमान रथों पर चढ़कर चलीं।

प्रयाताश्चार्यसङ्घाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम्।
तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः॥ ४॥

श्रेष्ठ पुरुषों के झुण्ड-के-झुण्ड राम और लक्ष्मण के दर्शन करने के लिए निकल पड़े। मार्ग में वे लोग श्रीराम की चित्र-विचित्र कथाओं का वर्णन कहते-सुनते और प्रसन्न होते हुए चले जाते थे।

ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः।
समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गबेरपुरं प्रतिः॥ ५॥
यत्र रामसखो वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः।
निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन्॥ ६॥

रथ, घोड़े, हाथी और अन्य सवारियों के द्वारा बहुत दूर चलने के पश्चात् ये लोग शृङ्गबेरपुर के पास गङ्गा के तट पर पहुँचे, जहाँ पर अपने बन्धु-बान्धवों से युक्त राम का परममित्र वीर निषाद-राज सावधानी के साथ उस देश का पालन करता हुआ

निवास करता था।

निरीक्ष्यानुगतां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम्।
भरतः सचिवान् सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः॥ ७॥

अपने पीछे चलनेवाली सेना को तथा निर्मल जलवाली गङ्गा को निहार कर बोलने में चतुर भरतजी मन्त्रियों से बोले—

निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वतः।
विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्व इदानीमिमां नदीम्॥ ८॥

मेरे सैनिक लोग अपनी रुचि अनुसार इस क्षेत्र में जो-जो स्थान पसन्द करें उन्हें वहाँ-वहाँ ठहरा दो। आज यहीं विश्राम कर कल हम इस नदी को पार करेंगे।

तस्यैवं ब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः।
न्यवेशयंस्तांश्छन्देन स्वेन स्वेन पृथक् पृथक्॥ ९॥

भरतजी के ऐसा कहने पर सब मन्त्रियों ने "जो आज्ञा" कहकर बड़ी सावधानी से सब लोगों को उनकी इच्छा के अनुकूल पृथक्-पृथक् स्थानों पर ठहरा दिया।

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्वाश्रितां नदीम्।
निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन् सन्त्वरितोऽब्रवीत्॥ १०॥

भरतजी की चतुरङ्गिणी सेना को गङ्गा के तट पर टिकी हुई देख निषादराज गुह शङ्कित होकर अपनी जातिवालों से बोले—

महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते।
भरतः कैकेयीपुत्रो किं हन्तु रामं गच्छति॥ ११॥

यह बड़ी सेना समुद्र के समान विशाल दिखाई दे रही है। तो क्या इतनी बड़ी सेना को लेकर कैकेयी का पुत्र भरत श्रीराम का वध करने के उद्देश्य से जा रहा है?

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामाः सन्नद्धा गङ्गानूपे प्रतिष्ठत॥ १२॥

दशरथनन्दन श्रीराम मेरे स्वामी, सखा और सभी कुछ हैं, अतः तुम सब लोग श्रीराम की रक्षा के लिए कवच आदि पहनकर और हथियार लेकर गङ्गा के कछार में तैयार रहो।

यदा तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति।
सेयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति॥ १३॥

यदि भरतजी श्रीराम के प्रति शुद्धान्तःकरण के साथ प्रसन्न प्रतीत होगा तभी वह और उसकी सेना सकुशल गङ्गा को पार कर सकेगी।

इत्युक्त्वोपायनं गृह्य ज्ञातिभिः परिवारितः।
आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत्॥ १४॥

अपने सैनिकों को यह आदेश देकर और अनेक प्रकार की भेंट लेकर अपनी जाति-बिरादरीवालों के साथ गुह भरतजी के पास जा और प्रसन्न होकर बोला—

निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम्।
निवेदयामस्ते सर्वे स्वके दासकुले वस॥ १५॥

हे प्रभो! यह देश आपके लिए नगर के पास घूमने के लिए वाटिका के समान है। आपने अपने आने की सूचना हमें नहीं दी, अतः आपका यथाविधि स्वागत करने से हम वञ्चित रहे। यह सम्पूर्ण राज्य आपका है और हम लोग आपके सेवक हैं। आप इसे अपना घर समझ कर यहाँ निवास करें।

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम्।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम्॥ १६॥

ऐसी प्रार्थना करने पर निषादराज गुह से महा बुद्धिमान् भरत ने अपनी अभिप्राय-सिद्धि के लिए यह युक्तियुक्त वचन कहा—

ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामेकोऽभ्यर्चितुमिच्छसि॥ १७॥

मेरे ज्येष्ठ भ्राता के मित्र! आप अकेले ही मेरी इतनी विशाल सेना का आतिथ्य करना चाहते हो यह आपका बड़ा उदार विचार है। आपकी उदारता से आपका मनोरथ पूर्ण हो गया, अर्थात् आपकी उदारता से ही हमारा सत्कार हो गया।

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं गुह।
गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः॥ १८॥

हे निषादराज! हमें यह बतलाइए कि हम लोग किस मार्ग से भरद्वाज के आश्रम को जाएँ, क्योंकि यह देश दुष्प्रवेश्य दिखाई पड़ता है और गङ्गा का जलप्राय देश भी दुर्गम प्रतीत होता है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं गुहो गहनगोचरः॥ १९॥

बुद्धिमान्, राजकुमार भरत की इस बात को सुनकर, सब दुर्गम स्थानों से भली प्रकार परिचित गुह हाथ जोड़कर बोला—

दाशास्त्वानुगमिष्यन्ति धन्विनः सुसमाहिताः।
अहं त्वानुगमिष्यामि राजपुत्र महायशः॥ २०॥

हे महायशस्वी राजकुमार! आप इसके लिए चिन्तित न हों। इस भूमि के प्रत्येक स्थान से सुपरिचित धनुर्धारी दाश लोग सावधानतापूर्वक आपके साथ जायेंगे और मैं स्वयं भी आपके पीछे-पीछे चलूँगा।

परं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे।
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ २१॥

परन्तु आपकी इस विशाल सेना को देखकर मेरे मन में यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि कहीं आप उदारचरित राम के पास किसी दुष्ट अभिप्राय से तो नहीं जा रहे हैं।

तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत्॥ २२॥

इस प्रकार की आशंका करने पर, आकाश की भाँति निर्मल स्वभाव भरत निषादराज से ये मधुर वचन बोले—

मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः॥ २३॥

हे निषादराज! तुम जैसी आशंका करते हो वह कष्टमय पापपूर्ण समय न आवे। आप मेरे प्रति ऐसी घृणित आशंका न करें। मैं तो अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम को अपने पिता के तुल्य मानता हूँ।

तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
बुद्धिरन्या न ते कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते॥ २४॥

हे गुह! मैं तो वनवासी राम को लौटाने के लिए जा रहा हूँ। इस सम्बन्ध में आप व्यर्थ का अनिष्ट सन्देह न करें। यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः॥ २५॥

भरतजी की यह बात सुन निषादराज गद्गद हो गया और प्रसन्न होकर भरतजी से कहने लगा—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि॥ २६॥

हे भरत! आप धन्य हैं। मुझे इस धराधाम पर आपके समान कोई दूसरा व्यक्ति दिखाई नहीं देता, क्योंकि आप बिना परिश्रम के प्राप्त धन-धान्यपूर्ण विशाल राज्य को त्यागना चाहते हो।

शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि॥ २७॥

आप महान् कष्ट में पड़े हुए श्रीराम को लौटाने जा रहे हैं, आपके इस शुभ कार्य से आपकी उज्ज्वल कीर्ति चिरकाल तक संसार में व्याप्त रहेगी।

एवं सम्भाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा।
बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत॥ २८॥

इस प्रकार गुह और भरत के परस्पर वार्त्तालाप करते हुए सूर्यास्त हो गया और रात्रि उपस्थित हो गई।

सन्निवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमाञ्शयनं पुनरागमत्॥ २९॥

गुह की बातचीत से सन्तुष्ट होकर, अपनी सेना को विश्राम का आदेश देकर भरतजी अपने छोटे भाई शत्रुघ्न के साथ शयनीय स्थल पर सोने के लिए चले गये।

◀ चतुःषष्टितमः सर्गः ▶ (६४)

भरत का गङ्गा के पार उतरना—

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः।
भरतः काल्यमुत्थाय निषादराजमब्रवीत्॥ १॥

रघुकुलोत्पन्न भरतजी ने गङ्गा के किनारे उसी स्थान पर जहाँ श्रीराम ने विश्राम किया था रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल उठकर निषादराज गुह से बोले—

सुखा नः शर्वरी राजन् पूजिताश्चापि ते वयम्।
गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः सन्तारयन्तु नः॥ २॥

हे राजन्! हमारी यह रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत हुई और आपने हमारा आदर-सत्कार भी भली-भाँति किया। अब आप अपने नाविकों को आदेश दें कि वे बहुत-सी नौकाओं द्वारा हमें पार उतार दें।

ततो गुहः सन्त्वरितं श्रुत्वा भरतशासनम्।
प्रतिप्रविश्य नगरं तं ज्ञातिजनमब्रवीत्॥ ३॥

भरतजी का आदेश पाकर गुह ने शीघ्रता से अपने नगर में प्रवेश किया और अपनी जाति-वालों से कहा—

उत्तिष्ठत प्रबुध्यध्वं भद्रमस्तु च वः सदा।
नावः समनुकर्षध्वं तारयिष्याम वाहिनीम्॥ ४॥

हे भाइयो! उठो, जागो! आपका कल्याण हो। नौकाओं को शीघ्र किनारे पर ले आओ, सेना को पार उतारना है।

ते तथोक्ताः समुत्थाय त्वरिता राजशासनात्।
पञ्च नावां शतान्याशु समानिन्युः समन्ततः॥ ५॥

निषादराज की आज्ञा पाकर नाविक लोग उठ खड़े हुए और अपने राजा के आदेशानुसार उन लोगों ने इधर-उधर से जोड़कर पाँच सौ नौकाएँ लाकर घाट पर लगा दीं।

अन्याः स्वस्तिक विज्ञेया महाघण्टाधरा वराः।
शोभमानाः पताकाभिर्युक्तवाताः सुसंहताः॥ ६॥

इन नौकाओं के अतिरिक्त 'स्वस्तिक' नामवाली नौकाएँ भी लाई गईं। इन नौकाओं में घण्टे बँधे हुए थे, पताकाएँ शोभायमान थीं। वायु आने-जाने के लिए स्थान था और इनके सब बन्धन बड़े दृढ़ थे।

ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम्।
सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत्॥ ७॥

उन स्वस्तिक नौकाओं में से एक 'कल्याणी' नामवाली विशिष्ट स्वस्तिक नौका को जिस पर सफेद ऊनी कालीन बिछे हुए थे, जिसके चलने पर घण्टियों का मधुर घोष होता था—गुह स्वयं लाया।

तमारुरोह भरतः शत्रुघ्नश्च महायशः।
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः॥ ८॥

उस नौका पर महायशस्वी भरत, शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा और राजपरिवार की अन्य स्त्रियाँ आरूढ़ हुईं।

नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित्काश्चिच्च वाजिनाम्।
काश्चिदत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम्॥ ९॥

कितनी ही नौकाओं में तो स्त्रियाँ ही-स्त्रियाँ बैठी थीं और कितनी ही नावों में घोड़े-ही-घोड़े भरे थे। बहुत सारी नावों पर यानों में जोतनेवाले बहुमूल्य घोड़े, बैल, खच्चर भरे हुए थे।

पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः।
वहन्त्यो जनमारूढं तदा सम्पेतुराशुगाः॥ १०॥

नाविकों से युक्त ध्वजा-पताकाओंवाली वे नौकाएँ भरत आदि नगरवासियों को लेकर बड़े वेग से आगे चल पड़ीं।

सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः सन्तारिता स्वयम्।
मैत्रे मुहूर्त्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्॥ ११॥

नाविकों ने उस पुण्य ध्वजा-पताकावाली विशाल वाहिनी को गङ्गा के उस पार उतार दिया। सूर्योदय के तीसरे प्रहर मैत्र नामक मुहूर्त में उस सेना ने प्रयाग वन की ओर प्रस्थान किया।

आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा
निवेशयित्वा च यथोपजोषम्।
द्रष्टुं भरद्वाजमृषिप्रवर्य-
मृत्विग्वृतः सन् भरतः प्रतस्थे॥ १२॥

प्रयाग में पहुँचकर महामति भरत ने सम्पूर्ण सेना और नागरिकों को यथास्थान ठहरा दिया। तदनन्तर भरतजी वसिष्ठ आदि ऋषियों को साथ ले ऋषि श्रेष्ठ महर्षि भरद्वाज का दर्शन करने के लिए चल दिये।

पञ्चषष्टितमः सर्गः (६५)

भरद्वाजाश्रम में निवास—

भरद्वाजाश्रमं दृष्ट्वा क्रोशादेव नरर्षभः।
बलं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः॥ १॥
पद्भ्यामेव हि धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोधसम्॥ २॥

धर्मज्ञ पुरुषोत्तम भरत महर्षि भरद्वाज के आश्रम से एक कोस के अन्तर पर सेना आदि को ठहराकर, अस्त्र-शस्त्र और राजसी पोशाक उतार कर, केवल दो वस्त्र धारण कर, कुछ मन्त्रियों को साथ ले और पुरोहितों को आगे कर पैदल ही भरद्वाज के दर्शन करने के लिए गये।

ततः सन्दर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामनुपुरोहितम्॥ ३॥

जब भरतजी ने दूर से ही महर्षि भरद्वाज को देखा तब वे मन्त्रियों को भी पीछे छोड़ केवल पुरोहित के साथ आगे बढ़े।

वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः।
सञ्चचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन्॥ ४॥

महातपस्वी भरद्वाज वसिष्ठजी को देखते ही तत्काल आसन से उठ खड़े हुए और शिष्यों को अर्घ्य लाने का आदेश दिया।

समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः।
अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम्॥ ५॥

महर्षि भरद्वाज आगे बढ़कर वसिष्ठजी से मिले। भरत ने भरद्वाज को प्रणाम किया। वसिष्ठ के सहचर्य से महातेजस्वी भरद्वाज ने जाना कि ये दशरथपुत्र भरत हैं।

ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात् फलानि च।
आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले॥ ६॥

धर्मात्मा भरद्वाज ने उन दोनों को क्रमपूर्वक अर्घ्य, पाद्य और फल देकर उनके कुल का कुशलक्षेम पूछा।

वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम्।
शरीरेऽग्निषु वृक्षेषु शिष्येषु मृगपक्षिषु॥ ७॥

तदनन्तर महर्षि वसिष्ठ और भरतजी ने मुनि भरद्वाज से उनके शरीर, यज्ञाग्नि, शिष्य और आश्रम के वृक्ष तथा पशु-पक्षियों का कुशल-मङ्गल पूछा।

तथेति तत्प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महातपाः।
भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात्॥ ८॥

महातपस्वी भरद्वाज ने सबका कुशल-मङ्गल बताकर श्रीराम के साथ स्नेह होने के कारण भरतजी से पूछा—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं न हि मे शुध्यते मनः॥ ९॥

हे राजकुमार! तुम तो राज्य शासन कर रहे हो, फिर तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन? यह सब मुझे बतलाओ, क्योंकि मेरा मन शङ्कित हो रहा है। (मुझे दाल में कुछ काला दिखाई देता है।)

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रुनयनो दुःखाद्वाचा संसज्जमानया॥ १०॥

भरद्वाज के ऐसा कहने पर भरतजी ने दुःख के कारण आँखों में आँसू भरकर तथा लड़खड़ाती हुई वाणी से कहा—

हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।
मत्तो न दोषमाशङ्के नैवं मामनुशाधि हि॥ ११॥

भगवन्! आप भी मुझे ऐसा मानते हैं तो मेरा तो जीवन ही व्यर्थ है। भाई को वन भेजने में मेरा हाथ नहीं है, अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बातें न कहें।

अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः।
प्रतिनेतुमयोध्यां च पादौ तस्याभिवन्दितुम्॥ १२॥

मैं तो उस नरकेसरी को प्रसन्न कर अयोध्या में लौटाने और उनकी चरण वन्दना करने के लिए जा रहा हूँ।

त्वं मामेवंगतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि।
शंस मे भगवन् रामः क्व सम्प्रति महीपतिः॥ १३॥

भगवन्! मेरे मनोभिप्राय को जानकर आप मुझ पर प्रसन्न हों और मुझे बताएँ कि पृथिवीनाथ राम इस समय कहाँ हैं।

वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः।
उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः॥ १४॥

तत्पश्चात् जब वसिष्ठ आदि ऋत्विजों ने भी भरद्वाज से श्रीराम का पता बतलाने की प्रार्थना की तब वे प्रसन्न होकर भरतजी से बोले—

त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता॥ १५॥

हे पुरुषसिंह! तुम्हारा जन्म प्रसिद्ध रघुकुल में हुआ है, अतः वृद्धों की सेवा, इन्द्रियों का दमन और साधुजनों का अनुगामी होना—ये तीनों बातें तुममें होनी ही चाहिएँ।

जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन्॥ १६॥

यद्यपि मैं तुम्हारे मनोगत भावों को जानता था तथापि लोगों के सामने उसे दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति को बढ़ाने के लिए मैंने तुमसे वैसा प्रश्न पूछा था।

जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम्।
असौ वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ॥ १७॥

तुम्हारे भ्राता धर्मज्ञ श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित इस समय चित्रकूट नामक महापर्वत पर निवास करते हैं।

श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः।
एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद॥ १८॥

हे वांछित मनोरथों को पूरा करनेवाले बुद्धिमान् भरत! आप कल वहाँ जाना। आज मन्त्रियोंसहित यहीं निवास कीजिए। मेरी इस कामना को पूर्ण करो।

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः
प्रतीतरूपो भरतोऽब्रवीद्वचः।
चकार बुद्धिं तदा तदाश्रमे
निशानिवासाय नराधिपात्मजः॥ १९॥

जब महर्षि भरद्वाज ने इस प्रकार कहा तब उदारमना एवं यशस्वी राजकुमार भरत ने ऋषि की आज्ञा मान रात भर ऋषि के आश्रम में रहना स्वीकार कर लिया।

≺ षट्षष्टितमः सर्गः ≻ (६६)

चित्रकूट के लिए प्रस्थान—

ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः।
कृतातिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह॥ १॥

अपने परिवार और साथियों सहित भरद्वाज के आतिथ्य में वह रात्रि बिता प्रातः होते ही भरत राम-दर्शन की कामना से भरद्वाज के पास विदा माँगने गये।

तमृषिः पुरुषव्याघ्रं प्राञ्जलिं प्रेक्ष्य चागतम्।
हुताग्निहोत्रो भरतं भरद्वाजोऽभ्यभाषत॥ २॥

पुरुषसिंह भरत को हाथ जोड़े हुए अपने सामने खड़ा देख, यज्ञ समाप्त करने के पश्चात् मुनि भरद्वाज उनसे बोले—

कच्चिदत्र सुखा रात्रिस्तवास्मद्विषये गता।
समग्रस्ते जनः कच्चिदातिथ्ये शंस मेऽनघ॥ ३॥

हे निष्पाप! मेरे आश्रम में आपकी रात्रि सुखपूर्वक तो व्यतीत हुई। आपके सब लोग मेरे आतिथ्य से सन्तुष्ट तो हैं।

तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च।
सुखोषितोऽस्मि भगवन् समग्रबलवाहनः॥ ४॥

भरतजी हाथ जोड़कर और प्रणाम करके बोले--- भगवन्! मैं अमात्यों और सेनासहित इस आश्रम में सुखपूर्वक रहा।

आमन्त्रेयऽहं भगवन् कामं त्वामृषिसत्तम्।
समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा॥ ५॥

हे ऋषि-श्रेष्ठ! मैं आपसे विदा होकर भाई राम के पास जा रहा हूँ। मुझ पर कृपा-दृष्टि रखना।

आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे॥ ६॥

हे धर्मज्ञ! कृपया यह बतलाइए कि महात्मा राम का आश्रम यहाँ से कितनी दूर है और वहाँ जाने के लिए सीधा और सरल मार्ग कौन-सा है?

इति पृष्टस्तु भरतं भ्रातृदर्शनलालसम्।
प्रत्युवाच महातेजा भरद्वाजो महातपाः॥ ७॥

भाई के दर्शन के इच्छुक भरतजी के ऐसा पूछने पर महातेजस्वी एवं परम तपस्वी भरद्वाज बोले—

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने।
चित्रकूटो गिरिस्तत्र रम्यनिर्दरकाननः॥ ८॥

हे भरत! यहाँ से ढाई योजन के अन्तर पर निर्जन प्रदेश में रमणीय गुफाओं तथा वनों से युक्त चित्रकूट नामक पर्वत है।

उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी।
पुष्पितद्रुमसंछन्ना रम्यपुष्पितकानना॥ ९॥

इस पर्वत के उत्तर की ओर मन्दाकिनी नदी बहती है। इस नदी के उभय तटों पर पुष्पित वृक्ष लगे हैं और यह नदी रमणीय पुष्पित वन में होकर बहती है।

अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटश्च पर्वतः।
तयोः पर्णकुटी तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम्॥ १०॥

हे तात! उसी से मिला हुआ चित्रकूट पर्वत है। उसी पर्वत पर तुम एक पर्णकुटी में दोनों भाइयों को निश्चय ही वास करते हुए पाओगे।

अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम्।
आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामित्यचोदयत्॥ ११॥

श्रीराम के निवास-स्थान को जानकर भरत ने महर्षि भरद्वाज का अभिवादन और प्रदक्षिणा करके तथा उनसे आज्ञा लेकर अपनी सेना को प्रस्थान करने का आदेश दिया।

ततो वाजिरथान्युक्त्वा दिव्यान्हेमपरिष्कृतान्।
अध्यारोहत्प्रयाणार्थी बहून् बहुविधो जनः॥ १२॥

भरतजी की आज्ञा पा प्रस्थान करनेवाले बहुविध लोग स्वर्ण से अलंकृत दिव्यों रथों में घोड़ों को जोड़कर उन पर आरूढ़ हो गये।

विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च।
प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरेव पदातयः॥ १३॥

विविध प्रकार के छोटे-बड़े बहुमूल्य रथादि यान और पैदल सेना भी चल पड़ी।

तया महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः सम्प्रदुद्रुवुः॥ १४॥

जब उस महासेना ने वन में होकर प्रस्थान किया तब वनवासी मतवाले यूथपति गजराज उद्विग्न एवं उन्मत्त होकर अपने-अपने समूहों के साथ इधर-उधर भागने लगे।

सागरौघनिभा सेना भरतस्य महात्मनः।
महीं संच्छादयामास प्रावृषि द्यामिवाम्बुदः॥ १५॥

जिस प्रकार वर्षा-ऋतु में मेघमण्डल आकाश को ढक लेता है उसी प्रकार महात्मा भरत की सागर के समान विशाल सेना, लहरों की भाँति उमड़ती हुई, पृथिवी को आच्छादित करती चली जाती थी।

स गत्वा दूरमध्वानं सुपरिश्रान्तवाहनः।
उवाच भरतः श्रीमान्वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम्॥ १६॥

जब भरतजी यात्रा करते हुए बहुत दूर निकल गये तब वाहनों को थके हुए देखकर वे मन्त्रिश्रेष्ठ वसिष्ठजी से बोले—

यादृशं लक्ष्यते रूपं तथा चैव श्रुतं मया।
व्यक्तं प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजोऽयमब्रवीत्॥ १७॥

इस स्थान का जैसा रङ्ग-रूप दिखाई पड़ रहा है और जैसा इसके विषय में मैंने सुना है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि हम उस स्थान पर पहुँच गये हैं जो भरद्वाजजी ने बतलाया था।

अयं गिरिश्चित्रकूट इयं मन्दाकिनी नदी।
एतत्प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम्॥ १८॥

देखिए! यह चित्रकूट पर्वत है। यह मन्दाकिनी नदी है और यह वह वन है जो दूर से नीले मेघ की भाँति दिखाई देता है।

साधु सैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम्।
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ॥ १९॥

योग्य सैनिक वन में जायें और सावधानी से अन्वेषण करें जिससे वे पुरुषसिंह राम और लक्ष्मण दिखाई पड़ जावें।

भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः।
विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः॥ २०॥

भरत की बात सुनकर हाथों में शस्त्र लिए हुए सैनिक लोग वन में प्रविष्ट हुए और कुछ ही दूर पर उन्होंने एक धूमशिखा देखी।

ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ॥ २१॥

उस धूमशिखा को देख, उन लोगों ने लौटकर भरतजी से कहा—बिना मनुष्य के अग्नि नहीं होती, अतः राम-लक्ष्मण स्पष्टतः यहीं हैं।

तत् श्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसम्मतम्।
सैन्यानुवाच सर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः॥ २२॥

सैनिकों का यह शिष्टसम्मत वचन सुनकर शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले भरतजी ने उनसे कहा—

यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो गुरुरेव च॥ २३॥

अच्छा, आप लोग शान्तिपूर्वक यहीं ठहरे रहें, यहाँ से आगे न जाएँ। सुमन्त्र और गुरु वसिष्ठजी को साथ ले मैं ही आगे जाऊँगा।

व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूः
निरीक्षमाणाऽपि च धूममग्रतः।
बभूव हृष्टा न चिरेण जानती
प्रियस्य रामस्य समागमं तदा॥ २४॥

भरत के द्वारा नियन्त्रित वह सेना सामने उठते हुए धुएँ को देखकर यह जान गई कि अब प्रिय राम के साथ समागम होने में बहुत विलम्ब नहीं है। इस विचार से सारी सेना हर्षित हो उठी।

≺ सप्तषष्टितमः सर्गः ≻ (६७)

लक्ष्मण का क्रोध—

दीर्घकालोषितस्तस्मिन् गिरौ गिरिवनप्रियः।
वैदेह्याः प्रियमाकाङ्क्षन् स्वं च चित्तं विलोभयन्॥
अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत्।
भार्याममरसङ्काशः शचीमिव पुरन्दरः॥ २॥

उधर गिरि तथा वन के प्रेमी श्रीराम को उस पर्वत पर रहते हुए बहुत दिन हो चुके थे। एक दिन वे देवतुल्य दशरथनन्दन राम सीता का तथा अपना मन बहलाने के लिए सीता को रम्य चित्रकूट का दर्शन उसी प्रकार करा रहे थे मानो इन्द्र शची को दर्शन करा रहे हों।

तां तथा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरीनिम्नगाम्।
निषसाद गिरिप्रस्थे सीतया सह राघवः॥ ३॥

पर्वत से निकलनेवाली मन्दाकिनी नदी के शोभा दिखाकर राम सीताजी के साथ पर्वत के शिखर पर बैठ गये।

तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः।
सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ॥ ४॥

जब वे इस प्रकार बैठे थे उसी समय भरत की सेना के चलने से उड़ी हुई, आकाश को स्पर्श करती हुई धूल दिखाई दी और कोलाहल सुनाई दिया।

एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथा दुद्रुवुर्दिशः॥ ५॥

इसी बीच उस महाकोलाहल से त्रस्त और विकल यूथपति गजेन्द्र उन्मत्त होकर अपने अपने यूथों के साथ इधर उधर भागने लगे।

तांश्च विद्रवतो दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा च निःस्वनम्।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्॥ ६॥

उन गजराजों को भागते देख और सेना का कोलाहल सुनकर श्रीराम ने सुमित्रा के पुत्र तेजस्वी लक्ष्मण से कहा—

हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया।
भीमस्तनितगम्भीरस्तुमुलः श्रूयते स्वनः॥ ७॥

हे लक्ष्मण! तुम्हें पाकर सुमित्रा पुत्रवती है। तनिक देखो! यह भयंकर बादल की गड़गड़ाहट जैसा घोर, भयानक और तुमुल शब्द कहाँ सुनाई पड़ रहा है?

स लक्ष्मणः सन्त्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम्।
प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमुदैक्षत॥ ८॥

श्रीराम की बात सुन लक्ष्मणजी तुरन्त एक फले हुए साल वृक्ष पर चढ़ गये और चारों ओर देखते हुए उन्होंने पूर्व की ओर देखा।

उदङ्मुखः प्रेक्षमानो ददर्श महतीं चमूम्।
रथाश्वगजसम्बाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः॥ ९॥

फिर उत्तर दिशा की ओर देखने पर उन्हें उस ओर हाथी, घोड़े, रथ तथा सुसज्जित पैदल सैनिकों से युक्त एक विशाल सेना दिखाई दी।

तामश्वगजसम्पूर्णां रथध्वजविभूषिताम्।
शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत्॥ १०॥

हाथी-घोड़ों से युक्त और रथों पर लगी पताकाओं से सुभूषित उस सेना का वृत्तान्त निवेदन करते हुए लक्ष्मणजी ने श्रीराम से कहा—

अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्।
सज्यं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा॥ ११॥

आप अग्नि बुझा दें, सीताजी गुफा भीतर जा बैठें और आप कवच पहन लीजिए तथा धनुषबाण सँभालिए।

तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह।
अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम्॥ १२॥

यह सुन पुरुषसिंह राम ने लक्ष्मणजी से कहा— हे वत्स सौमित्र! ध्वज चिह्नों को ध्यान से देखकर यह बताओ तुम इसे किसकी सेना समझते हो?

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर, लक्ष्मण अपने क्रोध से अग्नि के समान, मानो उस सेना को भस्म कर डालने की इच्छा करते हुए बोले—

सम्पन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम्।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः॥ १४॥

स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि अभिषेक के पश्चात् निष्कण्टक राज्य पाने के लिए कैकेयी का पुत्र भरत हम दोनों का वध करने के लिए आ रहा है।

गृहीत धनुषौ चावां गिरिं वीर श्रयावहे।
अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महमत्॥ १५॥

हे वीर! धनुष-बाण लेकर हम पर्वत का आश्रय लें। जिस भरत के कारण हम पर विपत्ति आई है आज उसे हम देख लेंगे।

भरतस्य वधे दोषं न हि पश्यामि राघव।
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते॥ १६॥

हे राघव! मुझे तो भरत के मार डालने में कोई दोष दिखाई नहीं देता। पूर्व अपकारी को मारने से कोई पाप भी नहीं लगता।

पूर्वापकारी भरतस्त्यक्तधर्मश्च राघव।
एतस्मिन्निहते कृत्स्नामनुशाधि वसुन्धराम्॥ १७॥

भरत ने पहले अनिष्ट किया है और यह धर्म को

त्याग चुका है, अतः इसका वध करके आप सम्पूर्ण पृथिवी के राज्य का उपभोग कीजिए।

अद्य पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राजकामुका।
मया पश्येत्सुदुःखार्ता हस्तिभग्नमिव द्रुमम्॥ १८॥

जैसे हाथी वृक्ष को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार राज्यकामुक कैकेयी आज मेरे द्वारा रण में आहत अपने पुत्र को दुःखी होकर देखे।

कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम्।
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम्॥ १९॥

मैं उस कैकेयी को भी उसके भाई-बन्दों और मन्थरा आदि दासियों सहित मार डालूँगा जिससे यह पृथिवी कैकेयी रूपी महापाप से छुटकारा पा जाए।

अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद।
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम्॥ २०॥

हे मानद! आज बहुत दिनों से रोके हुए क्रोध को और कैकेयी के किये हुए तिरस्कार को मैं शत्रु की सेना पर वैसे ही छोड़ूँगा जैसे सूखे तृणों के ढेर पर आग छोड़ी जाती है।

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मि महामृधे।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः॥ २१॥

आज मैं इस महासंग्राम में सेनासहित भरत का वध कर अपने धनुष और बाण के ऋण से निःसन्देह उऋण हो जाऊँगा।

❮ अष्टषष्टितमः सर्गः ❯ (६८)

राम द्वारा भरत के गुणों की प्रशंसा—

सुसंरब्धं तु सौमित्रिं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम्।
रामस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥

युद्ध के लिए उद्यत तथा क्रोध से परिपूर्ण लक्ष्मण को शान्त करने के लिए श्रीराम ने कहा—

किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा।
महेष्वासे महाप्राज्ञे भरते स्वयमागते॥ २॥

हे लक्ष्मण! महा धनुर्धारी और महापण्डित भरत के स्वयं आने पर धनुष, ढाल और तलवार से क्या प्रयोजन? [तुम उनसे जीत नहीं सकते।]

पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्त्वा भरतामागतम्।
किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण॥ ३॥

हे लक्ष्मण! पिताजी की आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् भरत का वध करके मैं लोकनिन्दा से युक्त राज्य को लेकर क्या करूँगा?

यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्।
नाहं तत्प्रतिगृह्णीयां भक्षान् विषकृतानिव॥ ४॥

बन्धु-बान्धवों और इष्ट-मित्रों का वध करने से जो धन प्राप्त हो मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता। मैं तो उसे विष मिले हुए भोजन के समान त्याज्य समझता हूँ।

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते॥ ५॥

हे लक्ष्मण! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी को मैं अपने भाइयों के लिए ही चाहता हूँ।

भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे॥ ६॥

हे लक्ष्मण! मैं अपने हथियारों का स्पर्श कर सत्य-सत्य कहता हूँ कि मैं राज्य की कामना भी भाइयों के पालन और सुख के लिए ही करता हूँ।

नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा।
न हीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण॥ ७॥

हे सौम्य! समुद्रों से घिरी इस पृथिवी का राज्य हस्तगत करना मेरे लिए दुर्लभ नहीं है, परन्तु लक्ष्मण! मैं अधर्म से तो इन्द्रपद को भी प्राप्त नहीं करना चाहता।

यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी॥ ८॥

हे मानद! तुम्हारे बिना, भरत के बिना और शत्रुघ्न के बिना मुझे जिस किसी वस्तु से सुख मिला हो अग्नि उसे भस्म कर डाले।

मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः।
ममप्राणात्प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन्॥ ९॥
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम्।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषर्षभ॥ १०॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः॥ ११॥

मैं समझता हूँ कि प्राणप्रिय और भ्रातृवत्सल भाई भरत जब ननिहाल से अयोध्या में आये और हमारा तीनों का जटा-वल्कल धारण कर वन में आना सुना तब स्नेह से पूर्ण हृदय और शोक से विकल हो तथा कुल-धर्म (बड़े भाई का राज्याभिषेक) का स्मरण कर हम लोगों से मिलने आया है। उसके यहाँ आने का इसके अतिरिक्त और कोई अभिप्राय नहीं है।

अम्बां च कैकेयीं रुष्य परुषं चाप्रियं वदन्।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः॥ १२॥

बहुत सम्भव है कि भरत माता कैकेयी पर क्रुद्ध हो और उसे कुछ कठोर वचन कह तथा पिताजी को प्रसन्न कर मुझे राज्य देने के लिए आया हो।

प्राप्तकालं यदेषोऽस्मान् भरतो द्रष्टुमिच्छति।
अस्मासु मनसाऽप्येष नाप्रियं किञ्चिदाचरेत्॥ १३॥

यह उचित ही है कि भरत इस समय हमसे मिलने का इच्छुक है, परन्तु यह सम्भव नहीं कि भरत मन से भी हमारा अनिष्ट चिन्तन करे।

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदानु किम्।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं योऽत्र शङ्कसे॥ १४॥

क्या भरत ने इससे पूर्व कभी तुम्हारा कोई अनिष्ट किया है जो तुम्हें आज उससे इतना भय लग रहा है और उस पर सन्देह हो रहा है।

नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते॥ १५॥

भरत के विषय में तुम्हें ऐसे कठोर और प्रिय वचन नहीं कहने चाहिएँ। अब यदि तुम भरत के बारे में कोई खोटी बात कहोगे या उसका कुछ अहित करोगे तो समझ लो वह सब व्यवहार मेरे प्रति होगा।

कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः॥ १६॥

लक्ष्मण! तनिक सोचो! कैसी भी विपत्ति हो और कैसी भी स्थिति हो पिता अपने पुत्र का और भाई अपने प्राणप्रिय भाई का वध नहीं कर सकता।

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥ १७॥

यदि तुम राज्यप्राप्ति के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग कर रहे हो तो भरत के आने पर मैं उनसे कहूँगा कि यह राज्य लक्ष्मणजी को दे दो।

उच्यमानोऽपि भरतो मया लक्ष्मण तत्त्वतः।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव वक्ष्यति॥ १८॥

हे लक्ष्मण! मेरे यह कहते ही कि "राज्य इसे दे दो" भरत तुरन्त कहेगा "बहुत अच्छा।"

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्राता तस्य हिते रतः।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया॥ १९॥

धर्मशील श्रीराम के ऐसा कहने पर उनके हित में रत लक्ष्मणजी बहुत लज्जित हुए और सिकुड़कर ऐसे हो गये मानो अपने शरीर के अङ्गों में घुसे जाते हों।

तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह।
त्वां मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्॥ २०॥

उनके उस कथन को सुनकर लज्जित हुए लक्ष्मण पुनः बोले—मुझे ऐसा जान पड़ता है कि महाराज दशरथ स्वयं ही आपको देखने आये हैं।

व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह।
एष मन्ये महाबाहुरिहस्मान् द्रष्टुमागतः॥ २१॥

लक्ष्मणजी को लज्जित देख, उनकी बात को पुष्ट करते हुए श्रीराम ने कहा—मैं भी समझता हूँ कि महाबाहु दशरथ हमें देखने के लिए यहाँ आये हैं।

स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे।
नागः शत्रुञ्जयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः॥ २२॥

वह देखो! बुद्धिमान् पिताजी का विशालकाय और ऊँचा शत्रुञ्जय नामक हाथी भी सेना के आगे-आगे झूमता हुआ चला आ रहा है।

न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकसत्कृतम्।
पितुर्दिव्यं महाबाहे संशयो भवतीह मे॥ २३॥

किन्तु हे महाबाहो! मुझे इस पर पिताजी का लोकोत्तर, दिव्य एवं श्वेत छत्र दिखाई नहीं दे रहा है, अत: मेरे मन में सन्देह सा हो रहा है।

वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः।
इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह॥ २४॥
अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिञ्जयः।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः॥ २५॥

हे लक्ष्मण! अब तुम मेरा कहना मानकर वृक्ष से नीचे उतर आओ। जब धर्मात्मा राम ने लक्ष्मण से यह कहा तब युद्धविजयी लक्ष्मणजी उस साल के वृक्ष के उतर और हाथ जोड़कर श्रीराम के समीप एक ओर आकर खड़े हो गये।

◀ नवषष्टितमः सर्गः ▶ (६९)

भरत का राम के साथ मिलन—

निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्तदा।
जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन्॥ १॥

सेना के ठहर जाने पर, भरतजी उत्सुक हो, शत्रुघ्न को आश्रम आदि दिखाते हुए भाई के दर्शन की कामना से चले।

ऋषिं वसिष्ठं सन्दिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय।
इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः॥ २॥

ऋषि वसिष्ठ के पास यह सन्देश भेजकर कि "आप मेरी माताओं को शीघ्र ले आएँ"—गुरुवत्सल भरत शीघ्रता से आगे चले।

सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत।
रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च॥ ३॥

सुमन्त्र भी शत्रुघ्न को भरत के पीछे जाते देख स्वयं शत्रुघ्न के पीछे हो लिये, क्योंकि भरत के समान सुमन्त्र को भी राम-दर्शन की उत्कण्ठा थी।

गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम्।
भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह॥ ४॥

चलते-चलते श्रीमान् भरत ने तपस्वियों के आश्रमों के मध्य स्थित भाई की पर्णकुटी और शयनागार को देखा।

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्॥ ५॥

भरतजी एक मुहूर्त तक पर्णशाला की बनावट और सजावट को निहारते रहे। तदनन्तर उन्होंने पर्णशाला में बैठे हुए और जटाजूट धारण किये हुए बड़े भाई को देखा।

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान् दुःखशोकपरिप्लुतः।
अशक्नुवन्धारयितुं धैर्याद्वचनमब्रवीत्॥ ६॥

श्रीराम को उस अवस्था में बैठे हुए देखकर भरतजी दु:ख से व्याकुल हो गये। उस समय उस दु:ख के वेग को रोकना कठिन था, फिर भी किसी प्रकार धैर्य धारण कर वे बोले—

मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचिताः।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्॥ ७॥

हा! मेरे ही कारण सुख भोगनेवाले राम यह कष्ट भोग रहे हैं। मुझ नृशंस के लोकनिन्दित जीवन को धिक्कार है।

इत्येवं विलपन् दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्॥ ८॥

इस प्रकार विलाप करते हुए शोकसन्तप्त भरत का मुखकमल पसीने से तर हो गया। उन्होंने चाहा

कि दौड़कर श्रीराम के चरणों में गिरूँ, किन्तु वहाँ तक न पहुँच वे रोते हुए बीच में ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः।
उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किञ्चन॥ ९॥

उस समय दुःख से सन्तप्त होने के कारण महाबली राजकुमार भरत केवल एक बार दीनता- पूर्वक 'आर्य' शब्द का उच्चारण कर, फिर कुछ न कह सके।

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ स समालिङ्ग्य रामश्चाश्रूण्यवर्तयत्॥ १०॥

रोते हुए शत्रुघ्न ने भी श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया। तब श्रीराम भी दोनों भाइयों को हृदय से लग रोने लगे।

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव
समीयतू राजसुतावरण्ये ।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च
यथाऽम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम्॥ ११॥

फिर वे राजपुत्र राम-लक्ष्मण सुमन्त्र और गुह से उसी प्रकार मिले जिस प्रकार आकाश में सूर्य और चन्द्र, शुक्र और बृहस्पति से मिलते हैं।

➤ सप्ततितमः सर्गः ➤ (७०)

राजनीति विषयक उपदेश—

भ्रातरं भरतं रामो विवर्णवदनं कृशम्।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य पर्यपृच्छत्समाहितः॥ १॥

विवर्णमुख और कृश भाई भरत को राम ने हृदय से लगाया, फिर उन्हें अपनी गोदी में बिठाकर सावधानतापूर्वक उनसे पूछने लगे—

क्व नु तेऽभूत्पिता तात यदरण्यं त्वमागतः।
न हि त्वं जीवतस्तस्यवनमागन्तुमर्हसि॥ २॥

हे तात! तुम्हारे पिताजी कहाँ गये जो तुम इस वन में चले आये, क्योंकि उनके जीवित रहते तुम्हारा वन में आना उचित नहीं।

कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसङ्गरः।
राजसूयाश्वमेधानामहर्ता धर्मनिश्चयः॥ ३॥

राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करनेवाले, धर्म में निश्चित बुद्धि रखनेवाले तथा सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ स्वस्थ तो हैं?

स कच्चिद्ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युतिः।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते॥ ४॥

विद्वान्, धर्म कार्यों में तत्पर, महातेजस्वी इक्ष्वाकुवंश के आचार्य—ब्राह्मण वसिष्ठ यथा-योग्य सत्कृत तो होते हैं?

सा तात कच्चित्कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकेयी॥ ५॥

हे तात! माता कौसल्या और सुपुत्रवती माता सुमित्रा तो सुखपूर्वक हैं? परम श्रेष्ठा देवी कैकेयी भी आनन्दपूर्वक तो हैं?

कच्चिद्देवान् पितॄन् भृत्यान् गुरून् पितृसमानपि
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे॥ ६॥

हे तात! तुम देव=विद्वानों, पितर-रक्षकों, नौकरों, गुरुओं और पिता के समान पूज्य बड़े-बूढ़ों, वैद्यो और ब्राह्मणों का सत्कार तो करते हो?

इष्वस्त्रवरसमपन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्त्वं तात मन्यसे॥ ७॥

हे भाई! तुम बाण और अस्त्रविद्या में निपुण तथा अर्थशास्त्रज्ञ=नीति-शास्त्र-विशारद धनुर्वेदाचार्य सुधन्वा का आदर-सत्कार तो करते हो।

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः॥ ८॥
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।
सुसंवृतो मन्त्रधरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः॥ ९॥

हे तात! क्या तुमने अपने समान विश्वसनीय वीर, नीतिशास्त्रज्ञ, लोभ में न फँसनेवाले, प्रामाणिक कुलोत्पन्न और संकेत को समझनेवाले व्यक्तियों को मन्त्री बनाया है? क्योंकि हे राघव! मन्त्रणा को धारण करनेवाले नीतिशास्त्रविशारद सचिवों के द्वारा गुप्त रखी हुई मन्त्रणा ही राजाओं की विजय का मूल होती है।

कच्चिन्निद्रावशं नैषीः कच्चित्काले प्रबुध्यसे।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम्[१] ॥ १० ॥

तुम निद्रा के वशीभूत तो नहीं होते? यथासमय उठ तो जाते हो तथा रात्रि के पिछले प्रहर में अर्थ की प्राप्ति के उपायों का चिन्तन तो करते हो?

कच्चिन् मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति॥ ११ ॥

तुम अकेले तो किसी बात का निर्णय नहीं कर लेते अथवा तुम बहुत-से लोगों में बैठकर तो विचार-विमर्श नहीं करते? तुम्हारा विचार कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व दूसरे राजाओं को विदित तो नहीं हो जाता?

कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः।
त्वया वा तव वाऽमात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम्॥ १२ ॥

मन्त्रियों के साथ किये गये तुम्हारे अकथित निश्चयों को दूसरे लोग तर्क और युक्तियों से जान तो नहीं लेते? और तुम वा तुम्हारे मन्त्री अन्यों के गुप्त रहस्यों को जान लेते हो न?

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम्।
क्षिप्रमारभसे कर्तुं न दीर्घयसि राघव॥ १३ ॥

हे भरत! अल्प प्रयास से सिद्ध होनेवाले और महान् फल देनेवाले कार्य को करने का निश्चय कर तुम उसे शीघ्र आरम्भ कर देते हो न? उसे पूर्ण करने में विलम्ब तो नहीं करते?

कच्चित्सहस्रान् मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत्॥ १४ ॥

तुम हजार मूर्खों की अपेक्षा एक बुद्धिमान् परामर्शदाता को रखना अच्छा समझते हो न? क्योंकि संकट के समय बुद्धिमान् व्यक्ति महान् कल्याण करता है।

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।
जघन्यास्तु जघन्येषु भृत्याः कर्मसु योजिताः॥ १५ ॥

हे तात! तुम उत्तम नौकरों को उत्तम कार्यों में, मध्यम नौकरों को मध्यम कार्यों में और साधारण नौकरों को साधारण कार्यों में लगाते हो न?

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्श्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु॥ १६ ॥

क्या तुम धर्म-अर्थ-काम में सुपरीक्षित, कुल परम्परा से प्राप्त, पवित्र और श्रेष्ठ मन्त्रियों को श्रेष्ठ कार्यों में नियुक्त करते हो?

कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजितप्रजम्।
राष्ट्रं तवानुजानन्ति मन्त्रिणः कैकेयीसुत॥ १७ ॥

हे कैकेयीनन्दन! तुम्हारे राज्य में उग्रदण्ड से उत्तेजित प्रजा तुम्हारा अथवा तुम्हारे मन्त्रियों का अपमान तो नहीं करती?

कच्चित्त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः॥ १८ ॥

जिस प्रकार स्त्रियाँ पर-स्त्रीगामी पतित पुरुष का तिस्कार करती हैं अथवा जिस प्रकार याजक लोग यज्ञ-कर्म से हीन व्यक्ति का अनादर करते हैं उसी प्रकार कर लेने से प्रजा तुम्हारा अनादर तो नहीं करती?

---

१. महर्षि मनु ने प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर धर्म-अर्थ चिन्तन का विधान किया है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च॥

—मनु० ४।९२

मनुष्य को चाहिए कि रात्रि के चौथे प्रहर में उठे उठकर धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों—उनके कारणों और वेद के रहस्य का चिन्तन करें।

उपाय कुशलं वैद्यं भृत्यं संदूषणे रतम्।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति स वध्यते॥ १९॥

जो राजा साम आदि कूटनीति-विशारद वैद्य को, सज्जनों में दोष लगानेवाले नौकर को और ऐश्वर्य के अभिलाषी शूर को नहीं मारता वह स्वयं मारा जाता है। (तुम कहीं ऐसे लोगों को तो अपने पास नहीं रखते।)

कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च मतिमान् धृतिमान् शुचिः।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः॥ २०॥

हे भरत! क्या तुमने व्यवहारकुशल, शूर, बुद्धिमान्, धीर, पवित्र, कुलीन, स्वामिभक्त और कर्मकुशल व्यक्ति को अपना सेनापति बनाया है।

बलवन्तश्च कच्चित्ते मुख्या युद्धविशारदाः।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः॥ २१॥

तुम्हारी सेना में जो अत्यन्त बलवान्, युद्धविद्या में निपुण, सुपरीक्षित और पराक्रमी सैनिक हैं तुम उन्हें पुरस्कृत कर सम्मानित करते हो या नहीं?

कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे॥ २२॥

तुम सेना के लोगों को कार्यानुरूप भोजन और वेतन जो उचित परिमाण में और उचित काल में देना चाहिए उसे यथासमय देने में विलम्ब तो नहीं करते?

कालातिक्रमणाच्चैव भक्तवेतनयोर्भृताः।
भर्तुः कुप्यन्ति दुष्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् स्मृतः॥ २३॥

भोजन और वेतन ठीक समय पर न मिलने से नौकर लोग क्रुद्ध होते हैं और स्वामी की निन्दा करते हैं। नौकरों का ऐसा करना भारी अनर्थ की बात समझी जाती है।

कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु सन्त्यजन्ति समाहिताः॥ २४॥

क्षत्रियकुलप्रसूत मुख्य लोग तुम्हारे प्रति अनुराग तो रखते हैं न? क्या समय आने पर वे तुम्हारे लिए अपने प्राण तक न्योछावर करने को उद्यत रहते हैं?

कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान्।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः॥ २५॥

हे भरत! अपने ही राज्य में उत्पन्न, दूसरों के अभिप्राय को जाननेवाले, समर्थ, प्रत्युत्पन्नमति, यथोक्तवादी–सन्देश को ठीक-ठीक पहुँचानेवाले पण्डित को तुमने अपना दूत बनाया है या नहीं?

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
त्रिभिस्त्रिभिर विज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः॥ २६॥

हे भरत! तुम परस्पर अनभिज्ञ तीन-तीन गुप्तचरों के द्वारा अपने राज्य के पन्द्रह तथा पर राज्य के अट्ठारह तीर्थों[1] का हाल जानते रहते हो न?

कच्चिद्व्यपास्तानहितान् प्रतियातांश्च सर्वदा।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन॥ २७॥

हे शत्रुसंहारक! पराजित करके अपने राज्य से भगाये हुए शत्रुओं के किसी प्रकार पुनः लौटकर आ जाने पर उनको दुर्बल समझकर कहीं तुम उनकी उपेक्षा तो नहीं करते?

कच्चिन्न लौकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः॥ २८॥

तुम नास्तिक ब्राह्मणों की संगति तो नहीं करते? अपने को पण्डित समझनेवाले ये मूर्ख धर्मानुष्ठान से

---

१. नीति-शास्त्रों में अट्ठारह तीर्थों के नाम निम्न हैं—
१. मन्त्री २. पुरोहित ३. युवराज ४. सेनापति ५. द्वारपाल ६. अन्तःपुराधिकारी ७. बन्धनगृहाधिकारी (दारोगा जेल) ८. धनाध्यक्ष ९. कार्यनियोजक (राजा की आज्ञानुसार नौकरों को आज्ञा देनेवाला) १०. प्राड्विवाक (वकील) ११. धर्माध्यक्ष १२. नगराध्यक्ष (कोतवाल) १३. राष्ट्रान्तपाल (सीमान्त का अफसर) १४. दण्डपाल (मजिस्ट्रेट) १५. दुर्गपाल १६. वनाध्यक्ष १७. कर ग्रहीता १८. सभ्य।
स्वपक्ष में मन्त्र, पुरोहित और युवराज को छोड़कर पन्द्रह पुरुष बचते हैं। —**हलायुध**

लोगों का चित्त हटाकर उन्हें नरक भेजने में बड़े कुशल होते हैं।

विवर्जितो नरैः पापैर्मम पूर्वैः सुरक्षितः।
कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव॥ २९॥

हे राघव! पापी लोगों से रहित, मेरे पूर्वजों के द्वारा सुरक्षित तथा समृद्ध कोसल देश सुखी तो है?

कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्ष्यजीविनः।
वार्तायां संश्रितस्तात लोको हि सुखमेधते॥ ३०॥

हे तात! कृषि-गोरक्षा आदि में लगे हुए तुम्हारे सब प्रियजन सुखी तो हैं न? व्यवसाय-लेन-देन के कार्य में नियुक्त रहकर ही वैश्य लोग धन धान्य से युक्त होते हैं न?

तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित्ते भरणं कृतम्।
रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः॥ ३१॥

तुम उन लोगों को उनकी इष्ट वस्तु प्रदान कर और उनके अरिष्टों को दूर कर उनका भरण-पोषण तो करते हो? राज्य के निवासियों की रक्षा राजा को धर्मपूर्वक—ईमानदारी से करनी चाहिए।

कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित्ते सन्ति धेनुकाः।
कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यसि॥ ३२॥

तुम हाथीवाले वनों की रक्षा तो करते हो? जो हथिनियाँ, हाथियों को पकड़वाती हैं, उनका पालन-पोषण तो ठीक रूप से होता है न? हाथियों, हथिनियों और घोड़ों के लाभ से तुम तृप्त तो नहीं होते?

कच्चिद्दर्शयसे नित्यं मनुष्याणां विभूषितम्।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्णे राजपुत्र महापथे॥ ३३॥

हे राजपुत्र! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर और सब प्रकार से सुभूषित होकर दोपहर से पहले ही सभा में जाकर प्रजाजनों से मिलते हो या नहीं?

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया।
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमे वात्र कारणम्॥ ३४॥

तुम्हारे नौकर निर्भय होकर सदा तुम्हारे सामने तो नहीं चले आते अथवा डर के मारे सदा तुमसे दूर तो नहीं रहते? ये दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं। नौकरों के साथ मध्यम व्यवहार ही उचित है।

कच्चित्सर्वाणि दुर्गाणि धनधान्यायुधोदकैः।
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः॥ ३५॥

तुम्हारे सब दुर्ग धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पियों और धनुर्धारियों से परिपूर्ण तो हैं?

आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव॥ ३६॥

हे राघव! तुम्हारी आय अधिक और व्यय न्यून है न? तुम्हारे कोष का धन अपात्रों--नाच गानेवालों में तो नहीं लुटाया जाता?

देवतार्थे च पित्रार्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्गच्छति ते व्ययः॥ ३७॥

तुम्हारा धन देव=विद्वान्, पितर-रक्षक वर्ग, अभ्यागत, योद्धा और मित्रों पर ही व्यय होता है न?

कच्चिदार्यो विशुद्धात्माक्षारितश्चोरकर्मणा।
अपृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्बध्यते शुचिः॥ ३८॥

जब विशुद्धात्मा, पवित्र और श्रेष्ठ लोग झूठ, चोरी आदि के अपवाद से दूषित होकर विचारार्थ न्यायालय में उपस्थित किये जाते हैं तब तुम्हारे नीतिशास्त्र-कुशल लोग [सरकारी वकील] उनकी परीक्षा किये [जिरह कर सत्यासत्य का निर्णय किये] बिना, लालच में फँसकर, कहीं उन्हें दण्ड तो नहीं देते?

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ॥ ३९॥

हे नरश्रेष्ठ! जो चोर चोरी करते हुए पकड़ा गया है, जिरह करने पर जिसका चोरी करना सिद्ध हो चुका है, जो चोरी करते देखा गया है और जिसके पास चोरी का सामान मिला है, कहीं उस चोर को घूँस के लोभ से छोड़ तो नहीं दिया जाता?

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्गतस्य च राघव।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः॥ ४०॥

धनी और निर्धन का झगड़ा होने पर तुम्हारे बहुश्रुत मन्त्री लोभरहित होकर दोनों का मुकदमा न्यायपूर्वक

निबटाते हैं या नहीं?

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यस्त्राणि राघव।
तानि पुत्रपशून्घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः॥ ४१॥

हे राघव! मिथ्या अपराधों के कारण दण्डित लोगों को आँखों से गिरनेवाले आँसू अपने भोग-विलास के लिए शासन करनेवाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं।

कच्चिद्वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यमुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे॥ ४२॥

हे राघव! तुम वृद्ध, बालक, वैद्य और मुखिया लोगों को १. दान- उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करके २. मनसा- उनके साथ स्नेहपूर्वक व्यवहार करके ३. वाचा- उनसे आश्वासन सूचक वचन कहकर—इन तीन प्रकार से तृप्त एवं प्रसन्न तो रखते हो?

कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः।
उभौ वा प्रतिलोभेन कामेन च न बाधसे॥ ४३॥

तुम धर्मानुष्ठान के समय को अर्थोपार्जन में अथवा अर्थोपार्जन के समय को धर्मानुष्ठान में तो नष्ट नहीं कर देते? अथवा सुखाभिलाषा के लिए कामवासना में फँस अर्थोपार्जन और धर्मानुष्ठान दोनों का समय तो नहीं गँवा देते?

कच्चिदर्थं च धर्मं च कामं च जयतांवर।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान् भरत सेवसे॥ ४४॥

हे विजेताओं में श्रेष्ठ एवं काल को जीतनेवाले भरत! तुम धर्म, अर्थ और काम का विभाग करके सबका यथासमय अनुष्ठान करते हो या नहीं? (प्रातःकाल सन्ध्या-यज्ञादि कर्म में, मध्याह्न राज-काज में और रात्रि काम के लिए) तुम एक ही काम में तो सारा समय नहीं बिता देते?

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्॥ ४५॥
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्॥ ४६॥
मङ्गलस्याप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश॥ ४७॥

हे भरत! नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता (टालमटोल) सज्जनों से न मिलना, आलस्य, इन्द्रियों की परवशता, मन्त्रियों की अवहेलना कर अकेले ही राज्य सम्बन्धी बातों पर विचार करना, अशुभ-चिन्तकों अथवा उल्टी बात समझानेवाले मूर्खों से परामर्श करना, निश्चित किये हुए कामों को आरम्भ न करना, रहस्यों को प्रकट कर देना, मङ्गल-कृत्यों का त्याग, नीच-ऊँच सबको देख उठ खड़े होना अथवा सब शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण—इन चौदह राजदोषों को तो तुमने त्याग दिया है न?

दशपञ्चचतुर्वर्गान् सप्तवर्गं च तत्त्वतः।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्त्रिस्त्रश्च राघव॥ ४८॥
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्वा षाड्गुण्यं दैवमानुषम्।
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम्॥ ४९॥
यात्रादण्डविधानं च द्वियोनी सन्धिविग्रहौ।
कच्चिदेतान् महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे॥ ५०॥

हे भरत! तुम दशवर्ग,[1] पञ्चवर्ग,[2] चतुर्वर्ग,[3]

---

१. **मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।**
तौर्यत्रिकं वृथाट्यं च कामजो दशको गणः॥
—मनु० ७।४७

शिकार करना, जुआ खेलना, दिन में सोना, परनिन्दा, स्त्रियों में अत्यधिक आसक्ति, मद्यादि मादक पदार्थों का सेवन, नृत्य, गीत, वाद्य और व्यर्थ इधर-उधर घूमना—ये दश कामज दोष हैं

२. **औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धान्वनं तथा।**
इति दुर्गं पञ्चविधं पञ्चवर्ग उदाहृतः॥

जल, पर्वत, वृक्ष, उजाड़ और मरुप्रदेशों में स्थित—पाँच प्रकार के दुर्ग होते हैं।

३. **सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुर्गणः।**
—कामन्दकीय

साम, दाम, भेद और दण्ड—यह चतुर्वर्ग कहलाता है।

सप्तवर्ग,[१] अष्टवर्ग,[२] त्रिवर्ग[३] तीनों विद्याएँ,[४] बुद्धि से इन्द्रियों पर विजय, षड्गुण,[५] देव मनुष्य सम्बन्धी आपत्तियाँ,[६] राजकृत्य,[७] विंशति वर्ग,[८] प्रकृति[९] तथा मण्डल,[१०] यात्रा विधान,[११] दण्ड-विधान[१२] और सन्धि विग्रह[१३]—इन सबको हेय-उपादेयरूप से जानते हो न ?

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टैश्चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।
कच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे मिथः॥ ५१॥

हे मतिमान्! तुम नीति शास्त्र के अनुसार तीन-चार मन्त्रियों को एकत्र कर एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् उनके साथ विचार-विमर्श तो करते हो ?

कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलाः क्रियाः।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम्[१४]॥५२॥

क्या तुम अग्निहोत्रादि अनुष्ठान करके वेदाध्ययन को सफल करते हो ? दान और भोग में लगाकर क्या तुम अपने धन को सफल करते हो ? यथाविधि सन्तानोत्पादन कर क्या तुम अपनी स्त्री को सफल करते हो ? तुमने जो शास्त्रश्रवण किया है तदनुसार शील और सदाचारमय जीवन बनाकर क्या तुम अपने शास्त्रश्रवण को चरितार्थ करते हो ?

---

१. **स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गकोशौ बलं सुहृत्।**
परस्परोपकारीदं राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते॥
स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र—ये राज्य के सात अङ्ग हैं।

२. **पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।**
वाग्दण्डयोश्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥
—मनु० ७।४८
चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, निन्दा, बलात् पर-सम्पत्ति पर अधिकार, कठोर वचन और तीक्ष्ण दण्ड—ये आठ क्रोध से उत्पन्न होनेवाले दोष हैं।

३. धर्म, अर्थ और काम।

४. वेदत्रयी, कृष्यादि वार्ता और नीति।

५. **सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत् सदा॥
—मनु० ७।१६०
सन्धि=मेल, विग्रह=युद्ध, यान=आक्रमण करना, आसन=स्थिर रहना, द्वैधीभाव=शत्रुओं में फूट डालना, संश्रय=किसी का सहारा लेना—ये छह गुण हैं।

६. **हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरणं तथा।**
इति पञ्चविधं दैवं मानुषं व्यसनं परम्॥
आयुक्तकेभ्यश्चोरेभ्यः परेभ्यो राजवल्लभात्।
पृथिवीपतिलोभाच्च व्यसनं पञ्चधा भवेत्॥
—कामन्दकीय
अग्नि लगाना, जलप्लावन, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा महामारी—ये पाँच दैवी-आपत्तियाँ हैं। अधिकारी, चोर, शत्रु, राजा के कृपापात्र और राजा के लोभ से होनेवाली आपत्तियाँ मानुष आपत्तियाँ कहलाती हैं।

७. शत्रु के अपलब्ध वेतन, निरादृत, कोपित तथा भयभीत व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लेना।

८. बालक, वृद्ध, दीर्घरोगी, जाति-बहिष्कृत, भीरु, भीरु मन्त्री आदिवाला, लोभी, लोभी जनोंवाला, विरक्त, इन्द्रीय-लोलुप, अस्थिर बुद्धि, देव-ब्राह्मण-निन्दक, अभिशप्त, पुरुषार्थहीन, दुर्भिक्षपीड़ित, बहु-रिपु, प्रवासी, सेनाविहीन, यथासमय काम न करनेवाला और सत्यधर्म पर दृढ़ न रहनेवाला—इन बीस पुरुषों से सन्धि न करे।
—कामन्दकीय

९. अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश और दण्ड।

१०. मध्य में विजय का इच्छुक राजा, उसके सामने पाँच, पीछे चार तथा पार्श्व में दो व्यक्ति—इस प्रकार बीस मण्डल होते हैं।

११. विग्रह, सन्धि, सम्भूय, प्रसङ्ग और उपेक्ष्य—यान पाँच प्रकार का होता है। —कामन्दकीय

१२. सेना की व्यूह-रचना।

१३. षड्गुणोक्त द्वैधीभाव-संश्रय सन्धि के अन्तर्गत और यान-आसन विग्रह के अन्तर्गत आ जाते हैं।

१४. महाभारत में लिखा है—
अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम्।
रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम्॥
—महा० आदि० ५।११३

कच्चित्स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि॥ ५३॥

हे भरत! तुम स्वादु पदार्थों को अकेले ही तो नहीं खा लेते? खाते समय यदि मित्र उपस्थित हों तो उन्हें देकर खाते हो न?

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा
महामतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथाव-
दितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥ ५४॥

देखो! इस प्रकार धर्मानुकूल दण्ड धारण करनेवाला नीतिज्ञ राजा प्रजा का पालन करके सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी हो मरने के पश्चात् स्वर्ग सुख विशेष, उत्तम जन्म को प्राप्त करता है।

विशेष—यह अध्याय 'कच्चित् अध्याय' कहलाता है। इस अध्याय में परमराजनीतिज्ञ मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ने भरत की वैदिक-राजनीति एवं राजा द्वारा अनुष्ठेय आचरण का उपदेश अत्यन्त सुन्दर एवं मार्मिक रूप में दिया है। यह है हमारे भारत की गौरवमयी प्राचीन राजनीति।

❮ एकसप्ततितमः सर्गः ❯ (७१)

पिता का परलोकगमन सुन राम का शोक—

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह।
किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति॥ १॥

श्रीराम के इस राजनीति से परिपूर्ण उपदेश को सुनकर भरत बोले—परम्परागत अपने कुल की मर्यादा को छोड़नवाले धर्महीन मेरे लिए राजधर्म का उपदेश किस काम का?

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजन् न कनीयान्नृपो भवेत्॥ २॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! हमारे कुल में तो यही सनातन नियम चला आता है कि ज्येष्ठ पुत्र के समक्ष छोटा पुत्र राजा नहीं होता।

ससमृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव।
अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः॥ ३॥

अतः हे राघव! आप मेरे साथ धन-धान्य से समृद्ध अयोध्या नगरी में चलिए और अपना राज्याभिषेक करवा कर हमारे कुल का कल्याण कीजिए।

केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते।
दिवमार्यो गतो राजा यायजूकः सतां मतः॥ ४॥

हे भाई! जब मैं केकयदेश (अपनी ननिहाल) में था और आप वन में चले आये थे तब सज्जनों से प्रशंसित और अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले पिताजी स्वर्गवासी हो गये।

निष्क्रान्तमात्रे भवति सहसीते सलक्ष्मणे।
दुःखशोकाभिभूतस्तु राजा त्रिदिवमभ्यगात्॥ ५॥

सीता और लक्ष्मणसहित आपके अयोध्या छोड़ते ही, महाराज दुःख और शोक से सन्तप्त होकर स्वर्गवासी हो गये।

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः॥ ६॥

भरतजी के मुख से पिताजी की करुणापूर्ण मृत्यु का समाचार सुनकर श्रीराम मूर्च्छित हो गये।

स तु संज्ञां पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामास्रमुत्सृजन्।
उपाक्रमत काकुत्स्थः कृपणं बहु भाषितुम्॥ ७॥

जलसिञ्चन आदि क्रिया के द्वारा सचेत होने पर आँखों में आँसू बहाते हुए श्रीराम बहुत करुणापूर्ण विलाप करने लगे।

किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टां गतिं गते।
कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति॥ ८॥

जब पिताजी का ही देहान्त हो गया तब मैं अयोध्या जाकर ही क्या करूँगा? राजाओं के मुकुटमणि महाराज

के बिना अब अयोध्या का शासन कौन करेगा?

किन्नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः।
यो मृतो मम शोकेन मया चापि न संस्कृतः॥ ९॥

मुझ जैसे अभागे पुत्र से उन महात्मा का क्या प्रयोजन? वे मेरे वियोगजन्य शोक में मृत्यु को प्राप्त हुए और मैं उनका अन्तिम-संस्कार भी न कर सका।

अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ।
शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः॥ १०॥

हे निष्पाप भरत! तुम बहुत भाग्यशाली हो। तुमने और शत्रुघ्न ने पिताजी के सम्पूर्ण अन्त्येष्टि-कर्म तो कर लिये।

एवमुक्त्वा स भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः।
उवाच शोकसन्तप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम्॥ ११॥

शोक से व्याकुल श्रीराम भरत से ऐसा कहकर, फिर सीता की ओर मुख करके पूर्णिमा के चन्द्रमा के सदृश मुखवाली सीताजी से बोले—

सीते मृतस्ते श्वशुरः पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतं पृथिवीपतिम्॥ १२॥

हे सीते! तुम्हारे श्वशुर का देहान्त हो गया। हे लक्ष्मण! तुम पिताविहीन हो गये। महाराज के स्वर्गवास का यह दुःखदायी समाचार भरत ने हमें सुनाया है।

सा सीता श्वशुरं श्रुत्वा स्वर्गलोकगतं नृपम्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामशकन्नेक्षितुं पतिम्॥ १३॥

श्वशुर के परलोकवासी होने का वृत्तान्त सुनकर सीताजी के नेत्र आँसुओं से ऐसे भर गये कि वे अपने पति को भी न देख सकीं।

➤ द्विसप्ततितमः सर्गः ➤ (७२)

माताओं का दर्शन—

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान् दशरथस्य च।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः॥ १॥

उधर वसिष्ठजी राम को देखने की अभिलाषा से महाराज दशरथ की रानियों को आगे कर राम-आश्रम की ओर चले।

सर्वभोगैः परित्यक्तं रामं सम्प्रेक्ष्य मातरः।
आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः॥ २॥

सब सुखोपयोगी भोज्य पदार्थों से हीन श्रीराम को देखकर शोक-सन्तप्त दुःखी माताएँ अश्रुपात करती हुई उच्चस्वर से रोने लगीं।

तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाञ्शुभान्।
मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसङ्गरः॥ ३॥

सत्यप्रतिज्ञ, नरकेसरी श्रीराम ने माताओं को देखते ही उठकर उनके चरण-कमलों का स्पर्श कर प्रणाम किया।

सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी सा बभूवाग्रतः स्थिता॥ ४॥

दुःखित सीताजी ने भी अपनी सासुओं का चरण-स्पर्श किया, फिर आँखों में आँसू भरकर वह उनके सामने जा खड़ी हुईं।

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा।
वनवासकृशां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥

दुःख से पीड़ित और वनवास के कारण कृश एवं दीन सीता को देवी कौसल्या ने स्वपुत्रीवत् हृदय से लगाकर कहा—

विदेहराजस्य सुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता निर्जने वने॥ ६॥

हा! विदेहराज जनक की पुत्री, महाराज दशरथ की पुत्रवधू तथा यशस्वी राम की धर्मपत्नी सीता—इस निर्जन वन में इस प्रकार कष्ट क्यों भोग रही है?

ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः॥ ७॥

महारानी कौसल्या दुःखी हो इस प्रकार कह रही थीं कि भरत के ज्येष्ठ भ्राता राम ने वसिष्ठजी के पास जा उनके चरण कमल स्पर्श किये।

पुरोहितस्याग्निसमस्य वै तदा।
बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः।
प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः
सहैव तेनोपविवेश राघवः॥ ८॥

जिस प्रकार इन्द्र अपने गुरु बृहस्पति के चरणों का स्पर्श करते हैं उसी प्रकार तेजस्वी श्रीराम अग्नि के समान देदीप्यमान पुरोहित वसिष्ठ को चरणस्पर्श पूर्वक प्रणाम कर, उनके साथ आसन पर बैठ गये।

ततो जघन्यं सहितैः समन्त्रिभिः
पुरप्रधानैश्च सहैव सैनिकैः।
जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवान्
उपोपविष्टो भरतस्तदाऽग्रजम्॥ ९॥

श्रीराम और वसिष्ठजी के बैठ जाने के पश्चात् धर्मात्मा भरत भी अपने मन्त्रियों, प्रजा के मुखियों, सेनापतियों और अन्य धर्मात्माओं के साथ राम के पास ही उनसे कुछ नीचे स्थान पर बैठ गये।

स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो
महानुभावो भरतश्च धार्मिकः।
वृताः सुहृद्भिश्च विरेजुरध्वरे
यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः॥ १०॥

उस समय सत्यव्रतधारी श्रीराम, महानुभाव लक्ष्मण और धर्मात्मा भरत अपने नगरवासी सुहृदों से घिरे हुए इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे जैसे यज्ञ में ऋत्विजों के साथ अग्नित्रय (आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि) शोभा को प्राप्त होती हैं।

◀ त्रिसप्ततितमः सर्गः ▶ (७३)

राम-भरत संवाद—

तं तु रामः समाज्ञाय भ्रातरं गुरुवत्सलम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रष्टुं समुपचक्रमे॥ १॥

श्रीराम भरत को अपने में अत्यन्त भक्तिमान् जानकर, लक्ष्मणसहित उनसे पूछने लगे—

किमेतदिच्छेयमहं श्रोतुं प्रव्याहृतं त्वया।
यस्मात्त्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी॥ २॥

हे भरत! मैं तुम्हारे मुखारविन्द से यह सुनना चाहता हूँ कि चीर-जटा और मृगचर्म धारण कर तुम इस वन-प्रदेश में क्यों आये हो?

इत्युक्तः कैकेयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना।
प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ३॥

महात्मा श्रीराम ने जब कैकेयीपुत्र भरत से इस प्रकार पूछा, तब भरत बड़ी कठिनता से शोक के वेग को रोककर और हाथ जोड़कर बोले—

आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः॥ ४॥

हे आर्य! महाबाहु पिताजी कैकेयी की प्रेरणा से आपको वन में भेजने रूपी कठोर कर्म को कर पुत्रशोक से विकल होकर स्वर्ग सिधार गये।

स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परन्तप।
चकार सुमहत्पापमिदमात्मयशोहरम्॥ ५॥

हे शत्रुतापी! पिताजी ने यह दुष्कर्म कैकेयी की प्रेरणा से किया था। मेरी माता ने अपने यश को नष्ट करनेवाला यह महापाप कर डाला है।

सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्षिता।
पतिष्यति महाघोरे निरये जननी मम॥ ६॥

मेरी माता को राज्यरूपी फल तो नहीं मिला। वह विधवा हो गयी और शोक से पीड़ित होकर घोर नरक में गिरेगी।

तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव॥ ७॥

यद्यपि मैं कैकेयी का पुत्र हूँ, परन्तु आपका अनन्य दास हूँ, अतः आप मुझ पर प्रसन्न होकर आज ही अपना राज्याभिषेक करावें और इन्द्र के समान राजसिंहासन पर आसीन हों।

इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ ८॥

देखिए! अयोध्या की सारी प्रजा और ये विधवा माताएँ आपके पास आई हुई हैं, आप इन पर कृपा करें।

तदानुपूर्व्या युक्तं च युक्तं चात्मनि मानद।
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान् सुहृदः कुरु॥ ९॥

हे मानद! ज्येष्ठानुक्रम-अनुसार यह सम्पूर्ण राज्य आपका ही है। आपका ही राज्यसिंहासन पर बैठना उचित है। धर्मानुसार आप इस राज्यभार को ग्रहण कीजिए और सुहृज्जनों की कामनाएँ पूर्ण कीजिए।

एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ १०॥

मैं मन्त्रियों सहित सिर झुकाकर आपसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ—आप अपने भाई, दास और शिष्य पर कृपा करें।

एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकेयीसुतः।
रामस्य शिरसा पादौ जग्राह विधिवत्पुनः॥ ११॥

ऐसा कहकर महाबाहु कैकेयीनन्दन भरतजी ने आँखों में आँसू भरकर पुनः श्रीराम के चरणों में अपना सिर झुका दिया।

तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत्॥ १२॥

तब राम ने भरत को, जो बार-बार मतवाले हाथी की भाँति लम्बी-लम्बी साँस ले रहे थे, हृदय से लगाकर कहा—

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेद्मद्विधो जनः॥ १३॥

हे भरत! सम्भ्रान्त कुल में उत्पन्न, सत्त्वगुण सम्पन्न, तेजस्वी और व्रतचारी मेरे जैसा व्यक्ति राज्य के लिए इस प्रकार का पाप कैसे कर सकता है?

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन।
न चापि जननीं बाल्यात्त्वं विगर्हितुमर्हसि॥ १४॥

हे शत्रुनाशक! मुझे तो तुममें कोई भी दोष नहीं दिखाई देता। बाल-स्वभाववश तुम्हें माता की निन्दा भी नहीं करनी चाहिए।

कामकारो महाप्रज्ञ गुरूणां सर्वदाऽनघ।
उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते॥ १५॥

हे पापरहित! महाप्राज्ञ! सदा स्मरण रखो, पिता आदि गुरुजनों का अपने आश्रित शिष्य, दास, स्त्री और पुत्र पर सदा से पूर्ण अधिकार माना गया है, अतः वे उनके साथ जैसा चाहें वैसा व्यवहार कर सकते हैं।

वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम्।
राज्ये वापि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः॥ १६॥

हे सौम्य! महाराज को यह पूर्ण अधिकार है कि वे चाहे हमें चीर-वसन पहनाकर और मृगछाला धारण कराकर वन में भेजें अथवा राज्यकार्य में नियुक्त करें।

यावत्पितरि धर्मज्ञे गौरवं लोकसत्कृतम्।
तावद्धर्मभृतांश्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम्॥ १७॥

हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! सन्तानों को जितना और जैसा आदर-सत्कार लोकपूजित पिता का करना चाहिए उतना और वैसा ही आदर-सत्कार माता का भी करना चाहिए।

एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव।
मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे॥ १८॥

हे भरत! जब धर्मशीला माता और पिता ने मुझे वन जाने का आदेश दे दिया तब मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघनरूप विपरीत कर्म कैसे कर सकता हूँ?

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम्।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा॥ १९॥

हे भरत! तुम अयोध्या में जाकर लोकप्रशंसित

राजसिंहासन पर बैठो और मैं वल्कल-वस्त्र धारण कर दण्डक वन में वास करूँगा।

➤ चतुःसप्ततितमः सर्गः ➤ (७४)

राम का कथन—

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः।
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत॥ १॥

शुभचिन्तक बन्धु-बान्धवों और मित्रमण्डल से घिरे हुए नर शारदूल उन राजकुमारों की वह सारी रात सोच-ही-सोच में दुःखपूर्वक व्यतीत हो गई।

रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन्॥ २॥

प्रातःकाल होने पर बन्धु-बान्धवोंसहित भरत आदि सभी भाइयों ने मन्दाकिनी नदी पर जा स्नान, सन्ध्या और यज्ञ आदि नित्य-कर्म किये। तदनन्तर वे सब राम के समीप लौट आये।

तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत्।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत्॥ ३॥

वे सबके सब चुपचाप बैठे थे, कोई किसी से कुछ बातचीत नहीं करता था। चारों और सन्नाटा छाया हुआ था कि इतने में शुभचिन्तकों के मध्य में विराजमान भरतजी ने श्रीराम से कहा—

सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्॥ ४॥

हे भाई! पूज्य पिताजी ने जो राज्य, मेरी माता को दे उसे शान्त किया था, वही राज्य माता ने मुझे प्रदान कर दिया है। आपका अपना होने के नाते वही राज्य मैं आपको अर्पण कर रहा हूँ। अब आप इस निष्कण्टक राज्य का उपभोग करो।

गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते॥ ५॥

हे महिपाल! जिस प्रकार घोड़े की और अन्य पक्षी गरुड़ की चाल को नहीं पा सकते उसी प्रकार मैं भी आपके राज्यपालन का सामर्थ्य नहीं पा सकता। [जैसी राज्य-शासन की योग्यता आपमें है वैसी मुझ में नहीं।]

तस्य साध्वित्यमन्यन्त नागरा विविधा जनाः।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः॥ ६॥

श्रीराम से भरतजी की, की हुई प्रार्थना को सुनकर भिन्न भिन्न वर्गों के नगर-निवासियों ने 'साधु! बहुत सुन्दर!' कहकर भरत की बात का अनुमोदन किया।

तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम्।
रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान्॥ ७॥

यशस्वी भरत को दुःखी और विलाप करते हुए देख शुद्धान्तःकरण, व्रती राम उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—

नात्मनः कामकारोऽस्ति पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतरश्चेतरश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥ ८॥

हे भरत! अपने सुख-दुःख भोग के लिए मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है। यह पुरुष परतन्त्र है। कर्मों का यथायोग्य फल देने के लिए परमात्मा इसे इधर-से-उधर खेंचता हुआ नाना नाच नचाया करता है।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ ९॥

सभी संग्रहीत वस्तुओं का नाश अवश्यम्भावी है, उन्नतिशील जीव का पतन भी अपरिहार्य है। संयोग का अन्त वियोग है, जीवन के पश्चात् मृत्यु भी निश्चित है।

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम्॥ १०॥

जैसे पके हुए फलों को पतन के अतिरिक्त और कोई भय नहीं है ठीक उसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्य के लिए मरने के सिवाय और कोई भय नहीं है।

यथाऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वाऽवसीदति।
तथैव सीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः॥ ११॥

जैसे दृढ़ खम्भेवाला गृह स्तम्भ के जीर्ण होने पर धराशायी हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी जरा और मृत्यु के आक्रमण से नष्ट हो जाता है।

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णा समुद्रमुदकाकुलम्॥ १२॥

जो रात्रि व्यतीत हो गई वह पुनः लौटकर नहीं आती। यमुना का जो जल एक बार समुद्र में चला गया वह फिर यमुना में वापस नहीं आता।

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः॥ १३॥

दिन और रात प्राणियों की आयु को उसी प्रकार कम करते जाते हैं जिस प्रकार ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणें जल को सुखा देती हैं।

आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि।
आयुस्ते हीयते यस्य स्थितस्य च गतस्य च॥ १४॥

हे भरत! तुम अपने लिए (आत्मोद्धार के लिए) चिन्ता करो, दूसरों के लिए क्यों चिन्तित होते हो। चाहे जंगम हो अथवा स्थावर—आयु तो सभी की क्षीण हो रही है।

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते॥ १५॥

मृत्यु मनुष्य के साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है, बहुत दूर जाकर फिर साथ ही लौट आती है।

गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत्॥ १६॥

जब शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं, सिर के बाल श्वेत हो गये और मनुष्य जरा से जर्जरित हो गया तब वह किस बल-बूते पर दूसरों पर प्रभुता जमा सकता है।

नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमिते रवौ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्॥ १७॥

मनुष्य सूर्योदय और सूर्यास्त होने पर आनन्दित एवं हर्षित होते हैं, परन्तु उनकी आयु प्रतिक्षण घट रही है—इस तथ्य को वे अनुभव नहीं करते।

हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिहागतम्।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः॥ १८॥

नई-नई ऋतुओं के आगमन को देखकर मनुष्य प्रसन्नता प्रकट करता है, परन्तु इन ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों के प्राण क्षीण हो रहे हैं।

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कञ्चन॥ १९॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च धनानि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः॥ २०॥

जैसे महासमुद्र में लहरों के द्वारा एक काष्ठ दूसरे काष्ठ के साथ मिल जाता है और फिर समय पाकर अलग-अलग हो जाते हैं वैसे ही स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, धन-सम्पत्ति समय से प्राप्त होते हैं, फिर इनका वियोग भी हो जाता हैं, क्योंकि इनका वियोग होना निश्चित है।

नात्र कश्चिद्यथाभावं प्राणी समभिवर्तते।
तेन तस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः॥ २१॥

हे भरत! संसार का कोई भी प्राणी जन्म-मृत्यु के विधान का अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसीलिए मृत मनुष्य के सम्बन्ध में शोक मनाते हुए भी मनुष्य अपनी मृत्यु को परे धकेलने में असमर्थ है।

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति॥ २२॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पितृपैतामहो ध्रुवः।
तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥ २३॥

जिस प्रकार मार्ग में जाते हुए यात्रीदल को कोई मार्ग में बैठा हुआ मनुष्य कहे कि मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ उसी प्रकार पहले जानेवाले पिता-पितामहादि जिस मार्ग से गये हैं उसी से हम सबको जाना है, अतः इस अपरिहार्य गति के लिए शोक करने से क्या लाभ?

वयसः पतमानस्य स्त्रोतसो वाऽनिवर्तिनः।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः॥ २४॥

जिस प्रकार नदी की धारा आगे ही बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती उसी प्रकार आयु को क्षीण होते हुए देखकर अपने-आपको सुख-शान्ति के साधनभूत धर्मकृत्यों में लगाना चाहिए, क्योंकि मानव जीवन सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए ही मिला है।

इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैर्भोगांश्चावाप्य पुष्कलान्।
उत्तमं चायुरासाद्य स्वर्गतः पृथिवीपतिः॥ २५॥

महाराज दशरथ अश्वमेधादि अनेक प्रकार के यज्ञ कर, नाना प्रकार के भोगों को भोग तथा उत्तम दीर्घायु को प्राप्त कर स्वर्ग सिधारे हैं।

तं तु नैवंविधः कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हसि।
तद्विधो मद्विधश्चासि श्रुतवान् बुद्धिमत्तरः॥ २६॥

मेरे और तुम्हारे समान वेद शास्त्र का ज्ञाता तथा बुद्धिमान् कोई भी ज्ञानी ब्रह्मलोक-विहारी महाराज दशरथ के लिए शोक नहीं कर सकता।

स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम्।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतांवर॥ २७॥

तुम स्वस्थ हो और शोक को त्यागकर अयोध्यापुरी में जाकर निवास करो। हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! पिताजी ने तुम्हें अयोध्यापुरी में स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करने की आज्ञा दी है।

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्॥ २८॥

पुण्यकर्मा पूज्य पिताजी ने जहाँ मेरी नियुक्ति की है तदनुसार वहाँ रहता हुआ मैं भी पिताजी की आज्ञा का पालन करूँगा।

न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिन्दम।
तत्त्वयाऽपि सदा मान्यं स वै बन्धुः स नः पिता॥२९॥

हे शत्रुओं का दमन करनेवाले! मेरे लिए उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं है और आपको भी उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। वे हम लोगों के शुभचिन्तक और पिता हैं।

धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता॥ ३०॥

हे पुरुषसिंह! जो मनुष्य धार्मिक और दयालु हैं, जिन्हें अपना परलोक बनाने की इच्छा है उन्हें बड़े लोगों की आज्ञा माननी ही चाहिए।

आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ।
निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः॥ ३१॥

हे नरश्रेष्ठ! तुम पिताजी की सत्य प्रतिज्ञा का स्मरण कर अपने मन में अब राजधर्म को स्थापित करो, अर्थात् पिताजी की सत्यप्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अयोध्या में जाकर राज्य करो।

◀ पञ्चसप्ततितमः सर्गः ▶ (७५)

भरत की प्रार्थना—

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत्।
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः॥ १॥

प्रजावत्सल श्रीराम जब ऐसे सार्थक वचन कहकर मौन हो गये तब धर्मात्मा भरत श्रीराम से अनेक प्रकार की युक्तियों से पूर्ण तथा धर्मसम्मत ये वचन बोले—

को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिन्दम।
न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत्॥ २॥

हे शत्रुनाशन! तुम्हारे तुल्य इस लोक में दूसरा कौन होगा जिसे न तो दुःख दुःखी कर सकता है और न हर्ष हर्षित कर सकता है।

क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटः क्व च पालनम्।
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान् कर्तुमर्हति॥ ३॥

हे भाई! कहाँ तो यह जनशून्य वनवास और

कहाँ क्षात्रधर्म! कहाँ जटाधारण और कहाँ प्रजा-पालन! आपको इन परस्पर विरोधी कर्मों का सेवन करना उचित नहीं।

एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम्।
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम्॥ ४॥

हे महाप्राज्ञ! क्षत्रियों का सर्वप्रथम धर्म यही है कि वह अपना राज्याभिषेक करावें जिससे वह प्रजा का पालन कर सकें।

अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि।
धर्मेण चतुरो वर्णान् पालयन् क्लेशमाप्नुहि॥ ५॥

यदि आप शरीर को कष्ट देनेवाले धर्म का ही आचरण करना चाहते हैं तो आप धर्मानुसार ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के पालन करने का कष्ट स्वीकार करो।

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम्।
प्राहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमर्हसि॥ ६॥

हे धर्मज्ञ! धर्मज्ञ लोग चारों आश्रमों में (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) गृहस्थाश्रम को सर्वोत्तम बतलाते हैं, फिर इस सर्वोत्तम आश्रम को आप क्यों छोड़ना चाहते हैं?

श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम्।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति॥ ७॥

देखिए! क्या विद्या में, क्या पद में और क्या अवस्था में—प्रत्येक दृष्टि से मैं आपके समक्ष बालक हूँ, ऐसी अवस्था में आपके होते हुए मैं पृथिवी का पालन कैसे कर सकता हूँ?

इदं निखिलमाव्यग्रं राज्यं पित्र्यमकण्टकम्।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञ सह बान्धवैः॥ ८॥

अतः हे धर्मज्ञ! आप पिता के इस सम्पूर्ण, उत्तम एवं निष्कण्टक राज्य का अपने बन्धु-बान्धवोंसहित पालन कीजिए।

इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः।
अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यायां पालने व्रज॥ ९॥

मन्त्रों के ज्ञाता (वसिष्ठ आदि) वैदिक मन्त्रों से यहीं आपका राज्याभिषेक करें और आप अभिषिक्त होकर हम लोगों के साथ अयोध्या में राज्य करने के लिए चलें।

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ
अद्य तत्रभवन्तं च पितरं च रक्ष किल्बिषात्॥ १०॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! अपने राज्याभिषेक से आप मेरी माता के लोकापवाद को धो डालिए और पूज्य पिताजी को भी पाप से बचाइए।

शिरसा त्वाऽभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः॥ ११॥

मैं आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रार्थना करता हूँ कि जिस प्रकार जगन्नियन्ता परमात्मा प्राणिमात्र पर दया करता है उसी प्रकार आप मुझ पर और सब भाई-बन्धुओं पर कृपा कीजिए।

अथैतत्पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्॥ १२॥

यदि मेरी इस प्रार्थना की अवहेलना कर आप दूसरे वन में चले जायेंगे तो मैं भी आपके साथ-ही-साथ वन में चलूँगा।

तथा हि रामो भरतेन ताम्यता।
प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मतिं पितुस्तद्वचने व्यवस्थितः॥ १३॥

यद्यपि भरतजी दुःखी होकर—गिड़गिड़ाकर और श्रीराम के चरणों में अपना सिर रखकर बार-बार उन्हें मना रहे थे तथापि राम पिताजी की आज्ञापालन में ऐसे कटिबद्ध थे कि वे तनिक भी विचलित नहीं हुए, अर्थात् उन्होंने अयोध्या लौटना स्वीकार नहीं किया।

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे
समं जनो हर्षमवाप दुःखितः।
न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्
स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः॥ १४॥

जो लोग उस समय वहाँ उपस्थित थे वे सब

श्रीराम की अद्‌भुत विचार-दृढ़ता को देखकर एक ही साथ शोक और हर्ष में निमग्न हो गये। वे दुःखी इसलिए थे कि 'राम अयोध्या नहीं लौट रहे हैं' और हर्षित इसलिए थे कि श्रीराम पिताजी की आज्ञापालन पर अटल हैं।

◀ षट्सप्ततितमः सर्गः ▶ (७६)

श्रीराम का उत्तर—

पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः।
प्रत्युवाच ततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्येऽभिसत्कृतः॥ १॥

जब भरतजी ने पुनः कुछ कहना चाहा तब मानवसमाज में सम्मानित लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम ने कहा—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्[१]॥ २॥

हे भाई! पिताजी ने जब आपकी माता के साथ विवाह किया था उस समय उन्होंने तुम्हारे नानाजी से यह प्रतिज्ञा की थी कि कैकेयी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राज्यसिंहासन पर आसीन होगा।

दैवासुरे च सङ्ग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः॥ ३॥

इसके अतिरिक्त देवासुर-संग्राम में भी तुम्हारी माता के उपकार से सन्तुष्ट हो, पिताजी ने उन्हें दो वरदान देने के लिए कहा था।

ततः सा सम्प्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी॥ ४॥

यशस्विनी एवं सुन्दर वचन बोलनेवाली तुम्हारी माता ने उन दोनों वरों का स्मरण कराते हुए पिताजी को वचनबद्ध कर उनसे दो वर माँगे।

तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा।
तौ च राजा तदा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरौ॥ ५॥

हे पुरुषसिंह! कैकेयी ने उन दो वरों में—एक से तुम्हारे लिए राज्य और दूसरे से मेरे लिए वनवास माँगा। प्रतिज्ञाबद्ध महाराज ने दोनों वरों को देना स्वीकार कर लिया।

तेन पित्राऽहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम्॥ ६॥

हे नरश्रेष्ठ! उसी वरदान के कारण पिताजी ने मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहने की आज्ञा दी है।

सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः॥ ७॥

पिताजी के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए मैं सीता और लक्ष्मण को साथ ले गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख की कुछ भी परवाह न कर इस निर्जन वन में चला आया हूँ।

भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्।
कर्तुमर्हति राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात्॥ ८॥

हे राजेन्द्र! आप भी अयोध्या में शीघ्र ही अपना राज्याभिषेक कराकर पिताजी को सत्यवादी बनाओ।

ऋणान् मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं चापि धर्मज्ञं मातरं चाभिनन्दय॥ ९॥

हे भरत! मेरी प्रसन्नता के लिए तुम धर्मज्ञ महाराज को ऋण से मुक्त करो और राजसिंहासन पर बैठकर माता कैकेयी को भी प्रसन्न करो।

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितृन् यः पाति सर्वतः॥ १०॥

पुत्र पिता का पुत्—दुःखरूपी नरक से उद्धार करता

१. इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि भरत भी राज्यगद्दी के उत्तराधिकारी थे। मन्थरा कैकेयी के साथ केकयदेश से आई थी। उसे इस बात का पता था, इसीलिए उसने भरत को राज्य दिलाने के लिए कैकेयी को प्रेरित किया था।

है, इसीलिए उसे पुत्र कहते हैं, क्योंकि वह पिता की सब प्रकार से रक्षा करता है।

अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरनुरञ्जय।
शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः॥ ११॥

हे वीर भरत! तुम शत्रुघ्न और सब द्विजातियों-सहित अयोध्या को लौट जाओ और प्रजा का पालन करते हुए उसे आनन्दित करो।

प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन्।
आभ्यां तु सहितो राजन् वैदेह्या लक्ष्मणेन च॥ १२॥

हे राजन्! मैं भी सीता और लक्ष्मण को साथ ले अब शीघ्र ही दण्डकारण्य में प्रवेश करूँगा।

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां
वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम्।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः
संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये॥ १३॥

हे भरत! तुम मनुष्यों के राजा बनो और मैं वनवासी पशुओं का राजा बनूँगा। तुम प्रसन्नता-पूर्वक अयोध्या नगरी में प्रवेश करो और मैं आनन्दपूर्वक दण्डक वन में प्रवेश करूँगा।

➤ सप्तसप्ततितमः सर्गः ➤ (७७)

राम-जाबालि संवाद—

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः॥ १॥

जब श्रीराम भरत को इस प्रकार समझा रहे थे तब जाबालि नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने उनसे ये धर्मविरुद्ध वचन कहे—

साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका।
प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेर्मनस्विनः॥ २॥

वाह महाराज वाह! आप तो श्रेष्ठ बुद्धिवाले ही नहीं, अपितु मनस्वी भी हैं। साधारण अपठित मनुष्यों की भाँति आपकी ऐसी निरर्थक बुद्धि नहीं होनी चाहिए।

कः कस्य पुरुषो बन्धु किमाप्यं कस्य केनचित्।
यदेको जायते जन्तुरेक एव विनश्यति॥ ३॥

भला तनिक सोचो तो सही, संसार में कौन किसका बन्धु है और किसको किसी से क्या लेना है? यह प्राणी अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

तस्मात् माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्॥ ४॥

अतः हे राम! जो व्यक्ति यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है—ऐसा सम्बन्ध मानकर इनमें आसक्त होता है उसे पागल ही समझना चाहिए क्योंकि वस्तुतः संसार में कोई किसी का नहीं है।

यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चित्क्वचिद्वसेत्।
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि॥ ५॥
एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु।
आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः॥ ६॥

जैसे कोई मनुष्य अपने ग्राम से दूसरे ग्राम को जाता हुआ कहीं मार्ग में ठहर जाता है और अगले दिन उस स्थान को छोड़कर फिर चल देता है इसी प्रकार माता-पिता, घर और धन-सम्पत्ति मनुष्य के आवासमात्र हैं, अतः सज्जन लोग इनमें आसक्त नहीं होते।

पित्र्यं राज्यं परित्यज्य स नार्हसि नरोत्तम।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम्॥ ७॥

हे नरोत्तम! पिता के समृद्ध राज्य को छोड़, इस कुमार्ग पर जो दुःख देनेवाला, युवावस्था के अयोग्य और बहुविघ्नों से परिपूर्ण है तुम्हें आरूढ़ होना योग्य नहीं है।

समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय।
एकवेणीधरा हि त्वां नगरी सम्प्रतीक्षते॥ ८॥

अब तो तुम अयोध्या में चलकर अपना राज्याभिषेक कराओ, क्योंकि प्रोषित भर्तृका (जिस का पति प्रवास में गया हो ऐसी स्त्री) की भाँति अयोध्या नगरी आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकनिदर्शिनीम्।
राज्यं त्वं प्रतिगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः॥ ९॥

सज्जनों की बुद्धि का आश्रय लेकर सर्वजनानुमोदित भरत की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए आप अयोध्या के राज्य को ग्रहण कीजिए।

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यवतां वरः।
उवाच परया भक्त्या स्वबुद्ध्या चाविपन्नया॥ १०॥

सत्यपराक्रमी श्रीराम जाबालि की बातों को सुनकर उसके विरोध में अपनी अविचल बुद्धि से विचारे हुए वैदिकधर्म में श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले परम सूक्ष्म शास्त्रीय वचन बोले—

भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्।
आकार्यं कार्यसङ्काशमपथ्यं पथ्यसम्मितम्॥ ११॥

आपने मुझे प्रसन्न करने के लिए जो बातें कही हैं वे कर्मरूप में परिणत करने के अयोग्य और पथ्य के रूप में अपथ्य हैं।

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः॥ १२॥

जो मनुष्य मर्यादारहित, पापचरण से युक्त और साधु-सम्मत शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करनेवाला है वह सज्जन पुरुषों में सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता।

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम्॥ १३॥

यह कुलीन है या अकुलीन, वीर है अथवा भीरु, पवित्र है अथवा अपवित्र—इस बात का निर्णय चरित्र ही करता है।

अधर्मं धर्मवेषेण यदीमं लोकसङ्करम्।
अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम्॥ १४॥
कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः।
बहुमंस्यति मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम्॥ १५॥

लोगों में संकरता बढ़ानेवाले धर्म के वेश में आपके अधार्मिक उपदेश को यदि मैं मान लूँ तो मैं शुभकर्म को त्यागकर वेदविरुद्ध विधिहीन कर्म करने के पाप का भागी बन जाऊँगा, फिर कार्य-अकार्य को जाननेवाला कौन ज्ञानी पुरुष लोक को दूषित करनेवाला आचारहीन मुझको सम्मान की दृष्टि से देखेगा?

कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम्।
अनया वर्तमानो हि वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया॥ १६॥

यदि आपके आदेशानुसार मैं सत्यप्रतिज्ञा पालनहीन वृत्ति का आचरण करूँ तो फिर ऐसा कौन-सा आचरण रह जायेगा जिसके द्वारा मैं स्वर्ग को प्राप्त कर सकूँगा?

कामवृत्तस्त्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः॥ १७॥

यदि आपके उपदेशानुसार मैं स्वच्छन्दचारी हो गया तो सारा संसार भी मेरी देखा-देखी स्वेच्छाचारी हो जायेगा, क्योंकि राजा जैसा आचरण करता है प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है।

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः॥ १८॥

सत्य और दयालुता—यह राजाओं का परम्परागत सदाचार है, इसीलिए राज्य सत्यरूप ही कहलाता है। सत्य के आश्रय से ही यह सारा संसार टिका हुआ है।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परमं गच्छति क्षयम्॥ १९।

ऋषि और विद्वान् लोग सत्य को ही उत्कृष्ट मानते हैं, क्योंकि सत्यवादी पुरुष ही इस संसार मे अक्षय (परान्तकाल तक) मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः
धर्मः सत्यं परो लोके मूलं स्वर्गस्य चोच्यते॥ २०।

मिथ्यावादी पुरुष से लोग वैसे ही डरते हैं, जैसे सर्प से। संसार में सत्य ही सबसे प्रधान धर्म माना

गया है। स्वर्ग-प्राप्ति का मूल साधन भी सत्य ही है।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्यं पद्माश्रिता सदा।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥ २१॥

संसार में सत्य ही ईश्वर है। सत्य ही लक्ष्मी-धन-धान्य का निवास है। सत्य ही सुख शान्ति एवं ऐश्वर्य का मूल है। संसार में सत्य से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है।

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत्॥ २२॥

दान, यज्ञ, हवन, तपश्चर्या द्वारा प्राप्त सारे तप और वेद—ये सब सत्य के आश्रय पर ही ठहरे हुए हैं, अतः सभी को सत्यपरायण होना चाहिए।

नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः॥ २३॥

मैं राज्य पाने के लोभ से, मोह के कारण, अज्ञान से अथवा क्रोध के वशवर्ती हो—पिताजी की आज्ञापालनरूपी मर्यादा को नहीं तोड़ सकता, क्योंकि मैं स्वयं भी सत्यप्रतिज्ञ हूँ।

प्रत्यागात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम्।
भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्तदर्थमभिमन्यते॥ २४॥

मेरी सम्मति में प्रत्येक प्राणी के लिए सत्य पालनरूपी धर्म सब धर्मों की अपेक्षा प्रधान धर्म है। जिस जटावल्कल धारण रूपी धर्मभार को पूर्वकाल के सत्पुरुष उठा चुके हैं मैं भी उसका अभिनन्दन करता हूँ।

क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम्।
क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः॥ २५॥

आपके बतलाये हुए क्षात्रधर्म को जिसमें धर्म तो नाममात्र का है और अधर्म प्रचुर परिमाण में है, मैं त्याज्य, समझता हूँ, क्योंकि ऐसे अधर्मरूपी धर्म का सेवन तो नीच, निष्ठुर, लोभी और पापी लोग ही किया करते हैं।

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
स्वर्गस्थं चानुपश्यन्ति सत्यमेव भजेत् ततः॥ २६॥

राज्य, कीर्ति, यश और लक्ष्मी ही नहीं, अपितु स्वर्ग भी सत्यवादी पुरुष की ही याचना करते हैं और उसके पीछे दौड़े चले आते हैं, अतः मनुष्य को सदा सत्य ही बोलना चाहिए।

कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः॥ २७॥

जब मैं पिताजी के समक्ष वनवास की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तब उस प्रतिज्ञा को भङ्ग कर मैं भाई भरत की बात कैसे मान सकता हूँ?

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च
भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च
पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः॥ २८॥

हे जाबालि! सत्यभाषण, धर्म पालन, समय पर पराक्रम-प्रदर्शन, प्राणिमात्र पर दया, मधुर भाषण, ब्राह्मण, विद्वान् और अतिथियों का सत्कार—इन कर्मों को सज्जनों ने स्वर्ग=सुख-शान्ति का मार्ग बतलाया है।

धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेताः
तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके
भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः॥ २९॥

जो सदा धर्मानुष्ठान में तत्पर रहते हैं, जो सत्पुरुषों की संगति करनेवाले हैं, जो तेजस्वी हैं, जो दान देने में अग्रसर होते हैं, जो गुण-गरिमा से युक्त होते हैं, जो अहिंसक और पापरहित होते हैं—ऐसे मुनि लोग ही इस संसार में पूजनीय होते हैं।

इति ब्रुवन्तं वचनं सरोषं
रामं महात्मानमदीनसत्त्वम्।
उवाच तथ्यं पुनरास्तिकं च
सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः॥ ३०॥

जब दैन्यरहित श्रीराम ने क्रोध में भरकर जाबालि से ऐसे वचन कहे तब जाबालि विनययुक्त हो यथार्थ, सत्य-सम्मत और आस्तिक वचन बोले—

न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं
न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किञ्चन।
समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं
भवेय काले पुनरेव नास्तिकः॥ ३१॥

हे राम! मैं नास्तिकों जैसी बात नहीं कहता और न मैं स्वयं नास्तिक हूँ 'परलोक आदि कुछ नहीं है'—मेरे कहने का यह भी अभिप्राय नहीं है। मैं तो समय के प्रभाव में पड़कर अथवा समय की स्थिति को देखकर आस्तिक और नास्तिक बन जाता हूँ।

स चापि कालोऽयमुपागतः शनैः
यथा मया नास्तिकवागुदीरिता।
निवर्तनार्थं तव राम कारणात्
प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम्॥ ३२॥

हे राम! यह समय ऐसा ही था कि आपको वापस लौटाने के लिए मुझे नास्तिक जैसे वचन कहने पड़े और अब आपको प्रसन्न करने के लिए आस्तिकपन की बात कह रहा हूँ।

➤ अष्टसप्ततितमः सर्गः ➤ (७८)

भरत का प्रायोपवेश और राम का आदेश—

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम्॥ १॥

श्रीराम को क्रुद्ध जानकर महर्षि वसिष्ठ ने कहा—हे राम! जाबालि भी प्राणियों के आवागमन को मानते हैं।

निवर्तयितुकामस्तु त्वामेतद्वाक्यमब्रवीत्।
तद् गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जगन्नृप॥ २॥

आपको लौटाने के लिए ही इन्होंने इस प्रकार की बातें कही हैं, अतः हे नृप! आप इस राज्य को ग्रहण करें और संसार का पालन करें।

पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवस्त्रयः।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव॥ ३॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! इस संसार में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य के तीन गुरु होते हैं—पिता, माता और आचार्य।

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते॥ ४॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! माता-पिता तो पुरुष को उत्पन्न करते हैं, शरीर को जन्म देते हैं और आचार्य बुद्धि प्रदान करता है, इसीलिए आचार्य को गुरु कहते हैं।

सोऽहं ते पितुराचार्यस्तव चैव परन्तप।
मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम्॥ ५॥

हे परन्तप! मैं तुम्हारा और तुम्हारे पिता—दोनों का आचार्य हूँ। मेरे वचनों का पालन करते हुए तुम सज्जनों के मार्ग से कभी गिर नहीं सकते।

इमा हि ते परिषदः श्रेणयश्च द्विजातयः।
एषु तात चरन् धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम्॥ ६॥

हे तात! देखो! ये तुम्हारे बन्धु-बान्धव हैं, ये सभा के सभासद हैं और ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं, इनकी प्रार्थना पर राज्य स्वीकार करने से तुम सज्जनों के मार्ग से पतित नहीं होओगे।

वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम्।
अस्यास्तु वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम्॥ ७॥

वृद्धा एवं धर्मशीला अपनी माता की बात की अवज्ञा मत करो। माता की आज्ञानुसार आचरण करने पर तुम्हें कोई भी निन्दित नहीं समझेगा।

भरतस्य वचः कुर्वन्याचमानस्य राघव।
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम॥ ८॥

हे सत्यव्रतधारी पराक्रमी राम! देखो! भरत आपसे याचना कर रहा है। इसकी बात माने लेने से आपके आत्मगौरव में कोई कमी नहीं आयेगी।

एवं मधुरमुक्तस्तु गुरुणा राघवः स्वयम्।
प्रत्युवाच समासीनं वसिष्ठं पुरुषर्षभः॥ ९॥

जब गुरु वसिष्ठजी ने मधुर शब्दों में इस प्रकार कहा तब नरश्रेष्ठ श्रीराम ने अपने समीप विराजमान गुरुदेव को उत्तर दिया।

यथाशक्तिप्रदानेन स्नापनोच्छादनेन च।
नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च॥ १०॥
यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा।
न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम्॥ ११॥

यथाशक्ति भोजन आदि देने, स्नान और शयन आदि का प्रबन्ध करने, मधुर भाषण और सम्यक् लालन-पालन के द्वारा माता-पिता अपने पुत्र पर जो उपकार करते हैं उसका प्रतिकार सन्तान किसी भी प्रकार नहीं कर सकती।

स हि राजा जनयिता पिता दशरथो मम।
आज्ञातं यन्मया तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति॥ १२॥

महाराज दशरथ मुझे जन्म देनेवाले, मेरे पूज्य पिता थे। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं हो सकती।

एवमुक्तस्तु रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम्।
उवाच परमोदारः सूतं परमदुर्मनाः॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर परम-उदार भरतजी उदास होकर पास ही बैठे सुमन्त्र से बोले—

इह मे स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन् मे न प्रसीदति॥ १४॥

हे सारथे। तुम इस चबूतरे पर शीघ्र कुश बिछा दो। मैं आर्य राम के प्रति तब तक सत्याग्रह[१] करूँगा जब तक वे मेरे ऊपर प्रसन्न नहीं हो जाते।

अनाहरो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः।
शेष्ये पुरस्ताच्छालायां यावन्न प्रतियास्यति॥ १५॥

जब तक श्रीराम मेरे साथ लौटकर अयोध्या नहीं चलेंगे तब तक मैं धनहीन ब्राह्मण[२] की भाँति भोजन त्याग कर और मुँह ढककर इस कुटी के द्वार पर पड़ा रहूँगा।

स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः।
कुशोत्तरमपुस्थाप्य भूमावेवास्तरत्स्वयम्॥ १६॥

जब सुमन्त्र श्रीराम के मुख की ओर (उनकी अनुमति के लिए) देखने लगे तब भरतजी उदास हो, स्वयं ही कुशा बिछाकर श्रीराम के सामने धरना देकर बैठ गये।

तमुवाच महातेजा रामो राजर्षिसत्तमः।
किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसि॥ १७॥

(भरत को इस प्रकार धरना देकर बैठे देख) राजर्षियों में श्रेष्ठ, महातेजस्वी श्रीराम ने भरत से कहा—हे भाई मैंने कौन-सा अकार्य किया है जो तुम मेरे विरुद्ध सत्याग्रह कर रहे हो।

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हसि।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने॥ १८॥

ब्राह्मण ही एक करवट से पड़ा हुआ धरना देकर लोगों को बुराई से रोक सकता है। मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रियों के लिए प्रायोपवेशन= सत्याग्रह का विधान नहीं है।

उत्तिष्ठ नरशार्दूल हित्वैतद्दारुणं व्रतम्।
पुरवर्यामितः क्षिप्रमयोध्यां याहि राघव॥ १९॥

हे नरकेसरी! तुम इस कठोर व्रत को छोड़कर खड़े हो जाओ। हे रघुकुलशिरोमणि भरत! तुम यहाँ से शीघ्र ही अपनी श्रेष्ठ नगरी अयोध्या को चले

---

१. प्रायः लोगों का विचार है कि सत्याग्रह मि० गाँधी का आविष्कार है, परन्तु उक्त श्लोक से इस धारणा का खण्डन हो जाता है। गाँधीजी से बहुत पूर्व भरतजी ने श्रीराम के विरुद्ध सत्याग्रह किया था।

२. धनहीन ब्राह्मण से महर्षि वाल्मीकि का तात्पर्य ऐसे ब्राह्मण से है जिसने ब्याज के लोभ से अपनी पूँजी किसी महाजन के पास रख दी हो और महाजन बेईमानी करके उसकी सम्पत्ति ही हड़प जाये। ऐसे धनहीन ब्राह्मण के लिए सत्याग्रह के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह जाता।

जाओ।

आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम्।
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ॥ २०॥

इस प्रकार धरना देकर बैठे हुए भरत अपने चारों ओर बैठे हुए पुरवासियों और जनपदवासियों की ओर देखकर बोले—आप सब लोग आर्य राम को क्यों नहीं समझाते?

ते तमूचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः॥ २३॥
एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति।
अत एव न शक्ताः स्मो व्यावर्तयितुमञ्जसा॥ २२॥

तब पुरवासी और जनपदवासी भरतजी से कहने लगे—हम लोग अच्छी प्रकार जानते हैं कि आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक कह रहे हैं, परन्तु क्या किया जाये, **ये महाभाग** श्रीराम अपने पिताजी के आदेश पर दृढ़ **हैं**। हम लोग इन्हें वापस लौटाने में अपने-आपको असमर्थ पाते हैं।

तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत्।
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम्॥ २३॥

उन सब लोगों के इन वचनों को सुनकर श्रीराम बोले—हे महाबाहो! अब उठो और क्षत्रियों के अयोग्य सत्याग्रह के कार्य का प्रायश्चित्त करने के लिए आचमन कर मुझे स्पर्श करो। (आगे विवाद न बढ़ाने का संकल्प लो।)

अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत्।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः श्रेणयस्तथा॥ २४॥

यह बात सुन भरतजी ने उठकर जल का स्पर्श किया और बोले—हे सभा के सभासदो! हे पुरजनो! हे क्षत्रिय और वैश्यो! मेरी बात सुनो—

न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम्।
आर्यं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम्॥ २५॥

न तो मैंने पिताजी से राज्य माँगा, न ही माताजी से इस प्रकार का कोई परामर्श किया था और न ही परम धर्मात्मा श्रीराम के वनवास के लिए सम्मति दी थी।

यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश समा वने॥ २६॥

यदि पिताजी की आज्ञानुसार वनवास करना आवश्यक ही है तो मैं श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में चौदह वर्ष तक वन में रहूँगा।

धर्मात्मा तस्य तथ्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः।
उवाच रामः सम्प्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम्॥ २७॥

धर्मात्मा राम भरतजी के इन सत्य वचनों को सुनकर अति विस्मित हुए, फिर पुरजनों और जनपदवासियों की ओर देखकर बोले—

विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा॥ २८॥

पिताजी ने अपने जीवन काल में कोई वस्तु बेच दी या मोल ले ली या धरोहर रख दी—उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना मेरे अथवा भाई भरत के अधिकार से बाहर है।

उपधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः।
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम्॥ २९॥

मैं वनवास की प्रतिज्ञापालन में किसी को अपना प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहता, क्योंकि किसी को प्रतिनिधि बनाना निन्दित कर्म है। कैकेयी ने जो कुछ कहा या माँगा वह ठीक ही कहा या माँगा और पिताजी ने जो कुछ किया उत्तम ही किया।

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम्।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि॥ ३०॥

मैं यह जानता हूँ कि भरत बड़े क्षमाशील और गुरुजनों का सत्कार करनेवाले हैं। सत्यव्रतधारी महात्मा भरत में सभी कल्याणकारी गुण विद्यमान हैं। (अतः इनके द्वारा राज्य-शासन होने से कोई हानि नहीं होगी।)

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः॥ ३१॥

(मैं यह वचन देता हूँ कि) वनवास से लौटने पर मैं अपने धर्मशील भाई के साथ राज्य शासन का

भार स्वीकार करूँगा।

वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं च महीपतिम्॥ ३२॥

हे भरत! माता कैकेयी ने पिताजी से जो वर माँगा था मैंने तदनुसार कार्य किया। तुम भी कैकेयी को दिये गये दूसरे वर के अनुसार राज्यग्रहण कर पिताजी को मिथ्याभाषण के दोष से मुक्त करो।

❮ नवसप्ततितमः सर्गः ❯ (७९)

पादुका-प्रदान—

विस्मिताः सङ्गमं प्रेक्ष्य समवेता महर्षयः।
तौ भ्रातरो महात्मानौ काकुत्स्थौ प्रशशंसिरे॥ १॥

वहाँ एकत्र हुए ऋषिगण दोनों भाइयों के उस समागम को देखकर बहुत विस्मित हुए और दोनों भाइयों की प्रशंसा करने लगे—

स धन्यो यस्य पुत्रौ द्वौ धर्मज्ञौ धर्मविक्रमौ।
श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे॥ २॥

ये दोनों सदाचारी और धर्मधुरीण जिन महाराज दशरथ के पुत्र हैं वे धन्य हैं। इन दोनों के सम्भाषण को सुनकर हम लोगों की यह इच्छा हो रही है कि हम इन दोनों के वार्तालाप को बारम्बार सुना करें।

ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं [1]दशग्रीववधैषिणः।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः सङ्गता वचः॥ ३॥

फिर रावण के वध के इच्छुक वे ऋषिगण एक स्वर में पुरुषसिंह भरत से बोले—

कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं पितरं यद्यवेक्षसे॥ ४॥

हे महाप्राज्ञ भरत! तुम महान् कुल में उत्पन्न हुए हो। महायशस्वी और शुभचरित्र से युक्त हो। यदि तुम अपने पिता को सत्यवादी और सुखी देखना चाहते हो तो जो कुछ राम कह रहे हैं उसी को स्वीकार करो।

सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः।
अनृणत्वाच्च कैकेय्याः स्वर्गं दशरथो गतः॥ ५॥

हम लोगों की यह हार्दिक इच्छा है कि श्रीराम पिताजी के ऋण से अनृण हों, क्योंकि कैकेयी के ऋण से मुक्त होकर ही महाराज दशरथ स्वर्गवासी हुए।

त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत्॥ ६॥

ऋषियों द्वारा राम के पक्ष का समर्थन सुनकर, ऋषियों की वाणी से प्रेम करनेवाले भरत का शरीर काँप गया, अतः वे हाथ जोड़कर बोले—

रक्षितुं सुमहद्राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे।
पौरजानपदांश्चापि रक्तान् रञ्जयितुं तथा॥ ७॥

हे राम! मैं अकेला न तो इस महान् राज्य की रक्षा और पालन करने का साहस कर सकता हूँ और न आपमें अनुराग रखनेवाले पुरवासियों और जनपदवासियों को प्रसन्न रख सकता हूँ।

ज्ञातयश्च योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः।
त्वामेव प्रतिकाङ्क्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः॥ ८॥

बन्धुवर्ग, सैनिक, इष्ट-मित्र और शुभ-चिन्तक—ये सबके-सब आपके राज्यशासन की उसी प्रकार

१. दशग्रीव का अर्थ यह नहीं है कि रावण के दस गर्दनें थीं। रावण के एक सिर, दो हाथ और दो पैर ही थे। रावण का एक नाम दशानन भी था। कवि लोग अपने काव्य में पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते ही हैं। सिंह का एक नाम पञ्चानन होता है, परन्तु वस्तुतः सिंह का मुख एक ही होता है, पाँच नहीं। ठीक यही बात रावण के सम्बन्ध में भी समझ लें।

प्रतीक्षा करते हैं जैसे कृषक जल बरसानेवाले मेघ की प्रतीक्षा करते हैं।

इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि।
शक्तिमानसि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने॥ ९॥

हे महाप्राज्ञ राम! आप इस विस्तृत राज्य को ग्रहण करो और जिसे चाहो उसे राज्यसिंहासन पर बैठा दो, क्योंकि हे रघुकुलशिरोमणि! आप सम्पूर्ण लोक की प्रजा का पालन करने में समर्थ हैं।

इत्युक्त्वा न्यपतद्भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा।
भृश सम्प्रार्थयामास राममेव प्रियंवदः॥ १०॥

यह कहकर भरतजी अपने भाई के चरणों में गिर पड़े तथा बार-बार प्रिय शब्दों में उनसे राज्य-ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगे।

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि॥ ११॥

चरणों में पड़े हुए भरत को अपनी गोद में बैठाकर श्रीराम बोले—मेरे वनवास के विरुद्ध और राज्यशासन स्वीकार कर किसी अन्य को राज्य सिंहासन पर नियुक्त करने की जो स्वाभाविक और विनम्र बुद्धि तुममें आई है इससे स्पष्ट है कि तुम सम्पूर्ण पृथिवी का शासन अच्छी प्रकार कर सकते हो।

अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्चमन्त्रिभिः।
सर्वकार्याणि सम्मन्त्र्य सुमहान्त्यपि कारय॥ १२॥

अब तुम राजभक्त प्रधान सचिव और बुद्धिमान् मन्त्रियों के साथ समस्त बड़े-बड़े कार्यों में परामर्श कर राज्य की सुव्यवस्था करो।

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥ १३॥

देखो! भले ही चन्द्रमा चन्द्रिका को छोड़ दे, हिमालय चाहे हिम को छोड़ दे और हो सकता है समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़कर सीमा को लाँघ जाये, परन्तु मैं पिताजी से की हुई अपनी प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता।

कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्॥ १४॥

हे तात! तुम्हारी माता ने चाहे तुम्हारे स्नेहवश अथवा लोभवश तुम्हें राज्य दिलाने का जो काम किया है, तुम माता की इस बात को मन में मत रखना और सदा उसके साथ माता के समान व्यवहार करना।

एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत्।
तेजसाऽऽदित्यसङ्काशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम्॥ १५॥

सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्रमा के समान प्रियदर्शी श्रीराम के ऐसा कहने पर भरतजी बोले—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥ १६॥

हे आर्य! स्वर्णभूषित इन पादुकाओं पर अपने चरण रखिए, क्योंकि अब ये चरणपादुकाएँ ही सारी प्रजा का योग-क्षेम करेंगी।

सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके ह्यवरुह्य च।
प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने॥ १७॥

महातेजस्वी नरकेसरी राम ने उन खड़ाओं पर आरूढ़ होकर और फिर उन्हें पैरों से उतार कर भरत को दे दिया।

स पादुके प्रतिग्राह्य रामं वचनमब्रवीत्।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन॥ १८॥

उन पादुकाओं को ग्रहण कर भरतजी ने श्रीराम से कहा—हे वीर रघुनन्दन! मैं भी चौदह वर्ष तक जटा-चीर धारण कर और कन्दमूल-फल खाकर अपना जीवन-निर्वाह करूँगा।

तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन्वै नगराद् बहिः।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप॥ १९॥

आपके आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ मैं नगर से बाहर बसूँगा। हे परन्तप! आपकी चरण पादुकाओं को राज्यसिंहासन पर रखकर में राज्यशासन का प्रबन्ध करूँगा।

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥ २०॥

हे रघुकुलश्रेष्ठ! यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण हो जाने पर पहले दिन ही मैंने अयोध्या में आपके दर्शन नहीं किये तो मैं अग्नि में कूदकर भस्म हो जाऊँगा।

तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्।
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य भरतं चेदमब्रवीत्॥ २१॥

''बहुत अच्छा'' ऐसा कहकर राम ने भरत और शत्रुघ्न को हृदय से लगाया, फिर भरत से बोले—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुसत्तम।
इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह॥ २२॥

देखो! माता कैकेयी की रक्षा करना, उन पर कभी क्रोध मत करना। हे रघुनन्दन! इसके लिए तुम्हें मेरी और सीता की शपथ है। यह कह और नेत्रों में आँसू भर श्रीराम ने दोनों भाइयों को विदा किया

❮ अशीतितमः सर्गः ❯ (८०)

भरत की वापसी और नन्दिग्राम में वास—

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नेन समन्वितः॥ १॥

भाई से विदा होकर भरत उन पादुकाओं को सिर पर रखकर प्रसन्न भाव से शत्रुघ्नसहित रथ पर सवार हुए।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः।
अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः॥ २॥

दृढव्रती वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि तथा अन्य माननीय मन्त्री भी आगे-आगे चले।

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान् प्रभुः।
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः॥ ३॥

रमणीय तथा गम्भीर घोष करनेवाले रथ के द्वारा यात्रा करते हुए महायशस्वी भरत ने शीघ्र ही अयोध्या नगरी में प्रवेश किया।

ततो निक्षिप्य मातॄः स अयोध्यायां दृढव्रतः।
भरतः शोकसन्तप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत्॥ ४॥

अयोध्या में पहुँच कर दृढ़व्रती भरत माताओं की अयोध्या में रहने की सम्यक् व्यवस्था कर, शोक से सन्तप्त होते हुए वसिष्ठ आदि गुरुओं से बोले—

नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽद्य वः।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना॥ ५॥

मैं नन्दीग्राम जाऊँगा। इसके लिए मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ। वहाँ रहकर जैसे-तैसे मैं राम के वियोग के इस दुःख को सहन करूँगा।

एतत् श्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः।
अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः॥ ६॥

महात्मा भरत के ऐसे शुभ वचन सुनकर पुरोहित वसिष्ठ और सारे मन्त्री बोले—

सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत्॥ ७॥

हे भरत! आपने भ्राता राम के स्नेहवश जो कुछ कहा वह अत्यन्त श्लाघनीय है। क्यों न हो, ये वचन आपके ही मुख से निकलने योग्य हैं।

नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे।
आर्यमार्गं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान्॥ ८॥

सर्वदा बन्धु-बान्धवों की रक्षा करनेवाले, भाई के प्रेम में मग्न रहनेवाले तथा निरन्तर सन्मार्ग पर चलनेवाले आप जैसे व्यक्ति के वचनों को कौन नहीं मानेगा?

मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम्।
अब्रवीत् सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति॥ ९॥

अपने अनुकूल मन्त्रियों के प्रिय वचनों को सुनकर भरतजी ने सारथि सुमन्त्र से कहा—मेरा रथ तैयार करो।

प्रहृष्टवदनः सर्वा मातृः समभिवाद्य सः।
आरुरोह रथं श्रीमाञ्शत्रुघ्नेन समन्वितः॥ १०॥

रथ आ जाने पर प्रसन्नमुख श्रीमान् भरत ने प्रणामपूर्वक सभी माताओं से आज्ञा ली और शत्रुघ्न को साथ लेकर रथ पर आरूढ़ हुए।

आरुह्य च रथं शीघ्रं शत्रुघ्नभरतावुभौ।
ययतुः परमप्रीतौ वृतौ मन्त्रिपुरोहितैः॥ ११॥

शीघ्रतापूर्वक रथ पर सवार हो और मन्त्री तथा पुरोहितों को साथ ले भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई परम प्रसन्न होते हुए वहाँ से चले।

अग्रतो गुरवस्तत्र वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः।
प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतोऽभवत्॥ १२॥

वसिष्ठ आदि पूज्य ब्राह्मण और गुरुओं को आगे कर, सभी लोग पूर्व दिशा की ओर, जिधर नन्दिग्राम था, चल पड़े।

ततस्तु भरतः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः।
अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरूनिदमुवाच ह॥ १३॥

शीघ्र ही नन्दिग्राम में प्रवेश कर और रथ से उतर कर भरतजी ने गुरुओं से कहा—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासवत् स्वयम्।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते॥ १४॥

यह सम्पूर्ण राज्य मेरे भाई राम ने मुझे न्यास=धरोहर के रूप में सौंपा है, अतः उनकी स्वर्णमण्डित ये चरणपादुकाएँ ही इस राज्य के योगक्षेम का प्रतिपादन करेंगी।

भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः।
अब्रवीद्दुःखसन्तप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्॥ १५॥

तदनन्तर श्रीराम द्वारा प्रदत्त न्यासरूप उन पादुकाओं को अपने सिर पर रखकर दुःख से सन्तप्त भरत सम्पूर्ण प्रजामण्डल से यह बोले—

भ्रात्रा हि मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम्।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति॥ १६॥

भ्राता राम ने प्रेमपूर्वक यह धरोहर मुझे सौंपी है, अतः उनके लौटकर आने तक मैं इस बहुमूल्य न्यास को सुरक्षित रखूँगा।

क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम्।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सहपादुकौ॥ १७॥

श्रीराम के अयोध्या लौटने पर मैं अपने हाथों से उनके चरणों में ये पादुका पहनाकर, पादुकासहित उनके चरणों के दर्शन करूँगा।

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवामि च॥ १८॥

न्यासरूपी श्रेष्ठ पादुकाओं को, इस सम्पूर्ण राज्य को और राजधानी अयोध्या को श्रीराम को अर्पित कर, माता के द्वारा लगाये गये अपयशरूपी महान् कलङ्क को मैं धो डालूँगा।

एवं तु विलपन्दीनो भरतः स महायशाः।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं दुःखितो मन्त्रिभिः सह॥ १९॥

महायशस्वी भरत इस प्रकार विलाप कर और दीन-दुःखी हो, नन्दिग्राम में रहकर मन्त्रियों की सहायता से राज्य करने लगे।

स वल्कलजटाधारी मुनिवेशधरः प्रभुः।
नन्दिग्रामेऽवसद्वीरः ससैन्यो भरतस्तदा॥ २०॥

वीर भरत वल्कल-वस्त्र और जटा धारण कर मुनियों का-सा वेष बनाकर समस्त सेना-सहित नन्दिग्राम में रहने लगे।

➤ एकाशीतितमः सर्गः ➤ (८१)

राक्षसों द्वारा प्रदत्त कष्टों का वर्णन—

प्रतिप्रयाते भरते वसन् रामस्तपोवने।
लक्षयामास सोद्वेगमथौत्सुक्यं तपस्विनाम्॥ १॥

भरत के अयोध्या लौट जाने पर वन में रहते हुए श्रीराम ने ऋषियों में आतङ्क, घबराहट और स्थानान्तरित होने की भावना अनुभव की।

नयनैर्भ्रकुटीभिश्च रामं निर्दिश्य शङ्किताः।
अन्योऽन्यमुपजल्पन्तः शनैश्चक्रुर्मिथः कथाः॥ २॥

वे लोग आँखों और भृकुटियों के संकेतों से श्रीराम को लक्ष्य करके, सन्देहयुक्त हो धीरे धीरे कुछ गुप्त परामर्श किया करते थे।

तेषामौत्सुक्यमालक्ष्य रामस्त्वात्मनि शङ्कितः।
कृताञ्जलिरुवाचेदमृषिं कुलपतिं ततः॥ ३॥

उनकी उस घबराहट और उत्सुकता को देखकर, अपने विषय में शंकित होकर श्रीराम ने हाथ जोड़कर तापसकुल अध्यक्ष से कहा—

न कश्चिद्भगवन् किञ्चत्पूर्ववृत्तमिदं मयि।
दृश्यते विकृतं येन विक्रियन्ते तपस्विनः॥ ४॥

भगवन्! क्या पूर्वकालीन मेरे आचरण में किसी प्रकार की त्रुटि आप लोगों को दिखाई दी है जिससे तपस्वी लोगों के मन में मेरे प्रति विकार उत्पन्न हो गया है।

अथर्षिर्जरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः।
वेपमान इवोवाच रामं भूतदयापरम्॥ ५॥

राम के ऐसा कहने पर वह वृद्ध ऋषि जिसका शरीर तप के कारण जीर्ण हो गया था, काँपते हुए-से, सब प्राणियों पर दया करनेवाले श्रीराम से बोले—

त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे।
तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान्॥ ६॥

हे तात! जब से तुम इस आश्रम में आकर रहने लगे हो तभी से राक्षस लोग तपस्वियों को और भी अधिक सताने लगे हैं।

दर्शयन्ति हि बीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि।
नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैर्विकृतदर्शनैः॥ ७॥

वे लोग अनेक प्रकार के जुगुप्सित, भयंकर, क्रूर और नाना प्रकार के विकट, विलक्षण और विकराल रूप बनाकर ऋषियों को डराया करते हैं।

अवक्षिपन्ति स्रुग्भाण्डानग्नीन् सिञ्चन्ति वारिणा।
कलशांश्च प्रमृद् नन्ति हवने समुपस्थिते॥ ८॥

जब तपस्वी लोग यज्ञ करने बैठते हैं तब ये राक्षस स्रुवा और यज्ञपात्रों को फेंक देते हैं, अग्नि के ऊपर पानी डालकर उसे बुझा देते हैं तथा कलशों को तोड़-फोड़ डालते हैं।

तत्पुरा राम शारीरामुपहिंसां तपस्विषु।
दर्शयन्ति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम्॥ ९॥

हे राम! वे दुष्ट राक्षस शारीरिक कष्टों द्वारा ऋषियों की हिंसा करना चाहते हैं, अतः हम लोग इस आश्रम को छोड़ना चाहते हैं।

बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितो वनम्।
अश्वस्याश्रममेवाहं श्रयिष्ये सगणः पुनः॥ १०॥

यहाँ से थोड़ी दूर पर कन्द-मूल-फलों से युक्त महर्षि अश्व का एक विचित्र तपोवन है। अपने मुनि-समूह के साथ हम वहीं आश्रय लेंगे।

सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते।
समर्थस्यापि हि सतो वासो दुःखमिहाद्य ते॥ ११॥

हे राम! यदि तुम्हें ठीक जान पड़े तो तुम भी हमारे साथ वहीं चलो। यद्यपि तुम अपनी रक्षा करने में समर्थ हो, परन्तु यहाँ रहना तुम्हारे लिए क्लेशदायी ही होगा।

इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम्।
न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवरोद्धुं समुत्सुकम्॥ १२॥

ऐसा वचन कहते हुए और जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक कुलपति को श्रीराम समझा-बुझाकर भी वह स्थान त्यागने से न रोक सके।

अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम्।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह॥ १३॥

वह कुलपति श्रीराम की प्रशंसा कर, उनको समझा-बुझा और उनसे आज्ञा माँग कर, सब तपस्वियों को साथ ले, उस आश्रम को छोड़ दूसरे आश्रम को चले गये।

➤ द्वयशीतितमः सर्गः ➤ (८२)

राम का चित्रकूट से प्रस्थान, सीता को अनसूया का उपदेश तथा सभी का दण्डकवन में प्रवेश—

राघवस्त्वथ यातेषु तपस्विसु विचिन्तयन्।
न तत्रारोचयद् वासं कारणैर्बहुभिस्तदा॥ १॥

ऋषियों के उस आश्रम से चले जाने पर श्रीराम ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् अनेक कारणों से वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः।
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान् नित्यमनुशोचतः॥ २॥

राम ने सोचा कि इसी स्थान पर भरत से, माताओं से तथा नगरवासियों से मेरी भेंट हुई थी। यहाँ रहने से मुझे बार-बार उनकी स्मृति आती है और वह मुझे शोकाकुल किया करती है।

स्कन्धावारनिवेशेन तेन तस्य महात्मनः।
हयहस्तिकरीषैश्च उपमर्दः कृतो भृशम्॥ ३॥

विशेषकर महात्मा भरत की सेना के हाथी-घोड़ों के मल-मूत्र करने और उनके द्वारा वनस्पतियों के उपमर्दन हो जाने से यह स्थान रहने योग्य नहीं रहा है।

तस्मादन्यत्र गच्छाम इति सञ्चिन्त्य राघवः।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च सङ्गतः॥ ४॥

इस आश्रम को छोड़कर दूसरे स्थान पर चलना ही ठीक है। ऐसा विचार कर राम ने लक्ष्मण और सीता को साथ ले वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत॥ ५॥

महायशस्वी श्रीराम ने वहाँ से प्रस्थान कर महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया। महर्षि अत्रि ने भी उन्हें पुत्रभाव से देखा।

स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम्।
सौमित्रिं च महाभागां सीतां च समसान्त्वयत्॥ ६॥

महर्षि अत्रि ने स्वयं उन सबका आतिथ्य किया, फिर लक्ष्मण और महाभागा सीता के प्रति स्नेहदृष्टि प्रदर्शित कर उन्हें सान्त्वना दी।

अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम्।
प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः॥ ७॥

तदनन्तर ऋषिश्रेष्ठ अत्रि ने सौभाग्यशालिनी, तपस्विनी और धर्म में निरत अपनी पत्नी अनसूया से कहा—तुम सीताजी को अपने साथ ले जाकर इनका आदर-सत्कार करो।

अभिवाद्य च वैदेही तापसी तामनिन्दिताम्।
बद्धाञ्जलिपुटा हृष्टा पर्यपृच्छदनामयम्॥ ८॥

प्रसन्नवदना सीताजी ने पवित्र आचरणवाली उस तपस्विनी को प्रणामकर, हाथ जोड़ और प्रसन्न हो उनका कुशल-क्षेम पूछा।

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम्।
सान्त्वयन्त्यब्रवीद्धृष्टा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे॥ ९॥

धर्मचारिणी और महाभाग्यवती सीताजी को प्रणाम करते देख उसे सान्त्वना देते हुए वृद्धा अनुसूया ने कहा—"हे सीते! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम पतिव्रत धर्म की ओर ध्यान देती हो।"

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानमृद्धिं च मानिनि।
अवरुद्धं वने रामे दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि॥ १०॥

हे मानिनि सीते! तुम्हारे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम अपने सभी बन्धुओं को, उभय कुल के राज्याभिमान और धन-सम्पत्ति को त्यागकर वनवासी राम की अनुगामिनी हुई हो।

नगरस्थो वनस्थो वा पापो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥ ११॥

पति चाहे वन में रहे अथवा नगर में, सुख-सम्पन्न हो या दुःख-ग्रस्त—सब दिशाओं में जिन स्त्रियों को अपना पति ही सर्वप्रिय है, उन्हीं स्त्रियों को कल्याणकारी तथा श्रेष्ठलोकों की प्राप्ति होती है।

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥ १२॥

पति चाहे कठोर स्वभाव का हो अथवा कामी हो या दरिद्र हो, किन्तु श्रेष्ठ स्वभाववाली स्त्रियों के लिए पति ही परम देवता है।

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया।
प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ १३॥

जब सती-साध्वी अनसूया ने इस प्रकार कहा तब सीताजी उनके कथन का अनुमोदन कर धीरे से कहने लगी—

नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे।
विदितं तु मयाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः॥ १४॥

हे आर्ये! आपका मुझे इस प्रकार का उपदेश देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं भी यह जानती हूँ कि स्त्री के लिए पति ही उसका गुरु होता है।

यद्यप्येष भवेद्भर्ता ममार्ये वृत्तवर्जितः।
अद्वैधमुपचर्तव्यस्तथाप्येष मया भवेत्॥ १५॥

हे आर्ये! यदि मेरे पति चरित्र से हीन और दरिद्र भी होते तब भी मैं इनके साथ प्रीतिपूर्वक बर्ताव करते हुए इनकी सेवा करती।

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः॥ १६॥

फिर मेरे पति तो श्लाघनीय गुणों से युक्त, दयालु, जितेन्द्रिय, स्थिर प्रेम करनेवाले, धर्मज्ञ और मुझसे माता-पिता की भाँति अत्यन्त प्रेम करनेवाले हैं। उनका तो कहना ही क्या है।

आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम्।
समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये तद्धृतं महत्॥ १७॥

इस भयानक निर्जन वन में आते समय मेरी सास कौसल्या ने मुझे जो उपदेश दिया था वह मेरे हृदय-पटल पर अङ्कित है, मैं उसे भूली नहीं हूँ।

पाणिप्रदान काले च यत्पुरा त्वग्निसन्निधौ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम्॥ १८॥

मेरे विवाह के समय, यज्ञाग्नि के समक्ष, मेरी माता ने मुझे जो उपदेश दिया था, वह भी मुझे स्मरण है।

नवीकृतं च तत्सर्वं वाक्यैस्ते धर्मचारिणि।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते॥ १९॥

"पति सेवा को छोड़कर स्त्री के लिए दूसरी कोई तपस्या नहीं है"—इत्यादि उपदेश जो मुझे मिले थे, हे धर्मचारिणी! उनको आज आपने पुनः नवीन कर दिया है।

ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः।
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत॥ २०॥

सीताजी की बातों को सुनकर अनसूया अत्यन्त प्रसन्न हुई। उन्होंने सीता का मस्तक सूँघा और उसे हर्षित करते हुए बोलीं—

नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे।
तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिस्मिते॥ २१॥

हे सीते! मैंने अनेक प्रकार के व्रत एवं नियमों का अनुष्ठान कर जो सिद्धि प्राप्त की है वह महान् है। हे शुचिस्मिते! उसी सिद्धि के बल पर मैं तूझे वर देना चाहती हूँ। तू वर माँग।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया।
कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम्॥ २२॥

पतिव्रत धर्म को जाननेवाली सीता अनसूया देवी का यह वचन सुनकर आश्चर्यचकित हो गई, फिर मन्द हास्य करती हुई तपःपरायण अनसूया से सीताजी ने कहा—आपके अनुग्रह से ही मेरी सब कामनाएँ पूर्ण हो गईं।

सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराऽभवत्।
सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम्॥ २३॥

जनकनन्दिनी सीता के ऐसा कहने पर धर्मचारिणी अनसूया और भी अधिक प्रसन्न हुई और बोली—हे सीते! तुम्हें देखकर मुझे जो हर्ष हुआ है उसके अनुरूप मैं तुम्हें कुछ अवश्य देना चाहती हूँ।

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हं चानुलेपनम्॥ २४॥

हे विदेह राजकुमारी! यह दिव्य और श्रेष्ठ माला, वस्त्र आभूषण, अङ्गराग उबटन और दिव्य चन्दन तुम्हें देती हूँ। इनसे तुम्हारे अङ्ग सुशोभित होंगे।

सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा।
मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम्॥ २५॥

सीताजी ने अनसूया द्वारा प्रदत्त वस्त्र, अङ्गराग, आभूषण तथा माला आदि सभी दिव्य वस्तुओं को श्रेष्ठ प्रतिदान=प्रेमोपहार के रूप में प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा।
प्रणम्य शिरसा तस्यै रामं त्वभिमुखा ययौ॥ २६॥

उन दिव्य वस्त्रों और अलंकारों को धारण कर सीताजी देवकन्या के समान प्रतीत होने लगी। इस प्रकार समलंकृत हो अनसूया के चरणों में प्रणाम कर सीता श्रीराम के पास चली गई।

ततस्तां शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननः।
अर्चितस्तापसैः सिद्धैरुवास रघुनन्दनः॥ २७॥

तपस्वियों और सिद्धों द्वारा सत्कृत होकर और अनसूया द्वारा प्रदत्त वस्त्राभरणों से सुभूषित चन्द्रमुखी सीता के प्रति प्रसन्न भाव प्रकट करते हुए उन्होंने वह रात्रि वहीं रहकर बिताई।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान्।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान्॥ २८॥

रात्रि व्यतीत होने पर दोनों नरकेसरियों ने स्नान और सन्ध्योपासन आदि कर्मों और हवन आदि से निवृत्त हो उन ऋषियों से आगे जाने की आज्ञा माँगी।

तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः।
वनस्य तस्य सञ्चारं राक्षसैः समभिप्लुतम्॥ २९॥

धर्मशील वनवासी तपस्वियों ने श्रीराम से कहा—हे राघव! आगे वन का मार्ग राक्षसों से आक्रान्त है।

उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं धर्मचारिणम्।
अदन्त्यस्मिन् महारण्ये तान् निवारय राघव॥ ३०॥

वे राक्षस इस महारण्य में जिस किसी ब्रह्मचारी को अकेला या असावधान पाते हैं उसी को मारकर खा जाते हैं, अतः हे राघव! आप इन दुष्टों को मारें।

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने।
अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम्॥ ३१॥

हे राम! वन से फल-मूल आदि लाने का महर्षियों का यह मार्ग है। आपको भी इस मार्ग से इस दुर्गम वन में जाना चाहिए।

इतीव तैः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्
द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परन्तपः।
वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः
सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम्॥ ३२॥

जब तपस्वियों ने हाथ जोड़ और स्वस्तिवाचन=मङ्गल-कामना कर उपर्युक्त वचन कहे तब शत्रु-संतापी श्रीराम ने अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ उस महावन में उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे सूर्य मेघ-मण्डल में प्रवेश करता है।

॥ इति अयोध्याकाण्डम्॥

—o—

अयोध्याकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	८२
श्लोक-संख्या	१७९७
टिप्पणियाँ	६३

अरण्यकाण्डम्

❮ प्रथमः सर्गः ❯ (१)

दण्डकारण्य में महर्षियों द्वारा राम का सत्कार—

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्।
ददर्श रामौ दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम्॥ १ ॥

दुर्जेय एवं जितेन्द्रिय श्रीराम ने दण्डक नामक महावन में प्रवेश कर तपस्वियों के आश्रम-समूहों को देखा।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसङ्घैः समावृतम्॥ २ ॥

ये आश्रम प्राणिमात्र के लिए आश्रय-स्थल थे। इनके आङ्गन सदा स्वच्छ रहते थे। ये आश्रम मृगों से भरपूर और पक्षिसमूहों से व्याप्त थे।

समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम्।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्युतम्॥ ३ ॥

इन आश्रमों में यज्ञ के लिए समिधाएँ, जल से भरे कलश और कन्दमूल-फल रखे थे। वे आश्रम उत्तम एवं स्वादिष्ट फलवाले जंगली महावृक्षों से व्याप्त थे।

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्।
पुष्पैर्वन्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया॥ ४ ॥

इन आश्रमों में नित्य बलिवैश्वदेवयज्ञ और पवित्र वेदध्वनि हुआ करती थी। यत्र-तत्र बिखरे हुए वन्य-पुष्पों से और कमलपुष्पों से युक्त सरोवरों से ये आश्रम सुशोभित थे।

स दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम्।
अभ्यगच्छन् महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः॥ ५ ॥

तपस्वियों के आश्रममण्डल को देखकर महातेजस्वी श्रीराम ने अपने महाधनुष का चिल्ला उतार और उन आश्रमों की ओर चले।

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः
अभ्यगच्छंस्तथा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम्॥ ६ ।

दिव्यज्ञान-सम्पन्न महर्षियों ने जब श्रीराम को आते हुए देखा तो वे भी प्रसन्न हो श्रीराम और यशस्विनी सीताजी की ओर चले।

अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रतम्।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन्॥ ७ ॥

प्राणिमात्र के हित में रत उन महाभाग ऋषियों ने अपूर्ण एवं महान् अतिथि श्रीराम को ले जाकर अपनी पर्णशाला में ठहराया।

ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः।
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः॥ ८ ॥

अग्नि के समान देदीप्यमान, महाभाग, धर्मचारी उन तपस्वियों ने श्रीराम का विधिपूर्वक सत्कार कर उन्हें हाथ-पैर धोने के लिए जल लाकर दिया।

मूलं पुष्पं फलं वन्यमाश्रमं महात्मनः।
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ततः प्राञ्जलयोऽब्रुवन्॥ ९ ॥

तत्पश्चात् वनवासी उन धर्मज्ञ महात्माओं ने कन्द-मूल, फल और फूल उनकी सेवा में अर्पण किये तथा हाथ जोड़कर बोले—

धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यस्त्वं महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः॥ १० ॥

हे राम! आप वर्णाश्रम धर्म के पालक, शरणागतवत्सल और महायशस्वी हैं। आप पूजनीय हैं, मान्य हैं, गुरु हैं और दण्डधारी राजा हैं।

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥ ११॥

हम लोग आपके राज्य में बसनेवाली आपकी प्रजा हैं, अतः आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए। आप चाहे नगर में रहें अथवा वन में हमारे राजा तो आप ही हैं।

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
रक्षितव्यास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनः॥ १२॥

हे राजन्! हम लोगों ने दण्ड देना छोड़ रखा है, क्रोध को त्यागकर इन्द्रियों को जीता हुआ है। तप ही हमारा एकमात्र धन है। जैसे माता गर्भ की रक्षा करती है उसी प्रकार आपको गर्भ के समान अपनी प्रजा की सदा रक्षा करनी चाहए।

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुण्यैर्वन्यैश्च राघवम्।
अन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन्॥ १३॥

यह कहकर उन तपस्वियों ने वन में उत्पन्न होनेवाले फल फूल मूल एवं अन्य विविध प्रकार के आहारों से लक्ष्मणसहित श्रीराम का आदर सत्कार किया।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

विराध का सामुख्य—

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति।
आमन्त्र्य स मुनीन् सर्वान् वनमेवान्वगाहत॥ १॥

मुनियों का आतिथ्य स्वीकार कर श्रीराम ने (रात्रि में वहीं निवास किया।) अगले दिन सूर्योदय होने पर वे आश्रम के सभी मुनियों से आज्ञा लेकर गहन वन में प्रविष्ट हुए।

वनमध्ये तु काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरषादं महास्वनम्॥ २॥

हिंसक पशुओं से परिपूर्ण उस घोर वन के मध्य में पहुँचकर श्रीराम ने विशालकाय, नरमांसभक्षी और महाशब्द करनेवाले एक राक्षस को देखा।

स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वाथ मैथिलीम्।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः॥ ३॥

वह राक्षस राम, लक्ष्मण और सीता को देख क्रुद्ध होकर प्रलयंकारी काल के समान उन पर टूट पड़ा।

स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम्।
अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य ततोऽब्रवीत्॥ ४॥

वह महाभयंकर राक्षस गर्जन करके पृथिवी को कँपाता हुआ सीता को गोद में उठा कुछ दूर जाकर कहने लगा—

युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिधारिणौ॥ ५॥
कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ॥ ६॥

तुम जटा-चीरधारी हो, परन्तु स्त्री को साथ लिए हो—तुम अपने आपको कुछ ही देर का मेहमान समझो। जटा-चीरधारी होकर भी हाथ में धनुष-बाण लेकर चलनेवाले तुम दोनों ने इस दण्डक वन में कैसे प्रवेश किया है। तपस्वियों के वेश में होकर भी तुम स्त्री के साथ क्यों वास करते हो? अधर्माचरण करनेवाले तथा मुनिसमाज को दूषित करनेवाले पापी तुम दोनों कौन हो?

अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन्॥ ७॥

मैं विराध नामक राक्षस हूँ। मैं इस वन में शस्त्र लिए मुनियों का मांस खाता हुआ नित्य घूमा करता हूँ।

इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे॥ ८॥

यह सुन्दरी नारी अब मेरी भार्या होगी। संग्राम में तुम दोनों महापापियों का वध कर मैं तुम्हारा रक्तपान

करूँगा।

तस्यैवं ब्रुवतो धृष्टं विराधस्य दुरात्मनः।
श्रुत्वा सगर्वं वचनं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा॥ ९॥

उस दुरात्मा विराध के धृष्टतापूर्ण और अहंकारयुक्त वचनों को सुनकर सीताजी घबरा गयीं।

तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता॥ १०॥

उधर श्रीराम सती-साध्वी सीता को विराध की गोदी में देख उदास होकर लक्ष्मणजी से बोले—

पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसम्भवाम्।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम्॥ ११॥

हे सौम्य! देखो, महाराज जनक की पुत्री, शुभाचरणवाली मेरी पत्नी को विराध ने किस प्रकार अपनी बगल में दबोच रखा है।

परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्वियोगात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा॥ १२॥

हे लक्ष्मण! सीता के राक्षस द्वारा स्पर्श होने से आज मुझे जितना दुःख हुआ है इतना दुःख मुझे पिता की मृत्यु और राज्य के छिन जाने से भी नहीं हुआ था।

इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुते।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन्॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी की आँखों में आँसू भर आये, फिर रोके हुए फनियर साँप की भाँति क्रोध में भरकर फुंकार मारते हुए लक्ष्मणजी ने कहा—

अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे॥ १४॥

हे राम! इन्द्र के समान सब प्राणियों के स्वामी होकर और मेरे जैसे सेवक के साथ रहते हुए आप अनाथों की भाँति सन्तप्त क्यों हो रहे हैं?

शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम्॥ १५॥

क्रोध में भरकर, मेरे द्वारा बाण से मारे जाने पर, प्राणहीन इस विराध राक्षस का रक्त पृथिवी पान करेगी।

◀ तृतीयः सर्गः ▶ (३)

विराध-वध—

इत्युक्त्वा लक्ष्मणः श्रीमान्राक्षसं प्रहसन्निव।
को भवान्वनमभ्येत्य चरिष्यति यथासुखम्॥ १॥

ऐसा कहकर श्रीमान् लक्ष्मण ने मुस्कराते हुए उस राक्षस से पूछा—तुम कौन हो जो इस प्रकार स्वेच्छाचारी होकर इस वन में घूमा करते हो?

पुत्रः किल जयस्याहं मम माता शतह्रदा।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः॥ २॥

मैं जय का पुत्र हूँ और मेरी माता का नाम शतह्रदा है। इस पृथिवी के सब राक्षस मुझे विराध के नाम से पुकारते हैं।

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे॥ ३॥

तुम मेरे साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करने की इच्छा को त्याग दो और इस स्त्री को यहीं छोड़कर जिधर से आये हो उधर ही भाग जाओ। मैं तुम लोगों के प्राण नहीं लूँगा।

तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।
राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम्॥ ४॥

विराध के ये वचन सुन श्रीराम क्रोध में भर लाल-लाल आँखें कर उस पापी और भयङ्कर आकारवाले विराध से बोले—

क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम्।
रणे सम्प्राप्स्ये तिष्ठ न मे जीवन् गमिष्यसि॥ ५॥

हे अधम! क्षुद्रबुद्धि! तुझे धिक्कार है। तू निश्चय ही अपनी मृत्यु की खोज में है। तू तनिक खड़ा रह।

मुझसे युद्ध कर। तू आज जीता नहीं बचेगा।

ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान्।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह॥ ६॥

यह कह धनुष पर डोरी चढ़ाकर श्रीराम ने उस राक्षस को लक्ष्य बनाकर उस पर तीखे बाणों का प्रहार किया।

स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम्॥ ७॥

बाणों से विद्ध हुआ विराध सीता को वहीं छोड़ क्रोध में भरकर, त्रिशूल हाथ में ले श्रीराम और लक्ष्मण की ओर झपटा।

तच्छूलं वज्रसङ्काशं गगने ज्वलनोपमम्।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः॥ ८॥

तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम ने आकाशस्थ विद्युत् के समान चमकनेवाले तथा वज्र के समान दृढ़ उस शूल को दो बाणों से काट दिया।

तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पोपमौ शुभौ।
तूर्णमापततस्तस्य तदा प्रहरतां बलात्॥ ९॥

जब उसका त्रिशूल कट गया तब राम और लक्ष्मण काले सर्प के समान अपनी-अपनी तलवारों को लेकर शीघ्र ही उस राक्षस के पास पहुँचे और उस पर बलपूर्वक प्रहार किया।

स वध्यमानः सुभृशं बाहुभ्यां परिरभ्य तौ।
प्रप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत॥ १०॥

जब वह राक्षस तलवारों के आघात से अत्यन्त पीड़ित हुआ तब वह युद्ध से विचलित न होनेवाले नरकेसरी राम-लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में भरकर, आगे बढ़ा।

ह्रियमाणौ तु तौ दृष्ट्वा वैदेही रामलक्ष्मणौ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुभुजा भुजौ॥ ११॥

जब विराध राम और लक्ष्मण को हर कर ले चला तब सीताजी अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओं को उठाकर उच्च स्वर से रो रोकर कहने लगी—

एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः।
रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः॥ १२॥

हाय! यह विकराल राक्षस महाराज दशरथ के सत्यवादी, सदाचारी एवं सीधे-साधे पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण को हर करके ले जा रहा है।

मां वृका भक्षयिष्यन्ति शार्दूला द्वीपिनस्तथा।
मां हरोत्सृज्य काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम॥ १३॥

अब मुझे भेड़िए, शेर, चीते खा जायेंगे। हे राक्षसोत्तम! मैं तुझे नमस्ते[१] करती हूँ। तू इन राजकुमारों को छोड़ दे और इनके बदले मुझे हर ले।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः॥ १४॥

सीता के ऐसे वचन सुन दोनों वीर भाई श्रीराम और लक्ष्मण, उस दुरात्मा राक्षस को मौत के घाट उतारने के लिए शीघ्रता करने लगे।

तस्य रौद्रस्य सौमित्रिर्बाहुं सव्यं बभञ्ज ह।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य राक्षसः॥ १५॥

उस भयंकर राक्षस की बायीं भुजा को लक्ष्मण ने और दायीं भुजा को श्रीराम ने वेगपूर्वक तोड़ दिया।

स भग्नबाहुः संविग्नो निपपाताशु राक्षसः।
धरण्यां मेघसङ्काशो वज्रभिन्न इवाचलः॥ १६॥

जब उस राक्षस की दोनों भुजाएँ टूट गईं तब मेघ के समान भयङ्कर वह राक्षस भयभीत हुआ मूर्च्छित होकर इस प्रकार भूमि पर गिर पड़ा जैसे वज्र के आघात से पर्वत टूटकर गिरता है।

मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम्।
उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः॥ १७॥

---

१. कुछ लोग 'नमस्ते' का नाम सुनकर चौंकते हैं, परन्तु अभिवादन के लिए इससे श्रेष्ठ और कोई शब्द हो ही नहीं सकता। वेदों में, उपनिषदों में, रामायण और महाभारत में यहाँ तक कि पुराणों में भी 'नमस्ते' का ही विधान है। यहाँ सीताजी राक्षस को 'नमस्ते' कह रही है। पौराणिकों को इससे शिक्षा ग्रहण कर इसको अपनाना चाहिए।

उस समय वे दोनों भाई उस राक्षस को घूँसों से मारते, पैरों से ठुकराते और उठा-उठाकर भूमि पर पटकते हुए उसका कचूमर निकाल डालते थे।

स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः।
निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः॥ १८॥

यद्यपि वह राक्षस बाणों से विद्ध था, तलवार के वारों से क्षत विक्षत था, उसे बार बार उठाकर भूमि पर पटका गया तथा तथापि वह मरा नहीं।

तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम्।
भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥ १९॥

पर्वत के समान सर्वथा अचल एवं अवध्य उस राक्षस को देखकर भय के समय अभय देनेवाले श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा--

तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते।
शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे॥ २०॥

हे पुरुषसिंह! तपश्चर्या के कारण यह राक्षस शस्त्रों से नहीं मारा जा सकता, अतः आओ, इसे भूमि में गाड़ दें।

कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण।
वनेऽस्मिन् सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रकर्मणः॥ २१॥

हे लक्ष्मण! भयंकर कर्म करनेवाले, हाथी के समान विशालकाय इस राक्षस को गाड़ने के लिए तुम इस वन में एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदो।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान्॥ २२॥

लक्ष्मणजी को गड्ढा खोदने की आज्ञा दे पराक्रमी श्रीराम अपने पैरों से इस विराध का गला दबाकर खड़े हो गये।

ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम्।
अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य दुरात्मनः॥ २३॥

तब लक्ष्मणजी ने कुदाल लेकर उस विराध के पास ही एक लम्बा-चौड़ा गड्ढा खोदा।

तं मुक्तकण्ठं निष्पिष्य शङ्कुकर्णं महास्वनम्।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम्॥ २४॥

तत्पश्चात् गर्दभ के समान विशाल कर्णवाले और भयंकर शब्द करनेवाले उस राक्षस के दबाये हुए गले को छोड़कर श्रीराम ने उसे गड्ढे में फेंक दिया।

❮ चतुर्थः सर्गः ❯ (४)

शरभङ्ग का ब्रह्मलोक-प्रस्थान—

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्॥ १॥
अब्रवील्लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम्।
कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः॥ २॥

उस वन में महापराक्रमी राम ने उस भयंकर और महाबली विराध राक्षस का वध कर सीता का आलिंगन कर और उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए, अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा—यह वन बड़ा दुर्गम और कष्टप्रद है। हम लोगों ने ऐसा विकट वन इससे पूर्व कभी नहीं देखा था।

अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम्।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह॥ ३॥

अतः आओ, अब हम शीघ्र ही शरभङ्ग के आश्रम को चलें। ऐसा कहकर श्रीराम शरभङ्ग के आश्रम की ओर चले।

अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत्।
तस्य पादौ च संगृह्य राघवो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

जिस समय राम शरभङ्ग के आश्रम में पहुँचे उस समय मुनिवर अग्निहोत्र कर रहे थे। श्रीराम ने उनके चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया और बोले—

आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने।
राघवेणैवमुक्तस्तु शरभङ्गोऽब्रवीद्वचः॥ ५॥

मैं इस वन में रहना चाहता हूँ। आप मुझे यहाँ रहने के लिए कोई स्थान बताइए। श्रीराम के ऐसा कहने पर शरभङ्ग बोले—

इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः।
वसत्यरण्ये धर्मात्मा स ते श्रेयो विधास्यति॥ ६॥

हे राम! इस वन में महातेजस्वी और धर्मात्मा सुतीक्ष्ण नामक एक ऋषि रहते हैं। वे आपके कल्याणार्थ आपके स्थानादि का सब प्रबन्ध कर देंगे।

इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्त्रोतामनुव्रज।
नदीं पुष्पोडुपवहां तत्र तत्र गमिष्यसि॥ ७॥

हे राम! आप इस मन्दाकिनी नदी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर जाइए। इस नदी में अनेक बड़े-बड़े फूल छोटी-छोटी नौकाओं की भाँति दिखाई देते हैं। उन्हें देखते हुए तुम सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँच जाओगे।

एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम्।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः॥ ८॥

हे नरकेसरी! यह मार्ग वहाँ जाने का है, परन्तु थोड़ी देर ठहर जाइए और मुझे देखिए, जब तक मैं इस जीर्ण शरीर को साँप की केंचुली की भाँति छोड़ न दूँ।

ततोऽग्निं सुसमाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत्।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम्॥ ९॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी शरभङ्ग ने अग्नि प्रज्ज्वलित करके मन्त्रपूर्वक घृत के द्वारा विशाल यज्ञ किया, फिर वे उस जलती हुई अग्नि में कूद पड़े।

तस्य रोमाणि केशांश्च ददाहाग्निर्महात्मनः।
जीर्णां त्वचं तथास्थीनि यच्च मांसं सशोणितम्।
रामस्तु विस्मितो भ्रात्रा भार्यया च सहात्मवान्॥ १०॥

उस समय अग्नि ने उन महात्म शरभङ्ग के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डियाँ और रुधिरसहित माँस को भस्म कर डाला। भाई लक्ष्मण और सीतासहित श्रीराम इसे देखकर बहुत विस्मित हुए।

विशेष—ऋषि लोग अपने तप के द्वारा मृत्युञ्जय बन जाया करते थे। जब वे समझते थे कि हमारे शरीर जीर्ण हो गये हैं तब वे इच्छानुसार अपना शरीर त्याग दिया करते थे।

यह परम्परा पर्याप्त समय तक चलती रही। जब सिकन्दर भारत पर आक्रमण करने के लिए चला तो उसके गुरु ने कहा था कि भारतवर्ष से कोई योगी लाना। बहुत प्रयत्न के पश्चात् एक भारतीय योगी उसके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। एक दिन प्रातःकाल उस योगी ने सिकन्दर को आदेश दिया कि चिता तैयार कराओ मैं अभी अपने शरीर को समाप्त करना चाहता हूँ। सिकन्दर ने ऐसा न करने के लिए बहुत अनुनय-विनय की परन्तु योगी ने कहा कि मेरी अवस्था अस्सी वर्ष की है। मुझे आज तक कभी ज्वर नहीं आया। आज मुझे ज्वर हो गया है, अतः मेरा शरीर अपवित्र हो गया है। मैं इसे समाप्त करना चाहता हूँ और उसने अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने शरीर को भस्म कर दिया।

महर्षि दयानन्द भी मृत्युञ्जय थे। मौत उनके पास आती थी, परन्ते वे उसे ठोकर मारकर भगा देते थे। दीपावली के दिन उन्होंने अपनी इच्छा से ही देह-त्याग किया था।

❮ पञ्चमः सर्गः ❯ (५)

राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा—

शरभङ्गे दिवं याते मुनिसङ्घाः समागताः।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्॥ १॥

महर्षि शरभङ्ग के दिवंगत हो जाने पर दण्डकारण्यवासी तपस्विगण एकत्र होकर होकर अग्नि के समान देदीप्यमान श्रीराम के पास आये।

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम्।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समाहिताः॥ २॥

धर्मात्मा ऋषियों का वह समूह धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम के पास आकर उनसे बोला—

त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः।
प्रधानश्चासि नाथश्च देवानां मघवानिव॥ ३॥

हे महारथी राम! जैसे देवताओं के राजा इन्द्र हैं उसी प्रकार आप इक्ष्वाकुवंश में प्रधान और पृथिवी के स्वामी हैं।

त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम्।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि॥ ४॥

आप जैसे महात्मा, धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल राजा को प्राप्त कर हम लोग याचक बनकर आपसे कुछ कहना चाहते हैं इसके लिए आप क्षमा करेंगे।

अधर्मस्तु महांस्तात भवेत्तस्य महीपतेः।
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत्॥ ५॥

हे तात! वह राजा महान् पाप का भागी होता है जो प्रजा से आय का छठा भाग कर के रूप में ले लेता है, परन्तु प्रजा का पुत्रवत् पालन नहीं करता।

युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान् सुतानिव।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान् विषयवासिनः॥ ६॥
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं च बहुवार्षिकीम्।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते॥ ७॥

जो राजा सदा यत्नवान् और सावधान रहकर अपने राज्य में रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजा को अपने पुत्र और प्राणों के समान तथा प्राणों से भी बढ़कर समझता हुआ रक्षा करता है, वह राजा इस संसार में बहुव्यापिनी स्थायी कीर्ति को प्राप्त करता है और अन्तकाल में ब्रह्मलोक को पाकर वहाँ भी पूजित होता है।

यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ ८॥

जो राजा धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करता है उसे कन्द-मूल-फल खाकर निर्वाह करनेवाले मुनियों के पुण्य का चौथा भाग प्राप्त होता है।

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्बाध्यते भृशम्॥ ९॥

हे राम! आप जैसे रक्षक के होते हुए भी यह ब्राह्मण-कुल वानप्रस्थियों का दल, अनाथों के समान राक्षसों के द्वारा मारा जा रहा है।

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥ १०॥

हे राम! आप इधर आइए और उन आत्मदर्शी तपस्वियों के मृत शरीरों को देखिए जिनको राक्षसों ने भालों की नोक से छेदकर और तलवारों से काटकर मार डाला है।

एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः॥ ११॥

इस घोर वन में भयंकर राक्षसों के द्वारा तपस्वियों पर जो घोर अत्याचार किये जा रहे हैं, अब वे कष्ट हमसे सहन नहीं होते।

ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः॥ १२॥

हे राम! आप शरणागतवत्सल हैं, अतः हम सब आपकी शरण में आये हैं। राक्षसों के द्वारा मारे जानेवाले हम लोगों की आप रक्षा करें।

एतत् श्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम्।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः॥ १३॥

ककुत्स्थकुलशिरोमणि धर्मात्मा राम उन तपस्वी मुनियों के ये वचन सुनकर उनसे बोले—

नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञप्योऽहं तपस्विनाम्।
केवलेनात्मकार्येण प्रवेशष्टव्यं वनं मया॥ १४॥

आप लोगों का मुझसे प्रार्थना करना उचित नहीं। मुझे तो आप आज्ञा दें, क्योंकि मैं तो आप लोगों का आज्ञाकारी हूँ। मुझे तो आप अपने कार्य के लिए ही वन में आया हुआ समझें।

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥ १५॥

मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों का युद्धक्षेत्र में वध

करना चाहता हूँ। हे तपोधन ऋषि लोगो! आप मेरे और मेरे भाई लक्ष्मण के पराक्रम को देखें।[१]

दत्वाऽभयं चापि तपोधनानां
धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन।
तपोधनैश्चापि सभाज्यवृत्तः
सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः॥ १६॥

धर्मधुरन्धर श्रीराम ने उन तपस्वियों को अभय प्रदान किया, तदनन्तर धैर्यशील वीर राम अपने भाई लक्ष्मण तथा उन महर्षियों के साथ सुतीक्ष्णजी के आश्रम की ओर चले।

◀ षष्ठः सर्गः ▶ (६)

सुतीक्ष्ण के आश्रम में—

स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम्॥ १॥

शरभङ्ग के आश्रम से बहुत दूर जाकर और मार्ग में अनेक गहरी नदियों को पार कर श्रीराम ने एकान्त स्थल में एक आश्रम देखा जो चारों ओर पुष्प-मालाओं से अलंकृत था।

तत्र सुतीक्ष्णमासीनं तपोवृद्धमभाषत।
रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः॥ २॥

आश्रम में तपोवृद्ध सुतीक्ष्ण को बैठे हुए देख श्रीराम ने कहा भगवन्! मेरा नाम राम है। मैं आपके दर्शन करने आया हूँ।

स निरीक्ष्य ततो वीरं रामं धर्मभृतां वरम्।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥ ३॥

धार्मिकश्रेष्ठ श्रीराम को देखकर महर्षि सुतीक्ष्ण ने दोनों भुजाओं से आलिंगन करके कहा—

स्वागतं खलु ते वीर राम धर्मभृतां वर।
आश्रमोऽयं त्वयाऽऽक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम्॥ ४॥

हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ वीर राम! आपका स्वागत है। आपने अपने आगमन से अनाथ के समान इस आश्रम को सनाथ कर दिया।

प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले॥ ५॥

हे महायशस्वी राम! आपके दर्शन की अभिलाषा से मैंने इस पार्थिव शरीर और पृथिवी को छोड़कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान नहीं किया।

अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिह।
तत् श्रुत्वा वचनं तस्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ६॥

हे राम! तुम इसी आश्रम में रहो, क्योंकि इस आश्रम में सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। उन महर्षि का ऐसा वचन सुनकर श्रीराम ने कहा—

एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये।
तमेवमुक्त्वा वरदं रामः सन्ध्यामुपागमत्॥ ७॥

मैं इस आश्रम में बहुत दिन तक रहना उचित नहीं समझता। उस ऋषि से इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीराम सन्ध्या करने चले गये।

ततः शुभं तापसभोज्यमन्नं
स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम्।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा
सन्ध्यानिवृत्तौ रजनीमवेक्ष्य॥ ८॥

जब श्रीराम सन्ध्योपासन कर चुके तब महात्मा सुतीक्ष्ण ने सीता सहित राम-लक्ष्मण को रात्रि में खाने योग्य पवित्र फल, मूल तथा अन्नादि सत्कारपूर्वक

---

१. गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रसंग का चित्रण यूँ किया है—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

स्वयं लाकर दिये।

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः।
परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत॥ ९॥

सुतीक्ष्ण द्वारा सत्कृत हो सीता और लक्ष्मणसहित श्रीराम ने वह रात्रि उसी आश्रम में व्यतीत की और प्रभात होते ही जागे।

उत्थाय तु यथाकालं राघवः सह सीतया।
उपास्पृशत्सुशीतेन जलेनोत्पलगन्धिना॥ १०॥

यथा समय सीतासहित बिस्तर से उठकर श्रीराम ने कमल गन्ध से युक्त शीतल जल से स्नान किया।

अथ तेऽग्निं सुरांश्चै वैदेही रामलक्ष्मणौ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने॥ ११॥

तदुपरान्त उस तपोवन में यथासमय विधिवत् श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने ईश्वरोपासना और अग्निहोत्र किया।

उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन्॥ १२॥

सूर्य को उदय होते हुए देखकर पुण्यात्मा राम और लक्ष्मण महर्षि सुतीक्ष्ण के पास जाकर नम्रतापूर्वक ये मधुर वचन बोले।

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः।
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते॥ १३॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः॥ १४॥

भगवन्! आप जैसे पूज्य व्यक्ति द्वारा सत्कृत होकर हम लोग सुखपूर्वक आपके आश्रम में रहे। जब तक सूर्य का ताप असह्य न हो तभी तक हम यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहते हैं [आप हमें आज्ञा दीजिए] ऐसा कहकर तीनों ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया।

तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः।
गाढमालिङ्ग्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत्॥ १५॥

मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण ने प्रणाम करते हुए राम लक्ष्मण को उठाकर उनका गाढ़ आलिंगन किया और स्नेहपूरित ये वचन कहे—

अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया॥ १६॥

हे राम! आप छाया के समान आपका अनुगमन करनेवाली सीता और लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक यात्रा करो।

◀ सप्तमः सर्गः ▶ (७)

सीता का धर्मोपदेश—

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम्।
हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्॥ १॥

महर्षि सुतीक्ष्ण से विदा हो जब श्रीराम आगे चले तब मार्ग में सीता ने अपने पति राम से ये युक्तियुक्त और स्नेहसिक्त वचन कहे—

अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।
निवृत्तेन तु शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह॥ २॥

हे राम! सूक्ष्म रीति से विचार करने पर आपको जान पड़ेगा कि (सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओं और राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा कर) आप अधर्म का संचय कर रहे हैं। आप जिस कामज व्यसन में प्रवृत्त हो रहे हैं उससे निवृत्त होने पर ही आप अधर्म के सञ्चयरूपी दोष से बच सकते हैं।

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत।
मिथ्यावाक्यं परमकं तस्माद् गुरुतरावुभौ।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता॥ ३॥

कामज व्यसन तीन प्रकार के माने गये हैं। उनमें मिथ्या भाषण करना भयङ्कर पाप है तथा शेष दो— पर-स्त्रीगमन और अकारण प्राणियों की हिंसा— उससे भी बढ़कर हैं।

मिथ्या वाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव।
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम्॥ ४॥

हे राघव! मिथ्या भाषण तो न कभी आपने किया और न कभी आगे करने की आशा है। धर्मनाशक पर स्त्री संसर्ग की तो चर्चा ही आपमें व्यर्थ है।

तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम्।
निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम्॥ ५॥
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥ ६॥

परन्तु तीसरा भयानक दोष, अर्थात् मोहवश निरपराध प्राणियों की हिंसा आपमें उपस्थित होने वाला है, क्योंकि हे वीर! आप दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षा के लिए संग्राम में राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम्।
प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः॥ ७॥

उसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आप धनुषबाण धारण करके लक्ष्मणसहित दण्डक नामक प्रसिद्ध वन में जा रहे हैं।

नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान् प्रति।
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये॥ ८॥

हे वीर! मुझे आपका दण्डक वन जाना अच्छा नहीं लगता। मैं आपको शिक्षा नहीं देती प्रत्युत स्नेह एवं सम्मान के कारण आपको स्मरण करा रही हूँ।

अपराधं विना हन्तुं लोकान् वीर न कामये।
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्॥ ९॥
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्।
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व
च क्षात्रं तपः क्व च॥ १०॥

हे वीर! बिना अपराध लोगों के वध को मैं उचित नहीं समझती। शान्त अन्तःकरणवाले वीर क्षत्रियों का वन में धनुष धारण से इतना ही प्रयोजन है कि वे दुःखी लोगों की रक्षा करें (निरपराध जीवों की हिंसा नहीं) कहाँ शस्त्र और कहाँ वन? कहाँ क्षात्रधर्म और कहाँ तपस्या—दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं।

तदार्य कलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षात्रधर्मं चरिष्यसि॥ ११॥

हे आर्य! शस्त्र धारण करने से बुद्धि मलिन हो जाती है। (अतः आप वन में शस्त्र द्वारा राक्षसों के वध का विचार त्याग दीजिए।) जब आप अयोध्या लौट जायें तब पुनः क्षात्रधर्म का पालन करना।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥ १२॥

धर्म से धन की प्राप्ति होती है, धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। अधिक क्या धर्म से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। संसार में धर्म ही सार है।

नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने।
सर्वं हि विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः॥ १३॥

हे सौम्य! आप जब तक तपोवन में हैं तब तक विशुद्ध मन से तपस्वियों जैसा धर्मानुष्ठान करें। आपको तीनों लोकों के धर्म का यथार्थ ज्ञान है ही। (मैं आपको क्या बता सकती हूँ।)

स्त्रीचापलादेतदुदाहृतं मे
धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन
यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण॥ १४॥

मैंने स्त्रीस्वभाव सुलभ चपलतावश ये सब बातें आपसे कही हैं। भला आपको धर्मोपदेश कौन दे सकता है? आप अपने भाई लक्ष्मण के साथ इन बातों पर विचार करें, फिर जो उचित प्रतीत हो वही अविलम्ब कीजिए।

◀ अष्टमः सर्गः ▶ (८)

श्रीराम द्वारा राक्षस-वध का समर्थन—

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ मैथिलीम्॥ १॥

पति-प्रेमवश सीताजी द्वारा कही बातों को सुन धर्म में स्थित श्रीराम ने जनकनन्दिनी सीताजी से कहा—

हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे॥ २॥

हे धर्म को जाननेवाली जनककुमारी देवी सीते! तुमने स्नेहपूर्वक अपने उच्च कुलोत्पन्न होने की सूचक जो हित की बातें कही हैं, वे तुम्हारे कहने योग्य ही हैं।

किन्तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति॥ ३॥

हे देवि! मैं क्या कहूँ? अभी तुम यह कह चुकी हो कि क्षत्रिय लोग धनुष-बाण इसलिए धारण करते हैं, जिससे किसी दुःखिया का आर्तनाद सुनाई न पड़े।

सर्वैरेतैः समागम्य वागियं समुदाहृता।
रक्ष नस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने॥ ४॥

वनवासी सभी तपस्वियों ने स्वयं मेरे पास आकर एक स्वर में यह कहा था—हे राम! अपने भाई लक्ष्मणसहित आप हम लोगों की रक्षा कीजिए, क्योंकि इस वन में आप ही हमारे रक्षक हैं।

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे॥ ५॥

हे जनकदुलारी! दण्डक वन में रहनेवाले ऋषियों की यह बात सुन मैंने सब प्रकार से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है।

संश्रुत्य न च शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा॥ ६॥

मैंने ऋषियों के समक्ष जो प्रतिज्ञा की है अपने जीते-जी मैं उसे अन्यथा नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य मुझे सदा प्रिय रहा है।

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥ ७॥

हे सीते! मैं अपने प्राण त्याग सकता हूँ लक्ष्मण-सहित तुम्हें छोड़ सकता हूँ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को, विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों के समक्ष की है—कभी नहीं छोड़ सकता।

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय तु किं पुनः॥ ८॥

हे वैदेही! ऋषियों के बिना कहे ही मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिए, फिर मैंने तो उनकी रक्षा की प्रतिज्ञा की है।

मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वयाऽनघे।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशिष्यते॥ ९॥

हे निष्पाप सीते! तुमने स्नेह एवं सौहार्द से जो भी बातें कही हैं उनसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। (तुम्हारे उपदेश में मेरे प्रति प्रेम झलकता है), क्योंकि अप्रिय मनुष्य को कोई भी उपदेश नहीं करता।

सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव चात्मनः।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥ १०॥

हे सीते! तुमने अपने तथा अपने वंश की मर्यादा के अनुकूल उचित ही कहा है। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। (अतः तुम्हें मुझे उपदेश देने का अधिकार है।)

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
सीतां प्रियां मैथिलीराजपुत्रीम्।
रामो धनुष्मान् सह लक्ष्मणेन
जगाम रम्याणि तपोवनानि॥ ११॥

जनकदुलारी प्रिया सीता से ऐसा कहकर महात्मा राम हाथ में धनुष लेकर लक्ष्मण के साथ उस रमणीय तपोवन में आगे चले गये।

ते गत्वा दूरमध्वानं ददर्शाश्रममण्डलम्।
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम्॥ १२॥

बहुत दूर जाने के पश्चात् उन्होंने एक आश्रममण्डल देखा जिसमें कुशा और चीर फैले हुए थे। उसमें ब्राह्मण निवास करते थे और वह अलौकिक शोभा से युक्त था।

प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः।
उवास मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महायशाः॥ १३॥

श्रीराम लक्ष्मण और सीतासहित उस आश्रम मण्डल में प्रविष्ट हुए। आश्रमवासी सभी मुनियों द्वारा सत्कृत होकर महायशस्वी श्रीराम ने वह रात्रि वहीं व्यतीत की।

उषित्वा तु सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः।
जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम्॥ १४॥

कुछ काल तक यहाँ सुखपूर्वक रहकर तथा मुनियों द्वारा सत्कृत होकर श्रीराम बारी-बारी से सब ऋषियों के आश्रमों में रहने लगे।

क्वचित्परिदशान् मासानेकं संवत्सरं क्वचित्।
एवं संवसतस्तस्य ययुः संवत्सरा दश॥ १५॥

कहीं वे दस मास निवास करते कहीं एक वर्ष। इस प्रकार सुखपूर्वक निवास करते हुए उनके दस वर्ष व्यतीत हो गये।

सुतीक्ष्णस्याश्रमं श्रीमान्पुनरेवाजगाम ह।
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमरिन्दमः॥ १६॥

तदनन्तर श्रीराम पुनः महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम में लौट आये और वहाँ भी उन्होंने कुछ समय तक निवास किया।

आश्रमस्थो काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत्।
कुत्राश्रमं पुण्यमृषिरगस्त्यस्य तपोधनः॥ १७॥

आश्रम में रहते हुए एक दिन रघुकुलभूषण श्रीराम ने महर्षि सुतीक्ष्ण से पूछा—तपोधन महर्षि अगस्त्य का आश्रम इस रमणीक वन में कहाँ है?

इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाच तं यत्रागस्त्यो महामुनिः॥ १८॥

मुनिवर सुतीक्ष्ण ने महात्मा राम का यह वचन सुन उन्हें वह स्थान बताया जहाँ महर्षि अगस्त्यजी रहते थे।

रामोऽथ मुनिमामन्त्र्य सह भ्रात्राऽभिवाद्य च।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सीतया सह॥ १९॥

महर्षि से आश्रम का पता पूछ उनसे विदा हो तथा लक्ष्मणसहित उन्हें प्रणाम कर श्रीराम लक्ष्मण और सीतासहित महर्षि अगस्त्य के आश्रम की ओर प्रस्थानित हुए।

पश्यन्वनानि रम्याणि पर्वतांश्चाभ्रसन्निभान्।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान्॥ २०॥
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम्।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत्॥ २१॥

महर्षि सुतीक्ष्ण द्वारा बताये हुए मार्ग को लक्ष्य करके श्रीराम मार्ग में अनेक रमणीक वनों, मेघ के तुल्य पर्वतों, नदियों और सरोवरों को देखते जाते थे। चलते-चलते हर्षित हो श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः।
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥ २२॥

जो अपने कर्मों से लोक में अगस्त्य[1] के नाम से विख्यात हैं उन शुद्धचित्त महर्षि अगस्त्य का आश्रम अब अधिक दूर नहीं है।

आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः।
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः॥ २३॥

परिश्रान्त यात्रियों की थकान को दूर करनेवाला यह महर्षि अगस्त्य का ही आश्रम जान पड़ता है। देखो अग्निहोत्र का धुआँ वन में छाया हुआ है। जहाँ-तहाँ वृक्षों की डालियों पर चीर वस्त्र सूखने के लिए डाले हुए हैं और पुष्पमालाएँ लटका कर आश्रम की सजावट की गई है।

---

१. अगस=दोषों को अस्त कर देनेवाला, लोगों की आधि-व्याधियों को दूर करनेवाला।

अस्मानभिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो॥ २४॥

हे समर्थ सौम्य लक्ष्मण! जब हम लोग उनके आश्रम में पहुँचेंगे तब वे हमारा अवश्य ही कल्याण करेंगे। अब मैं वनवास का शेष समय महर्षि अगस्त्य के आश्रम में ही बिताऊँगा।

आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सीतया सह॥ २५॥

हे लक्ष्मण! लो अब हम आश्रम में आ पहुँचे हैं। अब तुम आगे जाकर उन्हें सीता सहित मेरे आगमन की सूचना दो।

❮ नवमः सर्गः ❯ (९)

अगस्त्य से भेंट और पञ्चवटी को प्रस्थान—

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह॥ १॥

श्रीराम के अनुज भ्राता लक्ष्मण महर्षि अगस्त्य के आश्रम में प्रविष्ट होकर उनके एक शिष्य से मिलकर बोले—

रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भर्यया सह सीतया।
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः॥ २॥

श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता सहित महर्षि के दर्शन करने आये हैं। मैं श्रीराम के हित में संलग्न उनका छोटा भाई हूँ।

ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात्।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्॥ ३॥

हम पिता की आज्ञा से इस भयंकर वन में आये हैं। हम सभी लोग उनका दर्शन करने चाहते हैं। आप भगवान् अगस्त्य को हमारे आगमन की सूचना दीजिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः।
तथेत्युक्त्वाऽग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्॥ ४॥

लक्ष्मणजी कि बात सुनकर वह शिष्य ''बहुत अच्छा''—ऐसा कहकर महर्षि अगस्त्य से निवेदन करने के लिए अग्निशाला में प्रविष्ट हुआ।

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा॥ ५॥

उस शिष्य ने यज्ञशाला में प्रविष्ट होकर हाथ जोड़कर ज्ञानसम्पन्न मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से श्रीराम के आगमन का समाचार कहा।

ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम्।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्॥ ६॥

शिष्य के मुख से श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के आगमन का समाचार सुनकर अगस्त्यजी बोले—

दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः।
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति॥ ७॥

बड़े सौभाग्य की बात है कि बहुत दिनों के पश्चात् श्रीराम आज मुझसे मिलने आये हैं। मेरे मन में भी उनसे मिलने की बड़ी अभिलाषा थी।

गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
प्रवेश्यतां समीपं मे किं चासौ न प्रवेशितः॥ ८॥

अच्छा, तुम जाओ और सत्कारपूर्वक लक्ष्मण तथा सीता सहित राम को मेरे पास लिवा लाओ। तुम उन्हें पहले मेरे पास क्यों नहीं लिवा लाये?

ततो निष्क्रम्य स शीघ्रं गत्वाऽश्रमद्वारं तथा।
प्रवेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम्॥ ९॥

तब वह शिष्य शीघ्रता से बाहर निकला और द्वार पर जाकर यथाविधि उन सबका सत्कार कर उन्हें आश्रम में ले गया।

तत्र गत्वामहाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम्।
जग्राह परमप्रीतस्तस्य पादौ परन्तपः॥ १०॥

आश्रम में प्रविष्ट होकर महाबाहु श्रीराम ने सूर्य

के समान देदीप्यमान ऋषि के चरणों को छूकर उन्हें प्रणाम किया।

प्रतिजग्राह काकुत्स्थमर्चयित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च ह्यास्यतामिति चाब्रवीत्॥ ११॥

महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को अतिथि मानकर उनका स्वागत किया। उन्हें बैठने के लिए आसन और पैर धोने के लिए जल दिया, तदनन्तर उनकी कुशल-क्षेम पूछकर कहा कि बैठिए।

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्॥ १२॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य हाथ जोड़कर आसन पर बैठे हुए श्रीराम से बोले—

अपूजयित्वा काकुत्स्थ तपस्विनामुपागतम्।
भुङ्क्ते यः स परे लोके स्वानि मांसानि खादति॥ १३॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! जो मुनष्य आये हुए तपस्वियों एवं अतिथियों का सत्कार किये बिना, उन्हें भोजन खिलाये बिना स्वयं भोजन करता है वह परलोक में अपना मांस आप ही खाता है।

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः॥ १४॥

आप तो भूमण्डल के राजा, धर्मशील और महारथी हैं तथा विशिष्ट एवं प्रिय अतिथि के रूप में मेरे यहाँ आये हैं।

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्।
पूजयित्वा यथाकामं पुनरेवाब्रवीद्वचः॥ १५॥

ऐसा कहकर फल, मूल, पुष्प तथा अन्य पदार्थों के द्वारा अपनी इच्छानुसार राम का आतिथ्य कर अगस्त्यजी उनसे कहने लगे—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमरत्नविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥ १६॥

हे पुरुषसिंह! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, स्वर्ण और रत्नों से विभूषित यह दिव्य तथा विशाल वैष्णव नामक धनुष है।

अमोघः सूर्यसङ्काशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ॥ १७॥

यह सूर्य के समान देदीप्यमान और अमोघ (जो कभी खाली न जाये) बाण है, जो ब्रह्माजी ने मुझे दिया था और ये इन्द्र द्वारा प्रदत्त तरकश हैं जिनके बाण कभी समाप्त नहीं होते।

सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महारजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः॥ १८॥

इन तरकशों में अग्नि के समान ज्वाला वमन करनेवाले तीव्र बाण भरे हुए हैं। यह स्वर्ण से विभूषित तलवार है जिसका म्यान भी सोने का बना हुआ है।

तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्ग च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥ १९॥

हे सम्मान-योग्य राम! इस धनुष, तरकश बाण तथा तलवार को संग्राम में अपनी विजय के लिए ऐसे ही धारण करो जैसे इन्द्र ने वज्र को धारण किया था।

गृहीत्वा तांस्तदा रामः प्रत्युवाच महामुनिम्।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्ये मे परितुष्यति॥ २०॥

उन अस्त्र-शस्त्रों को ग्रहण कर श्रीराम ने महामुनि अगस्त्य से कहा—मैं अपने को धन्य एवं अनुगृहीत समझता हूँ कि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं।

प्रभो व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम्।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम्॥ २१॥

हे प्रभो! अब आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइए जहाँ जल का कष्ट न हो, जो हरे-भरे वृक्षों से युक्त हो, जहाँ आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।

ततोऽब्रवीन् मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य तद्वचः।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा धीरो धीरतरं वचः॥ २२॥

श्रीराम के वचनों को सुनकर धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी थोड़ी देर सोचकर यह सुनिश्चित वचन बोले—

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः।
देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः॥ २३॥

हे तात! यहाँ से दो योजन की दूरी पर अनेक प्रकार के फल-फूलों से युक्त, जलाशयों से परिपूर्ण और मृगों से सेवित पञ्चवटी नाम का प्रसिद्ध स्थान है।

तत्र गत्वाऽऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह।
रंस्यसे त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन्॥ २४॥

तुम लक्ष्मण सहित वहाँ जाओ और वहाँ आश्रम निर्मित कर अपने पिता के वचन का यथाविधि पालन करते हुए वहाँ सुखपूर्वक निवास करो।

अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम्॥ २५॥

महर्षि अगस्त्य के ऐसा कहने पर श्रीराम ने लक्ष्मण सहित उस सत्यवादी ऋषि का सत्कार कर उनसे आगे जाने के लिए विदा माँगी।

तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवादनौ।
तदाश्रमात्पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया॥ २६॥

अगस्त्यजी की अनुमति प्राप्त कर दोनों राजकुमारों ने ऋषि के चरणों में प्रणाम किया और सीता को साथ ले वे पञ्चवटी की ओर प्रस्थानित हुए।

➤ दशमः सर्गः ➤ (१०)

जटायु से भेंट और पञ्चवटी में निवास—

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्॥ १॥

पञ्चवटी की ओर जाते हुए राम ने मार्ग में भीषण पराक्रमवाले एवं विशालकाय गृध्रराज [गृध्रकूट के भूतपर्व राजा] जटायु[१] को देखा।

तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति॥ २॥

महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण वनवासी उस जटायु को देखकर उसे राक्षसों के पक्ष का समर्थन करनेवाला राक्षस ही समझ कर उससे पूछने लगे—तुम कौन हो?

स तौ मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥ ३॥

गृध्रराज जटायु ने अत्यन्त सौजन्य[२] के साथ मधुर शब्दों में श्रीराम को प्रसन्न करते हुए उत्तर दिया—हे

१. जटायु के सम्बन्ध में लोगों को बहुत भ्रान्ति है। लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि जटायु एक गीध था, परन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। जटायु अपने आपको "**वयस्यं पितृरात्मनः**" दशरथ का मित्र बताता है। इतना ही नहीं जटायु के लिए आदि कवि ने आर्य शब्द का भी प्रयोग किया है। जब रावण सीता को हर कर ले जा रहा था तब सीता जटायु को देखकर कहती है—"**जटायो पश्य मामार्य ह्रियमानमनाथवत्**"—हे आर्य जटायु! देखो यह राक्षस मुझे अनाथ की भाँति उठाकर ले जा रहा है। आर्य विशेषण से ही यह बात सिद्ध है कि जटायु पक्षी नहीं था।

प्रश्न हो सकता है कि रामायण में उन्हें कहीं-कहीं पक्षी कहा गया है इसका क्या कारण है? इस शंका का समाधान 'ताण्ड्य ब्राह्मण' से हो जाता है। वहाँ कहा है—

ये वै विद्वांसस्ते पक्षिणो येऽविद्वांसस्तेऽपक्षाः॥
—ता० ब्रा० १४।१।१३

जो विद्वान् होते हैं वे पक्षी और जो अविद्वान्=मूर्ख होते हैं वे पक्षरहित।

जटायु ने राजपाट अपने पुत्रों को सौंप दिया था और वे परमात्मा की प्राप्ति के लिए संलग्न होकर वानप्रस्थियों का-सा जीवन बिता रहे थे, अतः उन्हें पक्षी कहना उचित ही है। ज्ञान और कर्म उनके दो पक्ष थे जिनसे उड़कर वे परमात्म-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे।

वानप्रस्थियों की भाँति उन्होंने अपनी जटाएँ बढ़ाई हुई थीं, इसलिए वे जटायु थे।

२. क्या ये विशेषण आकाश में उड़नेवाले पक्षी की वाणी में घट सकते हैं? कभी नहीं।

वत्स! मुझे अपने पिता का मित्र जानो।

स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च॥ ४॥

श्रीराम ने उन्हें अपने पिता का मित्र जानकर उनका सत्कार किया, फिर उनसे उनका कुल और नाम पूछा।

रामस्य वचनं श्रुत्वा स्वकुलं जन्म चात्मनः।
आचचक्षे द्विजश्रेष्ठो[१] यथावत् परिपृच्छतः॥ ५॥

श्रीराम की बात सुनकर क्षत्रियश्रेष्ठ जटायु ने अपना कुल, जन्म और नाम आदि यथावत् बतलाया। [उसने कहा—]

जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिन्दम।
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि॥ ६॥

हे शत्रुसंहारक! मेरा नाम जटायु है और मैं श्येनी का पुत्र हूँ। यदि आप चाहेंगे तो वनवास में मैं आपकी सहायता करूँगा।

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥ ७॥

यह वन बड़ा दुर्गम है। इसमें अनेक सिंह, वन्य पशु और राक्षस रहते हैं। हे तात! जब तुम लक्ष्मणसहित आश्रम से कहीं दूर चले जाओगे तब मैं सीता की रक्षा किया करूँगा।

जटायुषं तं प्रतिपूज्य राघवो
सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो
रिपून् दिधक्षन् शलभानिवानलः॥ ८॥

जटायु का स्वागत कर और सीता की रक्षार्थ स्वपक्ष समर्थक, ज्ञानसम्पन्न उस जटायु को अपने साथ ही लेकर लक्ष्मणसहित श्रीराम जैसे अग्नि पतङ्गों को भस्म करती है उसी प्रकार राक्षसों को भस्म-सा करते हुए सुप्रसिद्ध पञ्चवटी की ओर चले।

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुतम्।
उवाच भ्रातरं रामः सौमित्रिं दीप्ततेजसम्॥ ९॥

सर्प और हिंसक वन जन्तुओं से परिपूर्ण उस पञ्चवटी में पहुँच कर श्रीराम ने अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा—

आगताः स्म यथोद्दिष्टममुं देशं महर्षिणा।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितपादपः॥ १०॥

हे सौम्य! हम महर्षि अगस्त्य के बताये स्थान पर पहुँच गये हैं। यही पञ्चवटी है, जहाँ पुष्पित वृक्षों से भरा हुआ वन दिखाई दे रहा है।

सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति सम्मतः॥ ११॥

आश्रम बनाने के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करने में तुम निपुण हो, अतः इस वन में दृष्टि फैलाकर देखो कि हम लोगों के आश्रम के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा?

रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः सन्निकृष्टजलाशयः॥ १२॥

हे लक्ष्मण! स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ सीताजी, तुम और मैं—सभी सुखपूर्वक रह सकें और जल भी समीप हो।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

श्रीराम का ऐसा वचन सुन लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर सीताजी के समक्ष श्रीराम से कहा—

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥ १४॥

---

१. इस श्लोक में जटायु को द्विजश्रेष्ठ कहा गया है। "यह आग्रह कि द्विज तो पक्षी को भी कहते हैं, अतः जटायु पक्षी ही था"—ठीक नहीं। लोक में गृध्र को तो निकृष्ट पक्षी माना गया है। वह मुर्दों का माँस खाता है, अतः द्विजश्रेष्ठ विशेषण जटायु को पक्षी नहीं, अपितु श्रेष्ठ क्षत्रिय सिद्ध कर रहा है। द्विज का अर्थ होता है ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। जटायु राजा था, अतः वे क्षत्रिय श्रेष्ठ थे।

हे राम! मैं तो आपका सार्वकालिक दास हूँ। आप स्वयं ही कोई चुनकर मुझे वहाँ आश्रम बनाने की आज्ञा दीजिए।

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महात्मनः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम्॥ १५॥

लक्ष्मणजी के वचन सुन श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचकर और खोजने के पश्चात् एक रमणीय स्थान चुना जहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्तौ गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ १६॥

आश्रम बनाने के लिए उपयुक्त स्थान पसन्द कर श्रीराम अपने हाथ से लक्ष्मण के दोनों हाथ पकड़कर बोले—

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं सौम्य यथावत्कर्तुमर्हसि॥ १७॥

हे सौम्य! यह स्थान समतल है और फूलवाले वृक्षों से परिपूर्ण तथा रमणीय है, अतः इस स्थान पर तुम सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से युक्त आश्रम का निर्माण करो।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः॥ १८॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर महाबली, शत्रुञ्जय लक्ष्मण ने बहुत शीघ्र ही वहाँ पर आश्रम का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संखातमृत्तिकाम्।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम्॥ १९॥

मिट्टी की दीवारें खड़ी करके और लम्बे-लम्बे बाँसों के खम्बे लगाकर श्रीलक्ष्मणजी ने वह विस्तृत एवं शोभायमान पर्णशाला बनाई।

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम्॥ २०॥

तदनन्तर श्रीलक्ष्मणजी ने उस कुटिया को पुष्पों से समलंकृत कर और कुटिया में सुख-शान्ति के सभी उपाय कर, उस नवनिर्मित पर्णशाला को श्रीराम को दिखाया।

स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयद् भृशम्॥ २१॥

सीतासहित, श्रीराम ने लक्ष्मण द्वारा निर्मित उस रमणीय पर्णशाला को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की।

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत्॥ २२॥

प्रसन्न होते हुए श्रीराम ने अपने भ्राता लक्ष्मण का विशाल भुजाओं से प्रेमपूर्वक गाढ़ालिंगन किया और यह बोले—

प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः॥ २३॥

हे लक्ष्मण! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने यह बहुत अच्छा कार्य किया है। इसका तुम्हें पुरस्कार भी मिलना चाहिए। उस पुरस्कार के बदले मैंने तुम्हें अपने हृदय से लगा लिया है।

एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः।
तस्मिन् देशे बहुफले न्यवसत्ससुखं वशी॥ २४॥

शान्तात्मा, लक्ष्मिवर्धन श्रीराम लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर उस बहुत फल-फूल युक्त प्रदेश में सुखपूर्वक निवास करने लगे।

◀ एकादशः सर्गः ▶ (११)

हेमन्त ऋतु वर्णन—

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः।
शरद्व्यपाये हेमन्तु ऋतुरिष्टः प्रवर्तते॥ १॥

महात्मा राम ने वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हुए शरद् ऋतु बिता दी। तत्पश्चात् सर्वजन-प्रिय हेमन्त ऋतु आरम्भ हुई।

स कदाचित् प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम्॥ २॥

एक दिन जब रात्रि व्यतीत होकर प्रातःकाल हुआ तब श्रीराम स्नान करने के लिए रमणीय गोदावरी नदी पर गये।

प्रह्वः कलशहस्तस्तं सीतया सह वीर्यवान्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता सौमित्रिरिदिमब्रवीत्॥ ३॥

पराक्रमी लक्ष्मण हाथ में कलश लेकर सीता के साथ श्रीराम के पीछे चलते हुए उनसे बोले—

अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः॥ ४॥

हे प्रियभाषी राम! सौभाग्य से आपका प्रिय हेमन्त ऋतु आ गया है। इस रमणीय ऋतु के आगमन से पके हुए अन्नादि से यह संवत्सर अलंकृत सा जान पड़ता है।

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यशालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः॥ ५॥

इस ऋतु में सर्दी के कारण लोगों के शरीर रूक्ष हो गये हैं। पृथिवी अन्न से हरी-भरी दीख पड़ती है, पानी छूने को जी नहीं चाहता और अग्नि से तापने को सभी का जी चाहता है।

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः।
कृताग्रयणकाः[१] काले सन्तो विगतकल्मषाः॥ ६॥

इस समय सज्जन लोग नवसस्येष्टि यज्ञ[२]पूर्वक देव=विद्वान्, पितृ=माता-पिता तथा सम्बन्धियों का नवान्न से सत्कार करके निष्पाप[३] हो गये हैं।

प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः।
विचरन्ति महीपाला यात्रास्था विजिगीषवः॥ ७॥

इस समय जनपद के सभी लोगों की कामनाएँ (वस्तुओं की प्रचुरता के कारण) पूर्ण हो जाती हैं। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में गोरस दूध दही भी अधिक होता है। विजय के इच्छुक राजा लोग भी इन्हीं दिनों में रण-यात्रा करते हैं।

मृदुसूर्याः सनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्॥ ८॥

इस ऋतु में सूर्य में पहले जैसे गर्मी नहीं रहती, अतः सूर्य की किरणें सहने योग्य हो जाती हैं। कुहरा पड़ने तथा शीतल वायु चलने से शीत प्रबल हो जाता है। वन में रहनेवाले लोग शीत के कारण इधर-उधर नहीं घूमते, अतः वन सूने-से जान पड़ते हैं।

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥ ९॥

चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य ने ले लिया है। (जैसे पहले लोग चन्द्रमा को प्रेम करते थे जैसे अब सूर्य से प्रेम करते है।) जैसे मुँह के श्वास के दर्पण धुँधला पड़ जाता है वैसे ही चन्द्रमा का प्रकाश भी मध्यम पड़ गया है। कुहरे के कारण सूर्यमण्डल भी धुँधला पड़ गया है।

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न तु शोभते॥ १०॥

कुहरे से मलिन होने के कारण चन्द्रमा की चाँदनी अब पूर्णिमा की रात्रि में भी नहीं छिटकती जैसे धूप से काली पड़ी सीताजी पहचानी तो जाती हैं, परन्तु शोभित नहीं होतीं उसी प्रकार चन्द्रमा का धुँधला-सा प्रकाश ही दीख पड़ता है।

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः॥ ११॥

---

१. नवीन अन्न ग्रहण करने से पूर्व जो हवि दी जाती है उसे आग्रयण कहते हैं।

२. इस प्रमाण से यह स्पष्ट एवं निश्चित है कि दीपावली पर्व का श्रीराम के राजगद्दी पर बैठने से कोई सम्बन्धी नहीं है। यह वैदिक पर्व है। रामायणकाल में भी दीपावली पर्व मनाया जाता था।

३. खेती आदि करने में अनेक जीवों की हिंसा होती है। यज्ञ करने से वायु के शुद्ध होने से अन्न-जल की शुद्धि होकर पुण्य प्राप्त होता है।

स्वभाव से शीतल पश्चिम का वायु इस समय हिमकणों से परिपूर्ण होने के कारण द्विगुण शीतल होकर चल रहा है।

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रः काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥ १२॥

हे पुरुषसिंह! इस समय आपके वियोगजनित दुःख से सन्तप्त तथा आपकी भक्ति में अनुरक्त धर्मात्मा भरत भी अयोध्या में तप कर रहे हैं।

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥ १३॥

तपस्वी भरत राज्य, मान और अनेक प्रकार के भोगों को त्याग कर फल-मूल खाकर इस शीतलकाल में पृथिवी पर सोते हैं।

अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं न्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥ १४॥

जिस भरत का अत्यन्त सुखमय वातावरण में पालन-पोषण हुआ है और जो स्वभाव से ही सुकुमार हैं वे भरत सर्दी में ठिठुरते हुए रात्रि के अन्तिम प्रहर में सरयू नदी में किस प्रकार स्नान करते होंगे?

जितः स्वर्गस्तव भ्राता भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते॥ १५॥

आपके भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है जो नगर में रहते हुए भी वे आपके समान तपस्वी का वेश धारण कर तपस्वियों के नियमों का पालन कर रहे हैं। (भाव यह है कि आपके वियोग में उन्होंने राज्य के स्वर्गीय भोगों को भी तिलाञ्जलि दे दी है।)

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः॥ १६॥

संसार में जो कहावत[१] प्रचलित है कि मनुष्य में पिता का स्वभाव नहीं आता, अपितु माता का स्वभाव आता है, भरतजी ने इस लौकिक उक्ति को झूठा करके दिखा दिया है।

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥ १७॥

परन्तु जिसके पति तो महाराज दशरथ हों, जिसके पुत्र चरित्र के धनी साधु-स्वभाव भरतजी हैं वह माता कैकेयी ऐसे क्रूर स्वभाववाली कैसे हो गई?

इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्ब्रुवति धार्मिके।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत्॥ १८॥

भ्रातृस्नेह के कारण जब धर्मात्मा लक्ष्मण ने इस प्रकार के वचन कहे तब कैकेयी की निन्दा को सहन न कर श्रीराम ने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥ १९॥

भाई लक्ष्मण! तुम्हें माता कैकेयी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। तुम तो इक्ष्वाकुनाथ भाई भरत की ही चर्चा करो।

निश्चिताऽपि हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशी क्रियते पुनः॥ २०॥

यद्यपि मैंने चौदह वर्ष तक वन में रहने का निश्चय किया हुआ है और मैं उसके लिए दृढ़ हूँ तथापि जब मुझे भरत के स्नेह का स्मरण आता है तब मैं व्याकुल हो जाता हूँ और मेरी बुद्धि बालकों जैसी हो जाती है।

कदा न्वहं समेष्यामि भरतेन महात्मना।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन॥ २१॥

हे रघुकुलशिरोमणि लक्ष्मण! पता नहीं वह समय कब आयेगा जब मैं भाई भरत और शत्रुघ्न से तुम्हारे साथ फिर मिलूँगा। (जब हम चारों भाई एकत्र होकर सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे वह स्वर्णिम समय कब आयेगा?)

---

१. हिन्दी भाषा में कहावत का स्वरूप यह है—

माँ पै पूत पिता पै घोड़ा।
बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा॥

इत्येवं विलपनंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थ सानुजः सह सीतया॥ २२॥

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए लक्ष्मण और सीतासहित श्रीराम गोदावरी नदी पर पहुँच गये, फिर तीनों ने गोदावरी नदी में स्नान किया।

◀ द्वादशः सर्गः ▶ (१२)

शूर्पनखा का आगमन—

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च।
तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुःस्वमाश्रमम्॥ १॥

स्नान करने के पश्चात् राम-लक्ष्मण और सीता उस गोदावरी नदी के तट से अपने आश्रम में लौट आये।

आश्रमं तमुपागम्य कृत्वा पौर्वाह्णिकम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः॥ २॥

आश्रम में आकर और सन्ध्या तथा अग्निहोत्रादि दैनिक कृत्यों को कर श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ नाना प्रकार की कथाएँ कहने लगे।

तथाऽऽसीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया॥ ३॥

जिस समय राम पर्णशाला में बैठे हुए लक्ष्मणजी से बातचीत कर रहे थे, उस समय एक राक्षसी=स्त्री-सुलभ शालीनता से हीन एक स्त्री, अकस्मात् वहाँ आ पहुँची।

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य राक्षसः।
भगिनी राममासाद्य राक्षसी काममोहिता॥ ४॥

उसका नाम शूर्पणखा[१] था और वह रावण की बहन थी। राम के पास पहुँच और उनके रूप-लावण्य को देखकर वह राक्षसी काम से मोहित होकर उन पर आसक्त हो गयी।

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी।
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा॥ ५॥
प्रतिरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वरा।
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी॥ ६॥
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना।
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी वाक्यमब्रवीत्॥ ७॥

श्रीराम सुन्दर मुखवाले थे तो वह राक्षसी दुर्मुखी थी, राम का पेट सुडौल था और वह बड़ी तौंदवाली थी। राम के नेत्र विशाल थे और उसकी आँखें भद्दी थीं, राम के केश काले, चिकने और सुन्दर थे तो उस राक्षसी के बाल ताम्रवर्ण और भद्दे थे। राम देखने में सुन्दर और प्रिय थे तो वह राक्षसी महाकुरूपा थी, राम का स्वर कोमल और मधुर था तो उस राक्षसी का स्वर महाकर्कश था, श्रीराम युवक थे तो वह महावृद्धा थी। राम मधुरभाषी थे और वह कटुभाषिणी थी। श्रीराम सदाचारी थे और वह अत्यधिक दुराचारिणी थी, राम प्रियदर्शी थे तो वह अप्रियदर्शिनी थी। ऐसी वह राक्षसी काम से आतुर होकर श्रीराम से बोली—

जटी तापसरूपेण सभार्यः शरचापधृत्।
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्॥ ८॥

जटाधारी, तपस्वियों के वेश में, धनुष-बाण धारण किये हुए, स्त्री सहित तुम राक्षसों से सेवित इस प्रदेश में क्यों आये हो?

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः।
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ९॥

राक्षसी शूर्पनखा के ऐसा कहने पर श्रीराम ने सरल स्वभाव से अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ

१. शूर्पनखा का अर्थ है—शूर्प=छाज और नख= नाखून। छाज जैसे लम्बे नाखूनवाली। जैसे आजकल लम्बे-लम्बे नाखून बढ़ाते हैं ऐसे ही उसने भी नाखून बढ़ाए हुए थे।

कर दिया।

आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥ १०॥

देवतुल्य पराक्रमी महाराज दशरथ नाम के एक राजा थे। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ और संसार में राम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

भ्राताऽयं लक्ष्मणो नाम यवीयान् मामनुव्रतः।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता॥ ११॥

मेरा आज्ञाकारी यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है और यह विदेह की पुत्री मेरी धर्मपत्नी है। यह सीता के नाम से विख्यात है।

नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः।
धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः॥ १२॥

अपने पिता सम्राट् दशरथ और माता की आज्ञा से प्रेरित होकर मैं तपरूपी धर्म-सिद्धि के लिए तथा पिताजी की आज्ञा पालन करने की आकांक्षा से इस वन में आया हूँ।

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कथ्यतां काऽसि कस्य वा।
इह वा किन्निमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः॥ १३॥

अब मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। तुम बतलाओ कि तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो अथवा किसकी लड़की हो, यहाँ तुम किस लिए आई हो— इन सभी बातों का ठीक-ठीक उत्तर दो।

साऽब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता।
श्रूयतां राम वक्ष्यामि तत्त्वार्थं वचनं मम॥ १४॥

श्रीराम के वचन सुन वह कामपीड़ित राक्षसी बोली—हे राम! सुनो, मैं अपना ठीक-ठीक परिचय आपको देती हूँ।

अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करः॥ १५॥

मेरा नाम शूर्पनखा है। मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी हूँ। सबको संत्रस्त करते हुए मैं इस वन में घूमा करती हूँ।

रावणो नाम मे भ्राता बलीयान् राक्षसेश्वरः।
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः॥ १६॥

राक्षसों का राजा, महापराक्रमी, अत्यन्त बलवान्, विश्रवा मुनि का पुत्र रावण मेरा भाई है। सम्भव है आपने उसका नाम सुना हो।

प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः।
विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः॥ १७॥

मेरे एक भाई का नाम कुम्भकरण है जो बहुत सोता है, परन्तु है बड़ा बलवान्। मेरे एक भाई का नाम विभीषण है, वह बड़ा धर्मात्मा है। उसका आचरण राक्षसों जैसा नहीं है।

प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ।
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वा पूर्वदर्शनात्॥ १८॥
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम्।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि॥ १९॥

संग्राम में प्रसिद्ध पराक्रमवाले खर और दूषण नाम के मेरे दो भाई और हैं। हे राम! तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही तुम पर आसक्त हो उन सबकी कुछ परवाह न कर तुम जैसे उत्तम पुरुष को अपना पति बनाने के लिए मैं यहाँ आई हूँ, अतः आप चिरकाल के लिए मेरे पति बनो। तुम सीता को लेकर क्या करोगे?

विकृता च विरूपा च न चेयं सदृशी तव।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्॥ २०॥

यह सीता विकराल और कुरूप है, अतः आपके योग्य नहीं है। सौन्दर्य की दृष्टि से मैं ही आपके अनुरूप हूँ। आप मुझे अपनी पत्नी ही समझें।

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
अनेन ते सह भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम्॥ २१॥

इस कुरूपा, कुलटा, विकटाकार और थलथल तौंदवाली मानुषी सीता को मैं तुम्हारे इस भाई के साथ खा जाऊँगी।

इत्येवमुक्तः काकुत्स्थ प्रहस्य मदिरेक्षणाम्।
इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः॥ २२॥

शूर्पनखा के ऐसा कहने पर वाक्यविशारद राम ने मदोन्मत्त आँखोंवाली राक्षसी से मुस्करा कर यह कहना आरम्भ किया---

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता॥ २३॥

हे देवि! मैं तो विवाहित हूँ और यह मेरी पत्नी मुझे प्रिय भी बहुत है। तुम्हारी जैसी स्त्री के लिए सौत का होना बड़ा दुःखदायी होगा।

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च[१] लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥ २४॥

यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण सुन्दर, चरित्रवान्, तेजस्वी और महापराक्रमी है और इस समय इसके पास स्त्री भी नहीं है।

अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति॥ २५॥

चिरकाल से इसे स्त्री-सुख प्राप्त नहीं हुआ है। यह अत्यन्त रूपवान् और तरुण भी है। तुम्हारे सौन्दर्य को देखते हुए यह तुम्हारे अनुकूल पति होगा।

एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम।
असपत्ना[२] वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा॥ २६॥

हे विशाल नेत्रोंवाली! तुम मेरे इस भाई को अपना पति बनाकर इसकी सेवा करो। हे वरारोहे! इसे अपना पति बनाने से तुम्हें सौत का दुःख भी नहीं होगा और तुम इसके साथ उसी प्रकार सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकोगी जिस प्रकार सूर्य की किरणें दीर्घकाल तक मेरु पर्वत के पास रहती हैं।

इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षी काममोहिता।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ २७॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर काम से पीड़ित वह राक्षसी तुरन्त राम को छोड़ लक्ष्मणजी के पास जाकर बोली—

अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि॥ २८॥

हे लक्ष्मण! सर्वसुन्दरी होने के कारण आपके सुन्दर रूप के योग्य मैं आपकी धर्मपत्नी बन सकती हूँ। मुझे अपनी पत्नी बनाकर तुम सुख-पूर्वक इस सम्पूर्ण दण्डक वन में विचरण कर सकोगे।

एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः।
ततः शूर्पणखां स्मित्वा[३] लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत्॥ २९॥

शूर्पनखा की यह बात सुनकर बोलनेवालों में चतुर श्रीलक्ष्मणजी ने मुस्करा कर उससे युक्ति युक्त वचन कहे—

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि॥ ३०॥

---

१. **अकृतदारः** शब्द का अर्थ अविवाहित करना ठीक नहीं है। **अकृतदारः** का अर्थ गोविन्दराज ने "असहकृतदारः" किया है। यही ठीक भी है। असहकृतदारः का अर्थ है जिसकी स्त्री साथ में नहीं है अथवा स्त्री से हीन।

२. यहाँ कुछ लोग श्रीराम के चरित्र पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि राम ने राक्षसी से झूठ क्यों बोला? श्रीराम सत्यवादी थे, परन्तु उस कुरूपा और विकराल राक्षसी के प्रणय-निवेदन पर श्रीराम को भी विनोद सूझा और उन्होंने कह दिया कि लक्ष्मण अकृतदारः है, इससे विवाह करने पर तुम्हें अभी सौत का दुःख नहीं होगा। विनोद श्रीराम के स्वभाव का एक अंग था। जिस समय वे अपनी सम्पत्ति का दान कर रहे थे उस समय त्रिजट नामक ब्राह्मण से भी उन्होंने मजाक किया था। यहाँ भी वे शूर्पनखा से विनोद ही कर रहे थे, परन्तु वह राम के विनोद को समझ नहीं सकी। यह बात इसी सर्ग के श्लोक ३९ से स्पष्ट है।

३. **स्मित्वा**=मुस्कराकर—इन शब्दों से स्पष्ट है कि लक्ष्मणजी भी शूर्पनखा से विनोद ही कर रहे थे। श्लोक ३२, ३३ से यह बात और भी पुष्ट होती है। २२वें श्लोक में राम ने भी **प्रहस्य**=मुस्कराकर ही कहा था। इन सभी सन्दर्भों से स्पष्ट है कि श्रीराम और लक्ष्मण उस राक्षसी के साथ विनोद कर रहे थे।

४. किसी भाषा के कवि ने इस घटना का चित्रण इस रूप में प्रस्तुत किया है कि जब शूर्पनखा राम को छोड़ लक्ष्मण

हे कमलकान्तिवाली! मुझ दास की स्त्री बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो, क्योंकि मैं तो अपने बड़े भाई का सेवक हूँ।

समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी॥ ३१॥

हे विशालनेत्रे! यदि तुम सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न मेरे बड़े भाई की छोटी या दूसरी पत्नी बनोगी तो तुम्हारी मन: कामनाएँ पूर्ण होंगी।

एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरम्।
भर्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति॥ ३२॥

जब तू इनसे विवाह कर लेगी तब ये इस कुरूपा, कुलटा, कराली, बड़े पेटवाली और वृद्धा स्त्री को त्याग कर तेरे ही अनुरागी हो जायेंगे।

इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी।
मन्यते तद्वचस्तथ्यं परिहासाविचक्षणा॥ ३३॥

जब लक्ष्मणजी ने ऐसा कहा तब उस तौंदल और भयंकर राक्षसी ने लक्ष्मणजी के उस उपहास के मर्म को न समझ उनकी बातों को सत्य ही मान लिया।

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परन्तपम्।
सीतया सह दुर्घर्षमब्रवीत्काममोहिता॥ ३४॥

कामासक्त वह शूर्पनखा पर्णशाला में सीता के साथ बैठे हुए शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले, दुर्घर्ष श्रीराम के पास जाकर बोली—

एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य मां न त्वं बहुमन्यसे॥ ३५॥

हे राम! इस कुरूपा, कुलटा, भयंकर, बड़े पेटवाली और वृद्धा स्त्री सीता के कारण तुम (मेरी जैसी सुन्दरी का) तनिक भी सम्मान नहीं करते हो।

अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।
त्वया सह चरिष्यामि नि:सपत्ना यथासुखम्॥ ३६॥

अच्छा देखो! मैं अभी तुम्हारे सामने इस मानुषी को खा डालती हूँ, फिर सौत रहित होकर मैं तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक इस वन में विहार करूँगी।

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा।
अभ्यधावत्संक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥ ३७॥

यह कहकर दहकते हुए अंगारे के समान नेत्रोंवाली शूर्पनखा महाक्रुद्ध होकर हिरनी के बच्चे जैसे नेत्रोंवाली सीता पर उसी प्रकार झपटी जिस प्रकार उल्का रोहिणी नक्षत्र पर झपटता है।

तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबल:।
निगृह्य राम: कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ३८॥

मृत्युपाश के समान सीता पर झपटती हुई उस राक्षसी को क्रोध में भर हुङ्कार से रोकते हुए श्रीराम लक्ष्मणजी से बोले—

क्रूरैरनार्यै: सौमित्रे परिहास: कथञ्चन।
न कार्य: पश्य वैदेहीं कथञ्चित्सौम्य जीवतीम्॥ ३९॥

हे लक्ष्मण! ऐसे असभ्य क्रूर और अनार्य लोगों के साथ परिहास कभी नहीं करना चाहिए। हे सौम्य! शूर्पनखा की इस क्रूरता को देख सीता के जीवन की रक्षा का उपाय सोचो।

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि॥ ४०॥

हे नरकेसरी! रूपरहित, कुलटा, अत्यन्त मतवाली और बड़े पेटवाली इस राक्षसी का अङ्ग-भङ्ग करके तुम इसे और भी कुरूप बना दो।

के पास पहुँची तब लक्ष्मणजी ने उसे माता कहकर सम्बोधित किया। वह राक्षसी इस सम्बोधन से चकित होकर पूछने लगी—

मैं गढ लंक में वास करूँ तू बन बन फिरे ब्रह्मचारी।
प्रीति नहीं परिचय नहीं किस विधि भई तेरी महतारी॥

यह सुन लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—

साँच कहूँ सुन तोहे निशाचरि तू मेरी माता भई तब ही ते।
काम के भाव धरे मन में राम के तीर गई जब ही ते॥

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥ ४१॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर बलशाली लक्ष्मण ने क्रुद्ध हो, म्यान से तलवार निकालकर राम के देखते-देखते उस राक्षसी के नाक और कान काट[१] डाले।

निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम्॥ ४२॥

नाक-कान कट जाने पर भयंकर चीत्कार करती हुई वह राक्षसी जिधर से आई थी उसी ओर वन में भाग गई।

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं
खरं जनस्थानगतं विरूपिता।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रदर्शनं
पपात भूमौ गगनाद्यथाऽशनिः॥ ४३॥

भागती हुई वह विरूपिता राक्षसी अपने सहायक राक्षसों से संरक्षित जनस्थान में अपने तेजस्वी भाई खर के समीप जाकर आकाश में गिरनेवाली विद्युत की भाँति भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ी।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

खर का आक्रोश और श्रीराम पर आक्रमण का आदेश—

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम्।
भगिनीं क्रोधसन्तप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः॥ १॥

कुरूप और रक्त से सनी हुई अपनी बहन को पृथिवी पर पड़े हुए देखकर क्रोध से सन्तप्त हो खर ने अपनी बहन से पूछा—

उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि सम्भ्रमम्।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता॥ २॥

हे बहन! उठो, अपनी घबराहट और भय को

---

१. कुछ लोगों का विचार है कि शूर्पनखा ने श्रीराम के समक्ष प्रणय-निवेदन किया था। श्रीराम ने उसे ठुकरा दिया। बस यही शूर्पनखा की नाक कटना था, जैसे आज भी कहा जाता है—'अरे उसने तो नाक ही कटवा दी।' रामायण के उपर्युक्त श्लोक से इस कपोलकल्पना का खण्डन हो जाता है। यहाँ तो लक्ष्मणजी ने तलवार से नाक और कान दोनों काटे हैं। कान काटने का मुहावरा चातुर्य प्रदर्शित करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—यह तो बड़े-बड़ों के कान काटता है।

क्या राम ने शूर्पनखा के नाक-कान काट कर कोई अनुचित कार्य किया था? इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि श्रीराम ने उस राक्षसी को जो दण्ड दिया वह उचित एवं शास्त्र-सम्मत ही था। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रतिलोम्ये वधः पुंसः स्त्रीणां नासादिकर्त्तनम्॥

—याज्ञवल्क्य स्मृ० २। २८९

यदि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की इच्छा के बिना धींगामस्ती से स्व-वर्ण में विवाह करना चाहें तो उन्हें उत्तम-दण्ड=कठोरतम दण्ड देना चाहिए। यदि वे अपने से हीन वर्ण में अनुलोम विवाह करना चाहें तो मध्यम दण्ड और यदि अपने से उच्चवर्ण में प्रतिलोम विवाह करना चाहे तो पुरुष को वधदण्ड देना चाहिए और स्त्री के नाक-कान काट लेने चाहिएँ।

शूर्पनखा विधवा थी और पुलस्त्यवंशी रावण की बहन थी। वह शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध क्षत्रिय राम से प्रतिलोम विवाह करना चाहती थी, अतः श्रीराम ने उसे जो दण्ड दिया वह सर्वथा उचित ही था।

छोड़कर स्पष्ट बतलाओ कि तुम्हें किसने कुरूप किया है।

कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम्।
तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया॥ ३॥

कुण्डली मारकर बैठे हुए निरपराध भयङ्कर काले विषधर=साँप के साथ खिलवाड़ के रूप में अँगुलियों से किसने छेड़-छाड़ की है।

कः कालपाशमासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते।
यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान् विषमुत्तमम्॥ ४॥

तुम्हें छेड़कर अज्ञानवश यम-फाँस को किसने अपने गले में बाँधा है? तुम्हारे साथ वह कुत्सित व्यवहार कर किसने हलाहल विष का पान किया है?

इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत्॥ ५॥

क्रोध में भरे हुए अपने भाई खर के इन वचनों को सुनकर शूर्पनखा आँसू बहाती हुई बोली—

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥ ६॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ७॥

तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबली, कमल के समान विशाल नेत्रोंवाले, चीर तथा काला मृगचर्म धारण करनेवाले, फल-मूल भक्षी, जितेन्द्रिय, तपस्वी एवं धर्मचारी राम और लक्ष्मण नाम के दो भाई हैं जो महाराज दशरथ के पुत्र हैं।

गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
देवौ वा मानुषौ वा तौ न तर्कयितुमुत्सहे॥ ८॥

वे दोनों गन्धर्वराज के समान सुन्दर हैं और राजलक्षणों से युक्त हैं। वे दोनों देवता हैं या मनुष्य इसका निर्णय मैं नहीं कर सकती।

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा॥ ९॥

उन दोनों के साथ मैंने एक पतली कमरवाली, सुन्दरी और आभूषणों से समलंकृत स्त्री भी देखी।

ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम्।
इमामवस्थां नीताऽहं यथाऽनाथाऽसती तथा॥ १०॥

उस स्त्री के कारण अथवा उस स्त्री के कहने पर उन दोनों ने मिलकर मेरी ऐसी दुर्दशा की है जैसी किसी अनाथा और कुलटा स्त्री की जाती है।

तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम्।
स्फेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि॥ ११॥

हे भाई! संग्राम में उस कुटिल आचरणवाली स्त्री और दोनों भाइयों के मारे जाने पर मैं उनके रक्त का पान करना चाहती हूँ। यही मेरी सबसे बढ़कर अभिलाषा है।

इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान्।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान्॥ १२॥

शूर्पनखा के ऐसा कहने पर क्रोध में भरे हुए खर ने यमराज के समान बलवान् तथा भयङ्कर चौदह राक्षसों को आज्ञा दी—

मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह॥ १३॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ।
इयं च रुधिरं तेषां भगिनी मम पास्यति॥ १४॥

अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, चीर तथा काले मृग का चर्म धारण किये हुए दो मनुष्य एक स्त्री के साथ इस घोर दण्डक वन में आये हुए हैं। उन दोनों मनुष्यों को उस दुष्ट स्त्री सहित मारकर तुम शीघ्र लौट आओ, क्योंकि मेरी बहन उन सबका रक्त पान करना चाहती है।

इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश।
तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता यथा॥ १५॥

खर के ऐसा आदेश देने पर वे चौदहों राक्षस आकाश-मण्डल में वायु द्वारा उड़ाये गये मेघों की भाँति शूर्पनखा के साथ उस स्थान पर गये जहाँ श्रीराम थे।

≺ चतुर्दशः सर्गः ≻ (१४)

चौदह राक्षसों का वध और शूर्पनखा का विलाप—

तान् दृष्ट्वा राघवः श्रीमान् चापं हेमविभूषितम्।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत्॥ १ ॥

उन राक्षसों को वहाँ आया देख श्रीराम ने अपने सुवर्ण-विभूषित धनुष पर प्रत्यञ्चा=डोरी चढ़ाकर उन राक्षसों से कहा—

तिष्ठतैवात्र सन्तुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ।
यदि प्राणैरिहार्थो वा निवर्तध्वं निशाचराः॥ २ ॥

यदि तुम लोग युद्ध करना चाहते हो तो प्रसन्नता-पूर्वक जहाँ-के-तहाँ खड़े रहना, भागना मत और यदि अपने प्राण बचाने हों तो हे राक्षसो! तुम यहाँ से शीघ्र लौट जाओ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः॥ ३ ॥

श्रीराम की यह बात सुनकर वे ब्रह्मघाती और शूलधारी चौदह राक्षस महाक्रुद्ध होकर बोले—

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः।
त्वमेव हास्यसे प्राणानद्यास्माभिर्हतो युधि॥ ४ ॥

हम लोगों के स्वामी खर के क्रोध को प्रदीप्त करने के कारण आज संग्राम में तुम ही हम लोगों के द्वारा मारे जाकर अपने प्राण गँवाओगे।

इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धा राक्षसास्ते चतुर्दश।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः॥ ५ ॥

ऐसा कहकर उन चौदह राक्षसों ने क्रुद्ध हो और अपने अस्त्रों को उठा श्रीराम पर आक्रमण कर दिया।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् सूर्यसन्निभान्।
मुमोच राघवो बाणान् वज्रानिव शतक्रतुः॥ ६ ॥

उन राक्षसों के आक्रमण करने पर महातेजस्वी श्रीराम ने सूर्य के समान देदीप्यमान बिना फर के बाण राक्षसों पर उसी प्रकार छोड़े जिस प्रकार इन्द्र अपना वज्र चलाते हैं।

ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिराप्लुताः।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ न्यमज्यन्ताशनिस्वनाः॥ ७ ॥

वे बाण अपने वेग से राक्षसों के हृदय को विदीर्ण कर और रुधिर में सने भूमि पर इस प्रकार जा पड़े जैसे भीषण शब्द करते हुए बिजली गिरती है।

ते भिन्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः।
निपेतुः शोणितार्द्राङ्गा विकृता विगतासवः॥ ८ ॥

बाणों के आघात से भग्न-हृदय वे सभी राक्षस जड़ से कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़े। वे राक्षस खून से लथ-पथ थे, उनकी आकृति बिगड़ गई और वे निर्जीव हो गये।

तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ राक्षसी क्रोधमूर्छिता।
सा नदन्ती महानादं जवाच्छूर्पणखा पुनः॥ ९ ॥
उपागम्य खरं सा तु किञ्चित्संशुष्कशोणिता।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी॥ १० ॥

उन राक्षसों को भूमि पर लोटते हुए देख वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित हो गई। महानाद करती हुई वह शूर्पनखा जिसके शररीर पर रक्त सूख गया है बड़े वेग से खर के पास पहुँची और सूखी हुई लता के समान वहाँ जाकर गिर पड़ी।

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां खरः।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम्॥ ११ ॥

राक्षस वंश के लिए अनर्थकारी उस शूर्पनखा को पुनः आई हुई और भूमि पर पड़ी हुई देख खर क्रोध से भय और चिल्लाकर बोला—

मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसा रुधिराशनाः।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः॥ १२ ॥

मैंने तो तुझे प्रसन्न करने के लिए और राम-लक्ष्मण का रक्त पान करने के लिए चौदह राक्षस भेज दिये थे—अब तू पुनः किसलिए रो रही है?

अनाथवद्विलपसि नाथे तु मयि संस्थिते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वैक्लब्यं त्यज्यतामिह॥ १३॥

अरे! जब मैं तेरा रक्षक उपस्थित हूँ तब तू अनाथिनी की भाँति क्यों रो रही है? उठ! डर मत और अपनी व्याकुलता को छोड़ दे।

इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत्॥ १४॥

खर के इस प्रकार कहने और सान्त्वना देने पर वह दुर्धर्षा राक्षसी अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछती हुई अपने भाई खर से कहने लगी—

प्रेषिताश्च त्वया वीरा राक्षसास्ते चतुर्दश।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः॥ १५॥

हे वीर! तुमने जिन चौदह राक्षसों को भेजा था श्रीराम ने उन सबको मर्मभेदी बाणों से मार दिया।

तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ क्षणेनेव महाबलान्।
शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी॥ १६॥

उन महाबली राक्षसों को कुछ ही क्षणों में भूमि पर गिरा (मरा) हुआ देख मैं सब ओर से भयभीत होकर पुनः तेरी शरण में आई हूँ।

विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनी।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे॥ १७॥

विषादरूपी मगरमच्छों से परिपूर्ण तथा भयरूपी तरंगों से तरंगित महासागर में मैं डूब रही हूँ फिर तू मुझे बचाता क्यों नहीं है?

शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः।
मानुषौ यौ न शक्नोषि हन्तुं तौ रामलक्ष्मणौ॥ १८॥

तुम अपने आपको व्यर्थ ही शूरवीर समझते हो वस्तुतः तुम शूर हो नहीं, तुम तो शूर होने की डींग हाँकते हो, क्योंकि तुम उन दो मनुष्यों—राम और लक्ष्मण को भी नहीं मार सकते।

रामेण यदि ते शक्तिस्तेजो नास्ति निशाचर।
दण्डकारण्यनिलयं जहि तं कुलपांसना॥ १९॥

हे निशाचर! यदि तुझमें राम के साथ युद्ध करने की शक्ति और तेज नहीं है तो हे कुलाधम! तू दण्डकारण्य में बसना छोड़कर कहीं और चला जा।

◀ पञ्चदशः सर्गः ▶ (१५)

सेनासहित खर-दूषण का कूच—

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्तदा।
उवाच राक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः॥ १॥

जब शूर्पनखा ने खर को बुरी तरह फटकारा और धिक्कारा तब वह वीर राक्षसों के मध्य उस शूर्पनखा से यह कठोर वचन बोला—

न रामं गणये वीर्यान् मानुषं क्षीणजीवितम्।
आत्मदुश्चरितैः प्राणान् हतो योऽद्य विमोक्ष्यति॥ २॥

अल्प जीवनवाले सामान्य मनुष्य राम के पराक्रम को मैं अपने समक्ष कुछ भी नहीं समझता। अपने अपराध के कारण उसे आज अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।

बाष्पः संह्रियतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्।
अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम्॥ ३॥

तू रोना-धोना बन्दकर और व्याकुलता को छोड़ दे। मैं राम और लक्ष्मण को आज ही यमराज के सदन का अतिथि बनाऊँगा।

परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य संयुगे।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि॥ ४॥

हे राक्षसी! आज युद्ध में मेरे कुठार से मारे गये अधमरे राम के गर्मागर्म रक्त का तुम पान कर सकोगी।

सा प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्चयुतम्।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम्॥ ५॥

खर के मुख से निकले इन वचनों को सुनकर

शूर्पनखा बहुत प्रसन्न हुई और मूर्खतावश राक्षस-श्रेष्ठ अपने भाई खर की प्रशंसा करने लगी।

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः।
अब्रवीद्दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा॥ ६॥

इस प्रकार पहले धिक्कारा हुआ और पश्चात् प्रशंसा किया गया खर अपने सेनापति दूषण से बोला—

चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानवर्तिनाम्।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम्॥ ७॥
नीलजीमूतवर्णानां घोराणां क्रूरकर्मणाम्।
सर्वोद्योगमुदीराणां रक्षसा सौम्य कारय॥ ८॥

हे सौम्य! मेरी आज्ञानुसार चलनेवाले, अति वेगवाले, संग्राम में कभी पीठ न दिखानेवाले, भयंकर, क्रूरकर्मी, युद्ध में अत्यन्त उत्साह रखनेवाले चौदह सहस्र राक्षसों को तुम शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार करो।

उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च।
शरांश्चित्रांश्च खड्गश्च शक्तिश्च विविधाः शिताः॥ ९॥

हे सौम्य! नाना प्रकार की पैनी तलवारों और शक्तियों को, धनुष और विचित्र बाणों को तथा मेरे रथ को शीघ्र ही मेरे समक्ष उपस्थित करो।

अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम्।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविदः॥ १०॥

हे रण-पण्डित! मैं उद्दण्ड एवं अभिमानी राम का वध करने के लिए पुलस्त्य कुलोद्भव महाबली राक्षसों के आगे-आगे प्रस्थान करना चाहता हूँ।

इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम्।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः॥ ११॥

खर के ऐसा आदेश देने पर दूषण ने सूर्य की भाँति देदीप्यमान रथ में विचित्र वर्णवाले घोड़े जोतकर उसे खर के सामने लाकर उपस्थित कर दिया।

ध्वजनिस्त्रिंशसम्पन्नं किङ्किणीकविराजितम्।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरो रथम्॥ १२॥

ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित, खड्गादि उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, छोटी-छोटी घण्टियाँ जिसमें लटक रही थीं और जिसमें उत्तम जाति के घोड़े जुते हुए थे—ऐसे उत्तम रथ पर खर क्रुद्ध होकर सवार हुआ।

खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम्।
निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वरक्षसाम्॥ १३॥

तब खर और दूषण दोनों ने रथों, ढालों, हथियारों और ध्वजाओं से युक्त राक्षसों की बड़ी सेना को कूच करने का आदेश दिया।

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरवर्मायुधध्वजम्।
निर्जगाम जनस्थानान् महानादं महाजवम्॥ १४॥

आज्ञा पाकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उस राक्षसी सेना ने महानाद करते हुए, बड़ी तेजी के साथ जनस्थान से प्रस्थान किया।

तांस्त्वभिद्रवतो दृष्ट्वा राक्षसान् भीमविक्रमान्।
खरस्यापि रथः किञ्चिज्जगाम तदनन्तरम्॥ १५॥

उन महापराक्रमी राक्षसों को वेग से प्रस्थान करते हुए देख खर ने भी उनके साथ-साथ प्रस्थान किया।

सा भीमवेगा समराभिकामा
महाबला राक्षसवीरसेना।
तौ राजपुत्रौ सहसाऽभ्युपेता
माला ग्रहाणामिवचन्द्रसूर्यौ॥ १६॥

जैसे द्युलोक में ग्रहों का समूह सूर्य और चन्द्रमा को घेरे रहता है इसी प्रकार संग्रामाभिलाषी, भयानक राक्षसों की वीर सेना ने अत्यन्त वेग से जाकर राम और लक्ष्मण को घेर लिया।

◀ षोडशः सर्गः ▶ (१६)

श्रीराम का राक्षसों के साथ युद्ध—

दृष्ट्वा तु वाहिनीं तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
सम्प्रहारस्तु सुमहान् भविष्यति न संशयः॥ १॥

राक्षसों की उस विशाल सेना को देखकर राम ने लक्ष्मणजी से कहा—हे लक्ष्मण! भीषण नर-संहार होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥ २॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पण्डित और आपत्ति की शंका करनेवाले पुरुष को आपत्ति आने से पूर्व ही उसके प्रतिकार का उपाय कर लेना चाहिए।

तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम्॥ ३॥

अतः तुम हाथ में धनुष-बाण और सीता को साथ लेकर वृक्षों के झुरमुट में छिपी हुई किसी दुर्गम पर्वत-कन्दरा में जा बैठो।

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥ ४॥

मैं अपने कथन के प्रतिकूल कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं तुम्हें अपने चरणों की शपथ देता हूँ। हे वत्स! तुम शीघ्र जाओ।

त्वं हि शूरश्च बलवान् हन्या ह्येतान्न संशयः।
स्वयं तु हन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान्॥ ५॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम शूरवीर एवं बलवान् हो और अकेले ही सब राक्षसों को मार सकते हो, किन्तु मैं स्वयं इन राक्षसों को मारना चाहता हूँ।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत्॥ ६॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण सीता को साथ ले और हाथ में धनुष-बाण धारण कर पर्वत की एक दुर्गम गुफा में चले गये।

तस्मिन् प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत्॥ ७॥

सीतासहित लक्ष्मण के गुफा में प्रविष्ट होने पर राम ने प्रसन्न होते हुए—'वाह! लक्ष्मण ने मेरी बात मान ली'—ऐसा कहते हुए कवच धारण किया।

स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्।
बभूवावस्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः॥ ८॥

तदनन्तर महापराक्रमी श्रीराम धनुष धारण कर और बाणों को लेकर धनुष की टंकार से दशों दिशाओं में गुंजायमान करते हुए खड़े हो गये।

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं च रिपुघातिनम्।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सहपुरःसरैः॥ ९॥

जब खर अपने साथियोंसहित श्रीरामाश्रम में पहुँचा तब उसने देखा कि श्रीराम क्रुद्ध हो धनुष हाथ में लिए हुए शत्रुओं का वध करने के लिए उद्यत हैं।

तं दृष्ट्वा सशरं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम्।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत्॥ १०॥

राम को देखकर खर ने भयंकर टंकार करने-वाले धनुष को उठा और बाण लेकर सारथि को ओदश दिया कि मेरे रथ को राम के सम्मुख ले चलो।

स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान् समचोदयत्।
यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन् स्थितो धनुः॥ ११॥

खर की आज्ञा पा सारथि ने घोड़ों को उधर की ओर ही हाँका जहाँ महाबाहु श्रीराम धनुष को टंकारते हुए अकेले ही खड़े थे।

ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम्।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः॥ १२॥

राम के सम्मुख पहुँच कर खर ने अनेक बाणों से श्रीराम को पीड़ित कर बड़े जोर से गर्जना की।

ततो रामः सुसंक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः।
ससर्ज निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३॥

तब श्रीराम ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने धनुष को मण्डलाकार कर तीखे बाणों की झड़ी लगा दी।

ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया।
आददू रक्षसां प्राणान् पाशाः कालकृता इव॥ १४॥

बिना प्रयास के शत्रुसेना पर फेंके गये उन बाणों ने कालपाश की तरह राक्षसों के प्राण हरण कर लिये।

गजांश्च सगजारोहान् सहयान् सादिनस्तथा।
पदातीन् समरे हत्वा ह्यनयद्यमसादनम्॥ १५॥

श्रीराम ने सवारोंसहित हाथियों और घोड़ों तथा पैदल सैनिकों को मार कर यमलोक भेज दिया।

अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णश्च निशाचराः।
खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शरार्दिताः॥ १६॥

जो राक्षस मारे जाने से बच गये वे बाणों की मार से पीड़ित होकर रक्षा के लिए खर की ओर दौड़े।

तान् सर्वान् पुनरादाय समाश्वास्य च दूषणः।
अभ्यधावत काकुत्स्थं क्रुद्धो रुद्रमिवान्तकः॥ १७॥

खर की शरण में आये हुए उन सैनिकों को आश्वासन दे और उन्हें अपने साथ ले दूषण क्रुद्ध होकर राम की ओर ऐसे ही झपटा मानो यमराज ही दौड़ रहा हो।

निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः।
रामेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः॥ १८॥

दूषण का सहारा पाकर वे सब भागे हुए राक्षस निर्भीक हो और साल, ताल एवं शिलारूपी आयुधों को लेकर श्रीराम के समक्ष गये।

द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः।
तद् बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥ १९॥

राक्षसों ने श्रीराम के ऊपर वृक्षों और शिलाओं की वर्षा की। उस समय अपूर्व, भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ।

नाददानं शरान् घोरान्न मुञ्चन्तं शिलीमुखान्।
विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः॥ २०॥

श्रीराम ऐसी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि राक्षस लोग यह नहीं देख पाते थे कि राम कब भयंकर पैने बाणों को तरकस से निकालते थे और कब छोड़ते थे। बाणों से आहत राक्षस राम को केवल धनुष को खेंचते हुए ही देखते थे।

युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम्।
युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत्॥ २१॥

उन बाणों से कितने ही राक्षस एक साथ गिर पड़ते, कितने ही अत्यन्त आहत होते और बहुत-से एक साथ ही मूर्छित होकर गिर पड़ते थे। उन राक्षसों के शरीरों से वह रणस्थली ढक गई।

तान् दृष्ट्वा निहतान् संख्ये राक्षसान् परमातुरान्।
न तत्र सहितुं शक्ता रामं परपुरञ्जयम्॥ २२॥

बहुसंख्यक आतुर राक्षसों को युद्ध में मरा हुआ देख, जो राक्षस शेष बचे थे वे शत्रुञ्जयी श्रीराम के प्रहार को न सह सके और वहाँ से भाग खड़े हुए।

◀ सप्तदशः सर्गः ▶ (१७)

दूषण आदि का वध—

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं निरीक्ष्य सः।
शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवाकिरत्॥ १॥

दूषण ने अपनी सेना को मारे जाते हुए देखकर वज्रतुल्य बाणों से श्रीराम के ऊपर शरवृष्टि की।

ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः।
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ २॥

तब श्रीराम ने भी क्रुद्ध हो क्षुर नामक अस्त्र से दूषण के विशाल धनुष को काट डाला और चार बाण चला कर उसके रथ के चारों घोड़ों को भी मार

डाला।

हत्वा चाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः।
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि॥ ३॥

घोड़ों को मारकर राम ने एक अर्धचन्द्राकार बाण से दूषण के सारथि का सिर काट गिराया और तीन बाण दूषण की छाती में मारे।

स च्छिन्नधन्वा विरथो प्रगृह्या परिघं रणे।
दूषणोऽभ्यद्रवद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः॥ ४॥

धनुष और रथ से हीन क्रूरकर्मा, राक्षस दूषण एक परिघ उठाकर युद्धक्षेत्र में श्रीराम के ऊपर झपटा।

तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य स राघवः।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ॥ ५॥

दूषण को अपनी ओर आते देख श्रीराम ने दो बाणों से भूषणों से भूषित उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला।

स कराभ्यां विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः।
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः॥ ६॥

हाथों के कटने से दूषण भूमि पर ऐसे गिर पड़ा जैसे दाँतों के टूटने पर धीर गजराज गिर पड़ता है।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान् महाबलान्॥ ७॥

दूषण को युद्ध में मरा हुआ देख खर ने क्रोध में भरकर अपने महाबलवान् सेनापतियों को यह आदेश दिया—

अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः।
महत्या सेनया सार्धं हनध्वं रामं राक्षसाः॥ ८॥

संग्राम में यह दूषण तो अपने अनुगामियोंसहित मारा गया है अब तुम सब राक्षस मिलकर अपनी विशाल सेना के साथ राम को मार डालो।

एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो बलाध्यक्षाः स सैनिकाः।
राममेवाभ्यवर्तन्त विसृजन्तः शरोत्तमान्॥ ९॥

क्रुद्ध खर के ऐसा कहने पर सेनाध्यक्षों ने अपनी-अपनी अधीनस्थ सेनाओं को साथ ले और तीखे बाण छोड़ते हुए श्रीराम पर आक्रमण किया।

ततः पावकसङ्काशैर्हेमवज्रविभूषितैः।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः॥ १०॥

तब तेजस्वी श्रीराम ने स्वर्ण एवं रत्नों से विभूषित अग्नि के समान देदीप्यमान बाणों से उस बची हुई सेना को मार डाला।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना॥ ११॥

श्रीराम ने पैदल और अकेले ही चौदह सहस्र[१] भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसों को सहज ही में मार डाला।

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः॥ १२॥

इस राम-राक्षस-युद्ध में सम्पूर्ण सेना में महारथी खर, राक्षस त्रिशिरा और शत्रुनाशक श्रीराम ही बचे।

---

१. पाठक! इस व्याख्या को देखकर चौंके नहीं। ब्रह्मचर्य की शक्ति से यह सम्भव है। वेद में कहा है—

यदाबध्नन् दाक्षयणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥

—अथर्व० १।३५।१

आचार्य शिष्य को उपदेश करते हैं—मेधावी ज्ञानीजन शुभसंकल्प से युक्त होकर सैकड़ों सेनाओं के बल की प्राप्ति के लिए जिस वीर्य को अपने जीवन में धारण करते हैं, दीर्घ-जीवन, तेज और बल के लिए उसी वीर्य को अपने शरीर में स्थापित करने के लिए मैं तुझे आदेश देता हूँ।

मन्त्र में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रह्मचर्य से शतानीकाय=सौ सेनाओं का बल प्राप्त होता है। श्रीराम इस ब्रह्मचर्य व्रत में बँधे हुए थे। विवाह के पश्चात् वे १२ वर्ष तक अयोध्या में रहे, १४ वर्ष तक वन में रहे जिसमें १३ वर्ष तक पत्नी साथ थी। २५ वर्ष में एक भी सन्तान उत्पन्न नहीं की। यदि आज का-सा युवक होता तो १०-१२ सन्तानें तो हो ही जातीं।

अष्टादशः सर्गः (१८)

त्रिशिरा का वध और खर के साथ युद्ध—

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत्॥ १॥

खर को युद्ध करने के लिए राम के सम्मुख जाते देख त्रिशिरा नामक सेनापति खर के पास जाकर बोला—

मां नियोजय विक्रान्तं सन्निवर्तस्व साहसात्।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम्॥ ३॥

हे स्वामिन्! आप इस साहस के कार्य से रुकिए ओर अपने बदले मुझ पराक्रमी को राम से लड़ने के लिए नियुक्त कीजिए। देखिए! मैं इस महाबाहु राम को युद्ध में मारकर अभी गिराये देता हूँ।

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः।
गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ॥ ३॥

त्रिशिरा ने श्रीराम की मृत्यु का लालच दिखा खर को सन्तुष्ट कर लिया और "जाओ, लड़ो" ऐसी आज्ञा पाकर राम से युद्ध करने के लिए चल पड़ा।

आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन् सायकाञ्शितान्॥ ४॥

श्रीराम ने त्रिशिरा को अपनी ओर आते देख धनुष को टंकार कर उस पर तीखे बाण छोड़ते हुए उसे रोका।

स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोर्महान्।
बभूवातीव बलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव॥ ५॥

श्रीराम और त्रिशिरा का वह तुमुल युद्ध बड़ा भयंकर था। ऐसा प्रतीत होता था मानो अति बलशाली सिंह और गजराज लड़ रहे हों।

ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः।
अमर्षी कुपितो रामः संरब्धमिदमब्रवीत्॥ ६॥

जब त्रिशिरा ने श्रीराम के माथे पर तीन बाण मारे तब बाण के प्रहार से कुपित और उसे सहन न करनेवाले श्रीराम ने क्रुद्ध होकर त्रिशिरा से कहा—

अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम्।
पुष्पैरिव शरैर्यस्य ललाटेऽस्मि परिक्षतः॥ ७॥

अहो! क्या विक्रमी, शूर-राक्षस में इतना ही बल है कि उसके मारे हुए बाण मेरे मस्तक में फूलों के समान स्पर्श कर रहे हैं।

एवमुक्त्वा तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान्।
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजधान चतुर्दश॥ ८॥

यह कहकर जोशीले राम ने कुपित होकर विषधर सर्प के समान चौदह बाण त्रिशिरा की छाती में मारे।

चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः॥ ९॥

फिर तेजस्वी राम ने सन्नतपर्व नामक चार बाणों से त्रिशिरा के चारों घोड़ों को मार गिराया।

अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थान्नयपातयत्।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम्॥ १०॥

तत्पश्चात् श्रीराम ने आठ बाण मारकर त्रिशिरा के सारथि को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया और एक बाण मारकर उसके रथ की ऊँची ध्वजा को भी काट दिया।

ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम्।
बिभेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः॥ ११॥

घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर जब त्रिशिरा रथ से कूदने लगा तब राम ने बाणों से उसके हृदय को विदीर्ण कर डाला और वह निश्चेष्ट हो गया।

निहितं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह।
खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्॥ १२॥

संग्राम में त्रिशिरा और दूषण को मरा हुआ देख खर श्रीराम के पराक्रम से भयभीत हो गया।

तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः।
आससाद खरो रामं पतङ्ग इव पावकम्॥ १३॥

उस राक्षसी सेना का और चुने हुए वीर राक्षसों को मरा हुआ देख खर उदास हुआ, फिर अपने कर्तव्य का निश्चय कर वह राम के ऊपर ऐसे ही झपटा जैसे पतङ्ग अग्नि के ऊपर झपटता है।

ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ १४॥

खर ने राम के समीप पहुँचकर अपना हस्तलाघव दिखाते हुए महात्मा राम के धनुष को उस स्थान से काटा डाला जहाँ से वे उसे पकड़े हुए थे।

सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत॥ १५॥

तब श्रीराम महर्षि अगस्त्य द्वारा प्रदत्त वैष्णव नामक श्रेष्ठ धनुष को उठाकर खर की ओर झपटे।

ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः।
बिभेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम्॥ १६॥

स्वर्णपुंख और सन्नतपर्व बाणों से क्रुद्ध राम ने संग्राम में खर के रथ की ध्वजा काट डाली।

तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणः।
विव्याध युधि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः॥ १७॥

तब मर्मस्थलों को जाननेवाले खर ने क्रुद्ध होकर चार बाणों से श्रीराम के हृदय और अन्य मर्मस्थलों को वैसे ही बेध डाला जैसे भालों से हाथी बेधा जाता है।

स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिसृतैः।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम्॥ १८॥

खर के धनुष से छूटे हुए बहुत-से बाणों के लगने से श्रीराम आहत हो गये। उनके अङ्ग रक्त से सराबोर हो गये, अतः वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् भास्करोपमान्।
जिघांसू राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश समाददे॥ १९॥

तत्पश्चात् क्रोध में आये हुए श्रीराम ने सूर्य के समान देदीप्यमान तेरह बाण लेकर खर को मारने की इच्छा से उस पर छोड़े।

ततोऽस्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
षष्ठेन तु शिरः संख्ये खरस्य रथसारथे॥ २०॥
त्रिभिस्त्रिवेणुं बलवान् द्वाभ्यामक्षं महाबलः।
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः॥ २१॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव।
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम्॥ २२॥

एक बाण से रथ के जुए को, चार बाणों से चारों घोड़ों को और छठे बाण से खर के सारथि के सिर को, तीन बाणों से रथ के तीन बाँसों को, दो से रथ की धुरी को और बारहवें बाण से खर के बाण सहित धनुष को काटकर इन्द्र के समान तेजस्वी राम ने हँसते हुए, युद्धस्थल में वज्र के समान तेरहवाँ बाण खर को मारा।

प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा॥ २३॥

धनुष के टूट जाने, रथ के भग्न हो जाने, घोड़े और सारथि के मारे जाने पर खर हाथ में गदा ले रथ से कूद पड़ा और रणभूमि में खड़ा हो गया।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

राम द्वारा खर की भर्त्सना और उसकी गदा का भेदन—

खरं तु विरथं दृष्ट्वा रामो गदापाणिमवस्थितम्।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

रथहीन खर को हाथ में गदा लेकर रणभूमि में अवस्थित देख महातेजस्वी श्रीराम ने उससे न्यायोचित और मर्मस्पर्शी वचन कहे—

गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता।
कृतं सुदारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम्॥ २॥

हे वीर! हाथी, घोड़ा, रथ आदि से परिपूर्ण विशाल

सेना का स्वामी बनकर तूने सर्वलोक निन्दित और घोर पापकर्म किये हैं।

उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत्।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति॥ ३॥

क्या तू नहीं जानता कि प्राणियों को दुःख देनेवाला, निर्दयी और पापकर्म करनेवाला मनुष्य भले ही त्रिलोकी का स्वामी हो, तो भी अधिक दिन नहीं जी सकता।

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम्॥ ४॥

हे रजनीचर! लोकविरुद्ध मानवीय शान्ति का उन्मूलन करनेवाले अत्याचारी को ऐसे ही मार देना चाहिए जैसे अपने घर में आते हुए विषधर सर्प को सब लोग मार डालते हैं।

लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते।
भ्रष्टाः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव॥ ५॥

जो मनुष्य! लोभ या काम के वशीभूत होकर पापकर्म करके पश्चात्ताप नहीं करता उसे उस कर्म के फल (ऐश्वर्य) से ऐसे ही भ्रष्ट होना पड़ता है (उसका अन्त उसी प्रकार होता है) जैसे चार पैरवाला ब्राह्मणी कीट (राम की बुढ़िया) वृष्टि के ओलों को खाकर अपना अन्त कर लेता है।

वसतो दण्डकारण्ये तापसान् धर्मचारिणः।
किन्नु हत्वा महाभागान् फलं प्राप्स्यसि राक्षस॥ ६॥

हे राक्षसाधम! इस दण्डक वन में रहनेवाले, धर्माचरण में रत, निरपराध तपस्वियों को मारने का फल तुझे भोगना ही होगा, क्या तू यह नहीं जानता था?

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः॥ ७॥

पापी, क्रूर और लोकनिन्दित मनुष्य ऐश्वर्य पाकर भी चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकते जैसे गली-सड़ी जड़वाले वृक्ष बहुत देर तक नहीं ठहरते।

अवश्यं लभते जन्तुः फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम्॥ ८॥

जैसे ऋतु के आने पर वृक्ष स्वयं पुष्पित हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार समय आने पर जीवों को उनके लिए पापकर्मों को घोर फल अवश्य प्राप्त होता है।

न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर॥ ९॥

हे निशाचर! जैसे विषमिश्रित अन्न खाने से मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है उसी प्रकार पापी को किये हुए पापों का फल प्राप्त होने में विलम्ब नहीं होता।

पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम्।
अहमासादितो राज्ञा प्राणान्हन्तुं निशाचर॥ १०॥

हे निशाचर! घोर पापकर्म करनेवाले और लोक का अमङ्गल करनेवाले पापचारियों के वध के लिए ही मुझे महाराज दशरथ ने वन में भेजा है।

अद्य हि त्वां मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः।
विदार्य निपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः॥ ११॥

मेरे द्वारा छोड़े गये ये स्वर्णभूषित बाण तेरे शरीर को छिन्न-भिन्न कर पृथिवी में ऐसे ही घुसेंगे जैसे सर्प अपनी बाँबी में घुसता है।

प्रहर त्वं यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा॥ १२॥

अरे कुलाधम! मुझे मारने के लिए तुझे जो उपाय करना हो वह कर ले और यथेष्ट प्रहार भी कर ले। अन्त में तो मैं तेरे सिर को ताड़ के वृक्ष के समान काट कर गिरा दूँगा।

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
प्रत्युवाच खरो रामं प्रहसन् क्रोधमूर्छितः॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर खर क्रोध के मार लाल-लाल आँखें निकाल तथा तिस्कार-सूचक हँसी हँसता हुआ क्रुद्ध होकर बोला—

प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि॥ १४॥

हे दशरथनन्दन! संग्राम में साधारण राक्षसों को मार कर प्रशंसनीय न होने पर भी तुम अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो ?

विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः।
कथयन्ति न ते किञ्चित्तेजसा स्वेन गर्विताः॥ १५॥

जो पराक्रमी, बलवान् और तेजस्वी पुरुष होते हैं वे अपने प्रताप से गर्वित होकर अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते।

न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम्।
धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम्॥ १६॥

हे राम! नाना प्रकार की धातुओं से चित्रित अकम्प पर्वत के समान अचल एवं अटल गदा हाथ में लेकर लड़ने के लिए उद्यत क्या तुम मुझे और मेरी शक्ति को नहीं देख रहे ?

पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान् रणे तव।
त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः॥ १७॥

मैं अपने हाथ में गदा लेकर पाशधारी यमराज की भाँति युद्ध में केवल तेरा ही नहीं, अपितु तीनों लोकों का संहार कर सकता हूँ।

कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम्।
अस्तं गच्छेद्धि सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत्॥ १८॥

यद्यपि तुम्हारी आत्मश्लाघा के उत्तर में मैं भी बहुत कुछ कह सकता हूँ तथापि मैं तुमसे अब और कुछ कहना नहीं चाहता, क्योंकि कहने सुनने में समय निकाल कर यदि सूर्यास्त हो गया तो युद्ध में विघ्न होगा, अर्थात् युद्ध बन्द हो जायेगा।

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते।
त्वद्विनाशात्करोम्येष तेषामस्त्रप्रमार्जनम्॥ १९॥

तुमने जो चौदह सहस्र राक्षसों को मारा है सो अब मैं तुम्हें मारकर उनकी विधवा स्त्रियों और अनाथ बच्चों के आसूँ पोंछूँगा।

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धस्तां गदां परमाङ्गदः।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा॥ २०॥

ऐसा कहकर खर ने अत्यन्त क्रुद्ध हो वज्र के समान जाज्वल्यमान अपनी भीषण गदा से राम के ऊपर प्रहार किया।

तामापतन्तीं ज्वलितां मृत्युपाशोपमां गदाम्।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः॥ २१॥

मृत्युपाश के समान अपने ऊपर आती हुई उस चमचमाती गदा को श्रीराम के अनेक बाणों से आकाश में ही छिन्न-भिन्न कर दिया।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

खर का वध—

भित्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः।
स्मयमानः खरं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत्॥ १॥

धर्मवत्सल श्रीराम अपने बाणों से उस गदा को नष्ट कर, घबराये हुए खर से उपहासपूर्वक बोले—

एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम।
शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमवगर्जसि॥ २॥

हे राक्षसाधम! क्या यही तुम्हारा सम्पूर्ण बल था जिसे तुमने गदा फेंककर दिखाया है। अब तो तुझे पता लगा गया कि तू शक्ति में मुझसे हीन है और तेरा डींग मारना व्यर्थ है।

यत्त्वयोक्तं विनष्टानामहमश्रुप्रमार्जनम्।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः॥ ३॥

तूने जो कहा था कि—"मैं तुझे मारकर राक्षसों की विधवाओं और अनाथ बच्चों के आँसू पोंछूँगा" —तेरी वह प्रतिज्ञा भी झूठी हो गई।

नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा॥ ४॥

जैसे गरुत्मान् ने अमृत का हरण किया था वैसे ही आज मैं भी तुझ नीच, क्षुद्रस्वभाव और मिथ्याचरण करनेवाले राक्षस का प्राण हरण करूँगा।

प्रविद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने।
भविष्यन्त्यशरण्यानां शरण्या दण्डका इमे॥ ५॥

अरे राक्षसाधम! जब तू महानिद्रा में सो जायेगा तब दण्डक वन आर्त्त-ऋषियों के लिए सुख से निवास करने योग्य स्थान बन जायेगा।

अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः।
बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः॥ ६॥

दूसरों को भयभीत करनेवाली राक्षसियाँ अपने बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर दीनभाव से रोती हुईं और भयभीत होकर आज यहाँ से भाग जायेंगी।

नृशंस नीच क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक।
यत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः॥ ७॥

रे निष्ठुर! नीच! ब्राह्मणों के द्वेषी, क्षुद्रात्मा! तुम्हारे भय के कारण मुनि लोग निःशंक होकर यज्ञ भी नहीं कर पाते।

तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं रणे।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वनः॥ ८॥

जब क्रुद्ध हो श्रीराम ने खर से ऐसे वचन कहे तब खर भी कुपित हो, उच्च स्वर से राम की भर्त्सना करते हुए बोला—

दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः।
वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्युवश्यो न बुध्यसे॥ ९॥

निश्चय ही तू बड़ा अभिमानी है जो भय के उपस्थित होने पर भी निर्भय-सा बना हुआ है। तेरी मृत्यु निकट है, इसीलिए तुझे बोलते हुए यह भी समझ में नहीं आता कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं।

कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रयाः॥ १०॥

कालपाश में बँधे हुए मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि उसकी अन्तःकरण आदि छहों इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है।

एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः॥ ११॥

राम को ऐसा कहकर और भौंहें तानकर उस खर ने निकट ही साल का एक बहुत बड़ा वृक्ष देखा।

तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनद्य च महाबलः।
राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत॥ १२॥

उस वृक्ष को उखाड़ और घोर गर्जना कर खर ने उस वृक्ष को दोनों भुजाओं से उठाकर राम के ऊपर यह कहकर फेंका—"बस, अब तू मारा गया।"

तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान्।
रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम्॥ १३॥

प्रतापी राम ने उस साल वृक्ष को अपनी ओर आते देख उसे बाणों से छिन्न-भिन्न कर डाला और संग्राम में खर का वध करने के लिए भयंकर क्रोध किया।

जातस्वेदस्ततो रामो रोषाद्रक्तान्तलोचनः।
निर्बिभेद सहस्त्रेण बाणानां समरे खरम्॥ १४॥

उस समय श्रीराम पसीने से तर हो रहे थे और क्रोध के कारण उनकी आँखें लाल हो रही थीं, अतः उन्होंने एक साथ अनेक बाणों से खर को युद्ध में बुरी तरह छेद डाला।

विह्वलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्याद्रवद्द्रुतम्॥ १५॥

जब श्रीराम ने उस युद्ध में खर को बाणों के आघात से व्याकुल कर दिया अपने शरीर से निकलते हुए रक्त की गन्ध से मतवाला होकर वह बड़े वेग से राम की ओर झपटा।

तमापन्ततं संरब्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम्।
अपासर्पद् द्वि-त्रिपदं किञ्चित्त्वरितविक्रमः॥ १६॥

रक्त से सने हुए क्रोधातुर खर को अपनी ओर आते हुए देख शस्त्रविशारद श्रीराम शीघ्रतापूर्वक अपने स्थान से दो तीन-पग पीछे हट गये। (पीछे हटने का कारण भय नहीं था, अपितु अस्त्र चलाने के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता थी।)

ततः पावकसङ्काशं ब्रह्मदण्डमिवापरम्।
सन्दधे चापि धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति॥ १७॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा श्रीराम ने दूसरे ब्रह्मदण्ड और अग्नि के समान तेजस्वी एक बाण को धनुष पर रखकर खर के ऊपर छोड़ा।

स विमुक्तो महाबाणो खरस्योरसि चापतत्।
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना॥ १८॥

श्रीराम के द्वारा छोड़ा हुआ वह भयंकर प्राण खर की छाती में जाकर लगा। उस बाण से निकली अग्नि से खर दग्ध होकर पृथिवी पर गिर पड़ा और मर गया।

ततो राजर्षयः सर्वे सङ्गताः परमर्षयः।
सभाज्य मुदिता राममिदं वचनमब्रुवन्॥ १९॥

तब दण्डक वन के सब राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि एकत्र हो श्रीराम के पास आये और उनका सम्मान कर प्रसन्न होते हुए बोले—

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज।
सुखं धर्मं चरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः॥ २०॥

हे दशरथनन्दन राम! राक्षस वधरूपी हमारा यह कार्य तुमने कर दिया। अब इस दण्डकवन में महर्षिगण सुख से धर्मानुष्ठान किया करेंगे।

रामस्योपरि संहृष्टा ववृषुर्विस्मितास्तदा।
अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः॥ २१॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
खरदूषणमुख्यानां निहतानि महाहवे॥ २२॥

उन ऋषियों ने हर्षित हो श्रीराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की। वे ऋषिगण विस्मित थे कि उस महायुद्ध में श्रीराम ने खर-दूषण आदि मुख्य राक्षसोंसहित चौदह सहस्र घोर कर्म करनेवाले राक्षसों को तीन ही घड़ी[१] में कैसे मार डाला।

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमं सुखी॥ २३॥

इसी बीच शूरवीर लक्ष्मण सीताजी को साथ लिये हुए गिरिगृहा से निकल कर और श्रीराम के पराक्रम से प्रसन्न होते हुए आश्रम में पहुँचे।

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥ २४॥

शत्रुहन्ता एवं महर्षियों को आनन्द देनेवाले श्रीराम को सकुशल देख जनकनन्दिनी सीता प्रसन्न हुई और अपने पति का आलिंगन किया।

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

अकम्पन का रावण को खर-दूषण के वध का समाचार देना और रावण का मारीच के पास पहुँचना—

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः।
प्रविश्य लंकां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

खर-दूषण आदि राक्षसों के मारे जाने के पश्चात् अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतापूर्वक लंका में गया। वहाँ जाकर वह रावण से बोला—

जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः।
खरश्च निहतः संख्ये कथञ्चिदहमागतः॥ २॥

हे राजन्! जनस्थान में रहनेवाले बहुत सारे राक्षस खरसहित युद्ध में मारे गये। मैं किसी प्रकार[२] बचकर यहाँ आया हूँ।

एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव चक्षुषा॥ ३॥

अकम्पन के ऐसा कहने पर रावण क्रुद्ध होकर

---

१. ढाई घड़ी का एक घण्टा होता हैं, अतः लगभग सवा घण्टा।

२. कथञ्चिद्=किसी प्रकार का भाव भूषण टीकाकार ने यह दर्शाया है कि अकम्पन स्त्री-वेश धारण करके भागा था।

लाल-लाल आँखों से मानो उसे भस्म करते हुए बोला—

**केन रम्यं जनस्थानं हतं मम परासुना।
को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं चाधिगमिष्यति॥ ४॥**

किस मुमूर्षु (मरने की इच्छावाले) ने मेरे रमणीय जनस्थान को नष्ट किया है? ऐसा कौन अभागा है जो संसार में रहना नहीं चाहता?

**तथा क्रुद्धं सुग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः।
भयात्सन्दिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम्॥ ५॥**

रावण को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर अकम्पन बहुत डरा और हाथ जोड़कर लड़खड़ाती वाणी से उससे अभय की याचना की।

**दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः।
स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसन्दिग्धमकम्पनः॥ ६॥**

जब राक्षसश्रेष्ठ रावण ने उसे अभयदान दिया तब विश्वस्त होकर अकम्पन ने स्पष्ट रूप से सब वृत्तान्त कहा।

**पुत्रो दशरथस्यास्ति सिंहसंहननो युवा।
हतं तेन जनस्थानं खरश्च सहदूषणः॥ ७॥**

उसने कहा—महाराज! सिंह के समान सुन्दर शरीर अवयव वाले, तरुण श्रीराम ने, जो दशरथ के पुत्र हैं, जनस्थान में आकर खर और दूषण को मारा है।

**अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
जनस्थानं गमिष्यामि हन्तुं रामं सलक्ष्मणम्॥ ८॥**

अकम्पन की बात सुन रावण ने कहा—राम और लक्ष्मण को मारने के लिए मैं स्वयं जनस्थान में जाऊँगा।

**अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः।
शृणु राजन् यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम्॥ ९॥**

रावण की बात सुन अकम्पन बोला—हे राजन्! श्रीराम जैसे चरित्रवान्, बलवान् एवं पुरुषार्थी हैं—वह मैं कहता हूँ, आप सुनिए।

**असाध्यः कुपितो रामो विक्रमणे महायशाः।
आपगायाः सुपूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः॥ १०॥**

महायशस्वी राम जब क्रुद्ध होकर संग्राम में खड़े हों, तब उनका सामुख्य करना असाध्य है। बाणविद्या में वे ऐसे निष्णात हैं कि जल से पूर्णनदी के प्रवाह को अपने बाणों से रोक सकते हैं।

**न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं त्वया युधि।
रक्षसां वाऽपि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव॥ ११॥**

हे दशग्रीव! युद्ध में तुम राम को नहीं जीत सकते। सम्पूर्ण राक्षसों की सहायता से भी तुम राम पर उसी प्रकार विजय नहीं पा सकते जैसे अधर्मीजन स्वर्ग नहीं पा सकते।

**न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तं ममैकमनाः शृणुः॥ १२॥**

मेरे विचार में सब देव और असुर मिलकर भी श्रीराम को नहीं मार सकते। उसके मारने का केवल एक ही उपाय है। वह मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिए।

**भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा।
श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता॥ १३॥**

श्रीराम की धर्मपत्नी जिसका नाम सीता है, संसार की स्त्रियों में सर्वाधिक सुन्दर है, उसकी कमर पतली हैं, उसके शरीर का प्रत्येक अङ्ग सुन्दर और सुडौल है। वह युवती है और रत्नजटित आभूषणों से सुभूषित है।

**नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा नाऽपि दानवी।
तुल्या सीमन्तिनी तस्या मानुषीषु कुतो भवेत्॥ १४॥**

सौन्दर्य में देव, गन्धर्व, अप्सरा और दानव-जाति में कोई स्त्री उसके तुल्य नहीं है, फिर सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

**तस्यापहर भार्यां त्वं प्रमथ्य तु महावने।
सीतया रहितः कामी रामो हास्यति जीवितम्॥ १५॥**

तुम उस महावन में जा छल-कपट से जैसे भी सम्भव हो उसकी स्त्री को हर लाओ। सीता के वियोग

में वह कामी राम अपने प्राण त्याग देगा।

अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह॥ १६॥

महाबाहु राक्षसेश्वर रावण को अकम्पन का बतलाया हुआ यह उपाय पसन्द आया। कुछ सोचकर उसने अकम्पन से कहा—

बाढं काल्यं गमिष्यामि ह्येकः सारथिना सह।
आनयिष्यामि वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम्॥ १७॥

बहुत अच्छा! मैं कल प्रात:काल अपने सारथि के साथ अकेला जाऊँगा और प्रसन्नतापूर्वक सीता को इस महानगरी लंकापुरी में ले आऊँगा।

अथैवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः।
स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत्॥ १८॥

अकम्पन से ऐसा कहकर रावण खच्चरों से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर चला। लम्बी यात्रा करने के पश्चात् वह ताटका-पुत्र मारीच के आश्रम में पहुँचा।

तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ १९॥

आसन, अर्घ्य, उदक=जल आदि के द्वारा मारीच ने स्वयं रावण का सत्कार किया। तदनन्तर उसने रावण के प्रयोजन की बात की।

कच्चित्सुकुशलं राजंल्लोकानां राक्षसेश्वर।
आशङ्केनाथ जाने त्वं यतस्तूर्णमिहागतः॥ २०॥

हे राजन्! राक्षसेश्वर! कहिए राक्षस लोग सकुशल तो हैं? हे नाथ! आपके हड़बड़ा कर यहाँ आने के कारण मुझे राक्षसों के सकुशल होने में सन्देह हो रहा है।

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः॥ २१॥

मारीच के ऐसा पूछने पर महातेजस्वी एवं वाक्यविशारद रावण बोला—

आरक्षो ये हतस्तात रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम्॥ २२॥

हे तात! मृदुकर्म करनेवाले राम ने जनस्थान में रहनेवाले मेरे सभी आरक्षकों (सीमा की रक्षा करनेवालों) को मार दिया है और मेरे अजेय जनस्थान को भी युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।

तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे।
राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ २३॥

अब मैं श्रीराम की धर्मपत्नी सीता का अपहरण करूँगा? इस कार्य में आप मेरी सहायता करें। राक्षसराज रावण की यह बात सुनकर मारीच ने कहा—

आख्याता केन सीता सा मित्ररूपेण शत्रुणा।
त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः॥ २४॥

मित्र के रूप में किस शत्रु ने सीता का परिचय और उसके अपहरण की सम्मति तुम्हें दी है? हे राक्षसशार्दूल! आपके द्वारा सम्मानित वह कौन है जो तुम्हारे ऐश्वर्य की वृद्धि नहीं चाहता, तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर जलता है।

सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे।
रक्षो लोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति॥ २५॥

"सीता का अपहरण कर यहाँ ले आओ"—यह बात तुमसे किसने कही है, यह मुझे बताओ। वह कौन है जो सम्पूर्ण राक्षसवंश की कीर्ति और गौरव को नष्ट करना चाहता है?

प्रोत्साहयति कश्च त्वां स हि शत्रुरशंसयः।
आशीविषमुखद्दंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया॥ २६॥

इस निन्दित कर्म के लिए जिसने तुम्हें प्रोत्साहन किया है वह नि:सन्देह तुम्हारा शत्रु है, क्योंकि वह तुम्हारे हाथ से विषधर सर्प के मुख में से विषदन्त उखड़वाना चाहता है।

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्त-
स्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः
स संयुगे राघवगन्धहस्ती॥ २७॥

हे रावण! विशुद्ध वंश में उत्पन्न होना ही जिसकी लम्बी सूँड है, प्रताप जिसका मद है, जिसकी दोनों

भुजाएँ ही हाथी के विशाल दाँतों के तुल्य हैं, ऐसे रामरूपी गन्ध हस्ती को संग्राम में कोई देख भी नहीं सकता, लड़ना तो दूर की बात है।

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं
रामः सभार्यो रमतां वनेषु॥ २८॥

अतः हे लङ्केश्वर! आप प्रसन्न हों और लङ्का पर कृपा करें। आप प्रसन्नतापूर्वक सीधे लङ्का को लौट जाइए। आप सुमार्गगामी होकर अपनी पत्नियों के साथ रमण करें और श्रीराम प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी के साथ विहार करें।

एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः।
न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम्॥ २९॥

मारीच के इस प्रकार समझाने-बुझाने पर दशग्रीव लङ्कापुरी को लौटा और अपने श्रेष्ठ महल में प्रविष्ट हुआ।

◀ द्वाविंशः सर्गः ▶ (२२)

शूर्पनखा का रावण को सीताहरण के लिए उकसाना—

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम्॥ १॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसा सह।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम्॥ २॥

जब शूर्पनखा ने देखा कि खर, दूषण और त्रिशिरासहित चौदह सहस्र भयंकर एवं क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसों को युद्ध में अकेले श्रीराम ने मार दिया है तब वह बहुत घबराई और अपने भाई रावण द्वारा रक्षित लङ्का की ओर प्रस्थान किया।

सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम्।
उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम्॥ ३॥

वहाँ पहुँचकर शूर्पनखा ने देखा कि सात मञ्जिलवाले राजप्रासाद के अग्रभाग में तेजस्वी रावण ऐसे बैठा हुआ है जैसे देवताओं से घिरा हुआ इन्द्र बैठा हो।

रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम्।
अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला॥ ४॥

शत्रुहन्ता मन्त्रियों से घिरे हुए रावण के समीप जा, भय से व्याकुल राक्षसी शूर्पनखा ने उससे कहा—

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे॥ ५॥

हे रावण! नीति-मर्यादा को त्याग निरङ्कुश होकर तुम कामभोगों में प्रवृत्त होकर मतवाला हो रहे हो, अतः राक्षसजाति पर जो घोर संकट इस समय उपस्थित है, जिसे तुम्हें जानना चाहिए तुम उससे सर्वथा असावधान हो।

आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः।
अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि॥ ६॥

एक तो तुम चञ्चल हो, दूसरे तुम यत्न करने में असावधान हो, तीसरे तुम दूतों के सञ्चार से हीन हो (अर्थात् तुम्हारे दूत सर्वत्र नियुक्त नहीं हैं।) फिर तुम जितेन्द्रिय देव-दानव और गन्धर्वों का विरोध कर राज्य कैसे कर सकते हो?

येषां चारश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर।
अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः॥ ७॥

हे विजेताओं में श्रेष्ठ रावण! जिन राजाओं के गुप्तचर, कोश और राजनीति उनके अपने अधीन नहीं हैं (जो मन्त्रियों पर निर्भर हैं) वे राजा राजा न होकर साधारण जनों की कोटि में आ जाते हैं।

यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान् नराधिपाः।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः॥ ८॥

राजा लोग दूर देशों के समस्त वृत्तान्तों को गुप्तचरों के द्वारा जानते रहते हैं, इसीलिए उन्हें दीर्घचक्षु कहते हैं।

अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृत्तम्।
स्वजनं तु जनस्थानं हतं यो नावबुध्यसे॥ ९॥

साधारण बुद्धिवाले मन्त्रियों से घिरे हुए तुम्हारा कोई गुप्तचर विभाग दिखाई नहीं देता, इसीलिए जनस्थानवासी अपने कुटुम्बियों के वध का समाचार भी तुम्हें ज्ञात नहीं।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां क्रूरकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः॥ १०॥

खर और दूषणसहित चौदह सहस्र क्रूरकर्मा राक्षसों को अकेले श्रीराम ने मार डाला।

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ ११॥

इतना ही नहीं धर्मात्मा राम ने जनस्थान का विध्वंस कर दण्डक वन को आतंकरहित कर दिया है और ऋषियों को अभय प्रदान किया है।

त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च रावण।
विषये स्वे समुत्पन्नं भयं यो नावबुध्यसे॥ १२॥

हे रावण! तू कामलोलुप, मदमत्त और पराधीन होने के कारण अपने राज्य के ऊपर आये हुए संकट को भी नहीं समझता।

नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भविष्यति॥ १३॥

जो राजा अपने कर्तव्य का यथावत् पालन नहीं करता और भय उपस्थित होने पर उसका प्रतिकार नहीं करता ऐसा भाग्यहीन राजा शीघ्र ही राज्य से च्युत हो जाता है तथा प्रजा की दृष्टि में वह तिनके के समान तुच्छ हो जाता है।

ततः शूर्पणखां क्रुद्धां ब्रुवन्तीं परुषं वचः।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः॥ १४॥

तदनन्तर क्रोध में भरकर कठोर वचन कहनेवाली शूर्पनखा से, मन्त्रिमण्डल के मध्य वर्तमान रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा––

कश्च रामः कथंवीर्यः किं रूपं किं पराक्रमः।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टः स दुरासदम्॥ १५॥

यह राम कौन है? इसका बल किस प्रकार का है, उसका रूप और पराक्रम कैसा है और वह इस दुर्गम दण्डक वन में क्यों आया है?

इत्युक्तो राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ १६॥

राक्षसराज रावण के ऐसा पूछने पर क्रोध से मूर्च्छित शूर्पनखा ने राम का यथार्थ वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—

दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः॥ १७॥

दशरथनन्दन श्रीराम दीर्घबाहु, विशाल, नेत्र, चीर और काले मृग का चर्म धारण किये हुए हैं। वे कामदेव के समान सुन्दर हैं।

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥ १८॥

उनका छोटा भाई लक्ष्मण अत्यन्त पराक्रमी और महातेजस्वी है। गुण और पराक्रम में वह अपने भाई के तुल्य ही है। वह उसका भक्त और अनुरक्त है।

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः॥ १९॥

वह लक्ष्मण, क्रोधी, दुर्जेय, विजयी, पराक्रमी, बुद्धिमान् और बलवान् है। वह राम का दाहिना हाथ और शरीर से बाहर रहनेवाला राम का प्राण ही है।

रामस्य तु विशालाक्षी पुर्णेन्दुसदृशानना।
धर्मपत्नी प्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते रता॥ २०॥

पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाली, विशाल नेत्रोंवाली, सदा पति के हित में रत रहनेवाली श्रीराम की धर्मपत्नी उन्हें अत्यन्त प्रिय है।

नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी।
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले॥ २१॥

उसके सौन्दर्य की टक्कर की न तो कोई देवी है,

न कोई गन्धर्वी न कोई यक्षिणी और न ही कोई किन्नरी। इस पृथिवी तल पर मैंने ऐसी सुन्दरी स्त्री इससे पहले कभी नहीं देखी।

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
तवानुरूपा भार्या स्यात्त्वं च तस्यास्तथा पतिः॥ २२॥

वह सीता, सुन्दर शरीरवाली और भूतल पर अनुपम सुन्दरी है। वह तुम्हारी भार्या होने योग्य है और तुम उसके पति होने योग्य हो।

भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्।
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज॥ २३॥

हे विशालभुज! जब मैं उस अनिन्द्य सुन्दरी सीता को तेरी भार्या बनाने के लिए लाने को उद्यत हुई तब निर्दयी लक्ष्मण ने मेरे दोनों कान और नाक काट डाली।

रोचते यदि ते वाक्यं ह्रियतामबला बलात्।
सीता सर्वानवद्याङ्गी भार्यार्थे राक्षसेश्वर॥ २४॥

हे राक्षसेश्वर! यदि तुम्हें मेरी बात रुचिकर लगे तो उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अबला सीता को अपनी स्त्री बनाने के लिए बलपूर्वक हर लाओ।

≺ त्रयोविंशः सर्गः ≻ (२३)

रावण का पुनः मारीचाश्रम में जाना—

ततः शूर्पणखावाक्यं तत् श्रुत्वा रोमहर्षणम्।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम सः॥ १॥

शूर्पनखा के उन रोमाञ्चकारी वचनों को सुन, मन्त्रियों से इस विषय में विचार-विमर्श कर तथा उन्हें विदा कर और अपने कर्तव्य का निश्चय कर रावण जाने के लिए तैयार हुआ।

काञ्चनं रथमास्थाय कामगं रत्नभूषितम्।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान् ययौ नदनदीपतिम्॥ २॥

इच्छानुसार चलनेवाले, रत्नजटित काञ्चनरथ पर बैठकर राक्षसराज रावण समुद्र की ओर प्रस्थानित हुआ।

तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः।
ददर्शाश्रममेकान्ते रम्ये पुण्ये वनान्तरे॥ ३॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटावल्कलधारिणम्।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम्॥ ४॥

समुद्र के उस पार जाकर रावण ने वन के मध्य, एकान्त में एक रमणीय पुण्याश्रम को देखा। उस आश्रम में कृष्णमृगचर्म ओढ़े हुए, सिर पर जटा धारण किये हुए और नियत आहार करनेवाले मारीच नामक राक्षस को भी उसने देखा।

विशेष—कुछ लोगों के मतानुसार आधुनिक मुंबई नगरी ही मारीच के रहने का स्थान था, इसीलिए वह मोहमयीपुर कहलाता है।

स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा।
अर्थोपहतया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥

रावण के वहाँ पहुँचने पर उसका विधिवत् स्वागत-सत्कार कर मारीच ने उससे यह अर्थयुक्त वचन कहा—

कच्चित्सुकुशलं राजंल्लङ्कायां राक्षसेश्वर।
केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेवमिहागतः॥ ६॥

हे राक्षसराज! कहिए लङ्का में कुशल तो है? तुम्हारे पुनः इतनी शीघ्र यहाँ आने का कारण क्या है?

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
तं तु पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः॥ ७॥

जब मारीच ने ऐसा कहा तब महातेजस्वी, बातचीत करने में पटु रावण ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः॥ ८॥

हे तात मारीच! मैं जो कहता हूँ उसे आप सुनो।

मैं इस समय बहुत दु:खी हूँ और इस समय आप ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम्।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैर्मानुषेण पदातिना॥ ९॥

पैदल चलनेवाले मनुष्य राम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से चौदह उग्रकर्मा राक्षसों को मार डाला।

खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः।
हतश्च त्रिशिरश्चापि निर्भया दण्डकाः कृताः॥ १०॥

इतना ही नहीं उस राम ने युद्ध में खर-दूषण और त्रिशिरा को भी मार दिया तथा दण्डक-वनवासियों को निर्भय कर दिया।

पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षणजीवितः।
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः॥ ११॥

जिस क्षणजीवी राम को पिता ने क्रुद्ध होकर स्त्रीसहित राजधानी से बाहर निकाल दिया, क्षत्रियकुलकलंक उसी राम ने इस समस्त सेना का संहार किया है।

दु:शीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः।
त्यक्त्वा धर्ममधर्मात्मा भूतानामहिते रतः॥ १२॥

वह चरित्रहीन, कर्कश, तीक्ष्ण स्वभाववाला, मूर्ख, लोभी और अजितेन्द्रिय है। धर्म को त्यागकर वह अधर्मात्मा सदा प्राणियों का अहित किया करता है।

येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमाश्रित्य केवलम्।
कर्णनासापहरणाद्भगिनी मे विरूपिता॥ १३॥

उसने बिना वैर ही केवल अपने बल के घमण्ड में मेरी बहन की नाक और कान काटकर उसे कुरूप बना दिया है।

तस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम्।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव॥ १४॥

इसके बदले मैं देवकन्या के तुल्य कमनीय कान्तिवाली उसकी भार्या सीता को उठा लाऊँगा। आप इस कार्य में मेरी सहायता करें।

वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव।
उपायज्ञो महाञ्शूरः सर्वमायाविशारदः॥ १५॥

पराक्रम में, युद्ध में और मान-मर्दन में तुम्हारे सदृश और कोई नहीं है। तुम उपाय जाननेवाले, शूरवीर और मायाविशारद–रूप और बोली बदलने में पण्डित हो।

एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम॥ १६॥

हे निशाचर! इसीलिए मैं तेरे पास आया हूँ। अब तुम्हें मेरी जो सहायता करनी पड़ेगी वह मैं बताता हूँ, सुनो।

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतयाः प्रमुखे चर॥ १७॥

तुम रजत–चाँदी के बिन्दुओं से चित्रित सोने का मृग बनकर राम के आश्रम में जाकर सीता के समक्ष विचरो।

त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणाम्।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति॥ १८॥

मृगरूपधारी तुम्हें देखकर सीता निश्चय ही अपने पति राम और देवर लक्ष्मण से कहेगी कि इस हिरण को पकड़ लाओ।

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव॥ १९॥

जब राम-लक्ष्मण तुझे पकड़ने के लिए आश्रम से दूर चले जायेंगे तब मैं उस आश्रम में जा बिना किसी बाधा के सुखपूर्वक सीता का उसी प्रकार अपहरण करूँगा जैसे राहु चन्द्रमा की प्रभा का अपहरण करता है।

तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः।
शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव ह॥ २०॥

रावण के मुख से महात्मा राम की चर्चा सुनकर मारीच का मुख सूख गया और वह भय से संत्रस्त हो गया।

➤ चतुर्विंशः सर्गः ➤ (२४)

मारीच का हितोपदेश—

तत् श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो मारीचो राक्षसेश्वरम्॥ १॥

महाप्राज्ञ राक्षसराज रावण की बातों को सुनकर बातचीत करने में चतुर मारीच ने कहा—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ २॥

हे राजन्! संसार में निरन्तर प्रिय बोलनेवाले लोग सदा सुलभ हैं, परन्तु कहने में अप्रिय किन्तु वास्तव में हितकारी वचनों के कहने और सुननेवाले लोग संसार में दुर्लभ हैं।

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यं गुणोन्नतम्।
अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम्॥ ३॥

गुप्तचरों की नियुक्ति न करने और चञ्चल स्वभाव के कारण, महापराक्रमी श्रेष्ठ गुणवाले, इन्द्र तथा वरुण के तुल्य राम को आप निश्चय ही नहीं जानते।

न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथञ्चन।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः॥ ४॥

न तो श्रीराम को उनके पिता ने निकाला है, न वे किसी प्रकार से मर्यादाहीन हैं, न वह लोभी हैं, न वह आचारहीन हैं और न ही क्षत्रिय-कुलकलंक हैं।

न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः।
न तीक्ष्णो न च भूतानां सर्वेषामहिते रतः॥ ५॥

कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले राम धर्म और सद्‌गुणों से रहित नहीं हैं, न वह उग्रस्वभाव हैं और न ही प्राणियों को सताते हैं, अपितु वह तो सबके हितैषी हैं।

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः।
अनृतं दुःश्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि॥ ६॥

हे रावण! राम न तो कठोर-हृदय हैं, न मूर्ख और न ही अजितेन्द्रिय हैं, उनके विषय में तुमने जो अनर्गल प्रलाप किया है वह तुम्हें नहीं करना चाहिए।

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव॥ ७॥

राम धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं, वह साधु-स्वभाव और सत्यपराक्रमी हैं। जिस प्रकार इन्द्र देवताओं के राजा हैं उसी प्रकार राम सम्पूर्ण लोक के स्वामी हैं।

कथं त्वं तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
इच्छसि प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः॥ ८॥

अपने पतिव्रत धर्म से स्वयं ही रक्षित तथा राम के तत्त्वावधान में सुरक्षित सूर्य की प्रभा के सदृश सीता को तुम बलात् कैसे हरण करना चाहते हो?

शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि॥ ९॥

असह्य बाणरूपी ज्वाला से युक्त, स्पर्श के अयोग्य, धनुष और तलवार रूपी ईंधन से युक्त रामरूपी प्रदीप्त अग्नि में कूदने का दुःसाहस करना तुम्हें उचित नहीं है।

किमुद्यममिमं व्यर्थं कृत्वा ते राक्षसाधिप।
दृष्टाश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तं तव जीवितम्॥ १०॥

हे राक्षसराज! तुम यह व्यर्थ का उद्योग क्यों करना चाहते हो? यदि तुम संग्राम में श्रीराम के सामने पड़ गये तो फिर जीते नहीं बच सकोगे।

जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम्।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्॥ ११॥

हे रावण! यदि तुम जीवन, सुख और दुर्लभ राज्य को चिरकाल तक भोगना चाहते हो तो राम से विरोध मत करो।

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत्।
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षस॥ १२॥

हे रावण! संसार में परस्त्री-गमन से बढ़कर और कोई पातक नहीं है, अतः आप अपनी स्त्रियों से ही प्रीति करें और अपने कुल की रक्षा करें।

➤ पञ्चविंशः सर्गः ➤ (२५)

रावण का मारीच को धमकाना और उसका सहायता देने के लिए तैयार होना—

मारीचेन तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं निशाचरः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम्॥ १॥

मारीच के युक्तियुक्त और शिक्षाप्रद वचनों को रावण ने उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जैसे मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ व्यक्ति ओषधि को ग्रहण नहीं करता।

तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः॥ २॥

उस समय काल से प्रेरित सन्निहित मृत्युवाला रावण युक्तियुक्त एवं हितकारी वचन कहनेवाले मारीच से कठोर और अनुचित वचन बोला—

यत्किलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थमुप्तं बीजमिवोषरे॥ ३॥

हे मारीच! तूने मेरी इच्छा के विरुद्ध जो कुछ मुझसे कहा है वह ऊसर भूमि में बीज बोने के समान मेरे लिए सर्वथा निष्फल है।

त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे।
पापशीलस्य मूर्खस्य मानुषस्य विशेषतः॥ ४॥

पापाचारी, मूर्ख और विशेष कर मनुष्य राम से संग्राम करने के लिए मुझे तुम इन बातों से रोक नहीं सकते।

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव सन्निधौ॥ ५॥

हे मारीच! युद्ध में खर का वध करनेवाले राम की उस प्राणप्रिय सीता का मैं तेरे ही सामने अवश्य हरण करूँगा।

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच वर्तते।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः॥ ६॥

हे मारीच! यह मेरा बुद्धिपूर्वक निश्चित हृदय का विचार है। मेरे इस विचार को सुर-असुर और यहाँ तक कि इन्द्र भी परिवर्तित नहीं कर सकता।

दोषं गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि।
अपायं वाऽप्युपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये॥ ७॥

यदि मैं तुमसे सीताहरण के विषय में उपाय-अपाय, गुण-दोष आदि के विषय में पूछता तो तुम्हें इस प्रकार की बातें कहनी चाहिए थीं।

गुणदोषौ न पृच्छामि क्षमं चात्मनि राक्षस।
अस्मिंस्तु त्वं महाकृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ ८॥

हे राक्षस! मैंने तुझसे गुण-दोष तथा हानि-लाभ की बात नहीं पूछी। मेरा तो यह कहना है कि सीताहरणरूपी इस महाकार्य में तुम मेरी सहायता करो।

न चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वाममद्य वै।
एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि॥ ९॥

हे मारीच! यदि तुम मेरा यह काम नहीं करोगे तो मैं आज ही तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा। तुम्हें मेरा यह कार्य अपनी इच्छा के विरुद्ध भी करना ही होगा।

आज्ञप्तोऽराजवद्वाक्यं प्रतिकूलं निशाचरः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं मारीचो राक्षसाधिपम्॥ १०॥

रावण ने जब राजाज्ञा के समान यह प्रतिकूल आज्ञा दी तब मारीच ने निर्भय हो उससे ये कठोर वचन कहे—

केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा।
सपुत्रस्य सराष्ट्रस्य सामात्यस्य निशाचर॥ ११॥

हे राक्षस! किस पापी ने तुम्हें यह उपदेश दिया है, जिससे तुम अपने पुत्र, राज्य और मन्त्रिमण्डल सहित सर्वनाश को प्राप्त हो?

कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः॥ १२॥

हे राजन्! वह कौन पापी पुरुष हैं जो तुम्हें इस

प्रकार सुखी देखकर प्रसन्न नहीं होता? किसने नीतिपूर्वक तुम्हें यह मृत्यु का द्वारा बताया है?

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ १३॥

हे रावण! जिन राक्षसों का राजा तुम्हारे जैसा क्रूर-स्वभाव, निर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय हो, वे राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे।

तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया।
अत्रैव शोचनीयस्त्वं ससैन्यो विनशिष्यसि॥ १४॥

इस घोर कार्य में हाथ डालने से मैं तो बे-मौत मारा जाऊँगा, मुझे इसका शोक नहीं, मुझे शोक तो इस बात का है कि तुम सेनासहित मारे जाओगे।

मां निहत्य नु रामश्च न चिरात्त्वां वधिष्यति।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये यदरिणा हतः॥ १५॥

मुझे मारकर राम अवलिम्ब ही तुम्हें भी मार डालेगा, इसीलिए मैं शत्रु राम के द्वारा मारे जाने पर अपने को कृतकृत्य[1] समझता हूँ।

दर्शनादेव रामस्य हतं मामुपधारय।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम्॥ १६॥

राम के सामने जाते ही मैं मारा जाऊँगा यह निश्चित है। सीताहरण से तुम भी बन्धु-बान्धवोंसहित अपने आपको मरा ही समझो।

आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया।
नैव त्वमसि नाहं च नैव लङ्का न राक्षसाः॥ १७॥

मान लो, यदि तुम मेरे साथ रामाश्रम से सीता को हर भी लाये तो भी मैं, तुम, सारी लङ्का और ये राक्षस सभी नष्ट हो जायेंगे।

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः।
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः॥ १८॥

रावण से इस प्रकार के कठोर वचन कहकर मारीच राक्षसराज रावण के भय से दीन हुआ बोला-अच्छा, हम लोग चलें।

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स रावणः।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत्॥ १९॥

मारीच के ऐसा कहने पर रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसका गाढालिंगन कर उससे यह वचन बोला—

एतच्छौण्डीर्ययुक्तं ते मच्छन्दादिव भाषितम्।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो निशाचरः॥ २०॥

हे मारीच! अब तुमने मेरे मन के अनुरूप वीरतापूर्ण बात कही है। अब तुम वस्तुतः मारीच बन गये हो। इससे पूर्व तो मैं तुम्हें एक साधारण राक्षस समझता था।

आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः।
मया सह तथा युक्तः पिशाचवदनैः खरैः॥ २१॥

अब तुम भयंकर मुखवाले खरों से युक्त, रत्नविभूषित आकाशगामी रथ पर मेरे साथ शीघ्र सवार हो लो।

ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम्।
आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात्॥ २२॥

तदनन्तर मारीच और रावण विमान के समान उस रथ पर सवार होकर उस आश्रम से शीघ्र ही चल पड़े।

तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च।
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च॥ २३॥

जाते हुए उन दोनों ने मार्ग में अनेक ग्रामों, पर्वतों, नदियों, राष्ट्रों और नगरों[2] को देखा।

---

१. हनुमन्नाटक में इस स्थिति का चित्रण यूँ किया है—

रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्तव्यं रामो न रावणः॥

—हनुमन्नाटक ३। १५

राम से भी मरना है और रावण से भी। जब दोनों के हाथों ही मरना है तब राम के द्वारा मरना ही उत्तम है, रावण के द्वारा नहीं (राम के हाथ से मरकर इस लोक में यश मिलेगा और स्वामी रावण का कार्य भी सम्पन्न होगा।)

२. कुछ पाश्चात्य लेखकों की मिथ्या धारणा है कि प्राचीन

समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः।
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः॥ २४॥

दण्डक वन में पहुँच कर राक्षसराज रावण और मारीच ने श्रीराम के आश्रम को देखा।

अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात्।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ २५॥

उस स्वर्णविभूषित रथ से नीचे उतर रावण ने मारीच का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—

एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम्।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः॥ २६॥

केले के वृक्षों से घिरा हुआ यही राम का आश्रम है। हे मित्र! जिस कार्य के लिए हम यहाँ आये हैं उसे तुम अब शीघ्र कर डालो।

स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह॥ २७॥

रावण की यह बात सुनकर राक्षस मारीच अद्भुत मृग का रूप धारण कर रामाश्रम के द्वार पर घूमने लगा।

तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना॥ २८॥
अनर्हाऽरण्यवासस्य सा तं हेममयं मृगम्।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना॥ २९॥

उस समय सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली और वनवास के अयोग्य सीता ने पुष्प तोड़ने के लिए इधर-उधर घूमते हुए मणि और मुक्ताओं से चित्रित उस स्वर्णमृग को देखा।

स च तां रामदयितां पश्यन् मायामयो मृगः।
विचचार पुनश्चित्रं दीपयन्निव तद्वनम्॥ ३०॥

वह बनावटी हिरण भी श्रीराम की प्राणप्यारी सीता को देखते हुए उस वन को अपनी कमनीय कान्ति से सुशोभित करते हुए वहाँ विचरने लगा।

अदृष्टपूर्वं तं दृष्ट्वा नानारत्नमयं मृगम्।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा॥ ३१॥

नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अदृष्ट-पूर्व उस मृग को देख जनकदुलारी सीता परम विस्मित हुई।

◀ षड्विंशः सर्गः ▶ (२६)

मृग को पकड़ने के लिए सीता का आग्रह—

सा तं सम्प्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमान्यपचिन्वती।
भर्तारमभि चक्रन्द लक्ष्मणं चापि सायुधम्॥ १॥

पुष्पों को चुनती हुई सर्वाङ्ग सुन्दरी सीता ने उस मृग को देखकर राम और लक्ष्मण को आयुधों सहित आने के लिए उच्चस्वर से पुकारा।

तयाऽऽहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं ददृशतुर्मृगम्॥ २॥

सीता द्वारा बुलाये जाने पर नरकेसरी राम और लक्ष्मण दोनों भाई उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सीता थी। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने भी उस मायामृग को देखा।

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो राममब्रवीत्।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम्॥ ३॥

उस मृग को देखते ही लक्ष्मण के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ और उन्होंने श्रीराम से कहा—मुझे ऐसा

काल में दक्षिण भारत में नगर आदि नहीं थे, किन्तु रावण की लङ्का से पञ्चवटी की यात्रा का विवरण पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि रामायण-काल में दक्षिण भारत में अनेक समृद्ध नगर थे।

प्रतीत होता है कि मृग के रूप में यह राक्षस मारीच है।

मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः॥ ४॥

हे पृथिवीनाथ! रघुकुलभूषण राम! रत्नों से विभूषित इस प्रकार का विचित्र मृग संसार में कभी देखा नहीं गया, अतः निःसन्देह यह सब माया है, बनावट है।

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना॥ ५॥

छद्म-वेषधारी मायामृग को देखने से हतबुद्धि हुई सीता लक्ष्मण को बोलने से रोककर परम प्रसन्न हो एवं मुस्करा कर श्रीराम से बोली—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति॥ ६॥

हे आर्यपुत्र! यह परम मनोहर मृग मेरे मन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। हे महाबाहो! आप इसे पकड़ लाओ। यह हम लोगों के लिए मन बहलाव का साधन सिद्ध होगा।

न चास्य सदृशो राजन् दृष्टपूर्वो मृगः पुरा।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथाऽयं मृगसत्तमः॥ ७॥

हे राजन्! इस मृग के समान तेजस्वी, सौम्य और कान्तिमान् मृग मैंने पहले कभी भी नहीं देखा।

नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नबिन्दुसमाचितः।
द्योतयन्वनमव्यग्रं शोभते शशिसन्निभः॥ ८॥

इसका रंग-बिरंगा, बीच-बीच में रत्न की बिन्दुओं से युक्त शरीर कैसा शोभा दे रहा है! यह मृग चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण वनभूमि को शान्तभाव से प्रकाशित कर रहा है।

अहो रूपमहो स्वरसम्पच्च शोभना।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे॥ ९॥

अहो! इसका रूप कैसा अनुपम है, इसकी कान्ति कितनी प्रिय है और इसकी स्वरलहरी कितनी मनोहर है। हे राम! विचित्र अङ्गोंवाला यह हिरण मेरे मन को हर रहा है।

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति॥ १०॥

यदि यह मृग जीवित पकड़ लिया जाए तो यह एक आश्चर्यप्रद पदार्थ आश्रम में रहकर विस्मय उत्पन्न किया करेगा।

समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः।
अन्तःपुरविभूषार्थो मृग एष भविष्यति॥ ११॥

हम लोगों का वनवास समाप्त हो जाने पर जब हम लोग राजसिंहासन पर आरूढ़ हो जायेंगे तब यह मृग हमारे अन्तःपुर (रनिवास) की शोभा बढ़ायेगा।

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि।
शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम्॥ १२॥

यदि यह मृग मारा ही गया तो इसकी स्वर्णमयी मृगछाला को चटाई के ऊपर बिछाकर मैं उस पर बैठना पसन्द करूँगी।

एवं सीतावचः श्रुत्वा तं दृष्ट्वा मृगमद्भुतम्।
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः॥ १३॥
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः।
इह त्वं भव सन्नद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्॥ १४॥

सीता के ऐसे वचनों को सुनकर और उस अद्भुत मृग को देखकर श्रीराम का मन भी उस पर मुग्ध हो गया। सीता द्वारा प्रेरित करने पर राम ने अपने भाई लक्ष्मण से कहा—तुम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर और सावधान रहकर सीता की रक्षा करो।

◀ सप्तविंशः सर्गः ▶ (२७)

मृग को पकड़ने के लिए राम का प्रस्थान और सीता की लक्ष्मण को फटकार—

तथा तु तं समादिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः।
बबन्धासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम्॥ १॥

महातेजस्वी राम ने भाई लक्ष्मण को इस प्रकार आदेश देकर सोने की मूठवाली तलवार बाँधी।

ततस्त्र्यवनतं चापमादायात्मविभूषणम्।
आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः॥ २॥

तत्पश्चात् तीन स्थानों से झुके हुए धनुष को जो क्षत्रियों का आभूषण है, ले और पीठ पर दो तरकश बाँध कर प्रचण्ड पराक्रमी राम ने आश्रम से प्रस्थान किया।

तं वञ्चयानो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः सन्दर्शनेऽभवत्॥ ३॥

श्रीराम को अपनी ओर आते देखकर धोखे-बाज मारीच भयभीत होकर कुछ देर के लिए छिप गया, थोड़ी देर पश्चात् फिर सामने आ गया।

अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिं महावने।
अतिवृत्तमिषोः पाताल्लोभयानं कदाचन॥ ४॥

उस महावन में धनुष-पाणि राम को अपने पीछे दौड़ लगाते हुए देखकर वह मृग कभी तो कुलाचें मारकर दूर निकल जाता और कभी अति समीप आकर उनको लुभाता।

दर्शनादर्शनादेवं सोऽपाकर्षत राघवम्।
सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः॥ ५॥

इस प्रकार कभी छिपता और कभी दृष्टिपथ में आता हुआ वह मृगरूपधारी मारीच श्रीराम को उनके आश्रम से बहुत दूर ले गया।

आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः।
ततो रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः॥ ६॥

जब उस मृग के सौन्दर्य पर मोहित होकर श्रीराम इस प्रकार छले गये तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और महातेजस्वी राम ने उस मृग को मार डालने का निश्चय किया।

भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनः॥ ७॥

फिर तो उन्होंने रोष में भरकर बड़े वेग से अपने तरकश से सूर्य की भाँति देदीप्यमान् शत्रु विदारक एक बाण निकाला।

सन्धाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली।
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम्॥ ८॥

उस बाण को अपने दृढ़ धनुष पर चढ़ा और धनुष की प्रत्यञ्चा को बलपूर्वक खींचकर महाबली राम ने ब्रह्मा के बनाये हुए उस देदीप्यमान अस्त्र को मृग को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

विनदन् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः।
म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम्॥ ९॥

उस बाण के आघात से, थोड़ी देर जीनेवाले मारीच ने पृथिवी पर गिरकर भयंकर नाद किया। मरते समय उसने मृग के बनावटी शरीर को भी त्याग दिया।

स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम्।
इह प्रस्थापयेत्सीता शून्ये तां रावणो हरेत्॥ १०॥

उस समय रावण के आदेश का स्मरण करता हुआ वह विचारने लगा कि क्या उपाय किया जाए जिससे सीता लक्ष्मण को यहाँ भेजे और रावण एकान्त पाकर सीता का अपहरण कर ले।

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वरम्।
सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च॥ ११॥

उपयुक्त अवसर जानकर, मारीच ने श्रीराम के कण्ठस्वर का अनुकरण करते हुए 'हा लक्ष्मण! हा सीते!'—इस प्रकार आर्त्तनाद किया।

तत्र रामं भयं तीव्रं श्रुत्वाविवेश तत्स्वरम्।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखस्तदा॥ १२॥

उस समय मृगरूपी मारीच के उस आर्तनाद को सुनकर श्रीराम के हृदय में भय उत्पन्न हो गया, अतः उन्होंने शीघ्रतापूर्वक जनस्थान की ओर प्रस्थान किया।

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम्॥ १३॥

उधर जब सीताजी ने वन में अपने पति के कण्ठस्वर के सदृश उस आर्तनाद को सुना तब उसने लक्ष्मण से कहा—तनिक जाकर राम का पता तो लगाओ।

आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि।
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम्॥ १४॥

सिंह के वश में आनेवाली गाय अथवा बैल के सदृश राक्षसों के वश में पड़कर आर्तनाद करनेवाले अपने भाई की तुम अवश्य रक्षा करो।

न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम्।
तमुवाच ततस्तत्र कुपिता जनकात्मजा॥ १५॥

जब सीताजी के ऐसा कहने पर भी, अपने भाई के अनुशासन में रहनेवाले लक्ष्मण आश्रम से नहीं गये तब सीताजी ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मणजी से कहा—

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यसे॥ १६॥

हे लक्ष्मण! तुम अपने भाई के मित्ररूप में शत्रु ही हो, क्योंकि इस विषम परिस्थिति में भी तुम अपने भाई की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो।

लोभान्मम कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेही भ्रातरि नास्ति ते॥ १७॥

तुम मुझे हथियाने के लोभ से ही श्रीराम की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो। राम की विपत्ति ही तुम्हें प्रिय लगती है। वस्तुतः भाई के प्रति तुम्हारा स्नेह नहीं है।

इति ब्रुवाणं वैदेहीं बाष्पशोकपरिप्लुताम्।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव॥ १८॥

जब शोकाविष्ट सीता ने आँखों में आँसू भरकर ऐसा कहा, तब मृगी के समान डरी हुई सीता से लक्ष्मणजी ने कहा—

पन्नगासुरगन्धर्वदेवमानुषराक्षसैः।
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः॥ १९॥

हे वैदेहि! पन्नग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षस—इनमें से कोई भी श्रीराम को जीत नहीं सकता।

त्रिभिर्लोकैः समुद्युक्तैः सेश्वरैरपि सामरैः।
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतामयम्॥ २०॥

यदि तीनों लोक और समस्त देवताओंसहित इन्द्र मिलकर श्रीराम के समक्ष आ जायें तो भी वे राम पर विजय नहीं पा सकते, अतः तुम अपने हृदय को स्वस्थ बनाओ और सन्ताप को त्याग दो।

आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम्।
न च तस्य स्वरो व्यक्तं मायया केनचित्कृतः॥ २१॥

उस मृग को मारकर तुम्हारे पति शीघ्र ही लौटेंगे। जो आर्तनाद तुमने सुना है वह निश्चय ही तुम्हारे पति का नहीं है। यह किसी मायावी का है।

न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे॥ २२॥

हे सीते! महात्मा श्रीराम तुम्हें धरोहर के रूप में मुझे सौंप गये हैं, अतः हे शोभने! मैं तुम्हें यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता।

लक्ष्मणेनैवमुक्ता सा क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्॥ २३॥

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सीताजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह सत्यवादी लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्दों में बोली—

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्॥ २४॥

हे अनार्य, कठोर-हृदय, क्रूर-स्वभाव और कुल-कलंक! मैं जान गई कि श्रीराम का विषादग्रस्त होना तुझे भला लगता है।

सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥ २५॥

लक्ष्मण! तेरा स्वभाव बहुत खोटा है, इसी से तू अकेला मुझे प्राप्त करने के लिए श्रीराम के साथ वन में आया है अथवा भरत की प्रेरणा से अपने भावों को छिपाकर तुम राम के पीछे घूम रहे हो।

तन्न सिध्यति सौमित्रे तव वा भरतस्य वा।
समक्षं तव नृशंसे प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः॥ २६॥

परन्तु नृशंस लक्ष्मण! स्मरण रखो तुम्हारी अथवा भरत की यह साध पूर्ण नहीं होगी। मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राण दे दूँगी।

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि विना रामेण लक्ष्मण।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः॥ २७॥

हे लक्ष्मण! श्रीराम के बिना मैं गोदावरी में डूब मरूँगी अथवा गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी अथवा किसी ऊँचे स्थान से गिरकर प्राण त्याग दूँगी।

पिबाम्यहं विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे॥ २८॥

मैं हलाहल विषपान कर लूँगी अथवा अग्नि में कूदकर भस्म हो जाऊँगी, परन्तु श्रीराम को छोड़ पर-पुरुष का कभी स्पर्श भी नहीं करूँगी।

रामं विना क्षणमपि न हि जीवामि भूतले।
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम्॥ २९॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिर्विजितेन्द्रयः।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम॥ ३०॥

श्रीराम के बिना इस भूतल पर मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। जब सीताजी ने ऐसी रोमाञ्चकारी और कठोर बातें कहीं तब जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा-–आप मेरी पूज्या हैं, इसलिए मैं आपकी बातों का उत्तर नहीं दे सकता।

न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे।
श्रोत्रयोरुभ्योर्मेऽद्य तप्तनाराचसन्निभम्॥ ३१॥

हे जनककुमारि वैदेहि! मैं ऐसे वाक्य सहन नहीं कर सकता जो तपाये हुए बाणों के समान मेरे दोनों कानों को विद्ध कर रहे हैं।

गमिष्ये यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने।
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः॥ ३२॥

हे शुभानने! मेरी जाने की इच्छा नहीं है, परन्तु तुम्हारे दुराग्रह के कारण मैं अब राम के पास जाता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। हे विशालाक्षि! इस वन के समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें।

निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः॥ ३३॥

इस समय इस वन में भयानक अपशकुन हो रहे हैं। भाई राम के साथ वापस लौटकर मैं पुनः आपका दर्शन करूँ यही मेरी शुभकामना है।

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किञ्चिदभिप्रणम्य च।
अन्वीक्षमानो बहुशश्च मैथिलीं
जगाम रामस्य समीपमात्मवान्॥ ३४॥

तदनन्तर जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़ और कुछ झुककर सीता को प्रणाम किया, फिर बार-बार पीछे मुड़कर सीता को देखते हुए वे राम के पास चले।[१]

---

१. लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि लक्ष्मणजी जब आश्रम से जाने लगे तब उन्होंने सीता की रक्षा के लिए एक रेखा खींच दी कि तुम इससे बाहर मत निकलना और यदि कोई व्यक्ति इसके अन्दर आने का प्रयत्न करेगा तो वह जल कर भस्म हो जायेगा। महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण से इस मिथ्या धारणा का समर्थन नहीं होता और-तो-और तुलसी दासजी ने भी ऐसा वर्णन नहीं किया है, अतः यह धारणा सर्वथा असत्य एवं कपोलकल्पित है।

❮ अष्टविंशः सर्गः ❯ (२८)

रावण का आगमन—

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृत्॥ १॥

लक्ष्मण के जाते ही समीप ही छिपा हुआ रावण संन्यासी का रूप धारण कर सीताजी के सामने जा पहुँचा।

स मन्मथशराविष्टो ब्रह्मघोषमुदीरयन्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः॥ २॥

काम के बाणों से विद्ध राक्षसराज रावण वेदमन्त्रों का उच्चारण करता हुआ एकान्त आश्रम में सीता से विनयपूर्वक बोला—

कासि कस्य कुतश्चित्त्वं किं निमित्तं च दण्डकान्।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान्॥ ३॥

हे कल्याणि! तू कौन है? किसकी स्त्री है? कहाँ से आई है और तेरे इस दण्डकवन में आने का कारण क्या है? राक्षसों से सेवित इस भयंकर वन में तू अकेली क्यों विचर रही है?

द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम्।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामासाब्रवीत्सा॥ ४॥

संन्यासी वेशधारी रावण को आया देख सीता उसका यथाविधि आतिथ्य करके बोली—

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामभार्या द्विजोत्तम॥ ५॥

हे द्विजोत्तम! आपका कल्याण हो। मैं मिथिला के महाराज महात्मा जनक की पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है और मैं श्रीराम की प्रिया भार्या हूँ।

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥ ६॥

जब हमारा विवाह हुआ उस समय मेरे पति श्रीराम की अवस्था पच्चीस वर्ष की थी और मेरी अवस्था अट्ठारह वर्ष की थी।

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी॥ ७॥

विवाह के पश्चात् बारह वर्ष तक मैंने इक्ष्वाकुवंशी राजभवन में रहकर मनुष्य-सुलभ सम्पूर्ण भोगों को भोगते हुए अपने सभी मनोरथों को पूर्ण किया।

ततस्त्रयोदशे वर्षे राजाऽमन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः॥ ८॥

तत्पश्चात् तेरहवें वर्ष के आरम्भ में सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल से विचार-विमर्श कर महाराज दशरथ ने श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया।

तस्मिन्सम्भ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने।
कैकेयी नाम भर्तारमार्या सा याचते वरम्॥ ९॥

जिस समय श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं उस समय मेरी कनिष्ठ सास कैकेयी ने वर माँगा।

मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम्।
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसन्धं नृपोत्तमम्॥ १०॥

कैकेयी ने सत्यप्रतिज्ञ अपने पति महाराज दशरथ से मेरे पति के लिए वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक ये—दो वर माँगे।

नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न च पास्ये कथञ्चन।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते॥ ११॥

उसने यह भी कहा कि मैं न तो खाऊँगी, न पीऊँगी और न सोऊँगी। इतना ही नहीं यदि राम का राज्याभिषेक हो गया तो मैं अपने प्राण दे दूँगी।

इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स मानदः।
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा॥ १२॥

कैकेयी के ऐसा कहने पर मेरे श्वसुर महाराज दशरथ ने कैकेयी से विविध प्रकार के अन्य पदार्थ माँगने के लिए कहा, परन्तु कैकेयी ने अपने पति की

प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया।

सत्यसन्धो महातेजाः पिता दशरथः स्वयम्।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्॥ १३॥

सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ ने कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए, पूर्व घोषित श्रीराम का राज्याभिषेक नहीं किया।

अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम्।
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच धृतं वचः॥ १४॥

जब श्रीराम अपने राज्याभिषेक के लिए महाराज दशरथ के समीप आये तब कैकेयी ने दृढ़तापूर्वक मेरे पति से यह वचन कहा—

तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम्॥ १५॥
त्व या हि खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च।
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात्॥ १६॥

हे राम! तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें जो आदेश दिया है वह मुझसे सुनो! महाराज की आज्ञा है कि यह निष्कण्टक राज्य भरत को दिया जाए और तुम चौदह वर्ष तक वन में वास करो, अतः तुम वन में जाओ और अपने पिता को मिथ्यावादी होने से बचाओ।

तथेत्युक्त्वा च तां रामः कैकेयीमकुतोभयः।
चकार तद्वचस्तस्या मम भर्ता दृढव्रतः॥ १७॥

तब वीतभय, दृढ़ व्रतधारी मेरे पति श्रीराम ने—'ऐसा ही होगा'—यह कहकर कैकेयी की बात को स्वीकार कर लिया।

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
एतद्ब्राह्मण रामस्य ध्रुवं व्रतमनुत्तमम्॥ १८॥

हे ब्राह्मण! मेरे पति श्रीराम दान देते हैं लेते नहीं, वे सत्य बोलते हैं असत्य नहीं। श्रीराम का यह अटल एवं सर्वोत्तम व्रत है।

तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा॥ १९॥

श्रीराम के लक्ष्मण नामक महापराक्रमी सौतेले भाई हैं। वह नरकेसरी मेरे पति के सहायक और संग्राम में शत्रु का नाश करनेवाले हैं।

ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः।
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा॥ २०॥

कैकेयी के कारण हम तीनों राज्य से भ्रष्ट होकर वनवासी बनाये गये। हे द्विजश्रेष्ठ! इस वन में हम लोग अपने ओज और पराक्रम से विचरण करते हैं।

समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्॥ २१॥

यदि आप विश्राम करना चाहें तो थोड़ी देर यहाँ ठहरें। मेरे पतिदेव वन में होनेवाले कन्द-मूल आदि लेकर आते ही होंगे।

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलं चाचक्ष्व तत्त्वतः।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज॥ २२॥

हे ब्राह्मण! अब आप अपने नाम, कुल और गोत्र का भी ठीक-ठीक परिचय दीजिए और यह भी बतलाइए कि आप अकेले इस दण्डक वन में क्यों घूम रहे हैं?

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः॥ २३॥

श्रीराम की पत्नी सीताजी ने जब इस प्रकार पूछा तब महाबली राक्षसराज रावण ने कठोर शब्दों में यह उत्तर दिया—

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरपन्नगाः।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः॥ २४॥

हे सीते! जिसने देव, असुर और पन्नगों सहित तीनों लोकों को आतङ्कित कर रखा है, मैं वही राक्षसों का राजा रावण हूँ।

त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम्।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते॥ २५॥

हे अनिन्दिते! तेरे स्वर्ण के समान गौरवर्ण और रेशमी वस्त्रों को देखकर मुझे अपनी पत्नियों के प्रति प्रीति नहीं रही।

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव॥ २६॥

हे सीते! तुम्हारा कल्याण हो। मैंने इधर-उधर से बहुत-सी उत्तम उत्तम स्त्रियों का अपहरण कर अपने यहाँ ला रखी हैं। तुम उन सबकी पटरानी बनो।

लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि॥ २७॥

चारों ओर समुद्र से घिरी हुई समुद्र के मध्य पर्वत की चोटी पर लङ्का नाम की मेरी महापुरी है।

तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विहरिष्यसि।
न चास्यारण्यवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि॥ २८॥

हे सीते! जब तू वहाँ वनों में मेरे साथ विहार करेगी तब हे भामिनि! तू इस वन में रहना भी पसन्द नहीं करेगी।

पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि॥ २९॥

हे सीते! यदि तू मेरी भार्या बनना स्वीकार करेगी तो सम्पूर्ण आभूषणों से समलंकृत पाँच सहस्र दासियाँ तेरी परिचर्या करेंगी।

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम्॥ ३०॥

रावण के इस प्रकार के वचन कहने पर सुन्दर अंगोंवाली सीता क्रुद्ध होकर उस राक्षस का तिरस्कार करते हुए बोली—

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता॥ ३१॥

मैं महान् पर्वत के समान अचल एवं अटल, समुद्र के समान क्षोभरहित, इन्द्र के समान अपने पति की अनुगामिनी हूँ।

सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुव्रता॥ ३२॥

मैं सम्पूर्ण शुभ-लक्षणों से युक्त, वटवृक्ष के समान अपने आश्रितों की रक्षा करनेवाले, सत्यव्रती एवं महाभाग श्रीराम की अनुगामिनी हूँ।

त्वं पुनर्जम्बूकः सिंहीं मामिच्छसि सुदुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥ ३३॥

तू गीदड़ के समान होकर मुझ दुर्लभ सिंहनी को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु तू मुझे उसी प्रकार नहीं छू सकता जिस प्रकार सूर्य की प्रभा को कोई छू नहीं सकता।

पादपान् काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक्।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि रावण॥ ३४॥

अरे अभागे रावण! जो तू श्रीराम की प्रिया भार्या की इच्छा कर रहा है तब निश्चय ही तू स्वप्न में बहुत-से सोने के वृक्षों[१] को देख रहा है।

क्षुधितस्य हि सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि॥ ३५॥

मुझे प्राप्त करने की इच्छा करके तू हिरण के शत्रु महाबलशाली सिंह के अथवा विषधर सर्प के दाँतों को उखाड़ना चाहता है।

मन्दरं पर्वतं श्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि॥ ३६॥

मुझे प्राप्त करने की इच्छा करके तू पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल को अपनी भुजाओं से उठाना चाहता है अथवा हलाहल विषपान कर तू सुखपूर्वक चला जाना चाहता है।

अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेक्षि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि॥ ३७॥

श्रीराम की प्राणप्रिय भार्या को पाने की इच्छा कर तू सूई की नोक से अपनी आँखों को खुजलाना चाहता है अथवा तेज छुरे की धार को जिह्वा से चाटना चाहता है।

---

१. संसार में सोने के वृक्ष नहीं होते, तू उन्हें पाने के समान ही मुझे पाना चाहता है।

अथवा—ऐसी किंवदन्ती है कि जिन मनुष्यों को जागृतावस्था में अथवा स्वप्नावस्था में सोने के वृक्ष दिखाई देते हैं वे शीघ्र मरनेवाले होते हैं।

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि॥ ३८॥

अथवा मेरी इच्छा करके तुम गले में पत्थर बाँधकर समुद्र को पार करना चाहते हो और सूर्य तथा चन्द्रमा को अपने हाथ से पकड़ना चाहते हो।

कल्याणवृत्तां रामस्य यो भार्यां हर्तुमिच्छसि।
अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि॥ ३९॥

जो पवित्र आचरणवाले राम की प्राणप्रिया भार्या का अपहरण करना चाहता है वह मानो लोहे के नुकीले काँटों पर चलना चाहता है।

यदन्तरं सिंहश‍ृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दिनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं वै तव राघवस्य च॥ ४०॥

जो अन्तर सिंह और सियार में है, जो अन्तर एक क्षुद्र नदी और विशाल सागर में है, जो अन्तर अमृत और काँजी में है, वही अन्तर तुममें और श्रीराम में हैं।

यदन्तरं वायसवैनतेययोः
यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि।
यदन्तरं सारसगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥ ४१॥

जो अन्तर गरुड़ और कौवे में है, जो अन्तर जलकाक और मोर में है और जो अन्तर वन में वसनेवाले सारस और गिद्ध में है, वही अन्तर दाशरथि श्रीराम और तुममें है।

तस्मिन् सहस्राक्षसमप्रभावे
रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये
वज्रं यथा मक्षिकयाऽवगीर्णम्॥ ४२॥

इन्द्र के समान अमित प्रभावशाली और हाथ में धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रीराम के रहते हुए यदि तू मुझे हर कर ले भी गया तो तू उसी प्रकार नहीं बच सकेगा जैसे मक्खी निगले हुए घी को पचा नहीं सकती।

➤ एकोनत्रिंशः सर्गः ➤ (२९)

सीता का अपहरण—

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः।
ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह॥ १॥

सीता के ऐसे कठोर वचन कहने पर रावण भी क्रुद्ध हो, भौंहें टेढ़ी कर यह कठोर वचन बोला—

भ्राता वैश्रवणस्याहं दशग्रीवः प्रतापवान्।
भयाद्भीता विद्रवन्ति यस्य देवाः सगन्धर्वाः॥ २॥

हे सुन्दरी! मैं कुबेर का भाई महाप्रतापी रावण हूँ। जिसके भय से देव और गन्धर्व भी भाग खड़े होते हैं।

मम सञ्जातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः॥ ३॥

हे मैथिलि! क्रोधाविष्ट मेरे मुख को देखकर इन्द्र आदि देव भी त्रस्त होकर दिशाओं में भाग जाते हैं।

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा।
सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती॥ ४॥

समुद्र के पार मेरी लङ्का नाम की परम शोभायमान नगरी है। वह नगरी भयंकर राक्षसों से वैसे ही परिपूर्ण है जैसे देवताओं से इन्द्रपुरी अमरावती।

तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि॥ ५॥

हे राजकुमारी सीते! तुम वहाँ चलकर मेरे साथ निवास करो। हे मनस्विनी! वहाँ रहने पर तुम्हें सामान्य स्त्रियों के भोगादि का स्मरण भी नहीं होगा।

भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः॥ ६॥

हे शोभन वर्णवाली सीते! वहाँ मनुष्योचित भोग और दिव्य पदार्थों को उपभोग करते हुए तुम्हें अल्पायु और साधारण मनुष्य राम की स्मृति भी नहीं आयेगी।

तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना॥ ७॥

हे विशालाक्षि सीते! तू राज्य से च्युत, मन्द बुद्धि, क्लेश सहनेवाले तपस्वी राम के पास रहकर क्या करेगी?

सर्वराक्षसभर्तारं कामात्स्वयमिहागतम्।
न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि॥ ८॥

मैं राक्षसों का राजा होकर भी स्वेच्छा से यहाँ आया हूँ। काम के बाणों से पीड़ित मेरा त्याग करना तुम्हें उचित नहीं है।

प्रत्याख्याय हि मां भीरु परितापं गमिष्यसि।
चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी॥ ९॥

हे भीरु! मेरा तिरस्कार करके तुम्हें वैसे ही पछताना पड़ेगा जैसे उर्वशी राजा पुरूरवा को लात मारकर पछताई थी।

अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः।
तव भाग्येन सम्प्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि॥ १०॥

संग्राम में वह साधारण मनुष्य राम मेरी एक अँगुली के समान भी नहीं है। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारे भाग्य से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ, अतः तू मुझे अङ्गीकार कर।

एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम्॥ ११॥

जब रावण ने सीता से इस प्रकार कहा तब सीता भी कुपित हो और लाल-लाल आँखें कर उस निर्जन वन में रावण से यह कठोर वचन बोली—

कथं वैश्रवणं देवं सर्वभूतनमस्कृतम्।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि॥ १२॥

हे रावण! सम्पूर्ण देवताओं के पूज्य कुबेर को अपना भाई बताकर भी तुम ऐसा निन्दनीय कर्म करने पर क्यों उतारू हुए हो?

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ १३॥

हे रावण! स्मरण रख, वे सम्पूर्ण राक्षस मारे जायेंगे जिनका राजा तेरे जैसा क्रूर, दुष्टबुद्धि और अजितेन्द्रिय है।

अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम्।
न च रामस्य भार्यां मामपनीयास्ति जीवितम्॥ १४॥

इन्द्र की धर्मपत्नी शची का अपहरण करके भले ही कोई जीवित रह जाए, परन्तु श्रीराम की धर्मपत्नी मेरा अपहरण करके कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता।

सीताया वचनं श्रुत्वा हस्ते हस्तं समाहत्य।
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः॥ १५॥
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव।
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः॥ १६॥

सीता के ये वचन सुनकर, हाथ-पर-हाथ मारकर उस कामान्ध एवं महादुष्ट रावण ने सीता के निकट जा सीता को उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे आकाश में रोहिणी नामक नक्षत्र पर बुध आक्रमण करता है। रावण ने बायें हाथ से सीता के बालों को पकड़ लिया।

ततस्तां परुषैर्वाक्यैर्भर्त्सयन् स महास्वनः।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा॥ १७॥

फिर उसने ऊँचे स्वर से और कठोर वाक्यों से सीता को धमका कर, उसे अपनी गोद में भरकर रथ पर बैठा दिया।

स ग्रहीता विचुक्रोश रावणेन यशस्विनी।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरगतं वने॥ १८॥

उस समय रावण द्वारा पकड़ी गई यशस्विनी सीता अत्यन्त दुःखी हो वन में दूर गये हुए अपने पति को 'हे राम! हे राम!' ऐसा कहकर जोर-जोर से पुकारने लगी।

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः॥ १९॥

उस समय काम से पीड़ित वह रावण सर्पिणी के समान छटपटाती हुई कामनारहित सीता को लेकर आकाश-मार्ग से चल पड़ा।

ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथाऽऽतुरा॥ २०॥

उस समय रावण के द्वारा अपहृत तथा आकाशमार्ग से ले जाई जाती हुई सीता आतुर तथा उन्माद रोग से पीड़ित भ्रान्त-चित्त व्यक्ति के सदृश बार-बार रोने और चिल्लाने लगी—

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा॥ २१॥

हे महाबाहो, गुरुजनों के मन को प्रसन्न करनेवाले लक्ष्मण! कामचारी राक्षस मुझे उठाकर लिये जा रहा है, तुम्हें इस बात का पता नहीं है।

जीवितं सुखमर्थांश्च धर्महेतोः परित्यजन्।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि॥ २२॥

आश्रितों के रक्षारूपी धर्म के लिए जीवन, सुख और राज्य को भी त्यागनेवाले हे रघुकुलभूषण राम! अधर्मपूर्वक यह राक्षस मुझे उठाकर लिये जा रहा है। क्या आपको यह नहीं दीख पड़ता?

सा तदा करुणा वाचो विलपन्ति सुदुःखिता।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना॥ २३॥

इस प्रकार दुःख से करुणापूर्ण विलाप करती हुई विशालनेत्रा सीता ने वृक्षों के मध्य में बैठे हुए गृध्रकूट के निवासी महाराज जटायु को देखा।

सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशं गता।
समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहतया गिरा॥ २४॥

रावण के वश में पड़ी हुई सीता ने जटायु को देखकर भयभीत एवं दुःखित हो रोकर कहा—

जाटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा॥ २५॥

हे आर्य जटायु! देखो यह पापी रावण निर्दयतापूर्वक अनाथों के समान मेरा हरण करके मुझे लिये जा रहा है।

नैष वारयितुं शक्यस्तव क्रूरो निशाचरः।
सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः॥ २६॥

कदाचित् तुम इस महाबली, बहुतों को जीतनेवाले, शस्त्रास्त्र-सम्पन्न, क्रूर और दुर्मति राक्षस को न रोक सको, परन्तु—

रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः॥ २७॥

हे जटायु! तुम मेरे अपहरण का समस्त वृत्तान्त यथातथ्य श्रीराम एवं लक्ष्मण से निवेदन कर देना।

◀ त्रिंशः सर्गः ▶ (३०)

जटायु एवं रावण का युद्ध—

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे।
निरीक्ष्य रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः॥ १॥

औंघते हुए जटायु ने सीता के उस आर्तनाद को सुना। आँखें खोलने पर उसने शीघ्र ही रावण तथा सीता को देखा।

ततः पर्वतकूटाभस्तीक्ष्णतुण्डः[१] खगोत्तमः[२]।
वनस्पतिगतः श्रीमान् व्याजहार शुभां गिरम्॥ २॥

---

१. हम पीछे सप्रमाण यह सिद्ध कर आये हैं कि जटायु पक्षी नहीं था। यहाँ '**तीक्ष्णतुण्डः**' शब्द से कुछ शंका हो सकती है। कुछ टीकाकारों ने 'तीक्ष्णतुण्ड' का अर्थ पैनी चोंचवाला किया है, परन्तु यह अर्थ जटायु के लिए प्रयुक्त 'आर्य' विशेषण को देखकर उपयुक्त नहीं लगता। तुण्ड का अर्थ चोंच ही नहीं होता। तुण्ड का अर्थ मुख भी होता है। आद्य शंकराचार्य ने अपने 'मोहमुग्दर' अथवा 'चर्पट-मञ्जरी' नामक पुस्तिका में व्याकरण घोटनेवाले एक बूढ़े को उपदेश करते हुए कहा था—

दशनविहीनं जातं तुण्डम्।

तब वनस्पतियों के बीच में बैठे हुए पर्वतशृङ्ग के तुल्य बड़े डील-डौलवाले, रोबीले मुखवाले, आकाश-विहारियों में उत्तम, श्रीमान् जटायु ने मधुर शब्दों में कहा—

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम्॥ ३॥

हे भाई रावण! आप सत्यप्रतिज्ञ और सनातन धर्म में स्थित रहनेवाले हैं, अतः आपको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिए।

राजा सर्वस्य लोकस्य रामो दशरथात्मजः।
धर्मपत्नी सीता तस्य यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि॥ ४॥

जो सब लोकों के राजा हैं उन्हीं दशरथनन्दन श्रीराम की धर्मपत्नी यह सीता है जिसको तुम हरना चाहते हो।

कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत्।
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबलः॥ ५॥

जो राजा धर्ममार्ग में स्थित है क्या उसे पर-स्त्री पर हाथ डालना उचित है? हे महाबली रावण! तुम्हें तो राजदाराओं की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

निवर्तय मतिं नीचां परदाराभिमर्शनात्।
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत्॥ ६॥

हे रावण! पर-वधू से सम्पर्क करने की इच्छा रखनेवाली नीच बुद्धि को तुम त्याग दो। जिस कार्य के करने से लोक में निन्दा होती है, धीर लोगों को वह काम रहीं करना चाहिए।

धर्ममर्थं च कामं च शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम्।
व्यवस्यन्ति न राजानो धर्मं पौलस्त्यनन्दन॥ ७॥

हे पौलस्त्यनन्दन! शिष्टजन जिस धर्म, अर्थ अथवा काम के सम्बन्ध में शास्त्र का विधान नहीं पाते तब राजा जैसा आचरण करता है लोग भी उसी का अनुसरण करते हैं। [अतः राजा को सदा धर्म मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए।]

विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि॥ ८॥

जब महाबली राम ने तुम्हारे अधिकृत देश वा पुर में तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया तब तुम उनके प्रति यह अपराध क्यों कर रहे हो?

यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ ९॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः।
यस्य त्वं लोकनाथस्य भार्यां हृत्त्वा गमिष्यसि॥ १०॥

अनाचारी खर ने यदि शूर्पनखा के कहने में आकर जनस्थान गत श्रीराम पर आक्रमण किया और धर्मात्मा राम ने उसका काम तमाम कर दिया तो अब तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ कि इसमें श्रीराम का क्या दोष है, जो तुम उस लोकनाथ की भार्या का अपहरण करके ले जा रहे हो।

क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा।
दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा॥ ११॥

हे रावण! तुम सीता को तुरन्त छोड़ दो। ऐसा न हो कि जैसे इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर को भस्म किया था उसी प्रकार राम भी तुम्हें अपने अग्नितुल्य नेत्रों से भस्म कर डालें।

यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्त्तिर्न यशो भुवि।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत्॥ १२॥

जिस कार्य के करने से न पुण्य होता है, न कीर्ति और स्थिर यश प्राप्त होता है, अपितु जिस कार्य के करने से केवल शारीरिक कष्ट ही होता है ऐसे कर्म

अर्थात् तेरा तुण्ड=मुख दाँतों से रहित हो गया है, फिर भी तू व्याकरण का घोटा लगा रहा है, इससे तेरी रक्षा नहीं होगी। यहाँ तुण्ड का अर्थ मुख के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता, अतः तीक्ष्णतुण्ड का हमारा अर्थ रोबीले मुखवाला ही ठीक है।

२. **खगोत्तमः**—खगोत्तम का अर्थ भी कुछ टीकाकारों ने पक्षिश्रेष्ठ किया है जो ठीक नहीं। 'ख' का अर्थ होता है आकाश और 'ग' का अर्थ होता है गमन करनेवाला, अतः अर्थ हुआ आकाश-विहारियों में श्रेष्ठ। यहाँ भी हमारा किया अर्थ ही साधु है।

में कौन भाग्यहीन व्यक्ति प्रवृत्त होगा ?

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सशरः कवची रथी।
तथाऽप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि॥ १३॥

यद्यपि मैं बूढ़ा हूँ और तुम युवा, रथ पर सवार, कवच धारण किए हुए एवं धनुष-बाण लिए हुए हो तथापि तुम सीताजी को लेकर यहाँ से कुशलपूर्वक नहीं जा सकते।

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः।
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण॥ १४॥

मेरी आँखों के सामने तुम बलात् सीता का अपहरण नहीं कर सकते। हे रावण! यदि तुम वीर हो तो थोड़ी देर ठहरो और मेरे साथ युद्ध करो।

युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर।
वृन्तादिव फलं त्वां तू पातयेयं रथोत्तमात्॥ १५॥

हे निशाचर! तुम्हारा आतिथ्य करूँगा और जैसे पका फल अपनी डाली से गिर पड़ता है इसी प्रकार तुम्हें इस उत्तम रथ से नीचे गिरा दूँगा।

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षः तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः॥ १६॥

जटायु के ऐसा कहने पर उसके वाक्यों को सहन न कर शुद्ध स्वर्ण के कुण्डल पहिने हुए रावण क्रोध के मारे लाल आँखें कर, वनवासी उस गृध्रराज जटायु पर झपटा।

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च॥ १७॥

अतुलवीर्यवान् उन दोनों (राक्षसराज रावण और तपस्विश्रेष्ठ जटायु) का एक मुहूर्त तक घमासान का युद्ध हुआ।

तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पार्श्वौ च पादौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्॥ १८॥

अन्त में श्रीराम के लिए युद्ध करनेवाले जटायु के दोनों कन्धों, हाथों और पैरों को रावण ने तलवार के वार से काट दिया।

स च्छिन्नवक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा।
निपपात हतो गृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥ १९॥

भयानक कर्म करनेवाले रावण द्वारा वक्षस्थल और पैरों के कट जाने पर जटायु मरणासन्न होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन समीक्ष्य तम्।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता॥ २०॥

रावण द्वारा मारे गये जटायु को देखकर चन्द्रानना सीताजी दुःखपूर्वक विलाप करने लगी।

ततस्तु राम रामेति रुदन्तीं लक्ष्मणेति च।
जगामादाय चाकाशं रावणी राक्षसेश्वरः॥ २१॥

तब जटायु के लिए विलाप करती हुई और हा राम! हा लक्ष्मण! कहकर रोती हुई सीता को लेकर राक्षसराज रावण आकाश-मार्ग से चला गया।

◀ एकत्रिंशः सर्गः ▶ (३१)

सीता की रावण को फटकार और रावण का उसे लेकर लङ्का पहुँचना—

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा।
दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी॥ १॥
रोषरोदनताभ्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम्।
रुदन्ती करुणं सीता ह्रियमाणेदमब्रवीत्॥ २॥

अपहरण की जाती हुई सीता जो दुःखित अत्यन्त उद्विग्न और भयभीत थी, जिसकी आँखें रोदन और क्रोध के कारण लाल हो गई थीं, वह आकाश-मार्ग से जाते हुए भयङ्कर नेत्रोंवाले राक्षसेश्वर रावण से आर्तस्वर में यह बोली—

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणाऽनेन रावण।
ज्ञात्वा विरहितां यन्मां चोरयित्वा पलायसे॥ ३॥

अरे नीच रावण! क्या तुम्हें इस गर्हित काम को करते हुए तनिक भी लज्जा नहीं आती जो तू मुझे अकेली पाकर चोरी से उठाकर भागा जा रहा है।

धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वं कथितवांस्तदा।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम्॥ ४॥

मेरा अपहरण करने से पूर्व तूने अपनी जिस शूरवीरता और बल का बखान किया था तेरी उस शूरवीरता और बल को धिक्कार है। संसार में अपने कुल को कलङ्क लगानेवाले तेरे इस चरित्र को भी धिक्कार है।

किं कर्तुं शक्यमेवं हि यज्जवेनैव धावसि।
मुहूर्तमपि तिष्ठस्व न जीवन् प्रतियास्यसि॥ ५॥

ऐसी दशा में जब तू मुझे लेकर अत्यन्त वेग से भागा जा रहा है कोई क्या कर सकता है। हाँ, यदि तू एक मुहूर्त भी ठहर जाए तो तू जीवित नहीं जा सकेगा।

न हि चक्षुष्पथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम्॥ ६॥

उन दोनों राजपुत्र राम-लक्ष्मण की दृष्टि में पड़ते ही तू अपनी सम्पूर्ण सेनासहित एक मुहूर्त भर भी जीवित नहीं बच सकेगा।

साधु कृत्वाऽऽत्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण।
मत्प्रधर्षणरुष्टो हि भ्रात्रा सह पतिर्मम॥ ७॥
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि।
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश॥ ८॥
स कथं राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम्॥ ९॥

हे रावण! तू अपने हित का भली प्रकार विचार कर मुझे प्रतिष्ठापूर्वक छोड़ दे अन्यथा मेरे हरणरूपी अपमान से क्रुद्ध मेरे पति अपने भाई लक्ष्मणसहित तुम्हारा समूल नाश कर डालेंगे। यदि तू मुझे नहीं छोड़ेगा तो जिस राम ने चौदह सहस्र राक्षसों को मार डाला था वे सम्पूर्ण अस्त्रों में कुशल, बलवान् एवं पराक्रमी रघुकुलभूषण राम अपनी प्रिया भार्या का अपहरण करनेवाले तुझे क्यों नहीं मारेंगे?

एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह॥ १०॥

रावण की गोद में पड़ी हुई सीता भय और शोक से पीड़ित हो इस प्रकार के तथा अन्य बहुत से कठोर वचन कह करुण स्वर में विलाप करने लगी।

ह्रियमाणा तु वैदेही कञ्चिन्नाथमपश्यति।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्चवानरपुङ्गवान्॥ ११॥

रावण द्वारा इस प्रकार हरण की जाती हुई सीता ने आस-पास किसी रक्षक को देखते हुए कुछ दूर पर्वत-शिखर पर बैठे हुए पाँच वानरश्रेष्ठों को देखा।

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च॥ १२॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति मैथिली।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम्॥ १३॥

उस विशाल-नेत्रा वरारोहा सीता ने सुवर्ण की भाँति चमचमाते हुए अपने रेशमी वस्त्र में अपने आभूषणों को बाँधकर उन वानरों के मध्य में डाल दिया। वस्त्र में लपेट कर डाले गये आभूषणों को उनके मध्य में डालकर सीता ने यह आशा की कि ये लोग इन आभूषणों के द्वारा मेरे अपहरण के समाचार को श्रीराम से निवेदन कर देंगे।

सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म न स बुद्धवान्।
स च पम्पामतिक्रम्य प्रविवेश लङ्कापुरीम्॥ १४॥

घबराहट के कारण रावण सीताजी के इस कर्म को न जान सका। वह पम्पा को लाँघकर लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ।

सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां स्वमन्तःपुरमाविशत्।
तत्र निदधे रावणः सीतां शोकपरायणाम्॥ १५॥

लंकापुरी में जा रावण ने अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया और शोकाकुल सीताजी को भी वहीं रख दिया।

≺ द्वात्रिंशः सर्गः ≻ (३२)

सीता को लुभाने का प्रयत्न—

निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन्।
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान् पिशिताशनान्॥ १ ॥

सीता को अन्तःपुर में रख, स्वयं वहाँ से निकल कर वह सोचने लगा अब आगे क्या करना चाहिए। सोचते-विचारते उसने महापराक्रमी आठ मांसाहारी राक्षसों को देखा।

स तान् दृष्ट्वा महावीर्यो वाक्यमुवाचैतानिदम्।
नानाप्रहरणाः क्षिप्रं जनस्थानं च गच्छत॥ २ ॥

उन महापराक्रमी राक्षसों को देखकर रावण ने उनसे कहा—हे राक्षस लोगो! तुम अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर शीघ्र जनस्थान को जाओ।

अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरपि निशाचरैः।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति॥ ३ ॥

तुम सब लोग बड़ी सावधानी से वहाँ जाना और राम को मार डालने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना।

संदिश्य राक्षसान्घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान्।
आत्मानं बुद्धिवैक्लब्यात्कृतकृत्यममन्यत॥ ४ ॥

उन आठ महाबलशाली राक्षसों को जनस्थान में रहने का आदेश देकर रावण बुद्धि-दौर्बल्य के कारण अपने-आपको सफल-मनोरथ समझने लगा।

स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणप्रपीडितः।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन्॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कामबाणों से पीड़ित हो, सीता का स्मरण करते हुए, सीता को देखने के लिए उसने अपने रमणीक गृह में प्रवेश किया।

स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः।
अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां शोकपरायणाम्॥ ६ ॥

राक्षसराज रावण ने उस गृह में प्रविष्ट होकर शोक से पीड़ित सीता को राक्षसियों के मध्य में बैठे हुए देखा।

तां तु शोकपरां दीनामवशां राक्षसाधिपः।
स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम्॥ ७ ॥

शोकपीड़ित, दीन एवं असहाय सीता को, उसकी इच्छा न होते हुए भी, राक्षसेश्वर रावण ने बलपूर्वक अपने देवतुल्य गृह को दिखलाया।

हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम्।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम्॥ ८ ॥

उस विशाल महल में छोटे बड़े अनेक प्रकार के गृह बने हुए थे। सहस्रों स्त्रियाँ वहाँ वास करती थीं। नाना प्रकार के पक्षी वहाँ कलोलें कर रहे थे तथा यत्र-तत्र अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे।

दान्तैश्च तापनीयैश्चा स्फाटिकै राजतैरपि।
वज्रवैडूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोहरैः॥ ९ ॥

उस भवन में हाथीदाँत, सुवर्ण, स्फटिकमणि और चाँदी के दर्शनीय तथा मनोहर खम्बे लगे हुए थे जिन पर हीरों और वैदूर्यमणि की नक्काशी का काम किया हुआ था।

दिव्यदुन्दुभिनिर्ह्रादं तप्तकाञ्चनतोरणम्।
दान्तिका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शना॥ १० ॥
हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः।
दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम्॥ ११ ॥

वहाँ देव-दुन्दुभि के समान शब्द हो रहे थे। द्वारों पर सोने की बन्दनवारें लटक रही थीं। उस भवन में हाथीदाँत तथा चाँदी से निर्मित शोभायमान खिड़कियाँ लगी हुई थीं जिनकी जालियाँ सोने की थीं। वहाँ इस प्रकार के मकानों की पंक्तियाँ थीं। इस प्रकार के अपने भवन को रावण ने सीता को दिखलाया।

दीर्घिकाः पुष्पकरिण्यश्च नानावृक्षसमन्विताः।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम्॥ १२ ॥

तत्पश्चात् रावण ने शोकग्रस्त सीता को उस भवन में निर्मित भाँति-भाँति के पुष्पों से शोभायमान छोटी और बड़ी अनेक पुष्करणियाँ दिखलाईं।

दर्शयित्वा तु वैदेह्याः कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम्।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया॥ १३॥

अपने उन सम्पूर्ण उत्तम भवनों को सीता को दिखाकर उसे लुभाने के लिए वह पापात्मा रावण सीता से कहने लगा—

न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषूरगेषु च।
अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत्॥ १४॥

देव, गन्धर्व, यक्ष और नागवर्ग में मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो मेरे समान बलवान् या पराक्रमी हो।

राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन गतायुषा।
किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा॥ १५॥

राज्य से भ्रष्ट, दीन-दुःखी, भिक्षुक, गतायु और अल्प तेजवाले साधारण मनुष्य राम को लेकर तू क्या करेगी?

भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव।
यौवनं ह्यध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह॥ १६॥

हे सीता! तू मुझे ही स्वीकार कर, क्योंकि मैं ही तुम्हारे योग्य पति हूँ। यह यौवन अस्थिर है, अतः जब तक यह है तब तक तू मेरे साथ विहार कर।

दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने।
काऽस्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः॥ १७॥

हे शोभने! अब तू राम के दर्शन की आशा छोड़ दे। हे सीते! राम में तो कल्पना द्वारा भी यहाँ आने की शक्ति नहीं है।

न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः।
दीप्यमानस्य चाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलां शिखाम्॥ १८॥

जिस प्रकार आकाश में प्रचण्ड वेग से गमन करनेवाले वायु को रस्सों से बाँधना और देदीप्यमान अग्नि की प्रज्ज्वलित शिखा को थामना असम्भव है उसी प्रकार राम का यहाँ आना भी असम्भव है।

लङ्कायां सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय।
त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरः॥ १९॥

अतः अब तुम लङ्का के इस विशाल राज्य का पालन करो। तुम्हारे ऐसा करने पर मेरे जैसे पराक्रमी राक्षस और देवता ही नहीं, अपितु समस्त संसार तुम्हारा आज्ञाकारी दास बनकर रहेगा।

इह माल्यानि सर्वाणि दिव्यगन्धानि मैथिलि।
भूषणानि च मुख्यानि सेवस्व च मया सह॥ २०॥

हे मैथिलि! लङ्का में जो दिव्य-मालाएँ, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ और जो उत्तम-उत्तम आभूषण हैं उन सबको तू मेरे साथ विहार करते हुए भोग।

पुष्पकं नाम सुश्रोणि यद्विमानमनुत्तमम्।
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथा सुखम्॥ २१॥

हे उत्तमाङ्गी! मेरे पास पुष्पक नामक जो उत्तम विमान है उसमें मेरे साथ बैठकर तू सुखपूर्वक विहार कर।

एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना।
पिधायेन्दुनिभं सीता मुखमश्रूण्यवर्तयत्[1]॥ २२॥

रावण के ऐसा कहने पर वराङ्गना सीता वस्त्र के छोर से चन्द्रमा के समान अपने मुख को ढाँप कर रोने लगी।

ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां दीनां चिन्ताहतप्रभाम्।
उवाच वचनं पापो रावणो राक्षसेश्वरः॥ २३॥

तब चिन्ता के कारण कान्ति-विहीन, दीन, अस्वस्थ एवं ध्यानमग्न सीता से पापी राक्षसराज रावण कहने लगा—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन च।
आर्षोऽयं दैवनिष्यन्दो यस्त्वामभिगमिष्यति॥ २४॥

हे वैदेहि! धर्मलोप हो जाने की शंका से तेरा लज्जित होना व्यर्थ है। हे देवि! तुम्हारे प्रति मेरा जो स्नेह सम्बन्ध होनेवाला है वह ऋषि-उपदिष्ट, शास्त्र-सम्मत राक्षस-विवाह[2] है।

---

१. इस श्लोक से रामायण-काल में पर्दा-प्रथा का खण्डन हो जाता है।

२. महर्षि मनु ने निम्न आठ विवाह गिनाये हैं—

प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते।
इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमानेन भाषिता॥ २५॥

अब तू मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जा। मैं तेरा वशवर्ती दास हूँ। देख, काम से पीड़ित होने के कारण ही ऐसा दीनता और हीनता की बातें मैंने तेरे सामने कही हैं। (अन्यथा रावण किसी स्त्री के समक्ष आज तक गिड़गिड़ाया नहीं।)

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम्।
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते॥ २६॥

जनकनन्दिनी सीता से इस प्रकार की बातें कहकर मृत्यु के मुख में पड़े रावण ने समझा कि अब सीता मेरे अधीन हो गई।

◀ त्रयत्रिंशः सर्गः ▶ (३३)

सीता की रावण को प्रताड़ना और रावण का एक वर्ष की अवधि निर्धारित करना—

सा तथोक्ता तु वैदेहि निर्भया शोककर्शिता।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत॥ १॥

रावण के ऐसा कहने पर शोक से पीड़ित सीता ने अपने और रावण के मध्य में तृण रखकर एवं निभर्य होकर उससे कहा—

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः॥ २॥

काल से प्रेरित जब प्राणियों का नाश निकट आ जाता है तब वे काल के वश में होकर शुभ कार्यों में प्रमाद करने लगते हैं।

मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च॥ ३॥

हे राक्षसाधम! मेरा अपमान करने के कारण तेरी मृत्यु निकट आ पहुँची है। अब तेरा, राक्षसों का और तेरी स्त्रियों के वध का समय आ गया है।

न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता।
द्विजातिमन्त्रपूता च चाण्डालेनाभिमर्शितुम्॥ ४॥
तथाऽहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी पतिव्रता।
त्वया स्प्रष्टुं न शक्याऽस्मि राक्षसाधम पापिना॥ ५॥

जिस प्रकार स्रुवा तथा अन्य यज्ञपात्रों से भूषित और ब्राह्मणों के वेदपाठ से पवित्र यज्ञवेदी को चाण्डाल स्पर्श नहीं कर सकता उसी प्रकार हे राक्षसाधम रावण! तू धर्मशील राम की धर्मपत्नी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता।

क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः।
हंसी सा तृणषण्डस्थं कथं पश्येत मद्गुकम्॥ ६॥

जो राजहंसी कमल कानन में सदा राजहंसों के साथ क्रीड़ा करती है वह तृणों के मध्य में बैठे हुए जलकाक से कैसे प्राप्त कर सकती है!

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा खादयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस॥ ७॥

हे राक्षस! मेरे इस निश्चेष्ट शरीर को बाँधो या खा डालो, मैं इस शरीर तथा जीवन की रक्षा नहीं करना चाहती।

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम्।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः॥ ८॥

सीता के रोमाञ्चकारी एवं कठोर वचनों को सुनकर रावण ने सीता को आतङ्कित करनेवाले ये वचन कहे—

ब्राह्मो दैवस्तथार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचाष्टमोऽधमः॥
—मनु० ३। २१

ब्राह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकार के विवाह हैं।

शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि॥
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः॥ ९॥

हे चारुहासिनि सीते! सुन, यदि बारह मास के भीतर तू मुझे स्वीकार नहीं करेगी तो मेरे रसोइए मेरे प्रात:कालीन भोजन के लिए तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

सीता से ऐसे कठोर वचन कहकर शत्रुओं को रुलानेवाला रावण पास ही उपस्थित राक्षसियों से क्रोधपूर्वक यह वचन बोला—

शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विकृता घोरदर्शनाः।
दर्पमस्या विनेष्यध्वं मांसशोणितभोजनाः॥ ११॥

रक्त और माँस का भक्षण करनेवाली विकट एवं भयंकर रूपवाली राक्षसियो! तुम सब शीघ्र ही इस सीता के गर्व को दूर करो।

वचनादेव तास्तस्य सुघोरा राक्षसीगणाः।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन्॥ १२॥

रावण की बात सुनकर भयंकर रूपवाली उन राक्षसियों ने हाथ जोड़ और "जो आज्ञा"—कहकर सीताजी को चारों ओर से घेर लिया।

स ताः प्रोवाच राजा तु रावणो घोरदर्शनाः।
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामियम्॥ १३॥

जाते-जाते रावण उन भयंकर राक्षसियों से बोला—इस सीता को तुम अशोक-वाटिका में ले जाओ।

तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम्।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव॥ १४॥

वहाँ इसे डरा-धमकाकर और सान्त्वना आदि उपायों से इसी प्रकार वश में ले आओ जैसे वन के हाथी को वश में लाया जाता है।

इति प्रति समादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं प्रतिगृह्य तु॥ १५॥

जब रावण ने उन राक्षसियों को ऐसा आदेश दिया तब वे सीताजी को साथ ले अशोक-वाटिका में चली गईं।

◀ चतुस्त्रिंशः सर्गः ▶ (३४)

राम का आश्रम की ओर लौटना—

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि निवर्तत॥ १॥

मृग के रूप में दौड़ते हुए कामरूपी राक्षस मारीच को मारकर श्रीराम शीघ्र ही आश्रम की ओर लौटे।

मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालम्ब्य मामकम्।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार च॥ २॥
तं सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वा च मैथिलीम्।
तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति॥ ३॥

मार्ग में चलते-चलते उन्होंने सोचा कि मृगरूपधारी मारीच ने मेरे कण्ठ स्वर का अनुकरण कर—"हा लक्ष्मण! मैं मारा गया—" इस प्रकार का जो शब्द किया है इस पुकार को सुनकर लक्ष्मण सीता को अकेली छोड़कर अथवा सीता के भेजे जाने पर शीघ्र ही मेरे पास आयेगा।

राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः।
आजगाम जनस्थानमित्येवं चिन्तयन् रामः॥ ४॥

'प्रतीत होता है कि राक्षस लोग मिलकर सीता का वध करना चाहते हैं।' ऐसा सोचते हुए श्रीराम जनस्थान में पहुँचे।

ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम्।
ततोऽविदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः॥ ५॥

आश्रम की ओर लौटते हुए श्रीराम ने मार्ग में उदास लक्ष्मण को अपनी ओर आते हुए देखा। जब

लक्ष्मण निकट आ गये तब—

गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत्॥ ६॥

श्रीराम ने लक्ष्मण का बायाँ हाथ पकड़कर उससे परिणाम में मधुर तथा ऊपर से कठोर वचन कहे—

अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यस्त्वं विहाय ताम्।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिह॥ ७॥

हे लक्ष्मण! तुमने यह बहुत बुरा काम किया जो तुम सीता को अकेली छोड़कर यहाँ चले आये हो। हे सौम्य! सीता को छोड़कर जो तुम यहाँ चले आये इससे क्या सीता का कल्याण होगा?

न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा।
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः॥ ८॥

हे वीर! मुझे तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि सीता को या तो वनचारी राक्षसों ने मार दिया है या उसे खा डाला है।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत्॥ ९॥

श्रीराम के इन वचनों को सुनकर शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मणजी अत्यन्त दुःखी होकर अपने दुःखी भ्राता राम से बोले—

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः॥ १०॥

मैं अपनी इच्छा से सीताजी को छोड़कर यहाँ नहीं आया, अपितु सीता के उग्र एवं मर्मवेधी वाक्यों से व्यथित होकर ही मैं आपके पास आया हूँ।

आर्येणेव पराक्रुष्टं हा सीते लक्ष्मणेति च।
परित्राहीति तद्वाक्यं मैथिल्यास्तत् श्रुतिं गतम्॥ ११॥

आप ही ने—'हा लक्ष्मण! हा सीते! मुझे बचाओ'—ऐसा उच्च स्वर से कहा था। आपके इस वाक्य को सीताजी ने सुन लिया।

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली।
गच्छ गच्छेति मामाह रुदन्ती भयविह्वला॥ १२॥

आपके इस आर्तनाद को सुन आपसे प्रेम करनेवाली सीता ने भयविह्वल होकर रोते हुए मुझसे कहा—"हे लक्ष्मण! तुम शीघ्र जाओ।"

प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं त्वत्प्रत्ययान्वितम्॥ १३॥

जब सीताजी ने मुझे बार-बार जाने के लिए प्रेरित किया तब आपके सम्बन्ध में विश्वास दिलाने के लिए मैंने ये बातें कहीं—

न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत्।
निर्वृत्ता भव नास्त्येतत्केनाप्येवमुदाहृतम्॥ १४॥

मुझे संसार में ऐसा कोई राक्षस दिखाई नहीं देता जो श्रीराम को भयभीत कर सके, अतः तुम चिन्ता मत करो। यह श्रीराम का नहीं, अपितु किसी का बनावटी शब्द है।

विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति।
त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि॥ १५॥

हे सीते! जो राम अपने भुजबल से देवताओं की भी रक्षा कर सकते हैं वे आर्य-कुलकमल-दिवाकर राम—"मुझे बचाओ"—इस प्रकार का निन्दित और नीच वचन कैसे कह सकते हैं?

विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति।
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता॥ १६॥

"हे लक्ष्मण! मुझे बचाओ।"—इस वाक्य को कहनेवाले के कण्ठ स्वर की विशेष विवेचना करने पर यह श्रीराम का कहा हुआ वाक्य नहीं जान पड़ता, अतः आपको सामान्य स्त्रियों की भाँति दुःखी नहीं होना चाहिए।

अलं वैक्लब्यमालम्ब्य स्वस्था भव निरुत्सुका।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु पुमान् वै राघवं रणे॥ १७॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत्।
न जय्यो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः॥ १८॥

व्याकुलता को समाप्त करो, धैर्य धारण करो और स्वस्थ हो जाओ, क्योंकि तीनों लोकों में ऐसा पुरुष न हुआ, न है और न होगा जो संग्राम में श्रीराम के समक्ष ठहर सके या उन्हें पराजित कर सके। इन्द्र के

राम बहुत उद्विग्न हुए।

विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम्।
दृष्ट्वा शून्यं निजस्थानं विललाप पुनः पुनः॥ २॥

उस आश्रम में मृगचर्म और कुशासन इधर-उधर बिखरे पड़े थे, कुश और चटाइयाँ भी इधर-उधर फेंकी हुई थीं। इस प्रकार उस आश्रम को सूना देखकर राम बार बार विलाप कर रोने लगे।

हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति।
निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता॥ ३॥

विलाप करते हुए वे कहने लगे—सीता हर ली गई, मर गई, अपने आप अन्तर्धान हो गई अथवा उसे राक्षसों ने खा डाला अथवा भीरु होने के कारण कहीं छिप रही है अथवा वन में कहीं चली गई है।

गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः।
अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता॥ ४॥

वह वन से फूल एवं फल चुनने तो नहीं चली गई अथवा जल लाने के लिए किसी नदी या सरोवर पर तो नहीं गई है।

यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम्।
शोकरक्तेक्षणः शोकादुन्मत्त इव लक्ष्यते॥ ५॥

जब प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ने पर भी उस वन में श्रीराम को अपनी प्राणप्रिया सीता नहीं मिली तब शोक के कारण उनकी आँखें लाल हो गईं और वे उन्मत्त-से दिखाई देने लगे।

वृक्षाद् वृक्षं प्रधावन् स गिरेश्चाद्रिं नदान्नदीम्।
बभूव विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवाप्लुतः॥ ६॥

श्रीराम शोकरूपी कीचड़ के समुद्र में डूबकर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक, एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक और एक नदी से दूसरी नदी तक विलाप करते हुए दौड़ते फिरते थे।

अपि कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्॥ ७॥

वे विलाप करते हुए कहते थे—हे कदम्ब! तुम्हारे फूलों से प्रेम करनेवाली सुन्दरमुखी मेरी प्राणप्रिया सीता को क्या तुमने देखा है? यदि तुम जानते हो तो बताओ सीता कहाँ है?

स्निग्धपल्लवसङ्काशा पीतकौशेयवासिनी।
शंसस्व यदि वा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी॥ ८॥

हे बिल्ववृक्ष! चिकने पल्लव के समान कान्ति-वाली, पीली रेशमी साड़ी धारण करनेवाली, बिल्व-फल सदृश स्तनवाली सीता को यदि तुमने देखा हो तो बतलाओ वह कहाँ है?

अथवाऽर्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम्।
जनकस्य सुता भीरुर्यदि जीवति वा न वा॥ ९॥

हे अर्जुन वृक्ष! तू ही बतला दे कि मेरी प्राणप्रिया सीता जो तुझे बहुत चाहती थी, वह जनकनन्दिनी भीरु जानकी जीवित है या नहीं।

अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतसम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासन्दर्शनेन माम्॥ १०॥

हे अशोक वृक्ष! तुम शोक का नाश करनेवाले हो, अतः शोकापहत चित्तवाले मुझे शीघ्र ही मेरी प्राणप्रिया सीता से मिलाकर अपने अशोक (शोक-रहित) नाम को चरितार्थ करो।

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम्।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत्॥ ११॥

(वृक्षों से पूछकर राम अब पशुओं से पूछते हैं) हे मृग! मृगों के समान देखनेवाली सीता को क्या तुम जानते हो? मेरी कान्ता मृगनयनी सीता निश्चय ही मृगियों के साथ होगी।

किं धावसि प्रिये दूरं दृष्टासि कमलेक्षणे।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे॥ १२॥

हे प्रिये! तुम भाग क्यों रही हो? हे कमलनयनी अब तो मैंने तुम्हें देख लिया है। तुम अपने-आपको वृक्षों की आड़ में क्यों छिपा रही हो? मेरे साथ बातचीत क्यों नहीं करतीं?

तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि।
नात्यर्थं हास्यशीलाऽसि किमर्थं मामुपेक्षसे॥ १३॥

हे उत्तमाङ्गी सीते! ठहर, ठहर! क्या तुझे मेरे

ऊपर दया नहीं आती ? तेरा स्वभाव इतना हास्यप्रिय तो नहीं था, फिर तू मेरी उपेक्षा क्यों कर रही है ?

हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित्।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः॥ १४॥
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन् वनाद्वनम्।
क्वचिदुद्भ्रमते वेगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात्॥ १५॥

हा महाबाहो लक्ष्मण ! क्या तुम्हें मेरी प्राण प्यारी कहीं दीख पड़ती है ? हा भद्रे ! हा सीते ! तुम कहाँ चली गईं। इस प्रकार बार-बार विलाप करते हुए और इस वन से उस वन में दौड़ते हुए राम कहीं दौड़ते दौड़ते गिर पड़ते और कहीं सीता के सादृश्यवाली किसी वस्तु को देखकर सहसा उद्भ्रान्त हो जाते।

सीतामपश्यन् धर्मात्मा कामोपहतचेतनः।
विलपन् तु महाबाहू लक्ष्मणमब्रवीद्वचः॥ १६॥

महाबाहु धर्मात्मा श्रीराम सीता को न देखकर शोक के मारे चेतना-शून्य होकर विलाप करते हुए लक्ष्मणजी से कहने लगे—

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी
मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकेन शोको हि परम्पराया
मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च॥ १७॥

हे लक्ष्मण ! मैं समझता हूँ इस भूमण्डल पर मेरे समान दुष्कर्म करनेवाला पापी पुरुष और कोई नहीं हैं, क्योंकि एक के पश्चात् एक दुःखों की अविच्छिन्न परम्परा निरन्तर मेरे हृदय और मन को विदीर्ण किये डालती है।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको
दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥ १८॥

पूर्वजन्म में निश्चय ही मैंने एक के पश्चात् एक यथेष्ट पाप किये हैं उन्हीं पापों का फल आज मुझे प्राप्त हो रहा है और मेरे ऊपर दुःख के ऊपर दुःख आ रहे हैं।

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः
पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगं
आपूरयन्ति प्रविचिन्तितानि॥ १९॥

हे लक्ष्मण ! राज्य हाथ से छिन गया, स्वजनों का वियोग हो गया, पिताजी परलोक सिधार गये और माताजी से विछोह हो गया। इन घटनाओं का स्मरण करने पर मेरा हृदय शोक से परिपूर्ण हो जाता है।

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं
शान्तं शरीरे वनमेत्य शून्यम्।
सीता वियोगात्पुनरप्युदीर्णं
काष्ठैरिवाग्निः सहसा प्रदीप्तः॥ २०॥

हे लक्ष्मण ! ये सारे दुःख इस रमणीय शून्य वन में आने पर शान्त हो गये थे, परन्तु आज सीता के वियोग से वे सभी विस्मृत दुःख उसी प्रकार नये एवं हरे हो गये हैं जिस प्रकार लकड़ी डालने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

इतीव तं शोकविधेयदेहं
रामं विसंज्ञं विलपन्तमेवम्।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो
न्याये स्थितः कालयुतं च वाक्यम्॥ २१॥

श्रीराम को शोक से विह्वल और विलाप करते-करते चेतनाहीन देखकर न्याय-पथ पर चलनेवाली उदारचेता, धीर लक्ष्मण कालोचित ये वचन बोले—

शोकं विमुञ्चार्य धृतिं भजस्व
सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके
सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु॥ २२॥

हे आर्य ! शोक को त्याग कर धैर्य धारण कीजिए, फिर उत्साहपूर्वक सीताजी को खोजिए, क्योंकि उत्साही मनुष्य इस सार में कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी दुःखी नहीं होते।

इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं
ब्रुवन्तमार्तो रघुवंशवर्धनः।
न चिन्तायामास धृतिं विमुक्तवान्
पुनश्च दुःखं महदभ्युपागमत्॥ २३॥

विख्यात पराक्रमवाले लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भी रघुकुलशिरोमणि श्रीराम ने दुःखी होने के कारण उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपितु धैर्य त्याग कर वे महान् दुःख प्रकट करने लगे।

◀ षट्त्रिंशः सर्गः ▶ (३६)

सीता की खोज और जटायु का अन्त्येष्टि-संस्कार

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्।
वक्तुकामा इव मृगा मामीक्षन्ते मुहुर्मुहुः॥ १॥

दीन-दुःखी राम आर्त शब्दों में लक्ष्मण से बोले—हे वीर! ये मृग मेरी ओर बार-बार इस प्रकार देख रहे हैं मानो मुझसे कुछ कहना चाहते हैं।

तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह।
क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया दृशा॥ २॥

लक्ष्मण से ऐसा कहकर उन मृगों की ओर देखते हुए नरकेसरी श्रीराम ने रुद्ध कण्ठ से उनसे पूछा—हे मृगो! सीता कहाँ है?

एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः।
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम्॥ ३॥

श्रीराम के ऐसा पूछने पर वे मृग सहसा उठकर आकाश-मार्ग को दिखलाते हुए दक्षिण की ओर मुँह करके दौड़ने लगे।

मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामन्वपद्यत।
तेन मार्गेण धावन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम्॥ ४॥

जिस मार्ग से रावण सीता को हर कर ले गया था वे उसी ओर दौड़े। उस मार्ग पर दौड़ते हुए वे मृग पीछे मुड़-मुड़कर श्रीराम को देखते जाते थे।

लक्षयित्वा चेङ्गितं तेषां लक्ष्मणो ज्येष्ठमब्रवीत्।
क्व सीतेति त्वया पृष्टा यथेमे सहसोत्थिताः॥ ५॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः।
साधु गच्छावहै देव दिशमेतां हि नैर्ऋतिम्॥ ६॥

उन मृगों की चेष्टाओं को देखकर लक्ष्मणजी ने अपने बड़े भाई राम से कहा—आपके यह पूछने पर कि सीता कहाँ है, ये मृग सहसा खड़े हो गये और उधर दौड़ते हुए हमें आकाश और दक्षिण दिशा दिखला रहे हैं, अतः हे देव! हमें दक्षिण दिशा की ओर ही चलना चाहिए।

यदि स्यादागमः कश्चिदार्या वा साऽथ लक्ष्यते।
बाढमित्येव काकुत्स्थ प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्॥ ७॥

सम्भव है उस ओर जाने से सीता मिल ही जाए अथवा उसका पता लग जाए। लक्ष्मण की यह बात सुन श्रीराम "बहुत अच्छा" कहकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

अथ दाशरथी रामो गच्छन् लक्ष्मणेन सह।
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत्॥ ८॥

दशरथनन्दन श्रीराम ने लक्ष्मणजी के साथ जाते हुए मार्ग में किसी राक्षस का एक विशाल पदचिह्न देखा।

त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः।
राक्षसेनानुवृत्ताया मैथिल्याश्च पदान्यथ॥ ९॥
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च।
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम्॥ १०॥

उन्होंने राम में अनुराग रखनेवाली, त्रस्त होकर इधर-उधर दौड़ती हुई और राक्षस द्वारा पीछा की जाती हुई सीता के चरणचिह्नों को भी देखा। सीता और राक्षस के पदचिह्नों को देखते हुए आगे चलकर राम ने टूटे हुए धनुष, तरकस और रथ को देखा।

सम्भ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम्।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः शीर्णाः कनकबिन्दवः॥ ११॥

इन सबको देखकर श्रीराम ने उद्विग्न हो अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! देखो ये सीताजी के सोने के घुँघरू जहाँ-तहाँ पड़े हैं।

धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः।
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम्॥ १२॥

हे सौम्य! टूटकर पृथिवी पर पड़ा हुआ यह धनुष किसका है? और यह सोने का कवच किसका टूटा पड़ा है?

कस्येमेऽभिहिता बाणाः प्रकीर्णा घोरकर्मणः।
शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण॥ १३॥

ये टूटे हुए भयंकर बाण किसके हैं? हे लक्ष्मण! देखो! बाणों से भरे ये दोनों तरकस किसके पड़े हुए हैं?

ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम्।
ददर्शपतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्॥ १४॥

थोड़ा और आगे जाने पर श्रीराम ने विशालकाय, महाभाग, द्विजातियों में श्रेष्ठ रक्त से सने हुए एवं भूमि पर पड़े हुए जटायु को देखा।

तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः॥ १५॥

उस विशालकाय, तपस्वी जटायु को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—अब इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इसी ने सीता का भक्षण किया है।

गृध्ररूपमिदं रक्षो व्यक्तं भ्रमति कानने।
एनं वधिष्ये दीप्तास्यैर्घोरैर्बाणैरजिह्मगैः॥ १६॥

तपस्वी के रूप में यह राक्षस ही है जो इस वन में घूम रहा है। अतः अब मैं सीधे चलनेवाले देदीप्यमान बाणों से इसका वध करूँगा।

इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्गृध्रं सन्धाय धनुषि क्षुरम्।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ १७॥

यह कहकर और अपने धनुष पर 'क्षुर' नामक बाण को चढ़ाकर, समुद्र पर्यन्त पृथिवी को कम्पायमान करते हुए क्रुद्ध राम जटायु को देखने के लिए आगे बढ़े।

तं दीनं दीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी तु रामं दशरथात्मजम्॥ १८॥

श्रीराम को अपनी ओर आते देख तपस्वी जटायु मुख से फेनयुक्त रुधिर वमन करते हुए दुःखी होकर दीन शब्दों में दशरथनन्दन श्रीराम से बोले—

यामोषधिमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्॥ १९॥

हे आयुष्मन्! ओषधि के समान जिस सीता को तुम वन में खोजते फिरते हो उस देवी सीता तथा मेरे प्राणों को रावण हर कर ले गया है।

त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा॥ २०॥

हे राम! आपकी और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सूने आश्रम से सीता का अपहरण करके ले जाते हुए महाबली रावण को मैंने देखा है।

सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे मया।
विध्वंसितरथश्चात्र पातितो धरणीतले॥ २१॥

हे राम! संकट में पड़ी हुई सीता की रक्षा के लिए मैंने रावण का सामना किया और उससे युद्ध करके उसके रथ को तोड़कर भूमि पर गिरा दिया।

एतदस्य धनुर्भग्नमेतदस्य शरावरम्।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ च्छित्त्वाखड्गेन रावणः॥ २२॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम्।
रक्षसा निहतं पूर्वं न मां हन्तुं त्वमर्हसि॥ २३॥

यह उसका टूटा हुआ धनुष पड़ा है और ये उसके श्रेष्ठ बाण हैं। हे राम! जब मैं युद्ध करते-करते थक गया तब रावण ने अपनी तलवार से मेरे कन्धों को काट डाला और सीता को लेकर आकाश-मार्ग से चला गया। मैं तो पहले ही राक्षस का मारा हुआ हूँ। अब आपको मुझे मारने योग्य नहीं है।

रामस्तस्य तु विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखस्तदा।
द्विगुणीकृततापार्तः सीतासक्तां प्रियां कथाम्॥ २४॥

गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः।
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः॥ २५॥

जटायु से प्राणप्रिया सीता का वृत्तान्त सुन और उसकी दीन-हीन दशा को देखकर श्रीराम का मुख आँसुओं से परिपूर्ण हो गया और उनका संताप द्विगुणित हो गया। उन्होंने अपने धनुष को फेंककर जटायु को हृदय से लगा लिया। वे विवश होकर पृथिवी पर गिर पड़े और लक्ष्मण सहित फूट-फूटकर रोने लगे।

राज्याद् भ्रंशो वने वासः सीता नष्टा द्विजो हतः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्निर्दहेदपि पावकम्॥ २६॥

रोते-रोते वे कहने लगे—मैं राज्य से च्युत हो गया, वन में वास कर रहा हूँ, सीता का अपहरण हो गया और मेरे ही कारण यह तपस्वी जटायु भी मारा गया। यह सब मेरे खोटे भाग्य का ही परिणाम है। इस प्रकार का भाग्य अग्नि को भी भस्म कर सकता है।

सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम्।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः॥ २७॥

मैं अपने भाग्य के सम्बन्ध में कहाँ तक कहूँ? यदि आज मैं अपने सन्ताप की शान्ति के लिए समुद्र में भी कूदूँ तो वह भी मेरे खोटे भाग्य के कारण सूख जायेगा।

नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् सचराचरे।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा॥ २८॥

हे भाई! इस चराचर जगत् में मुझसे बढ़कर अभागा पुरुष कौन होगा? इस खोटे भाग्य के ही कारण मैं विपत्तियों के भयंकर जाल में फँस गया हूँ।

अयं पितृवयस्यो मे गृध्रराजो जरान्वितः।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्॥ २९॥

देखो! मेरे पूज्य पिता के परममित्र यह वृद्ध तपस्वी जटायु मेरे भाग्य के विपरीत होने के कारण आहत होकर पृथिवी पर पड़ा है।

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः।
जटायुषं च पस्पृश्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ३०॥

इस प्रकार राम और लक्ष्मण ने अनेक प्रकार की बातें कहते हुए जटायु का स्पर्श किया। तदनन्तर राम ने पूछा—

जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः॥ ३१॥

हे जटायु! यदि तुममें बोलने की शक्ति हो तो तुम सीता के हरण और अपने वध का सम्पूर्ण समाचार मुझे पुनः सुनाओ।

कथंवीर्यः कथंरूपः किं कर्मा स च राक्षसः।
क्व चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः॥ ३२॥

उस राक्षस का पराक्रम कैसा है? उसकी आकृति कैसी है? वह क्या करता है और कहाँ रहता है? हे तात! मैं जो कुछ पूछ रहा हूँ आप बताइए।

तमुद्वीक्ष्याथ दीनात्मा विलपन्तमनन्तरम्।
वाचाऽति सन्नया रामं जटायुरिदमब्रवीत्॥ ३३॥

अनाथ के समान करुणापूर्ण शब्दों में विलाप करते हुए श्रीराम को देखकर जटायु ने अत्यन्त क्षीण वाणी से कहा—

हृता सा राक्षसेन्द्रेण रावणेन विहायसा।
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च॥ ३४॥

विश्रवा का पुत्र और कुबेर का भाई राक्षसराज रावण सीता का अपहरण करके उसे आकाश मार्ग से ले गया है।

परिश्रान्तस्य मे तात पक्षौ च्छित्त्वा च राक्षसः।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणां दिशम्॥ ३५॥

जब मैं उस दुष्ट के साथ युद्ध करते-करते थक गया तब वह मेरे कन्धों को काटकर सीता को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला गया।

इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः।
गतासुं तं गृध्रं प्रेक्ष्य रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ ३६॥

ऐसा कहकर तपस्वी जटायु ने अपने दुर्लभ प्राणों को त्याग दिया।[१] उसे प्राणहीन देखकर श्रीराम ने

१. इस प्रसङ्ग में सन्त तुलसीदासजी ने भी एक सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

लक्ष्मण से कहा—

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप॥ ३७॥

हे सौम्य! अब मुझे सीता के अपहरण का इतना दुःख नहीं है जितना कि मेरे लिए अपने प्राणों की आहुति देनेवाले तपस्वी जटायु की मृत्यु का दुःख हो रहा है

राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथाऽयं पतगेश्वरः॥ ३८॥

जिस प्रकार महायशस्वी महाराज दशरथ मेरे पूज्य एवं मान्य हैं उसी प्रकार यह तपस्विराज जटायु भी मेरे लिए आदरणीय हैं।

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्षामि मत्कृते निधनं गतम्॥ ३९॥

हे लक्ष्मण! काष्ठों का संचय करो। मैं अग्निमन्थन कर उस अग्नि से तपस्विराज जटायु का अन्त्येष्टि संस्कार करूँगा।

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः॥ ४०॥

ऐसा कहकर उस तपस्वी श्रेष्ठ जटायु के मृत शरीर को चिता पर रखकर धर्मात्मा राम ने दुःखी होकर अपने बन्धु बान्धवों की भाँति जटायु का दाहकर्म किया।

❮ सप्तत्रिंशः सर्गः ❯ (३७)

राक्षसी अयोमुखी और कबन्ध से मुठभेड़—

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां पश्चिमां जग्मतुर्दिशम्॥ १॥

तत्पश्चात् राम-लक्ष्मण दोनों वीर उस तपस्वी जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया आदि कृत्यों को पूर्ण कर वहाँ से प्रस्थानित हुए। वे वन में सीता को खोजते हुए पश्चिम दिशा की ओर चले।

यतः परं जनस्थानात्त्रिकोशं गम्य राघवौ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ॥ २॥

जनस्थान से तीन कोस चलने के पश्चात् महाबली राम और लक्ष्मण क्रौञ्च नामक महावन में प्रविष्ट हुए।

दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिक्यतुः।
यत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणकर्शितौ॥ ३॥

सीता के अपहरण से दुःखी दोनों राजकुमार यत्र-तत्र बैठकर विश्राम करते हुए सीता को देखने की अभिलाषा से उस वन में इधर-उधर खोजने जाते थे।

ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिकोशं भ्रातरौ तदा।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे॥ ४॥

तदनन्तर वे दोनों राजकुमार उस वन में तीन कोस पूर्व की ओर जाकर क्रौञ्चारण्य को पार कर महर्षि मतङ्ग के आश्रम में पहुँचे।

दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम्।
नाना सत्त्वसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम्॥ ५॥

मतङ्गाश्रमवाला वह वन वनैले भयंकर जीव-जन्तुओं और सघन वृक्षों से परिपूर्ण तथा भय उत्पन्न करनेवाला था।

ददृशाते तु तौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम्॥ ६॥

मतङ्ग वन की पहाड़ी पर दशरथ-कुमार राम-लक्ष्मण ने एक विशाल पर्वत-कन्दरा को देखा जो पाताल के समान गहरी और अन्धकार से आवृत्त थी।

सीता हरन तात जन कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहहि दसानन आइ॥

आसाद्य तौ नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः।
ददृशाते महारूपां राक्षसीं विकृताननाम्॥ ७॥

उस पर्वत कन्दरा के समीप पहुँचने पर नरकेसरी राम-लक्ष्मण ने वहाँ भयंकर रूपवाली एवं विकराल मुखवाली एक राक्षसी को देखा।

सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः।
एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्बत लक्ष्मणम्॥ ८॥

वह राक्षसी भी उन दोनों भाइयों को देख उनके समीप आ, आगे चलते हुए लक्ष्मण से बोली—''आओ, हम दोनों विहार करें''—ऐसा कहकर उसने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया।

उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य सा।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः॥ ९॥

लक्ष्मणजी का आलिंगन कर वह कहने लगी—मेरा नाम अयोमुखी है। तुम मुझे बड़े प्रिय हो और बड़े भाग्य से ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो।

नाथ पर्वतकूटेषु नदीनां पुलिनेषु च।
आयुः शेषमिमं वीर त्वं मया सह रंस्यसे॥ १०॥

हे नाथ! इन दुर्गम पर्वतों में और नदियों के तटों पर तुम अपनी आयु के शेष भाग को मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करते हुए व्यतीत करना।

एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः।
कर्णनासौ स्तनौ चास्या निचकर्तारिसूदनः॥ ११॥

उसके ऐसा कहने पर शत्रुसंहारक लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर म्यान से तलवार निकाल उसके नाक, कान और स्तनों को काट डाला।

कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं सा विनद्य च।
यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी भीमदर्शना॥ १२॥

कानों और नाक के कट जाने पर वह विकराल राक्षसी भयंकर नाद करती हुई जिधर से आई थी उधर ही भाग खड़ी हुई।

तस्यां गतायां गहनं विशन्तौ वनमोजसा।
आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १३॥

उस राक्षसी के भाग जाने पर शत्रुसंहारक और महातेजस्वी दोनों भाई वहाँ से शीघ्रता-पूर्वक चलकर एक दूसरे गहन वन में पहुँचे।

तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम्॥ १४॥

जिस समय महापराक्रमी राम और लक्ष्मण उस वन को खोज रहे थे उस समय ऐसा भीषण शब्द हुआ की सारी वनस्थली कम्पायमान हो गई।

तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः कक्षे सहानुजः।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम्॥ १५॥

लक्ष्मणसहित श्रीराम उस भीषण शब्द को जानने की आकांक्षा कर ही रहे थे कि उन्होंने पास ही वृक्षों के झुण्ड में विशाल वक्षस्थलवाले एक विकराल राक्षस को देखा।

स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ।
जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात्॥ १६॥

उस विशाल भुजाओंवाले कबन्ध नामक राक्षस ने अपनी लम्बी भुजाएँ फैलाकर राम और लक्ष्मण को बलपूर्वक पकड़ लिया।

खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजोवपुर्धरौ।
भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ॥ १७॥

धनुर्धारी, हाथ में खड्ग लिये हुए अत्यन्त तेजस्वी और दीर्घबाहु दोनों भाई उस राक्षस द्वारा पकड़े जाने पर विवश हो गये।

तत्र धैर्येण शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे।
बाल्यादनाश्रयत्वाच्च लक्ष्मणस्त्वतिविव्यथे॥ १८॥

धैर्यशाली वीर रामचन्द्र तो उस राक्षस की पकड़ में आ जाने के कारण व्यथित नहीं हुए, परन्तु अज्ञानवश धैर्य को त्याग लक्ष्मणजी उसकी पकड़ में आने से बहुत दुःखी हुए।

उवाच च विषण्णः सन् राघवं राघवानुजः।
पश्य मां वीर विवशं राक्षसस्य वशंगतम्॥ १९॥

दुःखी होकर रामानुज लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा—हे वीर! मुझे देखो, मैं राक्षस के फन्दे में फँसकर विवश हो गया हूँ।

मयैकेन विनिर्युक्तः परिमुञ्चस्व राघव।
मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम्॥ २०॥

हे राम! आप मुझे राक्षस को सौंपकर, मुझ एक की बलि चढ़ाकर यहाँ से सुखपूर्वक चले जाइए।

अधिगन्ताऽसि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः।
प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महीम्॥ २१॥
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा।
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ २२॥

हे काकुत्स्थ राम! आपको सीता अवश्य मिलेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पिता-पितामह के द्वारा पालित इस पृथिवी को प्राप्त करके और राज्यसिंहासन पर बैठकर सदा मेरा स्मरण करते रहना। जब लक्ष्मणजी ने ऐसा कहा तब श्रीराम बोले—

मा स्म त्रासं कृथा वीर न हि त्वादृग्विषीदति।
एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥
पप्रच्छ घननिर्घोषः कबन्धो दानवोत्तमः॥ २३॥

हे वीर! भयभीत मत होओ। तुम्हारे जैसा वीर व्यक्ति इस प्रकार दुःखी नहीं होता। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए राम-लक्ष्मण से उस दानवश्रेष्ठ क्रूर कबन्ध ने पूछा—

कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ।
घोरं देशमिमं प्राप्तौ मम भक्ष्यावुपस्थितौ॥ २४॥

वृषभ के समान ऊँचे कन्धोंवाले, खड्ग और धनुषधारी तुम दोनों कौन हो? इस घोर वन में आकर तुम मेरे भक्ष्य बने हो।

तत् श्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा।
उवाचार्तिं समापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः॥ २५॥

कबन्ध के वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित हो अपने हित के लिए पराक्रम का निश्चय कर श्रीराम से समयानुकूल वचन बोले—

त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः।
तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू च्छिन्दावहै गुरू॥ २६॥

देखो, इस राक्षसाधम ने पहले से ही शीघ्रतापूर्वक हम दोनों को पकड़ लिया है, अतः हम दोनों अपनी तलवारों से इसकी ये दोनों बड़ी-बड़ी भुजाएँ काट डालें।

एतत्सञ्जल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः।
विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत्॥ २७॥

उन दोनों की इन बातों को सुनकर वह राक्षस क्रुद्ध होकर और अपना भयंकर मुँह फैलाकर उन दोनों का भक्षण करने के लिए तैयार हुआ।

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ।
आच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः॥ २८॥

उस समय देश और काल को जाननेवाले राम और लक्ष्मण ने अपनी अपनी तीक्ष्ण तलवारों से उसकी दोनों भुजाओं को सहज में ही कन्धे से काट डाला।

स पपात महाबाहुच्छिन्नबाहुर्महास्स्वनः।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा॥ २९॥

भुजाओं के कटने पर महाबाहु कबन्ध मेघ की भाँति भयंकर गर्जना कर उससे आकाश, पृथिवी और समस्त दिशाओं को पूरित करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

स निकृतौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः।
दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः॥ ३०॥

रक्त से लथपथ अपनी दोनों कटी हुई भुजाओं को देखकर दीनतापूर्वक उस दानव ने पूछा—तुम दोनों युवक कौन हो?

इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
शशंस राघवं तस्य कबन्धस्य महाबलः॥ ३१॥

कबन्ध के ऐसा पूछने पर शुभलक्षणों से युक्त महाबली लक्ष्मण ने कबन्ध को श्रीराम का परिचय देते हुए कहा—

अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः।
अस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम्॥ ३२॥

ये इक्ष्वाकुवंशीय राज्य के उत्तराधिकारी हैं। ये संसार में राम के नाम से विख्यात हैं। मैं इनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।

मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम्।
मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम्॥ ३३॥

राज्याभिषेक के समय इनकी सौतेली माता ने विघ्न डालकर इन्हें वन में भेज दिया। राज्य से च्युत होकर ये मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी के साथ महावन में विचरण कर रहे थे।

अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने।
रक्षसाऽपहृता पत्नी यामिच्छन्ताविहागतौ॥ ३४॥

इन देवतुल्य प्रभावशाली श्रीराम की धर्मपत्नी को, इस विजन वन में निवास करते हुए किसी ने हर लिया है। उसी को खोजते हुए हम यहाँ आये हैं।

निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे।
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः॥ ३५॥

हम नहीं जानते कि वह राक्षस कहाँ का रहनेवाला है और उसका प्रभाव कैसा है ? यदि आपको इस विषय में कुछ ज्ञात हो तो कृपया हमें बताइए इससे हमारा बड़ा कल्याण होगा।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कबन्धो वाक्यमब्रवीत्।
शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि॥ ३६॥

लक्ष्मण की बात सुनकर कबन्ध ने श्रीराम को सम्बोधित करते हुए कहा—हे राम! तुम्हें सीता किस प्रकार प्राप्त होगी मैं उसका उपाय बतलाता हूँ, आप सुनें—

राम षड्युक्तयो[1] लोके याभिः सर्वं विमृश्यते।
परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते॥ ३७॥

हे राम! संसार में किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए छह युक्तियाँ हैं। श्रेष्ठजन इन्हीं उपायों से अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं। जो मनुष्य दुर्दशाग्रस्त हो जाता है उसकी दुर्दशा ही होती चली जाती है।

तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर।
अकृत्वा हि न ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन्॥ ३८॥

अपनी दुर्दशा को समाप्त करने और सीता की प्राप्तिरूपी कार्य में सिद्धि एवं सफलता प्राप्त करने के लिए हे सुहृदों में श्रेष्ठ! आप इन उपायों में से प्रथम उपाय 'सन्धि' का आश्रय लेकर वक्ष्यमाण उस व्यक्ति के साथ अवश्य मित्रता करो। उसकी मित्रता के बिना आपके लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकेगी, ऐसा मेरा विचार है।

श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन बालिना शक्रसूनुना॥ ३९॥

हे राम! सुनो, मैं उसके सम्बन्ध में बतलाता हूँ। सुग्रीव नामक एक वानर है। इन्द्रपुत्र बाली ने क्रुद्ध होकर अपमानपूर्वक उसे राज्य से निकाल दिया है।

ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते।
निवसत्यात्मवान् वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः॥ ४०॥

वह आत्माभिमानी वीर अपने चार साथी वानरों के साथ पम्पा सरोवर के तट पर शोभायमान ऋष्यमूक नामक सुन्दर पर्वत पर वास करता है।

वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः।
सत्यसन्धोविनीतश्च धृतिमान् मतिमान् महान्॥ ४१॥

वह वानरों का राजा सुग्रीव अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी, अमित प्रतापी, सत्यप्रतिज्ञ, विनीत, धैर्यवान् और बड़ा बुद्धिमान् है।

स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे।
भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः॥ ४२॥

वह तुमसे मित्रता करेगा और सीता को ढूँढ़ने में तुम्हें सहायता भी देगा, इसलिए हे राम! तुम शोक मत करो।

गच्छ शीघ्रमितो राम सुग्रीवं तं महाबलम्।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव॥ ४३॥

हे राम! अब आप यहाँ से शीघ्र ही महाबली सुग्रीव के पास जाइए। वहाँ पहुँचकर उससे मैत्री कर लो।

---

१. वे छह उपाय हैं—१. सन्धि=मित्रता, २. विग्रह, ३. याम, ४. आसन, ५. द्वैधीभाव और ६. समाश्रय।

एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः॥ ४४॥

हे राम! पश्चिम दिशा में फूलों से लदे हुए ये जो मनोहारी वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, वहाँ जाने के लिए यह मार्ग ही सुखदायी होगा।

➤ अष्टात्रिंशः सर्गः ➤ (३८)

शबरी द्वारा राम का आतिथ्य—

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पायां दर्शितं वने।
प्रतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ॥ १॥

मनुष्यों में श्रेष्ठ वे दोनों राजकुमार कबन्ध के बतलाये पम्पा मार्ग को लक्ष्य करके पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े।

तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम्॥ २॥

कमलों से भरे हुए पम्पा-सरोवर के पश्चिम तट पर पहुँचकर राम-लक्ष्मण ने तपस्विनी शबरी के रमणीय आश्रम को देखा।

तौ तत्राश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम्।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः॥ ३॥

वे दोनों भाई नाना प्रकार के वृक्षों से आवृत उस आश्रम में पहुँच और वहाँ की रमणीयता को देखते हुए शबरी के निकट पहुँचे।

तौ च दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः॥ ४॥

वह सिद्धा शबरी उन दोनों भाइयों को देखते ही हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। तत्पश्चात् उसने महाबुद्धिमान् उन दोनों भाइयों का चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया और बोली—

मया तु विविधं वन्यं सञ्चितं पुरुषर्षभ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम्[1]॥ ५॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने पम्पा-सरोवर के निकटवर्ती वन में उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के कन्दमूल फलों को आपके लिए इकट्ठा कर रखा है।

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं शंसितव्रताम्॥ ६॥

ऐसा कह उस शबरी ने उन्हें अर्घ्य, पाद्य, आचमनादि यथाविधि प्रदान कर उनका आतिथ्य किया। तब श्रीराम ने धर्म तथा तपश्चर्या में निरत रहनेवाली शबरी से पूछा—

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः क्रोध आहारश्च तपोधने॥ ७॥

हे तपस्विनि! तपश्चर्या में विघ्न डालनेवाले काम आदि छह शत्रुओं को तुमने जीत तो लिया है? तुम्हारी तपस्या में वृद्धि तो हो रही है? तुमने क्रोध को तो अपने वश में कर लिया है? तुम्हारे आहार आदि की प्रक्रिया नियमित तो है?

कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि॥ ८॥

हे चारुभाषिणी! तुम यम-नियमों के पालन में सफल तो हो गई हो? तप के द्वारा प्राप्त होनेवाला सन्तोष, सुख एवं शान्ति तो तुम्हें प्राप्त हो गई है? तेरी गुरु-शुश्रूषा तो सफल हो गई है?

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता॥ ९॥

---

१. इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि शबरी ने श्रीराम लक्ष्मण का कन्दमूल-फलों से आतिथ्य किया था। वाल्मीकीय रामायण में जूठे बेरों की कहानी नहीं है। तुलसीकृत रामचरितमानस से भी इस मिथ्या धारणा का समर्थन नहीं होता। राम द्वारा शबरी के जूठे बेर खाने की कहानी सर्वथा निराधार, कपोलकल्पित एवं गप है।

जब श्रीराम ने शबरी से इस प्रकार के प्रश्न पूछे तब सिद्ध पुरुषों द्वारा सम्मानित उस वृद्धा तपस्विनी ने कहा—

अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः॥ १०॥

हे राम! आज आपके दर्शन से मैंने तपश्चर्या की सिद्धि प्राप्त कर ली। आज मेरा तप करना और गुरुजनों की सेवा सार्थक हुई।

इत्युक्त्वा जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा।
तस्मिन् मुहूर्ते शबरी देहं जीर्णं जिहासती॥ ११॥
अनुज्ञाता तू रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने।
ज्वलत्पावकसङ्काशा स्वर्गमेव जगाम सा॥ १२॥

श्रीराम से ऐसा कह जटाधारिणी तथा चीर एवं कृष्ण मृगचर्म पहननेवाली वह शबरी उसी समय अपनी पुरानी देह को त्यागने की इच्छा से, श्रीराम से अनुमति ले, जलती हुई अग्नि में प्रविष्ट होकर देदीप्यमान अग्नि के समान वह ब्रह्मलोक को सिधार गई।

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत्॥ १३॥

जब शबरी अपने तप और तेज के प्रभाव से स्वर्ग सिधार गई तब श्रीराम निश्चल रूप से बैठे हुए परम हितैषी अपने भाई लक्ष्मण से बोले—

तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम्।
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते॥ १४॥
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोंशुमतः सुतः।
नित्यं बालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः॥ १५॥

हे लक्ष्मण! आओ, हम दोनों पम्पा-सरोवर के तट पर चलें, वहाँ से वह ऋष्यमूक पर्वत भी समीप ही है जहाँ राजर्षिपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव बाली के भय से भयभीत होकर अपने चार मन्त्रियों के साथ सदा निवास करते हैं।

तदधीनं हि मे सौम्य सीतायाः परिमार्गणम्।
एवं ब्रुवाणं तं धीरं रामं सौमित्रिरब्रवीत्॥ १६॥

हे सौम्य! सीताजी की खोज करना उसी के अधीन है, अतः हमें जल्दी चलना चाहिए। श्रीराम के ऐसा कहने पर अपने धैर्यवान् भाई से लक्ष्मणजी ने कहा—

गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः।
आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशाम्पतिः॥
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः॥ १७॥

हाँ, हमें शीघ्र ही चल देना चाहिए। मेरा मन भी वहाँ पहुँचने के लिए शीघ्रता कर रहा है। यह सुन प्रजापालक श्रीराम मतङ्ग आश्रम से निकलकर अपने भाई लक्ष्मण के साथ पम्पा-सरोवर के तट पर जा पहुँचे।

॥ इति अरण्यकाण्डम्॥

—o—

अरण्यकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	३८
श्लोक-संख्या	८५९
टिप्पणियाँ	३०

अथ किष्किन्धाकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

श्रीराम की विरह-वेदना—

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः॥ १॥

जब लक्ष्मणसहित श्रीराम कमलदल और मीन[१] आदि जल-जन्तुओं से परिपूर्ण पम्पा नामक सरोवर पर पहुँचे तब सीता का स्मरण कर वे विकल हो गये और विलाप करने लगे।

तस्य दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि चकम्पिरे।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत्॥ २॥

जब उन्होंने कमल-वन से सुशोभित उस पुष्करिणी की रमणीयता को अच्छी प्रकार देखा तब हर्षातिरेक से उनकी सारी इन्द्रियाँ कम्पायमान हो गईं। वे कामातुर होकर अपने भाई लक्ष्मण से बोले—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैडूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः॥ ३॥

हे लक्ष्मण! देखो नाना प्रकार के वृक्षों से शोभित, खिले हुए कमलों से परिपूर्ण वैदूर्य मणि के समान निर्मल जलवाली यह पुष्करिणी कैसी सुशोभित हो रही है?

सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्।
यत्र राजन्ति शैलाभा द्रुमाः सशिखरा इव॥ ४॥

हे लक्ष्मण! पम्पा के निकटवर्ती दर्शनीय कानन को तो देखो जहाँ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पर्वतीय चोटी के समान शोभायमान हो रहे हैं।

मां तु शोकाभिसंतप्तं माधवः पीडयन्निव।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च॥ ५॥
शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥ ६॥

एक ओर मुझ शोक-सन्तप्त को वसन्त ऋतु पीड़ित-सी कर रही है, दूसरी ओर भरतजी का अयोध्या से बाहर नन्दिग्राम में व्रतोपवास आदि कर कष्ट सहन करना और सीता का हरण—मुझे पीड़ित कर रहे हैं।

---

१. इस सम्बन्ध में निम्न किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है। राम ने मछलियों से परिपूर्ण उस सरोवर पर एक बुगले को देखकर लक्ष्मणजी से कहा—

पश्य लक्ष्मण पम्पायां वकं परं धार्मिकम्।
मन्दं-मन्दं पदं धत्ते जीवानां वधशङ्कया॥

हे लक्ष्मण! पम्पा-सरोवर के तट पर इस परम धार्मिक बगुले को देखो। प्राणियों का वध न हो जाए, अतः यह कैसे धीरे-धीरे अपने पैरों को रख रहा है।

इस वार्त्तालाप को सुनकर एक मछली बोल उठी। वस्तुतः पशु, पक्षी या जल-जन्तु कभी बोलते नहीं। उनकी वाणी में कवि ही बोलता है। मछली के बोलने का तात्पर्य यह है कि कवि अपनी बात को उसके मुख से कहला रहा है।

वकं प्रशंससे राम येनाहं निष्कुली कृता।
सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनाम्॥

अहो! राम! तुम उस बगुले की प्रशंसा कर रहे हो जिसने मेरे सारे कुल को समाप्त कर दिया है। ठीक है, पास बैठनेवाला ही अपने सहवासी के चरित्र को जान सकता है।



महावीर हनुमान जी

इतना होने पर भी निर्विकार एवं शीतल जलवाली, अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित और अनेक प्रकार के वनों से युक्त यह पम्पा सरोवर मुझे अत्यन्त रमणीय लग रहा है।

अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम॥ ७॥

हे लक्ष्मण! यह वसन्त ऋतु विविध प्रकार के पक्षियों के कलरव से निनादित होकर मेरे सीता-वियोग-जन्य शोक को और अधिक सन्दीप्त कर रहा है।

मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।
न हि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम्॥ ८॥
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।
अयं हि दयितस्तस्याः कालो रुचिरकाननः॥ ९॥

हे लक्ष्मण! यह वसन्तरूपी अग्नि जिसमें लाल-लाल पत्रोंरूपी ज्वालाएँ उठ रही हैं, मुझे अवश्य ही भस्म कर डालेगी। उस कमल-नयनी, सुन्दर केशोंवाली, मधुरभाषिणी सीता को देखे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। यह वसन्त ऋतु सीता को अत्यन्त प्रिय था, क्योंकि इस ऋतु में सम्पूर्ण वन पत्र पुष्प और फलों से अत्यन्त कमनीय हो जाता है।

अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव॥ १०॥

हे लक्ष्मण! देखो, ये इधर-उधर नृत्य करते हुए मयूर कैसे शोभायमान हो रहे हैं। वायु से कम्पायमान इनके पंख ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो स्फटिक के बनाये हुए झरोखे हों।

नदन्ति कामं मुदिताः शकुनाः सङ्घशः कलम्।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम॥ ११॥

झुण्ड-के-झुण्ड ये पक्षिगण परस्पर एक-दूसरे का आह्वान करते हुए, आनन्दपूर्वक चहकते हुए मेरे काम की उन्मादावस्था की वृद्धि कर रहे हैं।

वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया।
नूनं परवशा सीता साऽपि शोचत्यहं यथा॥ १२॥

इस समय जहाँ मेरी प्राणप्रिया सीता निवास कर रही है यदि वहाँ भी इसी प्रकार वसन्त हुआ तो वह भी पराधीन होकर वैसे ही शोकातुर हो रही होगी जैसा मैं यहाँ शोकातुर हो रहा हूँ।

मयि भावस्तु वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः॥ १३॥

क्योंकि सीता का वास्तविक शुद्ध प्रेम मुझमें है और मेरा भी शुद्ध हार्दिक प्रेम सीता में है।

यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि।
स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम॥ १४॥

हे रघुकुलश्रेष्ठ लक्ष्मण! यदि वह पतिव्रता सीता यहाँ कहीं दिखाई दे जाए और मैं उसके साथ यहाँ वास करूँ तो मुझे न इन्द्रपद की चाह हो और न अयोध्या के राज्य की आकांक्षा हो।

तच्चार्वञ्चितपक्ष्माक्षं सुगन्धि शुभ्रमव्रणम्।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मनो मम॥ १५॥

इस समय कमल के समान नेत्रोंवाले, सुगन्धित और व्रणरहित सीता के उस कमनीय मुखमण्डल को देखे बिना मेरा मन व्याकुल हो रहा है।

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यामयोध्यायां नृपात्मज।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चातिमनस्विनीम्॥ १६॥

हे राजकुमार लक्ष्मण! अयोध्या लोटने पर जब माता कौसल्या मुझसे पूछेगी कि मनस्विनी मेरी पुत्रवधू सीता कहाँ है और वह कैसी है तब मैं उसे क्या उत्तर दूँगा?

गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम्।
न ह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम्॥ १७॥

हे लक्ष्मण! अब तुम अयोध्या लौट जाओ और भ्रातृ वत्सल भाई के दर्शन करो। मैं सीता के बिना अब जीवित नहीं रह सकता।

इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत्।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम्॥ १८॥

महात्मा श्रीराम को इस प्रकार अनाथों की भाँति विलाप करते देख विकाररहित लक्ष्मण ये युक्तियुक्त

वचन बोले—

संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम्।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम्॥ १९॥

हे राम! आपका कल्याण हो। धैर्य धारण कीजिए, शोक को त्याग दीजिए। हे पुरुषोत्तम! आप जैसे निर्मल बुद्धिवालों की बुद्धि ऐसी मन्द तो नहीं होनी चाहिए।

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने।
अतिस्नेहपरिष्वाङ्गाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते॥ २०॥

'संयोग वियोगपूर्वक होता है' इस अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखते हुए आप सीता वियोग-जन्य दुःख और उसके प्रति अत्यधिक स्नेह को छोड़ दीजिए, क्योंकि देखो न, अत्यन्त स्नेहयुक्त (तैल में पड़ने से) गीली बत्ती भी जल जाती है।

यदि गच्छति पातालं ततो ह्यधिकमेव वा।
सर्वथा रावणस्तावन्न भविष्यति राघव॥ २१॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! अब रावण चाहे पाताल में चला जाए अथवा उससे भी बढ़कर किसी अन्य गुप्त स्थान में जा छिपे—अब वह बच नहीं सकता, वह निश्चय ही मारा जायेगा।

स्वास्थ्यं भद्रं भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः।
अर्थो हि नष्टकार्यार्थैर्नायत्नेनाधिगम्यते॥ २२॥

हे भाई! आप स्वस्थ हो जाइए। इस दीनता और कायरता को त्याग दीजिए, धैर्य धारण कीजिए, क्योंकि उद्योग के अभाव में अर्थ की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। (खोई हुई वस्तु बिना प्रयत्न के नहीं मिलती।)

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्।
सोत्साहस्यास्ति लोकेऽस्मिन्न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ २३॥

हे आर्य राम! उत्साह में बड़ा बल होता हे, उत्साह से बढ़कर और कोई बल नहीं है। उत्साही एवं उद्योगी पुरुषों के लिए इस संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।
उत्साहमात्रमाश्रित्य सीतां प्रतिलंभेमहि॥ २४॥

उत्साही पुरुष किसी भी कार्य को करने में घबराते नहीं हैं। हम भी उत्साह का आश्रय लेकर सीताजी को अवश्य प्राप्त कर लेंगे।

त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे॥ २५॥

आप महात्मा और कृतविद्य होकर भी अपने स्वरूप को क्यों नहीं पहचानते। आप शोक को त्याग कर कामी जनों जैसी इस वृत्ति को परे फेंकिए।

एवं सम्बोधितस्तत्र शोकोपहतचेतनः।
न्यस्य शोकं च मोहं च ततो धैर्यमुपागमत्॥ २६॥

जब लक्ष्मणजी ने शोकाक्रान्त राम को इस प्रकार समझाया तब श्रीराम ने शोक और मोह को त्यागकर धैर्य धारण किया।

सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम्॥ २७॥

लक्ष्मण के समझाने पर अचिन्त्य पराक्रमी राम स्थिरचित्त होकर हिलते हुए वृक्षों से युक्त उस अत्यन्त मनोहर-पम्पा सरोवर को घूम-घूमकर देखने लगे।

➤ द्वितीयः सर्गः ➤ (२)

सुग्रीव का शंकित होकर हनुमान् को राम-लक्ष्मण के समीप भेजना—

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत्॥ १॥

उत्तम अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, महात्मा, उन दोनों वीर भाई राम और लक्ष्मण को पम्पा-सरोवर पर घूमते हुए देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुआ।

ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ॥ २॥

तब भय से आक्रान्त वानरराज सुग्रीव ने राम और लक्ष्मण को देखते हुए अपने मन्त्रियों से यह कहा—

एतौ वनमिदं दुर्गं बालिप्रणिहितौ ध्रुवम्।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ॥ ३॥

ये दोनों निश्चय ही बाली के भेजे हुए हैं। ये छलपूर्वक अपने वेश को छिपाकर वल्कल वस्त्र धारणकर इस दुर्गम वन में घूमते फिरते यहाँ आये हैं।

ततस्तं भयसंविग्नं बालिकिल्बिषशङ्कितम्।
उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः॥ ४॥

तब बाली के षड्यन्त्र से आशंकित एवं डरे हुए राजा सुग्रीव से वाणीविशारद हनुमान् इस प्रकार बोले—

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम।
लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ॥ ५॥

हे वानरराज! आश्चर्य है कि आप अपने चित्त की चञ्चलता के कारण वस्तुतः बन्दरपन=क्षुद्रता का परिचय दे रहे हैं, जबकि इस अवस्था में आप को धैर्यपूर्वक स्थिर-बुद्धि से कार्य लेना चाहिए।

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह॥ ६॥

हनुमान् के इस सारगर्भित शुभ वचन को सुनकर सुग्रीव हनुमान्‌जी से अति मनोहर शब्दों में इस प्रकार बोले—

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ॥ ७॥

हे हनुमन्! दीर्घबाहू, विशाल नेत्र, धनुष-बाण और कृपाणधारी देवपुत्रों के समान इन दोनों को देखकर किसको भय नहीं होगा?

बालिप्रणिहितावेतौ शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः॥ ८॥

इन दोनों नरश्रेष्ठों को देखकर मुझे तो यहीं शंका हो रही है कि ये दोनों बाली के भेजे हुए हैं, क्योंकि राजाओं के अनेक प्रकार के मित्र होते हैं, अतः इन पर सहसा विश्वास करना उचित नहीं है।

तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम।
इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च॥ ९॥

अतः हे हनुमन्! तुम साधारण वेष में उनके समीप जाकर उनके हाव भाव चेष्टा, आकृति और भाषण के द्वारा पता लगाओ कि ये दोनों कौन हैं?

वचो विज्ञाय हनुमान् सुग्रीवस्य महात्मनः।
पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ॥ १०॥

महात्मा सुग्रीव का आदेश पाकर हनुमान् ऋष्यमूक पर्वत से शीघ्रतापूर्वक उधर चल पड़े जहाँ राम लक्ष्मण थे।

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥ ११॥

जाते समय पवनसुत हनुमान् ने अपने वानरवेष का परित्याग कर अपने आपको छिपाने के लिए और राम को धोखा देने के लिए याचक का रूप धारण कर लिया।

ततः स हुनमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च॥ १२॥
आबभाषे तदा वीरौ यथावत्प्रशशंस च।
सम्पूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान् मारुतात्मजः॥ १३॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी राम लक्ष्मण के समीप जा, उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम कर, मधुर एवं मनोहर वाणी से उन दोनों की प्रशंसा करने लगे। उन दोनों वीरों की यथार्थ प्रशंसा कर तथा उन दोनों की विधिवत् पूजाकर पवनसुत हनुमान्‌जी बोले—

राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ।
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ॥ १४॥

आप दोनों राजर्षि सदृश देवताओं के समान, तपस्वी एवं कठोर व्रतधारी हैं। हे उत्तम वर्णयुक्त! आप दोनों महानुभाव इस प्रदेश में किसलिए आये

हैं?

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिवागतौ॥ १५॥

आपके नेत्र कमल के समान हैं, आप वीर हैं और जटामण्डल धारण किये हुए हैं, समान आकृतिवाले आप दोनों कौन हैं? कहीं आप दोनों देवलोक त्रिविष्टप् से तो नहीं आये हैं।

यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुन्धराम्।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ॥ १६॥

स्वेच्छापूर्वक कहीं सूर्य और चन्द्रमा तो इस धराधाम पर नहीं उतर आये हैं? (अर्थात् आपका सौन्दर्य सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति को भी म्लान कर रहा है) विशाल वक्षस्थलों से युक्त साधारण मनुष्य के रूप में आप दोनों कोई देवता तो नहीं हैं?

सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः॥ १७॥

आप दोनों वीरों के कन्धे सिंह के समान हैं। आप महा उत्साही और मदमत्त वृषभों के तुल्य हैं। आपकी भुजाएँ गदा के समान गोल, दृढ़ और लम्बी हैं।

सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः।
उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम्॥ १८॥

सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित करने योग्य आपके सुन्दर शरीर आभूषणों से रहित क्यों हैं? मैं समझता हूँ आप दोनों व्यक्ति इस सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ हैं।

इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने।
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते॥ १९॥

आपके ये दोनों धनुष अद्भुत, चिकने और चित्रकारी किये हुए हैं। ये ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे इन्द्र के स्वर्णविभूषित वज्र हों।

सम्पूर्णा निशितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः।
जीवितान्तकरैर्घोरैः श्वसद्भिरिव पन्नगैः॥ २०॥

तीखे बाणों से पूरिपूर्ण आपके तरकस भी बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं, जिनमें जीवन का अन्त कर देनेवाले सर्प के समान भयंकर बाण भरे हुए हैं।

महाप्रमाणौ विस्तीर्णौ तप्तहाटकभूषितौ।
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्ताविव पन्नगौ॥ २१॥

लम्बी-चौड़ी और सुनहरी मूठोंवाली आपकी तलवारें केंचुली छोड़े हुए सर्प की भाँति दमक रही हैं।

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरयूथपः।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः॥ २२॥

(दोनों भाइयों की प्रशंसा कर हनुमान् अब अपना प्रयोजन कहते हैं—) सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा और वीर वानरों का मुखिया है, जो अपने भाई द्वारा अपमानित करके निकाला जाने पर दुःखी होकर संसार में मारा-मारा फिर रहा है।

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मनः।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः॥ २३॥

उन महात्मा वानरराज सुग्रीव द्वारा भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ। उसके वानरों में मुख्य में हनुमान् नामक वानर हूँ।

युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं विद्धि वानरं पवनात्मजम्॥ २४॥

वे धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों भाइयों के साथ मैत्री करना चाहते हैं। मुझे आप पवन का पुत्र और सुग्रीव का मन्त्री समझिए।

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम्॥ २५॥

हनुमान् के इन वचनों को सुनकर श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने समीप स्थित लक्ष्मणजी से बोले—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः॥ २६॥

हे लक्ष्मण! ये उन वानरराज के मन्त्री हैं जिनसे मैं स्वयं मिलना चाहता था, सो यह उनका मन्त्री स्वयं ही मेरे पास आ गया है।

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम्॥ २७॥

हे लक्ष्मण! तुम वाक्यविशारद, शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले, स्नेह की मूर्ति सुग्रीव के सचिव हनुमान् से मधुर वाणी में वार्तालाप करो।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥[१] २८॥

ये हनुमान् उच्चकोटि के विद्वान् हैं, क्योंकि ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ, यजुर्वेद के ज्ञान से हीन और सामवेद के बोध से शून्य व्यक्ति ऐसी परिष्कृत बातें नहीं कह सकता।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्[१]॥ २९॥

निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अध्ययन किया है। यही कारण है कि इनके इतने समय बोलने में इन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की है।

न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥ ३०॥

इतना ही नहीं बोलते समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंहें तथा शरीर के अन्य अङ्गों में कहीं कोई विकृति या दोष दिखाई नहीं दिया।

अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे॥ ३१॥

इनका भाषण संक्षिप्त, परन्तु सन्देहरहित है। अपने कथन को व्यक्त करते हुए न तो इन्होंने शीघ्रता की है और न विलम्ब ही किया है। इनके हृदय का वाक्य जब कण्ठ में आकर बाहर निकलता है तब उसका स्वर न बहुत ऊँचा होता है और न बहुत नीचा, अपितु मध्यम होता है।

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम्॥ ३२॥

इनकी वाणी व्याकरण से संस्कारित, क्रम सम्पन्न तथा न बहुत धीमी है और न बहुत तेज। इनकी वाणी हृदय को हर्षित करनेवाली और मधुर है।

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि॥ ३३॥

उर, कण्ठ और मूर्द्धा—इन तीन स्थानों से व्यक्त की गई इनकी विचित्र एवं रमणीय वाणी हाथ में तलवार लेकर मारने के लिए उद्यत शत्रु के कठोर हृदय को भी पिघला देगी।

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु।
सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ॥ ३४॥

हे निष्पाप लक्ष्मण! जिस राजा के पास ऐसे दूत न हों उन्हें अपने कार्यों में सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है?

एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम्।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम्॥ ३५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर बोलनेवालों में श्रेष्ठ वाग्विशारद लक्ष्मण भाषणपटु सुग्रीव के सचिव पवनपुत्र हनुमान् से बोले—

विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्॥ ३६॥

हे विद्वन्! हम लोगों को महात्मा सुग्रीव के सब गुण विदित हैं। हम दोनों उन्हीं वानरराज सुग्रीव को खोजते फिर रहे हैं।

यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह।
तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम॥ ३७॥

हे हनुमन्! आप सुग्रीव के आदेशानुसार जैसा

१. जो लोग हनुमान् को बन्दर कहते हैं वे तनिक इन श्लोकों का अवलोकन करें। क्या बन्दर ऋग्वेदादि वेदों का अध्ययन करते हैं और क्या जंगलों में कूदनेवाले बन्दर व्याकरण का अध्ययन करते हैं। हनुमान् पूँछवाले एवं लाल मुखवाले **बन्दर नहीं** थे जैसाकि उन्हें कुछ मूर्ख लोग समझते **हैं। वे वानरजाति** के थे और वेदवेदाङ्ग के विद्वान् थे।

हमसे कह रहे हैं (अर्थात् सुग्रीव हम लोगों से मैत्री करना चाहते हैं।) हे सज्जनश्रेष्ठ! आपके कथनानुसार हम वैसा ही करेंगे, अर्थात् हम भी सुग्रीव से मैत्री करना चाहते हैं।

◀ तृतीयः सर्गः ▶ (३)

हनुमान् का राम-लक्ष्मण को लेकर सुग्रीव के पास जाना—

ततः परमसंहृष्टो हनुमान् प्लवगर्षभः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम्॥ १॥

लक्ष्मण के वार्तालाप और सुग्रीव से मित्रता करने की बात जानकर वानरश्रेष्ठ हनुमान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और वाणीविशारद श्रीराम से इस प्रकार कहने लगे—

किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम्।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम्॥ २॥

हे राम! पम्पा सरोवर के तीरवर्ती रमणीय वृक्षों से सुशोभित, नाना प्रकार के अजगरों तथा बाघ और चीतों से परिपूर्ण अत्यन्त दुर्गमनीय इस घोर वन में अपने भाई के साथ आप किसलिए आये हैं?

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः।
आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम्॥ ३॥

हनुमान्‌जी के ये वचन सुन श्रीराम द्वारा प्रेरित लक्ष्मणजी ने हनुमान् को दशरथनन्दन श्रीराम का परिचय देना आरम्भ किया।

राजा दशरथो नाम द्युतिमान् धर्मवत्सलः।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥ ४॥

हे हनुमन्! दशरथ नाम के एक तेजस्वी एवं धर्मवत्सल महाराज हैं। उनके ये प्रथम पुत्र श्रीराम के नाम से लोक में प्रसिद्ध हैं।

राज्यलक्षणसम्पन्नः संयुक्तो राज्यसम्पदा।
राज्याद् भ्रष्टो वने वस्तुं मया सार्धमिहागतः॥ ५॥

इनमें राजाओं के सभी लक्षण विद्यमान हैं। ये राज्य-सम्पत्ति से युक्त हैं, परन्तु राज्य से भ्रष्ट होकर मेरे साथ वन में निवास करने के लिए इस वन में आये हैं।

भार्यया च महातेजाः सीतयाऽनुगतो वशी।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः॥ ६॥

पाणिगृहीत आर्या सीता ने भी जितेन्द्रिय, महायशस्वी श्रीराम का उसी प्रकार अनुगमन किया जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की प्रभा सूर्य का अनुगमन करती है।

अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः॥ ७॥

मैं इनका छोटा भाई हूँ। इनकी कृतज्ञता और बहुमुखी ज्ञान आदि गुणों के कारण मैं इनका दास हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।

रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य सा हृता॥ ८॥

हम लोगों की अनुपस्थिति में इनकी धर्मपत्नी को कामरूपधारी कोई राक्षस हर ले गया है। जिस राक्षस ने इनकी धर्मपत्नी का अपहरण किया है हम अब तक उसका पता नहीं लगा पाये हैं।

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः।
अहं चैव हि रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ॥ ९॥

हे हनुमन्! तुम्हारे पूछने पर मैंने यथातथ्य सब कुछ बतला दिया। अब मैं और श्रीराम दोनों सुग्रीव की शरण में हैं।

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुलोचनम्।
हनुमान् प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १०॥

जब लक्ष्मणजी ने दीन भाव से और आँखों में आँसू भरकर इस प्रकार कहा तब वाक्यविशारद हनुमान्‌जी बोले—

ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः॥ ११॥

हे लक्ष्मण! जिस प्रकार के बुद्धिमान्, क्रोध-रहित तथा जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष की सुग्रीव को आवश्यकता थी, सौभाग्य से वे स्वयं ही उनके समीप उपस्थित हो गये हैं।

स हि राज्यात्परिभ्रष्टः कृतवैरश्च बालिना।
हृतदारो वने त्यक्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम्॥ १२॥

वे सुग्रीव भी इस समय राज्य से भ्रष्ट हैं। बाली के साथ उनकी शत्रुता हो गई है। उनकी भी स्त्री छीन ली गई है। वे राजा सुग्रीव भी शत्रुरूप अपने भाई से भयभीत होकर वनों में इधर-उधर भटक रहे हैं।

करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे॥ १३॥

वे सूर्यपुत्र सुग्रीव हम लोगों को साथ लेकर सीता की खोज करने में आप लोगों की सहायता अवश्य करेंगे।

इत्येवमुक्त्वा हनुमान् श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
बभाषे साधु गच्छेम सुग्रीवमिति राघवम्॥ १४॥

सुमधुर एवं कोमल शब्दों में लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर हनुमान् श्रीराम से बोले—अच्छा, आइए, हम सब सुग्रीव के पास चलें।

ततः स तु महाप्राज्ञो हनुमान् मारुतात्मजः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥ १५॥

तदनन्तर महाबुद्धिमान् पवनपुत्र हनुमान् दोनों राजकुमारों को अपनी पीठ पर चढ़ा उन्हें सुग्रीव के पास ले गये।

◀ चतुर्थः सर्गः ▶ (४)

सुग्रीव के साथ राम की मित्रता—

ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम्।
आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर छोड़ हनुमान् ऋष्यमूकपर्वत से मलयगिरि पर जाकर वानरराज सुग्रीव को वीरशिरोमणि राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में बतलाने लगे।

विशेष—ऐसा प्रतीत होता है कि राम-लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव भय के कारण मलय पर्वत के किसी सघन स्थान में जा छिपे थे, अतः हनुमान्‌जी राम-लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर छोड़कर सुग्रीव को वास्तविकता बताने के लिए अकेले ही उनके पास गये थे।

अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा पितुर्निर्देशपारगः॥ २॥

हे महाप्राज्ञ! पिता की आज्ञा का पालन करने-वाले, दृढ़-विक्रमी श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित यहाँ आये हैं।

तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः।
रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः॥ ३॥

संयमपूर्वक वन में वास करनेवाले इन महात्मा राम की धर्मपत्नी को रावण हर ले गया है, अतः अब ये आपकी शरण में आये हैं।

भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
प्रतिगृह्यार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ॥ ४॥

श्रीराम और लक्ष्मण पूजनीयतम हैं और आपसे मित्रता करना चाहते हैं। आप इन दोनों को ग्रहण कर इनका सत्कार कीजिए।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सुग्रीवो हृष्टमानसः।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्या प्रोवाच राघवम्॥ ५॥

हनुमान् की बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर राम के समीप जा प्रेमपूर्वक बोले—

भवान् धर्मविनीतश्च विक्रान्तः सर्ववत्सलः।
आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः॥ ६॥

आप धर्मात्मा, विनम्र-स्वभाव, पराक्रमी और सब पर कृपा करनेवाले हैं। आपके इन अनुपम गुणों के सम्बन्ध में हनुमान् ने मुझसे कहा है।

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह॥ ७॥

हे प्रभो! मैं वानरजाति का एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे साथ आपने जो मैत्री करनी चाही है यह आपने मुझे बहुत बड़ा सम्मान प्रदान किया है। इससे मुझे बड़ा लाभ होगा।

रोचते यदि वा सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा॥ ८॥

यदि आपको मेरी मैत्री पसन्द है तो लीजिए मेरा हाथ फैला हुआ है। आप मेरे बढ़े हुए हाथ को अपने हाथ से पकड़कर ध्रुव मैत्री का परिचय दीजिए।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेणा सुभाषितम्।
स प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना॥ ९॥

वानरराज सुग्रीव के इन सुन्दर वचनों को सुनकर श्रीराम ने प्रसन्न मन से सुग्रीव के हाथ को अपने हाथ से दबाया, अर्थात् हस्तालिंगन[१] किया।

हृद्यं सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।
ततो हनुमान् काष्ठयोः जनयामास पावकम्॥ १०॥

इतना ही नहीं राम ने प्रसन्न होकर सुग्रीव को हृदय से लगाकर गाढ़ आलिंगन किया। इतनी ही देर में हनुमान् ने दो अरणियों का मथकर अग्नि प्रकट की और—

तयोर्मध्येऽथ सुप्रीतो निदधे सुसमाहितः।
ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणीम्॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ॥ ११॥

उस अग्नि को उन दोनों, अर्थात् राम और सुग्रीव के मध्य में स्थापित कर दिया। हनुमान् द्वारा स्थापित उस प्रदीप्त अग्नि की उन दोनों ने प्रदक्षिणा[२] की। इस प्रकार सुग्रीव और राम की मैत्री हो गई।

ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ।
अन्योऽन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमुपजग्मतुः॥ १२॥

मैत्री होने के पश्चात् सुग्रीव और राम अत्यन्त प्रसन्न हो एक-दूसरे को देखने लगे, परन्तु एक दूसरे को देखते हुए वे तृप्त नहीं होते थे।

त्वं वयस्योऽसि मे हृद्यो ह्येकं दुःखं सुखं च नौ।
सुग्रीवं राघवो वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत्॥ १३॥

तदनन्तर श्रीराम ने प्रसन्न हो सुग्रीव से कहा—आप मेरे मित्र हैं, हृदय के प्यारे सखा है। आज से हम दोनों का दुःख-सुख समान है।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः॥ १४॥

राम की बात सुनकर सुग्रीव ने प्रसन्न हो मधुर एवं स्निग्ध वाणी से, आँखों से हर्ष और व्याकुलता के आँसू बहाते हुए श्रीराम से कहा—

अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः।
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमे तदुपाश्रितः॥ १५॥

---

१. हस्तालिंगन की प्रथा वैदिक है। वेद, रामायण, महाभारत और पुराणों में हस्तालिंगन करने का वर्णन आता है। इस विषय में कुछ प्रमाण हमने 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' पुस्तक में दिये हैं, वहीं पढ़ें। एक नया प्रमाण यहाँ भी प्रस्तुत है—

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः॥
समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः॥

—भागवत पु० १०। ६५। ४-५

श्रीकृष्ण के ज्येष्ठभ्राता बलरामजी जब द्वारिका से गोकुल को गये तब वहाँ उन्होंने बड़ों को प्रणाम किया, छोटों को आशीर्वाद दिया और समान वयवालों को गले लगाया तथा उनसे हँसते हुए हाथ मिलाया।

२. जो लोग सुग्रीव और हनुमान् आदि को बन्दर कहते हैं वे तनिक इस प्रकरण को देखें। क्या जंगली जानवर इसी प्रकार परस्पर मैत्री करते हैं?

हे राम! मैं बाली द्वारा छला जाकर और उसके द्वारा निर्वासित होकर, उसके डर से मारा मारा फिर रहा हूँ। मेरी स्त्री छीन ली गई है। अब मैंने भयभीत होकर इस दुर्गम वन का आश्रय लिया है।

बालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव।
बालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु॥ १६॥

हे राघव! मेरे भाई बाली द्वारा निर्वासित करने पर मेरी यह दशा हुई है। वह मुझसे स्थिर शत्रुता रखता है। हे महाभाग! बाली के भय से आतंकित मुझे आप अभय प्रदान कीजिए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ १७॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर तेजस्वी, धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल श्रीराम ने हँसते हुए सुग्रीव से कहा—

उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे।
बालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ १८॥

हे महाकपे! मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि मित्रता का फल उपकार होता है, अतः मैं तुम्हारी भार्या का अपहरण करनेवाले बाली का अवश्य वध करूँगा।

❮ पञ्चमः सर्गः ❯ (५)

आभूषणों की पहचान—

स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम्।
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

अपने लिए हितकारी श्रीराम की बातों को सुनकर सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—

अयमाख्याति मे राम सचिवो मन्त्रिसत्तमः।
हनुमान् यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः॥ २॥

हे राम! मन्त्रियों में श्रेष्ठ आपके सेवक हनुमान् ने वे सब बातें मुझे बता दी हैं जिनके कारण आप वन में आये हैं।

रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा।
त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता॥ ३॥

हनुमान् ने मुझे यह भी बता दिया है कि—रुदन करती हुई आपकी धर्मपत्नी जनककुमारी सीता को राक्षस रावण उस समय हर कर ले गया, जिस समय आप और आपके भाई लक्ष्मण वहाँ उपस्थित नहीं थे।

अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव।
रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभःस्थले॥ ४॥

मैं सीताजी को उसी प्रकार लाकर आपके अर्पण कर दूँगा जैसे राक्षसों के द्वारा आक्रान्त वेदवाणी का उद्धार हुआ था। मैं सीता को अवश्य छुड़ा लाऊँगा, चाहे वह पाताल में हो अथवा गगनमण्डल में।

त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते।
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः॥ ५॥

हे महाबाहो! आप शोक का परित्याग कीजिए। मैं आपकी प्राणप्रिया को अवश्य ले आऊँगा। अनुमान से मैं यह समझ रहा हूँ कि वह निस्सन्देह मिथिला की राजकुमारी जानकी ही होगी।

ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूरकर्मणा।
क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्॥ ६॥

मैंने क्रूरकर्मी राक्षस द्वारा हरकर ले जाते हुए एक स्त्री को देखा था। उस समय वह 'हा राम! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार के शब्द कर रही थी।

स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा।
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम्॥ ७॥
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च।
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव॥ ८॥

वह रावण की गोद में नागिन की भाँति छट पटा रही थी। इस पर्वत शिखर पर मुझ सहित पाँच वानरों को बैठा देखकर उसने अपनी चादर और उसमें बँधें हुए आभूषणों को मेरे समीप गिरा दिया। उन सबको

मैंने उठाकर रख छोड़ा है।

तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे॥ ९॥

यह सुनकर श्रीराम ने प्रियभाषी सुग्रीव से कहा—हे मित्र! तुम उन वस्तुओं को शीघ्र लाओ, देर क्यों कर रहे हो?

एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम्।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया॥ १०॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने राम की प्रिय कामना को पूर्ण करने के लिए उस पर्वत की गहन गुहा में प्रवेश किया।

उत्तरीयं गृहीत्वा तु शुभान्याभरणानि च।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः॥ ११॥

शीघ्र ही उस उत्तरीय=चादर और आभूषणों को लाकर सुग्रीव ने कहा—"इन्हें देखिए"—ऐसा कहकर उन्हें श्रीराम को दिखलाया।

ततो गृहीत्वा तद्वासः शुभान्याभरणानि च।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः॥ १२॥

उन वस्त्र और आभूषणों को हाथ में लेकर श्रीराम इस प्रकार सजल नेत्र हो गये जिस प्रकार चन्द्रमा कुहरे से आच्छादित हो गया हो।

अविचिछन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं वीक्ष्य पार्श्वतः।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे॥ १३॥

नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए राम अपनी बगल में बैठे लक्ष्मण को देखकर दीनतापूर्वक विलाप करने लगे।

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च॥ १४॥

हे लक्ष्मण! देखो, हरण की जाती हुई सीता ने अपने शरीर पर से उतार कर यह उत्तरीय और आभूषण भूमि पर फेंके थे, तुम तनिक इन्हें पहचानो तो सही।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥ १५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी बोले—मैं इन कंकणों=बाजूबन्दों को नहीं जानता और कान के कुण्डलों को भी नहीं पहचानता। हाँ, मैं इन नूपुरों-बिछुओं को अवश्य ही पहचानता हूँ—ये निश्चितरूप से सीताजी के हैं, क्योंकि प्रतिदिन उनकी चरणवन्दना के समय मैं इन्हें देखा करता था।

विशेष—यह है आर्यावर्त की प्राचीन संस्कृति का आदर्श चरित्र! लक्ष्मणजी तेरह वर्ष तक वनों में सीताजी के साथ रहे, परन्तु उन्होंने कभी आँख उठाकर सीता की ओर देखा भी नहीं।

ततः स राघवो दीनः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया॥ १६॥

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्रीराम दीन होकर सुग्रीव से बोले—हे सुग्रीव! बताओ, हरण की जाती हुई सीता को तुमने किस देश की ओर ले जाई जाते हुए देखा था?

क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम।
यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान्॥ १७॥

अथवा मुझे बतलाओ कि मुझे महान् संकट में डालनेवाला वह राक्षस कहाँ रहता है, जिसके कारण मुझे सम्पूर्ण राक्षसों का संहार करना पड़ेगा।

➤ षष्ठः सर्गः ➤ (६)

राम और सुग्रीव का परस्पर आश्वासन—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः॥ १॥

दुःखी राम के ऐसा कहने पर वानर सुग्रीव हाथ जोड़कर आँखों में आँसू भर, गद्गद कण्ठ हो राम से बोले—

न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम्॥ २॥

मैं उस पापी राक्षस के निवास स्थान से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। मैं उस कुलाधम राक्षस के सामर्थ्य, पराक्रम और कुल के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं जानता।

सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिन्दम।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम्॥ ३॥

इन सब बातों की जानकारी न होने पर भी हे शत्रुतापी राम! मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इस प्रकार का प्रयत्न करूँगा जिससे सीता आपको अवश्य प्राप्त होगी, अतः अब आप शोक को त्याग दीजिए।

रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्।
तथास्मि कर्ता नचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि॥ ४॥

राक्षसोंसहित रावण को मारकर और अपने सैन्यबल के पुरुषार्थ का परिचय देकर मैं शीघ्र सीता को प्राप्त कर लूँगा, जिससे आपको प्रसन्नता होगी।

अलं वैकल्व्यमालम्ब्य धैर्यमात्मागतं स्मर।
त्वद्विधानामसदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम्॥ ५॥

आप दैन्य को छोड़कर अपने अन्तर्भूत धैर्य का स्मरण करें। आप जैसे महापुरुषों के लिए इस प्रकार का बुद्धि-लाघव उचित नहीं।

मयाऽपि व्यसनं प्राप्तं भार्याहरणजं महत्।
न चाहमेवं शोचामि न च धैर्यं परित्यजे॥ ६॥

मुझे भी स्त्री हरे जाने का दुःख प्राप्त हुआ है, किन्तु न तो मैं इस प्रकार का शोक करता हूँ और न मैंने धैर्य ही छोड़ा है।

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति॥ ७॥

धैर्यवान् पुरुष दुःख=स्वजन-वियोग के समय, धननाश के समय, भय उपस्थित होने पर और प्राणों पर संकट उपस्थित हो जाने पर भी अपनी बुद्धि से कार्य लेते हैं और इसीलिए वे कभी दुःखी नहीं होते।

बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते।
स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले॥ ८॥

मूर्ख लोग ही विपत्ति में दीनता का परिचय दिया करते हैं। ऐसे लोग विवश होकर शोकसागर में ऐसे ही डूब जाते हैं जैसे भार से लदी हुई नौका जल में डूब जाती है।

ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ९॥

शोक करनेवाले व्यक्तियों को कभी सुख एवं शान्ति प्राप्त नहीं होती। शोकातुर व्यक्तियों का तेज नष्ट हो जाता है, अतः आपको शोक नहीं करना चाहिए।

शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः।
स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम्॥ १०॥

हे राजेन्द्र! शोकाकुल व्यक्तियों का जीवन संशय में पड़ जाता है, अतः आप शोक को त्याग कर धैर्य का आश्रय लीजिए।

हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते।
वयस्तां पूजयन् मे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ११॥

मैं केवल मित्रता के कर्तव्य से प्रेरित होकर आपसे आपके हित की बात कह रहा हूँ—मैं आपको उपदेश नहीं दे रहा हूँ। मेरी मैत्री का आदर करते हुए आपको शोक नहीं करना चाहिए।

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत्॥ १२॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः।
संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार के मधुर शब्दों में श्रीराम को सान्त्वना प्रदान की तब श्रीराम ने आँसुओं से भीगे अपने मुखमण्डल को वस्त्र के छोर से पोंछ, सुग्रीव के वचनों से स्वस्थ हो तथा अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आकर सुग्रीव का प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हुए यह कहा—

कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया॥ १४॥

हे सुग्रीव! आपत्ति के समय स्नेही तथा हितैषी

मित्र को जो कार्य करना चाहिए आपने सब कुछ उसके अनुकूल ही किया है।

एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः॥ १५॥

हे मित्र! तुम्हारे सान्त्वना प्रदान करने से इस समय मैं स्वस्थ हो गया हूँ। सचमुच तुम्हारे जैसे मित्र का मिलना दुर्लभ है और वह भी ऐसी विपत्ति के समय।

किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १६॥

परन्तु हे मित्र! आपको सीता के अन्वेषण करने और उस भयंकर दुरात्मा राक्षस रावण का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम्।
वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते त्वयि॥ १७॥

मुझसे तुम अपना जो कार्य कराना चाहते हो वह भी निःसंकोच होकर मुझे बतला दीजिए। मैं तुम्हारे सभी मनोरथ उसी प्रकार पूर्ण कर दूँगा जिस प्रकार उपजाऊ खेत में वर्षा के द्वारा भरपूर अन्न और वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम्।
तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम्॥ १८॥

हे वानरश्रेष्ठ! मैंने शौर्याभिमान से जो बातें आपके समक्ष कही हैं उन्हें आप सर्वथा सत्य एवं तथ्यपूर्ण ही समझिए क्योंकि—

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।
एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव च ते शपे॥ १९॥

मैंने अपने जीवन में न तो कभी पहले मिथ्या भाषण किया है और न आगे कभी करूँगा। आपके कार्य को पूरा करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ और सत्य की शपथ खाता हूँ।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः॥ २०॥

श्रीराम के इन वचनों को सुनकर, विशेष कर उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा पर विचार कर सुग्रीव अपने मन्त्रियोंसहित अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने अपने-आपको सफल मनोरथ माना।

❮ सप्तमः सर्गः ❯ (७)

राम द्वारा बालिवध की प्रतिज्ञा और सुग्रीव द्वारा बाली के साथ वैर होने का वृत्तान्त सुनाना—

परितुष्टस्तु सुग्रीवस्तेन वाक्येन वानरः।
लक्ष्मणस्याग्रतो राममिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

श्रीराम की उपर्युक्त बातों से पुलकित-गात सुग्रीव अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और लक्ष्मण के समक्ष पुनरपि राम से यह वचन कहने लगा—

शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयानघ।
सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किं पुनः प्रभो॥ २॥

हे निष्पाप राम! आपकी सहायता से मैं स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त कर सकता हूँ, अपने राज्य की तो बात ही क्या है।

सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम्॥ ३॥

हे राघव! बन्धु-बान्धवोंसहित मैं अपने आपको आज गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ, क्योंकि रघुकुलभूषण राम मेरे अग्निसाक्षिक मित्र बने हैं।

अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं स्वयमात्मगतान् गुणान्॥ ४॥

मैं भी आपका योग्य मित्र हूँ। यह बात आपको धीरे-धीरे ज्ञात हो जायेगी। मैं अपने मुख से अपने गुणों का वर्णन आपके सामने नहीं कर सकता।

महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम्।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतामिव॥ ५॥

आप जैसे आत्मज्ञानी, धैर्यवान्, सफलमनोरथ, महात्माओं की प्रीति अवश्य ही अटल एवं निश्चय होती है।

रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्राण्याभरणानि च।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः॥ ६॥

सज्जन पुरुष- सन्मित्र अपने मित्र के स्वर्ण, रजत और उत्तम वस्त्र आभूषणों को अपना ही समझते हैं, परस्पर कोई भेद-भाव नहीं रखते। महापुरुष ऐसा ही समझते हैं।

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखित सुखितोऽपि वा।
निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः॥ ७॥

मित्र चाहे धनी हो या निर्धन, दुःखी हो चाहे सुखी, निर्दोष हो चाहे सदोष—कैसी भी स्थिति में हो फिर भी मित्र उसका परम सहायक हुआ करता है।

धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागोऽपि वा पुनः।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्॥ ८॥

इसी कारण मित्र-स्नेह के मूल्य में मित्र लोग अपने मित्र के लिए धन, सुख और यहाँ तक कि प्राणों को भी त्याग देते हैं।

तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः॥ ९॥

सुग्रीव की यह बात सुनकर इन्द्र की कमनीय कान्ति को अतिक्रान्त करनेवाले लक्ष्मण के समक्ष प्रियवादी सुग्रीव से श्रीराम ने कहा—हे सुग्रीव! आपने जो कुछ कहा है वह सर्वथा उचित है।

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम्॥ १०॥

हर्षातिरेक के कारण सुग्रीव के मुख से शब्द नहीं निकल रहे थे, फिर भी राम की बात सुनकर सुग्रीव प्रसन्न हो स्नेहसिक्त और मधुरवाणी से प्रेमपूर्वक राम से बोले—

अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः।
ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः॥ ११॥

अपने भाई बाली द्वारा अपमानित और निष्कासित होकर स्त्री से वियुक्त, अत्यन्त दुःखित और आतङ्कित अवस्था में मैं इस ऋष्यमूक पर्वत पर मारा मारा फिरते हुए अपना जीवन यापन कर रहा हूँ।

बालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर।
ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ १२॥

हे समस्त लोकों को अभय प्रदान करनेवाले राम! बाली के भय से आतङ्कित मुझ अनाथ के ऊपर आप कृपा कीजिए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।
प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ १३॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार कहा तब धर्मज्ञ, धर्मवत्सल, तेजस्वी श्रीराम मुस्कराते हुए सुग्रीव से बोले—

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्।
अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ १४॥

उपकार करना मित्र का लक्षण है और अपकार करना शत्रु का लक्षण है, अतः मैं एक सच्चे मित्र के नाते आपकी भार्या का अपहरण करनेवाले उस बाली को आज ही मार डालूँगा।

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः।
विनिःश्वस्य च तेजस्वी राघवं पुनरब्रवीत्॥ १५॥

वाहिनीपति तेजस्वी सुग्रीव श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर एक दीर्घ निःश्वास लेकर पुनः श्रीराम से बोले—

पुराहं बालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धतोऽस्मि बलीयसा॥ १६॥
हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते॥ १७॥

हे राम! पहले तो उस बलवान् बाली ने मुझे राज्यसिंहासन से उतार दिया, फिर मुझे कठोर वचन कह धिक्कार और फटकार कर मेरा अपमान कर मुझे राज्य से बाहर निकाल दिया। उसने मेरी प्राण-प्रिया भार्या को छीन लिया और जो मेरे हितैषी बन्धु

बान्धव थे उन सबको पकड़कर बन्दी बना लिया।

श्रुत्वैतद्वचनं रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
किं निमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १८॥

सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर राम ने कहा—हे सुग्रीव! बाली के साथ तुम्हारी शत्रुता किस कारण हुई? मैं वह सब वृत्तान्त यथातथ्य जानना चाहता हूँ।

ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे।
वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ १९॥

तब सुग्रीव ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम से बाली के साथ वैर होने के मूल कारणों को यथातथ्य कहना आरम्भ किया।

श्रूयतां राम यद्वृत्तमादितः प्रभृति त्वया।
यथा वैरं समुद्भूतं यथा चाहं निराकृतः॥ २०॥

हे राम! जिस प्रकार बाली से मेरा वैर हुआ और जिस प्रकार मैं राज्य से निर्वासित किया गया—वह सब वृत्तान्त मैं आदि से कहता हूँ आप ध्यानपूर्वक सुनें।

बाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः।
पितुर्बहुमतो नित्यं ममापि च तथा पुरा॥ २१॥

शत्रुनाशक बाली नाम का मेरा ज्येष्ठ भ्राता है, जिसका पिताजी बहुत सम्मान करते थे और वैरे होने से पूर्व मैं भी उनका बहुत आदर करता था।

पितर्युपरतेऽस्माकं ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः॥ २२॥

कुछ समय के पश्चात् पिताजी के स्वर्गवासी होने पर बाली को ज्येष्ठ होने के कारण मन्त्रियों ने सर्वसम्मति से राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया।

राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत्।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत्स्थितः॥ २३॥

बाली पिता-पितामहों के विशाल राज्य का शासन करने लगा और मैं उनके पास दास की भाँति विनीत भाव से रहने लगा।

मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः।
तेन तस्य महद्वैरं स्त्रीकृतं विश्रुतं पुरा॥ २४॥

कुछ समय के पश्चात् दुन्दुभि नामक असुर के अत्यन्त तेजस्वी एवं ज्येष्ठ पुत्र के साथ किसी स्त्री के कारण बाली की महान् शत्रुता हो गई।

स तु सुप्तजने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः।
नर्दति स्म सुसंरब्धो बालिनं चाह्वयद्रणे॥ २५॥

एक बार रात्रि में जबकि सब लोग सो रहे थे वह दानव किष्किन्धा नगरी के मुख्य द्वार पर आया और गर्जन तर्जनपूर्वक बाली को संग्राम के लिए ललकारा।

प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम्।
श्रुत्वा न ममृषे बाली निष्पपात जवात्तदा॥ २६॥

घोर निद्रा में लीन मेरा भाई बाली गर्जते हुए उस मायावी की भैरव ललकार को सहन न कर सका और शीघ्रतापूर्वक महल से बाहर निकल आया।

स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम्।
वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना॥ २७॥
स तु निर्धूय सर्वान्नो निर्जगाम महाबलाः।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो बालिना सह॥ २८॥

उस असुर को मारने के लिए बाली को महल से बाहर निकलते देखकर राजमहल की स्त्रियों ने उसे रोका और विनयपूर्वक मैंने भी रोका, परन्तु महाबली बाली उन स्त्रियों को धक्का देकर बाहर निकल गया। तब मैं भी भातृ-स्नेह के कारण बाली के पीछे हो लिया।

स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम्।
असुरो जातसन्त्रासः प्रदुद्राव ततो भृशम्॥ २९॥

वह मायावी असुर मेरे भाई को आते देखकर तथा दूर से मुझे भी देखकर भयभीत होकर बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ।

तस्मिन् द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ।
प्रकाशश्च कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा॥ ३०॥

जब वह भयभीत होकर भागा तब हम दोनों भाई भी तेजी से उसके पीछे दौड़ पड़े। उस समय उदय होते हुए चन्द्रमा ने प्रकाश के द्वारा मार्ग में हमारी सहायता की।

स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत्।
प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ॥ ३१॥

इतने में वह असुर घास फूँस से ढके, पृथिवी के एक दुर्गम विवर—भूलभूलैयाँ में वेगपूर्वक प्रविष्ट हो गया। हम दोनों भाई उस भूलभुलैयाँ के द्वार पर पहुँचकर रुक गये।

तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः।
मामुवाच तदा बाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः॥ ३२॥

शत्रु को उस भूलभुलैयाँ में प्रविष्ट हुआ देख बाली बहुत क्रुद्ध हुआ, फिर क्रोध से चलायमान इन्द्रियोंवाले बाली ने मुझसे कहा—

इह त्वं तिष्ठ सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः।
यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि सहसा रिपुम्॥ ३३॥

हे सुग्रीव! तुम सावधान होकर तब तक इस बिल-भूलभुलैयाँ के द्वार पर ठहरो जब तक मैं इस गुफा में प्रवेश कर और संग्राम में उस शत्रु को मारकर लौट न आऊँ।

मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परन्तपः।
शापयित्वा च मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं महत्॥ ३४॥

बाली का यह ओदश सुन मैंने उसके साथ उस बिल में जाने की प्रार्थना की, परन्तु मुझे अपने चरणों की शपथ देकर वह अकेला ही उस गुफा में प्रविष्ट हुआ।

तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो[१] गतः।
स्थितस्य च मम द्वारि स कालोऽप्यत्यवर्तत॥ ३५॥

बाली को उस बिल में प्रविष्ट हुए और मुझे द्वार पर खड़े हुए पूरा एक दिन बीत गया।

अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसम्भ्रमः।
भ्रातरं तु न पश्यामि पापाशङ्कि च मे मनः॥ ३६॥

तब मैं यह समझकर कि बाली मारा गया, स्नेह के कारण अत्यन्त विकल हो गया। इतने दीर्घ समय तक भाई को न देखकर मेरे मन में नाना प्रकार की अनिष्ट शंकाएँ होने लगीं।

अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिः सृतम्।
सफेनं रुधिरं रक्तमहं दृष्ट्वा सुदुःखितः॥ ३७॥

अनिष्ट शंकाओं के होने पर भी मैं वहाँ खड़ा ही रहा, तब दीर्घकाल के पश्चात् उस बिल से फेनसहित रक्त की धार बहती देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हुआ।

नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः।
न रतस्य च संग्रामे क्रोशतो निःस्वनो गुरोः॥ ३८॥

इतने में मुझे युद्ध में निरत और गर्जते हुए असुरों का घोर शब्द सुनाई पड़ा, परन्तु संग्राम में जुटकर ललकारते हुए बड़े भाई का शब्द मुझे सुनाई नहीं दिया।

अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम्।
पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया॥ ३९॥

रक्तादि चिह्नों को देखकर मैंने बुद्धिपूर्वक यह निश्चय किया कि भाई बाली मारा गया। भाई को मारकर यह कहीं मुझे भी न मार दे ऐसा सोचकर मैंने एक बहुत बड़ी पाषाणशिला से उस बिल के द्वार को बन्द कर दिया।

शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे।
गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम्॥ ४०॥

हे मित्र राम! शोकार्त मन से मरणानन्तर होनेवाले स्नानादि से निवृत्त होकर मैं किष्किन्धा लौट आया। यद्यपि मैंने बाली के मरने की बात को यत्नपूर्वक छिपाया तथापि जनश्रुति के द्वारा मन्त्रियों ने इसे जान लिया।

ततोऽहं तैः समागम्य सम्मतैरभिषेचितः।
राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव॥ ४१॥

हे राम! तब उन सभी मन्त्रियों ने परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् मेरा राज्याभिषेक कर दिया। अभिषिक्त होने पर मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा।

आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः।
अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा संरक्तलोचनः॥ ४२॥

इसी मध्य में उस मायावी दानव को मारकर

१. संवत्सरशब्दो घस्रपर्यायः—संवत्सर शब्द दिन का पर्यायवाची भी होता है।

बाली किष्किन्धा को लौट आया। मुझे राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त देखकर उसके नेत्र लाल हो गये।

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम्।
अहं प्रसादयाञ्चक्रे भ्रातरं हितकाम्यया॥ ४३॥

क्रोध के कारण अत्यन्त क्षुब्ध, उस आये हुए बाली को उसकी हितकामना की दृष्टि से मैंने प्रसन्न करने का प्रयत्न किया।

दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो दिष्ट्यापि निहतो रिपुः।
अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेकोऽनाथनन्दनः॥ ४४॥

मैंने कहा—यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप उस शत्रु को मारकर कुशलपूर्वक लौट आये हैं। आप अनाथों के आनन्दवर्धक हैं और मुझ अनाथ के एकमात्र आप ही नाथ हैं।

इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
छत्रं सबालव्यजनं प्रतीच्छस्व मयोद्यतम्॥ ४५॥

अब आप अपना अनेक कमानियोंवाला और नवोदित चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र और चँवर, जिसे मैंने आपकी अनुपस्थिति में धारण किया था—स्वीकार कीजिए।

राजभावनियोगोऽयं मया त्वद्विरहात्कृतः।
सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम्॥ ४६॥
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम्।
मा च रोषं कृथाः सौम्य मयि शत्रुनिबर्हण॥ ४७॥

आपके अभाव में ही मन्त्रिमण्डल ने मुझे इस पद पर अभिषिक्त किया था। अब मन्त्रियों एवं पुरवासियोंसहित आपके निष्कण्टक राज्य को जो मेरे पास धरोहर के रूप में था, मैं आपको वापस लौटा रहा हूँ। हे शत्रुसूदन! आप मेरे ऊपर क्रुद्ध न हों।

स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स तु निर्भर्त्स्य वानरः।
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह॥ ४८॥

हे राम! स्नेहपूर्वक ऐसा कहने पर भी उस वानर ने मुझे फटकारते हुए कहा—"तुझे धिक्कार है।" यह कहकर और भी बहुत कुछ ऐसा वैसा कहा।

तदा निर्वासयामास वस्त्रेणैकेन वानरः।
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव॥ ४९॥

हे राघव! धिक्कारने और फटकारने के पश्चात् उस वानर ने मुझे एक वस्त्र पहनाकर राज्य से बाहर निकाल दिया। मैं उस बाली का सताया हुआ हूँ। उसने मेरी पत्नी भी छीन ली है।

ऋष्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः।
प्रविष्टोऽस्मि दुराधर्षं बालिनः कारणान्तरे॥ ५०॥

अपनी भार्या के छिन जाने के दुःख से दुःखी होकर मैंने पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक पर आश्रय लिया है। एक कारण विशेष से यह पर्वत बाली के आक्रमण से सुरक्षित है।

एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत्।
अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव॥ ५१॥

बाली के साथ वैर होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने आपको सुना दिया। हे राघव! आप देखिए निरपराध होने पर भी मैं महादुःख भोग रहा हूँ।

बालिनस्तु भयार्तस्य सर्वलोकाभयङ्कर।
कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात्॥ ५२॥

सब लोकों को अभयप्रदान करनेवाले राम! आप बाली को दण्ड देकर इस महान् भय से मेरी रक्षा कीजिए और कृपा कर मुझे उसके अत्याचारों से बचाइए।

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम्।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव॥ ५३॥

सुग्रीव के ऐसा निवेदन करने पर महातेजस्वी धर्मात्मा श्रीराम मुस्कराकर सुग्रीव से यह धर्म-युक्त वचन बोले—

अमोघाः सूर्यसङ्काशा ममैते निशिताः शराः।
तस्मिन्बालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः॥ ५४॥

हे सुग्रीव! सूर्य के समान देदीप्यमान मेरे तीखे ओर अमोघ—कभी निष्फल न जानेवाले—ये बाण उस दुराचारी बाली के ऊपर बड़ी तेजी से जाकर गिरेंगे।

यावत्तं नाभिपश्यामि तव भार्यापहारिणम्।
तावत्स जीवेत्पापात्मा बाली चारित्रदूषकः॥ ५५॥

तुम्हारी भार्या का अपहरण करनेवाले बाली को जब तक मैं देख नहीं लेता तभी तक तुम उस चरित्रहीन पापी को जीवित समझो।

आत्मानामनुपश्यामि मग्नं त्वां शोकसागरे।
त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम्॥ ५६॥

मैं आपको भी अपने समान शोकसागर में डूबा हुआ देख रहा हूँ। मैं इस विपत्ति से तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम अपनी प्राणप्रिया पत्नी और राज्यलक्ष्मी दोनों को प्राप्त करोगे।

➤ अष्टमः सर्गः ➤ (८)

बाली के पौरुष का वर्णन—

रामस्य वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम्।
सुग्रीवः पूजयांचक्रे राघवं प्रशशंस च॥ १॥

हर्ष और पुरुषार्थ को बढ़ानेवाले श्रीराम के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—

असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः।
त्वं दहेः कुपितो लोकान् युगान्त इव भास्करः॥ २॥

हे राम! आप क्रुद्ध होने पर अपने जाज्वल्यमान, तीक्ष्ण और मर्मभेदी बाणों से इन सब लोकों को उसी प्रकार भस्म कर सकते हैं जैसे प्रलयकालीन सूर्य।

बालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्च या।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम्॥ ३॥

परन्तु पहले आप बाली के पौरुष, पराक्रम और धैर्य के सम्बन्ध में सावधानतापूर्वक मुझसे सुन लीजिए तत्पश्चात् आप जैसा उचित समझें वैसा करना।

बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः।
बालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयताऽऽत्मनः॥ ४॥

बाली ने अपने बल की परीक्षा और परिचय देने के लिए वन के बड़े-बड़े विशाल अनेक वृक्षों को उखाड़कर फेंक दिया है।

महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलासशिखरप्रभः।
बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान्[१]॥ ५॥
विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसन्निभम्।
आविध्यत तदा बाली विनदन् कपिकुञ्जरः॥ ६॥

कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचा एवं विशालकाय दुन्दुभि नाम का एक पराक्रमी भैंसा था। उसके शरीर में अनेक हाथियों का बल था (अत्यन्त बलवान् था बस इतना ही भाव है।) बाली ने पर्वताकार उस दुन्दुभि के दोनों सींग पकड़कर उसे परे धकेल दिया और घोर नाद किया।

इमे च विपुलाः सालाः सप्तशाखावलम्बिनः।
यत्रैकं घटते बाली निष्पत्रयितुमोजसा॥ ७॥

हे राम! देखिए, ये जो सामने साल के सात बड़े-बड़े वृक्ष हैं, जिनकी शाखाएँ चारों ओर फैली हुई हैं। इनमें से किसी एक वृक्ष को बाली अपने ओज और पराक्रम से हिला कर पत्तों से रहित कर सकता है।

एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकीर्तितम्।
कथं तं बालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप॥ ८॥

हे राम! बाली का अतुल पराक्रम मैंने आपके सामने वर्णन कर दिया। हे राजन्! आप संग्राम में उस बाली को कैसे मार सकेंगे, यह आप ही जानें।

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसंल्लक्ष्मणोऽब्रवीत्।
कस्मिन् कर्मणि श्रद्दध्या बालिनो वधम्॥ ९॥

१. रामायण इतिहास के साथ काव्य भी है। अलंकार काव्य की आत्मा होते हैं। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा—हे सुग्रीव! राम कौन सा कार्य करके दिखाएँ जिससे आपको उनके द्वारा बालिवध का विश्वास हो जाए।

तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान् पुरा।
एवमेकैकशो बाली विव्याधाथ स चासकृत्॥ १०॥

लक्ष्मण की बात सुनकर सुग्रीव ने कहा—ये सामने साल के जो वृक्ष दिखाई दे रहे हैं बाली ने इनमें से प्रत्येक को एक एक करके अनेक बार बींधा है।

रामोऽपि दारयेदेषां बाणेनैकेन चेद् द्रुमम्।
बालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्॥ ११॥

यदि श्रीराम अपने बाण से इनमें से एक साल वृक्ष का भी भेदन कर दें तो राम के इस पराक्रम को देखकर मुझे बाली के वध का पूर्ण विश्वास हो जायेगा।

➤ नवमः सर्गः ➤ (९)

राम द्वारा सात सालों का वेधन तथा सुग्रीव-बाली युद्ध—

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवेण सुभाषितम्।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम्॥ १॥

सुग्रीव के मनोहारी वचनों को सुन महातेजस्वी राम ने उसे विश्वास दिलाने के लिए अपने धनुष को उठाया।

स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः।
सालमुद्दिश्य चिक्षेप ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः॥ २॥

मानप्रद श्रीराम ने अपने विशाल धनुष पर एक बाण का संधान किया और फिर प्रत्यञ्चा=डोरी के शब्द से सम्पूर्ण दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए उस साल वृक्ष को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः।
भित्त्वा सालान् गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह॥ ३॥

महाबाली राम द्वारा छोड़ा गया वह स्वर्ण-मण्डित बाण उन सातों साल के वृक्षों को काटता हुआ और पर्वत को फोड़ता हुआ भूमि में प्रविष्ट हो गया।

तान् दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान् सालान् वानरपुङ्गवः।
इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः॥ ४॥

श्रीराम के बाण द्वारा उन सात साल वृक्षों को कटा हुआ देखकर और राम के विस्मयकारी कर्म से प्रसन्न होते हुए वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने धर्मज्ञ राम से कहा—

सेन्द्रानपि सुरान् सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ।
समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्बालिनं प्रभो॥ ५॥

हे पुरुषोत्तम! हे प्रभो! आप तो इन बाणों से देवताओंसहित इन्द्र को भी मार सकते हैं, फिर बाली की तो बात ही क्या है?

येन सप्त महासाला गिरिर्भूमिश्च दारिताः।
बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः॥ ६॥

हे राम! जिस व्यक्ति ने अपने एक ही बाण से सात साल के वृक्षों, पर्वतों और भूमि को विदीर्ण कर डाला, ऐसे आपके समक्ष युद्ध-क्षेत्र में कौन ठहर सकता है?

अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम।
सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम्॥ ७॥

आज आप जैसे वरुण और इन्द्र के समान परम मित्र को प्राप्त कर मेरे सम्पूर्ण शोक नष्ट हो गये और मेरे हर्ष का पारावार नहीं है।

तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम्।
बालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥ ८॥

हे राम! मैं आपके आगे हाथ जोड़ता हूँ मेरी प्रसन्नता एवं शान्ति के लिए शत्रुरूपी मेरे भाई बाली को आज ही मारिए।

ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुमतं वचः॥ ९॥

तब महाबुद्धिमान् राम ने प्रियदर्शी सुग्रीव का आलिंगन करते हुए लक्ष्मण द्वारा अनुमोदित ये वचन कहे—

अस्माद् गच्छेम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव बालिनं भ्रातृगन्धिनम्॥ १०॥

हे सुग्रीव! यहाँ से हम लोग शीघ्र ही किष्किन्धा को चलते हैं। तुम आगे-आगे जाओ और वहाँ जाकर अपने भ्रातृहिंसक भाई को युद्ध के लिए ललकारो।

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां बालिनः पुरीम्।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन् गहने वने॥ ११॥

यह कहकर वे सभी बाली की नगरी किष्किन्धा में जाकर पास के गहन वन में वृक्षों में छिपकर बैठ गये।

सुग्रीवो व्यनदद् घोरं बालिनो ह्वानकारणात्।
गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम्॥ १२॥

सुग्रीव ने लंगर-लंगोटे कसकर बाली को बुलाने के लिए घोर गर्जन आरम्भ कर दिया मानो अपनी उस ध्वनि से वे आकाश को विदीर्ण कर डालेंगे।

तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो बाली महाबलः।
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव॥ १३॥

अपने भाई सुग्रीव के उस घोर गर्जन को सुनकर क्रुद्ध हुआ बाली रोष में भरकर इस प्रकार निकल पड़ा जैसे सूर्य अस्ताचल से निकलकर आया हो।

ततस्तु तुमुलं युद्धं बालिसुग्रीवयोरभूत्।
गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव॥ १४॥

तत्पश्चात् बाली और सुग्रीव का ऐसा तुमुल युद्ध हुआ जैसे आकाश में मंगल और बुध का होता है।

तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः।
जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्छितौ॥ १५॥

बाली और सुग्रीव विद्युत् के समान पाद-प्रहारों और वज्र के तुल्य मुक्कों से, क्रोध में भरकर एक-दूसरे को मारने लगे।

ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदीक्ष्य तु।
अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ॥ १६॥

हाथ में धनुष बाण लिये हुए राम ने उन दोनों भाइयों को ध्यान से देखा, तब वे दोनों अश्विनीकुमारों के सदृश समान आकृति वाले दिखाई दिये।

यन्नावगच्छत्सुग्रीवं बालिनं वापि राघवः।
ततो न कृतवान् बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम्॥ १७॥

जब राम यह न जान सके कि इनमें कौन सुग्रीव है और कौन बाली तब ऐसी अवस्था में उन्होंने अपना प्राणघातक बाण नहीं छोड़ा।

एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन बालिनः।
अपश्यन् राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे॥ १८॥

इसी बीच सुग्रीव बाली के प्रहार से आहत हो और श्रीराम को अपनी सहायता के लिए उद्यत न देख ऋष्यमूक पर्वत की ओर भाग गया।

राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनुमता।
तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्र वानरः॥ १९॥

श्रीराम भी लक्ष्मण और हनुमान् के साथ उसी वन में लौट आये जहाँ सुग्रीव निवास करता था।

तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम्।
ह्रीमान् दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन्॥ २०॥

सुग्रीव ने लक्ष्मणसहित राम को आते हुए देखकर, लज्जा के मारे सिर झुका, भूमि की ओर देखते हुए दीनतापूर्वक कहा—

आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम्।
वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम्॥ २१॥

हे राम! आपने अपने पराक्रम दिखा मुझसे कहा कि बाली को ललकारो और फिर शत्रु से मेरी खूब दुर्गति कराई। आपने यह क्या किया?

तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः।
बालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे॥ २२॥

हे राघव! यदि आप उसी समय स्पष्टरूप से कह देते कि मैं बाली को नहीं मारूँगा तो में यहाँ से जाता ही नहीं।

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत्॥ २३॥

करुणापूर्वक दीन वाणी से महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर राम बोले—

सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम्।
कारणं येन बाणोऽयं न मया स विसर्जितः॥ २४॥

हे तात सुग्रीव! क्रोध को दूर करो और मेरी उस बात को सुनो जिसके कारण मैंने तीर नहीं चलाया।

अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव बाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥ २५॥

हे सुग्रीव! अलंकार, वेश, डील-डौल और चाल-ढाल में तुम और बाली समान ही हो।

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानरः।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥ २६॥

यहाँ तक कि तुम दोनों का कण्ठस्वर, कान्ति, दृष्टि, विक्रम और शब्द-ध्वनि इन सबमें कोई विशेषता=भेद नहीं दीख पड़ता।

ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥ २७॥

हे वानरोत्तम! तुम्हारे रूप सादृश्य के कारण मैं धोखे में पड़ गया और मैंने अपना शत्रु-संहारी बाण नहीं छोड़ा।

त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया।
मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥ २८॥

हे कपीश्वर! यदि मेरी अज्ञानता अथवा जल्दबाजी के कारण तुम मारे जाते तो मेरी मूर्खता और लड़कपन का सर्वत्र ढिंढोरा पिट जाता।

वीर युध्यस्व भूयस्त्वं पश्य बालिनमाहवे।
निरस्तमिषुणैकेन वेष्टमानं महीतले॥ २९॥

हे वीर! तुम एक बार पुनः बाली से युद्ध करो। इस बार तुम संग्राम में बाली को मेरे एक ही तीर से पृथिवी पर छटपटाता हुआ देखोगे।

अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम्॥ ३०॥

हे वानरराज! तुम अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो जिससे द्वन्द्व युद्ध करते समय मैं तुम्हें पहचान सकूँ।

गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ ३१॥

तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया—हे लक्ष्मण! तुम इस पुष्पित और शुभ लक्षण गजपुष्पी लता को उखाड़कर महात्मा सुग्रीव के गले में पहना दो।

ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमाकुलाम्।
लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्॥ ३२॥

तब पर्वत पर उगी हुई उस पुष्पित गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने सुग्रीव के गले में पहना दिया।

विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः।
जगाम सह रामेण किष्किन्धां बालिपालिताम्॥ ३३॥

अपने शरीर को माला द्वारा सुशोभित कर और श्रीराम के वचनों से आश्वस्त होकर सुग्रीव पुनः श्रीराम के साथ बाली की राजधानी किष्किन्धा को गये।

❮ दशमः सर्गः ❯ (१०)

सुग्रीव का बाली को युद्ध के लिए ललकारना और तारा का बाली को युद्ध से रोकना—

रामेण सह प्राप्य तं किष्किन्धां बालिपालिताम्।
ततः स निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत्॥ १॥

श्रीराम के साथ बाली द्वारा पालित एवं रक्षित किष्किन्धा नगरी में पहुँचकर सुग्रीव ने भयंकर गर्जना करते हुए बाली को युद्ध के लिए ललकारा।

अथ तस्य निनादं तु सुग्रीवस्य महात्मनः।
शुश्रावान्तःपुरगतो बाली भ्रातुरमर्षणः॥ २॥

अन्तःपुर में स्त्रियों के मध्य में बैठे हुए भाई को न सहनेवाले बाली ने सुग्रीव के उस घोर गर्जना को सुना।

शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः।
वेगेन चरणन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम्॥ ३॥

सुग्रीव के असहनीय सिंहनाद को सुनकर बाली पृथिवी को कम्पायमान करता हुआ बड़ी तीव्र गति से राजमहल से बाहर निकला।

तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा।
उवाच त्रस्तसम्भ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः॥ ४॥

बाली को राजमहल से निकलते देखकर तारा भयभीत हो और प्रेमसहित बाली का आलिङ्गन कर उससे ये हितकारी वचन बोली—

साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम्॥ ५॥

हे वीर! नदी के वेग की भाँति उमड़े हुए इस क्रोध को तुम उसी प्रकार त्याग दो जैसे शय्या से सोकर उठने के पश्चात् मनुष्य रात्रि की पहनी हुई म्लान माला को त्याग देते हैं।

काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि हरीश्वर।
वीर ते शत्रुबाहुल्यं फाल्गुता वा न विद्यते॥ ६॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते।
श्रूयतां चाभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यसे॥ ७॥

हे कपीश्वर! आप कल जाकर सुग्रीव से संग्राम करना। हे वीर! यद्यपि आपका शत्रु न तो बल में आपसे अधिक है और न आप उससे किसी बात में कम हैं तथापि इस समय मुझे आपका सहसा घर से निकलना पसन्द नहीं। मैं आपको किसलिए रोक रही हूँ वह कारण भी सुनिए—

पूर्वं त्वया निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः।
इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे॥ ८॥

अभी-अभी आप द्वारा पीटे जाने और भगाये जाने पर भी वह तुम्हें ललकार रहा है, इससे मेरा मन शंकित हो रहा है।

दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम्॥ ९॥

इस समय उसका अहंकार, व्यवहार और गर्जन का जो ढंग है उससे प्रतीत होता है इन लक्षणों का कोई महान् कारण है।

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति॥ १०॥

मेरा विचार है कि दूसरों की सहायता प्राप्त किये बिना सुग्रीव यहाँ आ नहीं सकता। उसे निश्चय ही कोई सहायक प्राप्त हुआ है जिसके बल-बूते पर वह इतना गर्ज रहा है।

पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः।
अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्यामि त्वा हितं वचः॥ ११॥

हे वीर! राजकुमार अङ्गद के मुख से मैं जो बातें पहले ही सुन चुकी हूँ, आपके कल्याण के लिए उन हितकारी बातों को मैं आपसे कहती हूँ।

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैराप्तैर्निवेदिता॥ १२॥

राजकुमार अङ्गद घूमते हुए वन में गया था। वहाँ इसे विश्वस्त गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ कि—

अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ॥ १३॥

इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न, युद्ध में अजेय, अयोध्याधिपति दशरथ के राम और लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र यहाँ आये हैं।

सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
तव भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्कशः॥ १४॥

सुग्रीव की अभीष्ट-सिद्धि के लिए वे दोनों दुर्घष वीर कटिबद्ध हुए हैं। रण-कुशल वे दोनों भाई तुम्हारे भाई सुग्रीव के सहायक बने हैं।

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥ १५॥

उन दोनों में राम शत्रुओं का मर्दन करने में उठी हुई प्रलयाग्नि के समान हैं। वे साधु पुरुषों के लिए वृक्ष के समान आश्रय-दाता और दीन-दुःखियों के एकमात्र सहारे हैं।

आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥ १६॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान्।
तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मा॥ १७॥

वे आर्तों के अवलम्बन, यश के पात्र, लौकिक ज्ञान और शास्त्र ज्ञान से सम्पन्न और पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले हैं। पर्वतराज हिमालय जैसे धातुओं का आकर है वैसे ही वे भी गुणों की महाखान हैं। उन महात्मा श्रीराम से विरोध करना तुम्हें उचित नहीं।[१]

श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम्।
यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय॥ १८॥

मैं आपके हित की जो बात कह रही हूँ उसे सुनो और तदनुसार कार्य करो। आप शीघ्र ही सुग्रीव को युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दो।

विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम्॥ १९॥

हे वीर! अपने छोटे भाई सुग्रीव के साथ वैर-विरोध मत करो। मैं तो यह भी चाहती हूँ कि आपकी श्रीराम के साथ मैत्री हो जाए।

सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः।
लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः॥ २०॥

वैरभाव को छोड़कर तुम सुग्रीव के साथ भी मेल कर लो, क्योंकि वह आपका छोटा भाई है और उसका लालन-पोषण आपको करना ही चाहिए।

तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते।
न हि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कञ्चन॥ २१॥

चाहे वह आपसे दूर रहे अथवा आपके समीप वह है तो आपका भाई ही। मुझे तो सारे संसार में उस जैसा दूसरा भाई दिखाई नहीं देता।

दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्।
वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु॥ २२॥

आप दान, मान और प्रेम आदि के द्वारा उसे अपना लो जिससे वह वैर-बुद्धि को छोड़कर आपके पास ही रहने लगे।

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हि ताम्।
याच्यमानः प्रयत्नेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे॥ २३॥

यदि आप मेरा कोई प्रियकर्म करना चाहते हैं और मुझे अपनी हितैषिणी समझते हैं तो मैं करबद्ध जो प्रार्थना कर रही हूँ इस प्रिय और हितकर प्रार्थना को स्वीकर कर तदनुसार यत्नपूर्वक कार्य कीजिए।

❮ एकादशः सर्गः ❯ (११)

बाली का वध—

तामेवं ब्रुवन्तीं तारां ताराधिपनिभाननाम्।
बाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥

जब चन्द्रमुखी तारा ने इस प्रकार की बातें कहीं तब बाली तारा की भर्त्सना करते हुए इस प्रकार बोला—

गर्जतोऽस्य च संरम्भं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः।
मर्षयिष्याम्यहं केन कारणेन वरानने॥ २॥

हे शोभने! गर्वसहित गर्जना करते हुए इस भाई की जो कि मेरा शत्रु बन चुका है, ललकार को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ?

अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम्।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते॥ ३॥

---

१. इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि बाली को राम और सुग्रीव की मैत्री का ज्ञान हो गया था, अतः श्रीराम द्वारा बाली को छिपकर मारने का आरोप मिथ्या है।

हे भीरु! देख जो शूर कभी किसी से पराजित नहीं हुए, जिन्होंने रणक्षेत्र में कभी शत्रु को पीठ नहीं दिखाई, जिन्होंने सदा शौर्य का परिचय दिया है उनके लिए इस प्रकार का तिरस्कार सहना मृत्यु से भी बढ़कर है।

न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति॥ ४॥

श्रीराम के द्वारा मेरी किसी प्रकार की हानि होगी तुम्हें ऐसी आशंका करके दु:खी नहीं होना चाहिए, क्योंकि राम धर्मज्ञ और कृतज्ञ हैं वे ऐसा पापकर्म क्यों करेंगे?

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि।
सौहृदं दर्शितं तारे मयि भक्तिः कृता त्वया॥ ५॥

तू मेरे पीछे क्यों चली आ रही है, तू स्त्रियोंसहित वापस लौट जा। हे तारे! मेरे प्रति जो तुम्हारी भक्ति थी उस सौहार्द का तुमने पर्याप्त परिचय दे दिया है।

प्रत्योत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम्।
दर्पमात्रं विनेष्यामि न च प्राणैर्विमोक्ष्यते॥ ६॥

तुम विकल मत होओ। मैं सुग्रीव से युद्ध कर उसका दर्प दूर करूँगा, किन्तु उसके प्राण नहीं लूँगा।

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता॥ ७॥

बाली के ऐसा कहने पर मन्त्रवित्[1]—मन्त्र जाननेवाली तारा ने बाली-विजय कामना से स्वस्त्ययन किया और शोक-मग्न हो अन्य स्त्रियोंसहित अन्तःपुर में लौट आई।

प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम्।
नगरान्निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन्॥ ८॥

स्त्रियोंसहित तारा के राजमहल में प्रविष्ट होने के पश्चात् बाली क्रुद्ध सर्प की भाँति फुंकारता हुआ किष्किन्धा से बाहर निकला।

स ददर्श ततः श्रीमान् सुग्रीवं दीप्ततेजसम्।
गाढं परिदधे वासो बाली परमरोषणः॥ ९॥

नगर से बाहर निकलने पर श्रीमान् बाली ने अग्नि के समान देदीप्यमान सुग्रीव को देखा। सुग्रीव को युद्ध के लिए प्रस्तुत देख बाली ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने लंगर-लंगोटे कस लिये।

स बाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान्।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः॥ १०॥

पराक्रमी बाली कमर कस और घूंसा तानकर युद्ध की कामना से सुग्रीव की ओर चल पड़ा।

श्लिष्टमुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः।
सुग्रीवोऽपि तमुद्दिश्य बालिनं हेममालिनम्॥ ११॥

सुग्रीव भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर और मुक्का तानकर स्वर्णमाला धारी बाली के समीप आया।

तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगिनौ।
प्रवृद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥ १२॥

भयंकर बल-विक्रमशाली, गरुड़ के समान वेगवान् और विशालकाय बाली एवं सुग्रीव ऐसे लड़ने लगे जैसे आकाश में चन्द्र और सूर्य लड़ रहे हों।

मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनःपुनः।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव॥ १३॥

बारम्बार घूँसों, लातों और जाँघों से प्रहार करते हुए उन दोनों का वह युद्ध वैसा ही घोर हुआ जैसा इन्द्र और वृत्र का हुआ था।

हीयमानमथोऽपश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम्।
प्रेक्षमाणं विशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः॥ १४॥

जब श्रीराम ने देखा कि सुग्रीव का पराक्रम घट जाने के कारण वह बारम्बार इधर-उधर ताक रहा है तब—

ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम्।
शरं धनुषि सन्धाय चापं पूरयामास च॥ १५॥

महातेजस्वी श्रीराम ने सुग्रीव को दु:खी देखकर अपने धनुष पर एक बाण का सन्धान कर उसका चिल्ला चढ़ाया।

१. यहाँ तारा को मन्त्रवित् कहा है। इस विशेषण से स्पष्ट है कि वह साधारण वानरी नहीं थी।

मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः।
राघवेण महाबाणो बालिवक्षसि पातितः॥ १६॥

फिर श्रीराम ने अग्नि के समान देदीप्यमान और वज्र के समान भयंकर शब्द करनेवाला वह बाण बाली के हृदय को लक्ष्य करके छोड़ा।

ततस्तेन महातेजा वीर्योत्सिक्तकपीश्वरः।
वेगेनाभिहतो बाली निपपात महीतले॥ १७॥

बल वीर्य से समन्वित और महातेजस्वी बाली श्रीराम के मर्मान्तक और अत्यन्त वेगवाले बाण से आहत होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

◀ द्वादशः सर्गः ▶ (१२)

बाली द्वारा राम की भर्त्सना—

तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम्।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १॥

युद्ध-भूमि में बाली को ज्वालारहित अग्नि के समान पड़े हुए देखकर महापराक्रमी राम और लक्ष्मण उसके समीप गये।

तं दृष्ट्वा राघवं बाली लक्ष्मणं च महाबलम्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं परुषं धर्मसंहितम्॥ २॥

महाबली राम और लक्ष्मण को अपने समीप उपस्थित देखकर बाली उनसे नम्रतापूर्वक ये धर्मयुक्त कठोर वचन बोला—

त्वं नराधिपतेः पुत्रस्तेजस्वी चरितव्रतः।
पराङ्मुखवधं कृत्वा को नु प्राप्तस्त्वया गुणः॥ ३॥

हे राम! तुम राजकुल में उत्पन्न, तेजस्वी और व्रतधारी कहलाते हो। तब दूसरे के साथ युद्ध करते हुए मेरा वध करके आपने कौन-सी ख्याति प्राप्त की?

सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः।
इति ते सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि॥ ४॥

श्रीराम दयालु, उत्साही, समय को जाननेवाले और दृढ़ व्रतधारी हैं—इन गुणों से युक्त तुम्हारी कीर्ति संसार के सभी मनुष्य गा रहे हैं।

दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्यं पराक्रमः।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपराधिषु॥ ५॥

मनोनिग्रह, शान्ति, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना—ये राजाओं के गुण हैं।

तान् गुणान् सम्प्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव।
तारया प्रतिषिद्धोऽपि सुग्रीवेण समागतः॥ ६॥

आपको श्रेष्ठ कुलोत्पन्न एवं इन राजोचित गुणों से युक्त जानकर ही मैं तारा के मना करने पर भी सुग्रीव से युद्ध करने के लिए आया था।

न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं योद्धुमर्हति।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने॥ ७॥

दूसरे के साथ युद्ध में प्रवृत्त अतएव अपनी ओर से असावधान मेरे ऊपर श्रीराम तीर नहीं छोड़ेंगे, आपके दर्शन के बिना ही मैंने ऐसा निश्चय कर लिया था।

न त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम्॥ ८॥

उस समय मैं यह नहीं जानता था कि तुम आत्मघाती, कोरी धर्म की ध्वजा उड़ानेवाले, तृणों से ढके हुए, कुएँ की भाँति अधर्मी और पापाचारी हो।

सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्॥ ९॥

उस समय मैं यह भी नहीं जानता था कि तुम्हारा वेशमात्र सज्जनों जैसा है। वस्तुतः छिपी हुई अग्नि की भाँति तुम कपटी-धर्मानुष्ठानी हो।

विषये वा पुरे वा ते यदा नापकरोम्यहम्।
न च त्वामवजाने च कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम्॥ १०॥

हे राम! मैंने आपके राष्ट्र या नगर में कोई बुरा कर्म नहीं किया। मैंने आपका कोई अपमान भी नहीं किया फिर आपने मुझ निरपराधी को क्यों मारा है?

हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम्।
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कृत्वा कर्म जुगुप्सितम्॥ ११॥

हे राम! मुझ जैसे निरपराधी को तीर से मारकर और ऐसा घृणित कर्म करके तुम सज्जनों के बीच में क्या कहोगे?

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधे रतः।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः॥ १२॥

देखो! राजा को मारनेवाला, ब्राह्मण की हत्या करनेवाला, गोघाती, चोर, प्राणियों की हिंसा में तत्पर, नास्तिक और परिवेत्ता (ज्येष्ठ भ्राता से पूर्व विवाह करनेवाला)—ये सब नरकगामी–अधोयोनियों में जाते हैं।

सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः।
लोकं पापात्मनामेते गच्छन्त्यत्र न संशयः॥ १३॥

निन्दक, कृपण, मित्रघाती और गुरु-स्त्रीगामी—ये सभी पापमय लोकों को प्राप्त होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा।
प्रमदा शीलसम्पन्ना धूर्तेन पतिना यथा॥ १४॥

हे राम! जैसे धूर्त पति को प्राप्त करके शीलवती स्त्री सनाथा नहीं होती वैसे ही तुम जैसे शासक को पतिरूप में प्राप्त करके भी यह वसुन्धरा अनाथ ही है।

शठो नैष्कृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना॥ १५॥

धूर्त, पर-अपकारी, नीच और झूठ-झूठ बनावटी शान्ति को धारण करनेवाला=अजितेन्द्रिय आप जैसा पापी पुत्र महात्मा दशरथ के यहाँ कैसे उत्पन्न हो गया?

उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमस्ते प्रकाशितः।
अपकारिषु तं राजन् न हि पश्यामि विक्रमम्॥ १६॥

हे राजन्! हमारे जैसे निरपराध और उदासीन व्यक्तियों पर आपने जैसा पराक्रम दिखलाया है मैं अपकारी और अपराधी व्यक्तियों के प्रति आपका वैसा पराक्रम नहीं देखता।

दृश्यमानस्तु युध्येथा मया यदि नृपात्मज।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया॥ १७॥

हे राजकुमार! यदि तुम मेरे सम्मुख होकर मुझसे युद्ध करते तो मेरे द्वारा मारे जाकर तुम्हें आज ही यमराज का अतिथि बनना पड़ता।

त्वयाऽदृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः।
प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पापवशं गतः॥ १८॥

परन्तु क्या कहूँ? तुमने तो छिपकर मुझे वैसे ही मारा है जैसे मद्यपान के वश में घोर निद्रा में सोये हुए व्यक्ति को साँप काट लेता है।

सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाऽहं निहतो रणे॥ १९॥

हे राम! यदि सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए तुमने मुझे मारा है तो भी आपके द्वारा अधर्मपूर्वक मेरा मारा जाना अनुचित ही है।

काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते।
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्॥ २०॥

मुझे अपनी मृत्यु का दुःख नहीं है, क्योंकि समय आने पर सभी उत्पन्न जीवधारी एक दिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मुझे दुःख केवल इस बात का है कि तुम अपने इस अनुचित कृत्य का लोगों का क्या उत्तर दोगे? आप इसका ठीक-ठीक उत्तर सोच लें।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

श्रीराम का बाली को प्रत्युत्तर—

धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम्।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चात् बालिनमब्रवीत्॥ १॥

धर्म-अर्थ गुण सम्पन्न वाक्यों द्वारा राम पर कड़ा आक्षेप करनेवाले वानरश्रेष्ठ बाली को उत्तर देते हुए श्रीराम कहने लगे—

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम्।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे॥ २॥

अरे! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक आचार को जाने बिना ही तुम मूर्खतावश मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो?

अपृष्ट्वा बुद्धिसम्पन्नान् वृद्धानाचार्यसम्मतान्।
सौम्य वानरचापल्यात्किं मां वक्तुमिहेच्छसि॥ ३॥

हे सौम्य! मान्य आचार्यों और बुद्धिमान् बड़े-बूढों से बिना पूछे वानर स्वभाव-सुलभ चपलतावश क्या तुम मुझे इस विषय में उपदेश दे सकते हो?

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि॥ ४॥

क्या तुम्हें पता नहीं कि वन, पर्वत और वाटिका आदि से परिपूर्ण यह समस्त भूमण्डल इक्ष्वाकुवंशियों के अधिकार में है। इस अखिल भूमण्डल में जितने पशु, पक्षी और मनुष्य रहते हैं उन सबको दण्ड देने अथवा उन पर अनुग्रह करने का अधिकार उन्हीं को है।

तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवागृजुः।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः॥ ५॥

धर्म-अर्थ-काम के तत्त्व को जाननेवाले, सत्यवादी, सरल-स्वभाव, अपराधियों को दण्ड देने और साधुओं पर अनुग्रह करने में तत्पर महात्मा भरत इस समय इस भूमण्डल पर शासन कर रहे हैं।

नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम्।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित्॥ ६॥

नीति, नम्रता, स्थिरता, सत्य और पराक्रम जिसमें विद्यमान हो, जो देश-कालवित् हो, वही राजा होने योग्य है। भरत में ये सभी गुण विद्यमान हैं।

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः॥ ७॥

हम दोनों बन्धु तथा अन्य अनेक राजा लोग भरत के धर्मानुकूल आदेश से धर्मवृद्धि की कामना से इस सम्पूर्ण पृथिवी पर भ्रमण कर रहे हैं।

तस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले।
पालयत्यखिलां भूमिं कश्चरेद्धर्मनिग्रहम्॥ ८॥

उन राजसिंह और धर्मवत्सल महाराज भरत के राज्यशासन में किस मनुष्य में सामर्थ्य है जो धर्म-विरुद्ध कोई कर्म कर सके?

ते वयं धर्मविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि॥ ९॥

अपने उत्कृष्ट धर्ममार्ग पर आरूढ़ रहनेवाले हम लोग भरत की आज्ञा का पालन करते हुए धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले लोगों को दण्ड दिया करते हैं।

त्वं तु संक्लिष्टधर्मा च कर्मणा च विगर्हितः।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि॥ १०॥

तुम धर्म का हनन करनेवाले, कुकर्म में रत और केवल काम के दास बनकर राजधर्म की उपेक्षा कर रहे हो।

ज्येष्ठो भ्राता पिता चैव यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः॥ ११॥

धर्ममार्ग पर चलनेवाले ज्येष्ठ, भ्राता, पिता और विद्यादाता गुरु—ये तीनों ही पिता-तुल्य माने जाते हैं।

यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चेदत्र कारणम्॥ १२॥

धर्म की व्यवस्था के अनुसार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य—ये तीनों पुत्र के तुल्य ही माने गये हैं।

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम।
न हि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि॥ १३॥

हे वानर! सज्जनों का धर्म ऐसा सूक्ष्म है कि सहज में उसे कोई जान नहीं सकता, अतः तुम केवल रोष में भरकर मुझे दोषी नहीं ठहरा सकते।

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥ १४॥

मानवीय परम्परागत धर्म को छोड़कर तुम अपने छोटे भाई सुग्रीव की धर्मपत्नी का पत्नीवत् उपभोग कर रहे हो, यही कारण है जिसको लेकर मैंने तुम्हें प्राण-दण्ड दिया है।

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत्॥ १५॥

इस महात्मा सुग्रीव के जीवित रहते हुए, इसकी भार्या रुमा के साथ जो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है, तुम कामासक्त होकर पापाचरण करते हो।[१]

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाऽप्यनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः॥ १६॥

जो कोई सहोदरा भगिनी अथवा अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ धर्मनिन्दित कामुकता का व्यवहार करता है उसके लिए प्राणदण्ड ही उचित दण्ड बतलाया गया है।

भरतस्तु महीपालो वयं चादेशवर्तिनः।
त्वं तु धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम्॥ १७॥

भाई भरत इस समय अखिल भूमण्डल के चक्रवर्ती सम्राट् हैं और हम लोग उनके आदेश-पालक हैं। तुमने धर्ममर्यादा का उल्लंघन किया है, अतः हम इसी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं ?

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयसि रतः स मे॥ १८॥

सुग्रीव मेरा मित्र है। मेरा जैसा मित्रभाव लक्ष्मण के प्रति है वैसा ही सुग्रीव के प्रति है। स्त्री तथा राज्य-प्राप्ति के प्रतिकार में वे भी मेरे कल्याण के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं।

वयस्यस्यापि कर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता।
शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुपश्यता॥ १९॥

मित्रधर्म की ओर दृष्टि रखते हुए मुझे मित्र का उपकार करना ही चाहिए ऐसा समझकर मैंने तुम्हें दण्ड दिया है। धर्म की ओर दृष्टि रखते हुए तुम्हें यही उचित था कि तुम प्रार्थनापूर्वक इस दण्ड को ग्रहण करते।

श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं हरे॥ २०॥

हे वानर! इस विषय में महर्षि मनु के शुभाचरण प्रतिपादक दो श्लोक सुने जाते हैं। इनको धर्मज्ञ पुरुषों ने स्वीकार किया है और मैं भी इन्हें मानता हूँ–

राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा[२]॥ २१॥

जो मनुष्य पापकर्म करने पर राजा द्वारा दण्डित किये जाते हैं, वे पाप से मुक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषों की भाँति स्वर्गवासी होते हैं।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्[३]॥२२॥

जो चोर अथवा पापी स्वयं राजा के पास जाकर अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और दण्ड चाहता है उसे राजा चाहे दण्ड दे अथवा क्षमा कर दे—दोनों अवस्थाओं में वह पापी पाप से मुक्त हो जाता है, परन्तु पापी को पाप का दण्ड न देने से राजा स्वयं उस पापी का भागी हो जाता है।

तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः॥ २३॥

हे वानरशार्दूल! अब आप पश्चात्ताप न करें। आपको जो प्राणदण्ड दिया गया है यह धर्म की रक्षा के लिए ही दिया गया है। इस विषय में हम लोग स्वतन्त्र नहीं हैं, अपितु धर्मशास्त्र के अधीन हैं।

शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुङ्गव।
तत् श्रुत्वा हेतुमद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि॥ २४॥

हे वानरश्रेष्ठ! दण्ड के विषय में तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर भी मैं दे रहा हूँ। उसे सुनो और उसे सुनकर तुम अपने क्लेश और क्रोध को त्याग दो।

---

१. वानरजाति के लोग भी एक पति के जीवित रहते उसकी पत्नी को अपनी पत्नी बनाने के विरुद्ध थे। यही बात श्रीराम ने 'धरमाणस्य' पद के द्वारा बतलाई है। इसी से आगे चलकर सुग्रीव का बाली की पत्नी तारा को अपनी पत्नी बनाने का समर्थन होता है।

२. मनु० ८।३१८ ३. मनु० ८।३१६

न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरियूथप।
वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः॥ २५॥
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून् मृगान्।
प्रधावितान्वा वित्रस्तान् विस्त्रब्धाश्चापि विष्ठितान्॥२६॥

हे वानरराज! मैंने तुमको जो छिपकर मारा है, इसके लिए मेरे मन में न तो कोई सन्ताप है और न कोई दुःख ही है, क्योंकि अनेक शिकारी लोग जाल, फंदा और अनेक प्रकार के छल के द्वारा छिपकर या प्रत्यक्ष रूप में भागते हुए अथवा विश्वासपूर्वक बैठे हुए मृगों को पकड़ा ही करते हैं।

त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः।
प्रदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम्॥ २७॥

तुम धर्म को न जानकर केवल क्रोध के वशीभूत होकर पिता पितामह के मर्यादित धर्मपथ पर चलनेवाले मेरे ऊपर दोषारोपण कर रहे हो।

एवमुक्तस्तु रामेण बाली प्रव्यथितो भृशम्।
न दोषं राघवो दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः॥ २८॥

श्रीराम के इस प्रकार समझाने पर बाली को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दण्ड का धार्मिक निर्णय हो जाने पर बाली ने श्रीराम को निर्दोष पाया।

प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तदेवं नात्र संशयः॥ २९॥

तब वानरराज बाली ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा—हे पुरुषोत्तम! आप जो कहते हैं वह निःसन्देह ठीक है।

यदयुक्तं मयापूर्वं प्रमादादुक्तमप्रियम्।
तत्रापि खलु मे दोषं कर्तुं नार्हसि राघव॥ ३०॥

हे राम! मैंने पहले प्रमादवश जो अप्रिय और अयुक्त वचन कहे हैं उसमें भी मुझे सर्वथा दोषी मत समझिए। (क्योंकि मैंने जो कुछ कहा था दुःखी अवस्था में कहा था।)

न त्वात्मानमहं शोचे न तारां न च बान्धवान्।
यथा पुत्रं गुणश्रेष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम्॥ ३१॥

अब मुझे अपने विषय में, तारा तथा अन्य बन्धु-बान्धवों के विषय में न कोई चिन्ता है और न ही किसी प्रकार का दुःख। इस समय मुझे केवल स्वर्ण निर्मित बाजूबन्द धारण किये हुए अपने गुणवान् पुत्र अंगद की चिन्ता है।

स मामदर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः।
तटाक इव पीताम्बुरूपशोषं गमिष्यति॥ ३२॥

बाल्यकाल से ही दुलार के साथ मेरे द्वारा लालित एवं पालित वह अङ्गद मेरे दिवङ्गत होने पर मुझे न देखकर सूखे हुए सरोवर के समान दुःख से सूख जायेगा।

बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः॥ ३३॥

हे राम! तारा के गर्भ से उत्पन्न मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र अङ्गद जो अभी बुद्धि में अपरिपक्व है, परन्तु महाबलशाली है, आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय है।

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम्।
त्वं हि शास्ता च गोप्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः॥३४॥

सुग्रीव और अङ्गद के प्रति आप समान भाव से स्नेहमयी बुद्धि रखें, क्योंकि इस समय आप ही उनके रक्षक और शासनकर्ता हैं तथा कर्ता कर्तव्याकर्तव्य के बारे में आप ही उनके शिक्षक हैं।

या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणेन च या।
सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां त्वमाधातुमर्हसि॥ ३५॥

हे राजन्! आपकी जैसी स्नेहमयी वृत्ति भरत और लक्ष्मण के प्रति है वैसी ही स्नेहपूर्ण दयामय वृत्ति आप सुग्रीव और अङ्गद के प्रति भी रखें।

मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम्।
सुग्रीवो नावमन्येत तथाऽवस्थातुमर्हसि॥ ३६॥

मेरे अपराधों को लेकर सुग्रीव तपस्विनी तारा का अपमान न करे अथवा निकाल न दे, आप ऐसी व्यवस्था कर दीजिएगा।

इत्युक्त्वा सन्नतो रामं विरराम हरीश्वरः।
स तमाश्वासयद्रामो धर्मतत्त्वार्थयुक्तया॥ ३७॥

श्रीराम से इस प्रकार कहकर वानरराज बाली

चुप हो गया। तदनन्तर श्रीराम धर्मार्थयुक्त वचनों से उसे समझाने लगे।

न सन्तापस्त्वया कार्य एतदर्थं प्लवङ्गम।
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम॥ ३८॥

हे वानरश्रेष्ठ! आप मेरी चिन्ता न करें और अपनी तथा अपने आत्मीय जीनों की भी चिन्ता न करें।

वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः।
त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम्॥ ३९॥

आपके कथन से पूर्व ही हम लोगों ने आपके इच्छित विचारों को मूर्तरूप देने का निश्चय कर लिया है, अतः अब तुम शोक और मोह को त्यागकर अपने मन का खटका दूर कर दो।

➤ चतुर्दशः सर्गः ➤ (१४)

तारा का आगमन एवं विलाप—

तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव बालिनम्॥ १॥

"संग्राम में वानरश्रेष्ठ बाली राम के द्वारा मारा गया"—इस समाचार को बाली की स्त्री तारा ने भी सुना।

सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम्।
निष्पपात भृशं त्रस्ता मृगीव गिरिह्वरात्॥ २॥

पति की मृत्यु का हृदयविदारक समाचार सुनकर घबराई हुई भयभयीत मृगी के समान वह तारा अपने पुत्र अङ्गद को साथ लेकर उस पर्वतीय प्रासाद से बाहर निकल पड़ी।

आव्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह॥ ३॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि उसका पति भूमि पर पड़ा हुआ है। अपने पति को इस अवस्था में पड़े हुए देखकर तारा अत्यन्त व्यथित हुई और उद्विग्न होकर भूमि पर गिर पड़ी।

सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति क्रोशती।
रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा सन्दितं मृत्युदामभिः॥ ४॥

थोड़ी देर के पश्चात् तारा सोते हुए-से मानो पुनः उठकर और अपने पति को 'हा! आर्यपुत्र!' ऐसा कहती हुई मृत्यु के पाश में बँधे हुए अपने पति को देखकर रोने लगी।

सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी।
इषुणाभिहतं दृष्ट्वा बालिनं कुञ्जरोपमम्॥ ५॥

वानरेन्द्रं महेन्द्राभं शोकसन्तप्तमानसा।
तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयदातुरा॥ ६॥

तारा अपने पति के समीप जाकर उससे लिपट गई, फिर हाथी तथा पर्वत के समान विशालकाय, बाण के द्वारा आहत और मूल कटे हुए वृक्ष के समान गिरे हुए वानरेन्द्र बाली को देखकर शोक संतप्त तारा विलाप करने लगी।

रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर।
किं दीनमनुरक्तां मामद्य त्वं नाभिभाषसे॥ ७॥

युद्ध में दारुण विक्रम दिखलाने वाले, उत्कृष्ट वीर और वानरश्रेष्ठ! तुम इस समय दीन-दुःखी और आपमें अनुराग रखनेवाली मुझसे वार्तालाप क्यों नहीं करते?

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम्।
नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः॥ ८॥

हे वानरश्रेष्ठ! उठो और उठकर उत्तम शय्या पर शयन करो, क्योंकि आपके समान नृपतिश्रेष्ठ भूमि पर शयन नहीं करते।

हृदयं सुस्थिरं मह्यं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम्।
यन्न शोकाभिसन्तप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा॥ ९॥

हाय! मेरा यह हृदय कैसा कठोर है जो भूमि पर पड़े हुए आपको देखकर भी, शोक से सन्तप्त हो सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाता।

वैधव्यं शोकसन्तापं कृपणं कृपणा सती।
अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत्॥ १०॥

हाय! पहले मैंने इस प्रकार का दुःख कभी अनुभव

नहीं किया था, किन्तु अब सुख में पली हुई मुझे विधवापन का शोक और सन्ताप भोगना पड़ेगा।

लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः।
वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्छिते॥ ११॥

सुखपूर्वक पाला हुआ वह सुकुमार अङ्गद अपने क्रोधी चाचा सुग्रीव के शासन में किस प्रकार रहेगा?

कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम्।
दुर्लभं दर्शनं वत्स तव तस्य भविष्यति॥ १२॥

हे पुत्र! तुम अपने धर्मवत्सल पिता का अन्तिम बार दर्शन कर लो, क्योंकि फिर इनका दर्शन तुम्हारे लिए दुर्लभ हो जायेगा।

समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व च।
मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि॥ १३॥

हे नाथ! अपने पुत्र अङ्गद को ढांढस बँधाओ और मुझे भी जो सन्देश देना हो वह दे दो। अपने पुत्र अङ्ग का सिर सूंघ उससे प्रेम करो, क्योंकि अब आप सदा के लिए परदेश जा रहे हो।

सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे।
भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव॥ १४॥

हे सुग्रीव! तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। रुमा अब तुम्हें प्राप्त हो जायेगी। अब तुम निर्द्वन्द्व होकर इस अकण्ट राज्य को भोगो, क्योंकि जिससे तुम्हें भय था वह तुम्हारा शत्रुभूत भाई मारा गया।

तथा तु तारा करुणं रुदन्ती
भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमुपोपवेष्टु-
मनिन्द्यवर्णा भुवि यत्र बाली॥ १५॥

राजपरिवार की स्त्रियों के साथ अपने पति के समीप करुणापूर्ण विलाप करते हुए अनिन्द्य सुन्दरी तारा ने भूमि पर पड़े हुए अपने पति के समीप बैठ प्रायोपवेश (अन्न-जल त्यागकर प्राणत्याग) करने का निश्चय कर लिया।

❮ पञ्चदशः सर्गः ❯ (१५)

हनुमान् का तारा को आश्वासन देना—

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात्।
शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः॥ १॥

आकाश से टूटे हुए तारे की भाँति तारा को पृथिवी पर लोटते देख वानरयूथपति हनुमान्‌जी शनैः-शनैः उसे समझाने लगे—

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥ २॥

वे बोले—प्राणी अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों का फल सुख अथवा दुःख मरने के पश्चात् भी भोगते हैं।

शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनाऽनुकम्पसे।
कस्य को वाऽनुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥३॥

शोकाक्रान्त आप किसके लिए शोक कर रही हैं, आप स्वयं दीन-दुःखी हैं, फिर अङ्गदादि प्रियजनों पर तुम क्या अनुकम्पा कर सकती हो? जल बुद्बुदे के समान यह जीवन क्षणभङ्गुर है फिर कौन किसके लिए शोक करेगा?

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया।
आयात्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय॥ ४॥

आप अपने इस जीवित पुत्र कुमार अङ्गद की देख-भाल कीजिए और इसके भविष्य के कल्याण के लिए जो जो करना योग्य है उस सम्बन्ध में सोचिए।

जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम्॥ ५॥

प्राणियों का जीवन-मरण किस प्रकार अनिश्चित है इस बात को जानते हुए बुद्धिमान् को चाहिए कि वह सदा उत्तम कर्म ही करे।

यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः।
गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि॥ ६॥

बाली न्यायपूर्वक शासन करते थे तथा साम, दान और क्षमा में सदा तत्पर रहते थे। वह उस लोक में गये हैं जिसमें धर्माचरण करने वाले पुरुष जाया करते हैं। अतः उनके लिए शोक करना उचित नहीं है।

संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम्।
सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि॥ ७॥

इस समय आप वानरराज बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार कराइए और राजकुमार अङ्गद का राज्याभिषेक कीजिए। अपने पुत्र को राज्यसिंहासन पर आरूढ़ देखकर तेरे चित्त का उद्वेग दूर होगा और तुझे शान्ति प्राप्त होगी।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता।
अब्रवीदुत्तरं तारा हनुमन्तमवस्थितम्॥ ८॥

पति के निधन से दुःखी तारा हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर समीप खड़े हुए हनुमान्‌जी से कहने लगी—

न चाहं हरिराजस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः॥ ९॥

न तो मैं अपने पति का अग्नि-संस्कार ही कर सकती हूँ और न ही अङ्गद को राज्यसिंहासन पर बैठा सकती हूँ। अब तो अङ्गद के चाचा सुग्रीव ही समीपी तथा समर्थ होने के कारण सम्पूर्ण कार्यों के उत्तराधिकारी हैं।

❮ षोडशः सर्गः ❯ (१६)

बाली का अन्तिम सन्देश और मृत्यु—

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन्।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः॥ १॥

क्षीण प्राणोंवाले बाली ने शनैः-शनैः श्वास लेते हुए अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा तो सर्वप्रथम आगे खड़ा हुआ अपना छोटा भाई सुग्रीव उसे दीख पड़ा।

तं प्राप्तविजयं बाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरः।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत्॥ २॥

वानरराज विजयी सुग्रीव को देखकर उसे सम्बोधित करते हुए बाली ने उससे स्नेहपूर्वक ये स्पष्ट वचन कहे—

सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात्।
कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात्॥ ३॥

हे सुग्रीव! पूर्वजन्म के कुसंस्कारों के कारण तथा बुद्धि के विपरीत होने से मैंने तुम्हारे प्रति जो दुर्व्यवहार किया उसके लिए तुम मुझे दोषी मत समझना।

युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः।
सौहार्दं भ्रातृभुक्तं हि तदिदं तात नान्यथा॥ ४॥

हे तात! हम लोगों के भाग्य में दोनों भाइयों का एक साथ राजभोग तथा सुख एवं शान्तिपूर्वक रहना नहीं लिखा था। भाई के साथ रहने से तो भ्रातृप्रेम होना चाहिए था वह न होकर उल्टा आपस में वैर ही हुआ।

प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम्।
मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम्॥ ५॥

तुम आज ही इन वनवासियों के समृद्ध राज्य को प्राप्त कर लो, क्योंकि मैं आज ही यमपुरी को प्रस्थान कर रहा हूँ। ऐसा तुम निश्चित जानो।

अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः।
यद्यप्यसुकरं राजन् कर्तुमेव तदर्हसि॥ ६॥

हे वीर! इस मरणासन्नावस्था में मैं कुछ बातें तुमसे कहता हूँ। यद्यपि उनका करना कठिन है तथापि हे राजन्! तुम्हें उन्हें अवश्य करना चाहिए।

सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम्।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम्॥ ७॥

सुख पाने का अधिकारी, सुख-समृद्धि में पले हुए, बालक होने पर भी बुद्धिमान्, अश्रुपूर्ण मुखवाले भूमि पर पड़े हुए मेरे इस प्रिय अङ्गद को देखो।

मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम्।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय॥ ८॥

प्राणों से प्रिय मेरे पुत्र अङ्गद को तुम अपने औरस पुत्र के समान समझना। मेरी मृत्यु के कारण यह अनाथ हो गया है अब तुम्हीं इसके सर्वस्व हो, अतः इसका सब प्रकार से पालन करना।

त्वमेवास्य हि दाता च परित्राता च सर्वतः।
भयेष्वभयदश्चैव यथाऽहं प्लवगेश्वर॥ ९॥

हे वानरराज! मेरी भाँति अब तुम्हीं इस अङ्गद के भोजन और वस्त्राभरण प्रदाता, सब प्रकार से रक्षक और भय उपस्थित होने पर अभय प्रदान करनेवाले हो।

एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः।
रक्षसां तु वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति॥ १०॥

यह तारापुत्र अङ्गद तुम्हारे ही समान शोभावान् और पराक्रमी है तथा राक्षसों के संहार में यह तुमसे आगे बढ़कर लड़ेगा।

अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे।
करिष्यत्येष तारेयस्तरस्वी तरुणोऽङ्गदः॥ ११॥

बलवान्, तेजस्वी और तरुण तारा-पुत्र अङ्गद संग्राम में मेरे समान ही शौर्य आदि का परिचय देगा।

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता॥ १२॥

सुषेण की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निश्चय करने और भविष्य में होनेवाले विविध प्रकार के उत्पातों को जानने में अत्यन्त निपुण है।

यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।
न हि तारा मतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते॥ १३॥

अतः यह तारा जिस कार्य को करने का परामर्श दे उसे निःशंक होकर करना, क्योंकि देवी तारा का कोई भी विचार उल्टा नहीं होता।

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्याद्विमानितः॥ १४॥

तुमने श्रीराम का कार्य करने की जो प्रतिज्ञा की है उसे भी निःशंक होकर करना, क्योंकि इसके न करने से अधर्म होगा और राम इसे अपना अपमान समझकर तुम्हारा वध कर डालेंगे।

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्।
उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि॥ १५॥

हे सुग्रीव! मेरे गले में पड़ी हुई इस स्वर्णमयी दिव्य माला को जिसमें सुखसमृद्धि और विजयश्री का वास है, मेरे जीवित रहते ही मेरे गले से निकालकर अपने गले में धारण कर लो, क्योंकि मेरे मरने के पश्चात् इसकी शक्ति क्षीण हो जायेगी।

इत्येवमुक्तः सुग्रीवो बालिना भ्रातृसौहृदात्।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट्॥ १६॥

भ्रातृप्रेम में भरकर जब बाली ने सुग्रीव से ऐसे स्नेहयुक्त वचन कहे, तब सुग्रीव विजयजन्य प्रसन्नता को त्याग, ग्रहग्रस्त चन्द्रमा के समान म्लान मुख हो गये।

तद्बालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः।
जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम्॥ १७॥

बाली के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव का वैर शान्त हो गया तथा वे स्वस्थचित्त और आलस्य रहित होकर बाली के कथनानुसार सम्पूर्ण कार्य करने लगे। उसने बाली द्वारा प्रदत्त वह स्वर्णमाला अपने गले में धारण कर ली।

तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा
बाली दृष्ट्वाऽऽत्मजं स्थितम्।
संसद्धिः प्रेत्यभावाय
स्नेहादङ्गदमब्रवीत्॥ १८॥

उस स्वर्णमाला को सुग्रीव को प्रदान कर मरणोन्मुख बाली अपने प्रस्थान से पूर्ण अपने समक्ष खड़े हुए अङ्गद से स्नेहपूर्वक बोला—

देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव॥ १९॥

हे अङ्गद! प्रिय और और अप्रिय बातों को सहते हुए तुम देशकाल के अनुसार कार्य करना तथा सुख-

दुःख को भोगते हुए सदा सुग्रीव के अधीन रहना।

मास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव॥ २०॥

हे शत्रुसंहारक! सुग्रीव के जो शत्रु हैं, उनके मित्रों से तुम मैत्री मत करना और सुग्रीव के शत्रुओं से भी मित्रता मत रखना, अपितु अपने स्वामी सुग्रीव के हित साधन में तत्पर रहकर तथा जितेन्द्रिय बनकर इनके आदेशानुसार ही चलना।

इत्युक्त्वाऽथ विवृत्राक्षः शरसंपीडितो भृशम्।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः॥ २१॥

इतना कहकर बाण के आघात से अत्यन्त पीड़ित बाली ने दोनों नेत्र और दाँतों को फैलाकर प्राण त्याग दिये।

◀ सप्तदशः सर्गः ▶ (१७)

तारा का विलाप और अङ्गद का अभिवादन—

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम्।
पतिं लोकाच्युतं तारा मृतं वचनमब्रवीत्॥ १॥

अपने स्वर्गगत मृतपति कपिराज बाली के मुख को सूंघती हुई तारा उसे सम्बोधित करते हुए बोली—

शेषे त्वं विषमे दुःखमनुक्त्वा वचनं मम।
उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले॥ २॥

हे वीर! मेरी प्रार्थना को न मानने के कारण ही आप दुःख देनेवाली इस ऊँची-नीची पथरीली भूमि पर सोये पड़े हैं।

मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव।
शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रतिभाषसे॥ ३॥

हे वानरनाथ! निश्चय ही यह भूमि आपको मुझसे भी अधिक प्रिय प्रतीत हो रही है, क्योंकि आप इसका आलिंगन कर मुझसे बात भी नहीं कर रहे हैं।

विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय।
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद॥ ४॥

हे विशुद्ध कुलोद्भव! हे युद्ध-प्रेमी! हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे सम्मानदाता! मुझे असहाय और अनाथ छोड़कर तुम कहाँ चल दिये।

शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता।
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्॥ ५॥

बुद्धिमान् लोगों को चाहिए कि शूरवीरों के साथ कभी अपनी पुत्री का विवाह न करें, क्योंकि देखो न! वीर की पत्नी मैं बात-की-बात में विधवा होकर मृतक के समान हो गई।

अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः।
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे॥ ६॥

हाय! आज मेरा मान-सम्मान सब नष्ट हो गया और मेरे जीवन की सम्पूर्णगति भी आज अवरुद्ध हो गई। इस समय मैं अथाह शोकसागर में डूब रही हूँ।

अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम्।
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा गतम्॥ ७॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्र के समान कठोर है जो अपने पति को मरा हुआ देखकर भी सौ टुकड़े नहीं हो जाता।

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी।
धनधान्यैः सुपूर्णाऽपि विधवेत्युच्यते जनैः॥ ८॥

जो स्त्री पतिहीन है वह चाहे पुत्रवती हो और चाहे धन-धान्य से समृद्ध हो—लोग उसे विधवा ही कहते हैं।

उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना।
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम्॥ ९॥

विलाप करते-करते देवी तारा पीले नेत्रोंवाले अपने पुत्र अङ्गद से बोली—हे पुत्र! मानप्रदाता अपने पूज्य

पिता महाराज बाली को अन्तिम प्रणाम करो।

एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः।
भुजाभ्यां पीनवत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन॥ १०॥

देवी तारा के ऐसा कहने पर अङ्गद ने उठकर अपनी मोटी-मोटी भुजाओं से पिता के चरणों का स्पर्श करते हुए "मैं अङ्गद हूँ"—ऐसा कहा।[1]

अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे॥ ११॥

(अङ्गद के प्रणाम करने पर तारा ने बाली को सम्बोधित करते हुए कहा)—जिस प्रकार पहले प्रणाम करने पर तुम अङ्गद को आशीर्वाद देकर कहा करते थे कि "दीर्घायु हो"—अब आप वैसा आशीर्वाद क्यों नहीं देते?

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं
न चास्मि शक्ता विनिवारणे तव।
हता सपुत्राऽस्मि हतेन संयुगे
सह त्वया श्रीर्विजहाति मामिह॥ १२॥

मेरे हितपूर्ण वचनों पर आपने ध्यान नहीं दिया। समझाने के अतिरिक्त आपको रोकने की शक्ति मुझमें भी नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध में आपके मारे जाने से मैं भी पुत्र सहित विनाश को प्राप्त हुई। आपके मरने से ऐश्वर्य, कान्ति और राज्यलक्ष्मी ने मेरा भी परित्याग कर दिया।

❮ अष्टादशः सर्गः ❯ (१८)

सुग्रीव का विषाद एवं राम का उन्हें सान्त्वना देना—

तां त्वश्रुवेगेन दुरासदेन
त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन।
पश्यंस्तदा बाल्यनुजस्तरस्वी
भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन तेपे॥ १॥

अत्यन्त वेगवान्, अत्यन्त कठिनाई से पार होने योग्य शोकरूपी महासागर में डूबती हुई तारा को देखकर बाली के छोटे भाई सुग्रीव भाई के मारे जाने से अत्यन्त दुःखी हुए।

स बाष्पपूर्णेन मुखेन वीक्ष्य
क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी।
जगाम रामस्य शनैः समीपं
भृत्यैर्वृतो राघवमित्युवाच॥ २॥

रोती हुई तारा की विपन्नावस्था को देखकर मनस्वी सुग्रीव बहुत दुःखी हुए, उनके हृदय में एक प्रकार का वैराग्य-सा उत्पन्न हो गया। ऐसे दुःखी सुग्रीव अपने अनुचरों से घिरे हुए राम के समीप पहुँचकर उनसे बोले—

अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां
पुरे च विक्रोशति दुःखतप्ते।
हतेऽग्रजे संशयितेऽङ्गदे च
न राम राज्ये रमते मनो मे॥ ३॥

हे राम! महारानी तारा के करुणामय रुदन को देखकर, पुरवासियों के दारुण विलाप और पितृवियोग के कारण संशयापन्न राजकुमार अङ्गद के जीवन को देखकर अब राज्य करने को मेरा जी नहीं चाहता।

भ्राता कथं नाम महागुणस्य
भ्रातुर्वधं राघव रोचयेत।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं
न चिन्तयन् कामपुरस्कृतः सन्॥ ४॥

हे राम! पतित-से-पतित स्वार्थी भ्राता भी अपने

---

१. जो लोग सुग्रीव आदि को आजकल के जंगली बन्दर की भाँति समझते हैं वे तनिक इस प्रकरण को देखें। क्या बन्दर इस प्रकार नमस्ते करते हैं?

गुणवान् बड़े भाई का वध कभी पसन्द नहीं करेगा। मैंने कामासक्त होने के कारण राज्यसुख और भ्रातृवध के पश्चात् होनेवाले दारुण दुःख—इन दोनों के परिणाम पर कभी विचार नहीं किया।

वधो हि मे मतो नासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात्।
ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारी व्यतिक्रमः॥ ५॥

अपने गौरव और यश की हानि के कारण भाई बाली को मेरा वध कभी भी अभीष्ट नहीं था, परन्तु मैं अपनी नीच बुद्धि के कारण सदा भाई के वध की चेष्टा किया करता था।

द्रुमशाखावभग्नोऽहं मुहूर्तं परिनिष्टनन्।
सान्त्वयित्वा त्वनेनोक्तो न पुनः कर्तुमर्हसि॥ ६॥

बाली द्वारा वृक्ष की शाखाओं से आहत होने पर जब मैंने दीनतापूर्वक आपको पुकारा तब भाई बाली ने मुझे आश्वासन देते हुए यही कहा—जाओ, फिर ऐसी धृष्टता कभी मत करना।

भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षितः।
मया क्रोधश्च कामश्च कपित्वं च प्रदर्शितम्॥ ७॥

हे राघव! भाई बाली ने तो अपने भ्रातृभाव, श्रेष्ठता और धर्म की रक्षा करते हुए अपने बड़प्पन का परिचय दिया, परन्तु मैंने क्रोध तथा स्वार्थ को आश्रय देते हुए जघन्य चञ्चलता का परिचय दिया है।

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः
कुतः सुपुत्रः सदृशोऽङ्गदेन।
न चापि विद्यते स वीर देशो
यस्मिन् भवेत्सोदरसन्निकर्षः॥ ८॥

हे राम! सज्जन तथा वश में रहनेवाले पुत्र मिलना सहज है, परन्तु अङ्गद के समान गुणवान् पुत्र मिलना कठिन है फिर हे वीर! संसार में ऐसा कोई देश दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर बन्धु प्राप्त हो सके।

इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः
श्रुत्वा वचो बाल्यनुजस्य तस्य।
सञ्जातबाष्पः परवीरहन्ता
रामो मुहूर्तं विमना बभूव॥ ९॥

भ्रातृवध से दुःखी बाली-अनुज सुग्रीव ने आर्त्त होकर जब इस प्रकार के वचन कहे तब इन बातों को सुनकर शत्रुतापी श्रीराम के नेत्र भी सजल हो गये और एक मुहूर्त के लिए वे उदास हो गये।

तस्मिन् क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्ष्यमाणः
क्षितिक्षमावान् भुवनस्य गोप्ता।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां
समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम्॥ १०॥

उसी समय इधर-उधर देखते हुए पृथिवी के समान क्षमाशील और सम्पूर्ण विश्व के रक्षक श्रीराम रोती हुई और दुःखसागर में डूबी हुई तारा को उत्सुकतापूर्वक देखने लगे।

तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथं
पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम्।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां
मन्त्रिप्रधानाः कपिवीरपत्नीम्॥ ११॥

इसी बीच में प्रधानमन्त्री आदि श्रेष्ठ पुरुषों ने सुन्दर नेत्रोंवाली वानरराज बाली की पत्नी तारा को, जो पति का आलिङ्गन किये हुए भूमि पर लेट रही थी, उठाकर अलग किया।

सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा
भर्तुः सकाशादपनीयमाना।
ददर्श रामं शरचापपाणिं
स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम्॥ १२॥

पति के समीप से दूर जाने पर तारा बहुत छटपटाई। जब मन्त्रिगण उसे राम के समीप ले गये तब तारा ने अपने तेज से देदीप्यमान सूर्य के सदृश धनुष-बाणधारी श्रीराम को देखा।

सा तं समासाद्य विशुद्धसत्त्वं
शोकेन सम्भ्रान्तशरीरभावा।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा
रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्षम्॥ १३॥

अत्यन्त शोक के कारण अपने शरीर से बेसुध मनस्विनी तारा विमल बुद्धिवाले रणविशारद एवं

लक्ष्यवेधी राम के पास जाकर बोली—

येनैकबाणेन हतः प्रियो मे
तेनैव मां त्वं जहि सायकेन।
हता गमिष्यामि समीपमस्य
न मामृते राम रमेत बाली॥ १४॥

हे राम! आपने जिस तीर से मेरे प्राणप्रिय पति बाली को मारा है उसी तीर से आप मुझे भी मार डालिए। मरकर मैं बाली के पास जाऊँगी, क्योंकि मेरे बिना बाली वहाँ प्रसन्न नहीं रह सकेगा।

यच्चापि मन्येत भवान् महात्मा
स्त्रीघातदोषो न भवेत्तु मह्यम्।
आत्मेयमस्येति च मां जहि त्वं
न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र॥ १५॥

यदि उदारचेता आप यह समझें कि तारा के वध से मुझे स्त्रीवध का दोष लगेगा तो आप अपने मन की शंका दूर कर डालें। पत्नी पति की आत्मा होती है—अतः तारा बाली की आत्मा है, ऐसा समझकर आप मुझे मारें। इस प्रकार हे नरेन्द्रपुत्र! आपको स्त्रीवध का दोष नहीं लगेगा।

इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा
तारां समाश्वास्य हितं बभाषे।
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व
सुखदुःखयोगं कृतं विधात्रा॥ १६॥

तारा के ऐसा कहने पर प्राणिमात्र के हितैषी श्रीराम ने तारा को समझाते हुए उससे ये हितकर वचन कहे—हे वीरपत्नी! बुद्धि विपरीत तुम मृत्यु की कामना मत करो। कर्मानुकूल सुख-दुःख का योग तो उसी सर्वनियन्ता परमात्मा का विधान है।

त्रयो हि लोका विहितं विधानं
नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव
पुत्रस्तु ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्॥ १७॥

इस त्रिलोकी का निर्माण और उसके सञ्चालन का विधान परमात्मा द्वारा निर्मित है। उसके वशवर्ती होने के नाते कोई इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। अधिकारी होने के नाते तुम्हारा पुत्र युवराजपद प्राप्त करेगा और तुम पहले की भाँति सुख एवं शान्ति प्राप्त करोगी।

आश्वासिता तेन तु राघवेण
प्रभावयुक्तेन परन्तपेन।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन
सुवेषरूपा विरराम तारा॥ १८॥

प्रभावशाली और शत्रुतापी महात्मा राम ने जब तारा को इस प्रकार समझाया तब उत्तम वस्त्र-धारिणी वीर-पत्नी तारा ने रोना बन्द कर दिया और उसका मुखमण्डल प्रसन्न हो गया।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

बाली की अन्त्येष्टि—

सुग्रीवं चैव तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः।
समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत्॥ १॥

लक्ष्मण सहित श्रीराम ने जो उस समय सुग्रीव, तारा और अङ्गद के समान स्वयं भी दुःखी हो रहे थे, सुग्रीव, तारा और अङ्गद को सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा—

न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ॥ २॥

शोक-सन्ताप करने से दिवङ्गत आत्मा का कल्याण नहीं होता, इसलिए अब आगे जो कार्य करना है वह आप लोगों को करना चाहिए।

वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा।
अवदत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम्॥ ३॥

श्रीराम के ऐसा कह चुकने पर शत्रुघाती लक्ष्मण नम्रतापूर्वक खिन्नचित्त सुग्रीव से बोले—

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम्।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो बालिनो दहनं प्रति॥ ४॥

हे सुग्रीव! अब तुम तारा और अङ्गद को साथ लेकर बाली के दाहकर्म सम्बन्धी अन्त्येष्टि-कृत्य करो।

समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च।
चन्दनादीनि दिव्यानि बालिसंस्कारकारणात्॥ ५॥

बाली के अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए दिव्य चन्दन और बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ लाने के लिए नौकरों को आज्ञा दो।

समाश्वासय चैनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम्।
मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम्॥ ६॥

इस समय तुम उदास एवं दीन अङ्गद को सान्त्वना दो। बालबुद्धि मत दिखाओ, क्योंकि इस समय यह सारी नगरी आपके अधीन है।

अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च।
घृतं तैलमथो गन्धान् यच्चात्र समनन्तरम्॥ ७॥

पुष्प मालाएँ, विविध प्रकार के वस्त्र, घी, तेल सुगन्धित पदार्थ और अन्य जो-जो वस्तुएँ अपेक्षित हैं उन्हें अङ्गद जाकर ले आए।

त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ सम्भ्रमात्।
त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः॥ ८॥

हे तार[1]! तुम शीघ्र जाकर शिबिका=पालकी ले आओ। इस समय शीघ्रता की परमावश्यकता है। ऐसे कार्यों में शीघ्रता से ही लाभ है।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः सम्भ्रान्तमानसः।
प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः॥ ९॥

लक्ष्मण के आदेश को सुनकर उद्विग्नचित्त तार पालकी लाने के लिए तुरन्त किष्किन्धा नगरी को गया।

आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः।
वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः॥ १०॥

पालकी को उठाने में समर्थ वीर वानरों के कन्धे पर पालकी को रखवा कर तार पुनः उसी स्थान पर लौट आया जहाँ श्रीराम थे।

दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम्।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम्॥ ११॥

यह पालकी अत्यन्त सुन्दर थी। उसमें बैठने के लिए भद्रपीठ=उत्तम आसन बना हुआ था। वह रथ के समान शोभायमान थी, उसके भीतर और बाहर नाना प्रकार के पक्षियों और वृक्षों के चित्र चित्रित थे।

आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः।
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनान्विताम्॥ १२॥

वह शिबिका पदाति सैनिकों के चित्रों से सुभूषित थी। वह सब ओर से भली प्रकार अलंकृत थी। वह सिद्धों के विमान की भाँति अति रमणीय थी। उसमें जालीदार झरोखे बने हुए थे।

सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां शिल्पिभिः कृताम्।
दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम्॥ १३॥

वह अत्यन्त दृढ़ और पर्याप्त लम्बी-चौड़ी थी। कुशल कारीगरों ने उसका सुन्दरता से निर्माण किया था। उसमें लकड़ी का एक क्रीड़ा पर्वत भी बना हुआ था और मीनाकारी के सुन्दर कामों से वह अलंकृत थी।

वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम्।
गुहागहनसंछन्नां रक्तचन्दनभूषिताम्॥ १४॥

वह पालकी मूल्यवान् आभूषणों और हारों से सुभूषित थी। चित्र-विचित्र फूलमालाओं से वह समलंकृत थी। उसकी छत पर वन और कन्दराओं के चित्र अङ्कित थे। वह लाल चन्दन के काम से भूषित थी।

---

१. सुग्रीव के सचिव का नाम है।

ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
क्षिप्रं विनीयतां बाली प्रेतकार्यं विधीयताम्॥ १५॥

इस प्रकार की शिबिका[1] को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—बाली को शीघ्र इस पालकी में स्थापित करो और इनका अन्त्येष्टि-संस्कार करो।

ततो बालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा।
आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु॥ १६॥

राम के ऐसा कहने पर अङ्गद और सुग्रीव दोनों ने रोते हुए बाली के शव को उठाकर शिबिका में रखा।

आरोप्य शिबिकां चैव बालिनं गतजीवितम्।
अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम्॥ १७॥

प्राणरहित बाली के शव को पालकी में रखकर उसे उत्तम पुष्पहारों, वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत किया गया।

आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः।
और्ध्वदैहिकमार्यस्य[2] क्रियतामनुरूपतः॥ १८॥

तत्पश्चात् कपिराज सुग्रीव ने आदेश दिया कि मेरे बड़े भाई आर्य बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार उनके अनुरूप राजकीय मान-सम्मान से किया जाये।

विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहून्यपि।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका समनन्तरम्॥ १९॥

नाना प्रकार के रत्नों की राशि लुटाते हुए वानर वीर आगे-आगे चलें और उनके पीछे अरथी की पालकी चले।

अङ्गदं परिगृह्याशु तारप्रभृतयस्तदा।
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः॥ २०॥

सुग्रीव के ऐसा आदेश देने पर अपने प्रिय बन्धु बाली की मृत्यु से विकल तार आदि समस्त वानर अङ्गद को साथ लेकर रोते हुए चल पड़े।

पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते।
चितां चक्रुः सुबहवो वानराः शोककर्शिताः॥ २१॥

जलवाली पर्वतीय नदी के एकान्त और निर्जन तट पर पहुँचकर बहुत-से शोकाविह्वल वानरों ने चिता बनाकर तैयार की।

सुग्रीवेण ततः सार्धमङ्गदः पितरं रुदन्।
चितामारोपयामास शोकेनाभिहतेन्द्रियः॥ २२॥

चिता तैयार हो जाने पर शोक से शिथिल इन्द्रियोंवाले, रोते हुए अङ्गद ने सुग्रीव के साथ अपने पिता बाली को उठाकर चिता पर रखा।

पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।
ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह॥ २३॥

उस समय पिता को महायात्रा के लिए प्रस्थान करते हुए देखकर अंगद बहुत विकल हुआ। पश्चात् बाईं ओर से चिता की प्रदक्षिणा कर उसने विधिवत् चिता में अग्नि लगाई।

संस्कृत्य बालिनं ते तु विधिपूर्वं प्लवङ्गमाः।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शीतजलां शुभाम्॥ २४॥

इस प्रकार विधिपूर्वक बाली का अन्त्येष्टि-संस्कार कर वे सब वानर वीर अन्त्येष्टि-संस्कार के पश्चात् स्नान आदि करने के लिए शीतल जलवाली नदी के तट पर आये।

ततस्ते सहितास्तत्र ह्यङ्गदं स्थाप्य चाग्रतः।
सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम्॥ २५॥

---

१. ११ व १४ तक चार श्लोकों में जैसी सुन्दर पालकी का वर्णन है क्या ऐसी पालकी जंगली बन्दरों के पास हो सकती है? कभी नहीं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकीय रामायण में जिन वानरों का वर्णन है वह आजकल के पूँछवाले बन्दरों का नहीं है। रामायण काल में यक्ष, वानर, भालू, राक्षस आदि विभिन्न जातियाँ थीं। कला-कौशल में वानरजाति बहुत बढ़-चढ़ कर थी, यह बात आगे भी अनेक प्रकरणों में आयेगी।

२. यहाँ बाली के लिए 'आर्य' विशेषण दिया है। इससे भी यह सिद्ध है कि बाली आदि पुच्छ-विशिष्ट वानर नहीं थे।

तत्पश्चात् सुग्रीव तथा तारासहित उन सब वानरों ने इकट्ठे मिलकर और अङ्गद को आगे रखकर नदी जल में स्नान किया।

सुग्रीवेणैव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत्॥ २६॥

महाबली श्रीराम ने सुग्रीव के ही समान शोकाकुल और उदास हो बाली का अन्त्येष्टि संस्कार सम्पूर्ण कराया।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

सुग्रीव का राज्याभिषेक—

ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः॥ १॥

बाली के अन्त्येष्टि आदि कृत्यों के पश्चात् सुवर्ण पर्वत के समान कान्तिवाले और तरुण आदित्य के समान देदीप्यमान मुखवाले पवन-सुत हनुमान् हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले—

भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत्।
वानराणां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो॥ २॥

हे स्वामिन्! पिता-पितामह द्वारा शासित वानरों का यह दुष्प्राप्य राज्य आपकी कृपा से ही सुग्रीव को प्राप्त हुआ है।

भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम्।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि सुहृद्गुणः॥ ३॥

हे प्रभो! अब यह आपकी आज्ञा पाकर श्रेष्ठ नगर किष्किन्धा में प्रवेश कर अपने मित्रमण्डल के साथ सम्पूर्ण राज्य-कार्यों का विधिवत् सम्पादन करेंगे।

स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि।
अर्चयिष्यति रत्नैश्च माल्यैश्च त्वां विशेषतः॥ ४॥

वहाँ अनेक प्रकार के सुगन्धित ओषधियों से युक्त जल से विधिपूर्वक स्नान करके ये नाना प्रकार के रत्न तथा मालाओं से आपका विशेष रूप से सत्कार करेंगे।

इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुमितोऽर्हसि।
कुरुष्व स्वामिसम्बन्धं वानरान् सम्प्रहर्षयन्॥ ५॥

अतः आप कृपाकर इस रमणीय किष्किन्धा पुरी में पधारिए और सुग्रीव को इस प्रदेश का राजा बनाकर सम्पूर्ण वानरजाति को प्रसन्न कीजिए।

एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा।
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः॥ ६॥

हनुमान् के ऐसा कहने पर शत्रुहन्ता, बुद्धिमान्, एवं वाक्यविशारद श्रीराम उनसे बोले—

चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः॥ ७॥

हे सौम्य हनुमन्! मैं पिताजी कि आज्ञा का पालन करने के लिए चौदह वर्ष तक ग्राम अथवा नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।

सुसमृद्धां गुहां रम्यां सुग्रीवो वानरर्षभः।
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम्॥ ८॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव उस समृद्धिशालिनी सुन्दर नगरी में प्रविष्ट हों और आप सब लोग शीघ्र ही विधिपूर्वक उस वीर को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करो।

एवमुक्त्वा हुनमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत्।
वृत्तज्ञो वृत्तसम्पन्नमुदारबलविक्रमम्॥ ९॥

इममप्यङ्गदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय।
अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम्॥ १०॥

श्रीराम हनुमान् से ऐसा कहकर फिर सुग्रीव से बोले—हे वीर! देखो, आप व्यवहारकुशल हो, अतः आप सदाचार-सम्पन्न, उदार-वृत्ति, बली एवं पराक्रमी इस अंगद को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए।

यह अंगद अत्यधिक उत्साही है (और तुम्हारे बड़े भाई का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण) युवराज पद का अधिकारी भी है।

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिकाः॥ ११॥

हे सौम्य! यह वर्षाकाल का चौमासा उपस्थित हो गया है। उसका प्रबल वर्षावाला यह प्रथम श्रावण मास चल रहा है।

नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम्।
अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः॥ १२॥

हे सौम्य! यह उद्योग का समय नहीं है (इस समय सीताजी की खोज नहीं हो सकती), अतः आप अपनी राजधानी किष्किन्धा पुरी में प्रवेश करें और मैं वर्षाकाल की समाप्ति तक लक्ष्मण सहित इसी पर्वत पर वास करूँगा।

इयं गिरिगुहा रम्या विशालां युक्तमारुता।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला॥ १३॥

हे सौम्य! ऋष्यमूक पर्वत की यह कन्दरा अत्यन्त रमणीक, विशाल एवं हवादार है। इसके समीप ही पानी भी बहुत है और अनेक प्रकार के कमल के फूलों से युक्त जलाशय भी यहाँ हैं।

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।
एषं नः समयः सौम्यः प्रविश त्वं स्वमालयम्॥ १४॥

जब कार्तिक मास आरम्भ हो तब तुम रावण-वध के लिए यत्नशील होना। हे सौम्य! यही हम लोगों का निश्चय है। अब तुम अपने निवास-स्थान पर जाओ।

इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानराधिपः।
प्रविवेशपुरीं रम्यां किष्किन्धां बालिपालिताम्॥ १५॥

श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर वानरराज सुग्रीव ने बाली द्वारा संरक्षित रम्य किष्किन्धा पुरी में प्रवेश किया।

ततः प्रकृतयः सर्वाः सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः॥ १६॥

नगरी में प्रविष्ट होने पर समस्त प्रजा के लोगों और सुहृद् जनों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक इसी प्रकार किया जिस प्रकार देवता लोग इन्द्र का किया करते हैं।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुङ्गवाः।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टास्तत्र सहस्रशः॥ १७॥

जब सुग्रीव का राज्याभिषेक हो गया तब सहस्रों वानरश्रेष्ठ हर्षित हो आनन्द-ध्वनि करने लगे।

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो हरिपुङ्गवः।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत्॥ १८॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने राम के आदेश का पालन करते हुए अंगद का आलिंगन कर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया।

अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोऽभ्यपूजयन्॥ १९॥

अंगद के युवराज पद पर अभिषिक्त हो जाने पर दयार्द्रचित वानर 'साधु-साधु' (वाह-वाह) कहकर सुग्रीव का गौरव गान करने लगे।

रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः।
प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि॥ २०॥

अंगद के युवराज पद पर अभिषिक्त हो जाने पर सभी वानर-गुण प्रसन्न होकर इस कृत्य के प्रेरक और समर्थक राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों की बार बार प्रशंसा करने लगे।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता।
बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे॥ २१॥

हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से परिपूर्ण, ध्वजा और पताकाओं से अलंकृत और पर्वतों से घिरी हुई यह किष्किन्धा उस समय अत्यधिक शोभायमान हो रही थी।

≺ एकविंशः सर्गः ≻ (२१)

प्रस्त्रवण-गिरि पर निवास—

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्त्रवणं गिरिम्॥ १॥

उधर सुग्रीव किष्किन्धा नगरी में प्रविष्ट हो गये और उनका राज्याभिषेक हो गया और इधर श्रीराम लक्ष्मणजी को अपने साथ लेकर प्रस्त्रवण पर्वत पर चले आये।

तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम्।
प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह॥ २॥

उस पर्वत की चोटी पर एक विशाल कन्दरा को श्रीराम ने लक्ष्मण सहित निवास के लिए पसन्द किया।

इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज॥ ३॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः।
बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन् प्रस्त्रवणे गिरौ॥ ४॥

हे राजकुमार! चित्रविचित्र वन-पंक्तियों से अलंकृत सुग्रीव की रमणीय नगरी किष्किन्धा भी यहां से बहुत दूर नहीं है। ऐसा कहकर लक्ष्मण सहित श्रीराम उस अत्यन्त मनोहर कन्दराओं वाले, अनेक दृश्यों से युक्त एवं लता-वृक्षों से वेष्टित प्रस्त्रवण पर्वत पर रहने लगे।

सुसुखेऽपि बहुद्रव्ये तस्मिन् हि धरणीधरे।
वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पाऽपि नाभवत्॥ ५॥

यद्यपि उस पर्वत पर नाना प्रकार के आवश्यक, सुखावह द्रव्य और बहुत-से पुष्प-फलादि थे तथापि वहाँ निवास करते हुए श्रीराम को थोड़ी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई।

हृतां हि भार्यां स्मरतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम्॥ ६॥

क्योंकि जब वे प्राणों से भी प्रिय और हरण की गई सीता का स्मरण करते, तब रात्रि में शय्या पर लेटने पर भी उन्हें निद्रा नहीं आती थी।

तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम्।
तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयन्वचः॥ ७॥

सदैव शोकाक्रान्त श्रीराम को शोक से व्याकुल देखकर उन्हीं की भाँति शोकाकुल लक्ष्मणजी ने श्रीराम से नम्रतापूर्वक ये वचन कहे—

अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि।
शोचतो व्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते॥ ८॥

हे वीर! आप व्यथित होकर शोकाकुल न हों क्योंकि आप यह भली भाँति जानते हैं कि शोक करने वाले लोग सदा कष्ट ही उठाया करते हैं।

समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरं कुरु।
ततः सपरिवारं तं निर्मूलं कुरु राक्षसम्॥ ९॥

आप शोक का पूर्णरूपेण उन्मूलन कर उद्योग करने का दृढ़ निश्चय कीजिए, तभी आप उस दुर्दान्त राक्षस रावण का परिवार सहित समूल नाश कर सकेंगे।

लक्ष्मणस्य तु तद्वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम्।
राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

लक्ष्मणजी के हितकारी और मङ्गलमय इन विचारों का आदर करते हुए श्रीराम अपने हितैषी बन्धु लक्ष्मण से यह स्नेहपूर्ण वचन बोले—

एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः।
विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम्॥ ११॥

हे लक्ष्मण! यह लो, मैंने सभी कार्यों को नष्ट करने वाले शोक को तिलाञ्जलि दे दी, अब मैं अपने पराक्रम सम्बन्ध दुर्धर्ष तेज को प्रोत्साहित करता हूं।

शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन्॥ १२॥

हे लक्ष्मण! तुम्हारी बात मानकर मैं सुग्रीव की सहायता और नदियों की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए शरत्काल की प्रतीक्षा करूँगा।

◀ द्वाविंशः सर्गः ▶ (२२)

वर्षा-ऋतु का वर्णन—

वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः॥ १॥

माल्यवान्[1] पर्वत पर निवास करते हुए एक दिन राम श्रीलक्ष्मणजी से कहने लगे—देखो, वर्षा का समय उपस्थित हो गया है।

नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥ २॥

सूर्य की किरणों द्वारा समुद्र के जल को पीता हुआ आकाश नौ मास का गर्भ धारण करता है। तत्पश्चात् वर्षाकाल में इस रसायन रूपी जल को पृथिवी पर बरसाता है।

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति॥ ३॥

धूप से तपकर कष्ट पाई हुई तथा वृष्टि के नूतन जल से सिञ्चित यह पृथिवी शोकसन्तप्त सीता के समान बाष्प त्याग कर रही है।

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः॥ ४॥

काले-काले बादल ही जिनके मृगचर्म हैं, गिरती हुई जलधारा ही जिनका यज्ञोपवीत है और जिनकी कन्दराएँ वायु से पूरित हैं ऐसे ये पर्वत अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारी के समान प्रतीत हो रहे हैं।

नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मा।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी॥ ५॥

नील मेघमाला में चमकती हुई यह विद्युत् ऐसी प्रतीत होती है मानो रावण की गोद में पड़ी हुई तपस्विनी सीता छटपटा रही है।

रजः प्रशान्तं स हिमोऽद्य वायु-
र्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्॥ ६॥

वर्षा के कारण धूल का उड़ना शान्त हो गया है, शीतल वायु बहने लगी है, ग्रीष्मकाल की उष्णता शान्त हो गई है, सम्राटों की विजय यात्राएँ रुक गई हैं और प्रवासी लोग अपने-अपने देशों को लौट रहे हैं।

सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु
यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति॥ ७॥

मानसरोवर में रहनेवाले मानसरोवर-वास-लोभी राजहंस मानसरोवर के लिए चल दिये। चकवा अपनी प्यारी चकवी से मिल गया है और निरन्तर वर्षा के कारण जल से क्षत-विक्षत मार्ग रथों के गमनागमन के लिए अवरुद्ध हो गया है।

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन
विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुवृत्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन॥ ८॥

वर्षाकाल में उत्पन्न होनेवाली छोटी-छोटी वीरबहूटियों से बीच-बीच में चित्रित नूतन घास से परिपूर्ण पृथिवी ऐसे शोभित हो रही है मानो किसी नारी ने लाक्षा रंग से चित्रित शुक के समान हरा कम्बल धारण किया हुआ हो।

जाता वनान्ताः शिखिसंप्रनृत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः।
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा॥ ९॥

इस समय वन की भूमि मयूरों के नृत्य से परिपूर्ण

१. प्रस्रवण और माल्यवान्—ये दोनों एक ही पर्वत के नाम प्रतीत होते हैं।

हो रही है। कदम्ब के वृक्ष पुष्प-गुच्छों से लद गये हैं, वृषभ गौओं के समान काम-पीड़ित हो रहे हैं और सम्पूर्ण पृथिवी हरी-हरी घास से अत्यन्त रमणीय दिखाई दे रही है।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः[1] ॥ १० ॥

इस समय नदियाँ जल से परिपूर्ण होकर बह रही हैं, बादल वर्षा कर रहे हैं, मदमस्त गजराज गर्ज रहे हैं, वन प्रदेश अत्यन्त शोभित हो रहे हैं, स्त्री से वियुक्त लोग अपनी प्रिया का ध्यान कर रहे हैं, मयूर नाच रहे हैं और वानरगण (फलों के लिए) आशावान् हो रहे हैं।

क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै-
र्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥ ११ ॥

ये वन प्रदेश, जिनमें कहीं भ्रमर-पंक्तियाँ गुञ्जार कर रही हैं, कहीं मोरों का नृत्य हो रहा है, कहीं मतवाले हाथियों का गर्जन हो रहा है—नाना प्रकार के कौतुकों से परिपूर्ण होने के कारण कैसे सुन्दर दीख पड़ते हैं।

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं
प्लवङ्गमोदीरितकण्ठतालम्।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादैर्
वनेषु सङ्गीतमिव प्रवृत्तम्॥ १२ ॥

भौंरों की गुञ्जार मानो वीणा की मधुर झंकार है, मेंढकों की टर्र-टर्र मानो कण्ठ से दिया हआ ताल है और मेघों की गड़-गड़ाहट मानो मृदंग से निकली हुई गमक है—इन सब शब्दों से मानो उस वन में संगीत हो रहा है।

मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा
वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्राः।
रम्य नगेन्द्रा निभृता नरेन्द्राः
प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ॥ १३ ॥

इस समय गजेन्द्र मदमत्त हैं, वृषभ अति प्रसन्न हैं, वनों में सिंह अत्यन्त पराक्रम-युक्त हैं, हरियाली से पर्वत अत्यन्त रमणीक हो गये हैं, राजा लोग विजय यात्रा से निवृत्त हो गये हैं और सुरपति इन्द्र मेघों द्वारा क्रीड़ा कर रहे हैं।

वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना प्रतिनिवर्तते।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥ १४ ॥

इस वर्षाकाल में राजाओं की विजय-यात्राएँ स्थगित हो गई हैं, अतः आगे गई हुई सेनाएँ वापस लौट पड़ी हैं। जल ने राजाओं के वैर को शान्त और मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है।

मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥ १५ ॥

वेद का स्वाध्याय करने की इच्छा करनेवाले सामवेदी ब्राह्मणों के अध्ययन का काल यह भाद्रमास[2] प्रारम्भ हो गया है।

निवृत्तकर्मायतनो नूनं सञ्चितसंचयः।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिपः ॥ १६ ॥

---

१. श्लोक के प्रथम दो चरणों में केवल क्रियाएं हैं और अन्तिम दो चरणों में कर्ता। एक-एक क्रिया का सम्बन्ध क्रमशः एक-एक कर्ता के साथ है जैसे '**नद्यो वहन्ति**'—नदियाँ बह रही हैं। यह श्लोक क्रमालंकार का सुन्दर उदाहरण है।

२. यहाँ 'श्रावणी-उपाकर्म' पर्व का आभास झलकता है। यह पर्व इतना ही प्राचीन है जितना वेद। वेद में इस पर्व का संकेत निम्न मन्त्र में दिखाई देता है—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वतां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥

—ऋ० ७।१०३।१

ब्राह्मण लोग वर्ष भर तक यज्ञ-याग और वेद-प्रचार कार्य में संलग्न होने के कारण सोये हुए से रहते हैं, उन्हें अपने स्वाध्याय के लिए समय नहीं मिलता। जिस समय

गुह आदि आच्छादन कर्म को समाप्त कर और वर्षाकाल के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर कोसलाधिपति भाई भरत ने भी आषाढ़ी की 'पूर्णमासी से किसी व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया होगा।

इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः॥ १७॥

यह वर्षा ऋतु अनेक गुणों से परिपूर्ण है, इस समय सुग्रीव भी सुख अनुभव कर रहा है, क्योंकि उसने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है। उनकी स्त्री भी उन्हें मिल गई है और एक महान् राज्य भी उन्हें प्राप्त हो गया है।

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः।
नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण॥ १८॥

परन्तु हे लक्ष्मण! मेरी भार्या हर ली गई है, विशाल राज्य से मैं वञ्चित हो गया हूँ, अतः धार से कटते हुए नदी-तट के समान इस समय में अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ।

शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः।
रावणश्च महाञ्शत्रुरपारं प्रतिभाति मे॥ १९॥

मेरा शोक उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, वर्षा ऋतु को हटा नहीं सकते और महान् शत्रु रावण से पाला पड़ गया है, अतः मेरे दुःख तथा शोक का समुद्र अगाध प्रतीत हो रहा है।

अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान्।
प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किञ्चिदीरितम्॥ २०॥

वर्षा के कारण मार्गों की दुर्गमता को देख और इस काल को यात्रा के अनुकूल न समझकर ही मैंने जिस समय सुग्रीव प्रणाम कर जाने लगा था, इस विषय में कुछ भी नहीं कहा था।

स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम्।
उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः॥ २१॥

विश्राम के पश्चात् सीता के अन्वेषण का समय उपस्थित होने पर सुग्रीव स्वयं आ जायेंगे। सुग्रीव अपने प्रति किये हुए उपकार का स्मरण रखेंगे इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहं स्थितोऽस्मि शुभलक्षण।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन्॥ २२॥

हे शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण! मैं सुग्रीव की कृपा और नदियों की गमनीयता की प्रतीक्षा करता हुआ वर्षा-समाप्ति तक ठहरा हुआ हूँ।

उपकारेण वीरो हि प्रतिकारेण युज्यते।
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः॥ २३॥

वीर लोग उपकार का बदला अवश्य ही प्रत्युपकार से देते हैं। जो कृतघ्न हो जाते हैं और प्रत्युपकार नहीं

आकाश में मेघमण्डल छा जाते हैं, उस समय इन कठोर व्रतचारी ब्राह्मणों के जीवन में भी नव-ज्योति, नव-चेतना एवं नव-स्फूर्ति का सञ्चार हो जाता है। जिस प्रकार वर्षा के आगमन पर मेंढक प्रसन्न होते हैं इसी प्रकार **'मण्डूकाः'** मननशील ब्राह्मण भी हर्षित होकर इस वर्षा ऋतु में वेदवाणी का विशेषरूप से अध्ययन करते हैं। इस ऋतु में स्वाध्याय की कमी को पूरा कर वे अपने-आपको अगले वर्ष के लिए अधिक योग्य वनाते हैं।

मनुस्मृति से भी इस बात की पुष्टि होती है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥

पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥

—मनु० ४। ९५, ९६

द्विज श्रावणी अथवा भाद्रपद=भादों की पूर्णिमा को उपाकर्म=आरम्भ करके साढ़े चार मास तक वेदों का दत्तचित्त होकर स्वाध्याय करे।

पुष्य नक्षत्रवाली पूर्णिमा (पौषी) में अथवा माघशुक्ल के प्रथम दिन के पूर्वाह्ण में ग्राम के बाहर जाकर वेद का उत्सर्जन (समाप्ति-कर्म) करे।

करते उनसे उपकार करनेवाले का मन फट जाता है।

तेनैवमुक्तः प्रणिधाय लक्ष्मणः
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनम्।
यथोक्तमेतत्तव सर्वमीप्सितं
नरेन्द्र कर्ता न चिराद्धरीश्वरः॥ २४॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी उनके कथ का सम्मान करते हुए बोले—हे नरेन्द्र! आपने जैस कहा है वानरराज सुग्रीव शीघ्र वैसा ही करेंगे।

◀ त्रयोविंशः सर्गः ▶ (२३)

हनुमान् का प्रतिबोधन—

समीक्ष्य विमलं व्योम गतिविद्युद्बलाहकम्।
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान् वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

बादलों की गड़गड़ाहट और विद्युत् की कड़क से रहित विमल आकाश को देखकर हनुमान् वानरराज सुग्रीव के पास जाकर बोले—

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरपि वर्धिता।
मित्राणां संग्रहः शेषस्तं भवान् कर्तुमर्हति॥ २॥

हे कपिराज! आपने राज्य एवं यश प्राप्त किया है और कुल-परम्परा से आई हुई लक्ष्मी को भी आपने बढ़ाया है, अब आपको उचित है कि अपने मित्र का जो कार्य करना शेष है, उसे आप पूर्ण करें।

यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चाभिवर्धते॥ ३॥

समय को जाननेवाला जो पुरुष अपने मित्रों के साथ उत्तम व्यवहार करता है उसका राज्य, यश और प्रताप उत्तरोत्तर बढ़ता है।

यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप।
समवेतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते॥ ४॥

हे पृथिवीनाथ! जिसका कोश, सेना, मित्र और आत्मा पर समान रूप से प्रेम रहता है वह महान् राज्य का उपभोग करता है।

तद्भवान् वृत्तसम्पन्नः स्थितः पथि निरत्यये।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति॥ ५॥

आप सदाचार सम्पन्न हैं और सन्मार्ग पर आरूढ़ हैं, अतः आपको मित्र के प्रतिज्ञात कार्य को भली प्रकार सम्पन्न करना चाहिए।

सन्त्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते।
सम्भ्रमाद्धि कृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते॥ ६॥

जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण कामों को छोड़कर मित्र के कार्य का सम्पादन नहीं करता, अपितु मोह में फँसने के कारण अन्य कार्यों में विशेष उत्साह दिखाता है वह अनर्थ में फँस जाता है।

यस्तु कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते॥ ७॥

जो व्यक्ति समय के व्यतीत हो जाने पर मित्र के कार्य में प्रवृत्त होता है, वह सिरतोड़ परिश्रम करने पर भी मित्र के कार्य को पूर्ण नहीं कर सकता।

यदिदं वीर कार्यं नो मित्रकार्यमरिन्दम।
क्रियतां राघवस्यैतद्वैदेह्याः परिमार्गणम्॥ ८॥

हे रिपुदमन! मित्र-कार्य का समय अब बीता ही चाहता है, अतः आप सीता के अन्वेषणरूपी राम के कार्य को आरम्भ कर दीजिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निवेदितम्।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम्॥ ९॥

हनुमान्‌जी के समयोचित और उत्तमरूप से कहे हुए वचनों को सुनकर बल-बुद्धि-सम्पन्न कपिराज सुग्रीव ने राम-कार्य को शीघ्र ही कर डालने का निश्चय किया।

स संदिदेशाभिमतं नीलं नित्यकृतोद्यमम्।
दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे॥ १०॥

महाराज सुग्रीव ने निरन्तर उद्योग में संलग्न

रहनेवाले नील नामक सेनापति को सम्पूर्ण दिशाओं से सैन्य-संग्रह करने का आदेश दिया।

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो
भवान् ममाज्ञामधिकृत्य निश्चिताम्।
इति व्यवस्थां, हरिपुङ्गवेश्वरो
विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान्॥ ११॥

हे नील! मेरी आज्ञा से अंगद को अपने साथ लेकर हमारे अधीन जो बड़े-बूढ़े वानर हैं उनके पास स्वयं जाओ। कपिप्रवर, पराक्रमी सुग्रीव इस प्रकार की व्यवस्था कर राजभवन में चले गये।

➤ चतुर्विंशः सर्गः ➤ (२४)

शरद्-ऋतु-वर्णन—

दृष्ट्वा च विमलं व्योम विमुक्ते गगने घनैः।
उवाच लक्ष्मणं रामो मैथिलीमनु चिन्तयन्॥ १॥

मेघों से रहित विमल आकाश को देखकर कमलनयनी सीता का स्मरण करते हुए श्रीराम लक्ष्मणजी से बोले—

तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुन्धराम्।
निर्वर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः॥ २॥

हे लक्ष्मण! देखो, इन्द्र ने अपने जल से सम्पूर्ण पृथिवी को तृप्त कर और अन्न को पकाकर अपना सब कार्य पूरा कर दिया है।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः।
विसृज्य सलिलं मेघाः परिश्रान्ता नृपात्मज॥ ३॥

हे राजकुमार लक्ष्मण! गम्भीर गर्जन करनेवाले मेघ भी पर्वतों, वृक्षों और नगरों पर जल की वृष्टि कर अब शान्त हो गये हैं।

नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृतो दिशो दश।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः॥ ४॥

नील कमल के पत्ते की भाँति श्याम वर्ण मेघ दशों दिशाओं को हरियाली से परिपूर्ण कर मदहीन हाथियों की भाँति शान्त हो गये हैं।

घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसाऽनघ॥ ५॥

हे निष्पाप लक्ष्मण! अब बादलों की गड़गड़ाहट, हाथियों की चिंघाड़, मयूरों की कूक और झरनों का कल-कल नाद भी शान्त हो गया है।

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु
गवां समूहेषु च दर्पितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु
श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता॥ ६॥

देखो, यह शरत्कालीन शोभा मतवाले हाथियों की पंक्ति में, उन्मत्त साँड़ों के झुण्ड में और निर्मल जलवाली नदियों में अनेक प्रकार से विभक्त होकर अत्यन्त सुशोभित हो रही है।

व्यभ्रं नभः शस्त्रविधौतवर्णं
कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति
तमो विमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः॥ ७॥

शस्त्र=तलवार के वर्ण की भाँति आकाश-मण्डल चमचमा रहा है। नदियों का जल अल्प हो गया है और उनका प्रवाह मन्द पड़ गया है, कमल के फूलों की गन्ध से सुवासित शीतल वायु बह रही है। समस्त दिशाएँ अन्धकार से रहित होकर प्रकाशित हो रही हैं।

सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का
भूमिः समुत्पादितसान्द्ररेणुः।
अन्योन्यवैरामर्षायुताना—
मुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम्॥ ८॥

सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से कीचड़ सूखकर नष्ट हो गई है, भूमि ने घनी धूल को उत्पन्न कर दिया है। परस्पर वैर रखनेवाले राजाओं का उद्योग समय[१] आ गया है।

जलं प्रसन्नं कुमुदं प्रभासं
क्रौञ्चस्वनः शालिवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्॥ ९॥

जल निर्मल हो गया है, कमल खिल गये हैं, क्रौञ्चपक्षी का शब्द होने लगा है, खेतों में धान पक गये हैं, सेवन करने योग्य मनोरम वायु बह रहा है, बादलों से रहित चन्द्रमण्डल विमल हो गया है, इन सभी लक्षणों से वर्षाकाल की समाप्ति सूचित हो रही है।

अन्योन्यं बद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः॥ १०॥

हे सौम्य! एक-दूसरे से वैर रखनेवाले विजय-अभिलाषी राजाओं की युद्ध-यात्रा के उद्योग का यही समय है।

इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथाविधम्॥ ११॥

हे राजकुमार! विजय-अभिलाषी राजाओं के लिए यह यात्रा का प्रधान समय आ गया है, परन्तु मैं न तो सुग्रीव को देखता हूँ और न सीताजी के अन्वेषण के लिए कोई तैयारी ही देखता हूँ।

प्रियाविहने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते।
कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण॥ १२॥

हे लक्ष्मण! देखो, प्राणप्रिया से वियुक्त, अत्यन्त दुःखी, राज्य से च्युत और गृह से निर्वासित मेरे ऊपर सुग्रीव को दया नहीं आती।

स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते॥ १३॥

देखो, सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण के लिए समय की अवधि तो निश्चित की थी, परन्तु इस समय स्वयं सफल मनोरथ होने के कारण वह दुर्मति सुग्रीव चेतता नहीं है।

स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुङ्गवम्।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम॥ १४॥

हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा में जाओ ग्राम्य सुखों (भोग विलास) में आसक्त मूर्ख कपिराज सुग्रीव को मेरी ओर से कहो—

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥ १५॥

जो मनुष्य बल-पौरुष युक्त एवं पूर्व-उपकारी अर्थियों को प्रतिज्ञापूर्वक आश्वासन देकर उसे भंग करता है वह संसार में अधम पुरुष माना जाता है।

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ १६॥

इसके विपरीत जो वीर पुरुष भली अथवा बुरी जो भी प्रतिज्ञा कर ली उसे सत्यतापूर्वक निभाता है वह पुरुषोत्तम होता है।

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥ १७॥

अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर जो पुरुष अपने मित्र के कार्य को नहीं करते वे कृतघ्न होते हैं और ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनके मांस को मांसाहारी पक्षी भी नहीं खाते।

नूनं काञ्चनपृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे।
द्रष्टुमिच्छति चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम्॥ १८॥

सुग्रीव से कहना कि तू क्या स्वर्ण की पीठवाले, विद्युत् के समान देदीप्यमान, चिल्ला चढ़ाये हुए मेरे धनुष को संग्राम-भूमि में देखना चाहता है।

न च सङ्कुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥ १९॥

१. इस वर्णन से 'विजयादशमी' पर्व की सूचना ध्वनित होती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् विजयादशमी के दिन राजा लोग सीमा-उल्लंघन किया करते थे और अपने शत्रुओं पर आक्रमण किया करते थे।

उससे यह भी कहना कि हे सुग्रीव! मरने के पश्चात् बाली जिस मार्ग से गया है वह मार्ग संकुचित सकरा अथवा बन्द नहीं हो गया है, अतः अपनी प्रतिज्ञा का दृढ़तापूर्वक पालन करो, बाली के पथ का अनुसरण मत करो।

एक एव रणे बाली शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्॥ २०॥

उससे यह भी कहना कि बाली को तो मैंने संग्राम में अपने बाण से अकेले को ही मारा था, परन्तु प्रतिज्ञा भ्रष्ट तुम जैसे अनृतवादी को तो मैं बन्धु बान्धवोंसहित मारूँगा।

तदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ।
तत्तद्ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः॥ २१॥

हे नरश्रेष्ठ! इन बातों के अतिरिक्त कार्यसिद्धि के लिए जो जो बातें तुम्हें हितकारी लगें वे सुग्रीव से कहो। अब तुम शीघ्र जाओ, समय न बीतने पाये।

❮ पञ्चविंशः सर्गः ❯ (२५)

क्रुद्ध लक्ष्मण का किष्किन्धा में पहुँचना और तारा का उसे शान्त करना—

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात्॥ १॥

शत्रुहन्ता वीर लक्ष्मण सुग्रीव के लिए श्रीराम का आदेश लेकर, उनकी आज्ञा से अत्यन्त रमणीक किष्किन्धा पुरी में प्रविष्ट हुए।

द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः॥ २॥

वहाँ द्वार पर खड़े हुए विशालकाय एवं महा बलवान् वानर लक्ष्मणजी को देखते ही हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

स तां रत्नमयीं श्रीमान्दिव्यां पुष्पितकाननाम्।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम्॥ ३॥

श्रीमान् लक्ष्मण ने रत्नों से सुशोभित, दिव्य-पुष्पोंवाले उद्यानों से युक्त, अनेक उत्तम वस्तुओं से परिपूर्ण, विशाल एवं मनोहारी किष्किन्धा नगरी को देखा।

हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानापण्योपशोभिताम्।
सर्वकालफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम्॥ ४॥

वह नगरी विशाल राजमहलों से परिपूर्ण, देवगृहों=यज्ञशालाओं से युक्त, अनेक प्रकार के बाजारोंवाली, सब ऋतुओं में फल देनेवाले और पुष्पित वृक्षों से सुशोभित थी।

अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च।
गवयस्य गवाक्षस्य सूर्याक्षस्य हनुमतः॥ ५॥
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम्।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः॥ ६॥

उस नगरी में राजमार्ग के दोनों ओर लक्ष्मणजी ने अंगद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, सूर्याक्ष, हनुमान् आदि प्रधान वानरों के अति सुन्दर और दृढ़ भवनों को देखा।

पाण्डुराभ्रप्रकाशानि दिव्यमाल्ययुतानि च।
प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च॥ ७॥

वे भवन श्वेत मेघों के समान प्रकाशमान तथा गन्ध और मालाओं से सुभूषित थे। वे गृह धन-धान्य से परिपूर्ण और सुन्दर स्त्रियों से शोभित थे।

पाण्डुरेण तु सालेन परिक्षिप्तं दुरासदम्।
वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम्॥ ८॥

(आगे चलकर लक्ष्मणजी ने) श्वेत पर्वतों से घिरे हुए, दुर्गमनीय और इन्द्र के प्रासाद के समान भव्य वानरेन्द्र सुग्रीव के गृह को देखा।

सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः।
अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः॥ ९॥

लक्ष्मण ने वानरेन्द्र सुग्रीव के रमणीय राजमहल में बिना किसी रुकावट के ऐसे ही प्रवेश किया जैसे

महामेघ-माला में सूर्य प्रवेश करता है।

स सप्तकक्ष्या धर्मात्मा नानाजनसमाकुलाः।
प्रविश्य सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत्॥ १०॥

वानरों से भरी-पूरी और अत्यन्त सुरक्षित सात ड्योढ़ियों को पारकर लक्ष्मणजी ने सुग्रीव के विशाल अन्तःपुर को देखा।

हेमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्रोपशोभितम्॥ ११॥

अन्तःपुर में जहाँ तहाँ सोने-चाँदी के पलंग, अनेक प्रकार के सुन्दर आसन और बहुमूल्य बिछौनों को भी लक्ष्मणजी ने देखा।

प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वरम्।
तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समगीतपदाक्षरम्॥ १२॥

अन्तःपुर में प्रवेश करते ही लक्ष्मणजी ने मधुर स्वर में, ताल और लय से तथा वीणा के ऊपर गाया जानेवाला गाना सुना।

बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः।
स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः॥ १३॥

लक्ष्मणजी ने सुग्रीव के अन्तःपुर में रूप और यौवन के मद में मस्त बहुत-सी और विविध आकार प्रकार की स्त्रियाँ देखीं।

कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा।
सन्निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्॥ १४॥

राजमहल की स्त्रियों के नूपुरों-बिछवों और काञ्ची-तगड़ी की मनोरम झंकार को सुनकर श्रीमान् सुमित्रानन्दन लक्ष्मण लज्जित हो गये।

रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम्।
चकार ज्यावनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन्॥ १५॥

आभूषणों की झंकार सुनकर लक्ष्मण रोष के वेग से अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने धनुष की प्रत्यञ्चा को ऐसा टंकारा कि उस टंकार से सारी दिशाएँ गुञ्जायमान हो गईं।

चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः।
तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः॥ १६॥

चरित्ररूपी आभूषण से समलंकृत महाबाहु लक्ष्मण, जो राम के शोक से स्वयं भी दुःखी हो रहे थे और आगे न जा सके तथा वहीं एकान्त स्थान देखकर खड़े हो गये।

तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
विज्ञायाऽऽगमनं त्रस्तः संचचाल वरासनात्॥ १७॥

वानरराज सुग्रीव उस धनुष की टंकार को सुनकर जान गये कि लक्ष्मणजी आ पहुँचे हैं, अतः वे अत्यन्त भयभीत होकर अपना बहुमूल्यासन छोड़कर खड़े हो गये।

ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम्।
उवाच हितमव्यग्रस्त्राससम्भ्रान्तमानसः॥ १८॥

तत्पश्चात् भय से उद्भ्रान्त सुग्रीव प्रियदर्शना तारा से अपने हित के लिए धैर्यपूर्वक ये वचन बोले—

किं नु तत्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः।
सरोष इव सम्प्राप्तो येनायं राघवानुजः॥ १९॥

हे सुन्दर भौंहोंवाली! लक्ष्मणजी के क्रुद्ध होने का कारण क्या है? लक्ष्मणजी तो स्वभाव से ही कोमलचित्त हैं, फिर ये क्रुद्ध होकर क्यों आये हैं? मैं इसका निश्चय नहीं कर सका हूँ?

यदस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किञ्चिदप्रियम्।
तद्बुद्ध्या सम्प्रधार्याशु क्षिप्रमर्हसि भाषितुम्॥ २०॥

यदि तुम्हारी समझ में हम लोगों से राम या लक्ष्मण का कोई अपराध हो गया हो तो विचार कर उसके लिए शीघ्र कोई उपाय बतलाओ।

अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि॥ २१॥

अथवा हे भामिनि! तुम स्वयं लक्ष्मणजी के पास जाकर उनसे मिलो तथा प्रिय एवं शान्तिमय वचनों से समझा-बुझाकर उन्हें प्रसन्न करो।

त्वद्दर्शनविशुद्धात्मा न स कोपं करिष्यति।
न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्॥ २२॥

लक्ष्मणजी शुद्धान्तःकरणवाले हैं, अतः तुम्हें देखकर वे कुपित नहीं होंगे, क्योंकि महात्मा लोग

स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते।

त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम्।
ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिन्दमम्॥ २३॥

तुम्हारे समझाने-बुझाने पर जब उनका क्रोध शान्त हो जायेगा और वे प्रसन्न हो जायेंगे तब मैं उन शत्रुहन्ता, कमलनयन लक्ष्मणजी से भेंट करूँगा।

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी
प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा।
सुलक्षणा लक्ष्मणसन्निधानं
जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः॥ २४॥

(सुग्रीव के ऐसा कहने पर) मद की मादकता से जिसकी आँखें चढ़ी हुई हैं, जिसकी तगड़ी और स्वर्णहार की लड़ें अस्त-व्यस्त होकर लटक रही हैं, नशे के कारण जिसके पैर लड़खड़ा रहे हैं, ऐसी उत्तम लक्षणोंवाली तारा अत्यन्त नम्र अवस्था में लक्ष्मणजी के समीप पहुँची।

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं
तस्थावुदासीनतया महात्मा।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः
स्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः॥ २५॥

कपिराज सुग्रीव की धर्मपत्नी तारा को देखकर उदासीन भाव को प्रकट करते हुए महात्मा राजकुमार लक्ष्मण ने मुख नीचा कर लिया। स्त्री को अपने समीप आई हुई देखकर उनका क्रोध भी शान्त हो गया।

सा पानयोगाद्विनिवृत्तलज्जा
दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं
वाक्यं महार्थं परिसान्त्वपूर्वम्॥ २६॥

मदपान के कारण लज्जाहीन और राजकुमार लक्ष्मणजी की कृपापूर्ण दृष्टि को देखकर तारा प्रेमपूर्वक, गर्वमिश्रित एवं सान्त्वनापूर्वक लक्ष्मणजी से बोली—

किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र
कस्ते न सन्तिष्ठति वाङ्निदेशे।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं
दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः॥ २७॥

हे राजकुमार! आपके क्रुद्ध होने का कारण क्या है? किसने आपकी आज्ञा की अवज्ञा की है? सूखे वृक्षोंवाले वन में आग लगाकर कौन अभागा निर्भय होकर रहना चाहता है?

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितम्।
भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्॥ २८॥

लक्ष्मणजी, तारा के ऐसे स्नेहसिक्त, निर्भीक और सान्त्वनाप्रद वचनों को सुनकर अतिशय स्नेह दिखलाते हुए बोले—

किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः।
भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैनमवबुध्यसे॥ २९॥

धर्म और अर्थ को लुप्त करनेवाला तुम्हारा पति इतना कामासक्त क्यों हो गया है? तुम तो उसकी हितैषिणी हो फिर तुम उसे समझाती क्यों नहीं?

स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः।
व्यतीतांस्तान्मदव्यग्रो विहरन्नावबुध्यते॥ ३०॥

देखो, कपिराज सुग्रीव ने चार मास पश्चात् सीता को ढूँढ़ने की प्रतिज्ञा की थी, वह अवधि समाप्त हो गई, किन्तु भोग-विलास में लिप्त एवं मदमत्त सुग्रीव को इस बात की कोई चिन्ता नहीं है।

न हि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते।
पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते॥ ३१॥

धर्म-अर्थ की सिद्धि के लिए मद्यपान हितकारी नहीं माना जाता, क्योंकि मादक वस्तु के प्रयोग से मनुष्य के धर्म-अर्थ और काम नष्ट हो जाते हैं।

धर्मलोपो महांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः।
अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान्॥ ३२॥

उपकारी के उपकार का यदि प्रत्युपकार न किया जाए तो महान् अधर्म होता है। गुणगान् मित्र के साथ यदि विरोध हो गया या मैत्री टूट गई तो इससे अर्थनाश

होता है—बड़ी भारी हानि होती है।

मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम्।
तद्द्वयं परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम्॥ ३३॥

छल-कपटरहित होकर मित्र का काम पूर्ण करना और अपने सद्व्यवहार से मित्र को सन्मार्ग का पथिक बनाना—ये मित्र के दो प्रशंसित गुण हैं। राजा सुग्रीव ने इन दोनों को त्याग दिया है और वे अपनी मर्यादा में स्थिर नहीं हैं।

तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम्।
यत्कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे तदुदाहर्तुमर्हसि॥ ३४॥

हे कार्यतत्त्वज्ञे तारे! इस समय इस उपस्थित कार्य में हमें आगे क्या करना चाहिए यह तुम्हीं बतलाओ।

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं
निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम्।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये
विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः॥ ३५॥

धर्म-अर्थ के निर्णय से युक्त, विश्वास से पूर्ण, मधुर स्वभाववाले लक्ष्मण के वचनों को सुनकर तारा श्रीराम के उस कार्य के सम्बन्ध में, जिसकी अवधि बीत चुकी थी, विश्वास दिलाती हुई लक्ष्मणजी से बोली—

न कोपकालः क्षितिपालपुत्र
न चातिकोपः स्वजने विधेयः।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य
प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम्॥ ३६॥

हे राजकुमार! न तो यह क्रोध करने का समय है और न आत्मीय जनों पर कोप करना ही चाहिए। वीर! आपके कार्य में तत्पर अपने व्यक्तियों से कोई अपराध या प्रमाद भी हो जाए तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

तं कामवृत्तं मम सन्निकृष्टं
कामाभियोगाच्च निवृत्तलज्जम्।
क्षमस्व तावत्परवीरहन्तस्
त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम्॥ ३७॥

हे शत्रुहन्ता! इस समय आप अपने भाई सुग्री‍व को, जो कामासक्त होकर निर्लज्ज हो गया है औ‍र आपके भय से मेरे पास छिपा हुआ है, क्षमा कीजिए।

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम।
कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने॥ ३८॥

हे नरश्रेष्ठ! कामासक्त होने पर भी सुग्रीव ने आपकी कार्यसिद्धि के लिए अपने मन्त्रियों को बहु‍त पहले ही उद्योग करने की आज्ञा दे दी है।

तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्॥ ३९॥

हे महाबाहो! आपने अन्तःपुर में प्रवेश न क‍रके सदाचार की भली-भाँति रक्षा की है। अब आ‍प अन्तःपुर में प्रवेश कीजिए, क्योंकि कपट-रहित मित्रभाव से मित्र की स्त्री को देखना दोष का कारण नहीं है।

तारया चाभ्यनुज्ञातस्त्वरया चापि चोदितः।
प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्त्रमरिन्दमः॥ ४०॥

शत्रुनाशक, विशाल भुजावाले लक्ष्मणजी ने देव‍ी तारा की अनुमति पाने पर और शीघ्रता से भीत‍र चलने के लिए प्रेरित करने पर राजमहल में प्रवेश किया।

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने।
महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसन्निभम्॥ ४१॥

अन्दर जाकर लक्ष्मणजी ने देखा कि सूर्य के समान देदीप्यमान कान्तिवाले सुग्रीव मूल्यवान बिछौनेवाले स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान हैं।

विशेष—पाठकगण इस सर्ग का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें। इस सर्ग में वानर वीरों के रहन-सहन, भव्य-भवनों वस्त्राभूषणों आदि का जो चित्रण किया गया है उससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि हनुमान आदि पुच्छ विशिष्ट आजकल के वानर नहीं थे। वे मनुष्य ही थे। वाल्मीकि ने बाली-सुग्रीव आदि के लिए 'आर्य' विशेषण दिया है। तारा को मन्त्रवित कहा है और हनुमान्‌जी को वेदादि शास्त्रों और व्याकरण

का महापण्डित बताया है। ये लक्षण आजकल के वानरों में नहीं घट सकते। वानरों की इतनी उच्च सभ्यता एवं संस्कृति को देखकर भी उन्हें लाल मुखवाला बन्दर ही मानना अपनी बुद्धि के दिवालियापन को प्रकट करना है।

◀ षड्विंशः सर्गः ▶ (२६)

लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव की भर्त्सना—

सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रविष्टं पुरुषर्षभम्।
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम्॥ १॥

पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजी को अन्तःपुर में आते हुए देखकर कपि-प्रवर सुग्रीव अपने स्वर्णमय सिंहासन को छोड़कर खड़े हो गये।

उत्पतन्तमनुत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः।
सुग्रीवं गगने पूर्णचन्द्रं तारागणा इव॥ २॥

सुग्रीव के खड़े होते ही रुमा प्रभृति राजमहल की सभी स्त्रियाँ उठ खड़ी हुईं। उस समय उन स्त्रियों के मध्य सुग्रीव ऐसे सुशोभित हुए जैसे आकाश में तारों के मध्य चन्द्रमा सुशोभित होता है।

रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम्।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा॥ ३॥

ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान स्त्री-मण्डल के मध्य में रुमा के सहित खड़े हुए सुग्रीव से क्रुद्ध लक्ष्मणजी ने कहा—

सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते॥ ४॥

श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ एवं सत्यवादी राजा ही संसार में पूजनीय होता है।

यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम्।
मिथ्याप्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः॥ ५॥

जो राजा कुमार्गगामी है, उपकारी मित्रों के साथ प्रतिज्ञा करके उसे पूरी नहीं करता, उससे बढ़कर निर्दयी और क्रूर व्यक्ति संसार में कौन होगा?

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते।
आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते॥ ६॥

जो एक घोड़े के लिए झूठ बोलता है उसे सौ घोड़े मारने का पाप लगता है। एक गाय के बारे में जो झूठ बोलता है उसे एक सहस्र गोघात का पाप लगता है और पुरुष के विषय में झूठ बोलने से आत्महत्या और स्वजन-हत्या के बराबर पाप लगता है।

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर॥ ७॥

हे वानरराज! जो व्यक्ति पहले मित्र से अपना प्रयोजन सिद्ध करा ले तथा उस उपकारी मित्र का प्रत्युपकार न करे, वह पुरुष कृतघ्न कहलाता है और मार डालने योग्य है।

गीतोऽयं ब्रह्मणा श्लोकः सर्वलोकनमस्कृतः।
दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तं निबोध प्लवङ्गम॥ ८॥

हे वानर! सबके पूजनीय ब्रह्माजी ने कृतघ्न को देखकर क्रुद्ध होकर जो श्लोक कहा था, उसे तुम सुनो—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ ९॥

सत्पुरुषों के मतानुसार ब्राह्मण के मारनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोरी करनेवाले और व्रतभङ्ग करनेवाले का उद्धार हो सकता है, इनके पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है, किन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर।
पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि तत्॥ १०॥

हे वानर! तुम अनार्य-नीच, कृतघ्न और झूठे हो, क्योंकि श्रीराम के द्वारा अपना काम निकालकर तुम

उनका कार्य नहीं कर रहे हो।

ननु रामकृतार्थेन त्वया रामस्य वानर।
सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता॥ ११॥

हे वानर! जब श्रीराम ने तुम्हारा कार्य कर दिया तब सफल मनोरथ तुम्हें राम के उपकार का स्मरण करते हुए सीताजी के अन्वेषण का प्रयत्न करना चाहिए।

स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः।
न त्वां रामो विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम्॥ १२॥

मिथ्या प्रतिज्ञा करके तुम तो नीच सुख-भोगों में फंसे हुए हो। खेद है श्रीराम मेंढक पकड़ने के लिए मेंढक की बोली बोलनेवाले सर्प के समान तुम्हें पहचान न सके।

महाभागेन रामेण पापः करुणावेदिना।
हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना॥ १३॥

महाभाग, दयालु, महात्मा राम ने तुम जैसे चरित्रहीन, दुष्ट, पापी को वानरों का परम्परागत राज्य दिला दिया।

कृतं चेन्नाभिजानीषे रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि बालिनम्॥ १४॥

यदि तुम अक्लिष्टकर्मा श्रीराम के पूर्वकृत उपकार का विचार न करोगे तो शीघ्र ही तुम उनके बाण से प्राण-त्याग कर बाली से भेंट करोगे।

न च सङ्कुचितः पन्थाः येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगा॥ १५॥

मरने के पश्चात् जिस मार्ग से बाली ने प्रस्थान किया है वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है अतः तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो, बाली के मार्ग का अनुसरण मत करो।

◀ सप्तविंशः सर्गः ▶ (२७)

तारा का लक्ष्मण को शान्त करना—

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा।
अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना॥ १॥

अपने तेज से देदीप्यमान लक्ष्मणजी के ऐसा कहने पर चन्द्रमुखी तारा लक्ष्मणजी से बोली—

नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति।
हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद्विशेषितः॥ २॥

हे लक्ष्मण! आपको ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिएँ। ये वानरों के राजा हैं अतः विशेषकर आपके मुख से ऐसे वचन सुनने के योग्य नहीं हैं।

नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः।
नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः॥ ३॥

हे वीर! यह सुग्रीव न तो कृतघ्न है, न शठ है और न क्रूर है और न कुटिल है।

उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः।
रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे॥ ४॥

हे वीर! राम ने युद्ध में जो कार्य किया है वह अन्यों के लिए दुष्कर है। हे सौम्य! राम के किये हुए उस उपकार को सुग्रीव भूले नहीं हैं।

रामप्रसादात्कीर्तिं च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
प्राप्तवानिह सुग्रीवो रुमां मां च परन्तप॥ ५॥

हे शत्रुसन्तापक! श्रीराम के अनुग्रह से ही सुग्रीव को यश, परम्परागत वानरराज, रुमा और मेरी प्राप्ति हुई है।

सुदुःखं शयितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकालं न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ ५॥

पहले इन्होंने अपनी रात्रियाँ दुःखपूर्वक सोकर बिताई थीं। अब उत्तम सुख को प्राप्त कर भोगविलास में लिप्त सुग्रीव को समय जाता ऐसे ही दिखाई नहीं देता जैसे विश्वामित्र को समय को ज्ञान नहीं रहा था।

घृताच्यां किल संसक्तो दश वर्षाणि लक्ष्मणः।
अहोऽमन्यत धर्मात्मा विश्वामित्रो महामुनिः॥ ६॥

हे लक्ष्मण! विश्वामित्र दस वर्ष तक घृताची[१] अप्सरा के साथ विहार करते रहे। उन महर्षि विश्वामित्र ने उन दस वर्षों को एक दिन के समान ही समझा।

स हि प्राप्तं न जानीते कालं कालविदां वरः।
विश्वामित्रो महातेजाः किं पुनर्यः पृथग्जनः॥ ८॥

जब काल के जाननेवालों में श्रेष्ठ महातेजस्वी विश्वामित्र को ही (विषय-भोग में फंसने के कारण) काल का ज्ञान नहीं रहा, फिर साधारण लोगों की तो बात ही क्या है?

देहधर्मं गतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण।
अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति॥ ९॥

हे लक्ष्मण! शरीर स्वभाव के वशवर्ती, अत्यन्त श्रान्त और कामवासना से अतृप्त सुग्रीव के अपराध को आप श्रीराम से क्षमा करा दें।

रुमां मां कपिराज्यं च धनधान्यवसूनि च।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम॥ १०॥

(सुग्रीव श्रीराम के कार्य को भूले नहीं हैं) मेरा तो यह मत है कि सुग्रीव आवश्यकता पड़ने पर श्रीराम के कार्य के लिए रुमा को, मुझको, वानरों के राज्य को, धन-धान्य और रत्न आदि को भी त्याग देंगे।

समानेष्यति सुग्रीवः सीतया सह राघवम्।
शशाङ्कमिव रोहिण्या निहत्वा रावणं रणे॥ ११॥

सुग्रीव राक्षसाधम रावण को मारकर श्रीराम के साथ सीता को उसी प्रकार लौटा लायेंगे जैसे रोहिणी चन्द्रमा के साथ मिलती है।

त्वत्सहायनिमित्तं वै प्रेषिता हरिपुङ्गवाः।
आनेतुं वानरान् युद्धे सुबहून् हरियूथपान॥ १२॥

संग्राम में आपकी सहायता के लिए कपिराज सुग्रीव ने बहुत से वानर यूथप बुलवाये हैं और उन्हें बुलाने के लिए बहुत-से वानर वीर भेजे हैं।

कृताऽत्र संस्था सौमित्रे सुग्रीवेण यथा पुरा।
अद्य सर्वैरागन्तव्यं जहि कोपमरिन्दम॥ १३॥

हे अरिमर्दन लक्ष्मण! सुग्रीव ने जो व्यवस्था पहले ही से कर रखी है उसके अनुसार उन सब वानरों को आज यहाँ पहुँच जाना चाहिए। आप अपने क्रोध को शान्त करें।

➤ अष्टाविंशः सर्गः ➤ (२८)

सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध—

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
मृदुस्वभावः प्रतिजग्राह तद्वचः॥ १॥

जब तारा ने इस प्रकार विनीत भाव से धर्मयुक्त वचन कहे तब कोमल स्वभाव लक्ष्मण ने उसकी बात मान ली तथा अपने क्रोध को शान्त कर लिया।

स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः सम्प्रहर्षयन्॥ २॥

जब लक्ष्मणजी शान्त हो गये तब वानरश्रेष्ठ सुग्रीव महाबली लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिए नम्रतापूर्वक उनसे बोले—

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शावश्तम्।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया॥ ३॥

हे लक्ष्मण! मैंने राम की कृपा से खोई हुई अपनी श्रीरूपा स्त्री, यश और परम्परागत कपिराज्य को पुनः प्राप्त किया है।

कः शक्तस्तस्य देवस्य विख्यातस्य स्वकर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज॥ ४॥

हे राजकुमार! अपने (अद्भुत) कर्मों द्वारा संसार में प्रसिद्ध, देव-स्वरूप श्रीराम के उपकार का किञ्चित्-

१. इतिहास में मेनका नाम आया है। हो सकता है, यहाँ घृताची से तारा का अभिप्राय मेनका से ही हो।

मात्र बदला चुकाने में भी कौन समर्थ हो सकता है?

सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा॥ ५॥

धर्मात्मा श्रीराम अपने तेज और पराक्रम से रावण का वध करेंगे तथा जानकी को प्राप्त करेंगे मैं तो इन कार्यों में नाममात्र को उनका सहायक रहूँगा।

सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः।
शैलश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः॥ ६॥

जिस नर-पुङ्गव ने अपने एक ही बाण से सात साल वृक्षों को वेध कर पर्वत और भूमि को भी विदीर्ण कर डाला उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता ही क्या है?

धनुर्विस्फारमानस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण।
सशैला कम्पिता भूमिः सहायैस्तस्य किं नु वै॥ ६॥

हे लक्ष्मण! जिसके धनुष की प्रत्यञ्चा=डोरी की टंकार से पर्वतों सहित यह पृथिवी भी काँप उठती है उसे सहायकों की क्या आवश्यकता है?

अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ।
गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम्॥ ८॥

हे नरश्रेष्ठ! जिस समय अपने अनुगामियों के साथ नरेन्द्र श्रीराम वैरी रावण का वध करने के लिए संग्राम-यात्रा करेंगे, तब मैं भी उनके पीछे हो लूँगा।

यदि किञ्चिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति॥ ६॥

यदि विश्वास अथवा स्नेह के वशवर्ती हो इस सेवक से कोई अपराध हो भी गया हो तो वे उस अपराध को क्षमा कर दें क्योंकि ऐसा सेवक तो विरला ही होता है जिससे स्वामी का कोई अपराध न होता हो।

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चैनमुवाच ह॥ १०॥

महात्मा सुग्रीव के ऐसे मनोहारी वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेम-पूर्वक सुग्रीव से बोले—

सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः॥ ११॥

हे कपिराज! आप जैसे विनम्र और स्नेह युक्त सहायक को पाकर मेरे ज्येष्ठ भाई श्रीराम हर प्रकार से आश्रययुक्त एवं सनाथ हैं।

यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमार्जवम्।
अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम्॥ १२॥

हे सुग्रीव! जैसा आपका प्रताप है, जैसा शुद्ध व्यवहार है और जैसी आपमें सरलता है उससे तुम इस वानर राज्य की उत्तम राजलक्ष्मी को भोगने के सर्वथा योग्य हो।

सहायेन च सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान्।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः॥ १३॥

हे सम्राट् सुग्रीव! आपकी अनुपम सहायता से प्रतापी श्री रामचन्द्रजी संग्राम में शीघ्र ही वैरी रावण का सपरिवार वध करेंगे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम्॥ १४॥

हे सुग्रीव! तुम मित्रधर्म को जाननेवाले, किये हुए उपकार को माननेवाले और रणक्षेत्र में पीठ न दिखानेवाले हो। आप जो कुछ रहे हैं वह सब उचित ही है।

किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्राम त्वं मया सह।
सान्त्वयस्व वयस्यं त्वं भार्याहरणकर्शितम्॥ १५॥

परन्तु हे वीर! अब आप शीघ्र ही मेरे साथ इस स्थान से चलें और अपनी पत्नी के हरण से दुःखी अपने मित्र श्रीराम को सान्त्वना प्रदान करें।

यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तच्च त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ १६॥

हे मित्र! शोक से व्याकुल श्रीराम की बातें सुनकर मैंने आपसे जो कठोर वचन कहे हैं उनके लिए आप मुझे क्षमा करें।

◀ एकोनत्रिंशः सर्गः ▶ (२९)

सुग्रीव का वानरी सेना को बुलाने का आदेश देना—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
हनुमन्तं स्थितं पार्श्वे सचिवं त्विदमब्रवीत्॥ १॥

महात्मा लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सुग्रीव समीप ही खड़े हुए अपने सचिव हनुमान् से बोले—

वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च।
तापसानां च रम्येषु वनान्तेषु समन्ततः॥ २॥
तांस्तान् समानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान्।
सामदानादिभिः सर्वैराशु प्रेषय वानरान्॥ ३॥

विशाल रमणीय और सुगन्धित वनों में रहनेवाले, तपस्वियों के मनोहर आश्रमों में रहनेवाले और वनप्रान्तों में पृथक्-पृथक् रहनेवाले—सारांश यह कि पृथिवी-मण्डल पर जहाँ-जहाँ भी वानर हों उन सभी को साम-दान आदि सम्पूर्ण प्रयत्नों से शीघ्र यहाँ बुला लो।

प्रेषिताः प्रथमं ये च मया दूता महाजवाः।
त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं हरीन् सम्प्रेषयापरान्॥ ४॥

मैंने शीघ्रगामी जिन दूतों को पहले भेजा था उनसे अपना कार्य पूर्ण कराने के लिए तुम अन्य वानरों को भेजो।

ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः।
इहानयस्व तान् सर्वान् शीघ्रं तु मम शासनात्॥ ५॥

जो वानर भोग-विलास में आसक्त हैं अथवा जो दीर्घसूत्री- थोड़े समय के कार्य को देर में करनेवाले हैं, उन सभी को मेरी आज्ञा सुनाकर तुरन्त यहाँ बुलवा लो।

अहोभिर्दशभिर्ये हि नागच्छन्ति ममाज्ञया।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः॥ ६॥

जो वानर मेरी आज्ञा से दस दिन के भीतर यहाँ न आ जाएँ ऐसे राजाज्ञा भङ्ग करनेवाले दुष्ट-आत्माओं को तुम प्राणदण्ड दे सकते हो।

तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान् प्रेषयामास वानरान्॥ ७॥

वानरराज सुग्रीव का ऐसा आदेश पाकर पवनकुमार हनुमान्‌जी ने सब दिशाओं में पराक्रमी वानर भेज दिये।

मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः।
सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयदर्शिनः॥ ८॥

यमराज के समान कठोर दण्ड देनेवाले कपिराज सुग्रीव की आज्ञा को सुनकर और उसके भय से संत्रस्त होकर सब वानर सुग्रीव के पास जाने के लिए प्रस्थानित हुए।

वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाजवाः।
आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम्॥ ९॥

किष्किन्धा में वनों से, गिरी-गुहाओं और नदियों के तटों से महाबलवान् वानरी सेनाएँ ऐसे आईं कि उनके चरणों से उठी हुई धूलि से सूर्य आच्छादित हो गया।

◀ त्रिंशः सर्गः ▶ (३०)

सुग्रीव का राम के पास जाना—

स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं सम्प्रहर्षयन्॥ १॥

(जब सुग्रीव हनुमान्‌जी को आज्ञा दे चुके) तब लक्ष्मणजी सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए उन महाबली कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से विनम्र भाव से बोले—

किष्किन्धाया विनिष्काम यदि ते सौम्य रोचते।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम्॥ २॥

सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह।
एवं भवतु गच्छावः स्थेयं त्वच्छासने मया॥ ३॥

हे सौम्य! यदि आप पसन्द करें तो अब हम लोग किष्किन्धा से प्रस्थान करें। लक्ष्मणजी के इस मनोहारी वचन को सुनकर राजा सुग्रीव प्रसन्न होते हुए बोले—''बहुत अच्छा । आइए हम लोग चलें। मैं तो आपका आज्ञा पालक हूँ।''

तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
विसर्जयामास तदा तारामन्याश्च योषितः॥ ४॥

शुभ-लक्षणयुक्त लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर सुग्रीव ने तारा तथा अन्य स्त्रियों को वहाँ से अन्तःपुर जाने के लिए विदा किया।

एहीत्युच्चैर्हरिवरान् सुग्रीवः समुदाहरत्।
तानुवाच ततः प्राप्तान् राजाऽर्कसदृशप्रभः॥ ५॥

स्त्रियों को विदाकर सुग्रीव ने कुछ श्रेष्ठ वानरों को—''यहाँ आओ''—ऐसा कहकर बुलाया। जब वे लोग आ गये तब सूर्य के समान देदीप्यमान कान्ति-वाले सुग्रीव ने उन्हें यह आदेश दिया—

उपस्थापयत क्षिप्रं शिबिकां मम वानराः।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः॥ ६॥
समुपस्थापयामासुः शिबिकां प्रियदर्शनाम्।
तामुपस्थापि दृष्ट्वा शिबिकां वानराधिपः॥ ७॥
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमित्युक्त्वा काञ्चनं यानम्।
बृहद्भिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः॥ ८॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम्॥ ९॥

हे वानरो! शीघ्र जाकर मेरी पालकी ले आओ। सुग्रीव का आदेश पाकर शीघ्रगामी और पराक्रमी वानरों ने अति सुन्दर एवं मनोहर पालकी लाकर उपस्थित कर दी। पालकी को वहाँ उपस्थित देख कपिराज सुग्रीव ने लक्ष्मणजी से कहा—आप जल्दी से इस पर सवार हों। लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर सुग्रीव लक्ष्मणजी के साथ उस स्वर्णमय पालकी पर सवार हुए जिसे उठाने के लिए बड़े-बड़े वानर नियुक्त थे। सुग्रीव के मस्तक पर राजकीय श्वेत छत्र लगाया गया। इस प्रकार उत्कृष्ट राजलक्ष्मी से युक्त होकर वानरराज सुग्रीव अन्तःपुर से बाहर निकले।

स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः॥ १०॥

तीक्ष्ण स्वभाववाले और शस्त्रधारी अपने अङ्गरक्षकों से घिरे हुए राजा सुग्रीव उस स्थान की ओर चले जहाँ श्रीराम निवास कर रहे थे।

स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम्।
अवातरन् महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः॥ ११॥

जहाँ श्रीराम ठहरे हुए थे उस उत्तम स्थान पर पहुँचकर महातेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मण सहित पालकी से उतर पड़े।

आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे॥ १२॥

पालकी से उतरकर सुग्रीव हाथ जोड़कर राम के सामने जाकर खड़े हो गये। श्रीराम ने भी उन्हें अत्यन्त प्रेम के साथ और सम्मानपूर्वक अपने हृदय से लगाया।

परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत्।
तं निषण्णं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीद्वचः॥ १३॥

सुग्रीव का आलिंगन करने के पश्चात् धर्मात्मा श्रीराम ने उन्हें बैठने के लिए कहा। सुग्रीव को भूमि पर बैठे हुए देखकर श्रीराम ने कहना प्रारम्भ किया—

धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम॥ १४॥

हे कपिश्रेष्ठ! जो राजा अपने समय का विभाग कर धर्म-अर्थ और काम सम्बन्धी कार्य करता है वही राजा राज्य करने योग्य होता है।

हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते॥ १५॥

जो राजा धर्म और अर्थ का परित्याग कर केवल काम का ही सेवन करता है वह वृक्ष की डाली पर सोनेवाले उस पुरुष के समान है जो पतन के पश्चात् ही उसके कटु परिणाम को समझता है।

अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः।
त्रिवर्गफलभोक्ता तु राजा धर्मेण युज्यते॥ १६॥

जो राजा शत्रु के वध में तत्पर और मित्रों के संग्रह में कटिबद्ध रहता है वह राजा धर्म अर्थ एवं काम रूपी त्रिवर्ग को भोगता है और धर्माधिकारी कहलाता है।

उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुविनाशन।
सञ्चिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः॥ १७॥

हे शत्रुसंहारक वानरराज! यह उद्योग काल आ पहुँचा है, अतः आप अपने वानर मन्त्रियों के साथ इस विषय पर विचार विमर्श करो।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत्।
कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां स दूषकः॥ १८॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव बोला—जो उपकार के बदले में प्रत्युपकार नहीं करता वह मनुष्यों में धर्म ध्वंसक समझा जाता है। (मैं ऐसा धर्मध्वंसक नहीं हूँ।)

एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन।
प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान्॥ १९॥

हे शत्रुञ्जय! ये सैकड़ों मुख्य वानरवीर पृथिवी के समरदुर्जय सैनिकों को साथ लेकर यहाँ आये हैं।

ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं ये सबान्धवम्।
निहत्य रावणं संख्ये ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम्॥ २०॥

हे राजन्! ये सब सीता की खोज में जायेंगे। ये संग्राम में सपरिवार रावण को मारकर मैथिली को आपके पास ले आयेंगे।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता-अन्वेषण के लिए भेजना—

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

वानर सुग्रीव के ऐसा कहने पर दशरथनन्दन श्रीराम ने सुग्रीव को गले लगाकर यह कहा—

ज्ञायतां मम वैदेही यदि जीवति वा न वा।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन् वसति रावणः॥ २॥

हे महामति! सबसे पहले तो इस बात का पता लगाना है कि सीता जीवित भी है या नहीं। तत्पश्चात् उस देश का पता लगाना है जहाँ रावण रहता है।

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन् काले सह त्वया॥ ३॥

सीता के जीवित होने और रावण का पता लग जाने पर मैं तुम्हारे साथ मिलकर समयानुकूल कार्य का निश्चय करूँगा।

नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेश न लक्ष्मणः।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर॥ ४॥

हे वानरेश! सीता के अन्वेषण-कार्य में न मैं समर्थ हूँ और न लक्ष्मण। हे कपीश्वर! यह कार्य तुम्हीं को करना है और इस कार्य में तुम्हारी ही क्षमता है।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम्।
अब्रवीद् रामसान्निध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः॥ ५॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने महामति राम और लक्ष्मण के समक्ष विनत नामक वानर से कहा—

सोमसूर्यात्मजैः सार्धं वानरर्वानरोत्तम।
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम्॥ ६॥

हे वानरोत्तम! चन्द्र और सूर्य के समान सौम्य एवं प्रतापी वानरों को साथ लेकर तुम अनेक पर्वतों एवं वनोंवाली पूर्व दिशा की ओर जाओ।

तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
मार्गध्वं गिरिशृङ्गेषु वनेषु च नदीषु च॥ ७॥

पूर्व दिशा में पर्वत शिखरों पर, वनों और नदियों को ढूँढ़ते हुए विदेहराजकुमारी सीता का और रावण के निवास-स्थान का पता लगाओ।

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम॥ ८॥

देखो, सीता को खोजते हुए उदयाचल तक जाओ और सीता तथा रावण का पता लगाकर एक मास के भीतर लौट आओ।

ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः सन्निवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्॥ ९॥

एक मास से अधिक समय मत लगाना। जो इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा वह प्राणदण्ड का अधिकारी होगा। सावधान! सीता का पता लगाकर और सफल मनोरथ होकर ही लौटना।

◀ द्वात्रिंशः सर्गः ▶ (३२)

दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में वानरों को भेजना—

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम्।
दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान्॥ १॥

कपिराज सुग्रीव ने उस विशाल वानरी सेना को पूर्व दिशा में भेजकर, कार्यसाधन में परीक्षित वानरों को दक्षिण दिशा में भेजा।

नीलमग्निसुतं चैव हनुमन्तं च वानरम्।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महाबलम्॥ २॥
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणवृषभं तथा।
मैन्दं च द्विविदं चैव विजयं गन्धमादनम्॥ ३॥
अङ्गदप्रमुखान् वीरः कपिगणेश्वरः।
वेगविक्रमसम्पन्नान् संदिदेश विशेषवित्॥ ४॥

उस दल में अग्निपुत्र नील, वानरश्रेष्ठ हनुमान्, अत्यन्त पराक्रमी पितामह-पुत्र जाम्बवान, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, द्विविद, विजय, गन्धमादन, अंगद आदि प्रमुख वानर वीरों को—जो गति, वेग और पराक्रम सम्पन्न थे, सब देशों को विशेष रूप से जाननेवाले कपिराज सुग्रीव ने यह संदेश दिया—

यस्तु मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति॥ ५॥

जो कोई व्यक्ति एक मास के भीतर लौटकर सब से पहले यह कहेगा कि—"मैंने सीता को देखा है"—वह मेरे ही समान वैभव पाकर अनेक प्रकार के भोगों और सुखों का उपभोग करता हुआ विहार करेगा।

ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः।
कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति॥ ६॥

उस सीता के सन्देश-वाहक से बढ़कर मेरा और कोई प्राण-प्रिय न होगा अनेक अपराध करने पर भी वह मेरा बन्धु ही होगा।[१]

मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्मालान्महाबलान्।
ऋषिपुत्रांश्च तान् सर्वान् प्रतीचीमादिशद्दिशम्॥ ७॥

(उस दल को दक्षिण दिशा में भेज सुग्रीव ने) महर्षि मरीचि के पुत्रों को जिन्होंने सुन्दर मालाएँ धारण की हुई थीं और जो महाबलवान् थे—उन सभी ऋषिपुत्रों को पश्चिम दिशा में जाने का आदेश दिया और कहा—

द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां कपीनां कपिसत्तमाः।
[२]सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गत॥ ८॥

हे वीर सैनिको! तुम दो सहस्त्र सैनिकों को अपने साथ लेकर सुषेण के नेतृत्व में जनकनन्दिनी सीता को ढूँढ़ो।

१. कपिराज सुग्रीव ने अपनी इस प्रतिज्ञा को उस समय अक्षरशः पूर्ण किया था जब वानरगण सीता का पता लगा कर किष्किन्धा लौटे और सुग्रीव के अतिप्रिय मधुवन नामक उद्यान का विध्वंस किया था।

२. यह सुषेण तारा का पिता था।

अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत।
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम॥ ९॥

तुम लोग अस्ताचल तक जाकर एक मास पूरा होते होते लौट आना। एक मास से अधिक मत लगाना। जो एक मास से अधिक समय लगायेगा वह प्राणदण्ड का अधिकारी होगा।

ततः सन्दिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम्।
वीरं शतबलिं नाम वानरं वानरर्षभः॥ १०॥
उवाच राजा धर्मज्ञः सर्ववानरसत्तमम्।
वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रतिष्ठस्व स्वमन्त्रिभिः॥ ११॥

अपने श्वसुर सुषेण को पश्चिम दिशा में भेजकर धर्मज्ञ राजा सुग्रीव ने वानरों में सर्वोत्तम शतबलि नामक वानरश्रेष्ठ से कहा—तुम सूर्यपुत्रों और अपने मन्त्रियों सहित यात्रा आरम्भ करो—

दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तां हिमशैलावतंसकाम्।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीमनिन्दिताम्॥ १२॥

तुम हिम-पर्वतों से अलंकृत रमणीय उत्तर दिशा की ओर जाओ और उस दिशा में सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी अनिन्दिता सीता को पता लगाओ।

अस्मिन् कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये।
ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वराः॥ १३॥

हे विदांवरो! (सफलता प्राप्ति के उपायों को जानने में श्रेष्ठजनों) श्रीराम का यह प्रियकार्य पूरा कर हम लोग उनके ऋण से मुक्त हो जायेंगे और कृतकृत्य हो जायेंगे।

कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना।
तस्य चेत् प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत्॥ १४॥

श्रीराम ने हम लोगों का अत्यन्त प्रियकार्य किया है। यदि हम लोग प्रत्युपकार द्वारा उनका कुछ भी बदला चुका सकें तो हमारा जीवन सफल हो।

अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत्।
तस्य स्यात् सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः॥ १५॥

अनुपकारी व्यक्ति का भी यदि कोई कार्य आ जाये तो उसकी भी सहायता करनी चाहिए। ऐसे सहायक व्यक्ति का जन्म सफल माना जाता है। जिसने अपने उपकार द्वारा पहले ही उपकृत कर दिया हो उसकी सहायता करने का तो कहना ही क्या?

एतां बुद्धिं समास्थाय दृश्यते जानकी यथा।
तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः॥ १६॥

आप लोग मेरा प्रिय चाहनेवाले एवं हितैषी हैं, अतः इन बातों को सोच-समझकर ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे सीताजी का पता लग जाए।

विशेषेण तु सुग्रीवो हनुमत्यर्थमुक्तवान्।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थेऽर्थसाधने॥ १७॥

सीतान्वेषणार्थ सब दिशाओं में वानरों की नियुक्ति करके सुग्रीव ने हनुमान् से कुछ विशेष बातें कहीं क्योंकि उन्हें कपिश्रेष्ठ हनुमान् के ऊपर ही कार्यसिद्धि का पूर्ण विश्वास था।

गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महात्मनः॥ १८॥

हे वीर महाकपे! गति, वेग, तेज और फुर्ती में तुम अपने पिता महात्मन् पवन के सदृश ही हो।

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥ १९॥

हे नीतिशास्त्रविशारद हनुमान्! तुममें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश एवं कालानुसार कार्य करने की क्षमता तथा नीति—सब कुछ है।

तेजसा वापि ते भूतं समं भुवि न विद्यते।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवोपपादय॥ २०॥

तुम्हारे समान तेजस्वी पुरुष इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है, अतः हे वीर! तुम ऐसा उद्योग करना जिससे सीता का पता लग जाए।

ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः॥ २१॥

सीतान्वेषण-कार्य का भार हनुमान् को ही दिया जा रहा है यह जानकर श्रीराम हनुमान् की अद्भुत कार्यशक्ति का मन-ही-मन विचार करने लगे।

सर्वथा निश्चतार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः।
निश्चितार्थकरश्चापि हनुमान् कार्यसाधने॥ २२॥

राजा सुग्रीव को कार्य-सिद्धि के लिए हनुमान् पर पूर्ण विश्वास है। उधर हनुमान् को भी अपने द्वारा कार्य सिद्ध होने में पूर्ण विश्वास है।

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः॥ २३॥

हनुमान् के द्वारा ही कार्य सिद्ध होगा ऐसा सोचकर शत्रुहन्ता श्रीराम ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजकुमारी सीता को विश्वास दिलाने के लिए अपने नाम से अङ्कित अँगूठी हनुमान् को दी।

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति॥ २४॥

अँगूठी देकर श्रीराम ने कहा—हे कपिश्रेष्ठ! इस अँगूठी को देख, जनकनन्दिनी सीता जान जायेंगी कि तुम मेरे पास से आये हो और तुम पर विश्वास कर वह निःशंक होकर तुमसे मिलेगी।

व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे॥ २५॥

हे वीर! तुम्हारा उद्योग, बल एवं बुद्धिपूर्ण पराक्रम और सुग्रीव का दृढ़तापूर्ण सन्देश—ये सब बातें तुम्हारी कार्य-सिद्धि को सूचित कर रही हैं।

स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः स्थाप्य मूर्ध्नि कृताञ्जलिः।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगोत्तमः॥ २६॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान् उस अँगूठी को ग्रहणकर, उसे अपने सिर पर रख तदनन्तर हाथ जोड़कर श्रीराम के चरणों में प्रणाम कर वहाँ से चल दिए।

➤ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३३)

तीन दिशाओं की मण्डलियों का निराश लौटना, अङ्गद-हनुमान् की मण्डली का सीता को ढूँढ़ना—

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपियूथपाः।
व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा॥ १॥

सीता को ढूँढ़ने के लिए वानरराज सुग्रीव ने वानर सेनापतियों को जो आदेश दिया था उस आदेशानुसार वे सभी वेगपूर्वक अपनी-अपनी निर्दिष्ट दिशाओं को चल दिये।

सरांसि सरितः कक्षानाकाशं नगराणि च।
नदीदुर्गांस्तथा शैलान् विचिन्वन्ति समन्ततः॥ २॥

वे वानर वीर सरोवरों, नदियों, लताकुञ्जों, आकाश, नगरों, पर्वतों ओर नदी-दुर्गवाले प्रदेशों को खोजने लगे।

विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः।
समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः॥ ३॥

सीता को ढूँढ़ निकालने में दृढ़निश्चयी वे लोग दिनभर भिन्न-भिन्न स्थानों को खोजते हुए रात्रि में एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो जाते थे।

तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः।
कपिराजेन सङ्गम्य निराशाः कपियूथपाः॥ ४॥

इस प्रकार प्रस्रवण गिरि से प्रस्थान करने के दिन से आरम्भ करके एक मास तक सीता की खोज करने के पश्चात् वे सब निराश एवं हताश होकर सुग्रीव के पास लौट आए।

सह ताराङ्गदाभ्यां तु गत्वा स हनुमान् कपिः।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं तं देशमुपचक्रमे॥ ५॥

सुग्रीव के आदेशानुसार हनुमान् एवं तार अङ्गद को साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः।
विचिनोति स्म विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च॥ ६॥

हनुमान् उन वानरश्रेष्ठों के साथ सीता को खोजते हुए बहुत दूर पहुँचकर विन्ध्याचल की घाटियों की गहन-गुफाओं में सीताजी को खोजने लगे।

अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम्।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम्॥ ७॥

उस दिशा में सर्वत्र अच्छी प्रकार ढूँढ़ने पर भी उन वीर वानरों को मिथिला राजकुमारी सीता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ीं।

ते विचित्य गताः खिन्ना निषेदुर्दीनमानसाः।
अथाङ्गदस्तदा सर्वान् वानरानिदमब्रवीत्॥ ८॥

जब वे सभी वानर ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गये और दुःखी तथा उदास होकर बैठ गये तब अङ्गद ने उन वानरों से कहा—

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयः।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम्॥ ९॥

खिन्नता का अभाव, दक्षता--चातुर्य और मन का न हारना—ये कार्य-सिद्धि के साधन कहे जाते हैं, अतः मैं आप लोगों से कहता हूँ—

अद्यापि तद्वनं दुर्गं विचन्वन्तु वनौकसः।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वैर्वनमेतद्विचीयताम्॥ १०॥

हे वनवासी वीरो! तुम लोग खेद का परित्याग कर पुनः इस वन को तथ दुर्गम स्थानों को भली भाँति ढूँढ़ो।

अवश्यं क्रियमाणस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
अलं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम्॥ ११॥

भली-भाँति किए हुए कार्य का फल अवश्य मिलता है, अतः हिम्मत हारकर, खिन्न होकर हाथ-पर-हाथ रखकर चुप-चाप बैठ जाना उचित नहीं।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वानरास्ते महाबलाः।
विन्ध्याकाननसङ्कीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम्॥ १२॥

अङ्गद के इन वचनों को सुनकर वे महाबली वानर एक बार फिर विन्ध्याचल के जंगलों से व्याप्त दक्षिण दिशा में घूम फिरकर सीता को खोजने लगे।

◄ चतुस्त्रिंशः सर्गः ► (३४)

गुफा में प्रवेश एवं तापसी से भेंट—

विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृत्तं बिलम्।
दुर्दर्शमतिघोरं च दुर्विगाहं च सर्वशः॥ १॥

खोजते-खोजते उन्हें वहाँ एक अत्यन्त विशाल बिल=भूलभुलैयाँ दिखाई दी। वह गुफा दुष्प्रवेश्य थी और देखने में भी भयंकर लगती थी।

ततः पर्वतकूटाभो हनुमान् पवनात्मजः।
अब्रवीद्वानरान् सर्वान् कान्तारवनकोविदः॥ २॥

उस भूलभुलैयाँ अथवा गुफा को देखकर विशालकाय पवनपुत्र हनुमान् जो इन सम और विषम दुर्गमनीय स्थानों के जानकार थे, अपने साथियों से बोले—

गिरिजालावृतान् देशान् मार्गित्वा दक्षिणां दिशम्।
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम्॥ ३॥

दक्षिण दिशा की पर्वतमालाओं से घिरे हुए सभी स्थानों को खोजकर हम सभी लोग थककर चूर हो गये, परन्तु मिथिलेश-कुमारी सीता का दर्शन नहीं कर सके।

अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वतः॥ ४॥
नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः।
इत्युक्त्वा तद्बिलं सर्वे विवशुस्तिमिरावृतम्॥ ५॥

इस विशाल बिल से हंस, सारसों के साथ क्रौञ्च पक्षी और चक्रवाक पक्षी जल से भीगे हुए झुण्ड-के-झुण्ड निकल रहे हैं। इससे निश्चय होता है कि इस गुफा में या तो जलपूरित कोई कुआँ है अथवा तालाब है। हनुमान्जी के ऐसा कहने पर वे सब वानर उस अन्धकार से आच्छादित बिल में प्रविष्ट हो गये।

ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः।
पुष्पितान् फलिनो वृक्षान् प्रवालमणिसन्निभान्॥ ६॥

उस बिल में प्रविष्ट होकर वानरों ने वहाँ चारों

ओर बड़े-बड़े भवन देखे। वहाँ उन्होंने मूँगों और मणियों की भाँति फूल एवं फलवाले वृक्ष भी देखे।

महार्हाणि च यानानि ददृशुस्ते समन्ततः।
हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च सञ्चयान्॥ ७॥

बहुमूल्य सवारियाँ भी चारों ओर खड़ी दीख पड़ती थीं तथा सोने चाँदी एवं काँसे के बर्तनों के वहाँ ढेर लगे हुए थे।

अगरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च सञ्चयान्।
शुचीन्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च॥ ८॥

अगर एवं दिव्य चन्दनों के ढेर लगे हुए थे। स्थान स्थान पर शुद्ध-पवित्र भोजन तथा मूलों और फलों के ढेर लगे हुए थे।

महार्हाणि च पानानि मधूनि रसवन्ति च।
दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च सञ्चयान्॥ ९॥

यत्र यत्र मूल्यवान् पेय पदार्थ और रसीले, मधुर फल भी रखे थे। वहाँ अति सुन्दर एवं बहुमूल्य पहनने के वस्त्रों का भी अच्छा सञ्चय था।

तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तस्मिन् महाबलाः।
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं काञ्चिददूरतः॥ १०॥

इस बिल में इधर-उधर ढूँढ़ते हुए उन महाबली वानरों ने समीप ही एक तपस्विनी स्त्री को देखा।

तां दृष्ट्वा भृशसंत्रस्ता ज्वलन्तीमिव तेजसा।
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र कासि त्वं कस्य वा बिलम्॥ ११॥

अपने तेज से अग्नि के समान देदीप्यमान उस स्त्री को देखकर वानर भयभीत हो गये। तदनन्तर हनुमान् ने उससे पूछा—तुम कौन हो? और यह बिल किसका है?

➤ पञ्चत्रिंशः सर्गः ➤ (३५)

स्वयंप्रभा द्वारा वानरों का आतिथ्य और वानरों का बिल में प्रविष्ट होने का कारण बताना—

एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी।
प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता॥ १॥

हनुमान्‌जी के ऐसा पूछने पर सब प्राणियों पर दया करनेवाली वह धर्मचारिणी तापसी हनुमान् से कहने लगी—

मयो नाम महातेजा मायावी दानवर्षभः।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम्॥ २॥

महातेजस्वी मय नामक एक अति चतुर शिल्पी था। उसी मय ने अपने बुद्धि-चातुर्य से स्वर्ण के समान प्रतीत हानेवाले इस वन का निर्माण किया था।

दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा।
किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपश्यथ॥ ३॥

मैं मेरुसावर्णी की पुत्री स्वयंप्रभा हूँ। अब आप लोग बतलाओ कि आपके यहाँ आने को कारण क्या है? इस निर्जन वन में आप लोग किस लिए घूम रहे हैं?

इमान्यभ्यवहार्याणि मूलानि च फलानि च।
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हथ॥ ४॥

पहले आप लोग खाने-पीने योग्य फल-मूल आदि को अच्छे प्रकार खाकर तथा जल पीकर पश्चात् अपने यहाँ आने का समस्त वृत्तान्त मुझसे कहो।

अथ तानब्रवीत्सर्वान् विश्रान्तान् हरिपुङ्गवान्।
इदं वचनमेकाग्रा तापसी धर्मचारिणी॥ ५॥

जब वे सब पराक्रमी वानरश्रेष्ठ खा-पीकर विश्राम कर चुके तब तापसी धर्मचारिणी स्वयंप्रभा ने एकाग्रचित्त होकर उनसे कहा—

वानरा यदि वः खेदः प्रणष्टः फलभक्षणात्।
यदि चैतन्मया श्राव्यं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम्॥ ६॥

हे वानरो! यदि फल खाकर तुम्हारी थकावट दूर हो गई हो और यदि यह बात मेरे सुनने योग्य हो तो आप लोग मुझे सुनाएँ। मैं आप लोगों का वृत्तान्त

सुनना चाहती हूँ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः।
आर्जवेन यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ७॥

उस तापसी के ऐसे वचन को सुनकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी नम्रतापूर्वक अपने आगमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त यथार्थ रूप में कहने लगे।

रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया॥ ८॥

महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम पिता की आज्ञा से वन में प्रविष्ट हुए। उनके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण और उनकी धर्मपत्नी सीता भी थी।

तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात्।
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः॥ ९॥

जनस्थान से उनकी भार्या सीता को रावण बलपूर्वक उठाकर ले गया। उन श्रीराम के मित्र राजा सुग्रीव हैं, जो बड़े वीर हैं।

राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम्।
विचित्य तु वयं सर्वे समग्रां दक्षिणां दिशम्॥ १०॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम्।
एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः॥ ११॥

वानरों के राजा सुग्रीव ने हमें सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा है। दक्षिण दिशा के सम्पूर्ण वन और पर्वतों को खोजते हुए हम सहसा इस अन्धकार से आच्छादित भूलभुलैयाँ में प्रविष्ट हो गये। बस यही हमारा कार्य है और इसी कार्य को करने के लिए आये हैं।

शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणि।
यः कृतः समयोऽस्माकं सुग्रीवेण महात्मना॥ १२॥
स च कालो ह्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम्।
सा त्वमस्माद् बिलाद् घोरादुत्तारयितुमर्हसि॥ १३॥

हे धर्मचारिणि! अब हम सब तेरी शरण में हैं। महात्मा सुग्रीव ने इस कार्य के लिए जो समय निश्चित किया था वह समय तो इस बिल में रहते-रहते ही पूरा हो गया, अतः अब आप हमें किसी प्रकार इस बिल से बाहर निकाल दें।

एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत्।
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम्॥ १४॥

हनुमान्‌जी के ऐसा कहने पर तापसी ने कहा— इस बिल में प्रवेश करके जीवित अवस्था में बाहर निकल जाना बहुत कठिन है। (फिर भी)

निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः।
न हि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः॥ १५॥

आप सभी वानरश्रेष्ठ अपनी आँखें बन्द कर लें क्योंकि बिना नेत्र बन्द किये इस बिल से कोई नहीं निकल सकता।

वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा।
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया॥ १६॥

जब उन महात्मा वानरों ने अपनी आँखें अपने हाथों से ढक लीं तब उस तपस्विनी ने उन सब वानरों को एक पल में ही बाहर पहुँचा दिया।

ततस्तान् वानरान् सर्वांस्तापसी धर्मचारिणी।
निःसृतान् विषमात्तस्मात्समाश्वास्येदमब्रवीत्॥ १७॥

उस भयंकर भूलभुलैयाँ से निकले हुए उन सभी वानरों को आश्वासन प्रदान करते हुए धर्मचारिणी तापसी स्वयंप्रभा ने कहा—

एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान् नानाद्रुमलताकुलः।
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः॥ १८॥

नाना प्रकार के वृक्ष-लता आदि से शोभायमान यह विन्ध्याचल पर्वत है और अगाध जलराशि से परिपूर्ण यह समुद्र है।

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यमि भवनं वानरर्षभाः।
इत्युक्त्वा तद् बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा॥ १९॥

आप लोगों की यात्रा मङ्गलमय हो। मैं अब अपने भवन को जाऊँगी। ऐसा कहकर तापसी स्वयंप्रभा उस रमणीय गुफा में प्रविष्ट हो गई।

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम्।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिरावृतम्॥ २०॥

बिल से बाहर निकलने पर उन वानरों ने विकराल

तरङ्गित, भयंकर गर्जन करते हुए अपार जलराशि से परिपूर्ण उस समुद्र को देखा।

मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम्।
तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः॥ २१॥

मय की अद्भुत कारीगरी से रचित उस गिरिगुहा में और गिरि तथा दुर्गम स्थानों को ढूँढ़ते ढूँढ़ते ही राजा सुग्रीव द्वारा निर्दिष्ट एक मास का समय समाप्त हो गया।

विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे सम्प्रपुष्पितपादपे।
उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा॥ २२॥

अतः वे सब महात्मा वानर विन्ध्यपर्वत की तलहटी में पुष्पों से परिपूर्ण वृक्षों के नीचे बैठकर भविष्य के कार्य के सम्बन्ध में चिन्तामग्न हो गये।

ततस्तान् कपिवृद्धांस्तु शिष्टांश्चैव वनौकसः।
युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत्॥ २३॥

उन सभी को चिन्तामग्न देखकर महाबुद्धिमान् युवराज अङ्गद बड़े-बूढ़े और शिष्ट वानरों से बोले—

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम्॥ २४॥

देखो, हम लोग आश्विन मास में सीता के अन्वेषण की प्रतिज्ञा करके राजधानी से निकले थे, वह सब समय व्यतीत हो गया है। अब हम लोगों को आगे क्या करना चाहिए?

इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः।
हरिराजस्य सन्देशमकृत्वा कः सुखी भवेत्॥ २५॥

अभी तक हम लोग अपने कार्य में असफल रहे हैं, अतः हमारी मृत्यु निश्चित है, क्योंकि कपिराज सुग्रीव की आज्ञा की अवहेलना करके कौन सुखी रह सकता है?

तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामीभावे व्यवस्थितः।
न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान्॥ २६॥

सुग्रीव का स्वभाव अत्यन्त उग्र है, फिर इस समय वे हम लोगों के राजा हैं, अतः सीता की खोज किए बिना लौटनेवाले हम अपराधियों के अपराध को वे कभी भी क्षमा नहीं करेंगे।

तस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम्।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम्॥ २७॥

अतः सुग्रीव द्वारा निर्धारित अवधि के बीत जाने पर हम सब वानरों के लिए यही उचित है कि हम खाना-पीना छोड़कर अपने प्राण त्याग दें।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च।
ध्रुवं नो हिंसते राजा सर्वान् प्रतिगतानितः॥ २८॥

पुत्र, स्त्री, धन-धान्य और गृह आदि की मोह-ममता को हमें छोड़ देना चाहिए, क्योंकि जहाँ से लौटने पर असफल मनोरथ हमें राजा सुग्रीव अवश्य प्राणदण्ड देगा। (वहाँ मरने की अपेक्षा यहाँ मरना अधिक श्रेष्ठ है।)

न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ २९॥

युवराज पद का अधिकारी होने पर भी राजा सुग्रीव ने मुझे युवराज पद पर अभिषिक्त नहीं किया। मैं तो मर्यादा-पालक महाराज रामचन्द्र के द्वारा युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया हूँ। (युवराज पद के लिए मैं श्रीराम का कृतज्ञ हूँ सुग्रीव का नहीं।)

स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्।
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः॥ ३०॥

महाराज सुग्रीव मेरे प्रति पहले से ही वैर-बुद्धि रखते हैं, जब वे देखेंगे कि मैंने कार्य पूरा नहीं किया तब वे अवश्य ही मुझे बड़ी निष्ठुरता से मरवा डालेंगे।

किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे।
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि॥ ३१॥

अपने इष्ट-मित्रों के सामने निन्द्य मृत्यु की अपेक्षा इस पुण्यप्रद सागर-तट पर प्राण त्याग करना मेरे लिए अधिक श्रेष्ठ है।

एतत् श्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम्।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन्॥ ३२॥

राजकुमार युवराज अङ्गद की इन बातों को सुनकर सब-के-सब वानर करुणापूर्ण वाणी से बोले—

तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियासक्तश्च राघवः।
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान्॥ ३३॥
राघवप्रियकामार्थं घातयिष्यत्यसंशयम्।
न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः॥ ३४॥

सुग्रीव तो उग्र प्रकृति के हैं और श्रीराम अपनी प्रिया सीता में अनुरक्त हो रहे हैं। सीता को बिना देखे हुए ही हम लोगों को लौटा देखकर सुग्रीव श्रीराम को प्रसन्न करने के लिए हमें मरवा डालेंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, अतः अपराध करके स्वामी के समीप राजधानी में जाना हम लोगों के लिए उचित नहीं है।

इहैव सीतामन्विष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा।
नो चेद् गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम्॥ ३५॥

यदि हम लोग सीता को बिना देखे अथवा उसका समाचार प्राप्त किये बिना सुग्रीव के पास लौट जायेंगे तो निश्चय ही हम सबको यमराजपुरी की ओर प्रस्थान करना पड़ेगा।

प्लवङ्गमानां तु भयार्दितानां
श्रुत्वा वचस्तार इदं बभाषे।
अलं विषादेन बिलं प्रविश्य
वसाम सर्वे यदि रोचते वः॥ ३६॥

उन भयभीत वानरों के वचन सुनकर तार ने कहा—तुम लोग दुःखी मत होओ, यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो हम सब पुनः इस बिल में चले चलें और वहीं चल कर बस जायें।

षट्त्रिंशः सर्गः (३६)

हनुमान् की भेद-नीति—

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि।
अथ मेने हृतं राज्यं हनुमानङ्गदेन तत्॥ १॥

चन्द्रमा की कान्ति के समान प्रभाववाले तार के ऐसा कहने पर हनुमान्‌जी को लगा कि वानरों का राज्य अङ्गद के अधीन हो गया अर्थात् सब वानर अङ्गद के कहने में आ गये।

बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम्।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिनः सुतम्॥ २॥

हनुमान् ने बाली पुत्र अङ्गद को अष्टाङ्ग बुद्धि[1] से सम्पन्न, चार प्रकार के बल[2] से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों[3] से समलंकृत माना।

---

१. अष्टाङ्ग आदि—

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

१. सुनने की इच्छा २. सुनना ३. समझना ४. धारण करना ५. तर्क-वितर्क से छानबीन करना ६. अभिप्राय को जानना ७. विज्ञान और ८. तत्त्वज्ञान—ये आठ बुद्धि के गुण हैं।

२. चार प्रकार का बल—

१. साम २. दान ३. भेद ४. दण्ड। अथवा—

१. बाहुबल २. मनोबल ३. उपायबल और ४. बन्धु बल।

३. चौदह गुणः—

देशकालज्ञता दार्ढ्यं सर्वक्लेशसहिष्णुता।
सर्वविज्ञानता दाक्ष्यमूर्जः संवृत्तमन्त्रता॥
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता।
शरणागतवात्सल्यममर्षित्वमचापलम्॥

१. देशकाल का ज्ञान २. दृढ़ता ३. कष्टसहिष्णुता ४. सर्वविज्ञानता ५. दक्षता ६. उत्साह ७. मन्त्रगुप्ति ८. एकवाक्यता ९. शूरता १०. भक्तिज्ञान ११. कृतज्ञता १२. शरणागतवत्सलता १३. अमर्षित्व= अधर्म के लिए असहिष्णुता और १४. अचपलता=गम्भीरता।

भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविदां वरम्।
अभिसन्धातुमारेभे हनुमानङ्गदं ततः॥ ३॥

सर्वशास्त्र-विशारद हनुमान् ने अपने स्वामी के कार्य में शिथिल अङ्गद को श्रीराम के कार्य में जुटाने के लिए उद्योग आरम्भ किया—

स चतुर्णामुपायानां तृतीयमुपवर्णयन्।
भेदयामास तान् सर्वान् वानरान् वाक्यसम्पदा॥ ४॥

वाणी के धनी हनुमान् ने अपनी वाक्-चातुरी से साम आदि चार उपायों में से तृतीय उपाय भेद का अवलम्बन करते हुए उन सभी वानरों में भेद उत्पन्न कर दिया।

तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम्।
भीषणैर्बहुभिर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः॥ ५॥

वानरों के अङ्गद से पृथक् हो जाने पर हनुमान्जी ने दण्डनीति का आश्रय लेकर अनेक भयप्रदवाक्यों से अङ्गद को भय दिखलाते हुए कहा—

त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम्।
दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता॥ ६॥

हे तारा-पुत्र अंगद! युद्ध करने में तुम अपने पिता से भी बढ़-चढ़कर सामर्थ्य रखते हो इसमें कोई सन्देह नहीं। कपियों के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त होने पर तुम अपने पिता की भाँति ही राज्य कर सकते हो।

नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुङ्गव।
नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारान् विना त्वया॥ ७॥

हे वानरश्रेष्ठ! इन वानरों की चित्त-वृत्ति अस्थिर है। आज ये आपकी आज्ञा मानते हैं, परन्तु अपने पुत्रों और स्त्रियों से रहित होकर ये आपकी आज्ञाओं का पालन नहीं करेंगे।

त्वां नैते ह्यनुरज्येयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते।
यथायं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः॥ ८॥
न ह्यहं न इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः।
दण्डेन वा त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम्॥ ९॥

मैं तुमसे इन सबके मुँह पर ही स्पष्ट कहता हूँ कि ये लोग अपनी स्त्रियों और पुत्रों को छोड़ तुम्हारे ऊपर कभी अनुरागवान् नहीं होंगे। जाम्बवान्, नील, महाकपि सुहोत्र और मुझको तथा इन समस्त वानरों के मन को तुम साम, दान, भेद, दण्ड द्वारा सुग्रीव की ओर से कभी नहीं फेर सकोगे।

अवस्थाने यदैव त्वमासिष्यसि परन्तप।
तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः॥ १०॥

हे परन्तप! तुम जैसे ही हम सबसे पृथक् होकर इस बिल में अपना निवास-स्थान बनाओगे वैसे ही तुम्हारा साथ देने का वचन देनेवाले ये सब वानर तुम्हें छोड़कर चल देंगे।

स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः।
खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः॥ ११॥

अपने पुत्र-स्त्री आदि पारिवारिक जनों के वियोग से उद्विग्न, भूख-प्यास-शयन आदि कष्ट से दुःखित ये वानर आपको पीठ दिखाकर सुग्रीव से जा मिलेंगे।

स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः।
तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद्भविष्यसि॥ १२॥

इस प्रकार आप अपने मित्र और हितैषी बन्धुओं से रहित होकर तिनके से भी गये-बीते हो जाओगे और उद्विग्नता के कारण तुम्हारा हृदय जोर-जोर से धड़कने लगेगा।

अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम्।
आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति॥ १३॥

यदि आप हमारे साथ चलेंगे और विनीत भाव से सुग्रीव के समक्ष खड़े हो जायेंगे तो सुग्रीव परम्परागत वानरराज्य पर आपको ही अभिषिक्त कर देंगे।

धर्मकामः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च न त्वां जातु जिघांसति॥ १४॥

तुम्हारे चाचा सुग्रीव धर्मात्मा, दृढ़व्रत, शुद्ध-अन्तःकरणवाले और सत्यप्रतिज्ञ हैं, तुम्हारे प्रति वे स्नेह भी रखते हैं, अतः वे तुम्हारा वध कभी नहीं

करेंगे।

प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम्।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम्॥ १५॥

वे सुग्रीव तुम्हारी माता पर कृपालु हैं। यहाँ तक कि वे उसके लिए जान तक देने को तैयार हैं, फिर सुग्रीव को कोई दूसरा पुत्र भी नहीं है कि वे तुम्हें मारकर राज्य उसे दे देंगे, अतः हे अङ्गद! तुम किष्किन्धा लौट चलो।

❮ सप्तत्रिंशः सर्गः ❯ (३७)

अङ्गद का आक्रोश और प्रायोपवेश—

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

हनुमान्‌जी के विनम्र, धर्मयुक्त एवं स्वामी के प्रति सम्मान-सूचक वचनों को सुन अङ्गद ने कहा—

स्थैर्यं सत्त्वं मनः शौचमानृशंस्यमथार्जवम्।
विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते॥ २॥

हे हनुमन्! स्थिरता, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, दया, सरलता, वीरता और धैर्य—इनमें से कोई भी गुण सुग्रीव में दिखाई नहीं देता।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम्।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः॥ ३॥

ज्येष्ठ भ्राता के जीवित रहने पर उसकी प्राण-प्रिया महारानी को जो धर्म से उसकी माता के समान है, को ग्रहण करता है वह अवश्य ही निन्दनीय है।

कथं स धर्मं जानीते येन भ्रात्रा महात्मना।
युद्धायाभिनियुक्तेन बिलस्य पिहितं मुखम्॥ ४॥

वह व्यक्ति धर्मात्मा कैसे कहा जा सकता है जिसने सङ्ग्राम में जाते हुए अपने भाई के द्वारा रक्षा के लिए नियुक्त होने पर भी गुफा के द्वार को बन्द कर दिया।

सत्यात्पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः।
विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत्॥ ५॥

जिसने सत्य को साक्षी कर मैत्री की और अपने पूर्वोपकारी महायशस्वी मित्र श्रीराम को भी भूल गया तो वह और किसके उपकार को स्मरण रख सकता है?

लक्ष्मणस्य भयाद्येन नाधर्मभयभीरुणा।
आदिष्टा मार्गितुं सीतां धर्ममस्मिन् कथं भवेत्॥ ६॥

अधर्म के भय से नहीं, अपितु लक्ष्मण के भय से, भयभीत होकर जिसने हमें सीताजी की खोज के लिए भेजा है, भला ऐसे व्यक्ति में धर्म कहाँ हो सकता है?

भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च हीनशक्तिः कथं ह्यहम्।
किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः॥ ७॥

बिल में जाकर रहने और प्रायोपवेश=आमरण अनशन का मेरा विचार प्रकट हो गया। नियत अवधि में सीता का पता न लगाने के कारण और इस मन्त्रणा के कारण अब मैं सुग्रीव का अपराधी भी हूँ। साथ ही मैं हीनबलवाला भी हूँ। ऐसी दशा में यदि मैं किष्किन्धा में जाऊँ भी तो वहाँ मैं दुर्बल एवं अनाथ के समान जीवन कैसे बिता सकूँगा?

उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत्।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात्॥ ८॥

धूर्त, निर्दयी और क्रूर सुग्रीव राज्य-प्राप्ति के प्रलोभन में मुझे गुप्त रूप से प्राण-दण्ड दे देगा अथवा बन्दी बनाकर कारागार में डाल देगा।

बन्धनाद्वाऽवसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम्।
अनुजानीत मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः॥ ९॥

इस प्रकार बन्दी बनकर कारागार में पड़ने और दुःख भोगने की अपेक्षा आमरण अनशन ही श्रेयस्कर जान पड़ता है, अतः हे वानर लोगो! आप सब मुझे इसकी अनुमति दीजिए और स्वयं अपने-अपने घरों को लौट जाइए।

विशेष:—इस विवरण से यह स्पष्ट है कि राजकुमार अङ्गद अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था। अपने पिता का वध करनेवाले सुग्रीव के प्रति उसके मन में जो भाव थे उन्हें इस अवसर पर भावावेश में उसने प्रकट कर दिया। सच्चा पुत्र पितृघातक के प्रति कभी भी आस्थावान् एवं अनुरागवान् नहीं हो सकता। अङ्गद की परीक्षार्थ ही उसे रावण के पास दूत बनाकर भेजा गया था। यह राजनीतिक चाल थी। यदि उस समय भी अङ्गद सुग्रीव का विरोधी हो तो बाली के मित्र रावण से सन्धि कर लेगा। ऐसा होने पर वह विद्रोही की श्रेणी में आ जाता।

अहं वा प्रतिजानामि ना गमिष्याम्यहं पुरीम्।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे॥ १०॥

मै आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै किष्किन्धा में लौटकर नहीं जाऊँगा। मेरे लिए तो अब यहाँ रहकर प्रायोपवेशन द्वारा मर जाना ही श्रेयस्कर है।

एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धांस्तानभिवाद्य च।
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मना:॥ ११॥

इतना कहकर और वृद्ध वानरों को प्रणाम कर अङ्गद रुदन करते हुए भूमि पर कुश बिछाकर मरने के लिए उदास होकर बैठ गये।

तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभा:।
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवस्यन् प्रायमासितुम्॥ १२॥

अङ्गद को इस प्रकार मरने के लिए तत्पर देख सभी वानरगण आँखों से आँसू बहाने लगे और वे स्वयं भी मरने के लिए तैयार होकर अङ्गद को घेर कर बैठ गये।

उपस्पृश्योदकं तत्र प्राङ्मुखा: समुपाविशन्।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिता:॥ १३॥

वे सभी वानर वीर जल से आचमन कर दक्षिणाग्र कुशाओं को बिछा और स्वयं पूर्वाभिमुख हो समुद्र-तट पर बैठ गये।

मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह।
रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च॥ १४॥
जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुष:।
हरणं चैव वैदेह्या बालिनश्च वधं रणे॥ १५॥

'यहाँ प्राणत्याग करना ही ठीक है' ऐसा कहकर वे सभी मरणेच्छु वानरश्रेष्ठ श्रीराम का वनवास, दशरथजी का मरण, जनस्थान का नाश, जटायु का स्वर्गवास, सीता का रावण द्वारा अपहरण और युद्ध में बाली का श्रीराम द्वारा मारा जाना आदि घटनाओं का वर्णन करने लगे।

◀ अष्टात्रिंश: सर्ग: ▶ (३८)

सम्पाति का आगमन—

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन् प्रायं गिरिस्थले।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे॥ १॥

पर्वत के जिस भू-भाग पर वे सभी वानर अनशन कर मरने के लिए तैयार बैठे थे उसी पर्वत पर गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा भी आकर उपस्थित हो गया।

सम्पातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गम:।
भ्राता जटायुष: श्रीमान् प्रख्यातबलपौरुष:॥ २॥

उसका नाम सम्पाति था। वह अत्यन्त दीर्घ-जीवी वानप्रस्थी था। वह जटायु का ज्येष्ठ भ्राता था। वह श्रीमान् और बल तथा शक्ति में प्रसिद्ध था।

कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरे:।
उपविष्टान् हरीन् दृष्ट्वा गृध्रराजोऽब्रवीद्वच:॥ ३॥

महागिरि विन्ध्याचल की एक गुफा में से निकलकर और वानरों को वहाँ बैठा देखकर गृध्रराज सम्पाति बोला—

कोऽयं गिरा घोषयति प्राणै: प्रियतमस्य मे।
जटायुषो वधं भ्रातु: कम्पयन्निव मे मन:॥ ४॥

कौन मेरे प्राणप्रिय भाई जटायु के वध का वृत्तान्त कहकर मेरे हृदय को दहला रहा है?

इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम्।
यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ॥ ५ ॥
अतिदीर्घस्य कालस्य तुष्टोऽस्मि परिकीर्तनात्।
तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभः ॥ ६ ॥

मेरी इच्छा है कि आप लोग मुझे इस पर्वत की गुफा से नीचे उतार लें। अति दीर्घकाल के पश्चात् गुण और पराक्रम में सराहनीय अपने छोटे भाई का समाचार पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। हे वानरश्रेष्ठो! मैं अपने भाई के मारे जाने का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।

अवतार्य गिरेः शृङ्गाद् गृध्रमाहाङ्गदस्तदा।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्॥ ७॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया।
तस्य भार्या जनस्थानाद् रावणेन हृता बलात्॥ ८॥

उस गृध्रराज सम्पाति को पर्वत शिखर से नीचे उतार कर अङ्गद ने कहा— महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या जानकी के साथ दण्डक वन में प्रविष्ट हुए। उनकी धर्मपत्नी सीता को रावण जनस्थान से बलपूर्वक उठाकर ले गया।

रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुनाम गृध्रराट्।
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा॥ ९॥

जब श्रीराम के पिता महाराज दशरथ के मित्र, गृध्रकूट के राजा, जटायु ने देखा कि रावण सीता को आकाश-मार्ग से लिए जा रहा है।

रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम्।
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे॥ १०॥

तब उन्होंने रावण से युद्ध करते हुए उसका रथ तोड़ डाला और सीताजी को रथ से उतार लिया, परन्तु वृद्धावस्था के कारण जब जटायु लड़ते-लड़ते थक गये तब रावण ने उन्हें मार डाला।

एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा।
संस्कृतश्चापि रामेण गतश्च गतिमुत्तमाम्॥ ११॥

इस प्रकार उस बलवान् रावण के द्वारा जटायु का वध हुआ। श्रीराम द्वारा उनका अन्त्येष्टि-संस्कार होने पर उन्होंने सद्गति प्राप्त की।

➤ एकोनचत्वारिंशः सर्गः ➤ (३९)

सम्पाति द्वारा सीता का पता बताया जाना—

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः।
सबाष्पो वानरान् गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः॥ १॥

जब प्राण-त्यागने के लिए उद्यत वानरों ने[१] इस प्रकार के करुणा-पूर्ण वचन कहे तब सम्पाति ने आँखों में आँसू भरकर गम्भीर स्वर में उन वानरों से कहा—

यवीयान् मम स भ्राता जटायुर्नाम वानराः।
यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा॥ २॥

हे वानरो! संग्राम में बलवान् रावण द्वारा जिसके मरने का आपने वर्णन किया है, वह जटायु मेरा छोटा भाई था।

जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्राता सम्पातिना तदा।
युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा॥ ३॥

जब जटायु के ज्येष्ठ भ्राता सम्पाति ने इस प्रकार कहा तब महाबुद्धिमान् युवराज अङ्गद यह वचन बोले—

जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया।
आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः॥ ४॥

यदि आप जटायु के भाई हैं और आपने मेरा सम्पूर्ण कथन सुन लिया है, तब ऐसी स्थिति में यदि आप उस राक्षस का निवास-स्थान जानते हैं तो मुझे

१. पूर्व सर्ग में जो कुछ कहा है वह केवल अङ्गद ने कहा है। यहाँ आदि कवि ने बहुवचन का प्रयोग सभी वानरों की स्थिति दिखलाने के लिए किया है।

बताइए।

ततोऽब्रवीन्महातेजा ज्येष्ठो भ्राता जटायुषः।
आत्मानुरूपं वचनं वानरान् सम्प्रहर्षयन्॥ ५॥

अङ्गद के पूछने पर जटायु का ज्येष्ठ भ्राता महातेजस्वी सम्पाति वानरों को हर्षित करते हुए अपने अनुरूप वचन बोला—

जरया च हृतं तेजः प्राणश्च शिथिला मम।
वाङ्मात्रेण तु रामस्य करिष्ये साह्यमुत्तमम्॥ ६॥

वृद्धावस्था के कारण मेरा सम्पूर्ण तेज नष्ट हो गया है। मेरे प्राण शिथिल हो गये हैं (अर्थात् जीवन में उत्साह भी नहीं है, अतः मैं विशेष सहायता नहीं कर सकता तथापि) मैं वाणीमात्र से श्रीराम की अत्युत्तम सहायता करूँगा।

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना॥ ७॥

रूप-लावण्य-सम्पन्न, सर्व आभूषणों से अलंकृत एक तरुणी को मैंने देखा था जिसे दुष्ट रावण हर कर ले जा रहा था।

क्रोशन्ति रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी।
भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती॥ ८॥

वह स्त्री राम! राम! तथा लक्ष्मण! लक्ष्मण! कहकर चिल्ला रही थी। वह अपने आभूषणों को उतार कर फेंकती जाती थी तथा अपना सिर धुनती और छाती पीटती जाती थी।

तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परीकीर्तनात्।
श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः॥ ९॥

वह देवी बार-बार राम का नाम लेकर चिल्ला रही थी, अतः मेरा अनुमान है कि वह सीता ही होगी। अब मैं आपको उस राक्षस के घर का पता बताता हूँ, सुनिए।

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।
अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः॥ १०॥

वह राक्षस विश्रवा मुनि का पुत्र है, कुबेर का सगा भाई है और लङ्कापुरी में रहता है। उसका नाम रावण है।

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिँल्लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥ ११॥

इस समुद्र-तट से सौ योजन की दूरी पर एक द्वीप है। उस द्वीप में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंका नाम की एक नगरी है।

तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी।
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः समावृता॥ १२॥

उसी लंका पुरी में पीताम्बर-धारिणी शोक-सन्तप्ता सीता निवास कर रही है। वह रावण के राजमहल में कैद है और राक्षसियाँ उसे घेरे रहती हैं।

इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।
अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यचक्षुर्बलं तथा॥ १३॥

मैं यहीं से रावण और जानकी जी को देख रहा हूँ क्योंकि हमारे पास दूर की वस्तुओं को ठीक-ठीक देखने के लिए सुपर्ण (सूर्य) विद्या से सिद्ध-निर्मित किया हुआ दिव्य चक्षुबल[१] (दूर-वीक्षण-ऐनक) है।

तत्रैव त्वरिताः क्षिप्रं विक्रमध्वं प्लवङ्गमाः।
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ॥ १४॥

हे वानरश्रेष्ठो! तुम लोग अपना विक्रम प्रकट करो और शीघ्र वहाँ पहुँचो। मैं ज्ञान-नेत्रों से देख रहा हूँ कि आप लोग सीता का पता लगा कर लौट आओगे।

---

१. प्राचीन समय में आर्यों का ज्ञान-विज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। रामायणकाल में दूर की वस्तुओं को देखने के लिए **'चक्षुबल'** नामक यन्त्र का प्रयोग होता था। इस विषय में तिलक टीकाकार लिखते हैं—"**सौपर्णं सुपर्णलिङ्गकचक्षुष्मती-विद्यासिद्धिजं सा च विद्या बह्वृचब्राह्मणे तृतीयपञ्जिकायामुक्ता।**"

◀ चत्वारिंशः सर्गः ▶ (४०)

समुद्र-पार जाने के लिए विचार-विमर्श—

आख्याता गृध्रराजेन समुत्पत्य प्लवङ्गमाः।
संगम्य प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः॥ १॥

गृध्रकूट के महाराज सम्पाति के ऐसा कहने पर सिंह के समान पराक्रमी वे सभी वानरगण एकत्र होकर बड़े आनन्द से उछलने-कूदने और हर्ष-ध्वनि करने लगे।

सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम्।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥ २॥

रावण के निवास विषयक सम्पाति के वचनों को सुनकर वे सब वानरगण सीता के दर्शन की अभिलाषा से प्रसन्न होते हुए समुद्र के तट पर पहुँचे।

आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः।
विषेदुः सहसा सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥ ३॥

आकाश के समान उस विशाल एवं दुर्गमनीय सागर को देखकर वानरगण घबरा गये और सब एक साथ बोल उठे—अब क्या किया जाए?

तान् विषादेन महता विषण्णान् वानरर्षभान्।
उवाच मतिमान् काले बालिसूनुर्महाबलः॥ ४॥

उन वानरों को विषाद से भयविह्वल देखकर उन्हें धैर्य बाँधते हुए महाबली, बुद्धिमान् बालीपुत्र अङ्गद बोले—

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तमः।
विषादे हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥ ५॥

हे वानरो! विषाद मत करो क्योंकि विषाद दोषकारक है। जैसे क्रुद्ध सर्प बालकों को मार डालता है उसी प्रकार विषाद भी पुरुष को मार डालता है।

विषादोऽयं प्रसहते विक्रमे पर्युपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति॥ ६॥

उद्योग करने अथवा पराक्रम दिखाने के समय जो व्यक्ति विषाद करता है वह तेजहीन हो जाता है और उसका कार्य भी सिद्ध नहीं होता।

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम्।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम्॥ ७॥

(यह विषाद करने का नहीं अपितु पराक्रम दिखाने का समय है, अतः बोलो) इस समय कौन महातेजस्वी इस समुद्र को पार कर शत्रुओं का नाश करनेवाले सुग्रीव को सत्य-प्रतिज्ञ सिद्ध करेगा?

को वीरो योजनशतं लङ्घयेच्च प्लवङ्गमः।
इमांश्च यूथपान् सर्वान् मोक्षयेत्को महाभयात्॥ ८॥

इस सेना में ऐसा कौन वीर वानर है जो सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघकर इन समस्त वानर यूथपतियों को महान् भय से मुक्त कर दे।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत्।
स्तिमितेवाभवत्सर्वा तत्र सा हरिवाहिनी॥ ९॥

अङ्गद की इन बातों को सुनकर वहाँ कोई किसी प्रकार कुछ भी नहीं बोला। सम्पूर्ण वानर-सेना में सन्नाटा छा गया।

स्तिमितां च परिश्रान्तां विषण्णां हरिवाहिनीम्।
जाम्बवान् समुदीक्ष्यैवं हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ १०॥

वानरी सेना को विषादयुक्त, थकावट से चूर और चुपचाप देखकर जाम्बवान् हनुमान्‌जी से बोले—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविशारद।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि॥ ११॥

हे वानरकुलश्रेष्ठ वीर हनुमन्! हे सर्वशास्त्र-विशारद! तुम अकेले और चुपचाप कैसे बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥ १२॥

हे कपिश्रेष्ठ! आपमें बल, बुद्धि, तेज और उत्साह अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत अधिक है, फिर तुम अपने आपको भूले हुए क्यों हो?

वयमद्य गतप्राणा भवान्नस्त्रातु साम्प्रतम्।
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्॥ १३॥

इस समय हम लोगों के प्राण संकट में हैं। इस समय आप ही हमारी रक्षा कर सकते हो, अत: हे वानर वीर! उठो और इस समुद्र को पार करो।

संस्तूयमानो हनुमान् व्यवर्धत महाबलः।
अभिवाद्य हरीन् वृद्धान्हनुमानिदमब्रवीत्॥ १४॥

जाम्बवान् के द्वारा प्रशंसा किये जाने पर महाबली हनुमान् ने अपनी महती शक्ति का परिचय दिया और सभी बड़े-बूढ़े वानरों को प्रणाम कर हनुमान्जी बोले—

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः॥ १५॥

मैं अपनी बुद्धि से देख रहा हूँ, मुझे मन में पूर्ण विश्वास है, मेरी चेष्टा और उत्साह भी उसी प्रकार के हैं, अत: मैं सीता को अवश्य देखूँगा। हे वानरो! तुम प्रसन्न हो जाओ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान् हरिसत्तमम्॥ १६॥

अपनी जाति-बान्धवों के शोक को मिटानेवाले हनुमान्जी के इन वचनों को सुनकर वानर श्रेष्ठ जाम्बवान् प्रसन्न होकर बोले—

तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः।
मङ्गलं कार्यसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः॥ १७॥

हे तात! तुम्हारे कल्याण की कामना से और तुम्हारी यात्रा-सिद्धि के लिए ये समस्त वानर यूथपति यहाँ एकत्र हो ध्यानावस्थित होकर मंगल-पाठ किया करेंगे।

ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धतमेन च।
गुरूणां च प्रसादेन प्लवस्व त्वं महार्णवम्॥ १८॥

ऋषियों की कृपा से, वृद्ध वानरों के आशीर्वाद से और गुरुजनों के अनुग्रह से तुम समुद्र को लाँघ जाओ।

स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमने तव।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम्॥ १९॥

जब तक तुम लौटकर नहीं आओगे तब तक हम एक पैर से खड़े होकर तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे—अर्थात् तुम्हारे लौटने तक हम लोग कहीं भी नहीं जायेंगे, यहीं पड़े रहेंगे। अब इन सब वानरों का जीवन तुम्हारे ही हाथ में है।

॥ इति किष्किन्धाकाण्डम्॥

—o—

किष्किन्धाकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	४०
श्लोक-संख्या	८०४
टिप्पणियाँ	२७

अथ सुन्दरकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

हनुमान् का समुद्र को पार करना—

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि॥ १॥

जाम्बवान् के उत्साहित करने पर शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाले हनुमान्जी सीता का पता लगाने के लिए आकाश के उस मार्ग से जिस पर सिद्ध लोग गमन किया करते हैं, जाने को तैयार हुए।

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः॥ २॥

तैयार होकर, मार्ग के विघ्न-बाधाओं की कुछ भी परवाह न कर वेगवान् हनुमान्जी अत्यन्त वेगपूर्वक आकाश में उड़ने लगे।[1] उस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी ने अपने आपको गरुड़ के सदृश समझा।

हनूमान् मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः॥ ३॥

आकाश में उड़ते हुए हनुमान्जी मेघमण्डल को ऐसे चीरते-फाड़ते चले जाते थे जैसे वायु मेघमाला को छिन्न-भिन्न कर देता है। हनुमान्जी कभी तो बादलों के भीतर छिप जाते थे और कभी बादलों के बाहर प्रकट हो जाते थे।

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी॥ ४॥

हनुमान्जी को आकाश-मार्ग से जाते देखकर अत्यन्त वृद्धा, परन्तु बलवती एवं इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेवाली सिंहिका नाम की राक्षसी अपने मन में विचार करने लगी—

अस्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता।
इदं हि मे महत्सत्त्वं चिरस्य वशमागतम्॥ ५॥

आहा! आज मुझे बहुत समय के पश्चात् भर पेट खाने को मिलेगा। आज यह विशालकाय प्राणी चिरकाल के पश्चात् मेरे वश में आया है।

इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत्।
छायायां संगृहीतायां चिन्तयामास वानरः॥ ६॥

अपने मन में ऐसा विचार कर सिंहिका ने हनुमान्जी की परछाईं पकड़ी। (हनुमान्जी का पीछा किया।) सिंहिका द्वारा अपना पीछा किये जाने पर हनुमान्जी विचार करने लगे—

कपिराज्ञा यदाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः॥ ७॥

कपिराज सुग्रीव ने जिस अद्भुत छायाग्राही व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा था यह वही महापराक्रमी छायाग्राही प्राणी है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य हि।
उत्पपाताथ वेगेन मनः सम्पातविक्रमः॥ ८॥

अपना पीछा करनेवाली सिंहिका को दूर से ही देखकर हनुमान्जी ने अपने धैर्य और चतुराई से उसे मार गिराया तत्पश्चात् वे पुनः वेगपूर्वक आकाश में उड़ चले।

---

१. रामायणकाल में Monoplanes—छोटे-छोटे विमान होते थे। हनुमान्जी भी ऐसे विमान द्वारा ही लंका गये थे। **'उत्पपात'** रामायणकाल का एक Idiom—मुहावरा है। आजकल भी जब कोई बड़ा व्यक्ति वायुयान द्वारा यात्रा करता है तो समाचार-पत्रों में छपता है—He flew to London वह लन्दन के लिए उड़ गया। जानेवाला पक्षी की भाँति उड़कर नहीं जाता, अपितु वायुयान के द्वारा जाता है। ठीक इसी प्रकार हनुमान्जी भी वायुयान द्वारा ही उड़कर गये थे।

तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।
भूतान्यकाशचारीणि तमूचुः प्लवगर्षभम्॥ ९॥

हनुमान्‌जी द्वारा बात-की-बात में मारकर गिराई हुई सिंहिका को देखकर आकाशचारी प्राणियों ने हनुमान्‌जी से कहा—

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं गच्छ मारुते॥ १०॥

हे पवनपुत्र! तुमने आज इस महापराक्रम शालिनी राक्षसी को मारकर अत्यन्त भयंकर और आश्चर्योत्पादक कर्म किया है। आपका कल्याण हो। अब आप अपने अभीष्ट कार्य को सिद्ध करो।

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥ ११॥

हे वानरेन्द्र! तुम्हारी तरह जिसमें धैर्य, सूक्ष्म दृष्टि, बुद्धि और चातुर्य—ये चार गुण होते हैं वह अपने किसी भी कार्य में असफल नहीं होता।

स तैः सम्भावितः पूज्यैः प्रतिपन्नप्रयोजनः।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः॥ १२॥

पूजनीय हनुमान् उन लोगों द्वारा सम्मानित होकर और अपने कार्य की सिद्धि के विषय में निश्चित्-सा हो गरुड़ की भाँति वेग से आकाश में उड़ने लगे।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

रात्रि-आगमन की प्रतीक्षा—

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः।
त्रिकूटशिखरे लङ्कां स्थितां स्वस्थो ददर्श ह॥ १॥

अन्यों द्वारा अलंघ्य समुद्र को अपने बल एवं पराक्रम से पार करके स्वस्थ चित्त हो महाबली हनुमान् ने त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लंकापुरी को देखा।

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम्।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलङ्कृताम्॥ २॥

रावण द्वारा पालित एवं रक्षित लंकापुरी के समीप पहुँचकर सौभाग्यशाली हनुमान् ने कमलों से परिपूर्ण तथा जलवाली खाइयों से घिरी हुई लङ्का को देखा।

सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम्।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैः कामरूपिभिः॥ ३॥

सीता-हरण से शंकित होकर रावण ने लङ्का की विशेष रूप से निगरानी एवं रक्षा के लिए कामरूपी राक्षस नियुक्त कर दिये थे, जो चारों ओर घूम-घमकर पहरा दिया करते थे। (हनुमान् ने उनको भी देखा।)

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसङ्काशैः शारदाम्बुदसन्निभैः॥ ४॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजमालिनीम्॥ ५॥

तोरणैः काञ्चनैर्दीप्तां लतापङ्क्तिविचित्रितैः।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां दिवि देवपुरीमिव॥ ६॥

स्वर्ण के रमणीक परकोटे से घिरी हुई, शरत्कालीन मेघों के समान श्वेत और पर्वत के समान ऊँचे-ऊँचे विशाल भवनों से सुशोभित, सफेद वर्ण की पक्की सड़कों और गलियों से युक्त, ध्वजा और पताकाओं से अलंकृत, सैकड़ों अट्टालिकाओं से परिपूर्ण, उत्तम तोरण और चमचमाते हुए काञ्चन निर्मित लता-पंक्तियों से परिपूर्ण देवताओं की देवपुरी=अमरावती के समान उस महापुरी लंका को हनुमान्‌जी ने देखा—

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः
हनुमांश्चिन्तायामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहः॥ ७॥

केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना॥ ८॥

देव और असुरों से अलंघनीय उस लङ्कापुरी को देखकर हनुमान्‌जी बार-बार दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए सोचने लगे—क्या उपाय करूँ कि मैं जनकनन्दिनी सीताजी को देख लूँ और दुरात्मा राक्षसराज रावण

की दृष्टि से बचा रहूँ।

न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम्॥ ९॥

मैं क्या करूँ जिससे लोकप्रसिद्ध श्रीराम का कार्य बिगड़ने न पाए और मैं एकान्त में अकेली जानकी के दर्शन कर लूँ।

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः॥ १०॥

यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो रावण को दण्ड देने के इच्छुक लब्धकीर्ति श्रीराम का सीता-अन्वेषण रूपी कार्य व्यर्थ हो जायेगा।

न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित्॥ ११॥

यहाँ किसी स्थान पर राक्षसों से छिपकर कोई भी रह नहीं सकता। यहाँ तक कि राक्षसों का रूप धारण करने पर भी राक्षसों से छुटकारा नहीं मिल सकता, अन्य किसी रूप में रहने की तो बात ही क्या है?

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम।
न ह्यस्त्यविदितं किञ्चिद्राक्षसानां बलीयसाम्॥ १२॥

मैं समझता हूँ, यहाँ वायु भी गुप्त रूप से कोई कार्य करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि इस लंका में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भीषण कर्म करनेवाले राक्षसों की दृष्टि से छिप सके।

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हीयते॥ १३॥

यदि मैं अपने वास्तविक रूप में इस स्थान पर ठहरता हूँ तो केवल स्वामी का कार्य ही नष्ट नहीं होगा, अपितु मैं भी मारा जाऊँगा।

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
लङ्कापुरीमभिगम्य द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम्॥ १४॥

अच्छा मैं अपने असलीरूप में, परन्तु बौने के रूप में अपनी आकृति को छोटा बनाकर और रात्रि के समय लंका में प्रवेश कर सीताजी के दर्शन करूँगा।

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः॥ १५॥

अपने मन में ऐसा निश्चय करके सीताजी के दर्शन के लिए उत्सुक वीर हनुमान् सूर्यास्त होने की प्रतीक्षा करने लगे।

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्तमहापथाम्॥ १६॥

सूर्य के अस्त होने पर रात्रि में हनुमान्जी ने अपने शरीर को छोटा कर विशाल राजमार्गों से युक्त रमणीय लंकापुरी में प्रवेश किया।

❮ तृतीयः सर्गः ❯ (३)

लङ्का राक्षसी का पराभव—

अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाबलम्।
नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम्॥ १॥

जैसे ही कपिश्रेष्ठ, महाबली हनुमान् ने लङ्का नगरी में प्रवेश किया उसी समय लङ्का की अधिष्ठात्री रक्षिका जिसका नाम लङ्का था—ने हनुमान् को देखा।

सां तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का वै कामरूपिणी।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम्॥ २॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् को देखकर कामरूपधारिणी वह लङ्का रूपी राक्षसी भयंकर नाद करते हुए पवनपुत्र हनुमान्जी से बोली—

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालये।
कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणान्धरिष्यसि॥ ३॥

हे वनवासी वानर! तू कौन है? और यहाँ क्यों आया है? प्राणदण्ड से पूर्व ये सारी बातें तू ठीक-ठीक बता दे?

अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम्।
कथयिष्यामि ते तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ४॥

अपने सामने खड़ी हुई उस लङ्का नामक राक्षसी से वीर हनुमान् बोले—तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है मैं वह सब ठीक ठीक बताऊँगा।

का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे।
किमर्थं चापि मां रुद्ध्वा निर्भर्त्सयसि दारुणा॥ ५॥

(पहले तुम यह तो बताओ कि) भयंकर नेत्रोंवाली तुम कौन हो जो इस नगरी के द्वार पर खड़ी हो? हे कर्कशभाषिणी! तुम मेरा मार्ग रोककर क्यों खड़ी हो और मुझे किसलिए डाँट रही हो?

हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम्॥ ६॥

हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर स्वच्छन्द रूप धारण करनेवाली वह लङ्का क्रुद्ध होकर यह कठोर वचन बोली—

अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः।
आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम्॥ ७॥

मैं राक्षसराज महात्मा रावण की आज्ञानुवर्तिनी, अजेय लङ्का नगरी की रक्षा करनेवाली रक्षिका हूँ।

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरी त्वया।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहितो मया॥ ८॥

मेरी अवहेलना करके तू इस नगरी में प्रविष्ट नहीं हो सकता। यदि तूने मेरी अवहेलना की तो मेरे द्वारा मारा जाकर तू आज यहाँ भूमि पर शयन करेगा।

लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्वान् प्लवगर्षभः॥ ९॥

वानरश्रेष्ठ, बुद्धिमान् एवं बलवान् पवनपुत्र हनुमान्‌जी लङ्का की ये बातें सुनकर उससे बोले—

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम्।
तदर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे॥ १०॥

हे लंके! मैं अट्टालिकाओं, प्राकार=पर्वत के ऊपर बने हुए भवनों, तोरण-महराबी द्वार अथवा सिंहद्वारों से युक्त लंका नगरी को देखने के लिए आया हूँ। मुझे लंकापुरी को देखने का बड़ा कुतूहल है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम्॥ ११॥

स्वच्छन्द रूपधारिणी लंकादेवी हनुमान् के इन वचनों को सुनकर कठोर शब्दों में पुनः हनुमान्‌जी से बोली—

मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम्।
न शक्यमद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम॥ १२॥

हे दुर्बुद्धे! हे वानराधम! राक्षसराज रावण द्वारा पालित एवं रक्षित इस नगरी को, मुझे पराजित किये बिना तू नहीं देख सकता।

ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम्।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम्॥ १३॥

लंका के ऐसा कहने पर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने उस निशाचरी से कहा—हे भद्रे! मैं इस नगरी को देखकर जहाँ से आया हूँ वहीं लौट जाऊँगा।

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयानकम्।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता॥ १४॥

हनुमान्‌जी के बार-बार आग्रह करने पर राक्षसी लंका ने भयंकर नादकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी के कसकर एक थप्पड़ मारा।

ततः स कपिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम्।
ननाद सुमहानादं वीर्यवान् पवनात्मजः॥ १५॥
मुष्टिनाऽभिजघानैनां हनूमान् क्रोधमूर्छितः।
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः॥ १६॥

लङ्का राक्षसी के हाथ से जोर का थप्पड़ खा महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमान् ने महानाद किया और क्रुद्ध होकर लङ्का के एक घूँसा मारा, परन्तु यह स्त्री है ऐसा सोचकर हनुमान् ने बहुत क्रोध नहीं किया (अर्थात् हल्का-सा ही घूँसा जमाया।)

सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना॥ १७॥

परन्तु विकराल मुखवाली वह राक्षसी उस हल्के-से घूँसे के प्रहार से ही विकल और लोट-पोट होकर

भूमि पर गिर पड़ी।

ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्‌गदाक्षरम्।
उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम्॥ १८॥

तदनन्तर अत्यन्त विकल वह राक्षसी लङ्का गद्‌गदवाणी में अभिमान-रहित हो कपिवर हनुमान्‌जी से बोली—

प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः॥ १९॥

हे कपिश्रेष्ठ! हे महाबली! मेरे ऊपर कृपा करो और मुझे बचाओ। बुद्धिमान् और बलशाली पुरुष स्त्री का वध नहीं करते।

निर्जिताऽहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल।
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि॥ २०॥

हे बलशालिन्! तुमने अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया है, अतः हे कपिश्रेष्ठ! अब तुम रावण द्वारा पालित इस नगरी में प्रवेश करो और जो कुछ करना चाहते हो स्वच्छन्दता-पूर्वक करो।

❮ चतुर्थः सर्गः ❯ (४)

हनुमान् का लङ्कापुरी में प्रवेश—

स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम्।
विक्रमेण महातेजा हनुमान् कपिसत्तमः॥ १॥
अद्वारेण महाबाहुः प्राकारमभिपुप्लुवे।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः॥ २॥

महाशक्तिशाली, दीर्घ भुजाओंवाले, महातेजस्वी, वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने अपने पराक्रम से लङ्कापुरी की रक्षिका स्वच्छन्द रूपधारिणी राक्षसी लङ्का को जीतकर सिंहद्वार-प्रधान प्रवेश द्वार से न जाकर,[1] परकोटे की दीवार को फाँदकर रात्रि के समय लंका में प्रवेश किया।

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्तापुष्पविराजितम्॥ ३॥

इस प्रकार महापराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी रात्रि के समय लंका में प्रविष्ट होकर उस विशाल राजमार्ग पर गमन करने लगे जिस पर खिले हुए पुष्प बिछाये हुए थे।

ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः।
हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरःसरैः ॥ ४॥

उस रमणीक लंकापुरी में चलते हुए हनुमान्‌जी ने देखा कि कहीं तो गृहस्थों के भवन अट्टहास के उत्कृष्ट नादों से निनादित हो रहे हैं और कहीं वाद्य-यन्त्रों के घोषों से परिपूर्ण हो रहे हैं।

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः॥ ५॥

उन राक्षस-घरों में हनुमान्‌जी ने यत्र-तत्र वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए राक्षसों की ध्वनि सुनी तथा वेद के स्वाध्याय में निरत राक्षसों को भी देखा।

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान् गोऽजिनाम्बरवाससः॥ ६॥

नगर के मध्य सैनिकों की जो छावनी थी उसमें हनुमान्‌जी ने राक्षसराज रावण के अनेक गुप्तचरों को देखा। इनमें कोई दीक्षित=गृहस्थ मुण्डित संन्यासी के रूप में था, कोई गोचर्म धारण करनेवाला था,

---

१. हनुमानजी द्वार से लंका में प्रविष्ट नहीं हुए। इसका एक कारण तो यह था कि वे पहरेदारों की दृष्टि से बचना चाहते थे। दूसरा कारण महाभारतकार ने दिया—

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्।

—महा० सभा० २१।५३

शत्रु के घर में तोड़-फोड़ करके प्रवेश करे द्वार से न जाए और मित्र के घर में द्वार से प्रवेश करे। रावण शत्रु था, अतः हनुमान्‌जी परकोटा फाँदकर अन्दर गये थे।

कोई मृगचर्म धारण करनेवाला और कई बिल्कुल नग्न था।

धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान्।
परिघोत्तमहस्तांश्च ददर्श विविधायुधान्॥ ७॥

धनुषधारी, खड्गधारी, शतघ्नी=तोपधारी, मूसल-धारी, उत्तम परिघों को हाथ में लिये हुए तथा अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करनेवाले सैनिकों को भी हनुमान्‌जी ने देखा।

रक्षोऽधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः।
स तदा तद् गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम्॥ ८॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम्।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम्॥ ९॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम्॥ १०॥

आगे चलकर हनुमान्‌जी ने देखा कि रावण की आज्ञानुसार अन्तःपुर के समक्ष सैनिकों का पहरा है। उस गृह को देखकर हनुमान्‌जी ने स्वर्ण निर्मित द्वारवाले, पर्वत के शिखर पर बसे हुए राक्षसराज रावण के उस महल को, जो श्वेत कमलों से परिपूर्ण खाइयों से घिरा हुआ और ऊँची चहारदीवारी से आवेष्टित था, देखा। वह भवन स्वर्ग के समान सुन्दर एवं अलौकिक था। उस भवन में दिव्य सङ्गीत की ध्वनि गूँज रही थी।

वाजिहेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा गजहयैः शुभैः॥ ११॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः।
भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः॥ १२॥
रक्षितं सुमहावीर्यातुधानैः सहस्रशः।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः॥ १३॥

जिस भवन के द्वार पर घोड़े हिनहिना रहे थे, जहाँ घोड़ों पर पड़े आभूषणों की झंकार हो रही थी, जिस भवन के द्वार पर नाना प्रकार के रथादि यान, विमान, उत्तम नस्ल के हाथी और घोड़े समान सुभूषित बड़े डील-डौलवाले सफेद चार दाँत[१]वाले हाथी तथा प्रफुल्लित पशु और पक्षियों से सुशोभित था, सहस्त्रों महाबली और पराक्रमी राक्षस जिस राजभवन की रखवाली के लिए नियुक्त थे— ऐसे राजभवन में हनुमान्‌जी ने प्रवेश किया।

◀ पञ्चमः सर्गः ▶ (५)

हनुमान् का राजभवन में सीता-अन्वेषण और मन्दोदरी को सीता समझना—

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम्।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः॥ १॥

उस उत्तम राजप्रासाद के मध्य हनुमान्‌जी ने एक स्वच्छ एवं निर्मल तथा विशाल भवन को देखा।

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम्।
सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः॥ २॥

विशाल नेत्रोंवाली सीता को खोजते हुए शत्रुओं का संहार करनेवाले हनुमान् उस भवन में सर्वत्र घूमे।

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम।
अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम्॥ ३॥

---

१. आज के वैज्ञानिकों को आज से तीन शती पूर्व चार दाँतवाले हाथियों का ज्ञान नहीं था। ये चार दाँतवाले हाथी आज से ढाई करोड़ वर्ष से लेकर पचपन लाख वर्ष पूर्व तक अफ्रीका आदि में पाये जाते थे। रामायण श्रीराम का समकालीन इतिहास है। महर्षि वाल्मीकि तीन दाँत और चार दाँतवाले हाथियों से परिचित थे, अतः रामायण की इस अन्तःसाक्षी के आधार पर रामायण काल नौ लाख वर्ष से भी प्राचीन सिद्ध होता है।

उस भवन में इधर-उधर देखने पर हनुमान्‌जी ने एक स्थान पर स्फटिक से निर्मित और विविध रत्नों से विभूषित एक सुन्दर पलंग देखा।

पीत्वाऽप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम्॥ ४॥

मद्यपान एवं स्त्रियों के साथ क्रीड़ा से तृप्त होकर देदीप्यमान पलङ्ग पर सोये हुए वीर राक्षसराज रावण को भी हनुमान्‌जी ने देखा।

काञ्चनाङ्गदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ॥ ५॥

बाजूबन्दों से अलंकृत, इन्द्र-ध्वजा के समान शोभायमान, राक्षसराज, रावण की फैली हुई दोनों भुजाओं[१] को भी हनुमान्‌जी ने देखा।

तस्य राक्षससिंहस्य निश्चक्राम महामुखात्।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद् गृहम्॥ ६॥

राक्षसराज रावण के महामुख[२] से श्वास-प्रश्वास के द्वारा निकलनेवाली गन्ध उस भवन को परिपर्णू कर रही थी।

पादमूलगताश्चापि दर्श सुमहात्मनः।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेगृहि॥ ७॥

स्त्रियों के प्रिय उस राक्षसराज रावण के भवन में रावण के पैताने=उसके चरणों के समीप पड़ी हुई उसकी स्त्रियों को भी महात्मा हनुमान् ने देखा।

शशिप्रकाशवदनाश्चारुकुण्डलभूषिताः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः॥ ८॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने देखा कि उन स्त्रियों के मुखमण्डल चन्द्रमा के समान चमचमा रहे थे, उत्तम कुण्डल उनके कानों की शोभा बढ़ा रहे थे और उनके गलों में बिना कुम्हलाए ताजे फूलों की मालाएँ पड़ी हुई थीं।

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः॥ ९॥

मद्य के नशे में चूर और नाच-गाने से थक कर राक्षसराज रावण की वे स्त्रियाँ, जिसे जहाँ स्थान मिला वहीं पड़कर सो रही थीं।

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे।
ददर्श रूपसम्पन्नामपरां स कपिः स्त्रियम्॥ १०॥

अन्त में उन स्त्रियों से अलग, एक सुन्दर पलंग पर सोई हुई अपूर्व रूपयौवनशालिनी स्त्री को हनुमान्‌जी ने देखा।

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।
विभूषयन्तीमिव तत्स्वश्रिया भवनोत्तमम्॥ ११॥

मणियों और मोतियों से युक्त, आभूषणों से अलंकृत वह देवी अपने सौन्दर्य और आभूषणों से उस भवन को प्रकाशित कर रही थी।

गौरीं कनकवर्णाङ्गीमिष्टामन्तः पुरेश्वरीम्।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥ १२॥

गौरवर्णवाली, स्वर्ण के समान शरीर की कान्तिवाली, रावण की प्यारी, अन्तःपुर की महारानी, परमसुन्दरी मन्दोदरी को जो वहाँ सोई पड़ी थी—हनुमान्‌जी ने देखा।

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः॥ १३॥

महाबाहु पवनपुत्र हनुमान् ने सर्वाभरणभूषित मन्दोदरी के लावण्य और यौवन को देखकर उसे सीता समझ लिया और वे हर्ष से प्रफुल्लित हो गये।

---

१. रावण के दशमुख और बीस भुजाएँ बताई जाती हैं, परन्तु यहाँ रावण के केवल दो ही भुजाएँ बताई गई हैं। संस्कृत श्लोक में ''भुजौ'' पद से दो भुजाएँ ही सिद्ध होती हैं।

२. यहाँ रावण के एक ही मुख का वर्णन किया गया है। श्लोक में पद है '**महामुखात्**'। यदि रावण के अनेक सिर होते तो **महामुखात्** के स्थान पर **महामुखेभ्यः** पद होता।

षष्ठः सर्गः (६)

पानभूमि-अन्वेषण—

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः॥ १॥

थोड़ी देर पश्चात् हनुमान्‌जी ने पूर्व-निर्धारित 'मन्दोदरी ही सीता है'—इस विचारधारा को बदल दिया। वे स्थिर होकर बैठ गये और सीताजी के विषय में अन्य प्रकार की चिन्ता करने लगे।

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलङ्कर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥ २॥

(वे मन-ही-मन सोचने लगे) पतिव्रता सीता श्रीराम के वियोग में न तो इस प्रकार सो सकती हैं, न खा-पी सकती हैं, न शृंगार कर सकती हैं, और न सीता मद्यपान ही कर सकती हैं।

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः॥ ३॥

'यह कोई और स्त्री है'—ऐसा निश्चय कर कपिश्रेष्ठ हनुमान् सीता के दर्शन की अभिलाषा से पुनः उस पान-भूमि में विचरने लगे।

तत्र सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः।
ददर्श सुमहातेजा न ददर्श च जानकीम्॥ ४॥

महातेजस्वी हनुमान् ने रावण के उस सम्पूर्ण अन्तःपुर को अच्छी तरह देखा, परन्तु उन्हें कहीं भी सीताजी दिखाई नहीं पड़ीं।

निरीक्षमाणश्च तदा ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशङ्कितः॥ ५॥

उन सब स्त्रियों को देखने से हनुमान्‌जी के मन में धर्मलोप की आशंका से महती चिन्ता उत्पन्न हो गई।

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥ ६॥

उन्होंने सोचा—स्त्रियों के अन्तःपुर में जाना और सोती हुई स्त्रियों को देखना—मेरा यह कर्म मेरे धर्मार्जित पुण्य को नष्ट कर देगा।

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः॥ ७॥

यद्यपि पर-स्त्रियों को देखते हुए मेरी दृष्टि विषय वासना से युक्त नहीं थी फिर भी मैंने पराई स्त्रियों को देखा तो है।

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी॥ ८॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर सोचते-सोचते हनुमान्‌जी के मन में कर्तव्य का निश्चय करानेवाला एक दूसरा निश्चित विचार उत्पन्न हुआ—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ताः रावणस्त्रियः
न हि मे मनसा किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते॥ ९॥

ठीक है, मैंने रावण की इन सभी स्त्रियों को निश्चिन्त अवस्था में सोते हुए देखा है, परन्तु इनके दर्शन से मेरे मन में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥ १०॥

इन्द्रियों को शुभ और अशुभ कार्यों में प्रेरित करने के लिए मन प्रधान कारण माना गया है, वह मन मेरे वश में है, अतः मुझे सोती हुई पराई स्त्रियों को देखने का पाप नहीं लग सकता।

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सर्वथा परिमार्गणे॥ ११॥

इसके अतिरिक्त मैं सीता को ढूँढ़ भी कहाँ सकता था क्योंकि ढूँढ़ने के समय स्त्रियाँ स्त्रियों में ही खोजी जा सकती हैं।

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमृग्यते।
न शक्या प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्॥ १२॥

जिस प्राणी की जो जाति होती है वह प्राणी उसी जाति में खोजा जाता है। कोई खोई हुई स्त्री मृगियों के समूह में नहीं खोजी जाती।

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी॥ १३॥

मैंने सीताजी को खोजते हुए, शुद्धान्तःकरण से रावण के सम्पूर्ण अन्तःपुर को ढूँढ़ डाला, परन्तु मुझे सीताजी कहीं भी दिखाई नहीं पड़ीं।

तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे॥ १४॥

अन्य श्रेष्ठ स्त्रियों को देखते हुए भी सीता को वहाँ न देखकर हनुमान्‌जी मान भूमि को छोड़कर अन्य स्थानों में सीताजी की खोज करने में प्रवृत्त हुए।

➤ सप्तमः सर्गः ➤ (७)

हनुमान् का विषाद—

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः॥ १॥

(हनुमान् मन-ही-मन सोचने लगे) मैंने रावण का सम्पूर्ण अन्तःपुर देख डाला, राक्षसराज रावण की सभी स्त्रियों को भी देख लिया, परन्तु सती-साध्वी सीता के दर्शन नहीं हुए, अतः मेरा सारा परिश्रम मिट्टी में मिल गया।

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति सङ्गताः।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः॥ २॥

यहाँ से लौटकर जाने पर जब मेरे वानर साथी मुझसे पूछेंगे—हे वीर! तुमने वहाँ जाकर क्या किया, हम लोगों को बताओ—तब मैं उनसे क्या कहूँगा।

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः॥ ३॥

(इस प्रकार निराश और हताश होकर भी हनुमान्‌जी ने मन-ही-मन में सोचा—मुझे हतोत्साह नहीं होना चाहिए क्योंकि) उत्साह ही कार्यसिद्धि की कुञ्जी है, उत्साह ही परम सुख का देनेवाला है, उत्साह ही मनुष्य को कार्यों में प्रवृत्त करनेवाली है।

इति सञ्चिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि॥ ४॥
उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः पुनः।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः॥ ५॥

अपने मन में ऐसा निश्चय कर हनुमान्‌जी सीता को ढूँढ़ने में पुनः प्रवृत्त हुए। वे भूमिगृह (तहखाने) मण्डपगृह और एकान्त में बने हुए घरों मे ऊपर-नीचे सर्वत्र ढूँढ़ने लगे। कभी वे ऊपर-चढ़ जाते, कभी चल पड़ते। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण स्थानों में सीता को खोजा।

सम्परिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनम्।
अदृष्टा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः॥ ६॥

रावण के उस राजमहल में चारों ओर घूम-फिरकर खोजने पर भी जब हनुमान् को सीताजी दिखाई न दीं तो वे मन-ही-मन में कहने लगे—

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम्।
नहि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम्॥ ७॥

श्रीराम का प्रिय कार्य करने की इच्छा से मैंने सम्पूर्ण लङ्कापुरी को दुबारा देख डाला फिर भी मैं सर्वाङ्गसुन्दरी सीताजी को नहीं देख पाया।

इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने।
आख्याता गृध्रराजेन न च पश्यामि तामहम्॥ ८॥

गृध्रराज सम्पाति ने कहा था कि सीता रावण के महल में है, परन्तु यहाँ तो वह दिखाई नहीं देती।

किन्नु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा।
उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात्॥ ९॥

रावण के द्वारा बलपूर्वक हरण की गई सीता ने कहीं विवश होकर रावण को स्वीकार तो नहीं कर

लिया ? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सीता सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न विदेहराज जनक की सुपुत्री है।

उपर्युपरि वा नूनं सागरं क्रमतस्तदा।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा॥ १०॥

जिस समय रावण आर्या सीता को आकाश-मार्ग से ले जा रहा था उस समय छटपटाती हुई सीता निश्चय ही समुद्र में गिर गई होगी।

हा राम लक्ष्मणेत्येवं हाऽयोध्ये चेति मैथिली।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति॥ ११॥

अथवा, हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्या! इस प्रकार कहकर विलाप करती हुई सीता ने शरीर त्याग दिया होगा।

अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने।
नूनं लालप्यते सीता पञ्जरस्थेव शारिका॥ १२॥

अथवा यह भी सम्भव है कि सीता को रावण के राजमहल में ही कहीं छिपाकर रखा गया हो और वह पिंजड़े में बन्द मैना की भाँति बार-बार राम नाम का जप कर रही हो।

जनकस्य सुता सीता रामपत्नी सुमध्यमा।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत्॥ १३॥

कुछ भी हो, क्षीण कटिवाली, कमलनयनी, महाराज जनक की पुत्री और श्रीराम की धर्मपत्नी सीता रावण के वश में कैसे हो सकती है?

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम्॥ १४॥

अस्तु, चाहे रावण ने सीता को कैद कर रखा हो, चाहे वह समुद्र में गिरकर नष्ट हो गई हो अथवा वह स्वयं मर गई हो, परन्तु सीता से स्नेह करनेवाले राम के समक्ष मैं इनमें से एक भी बात नहीं कह सकता।

अस्मिन्नेवं गते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम्।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन्॥ १५॥

ऐसी विषम परिस्थिति वाले कार्य में या अनिश्चित अवस्था में क्या किया जाए अब हनुमान्‌जी इस पर विचार करने लगे—

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति॥ १६॥

यदि मैं सीता को बिना देखे ही यहाँ से वानर राज सुग्रीव की किष्किन्धा पुरी को लौट चलूँ तो इसमें मेरा पुरुषार्थ ही क्या होगा?

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परमप्रियम्।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥ १७॥

वहाँ जाकर यदि मैं श्रीराम के समक्ष यह हृदयविदारक अप्रिय वचन कहूँगा कि मैंने सीता को नहीं देखा तो वे तत्क्षण अपने प्राण त्याग देंगे।

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम्।
भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीराम को विपत्ति में पड़े हुए और प्राण त्यागने के लिए समुद्यत देखकर भ्रातृवत्सल मेधावी लक्ष्मणजी भी जीवित नहीं रहेंगे।

विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति।
भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति॥ १९॥

दोनों भाइयों की मृत्यु के दुःखद समाचार को सुनकर भरतजी भी प्राण त्याग देंगे और भरत को मरा हुआ देखकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे।

पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः॥ २०॥

अपने पुत्रों को मरा हुआ देखकर इनकी माताएँ कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी मर जायेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्॥ २१॥

राम को मरा हुआ देखकर कृतज्ञ एवं सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी अपने प्राण त्याग देंगे।

दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम्॥ २२॥

तब दुःखिया, मर्माहत, दीन, आनन्द-रहित, तपस्विनी रुमा देवी पतिशोक से पीड़ित होकर अपने प्राण त्याग देगी।

बालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता।
पञ्चत्वं च गते राज्ञी तारापि न भविष्यति॥ २३॥

अपने पति बाली के मारे जाने के दुःख से पीड़ित और शोक से विकल तारा उसी समय मरने को तैयार थी, अब सुग्रीव के मर जाने पर वह कभी भी जीवित न बच सकेगी।

मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च।
कुमारोऽप्यङ्गदः कस्माद्धारयिष्यति जीवितम्॥ २४॥

माता-पिता और सुग्रीव के मारे जाने पर युवराज अङ्गद भी कैसे जीवित रह सकेगा ?

भर्तृजेन तु दुःखेन ह्यभिभूता वनौकसः।
लालिताः कपिराजेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः॥ २५॥

अपने स्वामी सुग्रीव को मरा हुआ देखकर कपिराज सुग्रीव द्वारा लालित और पालित वनवासी वानरगण अत्यन्त दुःखी होकर अपने प्राण त्याग देंगे।

सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च॥ २६॥

अपने स्वामी के शोक से सन्तप्त होकर अपने पुत्र, स्त्री और मन्त्रियों को साथ लेकर वानरगण पर्वत शिखरों पर चढ़, ऊबड़-खाबड़ भूमि में गिरकर अपने प्राण त्याग देंगे।

घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम्॥ २७॥

मैं समझता हूँ मेरे किष्किन्धा लौट जाने पर वहाँ भयंकर हाहाकार मच जायेगा क्योंकि मेरे जाते ही इक्ष्वाकुकुल और वानरकुल का नाश निश्चित है।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्॥ २८॥

अतः मैं यहाँ से लौटकर किष्किन्धा नहीं जाऊँगा। यदि मुझे सीताजी के दर्शन नहीं हुए तो मैं वानप्रस्थ धारण कर लूँगा।

इति चिन्तां समापन्नः सीतामनधिगम्य ताम्।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः॥ २९॥

इस प्रकार सोच विचार में डूबा हुआ हनुमान् सीता को न पाकर ध्यान और शोक में डूबकर विचार करने लगा।

अशोकवनिका चेयं दृश्यते महाद्रुमा।
इमामभिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया॥ ३०॥

अरे! बड़े-बड़े विशाल वृक्षोंवाली अशोकवाटिका दृष्टिगोचर हो ही है, इसमें तो मैंने सीता को खोजा ही नहीं, अतः अब मैं इसमें जाऊँगा।

◀ अष्टमः सर्गः ▶ (८)

अशोकवाटिका में पहुँचकर सीता को खोजना—

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम्।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम्॥ १॥

उस अद्भुत अशोकवाटिका में पहुँचकर हनुमान् ने देखा कि वह पक्षियों के कलरव से निनादित हो रही है तथा सोने और चाँदी के समान चमकनेवाले वृक्षों से वह चहुँओर से घिरी हुई है।

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम्॥ २॥

हनुमान्‌जी ने देखा कि अशोकवाटिका में विविध प्रकार के फलों और फूलों के वृक्ष हैं तथा उन वृक्षों पर मतवाली कोयलें कूक रही हैं और भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता॥ ३॥

नानाप्रकार के वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ढककर वहाँ की भूमि शृंगार की हुई स्त्री के समान सुशोभित हो रही थी।

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णा परमवारिणा।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः॥ ४॥

उस वाटिका में सुस्वादु उत्तम जल से परिपूर्ण विविध आकार-प्रकार की अनेक बावलियाँ थीं। इन बावलियों के घाटों और सीढ़ियों में बहुमूल्य मणियाँ जड़ी हुई थीं।

ततोऽम्बुधरसङ्काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम्।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम्॥ ५॥

उस वाटिका में मेघ के समान उच्च शिखरोंवाला एक कृत्रिम पर्वत भी था। यह पर्वत चित्र-विचित्र चोटियों से युक्त था और चारों ओर फैला हुआ था।

ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम्॥ ६॥

उस पर्वत से निकलकर एक नदी बह रही थी हनुमान्‌जी को पर्वत से गिरती हुई वह नदी ऐसी प्रतीत हुई मानो वह प्रिय की गोद से गिरती हुई कोई प्रिया हो।

काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श हनुमान् कपिः।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः॥ ७॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ने स्वर्ण के समान चमकनेवाले एक शिंशप=अशोक वृक्ष को देखा। उसके चारों ओर बैठने के लिए स्वर्ण-वेदिकाएँ बनी हुई थीं।

तामारुह्य महाबाहुः शिंशपां पर्णसंवृताम्।
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम्॥ ८॥

हनुमान्‌जी शिंशप वृक्ष पर चढ़ गये और उसके पत्तों में अपने आपको छिपा लिया तथा अपने मन में सोचने लगे कि कदाचित् राम के दर्शन के लिए उत्सुक मिथिलेश कुमारी सीता को मैं यहाँ देख सकूँ।

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः।
वनसञ्चारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी॥ ९॥

दुरात्मा रावण की यह अशोकवाटिका अत्यन्त रमणीक है और सीता वन-भ्रमण में बहुत कुशल है, अतः वह भ्रमण करती हुई यहाँ अवश्य आयेगी।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥ १०॥

प्रातः और सायंकाल सन्ध्या करनेवाली, श्यामा=नवोढा तथा सुन्दर वर्णवाली सीता इस नदी के स्वच्छ जल में स्नानादि और सन्ध्या करने के लिए इस स्थान पर अवश्य आयेंगी।

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति साऽवश्यमिमां शिवजलां नदीम्॥ ११॥

चन्द्रमा के समान मुखवाली वह देवी सीता यदि जीवित होंगी तो इस शीतल जलवाली नदी पर अवश्य आएँगी।

एवं तु मत्वा हनुमान्महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं
सुपुष्पिते पत्रघने निलीनः॥ १२॥

ऐसा सोचकर और फूले हुए शिंशप वृक्ष के सघन पत्तों में अपने आपको छिपाकर हनुमान्‌जी सीता के आने की प्रतीक्षा करते हुए अपनी दृष्टि को दौड़ाकर चारों ओर देखने लगे।

नवमः सर्गः (९)

सीता के दर्शन और हनुमान् का सन्ताप—

अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः।
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमुच्छ्रितम्॥ १॥

मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम्।
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्॥ २॥

उस अशोक वाटिका में वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने समीप

में ही एक ऊँचे उठे हुए गोलाकार भवन को देखा। उस भवन में एक सहस्र खम्भे थे और उसका रङ्ग कैलास पर्वत के समान धवल था। उस भवन की सीढ़ियाँ मूँगे की तथा चबूतरे सोने के बने हुए थे।

विमलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम्।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥ ३॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्॥ ४॥

वह भवन अत्यन्त निर्मल था और ऊँचाई में आकाश से बातें करता था। उस प्रासाद को देखते हुए हनुमान्‌जी ने मैले वस्त्रों से युक्त, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवास करने से अत्यन्त दुर्बल, अत्यन्त दुःखी, बार बार लम्बी साँस लेती हुई, शुक्लपक्ष के आरम्भ में द्वितीया की क्षीण चन्द्ररेखा के समान एक निर्मल स्त्री को देखा।

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्मवाससा।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम्॥ ५॥

वह एक पुरानी पीले रंग की उत्तम साड़ी पहने हुए थी। अलंकारों से रहित वह देवी पद्महीन कीचड़वाली बावड़ी के समान प्रतीत हो रही थी।

अश्रूपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम्॥ ६॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः॥ ७॥

आँसुओं से पूर्ण मुखवाली, अतिदीन, भोजन आदि न करने के कारण अत्यन्त दुर्बल, सदा शोकान्वित और चिन्तित तथा निरन्तर दुःख से परिपूर्ण, विशाल नेत्रोंवाली, अनिन्दिता राजकुमारी सीता को देखकर हनुमान्‌जी ने तर्क-वितर्क करके निश्चय किया कि यही सीता है।

एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम्॥ ८॥

इस प्रकार जनकनन्दिनी सीता को देखकर पवनपुत्र हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए। वे मन के द्वारा राम के पास पहुँच गये अर्थात् राम का स्मरण करने लगे और बार बार उनकी प्रशंसा करने लगे।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनुमान्विललाप ह॥ ९॥

थोड़ी देर तक राम के सम्बन्ध में सोचकर महातेजस्वी हनुमान् सीता के लिए विलाप करने लगे और उनकी आँखें आँसुओं से पूर्ण हो गईं।

मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया
यदि सीताऽपि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः॥ १०॥

गुरुओं द्वारा सुशिक्षित अथवा गुरु के प्रति विनीत श्रीलक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम की धर्मपत्नी सीता जब ऐसे कष्ट भोग रही है तब दूसरों का तो कहना ही क्या है? काल के प्रभाव का उल्लंघन करना सर्वथा दुःसाध्य है।

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता॥ ११॥

यह धर्म को जाननेवाले, किये हुए उपकार को माननेवाले और लोक-प्रसिद्ध श्रीराम की प्राणप्रिय पत्नी है, परन्तु इस समय काल के कुचक्र से यह बेचारी राक्षसियों के वश में आ पड़ी है।

सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता
अचिन्तयित्वा दुःखानि प्रविष्टा निर्जनं वनम्॥ १२॥

अपने पति के प्रेम के वशीभूत होकर, सम्पूर्ण राजकीय सुख-भोगों को तिलाञ्जलि देकर तथा वन के दुःखों की रत्ती भर भी परवाह न कर यह निर्जन वन में चली आई।

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणे रता।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा॥ १३॥
सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी॥ १४॥

जो सीता फल-मूल खाकर सन्तुष्ट रहती थी जो सदा अपने पति की सेवा में लगी रहती थी जो राजमहल की भाँति वन में भी प्रसन्न रहती थी, जो सदा मुस्कराकर बात करती थी, जिसने कभी कष्ट

नहीं झेले वही स्वर्ण के सदृश वर्णवाली सीता आज इन महान् कष्टों और अनर्थों को भोग रही है।

अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यात्परिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्॥ १५॥

निश्चय ही सीता को पुनः प्राप्त कर श्रीराम उसी प्रकार प्रसन्न होंगे जिस प्रकार खोये हुए राज्य को प्राप्त करके सम्राट् प्रसन्न होता है।

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमलालसा॥ १६॥

राजकीय सुख-भोगों से वञ्चित और अपने प्रिय जनों से रहित यह सीता श्रीराम से मिलने की आशा से ही प्राणों को धारण किये हुए है।

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति॥ १७॥

यह सीता न तो अपने समीप रहनेवाली राक्षसियों को देखती है और न फूले-फूले इन वृक्षों की ओर देखती है। यह श्रीराम के प्रेम में मग्न होकर अपने हृदय में सदा राम को ही देखती है।

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि।
एषा विरहिता तेन भूषणार्हा न शोभते॥ १८॥

स्त्रियों के लिए पति ही उनका भूषण है, अपितु भूषण से भी बढ़कर है। शोभा के योग्य होने पर भी यह सीता पति वियोग के कारण शोभा को प्राप्त नहीं हो रही है।

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति॥ १९॥

समर्थ श्रीराम सीताजी के वियोग में भी जीवित हैं। इस दुःख में अपने आपको संभाले हुए हैं, सचमुच वे बड़ा दुष्कर कार्य कर रहे हैं।

इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः॥ २०॥

काले केशवाली, कमलनयनी और सुख भोगने योग्य इस जानकी को दुःखी देख मेरा कलेजा भी दुःख के मारे फटा जा रहा है।

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव निविष्टबुद्धिः।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे
बली हरीणमृषभस्तरस्वी॥ २१॥

इन सब बातों पर विचार करके—"ऐसी सीता है" ऐसी निश्चित बुद्धि करके और अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ देख महावीर, अत्यन्त वेगवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसी वृक्ष पर शान्ति पूर्वक बैठे रहे।

◀ दशमः सर्गः ▶ (१०)

रावण का अशोकवाटिका में आगमन—

तथा विप्रेक्षमाणास्य वनं पुष्पितपादपम्।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेषा निशाभवत्॥ १॥

पुष्पित वृक्षों से युक्त उस अशोक वाटिका को दुखते देखते और सीता को खोजते खोजते थोड़ी ही रात्रि शेष रह गई थी।

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥ २॥

उषाकाल होने पर साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता और बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले वेदपाठी राक्षसों की वेद-ध्वनि को हनुमान्जी ने सुना।

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः।
प्राबुध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः॥ ३॥

उधर प्रातःकाल होने पर कर्णप्रिय और मन को आह्लादित करनेवाले मङ्गलसूचक वाद्यों की मधुर ध्वनि से महाबाहु एवं महाबली रावण को जगाया गया।

विबुध्य तु यथाकालं राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत्॥ ४॥

महाभाग एवं महाप्रतापी रावण यथासमय जाग्रत् हो गये और उठते ही सोते समय खिसकी हुई अपनी मालाओं और वस्त्रों को सम्भालते हुए वे सीता के विषय में सोच-विचार करने लगे।

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः।
न स तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम्॥ ५॥

सीता के प्रति अत्यन्त आसक्त होने के कारण उसकी कामवासना उग्ररूप में उमड़ पड़ी थी। वह अपने काम वेग को रोकने में सर्वथा असमर्थ था।

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम्।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम्॥ ६॥

अतः उसने आभूषणों से अलंकृत होकर और इस प्रकार अपूर्व शोभा को धारण कर सघन वृक्षों से पूर्ण उस अशोकवाटिका में प्रवेश किया।

अङ्गनाशतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन्।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः॥ ७॥

जब रावण अशोकवाटिका की ओर चला तो उसके पीछे सौ स्त्रियाँ भी इसी प्रकार चलीं जैसे देवराज इन्द्र के पीछे देव और गन्धर्वों की स्त्रियाँ चला करती हैं।

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः।
बालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः॥ ८॥

उनमें से कुछ स्त्रियाँ अपने हाथों में स्वर्ण-दीपक लिए हुए थीं। किसी के हाथों में चँवर और किसी के हाथ में ताड़ के पंखे थे।

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम्।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ॥ ९॥

कोई राजहंस की भाँति श्वेत और पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति गोल सोने की डण्डीवाला छत्र रावण के ऊपर ताने हुए उसके पीछे चली जा रही थी।

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमाः स्त्रियः।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव॥ १०॥

इस प्रकार रावण की ये सुन्दरी और प्रिया स्त्रियाँ, जिनकी आँखें नींद और नशे से भरी हुई थीं अपने वीर पति के पीछे उसी प्रकार चली जा रही थीं जिस प्रकार मेघ के पीछे विद्युत् चला करती है।

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम्।
शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मारुतात्मजः॥ ११॥

प्रातःकालीन उस वेदध्वनि के पश्चात् पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने उन सुन्दर स्त्रियों की तगड़ी और बिछुओं की झंकार को सुना।

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम्।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः॥ १२॥

साथ ही कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने यह भी देखा कि परदारापहरण आदि अयुक्त कर्म करनेवाला तथा अचिन्त्य एवं असाधारण बल और पुरुषार्थ से युक्त रावण उस वाटिका के द्वार पर आ पहुँचा है।

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः।
रावणोऽयं महाबाहुरित्यचिन्तयत् वानरः॥ १३॥

परम रूपवती स्त्रियों से घिरे हुए राक्षसराज रावण को ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति शोभित देखकर हनुमान्‌जी ने सोचा कि यह महाबाहु रावण ही है।

स तथाप्युग्रतेजाः सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा।
पत्रगुह्यान्तरे सक्तो हनुमान् संवृतोऽभवत्॥ १४॥

यद्यपि हनुमान्‌जी स्वयं भी अत्यन्त तेजस्वी थे तथापि रावण के तेज के समक्ष वे निस्तेज हो गये और वृक्ष की एक डाली पर उसके सघन पत्तों में अपने आपको छिपा लिया।

सीतामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम्।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः॥ १५॥

उधर रावण काले केशोंवाली, सुन्दर एवं पतली कटिवाली, कठिन स्तनोंवाली और काले नेत्रोंवाली सीता को देखने के लिए उसके समीप पहुँचा।

➤ एकादशः सर्गः ➤ (११)

रावण का सीता को प्रलोभन एवं प्रणय-प्रार्थना—

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा॥ १॥

राक्षसराज रावण को अशोकवाटिका में प्रवेश करते देखकर सीता डर के मारे वायु से कम्पित केले के पत्तों के समान काँपने लगी।

आच्छाद्योदरमूरुभ्यां बाहुभ्यां च पयोधरौ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदन्ती वरवर्णिनी॥ २॥

विशाल नेत्रोंवाली एवं सुन्दर वर्णवाली सीता दोनों जाँघों से अपने उदर और दोनों हाथों से अपने वक्षःस्थल को ढाँपकर रोती हुई वहाँ बैठ गई।

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।
ददर्श सीतां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे॥ ३॥

रावण ने देखा कि राक्षसियों से रक्षित, दुःख से अत्यन्त आर्त विदेह राजकुमारी सीता समुद्र की लहरों के झकोरों से डगमगाती नाव की तरह काँप रही है।

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः॥ ४॥

बिना बिछौना बिछाए, भूमि पर बैठी हुई व्रतचारिणी सीता को रावण ने इस प्रकार देखा जैसे किसी वृक्ष की डाली कटकर पृथिवी पर गिर पड़ी हो।

मलमण्डनचित्राङ्गीं मण्डनार्हाममण्डिताम्।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च॥ ५॥

सीता के सभी अङ्गों पर मैल चढ़ा हुआ था, फिर भी वह सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह भूषणों से भूषित होने योग्य होने पर भी भूषित नहीं थी, वह कीचड़ में सनी कमलिनी के समान सुशोभित भी दिखाई दे रही थी और अशोभित भी। (अतिरूपवती होने के कारण सुशोभित और मलिनता के कारण अशोभित दिखाई दे रही थी।)

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तिमिव मनोरथैः॥ ६॥

उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो सीता सङ्कल्परूपी घोड़ों से युक्त मन के रथ पर आरूढ़ होकर लोकप्रसिद्ध राजसिंह श्रीराम के पास जा रही है। (अर्थात् उस समय सीता राम के ध्यान में मग्न थी।)

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव॥ ७॥

उस समय सीता नष्ट हुई कीर्ति के समान, तिरस्कृत श्रद्धा के समान, बुद्धि के समान और टूटी हुई आशा के समान जान पड़ती थी।

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षनिशामिव॥ ८॥

सीता पति के वियोगजन्य शोक से सन्तप्त होकर ऐसे सूख गई थी जैसे टूटे हुए बाँधवाली नदी जल के इधर-उधर बह जाने से सूख जाती है। शरीर में उबटन आदि न लगने से वह कृष्णपक्ष की रात्रि की भाँति कालीकलूटी-सी जान पड़ती थी।

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव॥ ९॥

बिना प्रयत्न के बँधी हुई एक लम्बी वेणी से वह उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार वर्षाकाल के अन्त में हरी वन-पंक्ति से पृथिवी सुशोभित होती है।

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पहारां तपोधनाम्॥ १०॥

उपवास से, शोक से, चिन्ता और भय के कारण क्षीण शरीरवाली, कृश, दीन, अल्पाहार करनेवाली और तपस्विनी सीता को रावण ने देखा।

स तां पतिव्रतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम्।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः॥ ११॥

भयंकर राक्षसियों से घिरी हुई, दीन भाव को प्राप्त दुःखिया एवं तपस्विनी सीता से रावण हाव-भाव परिपूर्ण मधुर शब्दों में अपने मनोगत अभिप्राय को प्रकट करते हुए बोला—

मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम्।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि॥ १२॥

हे हथिनी की सूँड के समान जाँघवाली सीते! क्या तू मुझे देखकर भय से अपने उदर और स्तनों को छिपाकर अपने आपको मेरे से ओझल करना चाहती है?

कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे॥ १३॥

हे सम्पूर्ण और शोभन अङ्गों से सम्पन्न विशालाक्षी! हे सर्वलोक मनोहरे! हे प्रिय! मैं हृदय से तुम्हें चाहता हूँ, अतः तू भी मुझे स्वीकार कर।

नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणीः।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम्॥ १४॥

हे सीते! इस समय यहाँ न तो कोई मनुष्य है और न ही स्वेच्छाचारी कोई राक्षस है (फिर तू डरती किससे है?) मुझसे तुम्हें जो भय उत्पन्न हो गया है उसे तुम अपने हृदय से निकाल दो।

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥ १५॥

हे भीरु! बलपूर्वक परस्त्रियों का हरण करना तथा उनसे सम्भोग करना निश्चय ही राक्षसों का स्वाभाविक धर्म है।

एवं चैतदकामां तु न त्वां स्प्रक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम्॥ १६॥

इतना होने पर भी हे मैथिली! यदि तू न चाहेगी तो कामनाहीन तुम्हारे शरीर का मैं स्पर्श भी नहीं करूँगा[1] भले ही कामदेव मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरी कामाग्नि को प्रज्ज्वलित करता रहे।

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा॥ १७॥

हे देवी! तुम यहाँ डरो मत! हे प्रिये! मुझ पर विश्वास करो। तुम मुझे अपना समझकर मेरे साथ यथार्थ प्रेम करो। अब किसी प्रकार का शोक मत करो।

एकवेणी धराशय्या ध्यानं मलिनाम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते॥ १८॥

एक वेणी धारण करना, भूमि पर सोना, सदा चिन्तित रहना, मलिन वस्त्र धारण करना, और अकारण उपवास करना—यह सब तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है।

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च॥ १९॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि॥ २०॥

हे मैथिली! मुझे स्वीकार करके तू रंग-बिरंगे पुष्पों की मालाएँ, सुगन्धयुक्त अगर और चन्दन, नाना प्रकार के उत्तम वस्त्र, दिव्य-आभूषण, बहुमूल्य पेय पदार्थ, मूल्यवान् बिछौने और कालीन तथा गीत, नृत्य और वाद्य आदि की सामग्री—सभी कुछ उपलब्ध कर।

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्।
मां प्राप्य हि कथं तु स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे॥ २१॥

हे सीते! तुम स्त्री-रत्न हो, अतः ऐसा श्रृंगारहीन वेश मत बनाओ, अपितु अपने शरीर को अलंकारों से अलंकृत करो। हे सुन्दरी! मुझे प्राप्त करके भी तू अपने श्रृंगार करने योग्य शरीर को क्यों विनष्ट कर रही है?

इदं ते चारुसञ्जातं यौवनं ह्यतिवर्तते।
यदतीतं पुनर्नैति स्त्रोतः शीघ्रमपामिव॥ २२॥

हे सीते! तेरी यह सुन्दर उठी जवानी बीती जा रही है। स्मरण रख! यह यौवन नदी की धार की भाँति है जो एक बार बह जाने पर पुनः लौट कर

१. इस प्रसङ्ग में रावण के उज्ज्वल एवं आदर्श चरित्र की झांकी अवलोकनीय है।

नहीं आती।

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वसृक्।
नहि रूपोपमा त्वन्या तवास्ति शुभदर्शने॥ २३॥

हे सुन्दरी! ऐसा प्रतीत होता है कि रूप रचनेवाले सृष्टिकर्त्ता प्रभु ने तेरी रचना करके फिर रचना ही बन्द कर दिया है, क्योंकि तेरे समान रूपवती स्त्री और कोई दिखाई ही नहीं पड़ती।

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम्।
कः पुमानतिवर्तेत साक्षादपि पितामहः॥ २४॥

हे वैदेही! तुम जैसी रूप-यौवनशालिनी युवती को पाकर कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसका मन कुमार्ग में न जाए फिर वह व्यक्ति चाहे साक्षात् ब्रह्मा भी क्यों न हो।

यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते॥ २५॥

हे चन्द्रमुखी! हे सुन्दर कटिवाली! मैं तेरे शरीर के जिस-जिस अंग पर दृष्टि डालता हूँ मेरी आँख उसी-उसी अंग में अटककर रह जाती है।

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेनं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव॥ २६॥

हे मैथिलि! तू मेरी पत्नी बन जा। राम के प्रति अपने मोह को त्याग दे। मेरी जो बहुत-सी उत्तम स्त्रियाँ हैं तू उनकी पटरानी बन जा।

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम्।
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा॥ २७॥

हे सीते! तू मुझे स्वीकार कर जिससे आज ही तेरा भली-भाँति श्रृंगार किया जाए। मेरी इच्छा है कि मैं तेरे श्रृंगार किए हुए रूप को देखूँ।

भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च[१]।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च॥ २८॥

हे भीरु! मुझे स्वीकार करके तू अपनी इच्छानुसार भोगों को भोग, मदिरा का पान कर और मेरे साथ रमणकर तथा स्वेच्छापूर्वक धन या भूमि का दान कर।

किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा।
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः॥ २९॥

हे सुभगे! वल्कल वस्त्रधारी राम को लेकर तू क्या करेगी? तेरे अपहरण के कारण राम के विजय-साधन—उत्साह आदि नष्ट हो गये हैं राज्यलक्ष्मी उसके हाथ से निकल गई है और वह वनों में मारा-मारा फिरता है।

न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसाऽपि वा॥ ३०॥

हे देवि! तप, बल, पराक्रम, धन, तेज और यश में राम मेरे समान नहीं है।

नहि वैदहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते।
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः॥ ३१॥

हे वैदहि! राम तो अब तुझे देख भी नहीं सकता (और कदाचित् देख भी ले) तो मेरे हाथों से तुझे किसी भी प्रकार ले नहीं सकता।

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च।
मयि लल ललने यथासुखं तव
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते॥ ३२॥

अतः हे सीते! तू राम का ध्यान छोड़कर आनन्दपूर्वक मद्य का पान कर, विहार कर, रमण कर, भोगों का उपभोग कर। मैं तुझे यथेष्ट भूमि, धन और भोगों को प्रदान करता हूँ। हे ललने! तू भी मेरे साथ मनमाना सुख भोग और तेरे साथ तेरे बन्धुजन भी सुख भोगें।

---

१. पाश्चात्य संस्कृति का आदर्श है 'Eat, drink and be merry' प्राचीनकाल में भी यह संस्कृति थी। अंग्रेजी के ये शब्द संस्कृत श्लोक का अनुवाद मात्र ही हैं। देखिए—'**भुङ्क्ष्व भोगान्**'-Eat '**पिब**'=Drink और '**रमस्व**'=be merry.

द्वादशः सर्गः (१२)

सीता द्वारा रावण की भर्त्सना—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता॥ १॥

उस भयंकर राक्षसराज रावण के इन वचनों को सुनकर शुचिस्मिता सीता अपने और रावण के मध्य तृण को मध्यस्थ बनाकर रावण से बोली—

न मां प्रार्थयितुं युक्तं सुसिद्धिमिव पापकृत।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम्।
कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया॥ २॥

हे रावण! जैसे ब्रह्मप्राप्ति रूपी सिद्धि पापिष्ठ जन द्वारा चाहने योग्य नहीं होती वैसे ही मैं भी तेरे चाहने योग्य नहीं हूँ अर्थात् जैसे पापी पुरुष सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता उसी प्रकार तू भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुई तत्पश्चात् पवित्र कुल में मेरा विवाह हुआ। मैं पतिव्रता हूँ, अतः मुझसे इस निन्दित दुष्कर्म की आशा मत कर।

एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी।
राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्॥ ३॥

यशस्विनी सीता ने रावण से ऐसा कहकर उस राक्षस की ओर से अपना मुख फेर लिया फिर पृष्ठ भाग में बैठे हुए रावण से बोली—

नाहमौपायिकी भार्या परभार्या सती तव।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर॥ ४॥

मैं दूसरे की पत्नी और सती स्त्री हूँ, अतः मैं तेरी उपयुक्त भार्या नहीं बन सकती। तुझे उचित है कि तू सज्जनों द्वारा सेवित सद्धर्म और सद्व्रत=श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार का आचरण कर।

यथा तव तथाऽन्येषां रक्ष्या दारा निशाचर।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्॥ ५॥

हे निशाचर! जैसे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए उसी प्रकार पर-स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए। अपने को उपमा बनाकर तुम अपनी ही स्त्रियों से रमण करो।

अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चलितेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥ ६॥

जो अजितेन्द्रिय मनुष्य चञ्चलेन्द्रिय बनकर अपनी स्त्रियों के साथ सन्तुष्ट नहीं होते ऐसे निकृष्ट बुद्धिवाले पतित पामरों को पर स्त्रियों से पग-पग पर अपमानित होना पड़ता है।

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
तथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥ ७॥

क्या यहाँ सज्जन पुरुष नहीं रहते? यदि रहते हैं तो क्या तुम उनका अनुगमन नहीं करते? प्रतीत होता है तुझे उत्तम पुरुषों का सहवास पसन्द नहीं, इसी से तेरी बुद्धि सर्वथा विपरीत और आचारभ्रष्ट हो रही है।

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च॥ ८॥

स्मरण रख, अनीति-पथ का अनुसरण करनेवाले अजितेन्द्रिय राजा के कारण धन-धान्य से समृद्ध नगर और राष्ट्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

तथेयं त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसङ्कुला।
अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति॥ ९॥

तुझ जैसे अविवेकी राजा को प्राप्त कर, तुम्हारे ही अपराधों के कारण धन-धान्य और रत्नों से समृद्ध यह लंका शीघ्र नष्ट हो जायेगी।

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा॥ १०॥

हे रावण! तू अपने ऐश्वर्य अथवा धन सम्पत्ति से मुझे लुभा नहीं सकता। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से पृथक् नहीं हो सकती इसी प्रकार मैं भी राम से पृथक् नहीं हो सकती। मैं श्रीराम की अनन्य-परायणा धर्मपत्नी हूँ।

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥ ११॥

लोकनाथ श्रीराम की अलंकृत भुजा का आश्रय लेकर अब मैं अन्य किसी की भुजा का आश्रय कैसे ले सकती हूँ?

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव वसुधापतेः।
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्॥ १२॥

मैं महाराज राम की ही उपयुक्त भार्या हूँ। हे रावण! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो मुझ दुःखिया को श्रीराम से मिला दे।

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता।
वधं चानिच्छता घोरं त्वयाऽसौ पुरुषर्षभः॥ १३॥

हे रावण! यदि तू लङ्का की रक्षा करना चाहता है और यदि तुझे अपना मरना अभीष्ट नहीं है तो तेरे लिए उपयुक्त यही है कि तू श्रीराम को अपना मित्र बना ले।

एवं हि ते भवेत्स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणो वधं प्राप्स्यसि रावण॥ १४॥

राम को अपना मित्र बनाने और विनयपूर्वक मुझे श्रीराम को सौंपे देने से ही तेरा कल्याण होगा यदि तूने ऐसा न किया तो हे रावण! तू मारा जायेगा।

➤ त्रयोदशः सर्गः ➤ (१३)

सीता को कठोर वचन कह और दो मास की अवधि निश्चित कर रावण का लौटना—

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसाधिपः।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम्॥ १॥

सीताजी के इन कठोर वचनों को सुनकर राक्षसराज रावण सुन्दरी सीता से ये अप्रिय वचन बोला—

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा॥ २॥

हे सीते! जैसे-जैसे पुरुष स्त्री को प्रिय वचनों द्वारा समझाता है वैसे-वैसे ही स्त्री उस पुरुष के वश में हो जाती है, परन्तु मैंने प्रिय वचनों द्वारा जितना तुम्हें समझाया तुमने उतना ही मेरा तिरस्कार किया।

सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः।
द्रवतोऽमार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः॥ ३॥

क्या करूँ, मैं तेरे ऊपर आसक्त हूँ। तुम्हारे प्रति उत्पन्न मेरी कामासक्ति मेरे क्रोध को उसी प्रकार रोके हुए है जैसे उत्तम सारथि कुमार्ग की ओर दौड़ते हुए घोड़ों को रोकता है।

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते॥ ४॥

कुटिल काम मनुष्यों के लिए निश्चय ही बहुत बड़ा बन्धन है, क्योंकि जिसके प्रति काम उभर आता है निश्चय ही उसके प्रति दया और स्नेह उत्पन्न हो जाता है।

एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्याप्रव्रजिते रताम्॥ ५॥

हे सुमुखि! इसी कारण मैं तेरा वध नहीं करता अन्यथा कपट से वनवास करनेवाले राम में आसक्त तू तिरस्कार और वध करने योग्य ही है।

परुषाणीह वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम्।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः॥ ६॥

हे मैथिलि! तूने मेरे प्रति जो-जो कठोर वचन कहे हैं उनमें से प्रत्येक पर तेरा निर्दयता पूर्वक वध ही उचित है।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोशःसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत्॥ ७॥

राक्षसराज रावण सीता को ऐसे कठोर वचन कहकर और क्रोध के आवेग से युक्त होकर सीता की बातों का उत्तर देने लगा—

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि॥ ८॥

हे सुन्दरी! मैंने तुम्हारे लिए जो अवधि निश्चित की थी उसमें अभी दो मास शेष हैं, अतः मुझे दो मास प्रतीक्षा करनी है। दो मास की अवधि बीतने पर तुझे मेरी शय्या पर आना होगा।

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥ ९॥

यदि दो मास की अवधि बीतने पर भी तूने मुझे पति के रूप में स्वीकार नहीं किया तो मेरे पाचक लोग मेरे प्रातराश=प्रातःकालिक भोजन के लिए तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः॥ १०॥

राक्षसराज रावण द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को देखकर रावण के साथ आईं देव और गन्धर्व कन्याएँ सीताजी को कनखियों से देख-देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं।

ओष्ठप्रकारैरपरा वक्त्रैर्नेत्रैस्तथाऽपराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा॥ ११॥

रावण द्वारा भर्त्सना की जाती हुई सीता को किसी कन्या ने ओष्ठों के, किसी ने मुख के और किसी ने नेत्रों के संकेत से आश्वासन दिया।

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौण्डीर्यगर्वितम्॥ १२॥

उनके द्वारा आश्वस्त सीता ने पतिव्रत बल से बलान्वित होकर राक्षसराज रावण को उसके अपने हित की बात है कही—

नूनं न ते जनः कश्चिदस्ति निःश्रेयसे स्थितः।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात्॥ १३॥

हे रावण! मुझे विश्वास हो गया कि इस लङ्कापुरी में कोई भी तेरा हितैषी नहीं है जो तुझे इस निन्दित कर्म से रोके।

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीमतेः।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसाऽपि कः॥ १४॥

इसीलिए तेरे अतिरिक्त तीनों लोकों में कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा जो इन्द्र की पत्नी शची के समान धर्मात्मा राम की पत्नी मुझको चाहने की मन में भी कल्पना कर सके।

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे॥ १५॥

हे राक्षसाधम! अमित तेजस्वी श्रीराम की धर्मपत्नी से तूने जो पापपूर्ण बातें कही हैं उस पाप से तू कहाँ जाकर छुटकारा पाएगा?

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीचशशवत्स्मृतः॥ १६॥

जैसे मदमत्त हाथी और खरगोश वन में एक साथ ही रहते हैं तथापि वे बराबर नहीं हो सकते वैसे ही श्रीराम हाथी के समान हैं और तू क्षुद्र खरगोश की भाँति है।

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे।
चक्षुषोर्विषयं तस्य न तावदुपगच्छसि॥ १७॥

क्षुद्र खरगोश की भाँति होकर भी क्या तुझे इक्ष्वाकुनाथ श्रीराम की निन्दा करते हुए लज्जा नहीं आती। अस्तु जब तक तू राम के समक्ष नहीं पड़ता तब तक तू जो चाहे सो कह ले।

इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः॥ १८॥

अरे अनार्य! तेरी ये क्रूर, टेढ़ी-मेढ़ी और काली-पीली आँखें, जिनसे तू मुझे बुरी दृष्टि से देखता है, निकलकर पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़तीं?

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यते॥ १९॥

ऐ पापी! धर्मात्मा राम की धर्मपत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू मुझसे इस प्रकार खोटे वचन बोलते हुए तेरी जिह्वा गलकर गिर क्यों नहीं पड़ती?

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥ २०॥

हे रावण! श्रीराम का आदेश न होने से और तपश्चर्या की रक्षा के कारण मैं भस्म करने में समर्थ होकर भी अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ।

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः॥ २१॥

बुद्धिमान् श्रीराम की पत्नी मैं अपहृत नहीं की जा सकती थी। निश्चय ही तेरे द्वारा मेरे अपहरण का विधान परमात्मा ने तेरे नाश के लिए ही रचा है।

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम्॥ २२॥

अरे! तू तो अपने को शूरवीर समझता है, कुबेर का भाई बनता है और सैन्य-संग्रह से भी युक्त है फिर तूने धोखे से राम को दूर हटाकर उनकी पत्नी को क्यों चुराया।

सीताया वचनं श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन्॥ २३॥

सीता के वचनों को सुनकर रावण क्रोध के मारे लाल-लाल आँखें कर और सर्प की भाँति फुँकारता हुआ सीता से बोला—

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा॥ २४॥

अरी नीतिशून्य और राज्यच्युत राम का अनुगमन करनेवाली सीते! आज मैं तूझे अपने तेज से उसी प्रकार नष्ट किये देता हूँ जैसे सूर्य सन्ध्याकालीन अन्धकार को नष्ट कर देता है।

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः।
सन्दिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः॥ २५॥

शत्रुओं को रुलानेवाले रावण ने सीता से इस प्रकार कहकर वहाँ उपस्थित सभी भयंकर राक्षसियों को आज्ञा दी—

यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य च॥ २६॥

हे राक्षसियो! तुम सब मिलकर ऐसा प्रयत्न करो जिससे जनककुमारी सीता शीघ्र मेरे वश में हो जाए।

प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च॥ २७॥

तुम अनुकूल और प्रतिकूल उपायों से, साम, दान एवं भेद आदि से अथवा डरा-धमकाकर, दण्ड के प्रयोग से, जैसे भी हो वैसे ही तुम सीता को मेरे अनुकूल कर दो।

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः।
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ २८॥

उन राक्षसियों को बार-बार इस प्रकार की आज्ञा देकर वह रावण पृथिवी को कम्पायमान-सा करता हुआ वहाँ से चला गया।

◀ चतुर्दशः सर्गः ▶ (१४)

राक्षसियों का सीता को डराना-धमकाना और फुसलाना—

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः॥ १॥

राक्षसराज रावण के वहाँ से निकलकर अन्तः-पुर में चले जाने पर भयंकर रूपवाली राक्षसियाँ सीता की ओर लपकीं।

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
परं परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन्॥ २॥

सीता के समीप पहुँचकर क्रोधाविष्ट वे राक्षसियाँ विदेह की पुत्री सीता से अत्यन्त कठोर वाणी से ये वचन बोलीं—

पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे॥ ३॥

हे सीते! पुलस्त्य कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ, महाबली रावण की पत्नी बनने को क्या तू बड़ी बात नहीं समझती?

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम्॥ ४॥

तत्पश्चात् क्रोध से लाल नेत्रोंवाली एकजटा नाम की राक्षसी कृशोदरी–छोटे पेटवाली सीता को सम्बोधित करके कहने लगी—

प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थो यः प्रजापततिः।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः॥ ५॥

पूर्वकाल में वंशकर्त्ता ब्रह्मा के छह पुत्र[१] हुए। ये सब भाई प्रजा पालक राजा हुए। इन छह प्रजापतियों में से चौथा प्रजाप्रति ब्रह्मा का मनस्वी पुत्र पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः॥ ६॥

उस महर्षि पुलस्त्य का अत्यन्त तेजस्वी और मनस्वी पुत्र विश्रवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे प्रताप में अपने पिता के तुल्य ही थे।

तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि॥ ७॥

हे विशाल नेत्रोंवाली! उस विश्रवा का पुत्र यह शत्रुओं का रुलानेवाला रावण है। तुम्हें इस राक्षसराज रावण की पत्नी बन जाना चाहिए।

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा॥ ८॥

एकजटा के ऐसा कहने के पश्चात् बिल्ली जैसी आँखोंवाली हरिजटा नाम की राक्षसी क्रुद्ध हो और त्यौरी चढ़ाकर सीता से कहने लगी—

येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि॥ ९॥

जिसने तैंतीस देवताओं और देवराज इन्द्र को जीत लिया है तुम्हें उस राक्षसराज रावण की भार्या बन जाना चाहिए।

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
भर्त्सयन्ती तदा घोरमिदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

तत्पश्चात् प्रघसा नामक राक्षसी क्रोध में पागल होकर सीताजी को डाँटती-डपटती हुई यह कठोर वचन बोली—

वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे॥ ११॥

अत्यन्त पराक्रमी, शूरवीर, युद्धक्षेत्र में पीठ न दिखानेवाले, बलवान् और शक्तिशाली रावण की भार्या बनना तुम क्यों पसन्द नहीं करतीं?

अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
असकृद्देवता युद्धे समरे येन निर्जिताः॥ १२॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः।
किमद्य राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे॥ १३॥

तब विकटा नामक राक्षसी कहने लगी—जिसने अनेक बार देवताओं को युद्ध में परास्त किया है, हे अधमे! तू उस सर्वसम्पन्न, महाबली राक्षसराज रावण की पत्नी बनना क्यों नहीं चाहती?

ततस्तु दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः।
न वाति चासितापाङ्गे किं त्वं तस्य न तिष्ठसि॥ १४॥

तदनन्तर दुर्मुखी नाम की राक्षसी कहने लगी—हे काले नेत्रोंवाली! जिससे भयभीत होकर न तो सूर्य अधिक तपता है और न वायु ही बहुत तीव्र चलती है तू उसके वश में क्यों नहीं हो जाती है?

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात्।
शैलाश्च सुभ्रूः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति॥ १५॥
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि॥ १६॥

हे सुन्दर भौंहोंवाली! उसके भय से वृक्ष फूलों

---

१. ब्रह्मा के छह पुत्र जो प्रजापति हुए ये हैं—१. मरीचि, २. अत्रि, ३.अङ्गिरस, ४.पुलस्त्य, ५. पुलह, ६.ऋतु।

की वर्षा किया करते हैं, उसके डर से पर्वत पानी बहाया करते हैं और वह जब चाहता है तब मेघ जल बरसाते हैं। हे भामिनि ? तू उस राक्षस सम्राट् रावण की पत्नी बनने का निश्चय क्यों नहीं करती ?

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा च भविष्यति॥ १७॥

हे सुन्दरी! देवि सीता! मैंने तुझसे तेरे कल्याण के लिए ठीक ठीक बात कह दी है। हे मन्द मुस्कानवाली! तू इस बात को मान ले अन्यथा तू जीवित नहीं रह सकती।

➤ पञ्चदशः सर्गः ➤ (१५)

राक्षसियों का सीता को डराना-धमकाना—

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः।
परुषं परुषा नार्य ऊचुस्तां वाक्यमप्रियम्॥ १॥

तत्पश्चात् विकराल आकृतिवाली वे सब राक्षसी-नारियाँ एक साथ सीताजी को अत्यन्त कठोर वचन कहने लगीं—

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोहरे।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे॥ २॥

हे सीते! तू प्राणिमात्र का मन मोह लेनेवाले और अत्यन्त मूल्यवान् शय्याओं से युक्त रावण के अन्तःपुर में रहने की स्वीकृति क्यों नहीं दे देती ?

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे।
प्रत्याहर मनो रामान्न त्वं जातु भविष्यसि॥ ३॥

मानुषी होने के कारण तू मनुष्य राम की भार्या बनना ही अधिक सम्मानजनक समझती है, परन्तु अब तू राम की ओर से अपना मन हटा ले अन्यथा तू जीवित नहीं रह सकेगी।

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम्।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम्॥ ४॥

तीनों लोकों के धन-धान्य का उपभोग करनेवाले राक्षसराज रावण को अपना पति बनाकर तू आनन्दपूर्वक विहार कर।

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लबं त्वमनिन्दिते॥ ५॥

हे सुन्दरी! हे प्रशंसित सीते! तू मनुष्य की वंशज होने को कारण मनुष्य राम को चाह रही है, परन्तु वह तो राज्य से भ्रष्ट है, असफल मनोरथ और नपुंसक है।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीतापद्मनिभेक्षणा।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥ ६॥

राक्षसियों के वचन सुनकर कमलनयनी सीता आँखो में आँसू भरकर यह वचन बोली—

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरथ सङ्गताः।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतिभाति वः॥ ७॥

तुम सब मिलकर मुझे जो पाठ पढ़ा रही हो वह लोकनिन्दित है। तुम्हारी ये पापपूर्ण बातें मेरे मन में नहीं बैठतीं।

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वा वचः॥ ८॥

मैं मानुषी होकर राक्षस की पत्नी कदापि नहीं बनूँगी। चाहे तुम सब मिलकर मुझे खा जाओ, परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती।

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्ताऽस्मि यथा सूर्यं सुवर्चला॥ ९॥

भले ही मेरा पति दीन हों, चाहे राज्य से हीन हों, किन्तु मेरे लिए तो वे ही पूज्य हैं। मैं उनमें सदा ही अनुरक्त हूँ जैसे सूर्य की पत्नी सुवर्चला अपने पति में अनुरक्त थी।

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा॥ १०॥

लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
तथाऽहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता॥ ११॥

जैसे महाभागा शची इन्द्र की सेवा करती है-- उसके अनुकूल चलती है, जैसे अरुन्धती वसिष्ठ का अनुगमन करती है तथा रोहिणी चन्द्रमा के प्रति अनुरक्त है, जैसे लोपामुद्रा अगस्त्य में और सुकन्या महर्षि च्यवन में प्रीति रखती है इन सबकी भाँति मैं इक्ष्वाकु श्रेष्ठ श्रीराम को अपना पति समझ उनका अनुगम करनेवाली हूँ।

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः॥ १२॥

सीता के इन वचनों को सुनकर क्रोध से पूर्ण और रावण द्वारा आदिष्ट एवं प्रेरित वे राक्षसियाँ कठोर वाक्यों द्वारा सीताजी की भर्त्सना करने लगीं।

संभर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरानना।
सा बाष्पमपमार्जन्तीं शिंशपां तामुपागमत्॥ १३ ॥

उन भयंकर आकृतिवाली राक्षसियों द्वारा डराई धमकाई गई सुन्दरमुखी सीता आँखों से आँसू पोंछती हुई उस अशोक वृक्ष के पास पहुँची (जिस पर हनुमान्‌जी बैठे हुए थे।)

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता॥ १४॥
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम्।
भर्त्सयांचक्रिरे सीतां राक्षस्यस्तां समन्ततः॥ १५॥

राक्षसियों से घिरी हुई, शोकसागर में निमग्न, विशाल नेत्रोंवाली सीता उस शिंशप वृक्ष के पास जाकर बैठ गई। वहाँ भी वे राक्षसियाँ दुर्बल, दीन मुखवाली और मलिन वस्त्र धारण करनेवाली सीता को चारों ओर से घेरकर उसको डराने और धमकाने लगीं।

ततस्तां विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना।
अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी॥ १६॥

जब सब राक्षसियाँ सीता को डरा-धमका चुकीं तब भयंकर आकृतिवाली, लम्बे-चौड़े आकारवाली और पिचके पेटवाली विनता नामक राक्षसी अत्यन्त क्रुद्ध होकर सीता से कहने लगी--

सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहो निदर्शितः।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते॥ १७॥

हे सीते! बस बहुत हुआ। तूने अब तक अपने पति के प्रति जितना स्नेह दिखाया वह पर्याप्त है। हे भद्रे! अति किसी बात की भी अच्छी नहीं होती क्योंकि अति का परिणाम दुःखदायी होता है।

परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः।
ममापि नु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि॥ १८॥

हे मिथिलेश कुमारी! तुम्हारा कल्याण हो। तूने मानवोचित कर्तव्य को यथाविधि निभाया है, अतः मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, परन्तु अब मैं तेरे कल्याण के लिए जो बात कहती हूँ उसे तू कर।

रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम्।
विक्रान्तं रूपवन्तं च सुरेशमिव वासवम्॥ १९॥

हे सीते! तू राक्षसों के स्वामी, इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली, महापराक्रमी और रूपवान् रावण को पति के रूप में स्वीकार कर ले।

एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि।
अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम्॥ २०॥

हे सीते! मैंने तुझसे जो बातें कही हैं यदि तू उन्हें स्वीकार नहीं करेगी तो हम सब मिलकर इसी क्षण तुझे मारकर खा जायेंगी।

अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य गर्जती॥ २१॥

तत्पश्चात् लम्बे स्तनोंवाली विकटा नाम की एक और राक्षसी क्रोध में भरकर और घूँसा तानकर सीता से बोली—

अलमश्रुप्रपातेन त्यज शोकमनर्थकम्।
सीते राक्षसराजेन सह क्रीड यथासुखम्॥ २२॥

हे सीते! अब रोना-धोना बन्द कर और इस व्यर्थ के शोक को छोड़ दे। अब तो तू आनन्दपूर्वक राक्षसराज रावण के साथ विहार कर।

जानासि हि यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम्।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि॥ २३॥

हे भीरु! जैसा कि तुझे पता है स्त्रियों की युवावस्था थोड़े ही समय रहनेवाली है, अतः जब तक तुम्हारी यह अवस्था व्यतीत न हो तब तक तुम खूब आनन्द भोगो।

उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि॥ २४॥

हे मैथिलि! यदि तू मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करेगी तो मैं तेरे हृदय को फाड़कर खा जाऊँगी।

तस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयाम किमास्यते॥ २५॥

तदनन्तर प्रघसा नामक राक्षसी कहने लगी- तुम सब बैठी क्यों हो? इस दुष्टा का गला घोंट डालो

एवं संभर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति॥ २६॥

जब उन भयंकर राक्षसियों ने उस देव कन्या के समान सीता को इस प्रकार डराया-धमकाया तब वह धैर्य त्यागकर रोने लगी।

❮ षोडशः सर्गः ❯ (१६)

सीता का विलाप—

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा॥ १॥

उन राक्षसियों के ऐसा कहने पर मनस्विनी सीता अत्यन्त भयभीत होकर अश्रुओं के कारण गद्गद वाणी से बोली—

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः॥ २॥

भला कहीं मानुषी भी राक्षस की पत्नी बन सकती है? भले ही तुम सब मुझे मारकर खा डालो, परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती।

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा।
न शर्म लेभे दुःखार्ता रावणेन च तर्जिता॥ ३॥

उस समय राक्षसियों के बीच में फँसी हुई देवकन्या के समान सीता को, जो दुःख से व्याकुल थी और रावण द्वारा डराई-धमकाई गई थी, दुःख से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था।

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता॥ ४॥

उस समय सीता थरथर काँप रही थी, और भय के कारण सिकुड़कर अपने ही अङ्गों में घुसी जाती थी। उस समय सीता की अवस्था ऐसी थी मानो अपने झुण्ड से पृथक् हुई कोई अकेली हिरनी भेड़ियों द्वारा पीड़ित की जा रही हो।

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम्।
चिन्तायामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा॥ ५॥

अशोक वृक्ष की एक विशाल पुष्पित शाखा का सहारा लेकर शोक से उद्विग्न मनवाली सीता अपने पति श्रीराम का स्मरण करने लगी।

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदाऽन्तमधिगच्छति॥ ६॥

उस समय उसकी आँखों से निकले हुए आँसू उसके वक्षस्थल पर गिरकर उसके बड़े-बड़े स्तनो को धो रहे थे। वह उस संकट से पार होने का उपाय सोच रही थी, परन्तु उसे शोकसागर से पार होने का कोई उपाय नहीं सूझता था।

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विषण्णवदनाऽभवत्॥ ७॥

अन्त में वह थरथराकर वायु के झोंके से गिरे हुए केले के पेड़ के समान भूमि पर गिर पड़ी। राक्षसियो के डर से उसका मुख म्लान (उदास) हो गया।

सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता शोकोपहतचेतना।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप ह॥ ८॥

सचेत होने पर, दुःख से पूर्ण एवं शोक से आहत चित्तवाली सीता दीर्घ निःश्वास लेती हुई आँसू बहाते हुए विलाप करने लगी।

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा श्वश्रु मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनि॥ ९॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥ १०॥

दुःख से पीड़ित सीता विलाप करते हुए कहने लगी—हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सास कौसल्ये! हा भामिनि सुमित्रे! पण्डितों द्वारा कही हुई यह लोकोक्ति सत्य ही है कि बिना समय आये, चाहे स्त्री हो या पुरुष, कोई नहीं मरता।

यत्राहमेवं क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता॥ ११॥

यदि ऐसा न होता तो क्या इन क्रूर राक्षसियों से इस प्रकार पीड़ित होकर, दुःखिया मैं, श्रीराम के बिना एक मुहूर्त भी जी सकती थी?

एषाऽल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत्।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता॥ १२॥

मैं अल्पपुण्या और दीन-दुखियारी एक अनाथिनी की भाँति वैसे ही नष्ट हो जाऊँगी जैसे द्रव्यों से परिपूर्ण नौका समुद्र में वायु के झोंकों से नष्ट हो जाती है।

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा॥ १३॥

राक्षसियों के चंगुल में फँसी हुई और पति को न देखती हुई मैं उसी प्रकार शोक से नष्ट हो रही हूँ जिस प्रकार पानी के धक्कों से नदी तट नष्ट होता है।

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम्।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम्॥ १४॥

जो लोग कमलनयन, सिंह के समान पराक्रमी कृतज्ञ और मधुरभाषी मेरे स्वामी राम के दर्शन करते है वे धन्य हैं।

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्यदुर्लभं मम जीवितम्॥ १५॥

लोकप्रसिद्ध श्रीराम से विहीन मेरा जीना उसी प्रकार सर्वथा दुर्लभ है जैसे हलाहल विष के पान करनेवाले का जीवन कठिन होता है।

कीदृशं तु मया पापं पुरा जन्मान्तरे कृतम्।
येनेदं प्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणम्॥ १६॥

पता नहीं पूर्वजन्म में मैंने कैसे-कैसे पापकर्म किये थे जिनके फलस्वरूप मुझे यह घोर दारुण दुःख सहना पड़ रहा है।

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता।
राक्षसीभिश्चर क्षन्त्या रामो नासाद्यते मया॥ १७॥

महान् शोक से घिरी हुई मैं अब अपने जीवन को त्यागना चाहती हूँ क्योंकि इन राक्षसियों के पहरे में रहकर मैं श्रीराम को प्राप्त नहीं कर सकती।

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम्॥ १८॥

मनुष्य-जन्म को धिक्कार है और पराधीनता को भी धिक्कार है जिसके चंगुल में फँसकर इच्छानुसार प्राण-परित्याग भी नहीं किया जा सकता।

◀ सप्तदशः सर्गः ▶ (१७)

सीता द्वारा प्राण-त्याग का निश्चय—

प्रसक्ताश्रुमुखीत्येवं ब्रुवती जनकात्मजा।
अधोमुखमुखी बाला विलपितुमुपचक्रमे॥ १॥

अश्रुपूर्ण मुखवाली, इस प्रकार बोलती हुई सीता ने नीचे की ओर मुख करके फिर विलाप करना आरम्भ कर दिया।



अशोकवाटिका में सीता जी और हनुमान जी

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते॥ २॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है अथवा यह अजर-अमर है तभी तो इतने कष्ट आने पर भी यह टुकड़े-टुकड़े नहीं होता?

धिङ्मामनार्यामसतीं याऽहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविका॥ ३॥

मुझ असती एवं अनार्या को धिक्कार है जो मैं पापिन श्रीराम के बिना मुहूर्त भर भी जीवित हूँ।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥ ४॥

उस दुष्ट रावण को मैं अपने बाएँ पैर से भी नहीं छू सकती फिर उस निन्दित राक्षस की कामना तो कर ही कैसे सकती हूँ?

छिन्ना भिन्ना विभक्ता वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्॥ ५॥

हे राक्षसियो! चाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालो, चाहे मुझे मसल डालो, चाहे मेरे शरीर की बोटी-बोटी अलग कर दो और चाहे मुझे जलती अग्नि में झोंक दो, परन्तु मैं रावण के समीप उपस्थित नहीं हो सकती—उसे स्वीकार नहीं कर सकती, अतः तुम्हारे इस प्रलाप से क्या प्रयोजन?

ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात्॥ ६॥

श्रीराम संसार में प्रसिद्ध पता नहीं इस समय वे ऐसे निष्ठुर क्यों हो गये हैं। हो-न-हो, यह मेरे ही भाग्य का दोष है।

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश।
येनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते॥ ७॥

जिन्होंने अकेले ही जनस्थान में चौदह सहस्र राक्षसों को परास्त कर दिया था क्या वे मेरी रक्षा नहीं करेंगे?

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे॥ ८॥

इस अल्पशक्तिवाले रावण ने मुझे यहाँ लाकर बन्दी बना रखा है, परन्तु निश्चय ही मेरे पति श्रीराम युद्ध में रावण का वध करेंगे।

यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां स राघवः।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम्॥ ९॥

यदि श्रीराम को मेरा यहाँ रहना ज्ञात हो जाए तो वे आज ही क्रुद्ध होकर सारे लोकों को अपने बाणों से राक्षस-शून्य कर डालेंगे।

निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां शोषयेच्च महोदधिम्।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत्॥ १०॥

(यदि उन्हें मेरे यहाँ होने का ज्ञान हो जाये तो) वे समुद्र को सुखाकर लंकापुरी को जला डालें और इस नीच रावण के यश और नाम को नष्ट कर डालें।

नाजानाज्जीवतीं रामः स मां लक्ष्मणपूर्वजः।
जानन्तौ तौ न कुर्यातां नोर्व्यां हि मम मार्गणम्॥ ११॥

हा! लक्ष्मण-सहित श्रीराम नहीं जानते कि मैं अभी जीवित हूँ। जानने पर वे दोनों पृथिवी पर मेरा अन्वेषण न करें यह नहीं हो सकता।

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले॥ १२॥

निश्चय ही मेरे वियोगजन्य शोक से पीड़ित हो, लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम अपना शरीर पृथिवी पर छोड़कर परलोक सिधार गये।

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशिनौ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ संवृतौ वनगोचरौ॥ १३॥

अथवा यह हो सकता है कि नरश्रेष्ठ वे दोनों भाई शास्त्रों का परित्याग कर फलमूल खाते और मुनिवृत्ति धारणकर वनों में घूमते-फिरते हों।

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
छद्मना सादितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १४॥

अथवा दुष्टात्मा राक्षसराज रावण ने उन दोनों भाइयों—राम और लक्ष्मण को छल से मरवा डाला हो।

साऽहमेवं गते काले मर्तुमिच्छामि सर्वथा।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽपि वर्तति॥ १५॥

ऐसा संकट का समय उपस्थित होने पर अब मैं सर्वथा मरना चाहती हूँ, परन्तु ऐसे दुःख में भी मेरे भाग्य में मृत्यु नहीं लिखी।

धन्या खलु महात्मानो मुनयस्त्यक्तकिल्बिषाः।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये॥ १६॥

निश्चय ही वे पाप-रहित, जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यशाली मुनि लोग धन्य हैं जिनका न तो कोई प्रिय=मित्र है और न अप्रिय=शत्रु है अर्थात् जो राग-द्वेषरहित हैं।

प्रियान्न सम्भवेद्दुःखमप्रियान्नाधिकं भयम्।
ताभ्यां हि ये वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम्॥ १७॥

जिनको अपने प्रियजन के बिछुड़ने से दुःख नहीं होता और अप्रिय के मिलने से भय नहीं होता, अतः इन दोनों से अर्थात् प्रिय और अप्रिय से—राग तथा द्वेष से जो पृथक् है उन महात्माओं को नमस्कार।

साऽहं त्यक्तां प्रियार्हेण रामेण विदितात्मना।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम्॥ १८॥

लोकप्रसिद्ध अथवा आत्मज्ञानी राम द्वारा परित्यक्ता तथा पापी रावण की कैद में पड़ी हुई मैं अब अपने प्राण त्यागती हूँ।

◀ अष्टादशः सर्गः ▶ (१८)

त्रिजटा का स्वप्न—

इत्युक्ताः सीतया घोरा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य तरस्विनः॥ १॥

सीता के ऐसा कहने पर क्रोध से पूर्ण कुछ भयंकर राक्षसियाँ यह वृत्तान्त कहने के लिए वीर रावण के पास चल दीं।

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो घोरदर्शनाः।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन्॥ २॥

तदनन्तर जो वहीं रह गईं वे भयंकर रूपवाली राक्षसियाँ सीता के पास जा पूर्ववत् उसे कठोर और बुरे-बुरे वचन कहने लगीं।

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा शयाना वाक्यमब्रवीत्॥ २॥

उन निष्ठुर हृदया राक्षसियों द्वारा सीता को डराए-धमकाए जाते देखकर त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी लेटे-लेटे उनसे कहने लगी—

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय च॥ ३॥

आज मैंने एक भयंकर एवं रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है जिससे प्रतीत होता है कि राक्षसों का नाश होगा और इसके पति की विजय होगी।

एवमुक्तास्त्रिजटया सर्वा एवाब्रुवन्भीताः।
कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि॥ ४॥

त्रिजटा का यह वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ भयभीत होकर बोलीं—बताओ तुमने रात्रि में कैसा स्वप्न देखा था?

तासां तु वचनं श्रुत्वा राक्षसीनां मुखोद्गतम्।
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम्॥ ५॥

उन राक्षसियों के मुख से निकले प्रश्न को सुनकर त्रिजटा ने उन्हें अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया—

गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम्।
युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः॥ ६॥

मैंने स्वप्न में देखा है कि हाथी-दाँत से निर्मित सहस्रों हंसों से युक्त, आकाशचारिणी एक दिव्य पालकी में बैठकर, श्वेत माला और श्वेत वस्त्रों को धारण कर लक्ष्मण-सहित श्रीराम लंका में आ गये हैं।

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतं पर्वतमास्थिता।
रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा॥ ७॥

आज स्वप्न में मैंने सीता को सफेद साड़ी पहने हुए और समुद्र से घिरे हुए एक श्वेत पर्वत के ऊपर बैठे देखा है। उस पर्वत पर श्रीराम के साथ सीताजी वैसे ही विराजमान हैं जैसे सूर्य के साथ उसकी प्रभा।

राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम्।
आरूढः शैलसङ्काशं चचार सहलक्ष्मणः॥ ८॥

फिर मैंने देखा कि श्रीराम चार दाँतोंवाले और पर्वत के समान विशालकाय हाथी की पीठ पर लक्ष्मण-सहित सवार होकर चले जाते हैं।

रावणश्च मया दृष्टः क्षितौ तैलसमुक्षितः।
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः॥ ९॥

मैंने रावण को भी स्वप्न में देखा है। वह तेल में डूबा हुआ पृथिवी पर लोट रहा है। उसने लाल वस्त्र धारण किये हुए हैं, मद्य पीकर वह उन्मत्त है, और कनेर के पुष्पों की माला धारण किये हुए है।

विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितो भुवि।
कृष्यमाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डः कृष्णाम्बरः पुनः॥ १०॥

(मद्यपान से उन्मत्त, रक्तवस्त्रधारी एवं कनेर पुष्प की माला धारण किए हुए) रावण आज पुष्पक विमान से पृथिवी पर गिर पड़ा है। मैंने देखा कि स्त्रियाँ उसे खींच रही हैं। उसका मूँड मुँडा हुआ है और वह काले वस्त्र पहने हुए है।

रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः॥ ११॥
गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः।
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो निशाचरः॥ १२॥

मैंने यह भी देखा कि रावण लाल माला पहने हुए और लाल चन्दन लगाए हुए गधों से युक्त रथ में बैठा हुआ है, फिर देखा कि वह तेल पीते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, भ्रान्त चित्त और व्याकुल होकर गधे पर सवार हो शीघ्रता पूर्वक दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। इसी प्रकार मैंने निशाचर कुम्भकर्ण को भी देखा है।

रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित्॥ १३॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम्।
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः॥ १४॥

मैंने रावण के समस्त पुत्रों को भी मूँड-मुँडाए और तेल में डूबे हुए देखा है, तत्पश्चात् मैंने रावण को शूकर पर, मेघनाद को सूँस पर और कुम्भकर्ण को ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए देखा है। मैंने केवल विभीषण को सफेद छत्र ताने हुए देखा है।

लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता।
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना॥ १५॥

मैंने स्वप्न में यह भी देखा है कि रावण द्वारा रक्षित लंका श्रीराम के किसी बलशाली वानर दूत ने जलाकर भस्म कर डाली है।

अपगच्छत नश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः।
घातयेत्परमामर्षी सर्वैः सार्धं हि राक्षसैः॥ १६॥

हे राक्षसियों! तुम सब यहाँ से दूर हट जाओ, अदृश्य हो जाओ, अब श्रीराम शीघ्र ही सीता से मिलनेवाले हैं, ऐसा न हो कि वे क्रोध में भरकर राक्षसों के साथ तुम्हें भी मार डालें।

प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम्।
भर्त्सितां तर्जितां वाऽपि नानुमंस्यति राघवः॥ १७॥

प्राणप्रिया, अत्यन्त कृपापात्र और वन में भी साथ देनेवाली अपनी पत्नी की भर्त्सना या तर्जना को रघुकुल-शिरोमणि राम सहन नहीं कर सकेंगे।

तदलं क्रूरवाक्यैर्वः सान्त्वमेवाभिधीयताम्।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते॥ १८॥

अब सीता से कठोर वचन मत कहो, अब तो सान्त्वना के शब्दों का प्रयोग करो और मुझे तो यह रुचिकर प्रतीत होता है कि हम सब मिलकर सीता के अनुग्रह की याचना करें।

ततः सा ह्रमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥ ११॥

ये बातें सुनकर लज्जाशील सुन्दरी सीता पति की विजय से हर्षित होती हुई बोली—यदि तुम्हारा यह कथन ठीक हुआ तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी।

◀ एकोनविंशः सर्गः ▶ (१९)

हनुमान् का कर्तव्याकर्तव्य-चिन्तन—

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जनम्॥ १॥

सीताजी का विलाप, त्रिजटा के स्वप्न का वृत्तान्त और राक्षसियों का गर्जन और तर्जन—इन सब बातों को पराक्रमी हनुमान् ने भी स्पष्ट रूप में सुना।

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः॥ २॥

नन्दन-वन में रहनेवाली सुर-सुन्दरी की भाँति अशोक-वाटिका में बैठी हुई उस देवी सीता को देखकर हनुमान्जी नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे।

युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम्॥ ३॥

वे सोचने लगे—इस समय मुझे अप्रमेय (जिसके गुण प्रभाव अचिन्त्य हैं) और प्राणिमात्र पर दया करनेवाले श्रीराम की पतिव्रता धर्मपत्नी को जो पति-दर्शन की अभिलाषिणी है, धैर्य बँधाना चाहिए।

यदि ह्यहमिमां देवीं शोकोपहतचेतनाम्।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत्॥ ४॥

यदि मैं शोक से व्याकुल सीता को आश्वासन दिए बिना ही लौट जाऊँ तो मेरा लौटना दोषपूर्ण माना जायेगा।

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी।
परित्राणमविन्दन्ती जानकी जीवितं त्यजेत्॥ ५॥

मेरे लौट जाने पर यशस्विनी राजकुमारी सीता अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर निश्चय ही अपने प्राण त्याग देगी।

रामश्च यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताऽब्रवीद्वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम्॥ ६॥

फिर जब श्रीराम मुझसे पूछेंगे कि सीता ने मेरे लिए क्या सन्देशा दिया था तो मैं बिना सीता से बातचीत किये उन्हें क्या उत्तर दूँगा?

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामिह स्थितः।
शनैराश्वासयिष्यामि सन्तापबहुलामिमाम्॥ ७॥

अतः अब मैं यहाँ बैठकर प्रतीक्षा करता हूँ जैसे ही मुझे अवसर मिला मैं इन राक्षसियों की दृष्टि बचा चुपके-से अत्यन्त सन्तापयुक्त सीता को सान्त्वना प्रदान करूँगा।

अहं त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥ ८॥

इस समय मैं लघुशरीर में हूँ और फिर वानर जाति का हूँ, अतः मैं सामान्य नागरिक मनुष्य के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूँगा।

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥ ९॥

यदि मैं द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो मुझे रावण समझकर सीता भय से संत्रस्त हो जायेंगी।

कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत वा।
इति सञ्चिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम्॥ १०॥

मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ जिससे सीता मेरी बात सुन ले और मुझसे भयभीत भी न हो ऐसा सोच-विचार कर बुद्धिमान् हनुमान् ने निश्चय किया कि—

इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन्॥ ११॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम्।
श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे॥ १२॥

मैं महानात्मा, इक्ष्वाकुकुल-श्रेष्ठ श्रीराम के सम्पूर्ण धर्मयुक्त शुभ कर्मों को मधुर भाषा में सुनाऊँगा और जिस प्रकार से सीता मुझ पर विश्वास करेगी मैं वैसा ही करूँगा।

≺ विंशः सर्गः ≻ (२०)

हनुमान् द्वारा राम का गुण-गान—

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह॥ १॥

महामति हनुमान् इस प्रकार बहुत सोच-विचार करके, सीता को सुनाते हुए इस प्रकार के मधुर वचन कहने लगे—

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान्।
पुण्यशीलो महाकीर्तिर्ऋजुरासीन्महयशाः॥ २॥

इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नाम के एक राजा हुए हैं जो हाथी, घोड़े और रथों से युक्त थे। वे पुण्यशील, महान् कीर्तिवाले, अत्यन्त सरल एवं महायशस्वी थे।

अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः।
मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवांल्लक्ष्मिवर्धनः॥ ३॥

वे हिंसा से दूर रहते थे, ऊँचे विचारोंवाले थे, दयालु और सत्यपराक्रमी थे। वे अत्यन्त कान्तिमान्, इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ और इक्ष्वाकुवंश की सम्पत्ति और वैभव को बढ़ानेवाले थे।

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ ४॥

चन्द्रमा के समान मुखमण्डलवाले, सर्वधनुर्धारियों में श्रेष्ठ, सकल शास्त्रों के विशेषज्ञ उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम उनको बहुत प्रिय थे।

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः॥ ५॥

शत्रुसन्तापी श्रीराम अपने चरित्र की रक्षा करनेवाले और अपने प्रियजनों का प्रतिपालन करनेवाले हैं। इतना ही नहीं वे प्राणिमात्र के रक्षक एवं धर्म की संस्थापना करनेवाले हैं।

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्यवचनात्पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम्॥ ६॥

सत्यप्रतिज्ञ एवं वृद्ध पिताजी की आज्ञा का मानकर महाबली श्रीराम अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में चले आयें।

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः॥ ७॥

वन में आकर श्रीराम ने मृगया=शिकार के लिए पर्यटन करते हुए इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अनेक बड़े-बड़े राक्षसों का संहार किया।

जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु॥ ८॥

जनस्थान का नाश तथा खर और दूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर प्रतिशोध की भावना से द्वेषी रावण ने सीताजी का अपहरण किया।

स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम्।
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम्॥ ९॥

श्रीराम ने अपनी उस सुन्दरी पत्नी को खोजते हुए वन में सुग्रीव नामक वानर से मैत्री की।

ततः स बालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः।
प्रायच्छत्कपिराज्यं तत्सुग्रीवाय महात्मने॥ १०॥

सुग्रीव से मैत्री होने पर शत्रु के नगरों को जीतनेवाले श्रीराम ने बाली को मारकर वानर-राज्य महात्मा सुग्रीव को सौंप दिया।

सुग्रीवेणापि सन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः।
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्ति सहस्रशः॥ ११॥

अब सुग्रीव के द्वारा आदिष्ट होकर यथेष्ट रूपधारी सहस्रों वानर उस देवी सीता को खोजते हुए वनों में विचर रहे हैं।

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम्।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः सागरं वेगवान्प्लुतः ॥ १२ ॥

मैंने सम्पाति के कहने से विशालाक्षी सीताजी को देखने के लिए सौ-योजन विस्तारवाले समुद्र को पार किया है।

यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मीं च निश्चिताम्।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ॥ १३ ॥

मैंने श्रीराम के मुख से उस देवी का जैसा रूप रङ्ग और कान्ति सुनी थी वैसी ही सीता मैंने देख ली है।

विररामैवमुक्त्वासौ वाचं वानरपुङ्गवः।
जानकी चापि तत् श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ १४ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान् इतना कहकर चुप हो गये और सीताजी भी इन बातों को सुनकर चकित हो गईं।

ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम्।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत ॥ १५ ॥

तदनन्तर घुँघराले और काले महीन केशोंवाली सीता अपने केशाच्छादित मुखमण्डल को ऊपर उठाकर शिंशपा वृक्ष की ओर देखने लगी।

सा तु दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम्।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥ १६ ॥

विनम्र भाव से उपस्थित उस कपिश्रेष्ठ हनुमान् को देख सीताजी ने सोचा -'कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही।'

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

हनुमान् तथा सीता का वार्तालापारम्भ—

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः।
शिरस्याञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

इतने में मूँगे के समान लालमुखवाले[१] महातेजस्वी हनुमान्जी ने वृक्ष की ऊँची शाखा से नीची शाखा पर उतर कर[२]—इस प्रकार सीता के कुछ निकट होकर—उसे हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् पवनपुत्र हनुमान् नम्रतापूर्वक, दीनभाव से मधुर वाणी से बोले—

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥

हे कमलनयनी! हे सर्वाङ्गसुन्दरी! हे मलिन पीत, रेशमीवस्त्र-धारिणी! वृक्ष की शाखा का अवलम्बन करके खड़ी रहनेवाली तुम कौन हो?

रावणेन जनस्थानाद्बलादपहृता यदि।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्मामाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ४ ॥

तुम्हारा कल्याण हो। यदि तुम रावण द्वारा जनस्थान से बलपूर्वक हरी हुई सीता ही हो तो जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ उसका उत्तर दो।

यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम्।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ॥ ५ ॥

जैसी आपकी दीन दशा है, जैसा अद्भुत आपका रूप है और जैसा आपका तपस्या से युक्त वेश है—इससे जान पड़ता है कि आप निश्चित रूप से श्रीराम

---

१. यहाँ आदि कवि ने केवल हनुमान्जी के मुख को ही **'विद्रुमप्रतिमाननः'**—मूँगे जैसा लाल बताया है, अतः जो लोग उनके सारे शरीर को ही लाल रंग देते हैं, उन पर चोला चढ़वाते हैं वे सब अज्ञानान्धकार में ही भटक रहे हैं। प्रभु उन्हें सुमति प्रदान करें।

२. आगे श्लोक छह में हनुमान् का एक विशेषण **'द्रुमाश्रितम्'** दिया हुआ हैं, अतः यहाँ ऊँची शाखा से नीची शाखा पर उतरे—यही अर्थ ठीक है।

की पत्नी हैं।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता।
उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं द्रुमाश्रितम्॥ ६॥

हनुमान्‌जी के इन वचनों को सुनकर और श्रीराम के कीर्तन से हर्षित होकर विदेहराज-कुमारी सीता वृक्ष पर बैठे हनुमान् से कहने लगी—

पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रमाथिनः॥ ७॥

हे कपे! पृथिवी के समस्त राजाओं में मुख्य एवं प्रसिद्ध और शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ की मैं पुत्रवधू हूँ।

दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः।
सीता च नाम नाम्नाऽहं भार्या रामस्य धीमतः॥ ८॥

मिथिलाधिपति महात्मा जनक की मैं पुत्री हूँ, महामति श्रीराम की मैं पत्नी हूँ। मेरा नाम सीता है।

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः।
रक्षसाऽपहृता भार्या रावणेन दुरात्मना॥ ९॥

महाराज दशरथ की आज्ञा से दण्डकारण्य में बसते हुए अपरिमित बलवाले महापराक्रमी श्रीराम की पत्नी मुझको दुरात्मा रावण ने हर लिया।

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ १०॥

उसने कृपा करके मुझे दो मास तक और जीवित रहने का समय दिया है। दो मास पश्चात् मुझे अपने प्राण त्यागने पड़ेंगे।

➤ द्वाविंशः सर्गः ➤ (२२)

रावणरूपी शंका का निवारण—

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्हरियूथपः।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत्॥ १॥

दुःखों से सन्तप्त सीताजी के इन वचनों को सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए बोले—

अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्तवागतः।
वैदेही कुशली रामस्त्वां च कौशलमब्रवीत्॥ २॥

हे देवि! श्रीराम की आज्ञा से उनका सन्देश लेकर मैं दूत बनकर आपके पास आया हूँ। श्रीराम कुशलपूर्वक हैं और उन्होंने आपका कुशल-मङ्गल पूछा है।

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदाश्च वेद वेदविदां वरः।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत्॥ ३॥

हे देवि! जो ब्रह्मास्त्र चलाना जानते हैं, जो वेदों के ज्ञाता हैं, वेदों के ज्ञाता ही नहीं अपितु वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं उन्हीं दशरथ-नन्दन श्रीराम ने आपकी कुशल पूछी है।

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः।
कृतवाञ्शोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम्॥ ४॥

आपके पति के प्राणप्रिया अनुचर, महातेजस्वी लक्ष्मणजी ने शोकसन्तप्त होकर आपको सिर झुकाकर प्राणामाञ्जलि समर्पित की है।

सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः।
प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ ५॥

नरकेसरी श्रीराम और लक्ष्मणजी की कुशलता का समाचार सुनकर सीता का रोम-रोम हर्ष से पुलकित हो गया और वे हनुमान्‌जी से बोलीं—

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥ ६॥

"मनुष्य यदि जीवित रहे तो सौ वर्ष पश्चात् भी उसे कभी-न-कभी आनन्द प्राप्त होता ही है"—यह कल्याणमयी लौकिकी गाथा आज मुझे सत्य जान पड़ रही है।

तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताऽद्भुता।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः॥ ७॥

सीता और हनुमान् की परस्पर भेंट होने पर उन दोनों में अद्भुत स्नेह उत्पन्न हो गया और वे दोनों एक दूसरे पर विश्वास कर आपस में बातचीत करने लगे।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरियूथपः।
सीतायाः शोकदीनायाः समीपमुपचक्रमे॥ ८॥

शोकसन्तप्त सीताजी के उन वचनों को सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी सीताजी के कुछ और समीप चले गये।

यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते॥ ९॥

परन्तु ज्यों-त्यों हनुमान् सीता के निकट पहुँचते जाते थे, त्यों-त्यों ''यह रावण है''—सीता की यह शंका बढ़ती जाती थी।

सीतायाश्चिन्तितं बुद्ध्वा हनुमान्मारुतात्मजः।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन्॥ १०॥

सीता को अपने ऊपर संदेह करते देख पवनपुत्र हनुमान्‌जी कर्णप्रिय वचनों से उसे हर्षित करते हुए बोले—

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम॥ ११॥

हे देवि! तुम जो समझ रही हो वह मैं नहीं हूँ। अर्थात् मैं रावण नहीं हूँ, अतः तुम अपने सन्देह को दूर करो और मेरे कथन पर विश्वास करो।

≺ त्रयोविंशः सर्गः ≻ (२३)

अँगूठी प्रदान करना—

भूय एव महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात्॥ १॥

सीता को विश्वास दिलाने के लिए महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान् पुनः नम्रतापूर्वक ये वचन बोले—

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥ २॥

हे महाभागे! मैं वानर हूँ और महामति श्रीराम का दूत हूँ। हे देवि! यह राम नाम से अङ्कित अँगूठी है। इस पर दृष्टिपात करो।

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि॥ ३॥

महात्मा राम द्वारा प्रदत्त यह अँगूठी मैं आपके विश्वास के लिए लाया हूँ। आपका कल्याण हो। अब आप धैर्य धारण करो और समझ लो कि आपके दुःखों का अन्त हो गया है।

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्ता जानकी मुदिताऽभवत्॥ ४॥

सीता अपने पति के हाथ की शोभा बढ़ानेवाली उस अँगूठी को हाथ में ले और स्नेहमयी दृष्टि से उसे देखती ऐसी प्रसन्न हुई मानो उसे राम ही मिल गये हों।

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तृसन्देशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम्॥ ५॥

पति का सन्देश पाकर वह लज्जाशील बाला सीता अत्यधिक हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और हनुमान् को अपना प्रिय पात्र मानकर उनकी प्रशंसा करने लगी—

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्॥ ६॥

हे कपिश्रेष्ठ! तुम महान् पराक्रमी हो, पूर्ण समर्थ हो और महाबुद्धिमान् भी हो, क्योंकि तुमने अकेले ही रावण की राजधानी इस लङ्का को मथ डाला है।

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः॥ ७॥

सौ योजन विस्तारवाले, मकर आदि जन्तुओं से परिपूर्ण इस समुद्र को अपेन पराक्रम से लाँघते हुए

तुमने इसे गोष्पद[१] के तुल्य ही बना दिया है।

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्यते नास्ति संत्रासो रावणान्नापि सम्भ्रमः॥ ८॥

हे वानरोत्तम! मैं आपको साधारण वानर नहीं मान सकती, क्योंकि न तो आप भयंकर समुद्र से भयभीत हुए और रावण के कारण उद्विग्न हुए।

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना॥ ९॥

हे कपिश्रेष्ठ! जब आत्मज्ञानी अथवा लोक-प्रसिद्ध श्रीराम ने तुम्हें मेरे समीप भेजा है तब आप खुले हृदय से मुझसे वार्तालाप कर सकते हैं।

दिष्ट्या स कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसङ्गरः।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः॥ १०॥

यह प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है कि धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम तथा सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले महातेजस्वी लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं।

कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः॥ ११॥

यदि श्रीराम सकुशल हैं तो मेरे उद्धार के लिए समुद्र से घिरी लङ्कापुरी को प्रलयाग्नि के समान अपने क्रोध से भस्म क्यों नहीं कर देते?

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः॥ १२॥

अथवा वे दोनों देवताओं को भी दण्ड देने में समर्थ हैं, परन्तु दुर्भाग्य से अभी मेरे ही दुःखों का अन्त नहीं आया है।

कच्चिन्न व्यथितो रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः॥ १३॥

(अच्छा यह तो बताओ) मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम दुःख का अनुभव तो नहीं करते अथवा सन्ताप तो नहीं करते? मेरे उद्धार के लिए प्रयत्न तो करते हैं?

वानरधिपतिः श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः॥ १४॥

क्या वानरराज श्रीमान्? सुग्रीव दन्त और नख रूपी अस्त्रों से लड़नेवाले अपने वानर सैनिकों सहित मेरे उद्धार के लिए यहाँ आयेंगे?

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति॥ १५॥

क्या सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले अस्त्रवित् वीर लक्ष्मण अपनी भीषण बाण-वर्षा से शत्रुओं का विध्वंस करेंगे?

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम्॥ १६॥

क्या मैं शीघ्र ही बन्धु-बान्धवों सहित रावण को युद्ध में श्रीराम के रौद्रास्त्र (अथवा भयंकर बाणों से) से मरा हुआ देखूँगी?

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ १७॥

भीम पराक्रमी पवनपुत्र हनुमान्‌जी सीता के इन वचनों को सुनकर हाथ जोड़ और मस्तक झुकाकर बोले—

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचने।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः॥ १८॥

हे कमललोचने! "तुम यहाँ हो"—यह बात श्रीराम को ज्ञात नहीं है, इसीलिए वे तुम्हें शीघ्र यहाँ से वैसे ही नहीं ले गये जैसे इन्द्र अपनी पत्नी शाची को (अनुह्लाद दैत्य के यहाँ से) ले आये थे।

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम्॥ १९॥

जब मैं यहाँ से जाकर आपका वृत्तान्त बताऊँगा तब उस सन्देश को सुनते ही श्रीराम ऋक्ष और वानर जाति की भारी सेना के साथ लङ्का में आएँगे।

---

१. वर्षाऋतु में नरम भूमि पर गाय का पैर पड़ने से उस पदचिह्न में जितना पानी आ जाता है उसे गोष्पद कहते हैं।

विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम्।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम्॥ २०॥

वे अपने बाणों से इस अक्षोभ्य समुद्र को पाटकर और राक्षसों का विध्वंस करके लङ्कापुरी को शान्त कर देंगे।

➤ चतुर्विंशः सर्गः ➤ (२४)

सीता का हनुमान् के साथ जाने का अनौचित्य—

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना।
हनुमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः॥ १॥

पूर्ण चन्द्रमा के समानमुखवाली सीता हनुमान्जी के इन वचनों को सुनकर उनसे धर्मयुक्त ये वचन बोली—

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति॥ २॥

मनुष्य चाहे महान् ऐश्वर्य का उपभोग करता हो अथवा महादारुण दुःख भोगता हो—दोनों अवस्थाओं में कर्मफल-प्रदाता दैव, मनुष्य को गले में रस्सी बाँधकर अपनी ओर खींचता रहता है।

विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान्॥ ३॥

हे वानरश्रेष्ठ! प्रारब्ध का परिवर्तन मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात है। मुझे, लक्ष्मण और राम को ही देख लो जो आपत्ति में फँसकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं।

शोकस्यास्य कदा पारं राघवोऽधिगमिष्यति।
प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा॥ ४॥

नौका के टूट जाने पर समुद्र में गिरकर तैरते हुए और थके हुए मनुष्य के समान श्रीराम पता नहीं कब इस शोकसागर से पार होंगे?

राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम्।
लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः॥ ५॥

मेरे पति श्रीराम राक्षसों को मार, रावण का वध करके लङ्का की ईंट-से-ईंट बजाकर न जाने कब मुझे देखेंगे।

स वाच्यः सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम्॥ ५॥

हे वानर! तुम जाकर श्रीराम से कहना कि मेरे उद्धार के लिए शीघ्रता करें। जब तक इस वर्ष की समाप्ति नहीं होती तभी तक मेरे जीवन की अवधि है।

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम॥ ७॥

इस वर्ष का यह दसवाँ मास चल रहा है। इस की समाप्ति में अब केवल दो मास शेष रहे हैं। क्रूर रावण ने मेरे जीवन की इतनी ही अवधि निर्धारित की है।

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम्॥ ८॥

इसके कनिष्ठ भ्राता विभीषण ने मेरे लौटाने के लिए अनेक बार प्रयत्नपूर्वक अनुनय-विनय किया, परन्तु वह उसकी बात नहीं मानता।

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशं गतम्॥ ९॥

रावण को मेरा लौटा देना पसन्द नहीं है, क्योंकि उसके सिर पर मृत्यु सवार है। निश्चय ही मृत्यु युद्धक्षेत्र में रावण के वध का अवसर ढूँढ़ रही है।

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः॥ १०॥

वह वानरश्रेष्ठ! मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे पति श्रीराम अब शीघ्र ही मुझे मिलेंगे क्योंकि यह मेरी अन्तरात्मा की ध्वनि है और श्रीराम के बहुत से गुण

हैं।

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे॥ ११॥

हे वानर! उत्साह, पुरुषार्थ, धैर्य, दया, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव—ये सभी गुण रघुकुल-शिरोमणि श्रीराम में हैं।

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति॥ १२॥

हे कपे! रामरूपी सूर्य अपनी बाणरूपी किरणों से शत्रु राक्षसरूपी जल को शीघ्र ही शुष्क कर डालेंगे।

इति सञ्जल्पमानां तां रामार्थे शोककर्षिताम्।
अश्रुसम्पूर्णनयनामुवाच वचनं कपिः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीराम के विषय में बातें करती हुई, शोकसन्तप्त और आँखों से आँसू बहाती हुई सीता से हनुमान्‌जी कहने लगे—

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम्॥ १४॥

हे सीते! मेरे मुख से आपका संदेशा पाते ही श्रीराम ऋक्ष और वानरों से युक्त बहुत बड़ी सेना लेकर शीघ्र ही यहाँ आ जायेंगे।

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव वरानने।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥ १५॥

अथवा हे वरानने! मैं आज ही आपको इस भयंकर विपत्ति और रावण के बन्दीगृह से मुक्त कर देता हूँ। हे अनिन्दिते! तुम मेरी पीठ पर (विमान) बैठ जाओ।

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणम्॥ १६॥

आपको अपनी पीठ पर बैठाकर मैं समुद्र पार हो जाऊँगा। (यह मत समझना कि मै ऐसा न कर सकूँगा) मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं रावण सहित लङ्का को भी उठाकर ले जा सकता हूँ।

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम्।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम्॥ १७॥

हे विदेह-राजकुमारी! जिस प्रकार मैं उस पार से यहाँ आया हूँ उसी प्रकार तुम्हें अपने साथ लिये हुए निश्चय ही मैं आकाश मार्ग से उस पार चला जाऊँगा।

मैथिली तु हरिश्रेष्ठात् श्रुत्वा वचनमद्‌भुतम्।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ १८॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी के इन अद्भुत वचनों को सुनकर सीता विस्मित और पुलकित गात होकर हनुमान्‌जी से कहने लगी।

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मम गन्तुं त्वया सह।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव॥ १९॥

हे वानरश्रेष्ठ! मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नहीं क्योंकि वायु के समान तुम्हारी शीघ्रगति मुझे मूर्छित कर देगी।

अहमाकाशमापन्ना ह्युपर्युपरि सागरम्।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयाद्वेगेन गच्छतः॥ २०॥

पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम्॥ २१॥

आकाश-मार्ग से बड़े वेग से जाते हुए, मैं तुम्हारी पीठ से समुद्र में गिर जाऊँगी तथा मीन, नक्र और मगरमच्छ आदि जन्तुओं से पूर्ण समुद्र में गिरकर मैं विवश दशा में शीघ्र ही जलजन्तुओं का आहार बन जाऊँगी।

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन।
कलत्रवति संदेहस्त्वय्यपि स्यादसंशयः॥ २२॥

हे शत्रुमर्दन! मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकूँगी, क्योंकि मुझ स्त्री-सहित तुम्हें जाते देखकर निश्चय ही तुम पर लङ्का-वासियों को सन्देह होगा।

ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना॥ २३॥

यहाँ से मेरा हरण होते हुए देखकर, दुरात्मा रावण की आज्ञा से भीषण पराक्रमी राक्षस निश्चय ही तुम्हारा पीछा करेंगे।

युध्यमानस्य रक्षोभिस्तव तैः क्रूरकर्मभिः।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम॥ २४॥

हे कपिश्रेष्ठ! जब तुम क्रूरकर्मा, भयंकर राक्षसों से युद्ध करोगे तब भयभीत हो मैं अवश्य ही नीचे गिर जाऊँगी।

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु॥ २५॥

अथवा राक्षसों के गर्जन-तर्जन से भयभीत होकर मेरे प्राण भी निकल सकते हैं। तब हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

कामं त्वमसि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः॥ २६॥

यह भी सम्भव है कि तुम उन सब राक्षसों को अकेले ही समाप्त कर दो, परन्तु तुम्हारे द्वारा राक्षसों का वध होने पर रघुकुल-शिरोमणि श्रीराम के यश को बट्टा लग जायेगा।

अथवाऽऽदाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम्।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवौ॥ २७॥

(तुम्हारे साथ जाने में एक दोष यह भी है कि) यदि राक्षसों ने मुझे पकड़ लिया और लङ्का में ले आये तो फिर वे मुझे किसी ऐसे स्थान पर छिपा देंगे जहाँ न तो कोई वानर ही मुझे देख सकेगा और न राम-लक्ष्मण ही मुझे पा सकेंगे।

भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
न स्पृशामि शरीरं तु पुंसो वानरपुङ्गव ॥ २८॥

हे वानरश्रेष्ठ! पातिव्रत्य नियम को देखते हुए मैं श्रीराम के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष के शरीर का स्पर्श (स्वेच्छा से) भी नहीं कर सकती।

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य बलाद् गता।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥ २९॥

मैंने जो रावण के शरीर का स्पर्श किया वह बलात् हुआ। उस समय मैं रक्षक-हीन, अनाथ और विवश थी। ऐसी दशा में मैं कर ही क्या सकती थी?

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सबान्धवम्।
मामितो गृह्य गच्छेत् तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ ३०॥

यदि श्रीराम बन्धु-बान्धवों सहित रावण को मारकर मुझे यहाँ से ले जायें तो यह कार्य उनकी मर्यादा के अनुरूप होगा।

➤ पञ्चविंशः सर्गः ➤ (२५)

सीता का हनुमान् को चूड़ामणि प्रदान करना—

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन हर्षितः।
सीतामुवाच तत् श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १॥

वाक्यविशारद वानरश्रेष्ठ हनुमान् सीताजी के इन वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च॥ २॥

हे शुभदर्शन देवि! तुमने स्त्री-स्वभाव-सुलभ और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्र के अनुकूल ठीक ही कहा है।

स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम्।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम्॥ ३॥

स्त्री होने के कारण मेरी पीठ पर सवार होकर तुम सौ योजन विस्तीर्ण समुद्र को पार करने में समर्थ नहीं हो—यह बात उचित ही है।

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते।
रामादन्यस्य नार्हामि संस्पर्शमिति जानकि॥ ४॥
एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम्॥ ५॥

हे विनयशीले जानकि! तुमने मेरे साथ न जाने का जो दूसरा हेतु दिया है कि—"श्रीराम के अतिरिक्त मैं अन्य किसी पुरुष का अपनी इच्छा से स्पर्श नहीं कर सकती"—हे देवि! ये वचन महात्मा राम की धर्मपत्नी के ही कहने योग्य हैं। भला आपको छोड़कर (ऐसी अवस्था में भी) और कौन स्त्री ऐसे वचन

कह सकती है?

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः।
चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं मम चाग्रतः॥ ६॥

हे देवि! आपने मेरे साथ जैसा बर्ताव किया है और जो बातें कही हैं—उन सबको श्रीराम मेरे मुख से ज्यों-का-त्यों सुन लेंगे।

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम्॥ ७॥
लङ्काया दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम्॥ ८॥

हे देवि! मैंने आपसे जो अपने साथ चलने के लिए कहा, उसके अनेक कारण हैं। उनमें से मुख्य तो श्रीराम का प्रिय करने की इच्छा थी, दूसरा यह कि मेरा मन स्नेह से द्रवित हो रहा था, तीसरे लङ्का दुर्गमनीय होने से इसमें हरेक प्रविष्ट नहीं हो सकता, चौथे समुद्र का लांघना भी कठिन है। इन सब बातों के अतिरिक्त मुझे अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है, इसीलिए मैंने साथ चलने के लिए कहा था।

इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुबन्धुना।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथैतदुदाहृतम्॥ ९॥

श्रीराम का मेरे प्रति स्नेह और मेरी उनके प्रति भक्ति है—इसी से मेरी यह इच्छा हुई कि मैं आज ही तुम्हें श्रीराम से मिला दूँ—इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं था।

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत्॥ १०॥

हे अनिन्दिते! यदि आपकी मेरे साथ चलने की इच्छा नहीं है तो आप मुझे कोई चिह्नानी दे दीजिए जिसे श्रीराम पहचान सकें और उन्हें विश्वास हो जाये कि मैं आपसे मिल आया हूँ।

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥ ११॥

हनुमान्‌जी के ऐसा कहने पर सीता ने, वस्त्र के आँचल से खोलकर, एक सुन्दर चूड़ामणि (शिर का आभूषण) हनुमान्‌जी को दी और कहा कि इसे श्रीराम को दे देना।

स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्प्लवगसत्तमः।
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे॥ १२॥

वानरश्रेष्ठ श्रीमान् हनुमान् उस श्रेष्ठ चूड़ामणि को लेकर और सीताजी को झुककर प्रणाम कर वहाँ से चलने के लिए उद्यत हो गये।

तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुङ्गवम्।
अश्रुपूर्णमुखी दीना उवाच जनकात्मजा॥ १३॥

हनुमान्‌जी को उड़ान भरने के लिए तैयार देख सीता आँखों में आँसू भरकर कहने लगी—

हनुमन्सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया ह्यनामयम्॥ १४॥

हे हनुमन्! सिंह के समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को तथा मन्त्रिमण्डल सहित सुग्रीव आदि वानरों को मेरा कुशलक्षेम कहना।

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समादधतुमर्हसि॥ १५॥

और महाबाहु श्रीराम इस विपत्ति के महान् सागर से जिस प्रकार मेरा उद्धार करें आप वह उपाय करना।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

अशोक-वाटिका-विध्वंस—

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया।
तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः॥ १॥

सुन्दर वचनावली के द्वारा सीता से सम्मानित हो, गमन करने की इच्छा से हनुमान् जी उस स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर जाकर विचारने लगे—

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते॥ २॥

कृष्ण नेत्रवाली सीताजी का दर्शन तो कर लिया, किन्तु एक छोटा-सा कार्य शेष रह गया है अर्थात् शत्रुशक्ति का परिचय प्राप्त करना। इस कार्य को करने के लिए पहले तीन उपायों—साम, दान और भेद से तो कार्य होता दिखाई नहीं देता। हाँ, चौथे उपाय दण्ड अथवा बल-प्रदर्शन से कार्य हो सकता है।

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति॥ ३॥

सर्वप्रथम मुख्य कार्य को सम्पूर्ण कर और मुख्य कार्य को हानि न पहुँचाते हुए जो दूत और भी कई कार्य कर डाले वहीं दूत वस्तुतः कार्य करने योग्य कहा जाता है।

कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं
प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्
समानयेन्मां च रणे दशाननः॥ ४॥

इस समय मैं क्या करूँ जिससे राक्षसों के साथ सहज ही मेरा युद्ध ठन जाये और रावण मुझे युद्ध की उत्कृष्टता-अपकृष्टता जान ले।

इदमस्य नृशंस्य नन्दनोपममुत्तमम्।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम्॥ ५॥
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति दशाननः॥ ६॥

(तब हनुमान्‌जी मन-ही-मन में कहने लगे कि बस सबसे सहज उपाय यही है कि) इस क्रूर रावण के इस नन्दन-कानन के तुल्य, नयनाभिराम, मन को प्रसन्नता देनेवाले, नाना लताओं और विविध प्रकार के वृक्षों से युक्त इस अशोक-वाटिका को मैं वैसे ही नष्ट कर डालूँ जैसे अग्नि सूखे वन को भस्म कर डालती है। इस वन के नष्ट होने पर रावण अवश्य ही क्रुद्ध होगा।

ततस्तु हनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम्॥ ७॥

तब वीर हनुमान् ने मतवाले पक्षियों से कूजित तथा विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित रावण की उस अशोक-वाटिका का विध्वंस कर डाला।

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च।
बभूवुस्त्राससम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः॥ ८॥

वाटिकाध्वंस के समय पक्षियों के तीव्र कोलाहल और वृक्षों के टूटकर गिरने के भयंकर शब्द से सम्पूर्ण लङ्का-निवासियों में भयंकर त्रास उत्पन्न हो गया।

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम्॥ ९॥

कोलाहल से राक्षसियों की निद्रा भङ्ग होने पर उन भयंकर आकृतिवाली राक्षसियों ने ध्वस्त वन और महावीर हनुमान् को देखा।

ततस्तं गिरिसङ्काशमतिकायं महाबलम्।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम्॥ १०॥

उस पर्वताकार, विशालकाय और महाबलवान् हनुमान्‌जी को देखकर राक्षसियाँ जनकनन्दिनी सीताजी से पूछने लगीं—

कोऽयं कस्य कुतो वाऽयं किं निमित्तमिहागतः।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत॥ ११॥

हे सीते! यह कौन है? किसका भेजा हुआ यहाँ आया है? कहाँ से आया है और किसलिए आया है? तुमने इससे क्यों और क्या बातचीत की?

अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गसुन्दरी।
रक्षसां भीमरूपाणां विज्ञाने मम का गतिः॥ १२॥

उनके ऐसा पूछने पर सर्वाङ्गसुन्दरी सीता ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा—कामरूपी भयंकर राक्षसों की माया भला मैं क्या जान सकती हूँ?

यूयमेवाभिजानीत योऽयं यद्वा करिष्यति।
अहिरेव ह्यहेः पादान्विजानाति न संशयः॥ १३॥

यह तो तुम्हीं जानो कि यह कौन है और क्या करेगा, क्योंकि साँप के पैरों को साँप ही पहचान

सकता है।

अहमप्यस्य भीतास्मि नैनं जानामि को न्वयम्।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम्॥ १४॥

मैं स्वयं भी बहुत भयभीत हो रही हूँ। मैं नहीं जानती, यह कौन है। अनुमान से मैं यह समझती हूँ यह स्वच्छन्द विचरण करनेवाला कोई राक्षस है।

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता दिशः।
स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम्॥ १५॥

सीताजी की इन बातों को सुनकर वे राक्षसियाँ चारों ओर भाग खड़ी हुईं। कोई तो भयभीत होकर वहाँ से हटकर दूर खड़ी हो गई और कुछ यह वृत्तान्त सुनाने के लिए रावण के पास चली गईं।

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः।
विरूपं वानरं भीममाख्यातुमुपचक्रमुः॥ १६॥

उन विकराल मुखवाली राक्षसियों ने रावण के समीप जाकर उस भीषण आकृतिवाले विकराल वानर का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण से निवेदन किया।

अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः॥ १७॥

वे कहने लगीं—हे राजन्! अशोकवाटिका में एक विशालकाय वानर आया हुआ है। उस अमित पराक्रमी ने सीताजी से वार्तालाप भी किया है और वह अभी तक वहीं विद्यमान है।

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि।
सीता सम्भाषिता येन तद्वनं च विनाशितम्॥ १८॥

हे राजन्! आप उस भयङ्कर रूपधारी वानर को कठोर दण्ड दें, क्योंकि एक तो उसने सीता के साथ सम्भाषण किया है दूसरे अशोकवन को नष्ट किया है।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
हुताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः॥ १९॥

राक्षसियों की इन बातों को सुनकर राक्षसराज रावण हुताग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठा और क्रोध के मारे उसकी आँखें इधर-उधर काँपने लगीं।

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां[1] प्रापतन्नस्त्रबिन्दवः।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥ २०॥

मारे क्रोध के उसकी आँखों से इस प्रकार बूँदे गिरने लगीं मानो जलते हुए दो दीपकों में से ज्वाला-सहित तेल की बूँदें टपकती हों।

आत्मनः सदृशाञ्शूरान्किङ्करान्नाम राक्षसान्।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः॥ २१॥

तदनन्तर महातेजस्वी रावण ने अपने समान शूरवीर किङ्कर नामवाले राक्षसों की टुकड़ी को हनुमान् को दण्ड देने अथवा पकड़ने के लिए भेजा।

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम्।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम्॥ २२॥

अशोकवाटिका के तोरण द्वार पर, जिसके समीप हनुमान्‌जी बैठे थे, पहुँचकर वे सब हनुमान्‌जी पर इस प्रकार झपटे जैसे पतङ्ग दीपक की लौ के ऊपर झपटते हैं।

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरशक्तिभिः।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः॥ २३॥

वे राक्षस मुद्गर, पट्टिश, शूल, फरसा और तोमर आदि शस्त्रों को हाथ में ले और हनुमान्‌जी को चारों ओर से घेरकर उनके समक्ष खड़े हो गये।

हनुमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसन्निभः।
क्षितावाविध्य पादौ द्वौ ननाद च महाध्वनिम्॥ २४॥

विशालकाय, तेजस्वी, श्रीमान् हनुमान्‌जी भी अपने दोनों पैरों को पृथिवी पर पटककर गर्जकर कहने लगे—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ २५॥

महाबली पुरुषोत्तम श्रीराम की जय हो। महाबली लक्ष्मण की जय हो। श्रीराम द्वारा रक्षित सम्राट् की

---

१. यहाँ रावण की दो आँखों का ही वर्णन है।

जय हो।

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥ २६॥

जिनके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है मैं उन कोसलाधीश श्रीराम का दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। मैं पवन का पुत्र हूँ और युद्ध में शत्रु की सेना को नष्ट करनेवाला हूँ।

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम्॥ २७॥

(इतना कहने के पश्चात्) महाबली हनुमान् ने जो चारों ओर से उन शूरवीर राक्षसों से घिर गये थे, तोरण द्वार के समीप रखे हुए लोहे के परिघ नामक अस्त्र को उठाया।

स तं परिघमादाय जघान च निशाचरान्।
स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः॥ २८॥

हनुमान् ने उस परिघ नामक अस्त्र को लेकर उन सभी राक्षसों को इस प्रकार मार डाला जिस प्रकार फड़फड़ाता हुआ गरुड़ नामक पक्षी सर्पों को मार डालता है।

स हत्वा राक्षसान्वीरान्किङ्करान्मारुतात्मजः।
युद्धाकाङ्क्षी पुनर्वीरस्तोरणं समुपाश्रितः॥ २९॥

पवनपुत्र हनुमान्जी उस वीर किङ्कर नामक सैनिक टुकड़ी का संहार कर युद्ध की आकांक्षा रखते हुए पुनः उसी तोरण द्वार के समीप जा बैठे।

ततस्तामाद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः।
निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन्॥ ३०॥

उस भीषण संग्राम में जो थोड़े से राक्षस मारे जाने से बच गये थे उन्होंने रावण के पास जाकर कहा कि किङ्कर नामक सैन्य टुकड़ी को उस वानर ने मार डाला।

◀ सप्तविंशः सर्गः ▶ (२७)

राक्षसी यज्ञशाला का विध्वंस—

ततः स किङ्करान्हत्वा हनुमान्ध्यानमास्थितः।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः॥ १॥

उन किंकर नामक राक्षसों का संहार कर हनुमान्जी सोचने लगे कि मैंने अशोकवाटिका तो नष्ट कर डाली, परन्तु इन राक्षसों का चैत्यप्रासाद (राक्षसी यज्ञशाला—जहाँ मद्य-मांस का भी प्रयोग होता है) को तो नष्ट किया ही नहीं।

तस्मात्प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम्।
इति संचिन्त्य मनसा हनुमान्दर्शयन्बलम्॥ २॥
चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम्।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान्मारुतात्मजः॥ ३॥

अतः इस यज्ञशाला को मैं लगे हाथ उजाड़ डालूँ। मन में ऐसा सोचकर और अपना बल प्रकट करते हुए कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र महावीर हनुमान् मेरु पर्वत के समान उन्नत शिखरवाले उस चैत्य-प्रासाद पर कूदकर चढ़ गये।

आरुह्य गिरिसङ्काशं प्रासादं हरियूथपः।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः॥ ४॥

महातेजस्वी हनुमान् उस पर्वत के समान ऊँचे प्रासाद पर चढ़कर नवोदित सूर्य के समान सुशोभित होने लगे।

संप्रधृष्य तु दुर्धर्षं चैत्यप्रासादमुत्तमम्।
धृष्टस्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन्॥ ५॥

उस दुर्धर्ष और श्रेष्ठ यज्ञशाला को नष्टकर विजयगर्व से प्रज्ज्वलित हनुमान् ने निर्भय होकर ऐसी गर्जना की कि उस गर्जना से सारी लङ्का व्याप्त हो गई।

अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ ६॥

गर्जना करते हुए उन्होंने कहा—अस्त्रवेत्ता श्रीराम की जय हो। महाबली लक्ष्मणजी की जय हो। श्रीराम द्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीव की जय हो।

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥ ७॥

मैं पुण्यकर्मा कोसलाधीश श्रीराम का दास हूँ। मैं पवन का पुत्र, और शत्रुसैन्य का नाशक हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥ ८॥

मैं सब राक्षसों के देखते-देखते लङ्कापुरी को ध्वस्त कर, सीताजी को प्रणाम कर और अपना उद्देश्य पूर्णकर चला जाऊँगा।

तेन शब्देन महता चैत्यपालाः शतं ययुः।
गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान्॥
विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन्॥ ९॥

उस सिंहनाद को सुनकर उस चैत्य-प्रासाद के बहुत से रक्षक नाना प्रकार के अस्त्र—प्रास, खड्ग और फरसा आदि लेकर दौड़ पड़े और महाकाय हनुमान्जी को चारों ओर से घेरकर उन पर प्रहार करने लगे।

प्रासादस्य महान्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम्।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनुमान् पवनात्मजः॥ १०॥

तब पवनपुत्र हनुमान्जी ने भी उस विशाल प्रासाद का एक सुवर्ण-निर्मित स्तम्भ=खम्भा उखाड़ लिया।

ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः।
तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत॥ ११॥

वह खम्भा सौ धारों का था। महाबली हनुमान् उस खम्भे को घुमाने लगे। उसके घुमाने से अग्नि की चिंगारियाँ प्रकट हो गईं जिससे वह भवन जल कर राख हो गया।

➤ अष्टाविंशः सर्गः ➤ (२८)

जम्बुमाली का वध—

सन्दिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः॥ १॥

इधर तो यज्ञशाला का विध्वंस हुआ उधर राक्षसराज रावण की आज्ञा से महाबली, विकराल दाँतोवाला प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली हाथ में धनुष लेकर नगर से बाहर निकला।

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः।
महान्विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः॥ २॥

उसने लाल माला धारण की हुई थी और लाल वस्त्र पहने हुए थे। उसके कानों में कमनीय=सुन्दर कुण्डल थे। विशाल आँखें फाड़े हुए और अत्यन्त क्रोध में आया हुआ वह जम्बुमाली युद्ध में दुर्जेय माना जाता था।

महाजवो महोत्साहो महासत्त्वोरुविक्रमः।
आजगामातिवेगेन सायुधः स महारथः॥ ३॥

महावेगवान्, अत्यन्त उत्साही, महाबली एवं प्रचण्ड पराक्रमी वह जम्बुमाली एक बड़े रथ में बैठ और आयुधों से लैस होकर बड़े वेग के साथ वहाँ पहुँचा जहाँ हनुमान्जी थे।

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः।
हनुमान् वेगसम्पन्नो जहर्ष च ननाद च॥ ४॥

खच्चरों से युक्त रथ पर बैठकर आये हुए जम्बुमाली को देखकर वेगवान् महावीर हनुमान्जी हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे।

तं तोरणविटङ्कस्थं हनुमन्तं महाकपिम्।
जम्बुमाली महाबाहुर्विव्याध निशितैः शरैः॥ ५॥

महाकपि हनुमान् को तोरण द्वार के खम्भे पर बैठा देख महाबाहु जम्बुमाली ने अपने तीखे बाणों से उन्हें बेध डाला।

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास मारुतिः॥ ६॥

बाणों से घायल होने पर हनुमान्‌जी उस राक्षस पर अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने उसी परिघ नामक अस्त्र को उठाकर बड़े वेग के साथ घुमाया।

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि॥ ७॥

अत्यन्त वेगवान् और उत्कट बलशाली हनुमान् ने उस परिघ को उठाकर जम्बुमाली की छाती में दे मारा।

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी।
न धनुर्न रथो नाश्वस्तत्रादृश्यन्त नेषवः[1]॥ ८॥

उस परिघ के भीषण प्रहार से जम्बुमाली का सिर, भुजा, जांघ, रथ, घोड़े और तीरों को पता ही नहीं चला कि वे सब-के-सब कहाँ गये।

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महाबलः।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्गविभूषणः॥ ९॥

महाबली जम्बुमाली हनुमान्‌जी के परिघ के आघात से निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा। उसका शरीर तथा आभूषण चूर-चूर हो गये।

जम्बुमालिं च निहतं किङ्करांश्च महाबलान्।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः॥ १०॥

जम्बुमाली और अपने महाबली किंकरों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और क्रोध के मारे उसके नेत्र लाल हो गये।

➤ एकोनत्रिंशः सर्गः ➤ (२९)

मन्त्रि-पुत्रों का वध—

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिर्वर्चसः॥ १॥

किंकरों और जम्बुमाली के मारे जाने के पश्चात् राक्षसराज रावण के आदेश से सूर्य के समान तेजस्वी सात मन्त्रि-पुत्र राजसभा से निकल पड़े।

महाबलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः॥ २॥

वे सब-के-सब विशाल सेना से घिरे हुए थे, वे धनुर्धारी और महाबलवान् थे। उन्होंने अस्त्रविद्या का अभ्यास ही नहीं किया था, अपितु अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ थे और परस्पर विजय की अभिलाषा करने वाले थे।

ते परस्परसंघर्षात्तप्तकाञ्चनभूषणाः।
अभिपेतुर्हनुमन्तं तोरणस्थमवस्थितम्॥ ३॥

समुज्ज्वल स्वर्णाभूषणों से विभूषित और 'मैं आगे पहुँचूँ', 'मैं पहले पहुँचूँ'—ऐसी स्पर्धा करते हुए वे मन्त्रि-कुमार तोरण द्वार के समीप बैठे हुए हनुमान्‌जी के पास जा पहुँचे।

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः।
वृष्टिमन्त इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः॥ ४॥

वे मन्त्रि-कुमार बाणों की वर्षा करते हुए और रथ की गड़गड़ाहट सुनाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे जैसे वर्षाकाल के मेघ विचरण कर रहे हों।

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम्।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान्॥ ५॥

उधर महापराक्रमी हनुमान्‌जी भी भीषण सिंहनाद द्वारा अत्यन्त वेग से उन राक्षसों पर टूट पड़े।

तलेनाभ्यहनत्कांश्चित्पद्भ्यां कांश्चित्परन्तपः।
मुष्टिनाभ्यहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्॥ ६॥

शत्रुहन्ता हनुमान् ने राक्षसी सेना में किन्ही को थप्पड़ों से, किन्हीं को लातों से, किन्हीं को घूँसों से और किन्हीं को तीक्ष्ण नखों से चीर-फाड़कर मार डाला।

---

१. यह श्लोक अतिशयोक्ति-अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरान्कपिः।
केचित्तस्य निनादेन तत्रैव पतिता भुवि॥ ७॥

हनुमान्‌जी ने किन्हीं को छाती से रगड़ दिया और किन्हीं को जाँघों से मसल डाला। कितने ही राक्षस हनुमान्‌जी के भयंकर सिंहनाद को सुनकर ही पृथिवी पर गिरकर मर गये।

ततस्तेष्ववसन्नेषु भूमौ निपतितेषु च।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम्॥ ८॥

जब वे सातों मन्त्रि-पुत्र मरकर धराशायी हो गये तब उनकी बची-खुची सेना भयभीत होकर चारों दिशाओं में भाग गई।

स तान् प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैः
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम्॥ ९॥

महाबली एवं प्रचण्ड पराक्रमी वीर हनुमान् उन मदोन्मत्त राक्षसों को मारकर तथा अन्य राक्षसों से युद्ध करने की इच्छा से पुनः उसी तोरण द्वार के समीप आ गये।

❮ त्रिंशः सर्गः ❯ (३०)

पाँच सेनापतियों का वध—

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना।
रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम्॥ १॥

महात्मा हनुमान् द्वारा मन्त्रिपुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण ने अपने भय एवं उद्वेग को छिपाते हुए धीरतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया।

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम्।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्चसेनाग्रनायकान्॥ २॥
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्।
हनुमद्ग्रहणे व्यग्रान्वायुवेगसमान् युधि॥ ३॥

रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण—इन पाँच सेनापतियों को, जो युद्ध में वायु के वेग के समान काम करनेवाले, रणनीति-विशारद और उद्भट बलवान् थे हनुमान् को पकड़ने की आज्ञा दी।

ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः।
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः॥ ४॥

रावण की आज्ञा पा वे सब बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी राक्षस बड़ी शीघ्रता से चल पड़े।

तं समीक्ष्यैव ते सर्वे तोरणस्थं महाबलम्।
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः॥ ५॥

तोरण द्वार के समीप बैठे हुए महाबली हनुमान् को देखते ही, वे सेनापति उन्हें चारों ओर से घेरकर उन पर भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने लगे।

अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः।
निपपात महावेगो दुर्धरस्य रथे हरिः॥ ६॥

जब पवनपुत्र हनुमान्‌जी सेनापति दुर्धर की बाणवृष्टि से पीड़ित होने लगे तब वे सहसा बहुत दूर से उछलकर दुर्धर के रथ पर कूद पड़े।

ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम्।
विहाय न्यपतद् भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः॥ ७॥

हनुमान् के रथ पर कूदते ही आठों घोड़ों सहित वह रथ जुआ और धुरी सहित चकनाचूर हो गया। वह दुर्धर राक्षस भी रथ और प्राणों से विहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि।
जातरोषौ मुद्गराभ्यां वक्षस्याभिहतः कपिः॥ ८॥

दुर्धर को धराशायी हुआ देखकर विरूपाक्ष और यूपाक्ष दोनों ने क्रुद्ध होकर मुद्गरों से हनुमान् की छाती पर प्रहार किया।

तयोर्वेगवतोर्वेगं विनिहत्य महाबलः।
स सालवृक्षमुत्पाट्य जघान पवनात्मजः॥ ९॥

महाबली हनुमान् ने उनके वेगयुक्त प्रहार को रोककर और एक साल वृक्ष को उखाड़कर उसके आघात से दोनों राक्षसों को मार गिराया।

ततस्तांस्त्रीन्हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना।
अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रघसो हरिम्॥ १०॥

महाबली हनुमान् द्वारा उन तीनों सेनापतियों को मरा हुआ जान महावेगवान् प्रघस नामक राक्षस सेनापति अट्टहास करता हुआ हनुमान्‌जी के सम्मुख आया।

भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान्।
एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितम्॥ ११॥

महाशक्तिशाली भासकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो और हाथ में शूल लेकर यशस्वी हनुमान्‌जी के एक ओर जा खड़ा हुआ।

पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्ययोधयत्।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिसत्तमम्॥ १२॥

तब प्रघस तीक्ष्ण नोकवाले पट्टिश से और भासकर्ण त्रिशूल से कपिश्रेष्ठ हनुमान् के साथ युद्ध करने लगे।

स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः।
अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः॥ १३॥

उन दोनों के संयुक्त प्रहार से आहत होने पर उनके शरीर से निकली हुई रुधिर धारा से हनुमान् के शरीर के लोम रक्तवर्ण हो गये। उस समय प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाले हनुमान्‌जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं सव्यालमृगपादपम्।
जघान हनुमान् वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः॥ १४॥

तब मृग=पशु, सर्प, और वृक्षों से आक्रान्त पर्वत की एक चोटी=शिला को उखाड़कर कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान् ने उन दोनों राक्षसों को मार डाला।

ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु।
बलं तदवशेषं च नाशयामास वानरः॥ १५॥

उन पाँचों सेनापतियों को मारकर हनुमान्‌जी अवशिष्ट राक्षस-सेना का संहार करने लगे।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

अक्षकुमार का वध—

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्
हनूमता सानुचरान्सवाहनान्।
समीक्ष्य राजा समरोद्धतोन्मुखं
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताग्रतः॥ १॥

हनुमान् द्वारा अपनी सेना और वाहन आदि साधनों सहित अपने पाँच सेनापतियों की मृत्यु का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण ने युद्ध में जाने के लिए समुद्यत और अपने सामने बैठे हुए अक्षकुमार की ओर दृष्टिपात किया।

स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः
समुत्पपाताथ हविषेव पावकः।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं
समर्थमासीनमुपागमत्कपिम्॥ २॥

रावण के दृष्टि-प्रक्षेप मात्र से प्रेरित होकर अक्षकुमार ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे अग्नि में हवि डालने से अग्नि-शिखा ऊपर उठती है। अपनी सेना को साथ लेकर अक्षकुमार तोरणद्वार के समीप बैठे अति सामर्थ्यवान् हनुमान्‌जी के निकट आ पहुँचा।

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं
स्थिरं स्थितः संयति दुर्निवारणम्।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शरैस्त्रिभिः शितैः॥ ३॥

हनुमान् द्वारा राक्षसों के विध्वंस आदि के सम्बन्ध में सोचकर तथा संग्राम के लिए उद्यत और संग्राम में

दुर्निवार्य हनुमान् पर अक्षकुमार ने क्रुद्ध और एकाग्र चित्त हो तीन पैने बाण चलाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा।

ततः स बाणासनचित्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः।
शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले
बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे॥ ४॥

तत्पश्चात् जिस प्रकार मेघ पर्वतों पर जल की वृष्टि किया करते हैं उसी प्रकार उस युद्ध में अक्षकुमार रूपी बादल, हनुमान् रूपी पर्वत पर अपने अद्भुत धनुष से बाणरूपी जल की वृष्टि करने लगा।

ततः कपिस्तं रणचण्डविक्रमं
विवृद्धतेजोबलवीर्यसंयुतम् ।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे
ननाद हर्षाद् घनतुल्यनिःस्वनः॥ ५॥

संग्राम में प्रचण्ड पराक्रमी, तेज से प्रदीप्त, बल और पराक्रम से युक्त अक्षकुमार को देखकर हनुमान् प्रसन्न हो मेघ के समान गर्जे।

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः
कुमारवीर्येण महात्मना नदन्।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्ववित्
विचिन्तयामास रणे पराक्रमम्॥ ६॥

इतने में महात्मा वीर अक्षकुमार ने हनुमान् की छाती में अनेक बाण मारकर उनके वक्षःस्थल को क्षत-विक्षत कर दिया। तब कार्य-पटु महाबाहु हनुमान् अक्षकुमार के युद्ध सम्बन्धी पराक्रम के विषय में विचार करने लगे।

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते।
प्रमापणं त्वेव ममास्य रोचते
न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः॥ ७॥

युद्ध में इसका जैसा उत्तरोत्तर पराक्रम बढ़ता जा रहा है यदि अब इसकी उपेक्षा की गई तो यह निश्चय ही मुझे पराजित कर देगा, अतः अब इसका वध करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि बढ़ती हुई अग्नि की उपेक्षा करना उचित नहीं।

स मारुतिर्मारुतवेगवांस्तदा
करेण जग्राह च पादयोर्दृढम्।
स तं समाविध्य सहस्रशः कपिः
मुमोच वेगात् युधि वानरोत्तमः॥ ८॥

तब पवनतुल्य पराक्रमी हनुमान्‌जी ने युद्ध करते हुए अक्षकुमार के दोनों पैरों को दृढ़ता से पकड़कर और उसे अनेक बार घुमाकर ग्राम-भूमि में दे पटका।

स भग्नबाहूरुकटिशिरोधरः
क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः ।
प्रभिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः॥ ९॥

जिसकी भुजाएँ, जाँघें, कमर, सिर और अधर=होंठ चूर-चूर हो गये हैं, जिसकी हड्डियाँ टूट चुकी हैं और आँखें निकल पड़ी हैं, जिसके जोड़ों के सारे बन्धन शिथिल हो चुके हैं, जिसके सम्पूर्ण शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है ऐसा अक्षकुमार हनुमान् के द्वारा मारा जाकर भूमि पर गिर पड़ा।

❮ द्वात्रिंशः सर्गः ❯ (३२)

इन्द्रजित् को आदेश—

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा
हनूमताक्षे निहते कुमारे।
मनः समाधाय तदेन्द्रकल्पं
समादिदेशेन्द्रजितं स रोषात्॥ १॥

हनुमान् के द्वारा अक्षकुमार के मारे जाने पर राक्षसराज रावण ने धैर्य धारणकर तथा क्रुद्ध हो इन्द्र

के समान पराक्रमी इन्द्रजित्–मेघनाद को युद्ध में जाने का आदेश दिया।

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः।
चकार भर्तारमतित्वरेण
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः॥ २॥

पिता के आदेश को सुनकर देवों के तुल्य प्रभाववाला वीर मेघनाद रावण की परिक्रमा कर और युद्ध करने का निश्चय कर अति शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चल दिया।

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः।
युद्धोद्धतः कृतोत्साहः संग्रामं प्रत्यपद्यत॥ ३॥

इन्द्रजित् अपने इष्ट-मित्रों द्वारा सम्मनित और युद्ध के लिए उत्साहित होकर, युद्धक्षेत्र में जा पहुँचा।

आयान्तं सरथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रजितं कपिः।
विननाद महानादं व्यवर्धत च वेगवान्॥ ४॥

रथ में बैठकर बड़ी शीघ्रता से अपनी ओर आते हुए इन्द्रजित् को देखकर वेगवान् हनुमान्‌जी भी भयंकर गर्जना करते हुए आगे बढ़े।

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविशारदौ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्॥ ५॥

हनुमान् और इन्द्रजित् दोनों ही वेग-सम्पन्न और रणपण्डित थे, अतः वे दोनों सब प्राणियों के मन को हरनेवाला युद्ध करने लगे।

हनुमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं
न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम्।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ॥ ६॥

युद्ध करते हुए न तो हनुमान्‌जी को मेघनाद में कहीं कोई छिद्र (कमी, त्रुटि) दिखाई दी और न मेघनाद को हनुमान् में कहीं कोई कमजोरी दिखाई दी। वे दोनों ही देवताओं के समान पराक्रमशाली थे, अतः वे दोनों एक-दूसरे के पराक्रम का धैर्यपूर्वक सामना करने लगे।

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने
शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितात्मा॥ ७॥

जब मेघनाद अनेक अमोघ (कभी व्यर्थ न जानेवाले) बाण चलाकर भी हनुमान् को विद्ध न कर सका तब समाधि योग का अभ्यास करनेवाले साधक की भाँति एकाग्रचित्त होकर मेघनाद विचारने लगा—

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित्।
निजग्राह महाबाहुर्मारुतात्मजमिन्द्रजित्॥ ८॥

यह अस्त्रों द्वारा अवध्य है, ऐसा जानकर अस्त्रों के मर्म को जाननेवाले मेघनाद ने पवनपुत्र महाबाहु हनुमान् को ब्रह्मास्त्र से बाँधकर जीवित ही पकड़ लिया।

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले॥ ९॥

तब राक्षस इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र से बाँधे जाने पर हनुमान्‌जी निश्चेष्ट होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततस्तं राक्षसा दृष्ट्वा निर्विचेष्टमरिन्दमम्।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः॥ १०॥

शत्रुहन्ता हनुमान्‌जी को निश्चेष्ट पड़ा हुआ देखकर राक्षस लोग उनको सन की, वल्कल और वृक्षों की छाल से बनी हुई रस्सियों से कसकर बाँधने लगे।

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम्।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन्॥ ११॥

राक्षस लोगों ने मत्त हाथी की भाँति बँधे हुए हनुमान्‌जी को राक्षसराज रावण के समक्ष उपस्थित कर दिया।

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगसंस्कृते।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने॥ १२॥

रावण रत्न-जटित स्फाटिक पत्थर के एक विशाल और उत्तम सिंहासन पर जिस पर बहुमूल्य उत्तम आसन बिछा हुआ था, सुशोभित हो रहा था।

अलङ्कृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम्॥ १३॥

नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित स्त्रियाँ हाथों में चमर और व्यजन लिये हुए उसके चारों ओर खड़ी हुई उसकी सेवा कर रही थीं।

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा॥ १४॥

दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ नामक चार परामर्श देने में निपुण, तत्त्ववेत्ता मन्त्री उसके समीप थे।

उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितैः।
कृत्स्नः परिवृतो लोकश्चतुर्भिरिव सागरैः॥ १५॥

उन चार तत्त्वज्ञ एवं बलदर्पित मन्त्रियों से घिरा हुआ रावण वहाँ बैठा हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसे चार समुद्रों से घिरा हुआ सम्पूर्ण भूमण्डल सुशोभित होता है।

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान्राक्षसेश्वरम्।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः॥ १६॥

इस प्रकार अत्यन्त प्रकाशमान एवं सुशोभित राक्षसराज रावण को देखकर हनुमान्‌जी उसके प्रताप और प्रभाव से मुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगे—

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥ १७॥

अहो! इस राक्षसराज रावण का रूप कैसा सुन्दर एवं मनोहारी है। इसमें कितना धैर्य है। कैसा इसमें पराक्रम है और इसमें कितनी कमनीय कान्ति है। अहो! यह राक्षसराज सभी शुभ लक्षणों से परिपूर्ण है।

यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥ १८॥

यदि इस राक्षसराज रावण में अधर्म का आधिक्य न होता (अर्थात् यह पापाचारी न होता) तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवलोक पर भी शासन करता।

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः।
सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः॥ १९॥

परन्तु इसके क्रूर, निर्दय और अन्यलोक-निन्दित कर्मों से निश्चय ही सम्पूर्ण देव और दानव-मण्डल भयभीत रहता है।

अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत्।
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः॥ २०॥

क्रुद्ध होने पर यह राक्षसराज रावण सारे संसार को नष्ट कर सकता है। महामति हनुमान्‌जी अत्यन्त पराक्रमी रावण के तेज एवं प्रभाव को देख इस प्रकार विविध कल्पनाएँ करने लगे।

◀ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ▶ (३३)

प्रहस्त द्वारा हनुमान् से प्रश्न और हनुमान् का रावण को उपदेश—

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम्।
रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः॥ १॥

लोकों को रुलानेवाला, विशालबाहु और अत्यन्त क्रुद्ध वह रावण पीले नेत्रोंवाले हनुमान् को अपने समक्ष खड़ा हुआ देखकर—

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम्।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत्॥ २॥

क्रोध से लाल आँखोंवाला वह राक्षसराज रावण अपने प्रधानमन्त्री प्रहस्त से समय के अनुकूल और विपुल अर्थयुक्त यह गम्भीर वचन बोला—

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने॥ ३॥

इस दुष्ट से पूछो कि यह कहाँ से आया है? क्यों

आया है ? अशोकवाटिका को नष्ट-भ्रष्ट करने और राक्षसों के डराने-धमकाने में इसका क्या प्रयोजन है ?

मत्पुरीमप्रधृष्यां वाऽऽगमने किं प्रयोजनम्।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः॥ ४॥

इस दुर्बद्धि से यह भी पूछो कि दुर्गमनीय मेरी लङ्कापुरी में इसके आने का क्या प्रयोजन है तथा यहाँ आकर हमारे सेवकों के साथ युद्ध करने का क्या प्रयोजन है[१] ?

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे॥ ५॥

रावण के वचनों को सुनकर प्रहस्त ने हनुमान्‌जी से कहा—हे कपे! तुम्हारा कल्याण हो। उद्विग्न मत होओ, धैर्य धारण करो—विश्वास रखो। डरो नहीं।

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम्॥ ६॥

हे वानर! तुम सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दो तो तुम्हें अभी मुक्त कर दिया जायेगा और यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हें जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम्।
दूतोऽहमिति विज्ञेयो राघवस्यामितौजसः॥ ७॥

राक्षसराज रावण के मन्त्री प्रहस्त के इस प्रकार पूछने पर कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने कहा—तुम मुझे अमित पराक्रमी श्रीराम का दूत समझो।

अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवालयम्।
राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत्॥ ८॥

(प्रहस्त से इतना कहकर हनुमान् ने रावण से कहना आरम्भ किया) हे राक्षसराज! मैं सम्राट् सुग्रीव के संदेश से आपके पास आया हूँ। आपके बन्धु राजा सुग्रीव ने आपकी कुशल क्षेम पूछी है।

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम्॥ ९॥
समुद्रं लङ्घयित्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा॥ १०॥

मैं पवनदेव का औरस पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। सीता की खोज में शीघ्रतापूर्वक सौ योजन लम्बे समुद्र को पारकर मैं उसके दर्शन के लिए यहाँ आया हूँ। इस नगरी में घूमते-फिरते मैंने तुम्हारे गृह में सीता को देखा है।

तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि॥ ११॥

हे महाप्राज्ञ! आप धर्म और अर्थ को भली प्रकार जानते हैं तथा तप के प्रभाव से आपने इस सारे ऐश्वर्य का सम्पादन किया है, अतः आप जैसे व्यक्ति के लिए पराई स्त्री को अपने घर में बन्द रखना उचित नहीं है।

न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः॥ १२॥

आप जैसे बुद्धिमान को धर्मविरुद्ध, अनर्थकारी तथा जड़ से नाश करनेवाले कार्यों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम्।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि॥ १३॥

राम के क्रोध का अनुसरण करनेवाले लक्ष्मण

---

१. हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि आचार्य केशव ने अपनी 'रामचन्द्रिका' में रावण और हनुमान् का वार्त्तालाप इन शब्दों में चित्रित किया है—

रे कपि कौन तू ? अच्छ को
घातक दूत बली रघुनन्दन जू को।
को रघुनन्दन रे ? त्रिसिरा-
खरदूषन-दूषन भूषण भू को॥
सागर कैसे तर्‍यो ? जस गोपद,
काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी
छुई दृग सोवत पातक लेखो॥

द्वारा छोड़े गये बाणों के समक्ष टिकने की शक्ति देव तथा असुर किसी में भी नहीं है।

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्यते कश्चन।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात्॥ १४॥

हे राजन्! तीनों लोकों में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो श्रीराम के साथ विरोध करके सुखपूर्वक रह सके।

तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुबन्धि च।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम्॥ १५॥

हे रावण! मैंने जो कुछ कहा है वह तीनों कालों के लिए हितकारी तथा धर्म अर्थ के अनुकूल है, अतः मेरी बात मानकर आप सीताजी को नरकेसरी श्रीराम को लौटा दें।

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम्।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः॥ १६॥

देवी जानकी को जिसका दर्शन मेरे जैसे व्यक्ति के लिए बहुत दुर्लभ था मैंने यहाँ देख लिया है। इसके पश्चात् जो आगे का कर्त्तव्य है वह श्रीराम पर निर्भर है।

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा।
गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम्॥ १७॥

शोकपरायण सीता को मैंने तुम्हारे घर में देखा है। तुम यह मत समझना कि सीता तुम्हारे वश में हो गई है, अपितु पाँच फनवाली नागिन की भाँति तुम इसे अपना काल ही समझना।

नेयं जरयितुं शक्या सा सुरैरमरैरपि।
विषसंस्पृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा॥ १८॥

जिस प्रकार विषयुक्त अन्न को तीव्र जठराग्नि के बल पर भी नहीं पचाया जा सकता उसी प्रकार यह सीता देव और दानव किसी के द्वारा भी छिपाई नहीं जा सकती।

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते वशे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥ १९॥

हे रावण! जिसे तुम सीता समझ रहे हो और जो इस समय तुम्हारे पञ्जे में फँसी हुई है उसे तुम सारी लङ्का का नाश करनेवाली कालरात्रि समझो।

सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम्।
दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम्॥ २०॥

हे रावण! तुम सीता के तेज से दग्ध और श्रीराम के कोप से पीड़ित होकर अट्टालिकाओं सहित इस लङ्का को शीघ्र ही भस्म होते हुए देखोगे।

स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातॄन्सुतान्हितान्।
भोगान् दारान् लङ्कां च मा विनाशमुपानय॥ २१॥

हे रावण! अब भी समय है, अपने मित्रों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों, भाइयों, पुत्रों, हितैषियों, भोग्य वस्तुओं, अपनी स्त्रियों और लङ्का का नाश मत कराओ।

➤ चतुस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३४)

हनुमान् के वध का आदेश—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः।
आज्ञापयत्तस्य वधं रावणः क्रोधमूर्छितः॥ १॥

महात्मा हनुमान् की इन बातों को सुनकर क्रोधमूर्छित रावण ने उसके वध की आज्ञा प्रदान की।

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः॥ २॥

जब दुरात्मा रावण ने हनुमान् को मार डालने की आज्ञा दी तब अपने आपको दूत बतानेवाले हनुमान् के वध का विभीषण ने अनुमोदन नहीं किया।

निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम्।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ३॥

शत्रु को जीतनेवाले, वाणीविशारद विभीषण कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करके अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण का सम्मान कर और साम-नीति का आश्रय

लेकर ये हितकारी वचन बोले—

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद मद्वाक्यमिदं शृणुष्व।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः॥ ४॥

हे राक्षसेन्द्र! क्रोध को त्यागिये और क्षमा को धारण कीजिए। आप प्रसन्न होकर मेरी इन बातों को सुनिए। हे राजन्! पूर्वापर का विवेक रखनेवाले राजा लोग दूत का वध कदापि नही करते।

राजधर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम्।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम्॥ ५॥

हे वीर! इस वानर को प्राणदण्ड देना राजधर्म[1] के विरुद्ध और लोकाचार से निन्दित है। यह कार्य आप जैसे वीर व्यक्ति के अनुरूप भी नहीं है।

तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूते दण्डो विधीयताम्॥ ६॥

हे शत्रुसंहारक! अजेय राक्षसेन्द्र! आप प्रसन्न हो जाइए। पहले आप उचित-अनुचित का विचार कर लें फिर दूत को दण्ड दें।

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
रोषेण महताविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ ७॥

राक्षसराज रावण विभीषण की इन बातों को सुनकर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और उनकी बातों का उत्तर देता हुआ बोला—

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।
तस्मादेनं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम्॥ ८॥

हे शत्रुनाशक! पापी को मारने में पाप नहीं लगता, अतः मैं इस पापकर्म करनेवाले राक्षस को प्राणदण्ड अवश्य दूँगा।

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्त
मनार्यजुष्टं वचनं निशम्य।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः॥ ९॥

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण, रावण के अधर्ममूलक, अनेक दोषों से युक्त, अनार्य जनोचित बातों को सुनकर परमार्थतत्त्वयुक्त ये वचन बोले—

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
धर्मार्थयुक्तं वचनं शृणुष्व।
दूतानवध्यान्समयेषु राजन्
सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः॥ १०॥

हे लंकेश्वर! हे राक्षसेन्द्र! आप प्रसन्न हूजिए और धर्म तथा अर्थयुक्त मेरे वचनों को सुनिए। 'दूत सर्वदा और सर्वत्र अवध्य हैं'—ऐसा सज्जनों का निर्णय है।

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः
कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम्।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो
दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः॥ ११॥

निस्संदेह यह बहुत बड़ा शत्रु है, इसने अपराध भी बहुत बड़ा किया है फिर भी सज्जन पुरुषों के मतानुसार दूत का वध उचित नहीं। प्राणदण्ड के अतिरिक्त दूतों के लिए और भी बहुत-से दण्ड हैं।

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्षणसन्निपातः।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥ १२॥

कोई अङ्ग भङ्ग कर देना, कोड़े लगवाना, सिर मुँडवा देना, गर्म लोहे से दूत के शरीर में कोई चिह्न लगवा देना—विधानतः दूतों के लिए ये ही दण्ड माने गये हैं। दूतों के लिए प्राणदण्ड मैंने आज तक

---

१. नीतिशास्त्र के अनुसार—

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धुवर्गवधेष्वपि।
परुषाण्यपि जलपन्तो वध्या दूता न भूभुजा॥

गर्दन के ऊपर शस्त्र के उठे रहने पर, समस्त बन्धु-वर्ग का वध हो जाने पर और कठोर वाक्यों के कहने पर भी राजा दूतों को न मारे।

नहीं सुना।

साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः।
ब्रुवन् परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति॥ १३॥

यह सज्जन है या दुष्ट, यह प्रश्न नहीं है, प्रश्न तो यह है कि यह दूसरे के द्वारा भेजा गया है। यह दूसरे का है और दूसरे का ही संदेश कहता है, अतः इस पराधीन दूत का वध करना उचित नहीं है।

◀ पञ्चत्रिंशः सर्गः ▶ (३५)

लङ्का-दहन—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत्॥ १॥

महात्मा विभीषण के देशकालोचित इन वचनों को सुनकर रावण ने कहा—

सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता।
अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः॥ २॥

आपका कहना ठीक है। सचमुच दूत का वध करना निन्द्यकर्म है, परन्तु प्राणदण्ड के अतिरिक्त इसे और कोई दण्ड तो दिया ही जाना चाहिए।

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥ ३॥

वानर-जाति के लोगों के लिए इनका लाङ्गूल[1] सबसे प्रिय एवं उत्तम आभूषण होता है, अतः इसके लाङ्गूल को जला दो। यह अपना जला हुआ लाङ्गूल लेकर यहाँ से जाए।

आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम्।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम्॥ ४॥

अतः राक्षसराज रावण ने आज्ञा दी कि इसकी लाङ्गूल में अग्नि लगा कर राक्षस लोग इसे चौराहों और नगर मे सर्वत्र घुमायें।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः।
वेष्टयन्ति स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कर्पासकैः पटैः॥ ५॥

रावण की आज्ञा पाकर महाक्रोधी वे राक्षस फटे-पुराने वस्त्रों को उसकी लाङ्गूल में लपेटने लगे।

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रावपातयन्।
निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम्॥ ६॥

फटे-पुराने वस्त्र लपेटकर और तेल से भिगोकर राक्षसों ने उस लाङ्गूल में आग लगा दी। जब अग्नि प्रदीप्त हो गई तब पाश में बँधे हुए हनुमान् ने उस

---

१. प्रायः टीकाकारों ने लाङ्गूल का अर्थ पूँछ किया है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। जब किष्किन्धाकाण्ड २। २८, २९ में हनुमान् को वेदादि शास्त्रों और व्याकरण का विद्वान् बताया है तब उन्हें पूँछवाला बन्दर कहना मूर्खता है। बाली, सुग्रीव, अङ्गद आदि सभी मनुष्य थे इनके लिए '**आर्य**' विशेषण का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। तारा को **मन्त्रवित्** कहा गया है।

एक बात बड़ी विचित्र है कि यह पूँछ पुरुषों के ही दिखाई गई है तारा, रुमा आदि वानर स्त्रियों के लिए कहीं भी पूँछ का उल्लेख नहीं है। क्या कहीं ऐसे बन्दर भी होते हैं कि बन्दरों के तो पूँछ हो और और बन्दरियों के पूँछ ही न हो?

लाङ्गूल वानर जाति का राष्ट्रिय-चिह्न (Totem=टोटेम) था। इसे ये लोग बड़ी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे तथा इसके अपमान को जातीय अपमान समझते थे। रावण ने इसी राष्ट्रिय-चिह्न को जलाने की आज्ञा प्रदान की थी।

जैसे आजकल भी ग्वाले अपनी पगड़ी में मोर पंख लगा लेते हैं, परन्तु वह उनके शरीर का अङ्ग नहीं होता इसी प्रकार वानरजाति के लोग भी पूँछ सदृश कोई वस्तु लगा लेते थे। यह इनके शरीर का वास्तविक अङ्ग नहीं था।

इस विषय में अधिक जानकारी के लिए हमारा '**मर्यादा-पुरुषोत्तम राम**' पढ़िए।

समय के अनुरूप यह विचार स्थिर किया—

रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः।
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये॥ ७॥

दुर्ग की रक्षा की सुव्यवस्था के कारण मैं रात्रि में लंका को अच्छी तरह नहीं देख सका, अतः दिन में मुझे सम्पूर्ण लंका को अच्छी तरह देख लेना चाहिए।

ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम्।
परिगृह्य ययुर्हृष्ट राक्षसाः कपिकुञ्जरम्॥ ८॥
शङ्खभेरीनिनादस्तं घोषयन्तः स्वकर्मभिः।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम्॥ ९॥

उधर तो हनुमान्जी मन-ही-मन में इस प्रकार सोच रहे थे, इधर वे क्रूरकर्मा राक्षस गूढ़स्वभाव, महाबली, वानरश्रेष्ठ हनुमान् को पकड़कर प्रसन्न होते हुए, शंख, भेरी आदि के द्वारा उनके कृत्यों की घोषणा करते हुए उन्हें उस नगरी में घुमाने लगे।

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत्॥ १०॥

लंका नगरी को देखते हुए सफल मनोरथ हनुमान्जी का उत्साह बढ़ रहा था, अतः वे अवशिष्ट कार्य के विषय में विचार करने लगे।

किन्नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम्।
यदेषां रक्षसां भूयः सन्तापजननं भवेत्॥ ११॥

वे सोचने लगे—इस नगरी में मेरा ऐसा कौन-सा कार्य अवशिष्ट रह गया है जिसके करने से राक्षसों का सन्ताप और अधिक बढ़े।

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम्॥ १२॥

मैंने रावण के प्रमदावन=अशोकवटिका का विध्वंस कर दिया। चुने हुए पराक्रमी राक्षसों को मार डाला। सेना के एक भाग को भी मैंने नष्ट कर दिया। अब तो केवल दुर्ग का नाश करना शेष रह गया है।

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम्।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलः श्रमः॥ १३॥

दुर्ग को नष्ट कर देने से मेरा परिश्रम सार्थक हो जाएगा। यह कार्य थोड़े ही परिश्रम से पूर्ण हो जाएगा, मुझे अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा।

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः॥ १४॥

ऐसा निश्चय करके विद्युत् युक्त मेघ के समान जलते हुए लाङ्गूल को लिए हुए हनुमान् लंका के उत्तम भवनों पर विचरने लगे।

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः।
वीक्षमाणो ह्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः॥ १५॥

राक्षसों के एक घर से दूसरे घर पर तथा जहाँ तहाँ उद्यानों को देखते हुए वीर हनुमान् निर्भय हो कर महलों पर घूमने लगे।

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्।
अग्निं तत्र स निक्षिप्य श्वसनेन समो बली॥ १६॥

कूदते-फाँदते पवन के समान वेगवान् हनुमान्जी मन्त्रीवर प्रहस्त के घर पर जा चढ़े और उसमें आग लगा दी।

ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान्।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम्॥ १७॥

तत्पश्चात् महाबलवान् हनुमान् महापार्श्व के गृह में घुस गये और प्रलयकालाग्नि के समान उसमें आग लगा दी।

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः॥ १८॥

फिर वे वज्रदंष्ट्र के भवन पर कूद पड़े और उसमें भी अग्निप्रचण्ड कर उन्होंने महातेजस्वी शुक और बुद्धिमान् सारण के घरों को भी जला दिया।

तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः॥ १९॥

तत्पश्चात् वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने इन्द्रजित् के गृह को जला दिया। इसी प्रकार जम्बुमालि और सुमालि के घरों को भी दग्ध कर दिया।

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः॥ २०॥

महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने केवल विभीषण के घर को छोड़कर शेष राक्षस भवनों को घूम घूम कर जला दिया।

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह स महाकपिः॥ २१॥

महाबली एवं यशस्वी हनुमान् ने उन धनिकों के विशाल भवनों में जो-जो मूल्यवान् अन्न, वस्त्र, द्रव्य, मणि-मुक्ता आदि सम्पत्ति थी उस सबको भस्म कर डाला।

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान्।
आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम्॥ २२॥

पराक्रमी हनुमान् सब भवनों को जलाकर राक्षसराज रावण के गृह पर पहुँच गये।

ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य।
ननाद हनुमान् वीरो युगान्तजलदो यथा॥ २३॥

रावण के उस मुख्य महल में प्रदीप्ताग्नि छोड़कर हनुमान्जी ऐसे जोर से गर्जे जैसे प्रलयकालीन मेघ गरजते हैं।

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा॥ २४॥

इस प्रकार महाबली हनुमान् ने सारी लंका को जलाकर इस प्रकार भस्म कर डाला जिस प्रकार महादेवजी ने त्रिपुरासुर को भस्म किया था।

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं रम्यां रराज स महाकपिः॥ २५॥

महातेजस्वी हनुमान् अशोकवाटिका को उजाड़, युद्ध में राक्षसों को मार और रमणीक लंकापुरी को जलाकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए।

≺ षट्त्रिंशः सर्गः ≻ (३६)

हनुमान् की आशङ्का—

सन्दीप्यमानां विध्वस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम्।
अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः॥ १॥

जलती हुई और विध्वस्त लंका को तथा भयभीत राक्षसों को देखकर हनुमान्जी अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत।
लङ्कां प्रदहता कर्म किं स्वित्कृतमिदं मया॥ २॥

उनके मन में एक बहुत बड़ा भय उत्पन्न हो गया। वे मन-ही-मन अपनी निन्दा करने लगे कि मैंने लंकापुरी को जलाकर यह क्या अनर्थ कर डाला?

धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठा ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा॥ ३॥

वे पुरुषश्रेष्ठ धन्य हैं जो उठे हुए क्रोध को बुद्धि के द्वारा इस प्रकार शान्त कर देते हैं जिस प्रकार जल के द्वारा प्रदीप्त अग्नि शान्त कर दी जाती है।

क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्॥ ४॥

क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर डालता? क्रोध के आवेग में मनुष्य अपने गुरुजनों को भी मार डालता है। क्रोधी मनुष्य अपने कठोर वाक्यों से सज्जनों का भी तिरस्कार कर सकता है।

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्॥ ५॥

क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए—क्रोधी मनुष्य के लिए कुछ भी अवक्तव्य या अकर्तव्य शेष नहीं रह जाता।

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥ ६॥

जो व्यक्ति अपने उठे हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा वैसे ही निकाल कर बाहर कर देता है जैसे सर्प

पुरानी कैंचुली को—वही व्यक्ति पुरुष कहलाने योग्य है।

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम्।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम्॥ ७॥

बिना विचारे सीता को अग्नि द्वारा जला देनेवाले स्वामीघातक, पापकारी, निर्लज्ज एवं दुर्बुद्धि मुझको धिक्कार है।

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्बडवामुखे।
शरीरमाहो सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम्॥ ८॥

अब मैं क्या करूँ? क्या मैं अग्नि में कूद पड़ूँ? अथवा समुद्र के बड़वानल (सन्तप्त समुद्र की जलधारा) में कूद पड़ूँ अथवा समुद्र में रहनेवाले जल जन्तुओं का आहार बन जाऊँ?

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम्।
शुश्राव हनुमान्वाक्यं चारणानां महात्मनाम्॥ ९॥

जब हनुमान्‌जी इस प्रकार विचार कर रहे थे तब उन्हें महात्मा चारणों के ये शब्द सुनाई पड़े—

अहो खलु कृतं कर्म दुष्करं हि हनूमता।
अग्निं विसृजताऽभीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि॥ १०॥

अहो! हनमान् ने यह कैसा दुष्कर कर्म कर डाला जो सम्पूर्ण राक्षसों के घरों में भीषण आग लगा दी।

दग्धेयं नगरी सर्वा साट्टप्राकारतोरणा।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः॥ ११॥

गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, प्राकारों-चाहर दीवारी और तोरणद्वारों सहित सारी-की-सारी लङ्का भस्म हो गई, किन्तु जनकनन्दिनी सीता नहीं जली यह कितनी अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बात है।

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थः
तामक्षतां राजसुतां विदित्वा।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार॥ १२॥

चारण लोगों के वचनों से सीताजी को सुरक्षित जानकर हनुमान् ने अपने आपको सफल मनोरथ समझा। 'सीता को एक बार पुनः अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखकर तब इस नगरी से प्रस्थान करना चाहिए'—ऐसा हनुमान् ने निश्चय किया।

➤ सप्तत्रिंशः सर्गः ➤ (३७)

लङ्का से लौटने के लिए समुद्र-लंघन—

ततस्तां शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम्।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम्।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम्॥ १॥

अपने मन में ऐसा निश्चयकर हनुमान् अशोकवृक्ष की छाया में बैठी हुई जनकनन्दिनी सीता को प्रणाम करके बोले—हे देवि! सौभाग्य से मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ।

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं हनुमन्तमभाषत॥ २॥

तब वापस लौटने के लिए तैयार हनुमान् को बार-बार देखकर पतिस्नेह-परायणा सीता हनुमान्‌जी से बोली—

शरैः सुसङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ ३॥

शत्रुओं के बल को खण्डित करनेवाले श्रीराम यदि अपने बाणों से सम्पूर्ण लङ्का को आतंकित करके मुझे यहाँ से ले जाएँ तो यह कार्य उनके अनुरूप ही होगा।

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम्।
निशम्य हनुमांस्तस्या वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ ४॥

सीताजी के अर्थ-परिपूर्ण, युक्तियुक्त तथा स्नेहसिक्त इन वचनों को सुनकर हनुमान् ने कहा—

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति॥ ५॥

हे देवि! ऋक्ष और वानरों की विशाल सेना लेकर श्रीराम शीघ्र ही यहाँ आयेंगे और युद्ध में शत्रुओं को मारकर तुम्हारा शोक दूर करेंगे।

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत्॥ ६॥

इस प्रकार पवनपुत्र हनुमान् ने सीता को आश्वासन देकर और वहाँ से प्रस्थानित होने का विचार कर, विदेहराजकुमारी सीता को प्रणाम किया।

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरि मर्दनः॥ ७॥

सीता को प्रणाम कर और उनकी अनुमति ले शत्रु का मान मर्दन करनेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी श्रीराम के दर्शनों की उत्सुकता से अरिष्ट नामक पर्वतश्रेष्ठ पर चढ़ गये।

अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः।
ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम्॥ ८॥

उस पर्वत पर चढ़कर हनुमान् ने मछलियों और सर्पों से परिपूर्ण उस भयंकर समुद्र को देखा।

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम्॥ ९॥

वहाँ से पवनपुत्र हनुमान्जी आकाशचारी पवन की भाँति (अपने विमान द्वारा) बड़ी तीव्रता के साथ दक्षिण-तट से उत्तर-तट की ओर उड़ चले।

➤ अष्टात्रिंशः सर्गः ➤ (३८)

हनुमान् का लौटना—

हनुमान् मारुतगतिर्महानौरिव सागरम्।
अपारमपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम्॥ १॥

जैसे विशाल नौका सागर में चलती है उसी प्रकार हनुमान्जी वायु के समान तीव्र गति से बिना किसी थकावट के आकाशरूपी सागर में चले जाते थे।

स किञ्चिदनुसम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम्।
महेन्द्रं मेघसंकाशं ननाद हरिपुङ्गवः॥ २॥

जब विशाल महेन्द्रपर्वत कुछ ही दूर रह गया तब हनुमान् ने विद्युत् पूर्ण मेघ के समान भयंकर गर्जना की।

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥ ३॥

हनुमान् के उस गम्भीर-गर्जन को सुनकर, हनुमान् की प्रतीक्षा में बैठे हुए उसके वानर साथी अपने बन्धु का दर्शन करने के लिए उत्सुक हो उठे।

जाम्बवांस्तु हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः।
उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्॥ ४॥

कपिश्रेष्ठ जाम्बवान् अत्यन्त प्रसन्न और अपने सभी साथियों को एकत्र कर बोले—

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनुमान्नात्र संशयः।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत्॥ ५॥

हनुमान् अपने कार्य में सफल मनोरथ होकर आ रहे हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। कार्य में असफल होने पर वे इस प्रकार की गर्जना कदापि न करते।

ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखाः सुपुष्पिताः।
वासांसीव प्रशाखाश्च समाविध्यन्त वानराः॥ ६॥

जाम्बवान् के इन वचनों को सुनकर हनुमान् के दर्शन के लिए समुत्सुक वे वानर पुष्पित वृक्षों की ऊँची चोटियों पर चढ़ गये और वस्त्रों की भाँति उनकी शाखाओं को हिलाने लगे।

तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम्।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा॥ ७॥

घने मेघ के समान महावीर हनुमान् को आकाश मार्ग से आते हुए देखकर सब वानर हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

ततस्तु वेगवांस्तस्य गिरेर्गिरिनिभः कपिः।
निपपात महेन्द्रस्य शिखरे पादपाकुले॥ ८॥

तब वेगवान् और विशालकाय हनुमान्जी वृक्षों से परिपूर्ण महेन्द्र पर्वत के ऊपर उतरे।[1]

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः।
हनुमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे॥ ९॥

तब वे सभी वानरगण अत्यधिक हर्षित होकर महात्मा हनुमान् को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये।

प्रहृष्टवदनाः सर्वे फलमूलानि चादाय।
प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम्॥ १०॥

वे सब प्रसन्न होते हुए और मूल एवं फलों की भेंट ला लाकर कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्जी का आतिथ्य करने लगे।

हनुमानस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः॥ ११॥

हनुमान्जी ने भी पूज्य एवं वृद्ध जाम्बवान्, प्रमुख सेनापतियों और कुमार अङ्गद को प्रणाम किया।

स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
दृष्टा सीतेति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत्॥ १२॥

जाम्बवान् तथा अङ्गद एवं वानरी सैनिकों से सत्कृत होकर हनुमान्जी ने उन सबको सीता के देखने का वृत्तान्त संक्षेप में कह सुनाया।

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम्।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन्॥ १३॥

'मैंने सीता को देखा है'—हनुमान् के मुख से इस अमृत के तुल्य और अर्थ-परिपूर्ण वचन के निकलते ही समस्त वानर-मण्डली आनन्द-विभोर हो उठी।

➤ एकोनचत्वारिंशः सर्गः ➤ (३९)

मधुवन-विध्वंस—

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः।
महेन्द्राद्रिं परित्यज्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः॥ १॥

सीता-दर्शन का वृत्तान्त सुनने के पश्चात् वे सभी वानर वीर पवनपुत्र हनुमान्जी को आगे कर प्रसन्न होते हुए महेन्द्र पर्वत की चोटी से उतर कर उछलते-कूदते चल दिये।

प्लवमानाः खमुत्पत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम्॥ २॥

वह मनस्वी वानर दल उछलता-कूदता इन्द्र के नन्दन वन के समान शोभायमान वृक्षों और लताओं से युक्त एक उपवन के समीप पहुँचा।

यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम्॥ ३॥

सम्पूर्ण प्राणिवर्ग के लिए अत्यन्त मनोहर तथा सभी के लिए दुष्प्रवेश्य सम्राट् सुग्रीव के द्वारा रक्षित उस राजकीय वन का नाम 'मधुवन' था।

यद्रक्षति महावीर्यः सदा दधिमुखः कपिः।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ ४॥

इस वन की रक्षा वानरराज महात्मा सुग्रीव का मामा महाबली दधिमुख किया करता था।

ते तद्वनमुपागम्य बभूवः परमोत्कटाः।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनः कान्ततमं महत्॥ ५॥

वानरेन्द्र सुग्रीव के उस अत्यन्त मनोहर महावन के समीप पहुँचकर वे वानर कार्यसिद्धि के कारण

---

१. यहाँ हनुमान्जी का पर्वत-शिखर पर '**निपपात**'—उतरने का वर्णन है, अतः स्पष्ट है कि हनुमान्जी विमान द्वारा लंका में गये थे और विमान द्वारा ही लौटे थे। यदि वे तैर कर आते तो पर्वत पर चढ़ते, उतरते नहीं।

उद्धत एवं फल खाने के लिए उत्सुक हो उठे।

ततस्ते वानराः हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ६ ॥

उस विशाल मधुवन को देखकर मधु के समान पीत (गौर) वर्णवाले वानर प्रसन्न हो गये और उन्होंने कुमार अङ्गद से उन मधु फलों को खाने और मधु पीने की याचना की।

ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन्।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥ ७ ॥

उन वानरों के प्रार्थना करने पर अङ्गद ने जाम्बवान् आदि बड़े-बूढ़े वानरों से विचार-विमर्श कर उन वानरों को मधुवन में जाने तथा मधुफल खाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

ततश्चानुमताः सर्वे सम्प्रहृष्टा वनौकसः।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ॥ ८ ॥

आज्ञा पाते ही वे सब वानर हर्षित हो गये। वे वन में घुसकर मधु पीने लगे और रसीले फलों को खाने लगे।

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागतान्।
ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान्मधुवने तदा ॥ ९ ॥

मधु पीनेवाले और फल खानेवाले उन वानरों को ऐसा करने से रोकने के लिए जब सैकड़ों रक्षक वहाँ आये तब ये वानर लोग उछल-उछल कर उन्हें मारने लगे।

ततो दधिमुखो क्रुद्धो हतं मधुवनं दृष्ट्वा।
जगाम सहसोत्पत्य सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ १० ॥

वन को नष्ट हुआ देखकर दधिमुख अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आकाश मार्ग-से तुरन्त वहाँ पहुँचा जहाँ सुग्रीव विद्यमान थे।

सन्निपत्य दधिमुखः सुग्रीवमब्रवीद्वचः।
वनं निसृष्टपूर्वं हि भक्षितं तत्तु वानरैः ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँच, भूमि पर उतर दधिमुख ने सुग्रीव से कहा—हे राजन्! जिस मधुवन को आपने कभी किसी को इच्छानुसार भोगने नहीं दिया--उसी वन को वानरों ने खा डाला।

इमे हि संरब्धतरास्तथा तैः सम्प्रधर्षिताः।
वारयन्तो वनात्तस्मात्क्रुद्धवानरपुङ्गवैः ॥ १२ ॥

जब मेरे वन रक्षक अनुचर उन्हें रोकने लगे तब उन वानरपुङ्गवों ने उन्हें डरा-धमकाकार वन से बाहर निकाल दिया।

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैः प्रभक्ष्यते ॥ १३ ॥

हे राजन्! आप जैसे स्वामी के होते हुए मेरे अनुचर पीटे गये तथा सम्पूर्ण मधुवन के फलों और मधु को वे लोग स्वच्छन्द होकर खा-पी गये।

एवं विज्ञाप्यमानं तु सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ १४ ॥

जिस समय दधिमुख वानर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से इस प्रकार निवेदन कर रहा था, उस समय शत्रुघाती एवं महाप्राज्ञ लक्ष्मणजी ने सुग्रीव से पूछा—

किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः।
कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

हे राजन्! यह वनरक्षक वानर यहाँ किसलिए लाया है और दुःखी होते हुए किस कार्य के सम्बन्ध में आपसे कह रहा है[१] ?

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १६ ॥

महात्मा लक्ष्मण के ऐसा पूछने पर वाक्य-विशारद सुग्रीव ने उत्तर दिया—

आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ १७ ॥

हे आर्य लक्ष्मण! वीर दधिमुख ने कहा है कि

---

१. इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि दधिमुख ने सुग्रीव से संस्कृत भाषा में बात न करके अपनी बोलचाल की भाषा में बात की थी जिसे श्रीराम और लक्ष्मण नहीं समझ सकें।

अङ्गद आदि वीर वानरों ने मधुवन के फलों और मधु को खा-पी डाला है।

विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः।
नैषामकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः॥ १८॥

इससे जान पड़ता है कि वे वानर वीर दक्षिण दिशा में सीता का पता लगा आये हैं, क्योंकि असफल-मनोरथ सैनिक ऐसा दुःसाहस नहीं कर सकते।

वनं यदभिपन्नं तैः साधितं कर्म वानरैः।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता॥ १९॥

यदि उन वानरों ने मधुवन को नष्ट किया है तो निश्चय ही उन लोगों ने कार्यसिद्ध कर लिया है। इसमें भी सन्देह नहीं कि सीता को हनुमान् ने ही देखा होगा अन्य किसी ने नहीं।

कार्यसिद्धिर्मतिश्चैव तस्मिन्वानरपुङ्गवे।
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्॥ २०॥

हनुमान् उद्योगी हैं, बलवान् हैं और पण्डित हैं, उन्हीं में कार्य-सिद्धि की बुद्धि है।

जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः।
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा॥ २१॥

जहाँ जाम्बवान् और अङ्गद जैसे नेता हों तथा जिस कार्य में हनुमान् जैसे अधिष्ठाता हों वहाँ पर कोई कार्य अपूर्ण कैसे रह सकता है?

अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल।
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह॥ २२॥

सफल मनोरथ होकर अङ्गद आदि वानर वीरों ने उस मधुवन को नष्ट कर डाला है। यह बात कहने के लिए यह मधुरभाषी वानर मेरे पास आया है।

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः।
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम्॥ २३॥

सुग्रीव के मुख से इस सुखदायक संवाद को सुनकर श्रीराम एवं लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत॥ २४॥

दधिमुख के मुख से इस समाचार को सुनकर सुग्रीव भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने वनरक्षक दधिमुख से कहा—

प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः।
मर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम्॥ २५॥

कृतकर्मा वानरों द्वारा वन के फल और मधु पीये जाने पर मैं प्रसन्न हूँ। सफल-मनोरथ उन लोगों की धृष्टतापूर्ण चेष्टा को मैंने क्षमा कर दिया।

गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान्हनुमत्प्रमुखान्कपीन्॥ २६॥

अब तुम शीघ्रतापूर्वक यहाँ से लौट जाओ और पूर्ववत् तुम्हीं वन की रक्षा करो। हाँ, हनुमान् आदि सैनिकों को शीघ्र यहाँ भेज दो।

➤ चत्वारिंशः सर्गः ➤ (४०)

हनुमान् आदि का राम के समीप आगमन—

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः।
स प्रणम्य तान् सर्वान् दिवमेवोत्पपात ह॥ १॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर दधिमुख प्रसन्न होता हुआ तथा सुग्रीव, राम और लक्ष्मण को प्रणाम कर आकाश[१]-मार्ग से चला गया।

---

१. रामायण में आकाश-मार्ग से जाने के इस प्रकार के अनेक वर्णन आते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि रामायणकाल में अनेक व्यक्तियों के पास छोटे-छोटे वायुयान (mono-planes) होते थे जिनके द्वारा वे आकाश-मार्ग से गमन किया करते थे।

स प्रविष्टो मधुवनं बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम्॥ २॥

दधिमुख ने मधुवन में प्रविष्ट होकर तथा हाथ जोड़कर अङ्गद के समीप जाकर प्रसन्न होते हुए ये मधुर वचन कहे—

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिरभिवारितः।
अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः॥ ३॥

हे सौम्य! इन रक्षकों ने अज्ञानता के कारण क्रोध में भरकर आप लोगों को फल खाने और मधुपान करने से रोका है, उसके लिए आप इन पर क्रोध न करें।

युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल।
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो दोषस्तं भवान्क्षन्तुमर्हति॥ ४॥

हे महाबली! युवराज होने के कारण आप स्वयं ही इस वन के स्वामी हैं। पहले मूर्खतावश हम लोगों से जो अपराध हो गया है उसके लिए आप हमें क्षमा करें।

आख्यातं मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच प्रहृष्टः॥ ५॥

हे निष्पाप! जब मैंने आपके चाचा सुग्रीव के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे कहा—समस्त वानरों को शीघ्र मेरे पास भेज दो।

श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः।
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ६॥

वाक्यविशारद कपिश्रेष्ठ अङ्गद दधिमुख के इन वचनों को सुनकर वानर सैनिकों से बोले—

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः।
तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः॥ ७॥

हे वानर यूथपतियो! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आने का वृत्तान्त श्रीराम ने सुन लिया है, अतः हे शत्रुसंहारक वीरो! अब यहाँ अधिक समय तक रहना उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ जो कार्य करना था वह हो चुका।

पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र मे गुरुः॥ ८॥

हे पराक्रमी वनवासी सैनिको! आप सब लोग पेट भर मधुपान कर चुके और अपनी थकावट भी मिटा चुके। अब यहाँ कोई कार्य शेष नहीं रहा, अतः अब हम लोगों को पूज्य पितृव्य सुग्रीव के पास चलना चाहिए।

ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम्।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः॥ ९॥

अङ्गद के इन उत्तम वचनों को सुनकर वे सभी वनवासी सैनिक प्रसन्न होकर बोले—

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः॥ १०॥

हम सभी लोग वहाँ जाने के लिए उत्कण्ठित हैं जहाँ प्रसन्नचित्त वानर-सम्राट् सुग्रीव विराज-मान हैं।

➤ एकचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४१)

हनुमान् का राम को सीता का संदेश एवं चूड़ामणि देना—

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम्।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम्॥ १॥
हनुमन्तं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः॥ २॥

(मधु आदि भक्षण करने के पश्चात्) रङ्ग-बिरंगे पुष्पों से सुशोभित, रमणीय वन से युक्त, प्रस्रवण पर्वत पर जाकर महाबली राम और लक्ष्मण को प्रणाम करके तथा सुग्रीव को अभिवादन करने के पश्चात् हनुमान् को प्रमुख बनाकर उन वानरों ने सीताजी का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।

दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे।
तत्र दृष्टा मया सीता रावणान्तःपुरे सती॥ ३॥

(हनुमान् ने कहा—) दक्षिण समुद्र के दक्षिणी तट पर लङ्का नामक नगरी बसी हुई है। उस नगरी में रावण के अन्तःपुर में मैंने सीता को देखा है।

संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम मनोरथम्।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः॥ ४॥

हे राम! यह सीता अपने मनोरथों को आप में ही केन्द्रित करके जी रही है[1]। मैंने सीता को बार-बार डराये-धमकाये जाते हुए राक्षसियों के मध्य में बैठे देखा है।

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता॥ ५॥

हे वीर राम! आपके साथ निरन्तर सुख भोगनेवाली सीता इस समय प्रमदा वन में विकराल राक्षसियों द्वारा पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख उठा रही है।

रावणान्तःपुरे रुद्ध्वा राक्षसीभिः सुरक्षिता।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चान्तः परायणा॥ ६॥
अधः शय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया॥ ७॥

रावण के अन्तःपुर में कैद, राक्षसियों द्वारा सावधानतापूर्वक रक्षित, एक वेणी बनाये हुए (शृंगार-रहित) वे सदा उदास और आपके ध्यान में मग्न रहते हुए भूमि पर सोती हैं, उनका रंग ऐसे ही फीका पड़ गया है जैसा कि शीतकाल में कमलिनी शोभा-विहीन हो जाती है। रावण से कोई भी सम्बन्ध न रख (प्रलोभनों से पृथक् रहकर) वह मरने के लिए उद्यत है।

विज्ञाप्यश्च नरव्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया।
अखिलेनेह यद् दृष्टमिति मामाह जानकी॥ ८॥

हे नरकेसरी! सीताजी ने मुझसे कहा था कि जैसा कुछ तुम यहाँ देखकर जा रहे हो वह समस्त वृत्तान्त तुम ज्यों-का-त्यों श्रीराम से कह देना।

अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः।
ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः॥ ९॥

सुग्रीव के समक्ष इन सब बातों को सुनाते हुए इस चूड़ामणि को जिसे मैंने यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, श्रीराम को देना—

जीवितं धारयिष्यामि मासं[2] दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता॥ १०॥

(और यह भी कह देना कि) हे दशरथनन्दन! मैं एक मास तक तुम्हारी प्रतीक्षा में जीवित रहूँगी एक मास (वस्तुतः दो मास) की अवधि बीत जाने पर मैं अपने प्राण त्याग दूँगी, क्योंकि मैं राक्षसों के फंदे में आ फँसी हूँ।

इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी वरवर्णिनी।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना॥ ११॥

हे राघव! हिरनी के समान प्रफुल्लित नेत्रोंवाली, रावण के अन्तःपुर में अवरुद्ध=कैद, कृशाङ्गी और धर्मचारिणी सीता ने इस प्रकार के वचन मुझसे कहे हैं—

एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम्॥ १२॥

---

१. किसी भाषा के कवि ने इसी श्लोक के आधार पर राम एवं हनुमान् के वार्त्तालाप का वर्णन इन शब्दों में किया है—

कहो हनुमान् मुझे यह तो,
क्या सीता जीवित है जगमाहीं।
जीती है सीता भगवन्,
पर सूख गई काँटें की नाईं॥
सूख के सीता काँटा भई,
पुनि जीवित है कैसे वह भाई।
प्राण तो आपके चरणों में है,
यम आवत है कछु पावत नाहीं॥

२. इसी काण्ड में सर्वत्र दो मास की अवधि का वर्णन आया है। ऐसा प्रतीत होता है यहाँ किसी ने मूल पाठ में कुछ परिवर्तन किया है।

हे रघुकुलशिरोमणि राम! मैंने जैसा और जो कुछ देखा तथा सुना वह सारा वृत्तान्त आपसे कह दिया है। अब आप जैसे भी हो समुद्र को पार उतरने का उपाय सोचिए।

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः।
तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मणः॥ १३॥

हनुमान् द्वारा इस प्रकार सीता के वृत्तान्त के कहे जाने पर श्रीराम उस चूड़ामणि को हृदय से लगा लक्ष्मण सहित रोने लगे।

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्षितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ १४॥

उस चूड़ामणि को देखकर श्रीराम शोक से व्याकुल हो गये और आँखों में आँसू भरकर सुग्रीव से बोले—

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिरत्नस्य दर्शनात्॥ १५॥

जैसे बछड़े के स्नेह से गौ के स्तनों से दूध टपकने लग जाता है उसी प्रकार इस श्रेष्ठ मणि को देखकर मेरा हृदय भी द्रवित हो गया है।

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे।
वधूकाले यथाबद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते॥ १६॥

पाणिग्रहण के अवसर पर यह चूड़ामणि मेरे ससुर महाराज जनक ने सीता को प्रदान की थी। सीताजी के मस्तक पर यह मणि अत्यन्त सुशोभित होती थी।

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम्।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतां बिना॥ १७॥

हे लक्ष्मण! इससे बढ़कर मेरे लिए और कौन-सी दुःख की बात होगी कि जल में उत्पन्न होनेवाली इस चूड़ामणि को मैं सीता के बिना ही देख रहा हूँ।

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति।
न जीवेयं क्षणमपि बिना तामसितेक्षणाम्॥ १८॥

हे लक्ष्मण! सीता एक मास (दो मास) जीवित रही तो निश्चय ही बहुत समय तक जीवित रहेगी। मैं उस कृष्णनयनी के बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च॥ १९॥

हे हनुमन्! तुम मुझे भी वहीं ले चलो जहाँ तुमने मेरी प्राणप्रिया को देखा है। उसका पता पाकर तो मैं क्षण भर भी अन्यत्र नहीं ठहर सकता।

॥ इति सुन्दरकाण्डम्॥

—o—

सुन्दरकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	**४१**
श्लोक-संख्या	**७०४**
टिप्पणियाँ	**२१**

अथ युद्धकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

हनुमान् को पारितोषिक—

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुभाषितम्।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥ १॥

हनुमान्जी द्वारा यथातथ्य वर्णित सीता के वृत्तान्त को सुनकर श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा ये समयोचित वचन बोले—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुष्करम्।
मनसाऽपि यदन्येन न शक्यं धरणीतले॥ २॥

(सीता का पता लगाकर और लंका को जलाकर) हनुमान् ने ऐसा महान् कार्य किया है जिसे भूमण्डल में कोई दूसरा नहीं कर सकता। करना तो दूर रहा, ऐसा कार्य करने की इस संसार में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।[१]

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥ ३॥

परन्तु इस समय मुझ दुःखिया के मन को एक बात बार-बार नोच रही है कि इस प्रिय संवाद सुनानेवाले हनुमान् को इस कार्य के अनुरूप मैं कोई भी पारितोषिक नहीं दे सकता।

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तश्चास्तु महात्मनः॥ ४॥

अच्छा, इस समय मेरे पास जो आलिङ्गनरूप सर्वस्वभूत वस्तु है वही मैं महात्मा हनुमान् को प्रदान करता हूँ।

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे।
हनुमन्तं महात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥ ५॥

ऐसा कहकर प्रीति से प्रफुल्लित शरीरवाले श्रीराम ने सफल मनोरथ महात्मा हनुमान् का आलिङ्गन किया।

ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः।
हरीणामीश्वरस्यैवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः॥ ६॥

हनुमान् का आलिङ्गन करने के पश्चात् श्रीराम कुछ देर विचार करके कपिराज सुग्रीव के समक्ष हनुमान् से फिर बोले—

सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम्।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम॥ ७॥

यद्यपि सीता के अन्वेषण का कार्य सब प्रकार से पूर्ण हो चुका है तथापि जब मैं उत्ताल तरंगोंवाले समुद्र को देखता हूँ तब मैं हतोत्साहित हो जाता हूँ।

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः।
हनुमन्तं महाबहुस्ततो ध्यानमुपागमत्॥ ८॥

शत्रुसंहारक एवं शोकसन्तप्त श्रीराम हनुमान्जी से ऐसा कहकर फिर चिन्तामग्न हो गये।

---

१. इस संदर्भ में '**हनुमन्नाटक**' में हनुमान् की विनम्रता का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है। राम ने पूछा कि तुमने रावण के विद्यमान होने पर भी, देवताओं से दुर्धर्ष उस नगरी को कैसे भस्म कर दिया? हनुमान् ने उत्तर दिया—

निःश्वासेनैव सीताया राजन्कोपानलेन ते।
दग्धापूर्वा तु सा लङ्का निमित्तमभवत्कपिः॥

—हनु० ६। ४३

हे राजन्! महारानी सीता के निःश्वासों से और आपकी क्रोधाग्नि से लंका तो पहले ही भस्म हो गई थी। मैं तो उसके भस्म करने में केवल निमित्त हो गया।

◀ द्वितीयः सर्गः ▶ (२)

सुग्रीव का शोकसन्तप्त राम को उत्साहित करना—

तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम्।
उवाच वचनं श्रीमान् सुग्रीवः शोकनाशनम्॥ १ ॥

दशरथनन्दन श्रीराम को शोक से सन्तप्त देखकर श्रीमान् सुग्रीव ने उनके शोक को दूर करनेवाले ये वचन कहे—

सन्तापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः॥ २ ॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! तुम्हारे सन्तप्त होने का कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता, क्योंकि अब तो सीता का वृत्तान्त और शत्रु का स्थान दोनों ही बातों का पता लग गया है।

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम्।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम्॥ ३ ॥

हे राम! हम लोग बड़े-बड़े मगरमच्छों से व्याप्त इस समुद्र को लाँघ कर लंका पर आक्रमण करेंगे और आपके शत्रु को मार डालेंगे।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वथा व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥ ४ ॥

(आप उत्साह से कार्य कीजिए, क्योंकि) उत्साहशून्य, दीन और शोक से व्याकुल मनुष्य के सारे मनोरथ नष्ट हो जाते हैं और उसे नाना प्रकार के दु:ख उठाने पड़ते हैं, अतः आप शोक को त्याग दीजिए।

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वे नो हरियूथपाः।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम्॥ ५ ॥

हमारे ये सभी शूरवीर एवं कार्य-साधन में समर्थ वानर यूथपति आपके प्रिय-कार्य को पूर्ण करने के लिए अग्नि में कूद पड़ने को भी उत्साहित हो रहे हैं।

शक्ता लङ्कां समानेतुं समुत्पाट्य सराक्षसाम्।
तदलं विक्लबां बुद्धिं राजन्सर्वार्थनाशनीम्॥ ६ ॥

हे राजन्! इन वानरों में इतनी शक्ति एवं सामर्थ्य है कि ये लोग राक्षसों सहित सम्पूर्ण लंका को उखाड़कर यहाँ ला सकते हैं, अतः आप मनोरथों को नष्ट करनेवाली शोक-परिपूर्ण बुद्धि को त्याग दो।

पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिन् शोकः शौर्यापकर्षणः।
यत्तु कार्यं मनुष्येण शौण्डीर्यमवलम्बता।
तदलङ्करणायैव कर्तुर्भवति सत्वरम्॥ ७ ॥

शोक मनुष्य के शौर्य को नष्ट कर डालता है और जो कार्य शौर्य का अवलम्बन लेकर किया जाता है वह पूर्ण होता है।

तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते।
निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति॥ ८ ॥

हे राजन्! अब आप शोक को त्यागकर क्रोध को धारण करो, क्योंकि जो क्षत्रिय होकर उद्यमहीन होता है वह कभी सौभाग्यवान् नहीं हो सकता और जो क्रोधी होता है उससे सभी डरते हैं।

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान्।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे सम्प्रहृष्यति॥ ९ ॥

हे राम! अब मैं अधिक क्या कहूँ, आप सब प्रकार से विजयी होंगे, क्योंकि इस समय मैं जो शुभ-शकुन देख रहा हूँ उनसे मेरा मन अत्यन्त हर्षित हो रहा है

≺ तृतीयः सर्गः ≻ (३)

सुग्रीव के वचनों से आश्वस्त होकर राम का हनुमान् से लङ्का के विषय में पूछना—

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत्।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत्॥ १ ॥

सुगीव के युक्तियुक्त और परमार्थ बोधक वचनों को सुनकर श्रीराम ने उन्हें स्वीकार किया और फिर वे हनुमान् से पूछने लगे—

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्काया ब्रूहि तानि मे।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर॥ २ ॥

हे हनुमान्! मुझे यह बताओ कि लङ्का में दुर्गमनीय दुर्ग कितने हैं? मैं उन सबका ऐसा वर्णन सुनना चाहता हूँ मानो मैं उन्हें साक्षात् देख रहा हूँ।

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि।
गुप्तकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च॥ ३ ॥
यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान्।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि॥ ४ ॥

लङ्का में सेना कितनी है? लङ्का के दुर्गद्वार किन साधनों से सुरक्षित हैं? लंका की सुरक्षा के लिए जो परकोटे अथवा परिखा=खाइयाँ बनी हैं वे कैसी हैं और राक्षसों के घर कैसे हैं? लंका में तुम जो कुछ देख आये हो उसे निर्भीक होकर मेरे समक्ष यथार्थ रूप से कहो, क्योंकि तुम इसके विषय में पूर्ण जानकारी रखते हो।

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनुमान् मारुतात्मजः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत्॥ ५ ॥

बातचीत में चतुर पवनपुत्र हनुमान् श्रीराम के इन वचनों को सुनकर उनसे कहने लगे—

हृष्टा प्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणसमाकुला॥ ६ ॥

विशाल लंका नगरी हर्षित जनों से परिपूर्ण है। वह मदमत्त हाथियों और बड़े बड़े रथों से व्याप्त है। वहाँ राक्षसगण निवास करते हैं।

दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च।
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च॥ ७ ॥

उस पुरी के चार विशाल द्वार हैं। उन द्वारों में दृढ़ किवाड़ लगे हुए हैं और फाटकों को बन्द करने के लिए बड़े-बड़े परिघ=अर्गल पड़े हुए हैं।

तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च।
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते॥ ८ ॥

उन द्वारों पर बहुत भारी और बड़े बड़े 'इषूपल'[1] नामक यन्त्र लगे हुए हैं जिनके द्वारा शत्रु की आक्रमणकारी सेना मारकर भगा दी जाती है।

द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः॥ ९ ॥

उन द्वारों पर वीर राक्षस-दलों सहित, उत्तम प्रकार से बनी हुई लोह-निर्मित तीखी और भयंकर सैकड़ों तोपें रखी हुई हैं।

सौवर्णश्च महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः।
मणिविद्रुमवैडूर्यमुक्ताविरचितान्तरः॥ १० ॥

उस लंका का परकोटा स्वर्ण-निर्मित है जिसको लाँघना अति कठिन है। इस परकोटे में बीच-बीच में मणि, मूँगे, पन्ने एवं मोती जड़े हुए हैं।

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोयवहाः शुभाः।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः॥ ११ ॥

उस परकोटे के चारों ओर बड़ी भयंकर, परन्तु शीतल एवं स्वच्छ जल से युक्त अगाध खाई है। यह खाई मछलियों और मगरमच्छों से परिपूर्ण है।

द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपंक्तिभिः॥ १२ ॥

उस परिखा के ऊपर चारों द्वारों पर लकड़ी के

---

१. इषूपल इस प्रकार की तोपें थीं जिनसे गोलों की बजाय शत्रु-सैन्य पर तीरों और पत्थरों की वर्षा की जाती थी।

विशाल पुल बने हुए हैं जिनके ऊपर बड़े-बड़े यन्त्र रखे हुए हैं और उनके पास ही उन्हें चलानेवाले राक्षस सैनिकों की पंक्तियाँ हैं।

त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परिसैन्यागमे सति।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः॥ १३॥

शत्रुसेना के आक्रमण करने पर इन यन्त्रों से पुलों और नगरी की रक्षा की जाती है। वहाँ जो यन्त्र रखे हुए हैं उन्हें घुमाने से खाई का जल चारों ओर बढ़ने लगता है और शत्रुसेना बाढ़ में डूब जाती है।

स्वयं प्रकृतिसम्पन्नो युयुत्सू राम रावणः।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने॥ १४॥

हे राम! रावण आजकल द्यूत व्यसनों से मुँह मोड़कर युद्ध के लिए कमर कसे हुए तैयार है। वह सदा जागरूक रहता है और बड़ी सावधानी से सेना की देख-रेख किया करता है।

लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा।
नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम्॥ १५॥

लंका नगरी एक सीधे खड़े हुए पर्वत पर बसी हुई है, अतः वह देवों के लिए भी दुर्गमनीय है और शत्रु को भय प्रदान करनेवाली है। लंका नदी दुर्ग, पर्वत-दुर्ग, वन-दुर्ग और कृत्रिम दुर्ग—इन चार प्रकार के दुर्गों से युक्त हैं।

स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव।
शैलाग्रे रचिता दुर्गा लङ्का परमदुर्जया॥ १६॥

हे राघव! समुद्र के उस पार बहुत दूर पर्वत शिखर के ऊपर वह दुर्गमनीय लंका बसी हुई है जो परम दुर्जेय है।

◀ चतुर्थः सर्गः ▶ (४)

श्रीराम का युद्ध के लिए प्रस्थान और समुद्र पर पड़ाव—

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥ १॥

क्रमपूर्वक कही गई हनुमान् की यथार्थ बातों को सुनकर अमोघ विक्रम-सम्पन्न एवं महाबली श्रीराम बोले—

यां निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः।
क्षिप्रमेनां मथिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २॥

हे हनुमन्! तुमने भयंकर राक्षस की जिस लंका का वर्णन किया है मैं शीघ्र ही उसका संहार करूँगा यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचये।
युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥ ३॥

हे सुग्रीव! मुझे इसी मुहूर्त में युद्ध-यात्रा करना रुचिकर प्रतीत होता है। यह विजय के लिए उत्तम समय है, शीघ्रता कीजिए, क्योंकि सूर्य मध्याकाश में पहुँच गया है अर्थात् मध्याह्न का समय हो गया है।

सीता श्रुत्वाऽभियानं मे आशामेष्यति जीविते।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वा विषमिवातुरः॥ ४॥

हम लोगों की युद्धयात्रा का वृत्तान्त सुनकर सीता को अपने जीवन की वैसी ही आशा होगी जैसी कि विषपान करके जीवन से निराश मृत्यु के मुख में पड़े हुए किसी मनुष्य को अमृत मिल जाने पर होती है।

उत्तराफल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः॥ ५॥

आज उत्तरफाल्गुनी[१] नक्षत्र है। कल चन्द्रमा हस्त नक्षत्र से योग करेगा, अतः हे सुग्रीव! हम समस्त सेना को लेकर आज ही प्रस्थान करें।

---

१. सीता का जन्म उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था, अतः उनकी मुक्ति के निमित्त प्रस्थान के लिए श्रीराम को यह दिन उचित जान पड़ा।

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः।
व्यादिदेश महावीर्यान् वारान् वानरर्षभः॥ ६॥

महाबलवान् वानरश्रेष्ठ, वाहिनीपति सुग्रीव ने श्रीराम के इन वचनों को सुनकर महाबलवान् वानरों को प्रस्थान करने का आदेश दिया।

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम्॥ ७॥

तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मण द्वारा प्रार्थित राम सेना को साथ लिये हुए दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

पुरस्तादृषभो वीरो नीलः कुमुद एव च।
पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिर्वृताः॥ ८॥

महावीर ऋषभ, नील और कुमुद बहुत से वानरों को साथ लिये हुए मार्ग को खोजते एवं ठीक-ठाक करते हुए आगे-आगे चले जाते थे।

मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च।
बलिभिर्बहुभिः शूरैर्वृताः शत्रुनिबर्हणैः॥ ९॥

सेना के मध्यभाग में श्रीराम, लक्ष्मण और कपिराज सुग्रीव शत्रुसंहारक और शूरवीर बहुत-से बलवान् सैनिकों से घिरे हुए चले जा रहे थे।

सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैश्च बहुभिर्वृतौ।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः॥ १०॥

सुषेण और जाम्बवान् बहुत-सी ऋक्ष सेना को साथ लिये हुए, सुग्रीव को आगे कर सेना के मध्य में चलते हुए सेना के पिछले भाग की रक्षा करते जाते थे।

एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्तो बलदर्पिताः।
सह्यपर्वतमासेदुर्मलयं च महीधरम्॥ ११॥

बलदर्पित वे वानरश्रेष्ठ चलते-चलते सह्य और मलय पर्वत के समीप जा पहुँचे।

ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम्।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्॥ १२॥

क्रमानुसार वे सह्य और मलय पर्वतों को पार करते हुए भयंकर नाद करनेवाले समुद्र के पास जा पहुँचे।

रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा।
सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव॥ १३॥

समुद्र के तट पर पहुँचकर श्रीराम ने सेना को वहीं ठहराने की आज्ञा प्रदान की। (उन्होंने कहा) हे सुग्रीव! इस तट पर समस्त सेना को टिका दो।

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः।
सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते॥ १४॥

श्रीराम का आदेश पाकर लक्ष्मण-सहित सुग्रीव ने वृक्षों से सुशोभित उस समुद्री तट पर सेना को टिका दिया।

◀ पञ्चमः सर्गः ▶ (५)

रावण की मन्त्रणा—

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम्।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना॥ १॥
अब्रवीद्राक्षसान् सर्वान् ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः।
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी॥ २॥
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी।
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रबला राक्षसा हताः॥ ३॥

इधर तो श्रीराम की सेना समुद्र-तट पर टिक गई उधर लङ्का में, राक्षसराज रावण, महापराक्रमी इन्द्र के समान हनुमान्‌जी का किया हुआ घोर एवं भयंकर कार्य देख, लज्जा के मारे मुँह नीचा किये हुए, राक्षसों से बोला—देखो, एक वानर ने अजेय लङ्का में प्रविष्ट होकर लंकापुरी की कैसी दुर्दशा कर डाली। उस वानर ने जनकनन्दिनी सीता के दर्शन कर उससे बातचीत की, राजमहलों को छाना-बीना और नष्ट

किया तथा बड़े-बड़े बलवान् राक्षसों को मार डाला।

किं करिष्यामि भद्रं वः किं वा युक्तमनन्तरम्।
उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत्॥ ४॥

तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम सब यह बताओ कि मुझे अब क्या करना चाहिए और क्या करना ठीक रहेगा। तुम लोग कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसके करने से अन्त में भलाई हो और जिसे हम लोग कर भी सकें।

मन्त्रमूलं हि विजयं प्राहुरार्या मनस्विनः।
तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः॥ ५॥

मननशील, आर्य-श्रेष्ठ पुरुष विचार को विजय की कुञ्जी बताते हैं, अतः हे राक्षसो! इस समय मुझे राम के विषय में विचार विमर्श करना रुचिकर प्रतीत होता है।

त्रिविधा पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः।
तेषां तु समवेतानं गुणदोषौ वदाम्यहम्॥ ६॥

संसार में उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य हुआ करते हैं। मैं उन तीनों के गुण-दोष बतलाता हूँ।

मन्त्रिभिर्हितसंयुक्तैः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाधिकैः॥ ७॥
सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान् प्रवर्तयेत्।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम्॥ ८॥

जो मनुष्य हितैषी और परामर्श देने की योग्यता रखनेवालों अथवा अपने समान सुख-दुःख भोगनेवाले मित्रों अथवा भाई-बन्दों अथवा अपने से अधिक योग्य व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श कर कार्य का आरम्भ करता है और परमात्मा की सहायता पाने के लिए पुरुषार्थ करता है—ऐसे पुरुष को उत्तम पुरुष कहते हैं।

एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः।
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम्॥ ९॥

जो मनुष्य अकेला ही प्रस्तुत विषय के ऊँच-नीच पर विचार कर और धर्म का आश्रय लेकर अकेला ही कार्यारम्भ कर देता है वह मध्यम पुरुष कहलाता है।

गुणदोषावनिश्चित्य त्यक्त्वा धर्मव्यपाश्रयम्।
करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः॥ १०॥

जो मनुष्य गुण-दोषों का विचार किये बिना और धर्म का सहारा त्यागकर तथा 'मैं अकेला ही इस कार्य कर को कर लूँगा'—ऐसा निश्चय करके कार्यारम्भ कर दे और फिर उसकी उपेक्षा करे, कार्य को बीच में ही छोड़ दे—वह पुरुष अधम है।

यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः।
एवं मन्त्रा हि विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः॥ ११॥

जिस प्रकार पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकार के होते हैं उसी प्रकार मन्त्र (सलाह) भी उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकार के जानने चाहिएँ।

एकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम्॥ १२॥

मन्त्रिगण एकमत होकर जहाँ शास्त्रोक्त-नेत्र से विचार-विमर्श करते है—वह उत्तम मन्त्र कहलाता है।

बह्व्योऽपि मतयो भूत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णये।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्ताः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः॥ १३॥

जिस विचार का निर्णय करने के लिए मन्त्रिगण आरम्भ में अनेक मत होकर भी अन्त में एकमत हो जाएँ उस सलाह को पण्डित लोग मध्यम मन्त्र बतलाते हैं।

अन्योऽन्यं मतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते॥ १४॥

जिस मन्त्र में सम्मतिदाता एक-दूसरे की सम्मति के विरुद्ध ही कहें, सब एक मत न हों और एकमत होने पर भी जिसमें कोई कल्याण न हो वह मन्त्र अधम कहाता है।

तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तामेतत्कृत्यं मतं मम॥ १५॥

इसलिए हे मन्त्रिश्रेष्ठो! आप लोग बुद्धिमान् हैं, अतः आप लोग भली प्रकार सोच-विचारकर जो कार्य ठीक जँचे और श्रेष्ठ हो उसे एकमत होकर निश्चित कीजिए। बस, वही मेरे लिए कर्तव्य होगा ऐसा मैं समझता हूँ।

वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः॥ १६॥

देखो, श्रीराम सहस्रों शूरवीर वानरों को साथ लेकर लङ्कापुरी को घेरने के लिए आ रहे हैं।

तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम्।
तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः॥ १७॥

यह भी स्पष्ट और निश्चित है कि राम अपने नय=नीतिबल अथवा दिव्य अस्त्रों के बल से अनुज लक्ष्मण और सम्पूर्ण वानर सेना सहित समुद्र के इस पार आसानी से पहुँच जायेंगे।

अस्मिन्नेवं गते कार्ये विरुद्धे वानरैः सह।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम॥ १८॥

लङ्का पर आक्रमण और वानरों के साथ विरोध--इन बातों को ध्यान में रखकर आप सब लोग ऐसा परामर्श दीजिए जिससे लङ्कापुरी और राक्षस सेना का कल्याण हो।

◀ षष्ठः सर्गः ▶ (६)

राक्षसों का रावण को युद्ध के लिए उत्साहित करना—

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः।
ऊचु: प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम्॥ १॥

राक्षसेन्द्र रावण के ऐसा कहने पर वे सब महाबली राक्षस हाथ जोड़कर रावण से बोले—

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित्क्षपयिष्यति॥ २॥

हे महाराज! आप आराम से बैठे रहिए, आपको उन वानरों के लिए कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? यह महाबाहु इन्द्रजित् सब वानरों को अकेला ही मार डालेगा।

ततो नीलाम्बुदनिभः प्रहस्तो नाम राक्षसः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा॥ ३॥

तत्पश्चात् काले बादलों जैसे रंगवाला प्रहस्त नामक शूरवीर सेनापति हाथ जोड़कर बोला—

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः।
न त्वां धर्षयितं शक्ताः किं पुनर्वानरा रणे॥ ४॥

हे राजन्! जब देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच पतग और नाग—आपका कुछ नहीं बिगाड़ सके तब युद्धक्षेत्र में ये वानर बेचारे क्या कर सकते हैं?

सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता।
न हि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः॥ ५॥

हम सबने तो असावधानी और विश्वास (अर्थात् यह वानर हमारा क्या कर सकता है) के कारण हनुमान् से धोखा खाया। यदि हम लोग सावधान होते तो क्या वह वानर जीता-जागता लौटकर जा सकता था?

सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान्॥ ६॥

आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए फिर देखिए मैं समुद्र, पर्वत और वनों सहित इस सम्पूर्ण पृथिवी को वानर-शून्य कर देतर हूँ।

अब्रवीत्तु सुसंक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः।
इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम्॥ ७॥

तदनन्तर दुर्मुख नामक राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—हनुमान् ने यहाँ आकर हम सबका ही अपमान किया है, अतः उसका यह कार्य ऐसा नहीं जिसकी उपेक्षा की जा सके।

अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेण प्रधर्षणम्॥ ८॥

हम लोग अपना अपमान सह लेते, परन्तु लंका नगरी और अन्तःपुर को भस्म कर उस वानर ने राक्षसराज का अपमान किया है (जो असह्य है।)

अस्मिन् मुहूर्ते हत्वैको निवर्तिष्यामि वानरान्।
प्रविष्टान् सागरं भीमम्बरं वा रसातलम्॥ ९॥

वे वानर चाहे समुद्र में जा छिपें या आकाश में, रसातल में जा छिपें या अन्य किसी स्थान पर—मैं अकेला अभी जाकर सभी वानरों का नाश करके ही लौटूँगा।

ततोऽब्रवीत्सुसंक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः।
किं वो हनुमता कार्यं कृपणेन दुरात्मना॥ १०॥
अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम्।
आगमिष्यामि हत्वैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम्॥ ११॥

दुर्मुख के ऐसा कह चुकने पर महाबली वज्रदंष्ट्र क्रुद्ध होकर कहने लगा—उस दीन-हीन और दुष्ट हनुमान् को मार कर हमें क्या लाभ होगा? मैं आज अकेला ही सारी वानर-सेना को व्याकुल कर और अपने परिघ से राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को मारकर लौट आऊँगा।

कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान्।
अब्रवीत्परमक्रुद्धो रावणं लोकरावणम्॥ १२॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ जो अत्यन्त प्रतापी और वीर था, क्रुद्ध होकर लोकों को रुलानेवाले रावण से बोला—

सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन सङ्गता।
अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम्॥ १३॥

आप सब लोग महाराज रावण के साथ यहीं विराजमान रहें, मैं अकेला ही राम और लक्ष्मण को मार डालूँगा।

ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः।
क्रुद्धः परिलिहन्वक्त्रं जिह्वया वाक्यमब्रवीत्॥ १४॥

तदनन्तर पर्वत के समान डील-डौलवाला वज्रहनु नामक राक्षस क्रुद्ध होकर जीभ से होंठों को चाटता हुआ बोला—

स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तो मधुवारुणीम्।
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम्।
साङ्गदं च हनुमन्तं रामं च रणकुञ्जरम्॥ १५॥

आप सब लोग निश्चिन्त एवं प्रसन्न होकर खेलिए-कूदिए और मद्यपान कीजिए। मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद और हनुमान् सहित उस रण-बांकुरे राम को मार डालूँगा।

◀ सप्तमः सर्गः ▶ (७)

विभीषण का उपदेश—

ततो निकुम्भो रभसो महापार्श्वो महोदरः।
इन्द्रजिच्च महातेजा बलवान् रावणात्मजः॥ १॥
प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः।
परिघान् पट्टिशान् प्रासान् खड्गांश्च विपुलाञ्शितान्॥ २॥
प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः।
अब्रुवन् रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा॥ ३॥

बारी-बारी ऐसा कहने के पश्चात् निकुम्भ, रभस, महापार्श्व, महोदर, महातेजस्वी एवं बलवान् रावणपुत्र मेघनाद, प्रहस्त, विरूपाक्ष और बलशाली वज्रदंष्ट्र—सभी राक्षसगण परिघ, पट्ट, प्रास और बड़ी तथा पैनी पैनी तलवारें लेकर तथा उठकर एवं अत्यन्त क्रोध में भरकर और अग्नि की तरह लाल होकर रावण से बोले—

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रदीपिता॥ ४॥

हम लोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और

उस तुच्छ हनुमान् को जिसने यहाँ आकर लंका को जलाया था, मार डालेंगे।

तान् गृहीतायुधान्सर्वान् वारयित्वा विभीषणः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान्॥ ५॥

हाथों में हथियार लिये हुए उन समस्त राक्षसों को रोककर और बैठाकर विभीषण ने हाथ जोड़कर उनसे तथा रावण से विनति की—

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते।
तस्य विक्रमकालांस्तान् युक्तानाहुर्मनीषिणः॥ ६॥

हे तात! नीति-विशारद लोगों का कथन है कि जहाँ साम, दान और भेद—इन तीन उपायों से कार्य न चले वहाँ पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए।

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च।
विक्रमास्तात सिध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः॥ ७॥

हे तात! जो प्रमत्त=प्रमादी अथवा असावधान हैं, दूसरे शत्रुओं के साथ उलझे हुए हैं, तथा जो महामारी आदि दैवी प्रकोपों से सताये हुए हैं—ऐसे लोगों पर ही सोच-विचार कर, नीतिपूर्वक बल प्रदर्शित करने से कार्य सिद्ध हो सकता है।

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषं बले स्थितम्।
जितरोषं दुराधर्षं प्रधर्षयितुमिच्छथ॥ ८॥

सदा सावधान, जयाभिलाषी, देवसहाय प्राप्त अथवा सैनिक बल से युक्त, जितक्रोध और अजेय राम को जीतने की इच्छा तुम कैसे करते हो?

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम्।
गतिं हनुमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा॥ ९॥

नदीपति भयंकर समुद्र को लांघकर आनेवाले हनुमान् की गतिविधि के सम्बन्ध में क्या पहले किसी ने जाना अथवा कल्पना भी की थी।

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः।
परेषां सहसाऽवज्ञा न कर्त्तव्या कथञ्चन॥ १०॥

हे निशाचरो! राम के पास अद्भुत पराक्रमी विशाल सेना है, अतः ऐसे शत्रु की कभी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनीम्॥ ११॥

फिर राम ने राक्षसराज रावण का पहले कौन सा अपकार किया था जिससे इन्होंने श्रीराम की यशस्विनी भार्या सीता का जनस्थान से अपहरण किया?

अयशस्यमनायुष्यं परदाराभिमर्शनम्।
अर्थक्षयकरं घोरं पापस्य च पुनर्भवम्॥ १२॥

पर-स्त्री-प्रसंग कीर्ति का नाशक है, आयु को क्षीण करनेवाला है, धन को नष्ट करनेवाला है और पाप का प्रवर्तक है।

एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत्।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृतेन किम्॥ १३॥

हरण करके लाई गई सीता हमारे लिए बड़े भारी भय की वस्तु है, अतः हमारे लिए इसका परित्याग ही उचित है। व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े से क्या लाभ?

न नः क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली॥ १४॥

राम अत्यन्त पराक्रमी और धर्मात्मा हैं, अतः उनके साथ निरर्थक वैर बाँधना ठीक नहीं। इसलिए सीताजी को उन्हें वापस लौटा देना चाहिए।

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम्।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली॥ १५॥

जब तक राम अपने बाणों द्वारा हाथी-घोड़ों और नाना प्रकार के रत्नों से भरी-पूरी इस लंका को विदीर्ण नहीं कर डालते, उससे पूर्व ही उन्हें सीता दे देनी चाहिए।

विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः।
रामस्य दयिता पत्नी स्वयं न यदि दीयते॥ १६॥

यदि तुम राम की प्राणप्रिया भार्या सीता को स्वयं श्रीराम को नहीं दोगे तो इस लंकापुरी की ईंट-से-ईंट बज जायेंगी और समस्त शूरवीर राक्षसों का भी संहार हो जायेगा।

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम।
हितं तथ्यमहं ब्रूवे दीयतामस्य मैथिली॥ १७॥

हे राजन्! आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, इसलिए मैं आपको मना रहा हूँ। मैं आपसे हितकारी और सच्ची बात कह रहा हूँ। आप मेरी बात मानिए और सीता जी को लौटा दीजिए।

विभीषणस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
विसर्जयित्वा तान् सर्वान् प्रविवेश स्वकं गृहम्॥ १८॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर राक्षसराज रावण ने उन सब राक्षसों को विदा किया और स्वयं अपने अन्तःपुर में चला गया।

❮ अष्टमः सर्गः ❯ (८)

विभीषण का अन्तःपुर में जाकर रावण को समझाना—

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः।
राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्मा विभीषणः॥ १॥

अगले दिन प्रातःकाल होते ही धर्म और अर्थ का विचार रखनेवाले विभीषण भीमकर्मा राक्षसराज रावण के भवन में गये।

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानः स्वतेजसा।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम्॥ २॥

राक्षसों द्वारा सम्मानित, अपने तेज से देदीप्यमान, सिंहासन पर विराजमान कुबेर के छोटे भाई महाबाहु रावण को विभीषण ने वहाँ पहुँचते ही प्रणाम किया।

स राजदृष्टिसम्पन्नमासनं हेमभूषितम्।
जगाम समुदाचारं प्रयुज्याचारकोविदः॥ ३॥

शिष्टाचार-विशारद विभीषण रावण की आँख का संकेत पाकर 'महाराज की जय हो'—ऐसा कहकर स्वर्णविभूषित आसन पर बैठ गये।

स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसन्निधौ।
उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम्॥ ४॥

मन्त्रियों के साथ एकान्त में बैठे हुए महात्मा रावण से विभीषण ने ये हितकर और युक्तियुक्त वचन कहे—

यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेमां पुरीं तव।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः॥ ५॥

हे भ्राता! जब से सीता आपकी इस लंकापुरी में आई हैं तब से हम सबको नित्य ही अशुभ शकुन दिखलाई दे रहे हैं।

गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वीरकुञ्जराः।
दीनमश्वा प्रहेषन्ते न च ग्रासाभिनन्दिनः॥ ६॥

गौओं का दूध कम हो गया है। हाथियों का मद बहना बन्द हो गया है। घोड़े दीनता सूचक हिनहिनाहट किया करते हैं और चारे से तृप्त नहीं होते।

खरोष्ट्राश्वतरा राजन्भिन्नरोमाः स्रवन्ति च।
न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपि चिन्तिताः॥ ७॥

हे राजन्! गधों, ऊँटों और खच्चरों के रोंगटे गिर गये हैं और वे आँसू बहाया करते हैं। चिकित्सा करने पर भी वे प्रकृतिस्थ=स्वस्थ नहीं होते।

तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम्।
रोचते यदि वैदेही राघवाय प्रदीयताम्॥ ८॥

इस प्रकार के अशुभ शकुनों का प्रायश्चित्त अथवा शान्तिविधान मुझे तो यही अच्छा लगता है कि सीताजी को राम को वापस लौटा दिया जाये।

इदं च यदि वा मोहाल्लोभाद्वा व्याहृतं मया।
तत्रापि च महाराज न रोषं कर्तुमर्हसि॥ ९॥

हे महाराज! यदि मैंने लोभ अथवा मोह के वशीभूत होकर कोई बात कही हो तो आप मेरा अपराध क्षमा कर दें।

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं
व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम्।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः
प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत्॥ १०॥

विभीषण के हितकर, अर्थयुक्त, मधुर, युक्तियुक्त और भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्—तीनों कालों में लाभप्रद वचनों को सुनकर सीता के प्रति कामासक्त रावण क्रुद्ध होकर बोला—

भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं
न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम्।
सुरैः महेन्द्रैरपि सङ्गतः कथं
ममागतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः॥ ११॥

मुझे तो कहीं भी कोई भय दिखाई नहीं पड़ता। राम को सीता किसी भी प्रकार नहीं मिल सकेगी। लक्ष्मण का ज्येष्ठ भ्राता राम इन्द्रादि देवताओं को साथ लेकर भी संग्राम में मेरे सामने ठहर नहीं सकता।

इतीदमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो
महाबलः संयति चण्डविक्रमः।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसर्जयामास तदा विभीषणम्॥ १२॥

ऐसा कहकर महाबली, सुरसेना के नाशक और संग्राम में घोर पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले रावण ने युक्तियुक्त वचन कहनेवाले विभीषण को अपमान पूर्वक वहाँ से विदा किया।

≺ नवमः सर्गः ≻ (९)

रावण का मन्त्रणा के लिए सभा में प्रवेश, कुम्भकर्ण का उसके कार्य को अनुचित बताना—

स आस्थाय रथश्रेष्ठं मणिविद्रुमभूषितम्।
प्रययौ राक्षसश्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति॥ १॥

मूँगे और मणियों से अलंकृत सुन्दर रथ में सवार होकर राक्षसश्रेष्ठ रावण सभा की ओर चला।

राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिन्दमः।
आससाद महातेजाः सभां सुविहितां शुभाम्॥ २॥

मार्ग में राक्षसों द्वारा सम्मानित होता हुआ और विजय के लिए आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुसंहारक एवं महातेजस्वी रावण अपने कलापूर्ण सुन्दर भवन में पहुँचा।

तस्यां तु वैडूर्यमयं प्रियकाजिननसंवृतम्।
महत्सोपाश्रयं भेजे रावणः परमासनम्॥ ३॥

सभाभवन में पहुँचकर रावण पन्नों के जड़ाऊ सिंहासन पर, जिस पर प्रियक जाति के हिरन का कोमल चर्म बिछा हुआ था और मसनद लगा हुआ था—जा बैठा।

ततः शशासेश्वरवद् दूतांल्लघुपराक्रमान्।
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान् राक्षसानिति॥ ४॥

सिंहासन पर आसीन होकर रावण ने अत्यन्त शीघ्रकारी दूतों को यह आज्ञा दी—जाओ शीघ्र अत्यन्त पराक्रमी और प्रसिद्ध राक्षसों को सभा में बुला लाओ।

ते रथान् रुचिरानेके दृप्तानेके पृथग्घयान्।
नागानन्येऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः॥ ५॥

रावण की आज्ञा पाते ही उन राक्षसों में से कोई सुन्दर रथों पर, कोई अकड़बाज घोड़ों पर, कोई हाथियों पर और कोई पैदल ही चल दिये।

ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात्।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम्॥ ६॥

राक्षसराज रावण की आज्ञा पाकर वे सब राक्षस राजसभाभवन में एकत्र हो यथाक्रम रावण के समीप बैठे।

तां तु परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिञ्जयः।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः॥ ७॥

संग्राम-विजेता रावण उस सारी परिषद् पर एक दृष्टिपात कर, अपने सभी सुहृदों के मध्य अपने सुख की कामना से कहने लगा—

प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभौ हिताहिते।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम्॥ ८॥

हे सभासदो! विपत्ति में प्रिय अप्रिय, सुख-दुःख,

लाभ-हानि, हित-अहित और धर्म अर्थ तथा काम सम्बन्धी सभी बातों को आप लोग जानते हैं।

सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा।
मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे॥ ९॥

तुम लोग आपस में परामर्श कर और एकमत होकर मेरे जिन कामों को आरम्भ करते हो वे कभी भी निष्फल नहीं होते।

अहं तु खलु सर्वान् वः समर्थयितुमुद्यतः।
इयं च दण्डकारण्यादीनीता जनकात्मजा॥ १०॥

मैं अपने सभी कार्यों को आप लोगों को बताने के लिए सदा समुद्यत रहता हूँ। (एक कार्य जिसके सम्बन्ध में मैं आपसे कहना चाहता हूँ वह यह है कि) मैं राम की प्राणप्रिया जनकदुलारी सीता को दण्डक वन से हर लाया था।

तनुमध्या पृथुश्रोणी शारदेन्दुनिभानिना।
त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीतासदृशी मता॥ ११॥

उसकी कमर पतली है, जाँघें मोटी हैं और उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान है। मेरे विचार में सीता के समान सुन्दर स्त्री तीनों लोकों में नहीं है।

उन्नसं वदनं वल्गु विपुलं चारुलोचनम्।
पश्यंस्तदाऽवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान्॥ १२॥

सीता की ऊँची नाक, विशाल एवं मनोहर नेत्रों से सुशोभित उसके सुन्दर मुखमण्डल को देख मैं काम के वशवर्ती हो सीता के अधीन हो गया हूँ।

अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतिश्चाभिधीयताम्॥ १३॥

अब आप लोग सोच-विचार कर कोई ऐसी निश्चित बात बतलायें जिससे मुझे सीता तो लौटानी न पड़े और वे दोनों भाई मारे जायें।

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम्।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत्॥ १४॥

कामासक्त रावण के इस रोने धोने को सुनकर कुम्भकर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगा—

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः॥ १५॥

हे महाराज! आपने यह कार्य अनुचित किया है। इस कार्य को करने से पहले ही आपको हमसे परामर्श करना चाहिए था।

न्यायेन राजा कार्याणि यः करोति दशानन।
न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः॥ १६॥

हे दशानन! जो राजा पहले अपने मन्त्रियों के साथ विचार विमर्श कर और उनके साथ एक मति होकर कार्य करता है उसे पीछे सन्ताप नहीं होता।

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुरुते बुद्धिमोहितः।
पूर्वं चोत्रकार्याणि न स वेद नयानयौ॥ १७॥

जो मूढ़मति राजा प्रथम करने योग्य कार्यों के पीछे और पीछे करने योग्य कार्य को पहले करता है वह नीति और अनीति को कुछ भी नहीं जानता।

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम्।
दिष्ट्या त्वां नावधीद्रामो विषमिश्रमिवामिषम्॥ १८॥

तुमने बिना सोचे-विचारे यह बहुत बड़ा कार्य कर डाला। यह सौभाग्य की बात है कि राम ने अभी तक तुम्हें वैसे ही नहीं मार डाला जैसे विष मिला हुआ माँस खानेवाले को मार डालता है।

तस्मात्त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ॥ १९॥

हे निष्पाप! जब तुमने इस अनुचित कार्य को कर राम के साथ शत्रुता कर ही ली है तब मैं तुम्हारे शत्रुओं को मारकर इस सब स्थिति को ठीक कर दूँगा।

≺ दशमः सर्गः ≻ (१०)

रावण की गर्वोक्ति—

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः।
मुहूर्तमनुसञ्चिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

'तुमने बहुत बुरा काम किया है'— कुम्भकर्ण के इन शब्दों से रावण को क्रुद्ध जानकर महाबली राक्षस महापार्श्व थोड़ी देर कुछ सोच फिर हाथ जोड़कर बोला—

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु॥ २॥

हे शत्रुहन्ता! तुम सबके नियन्ता हो। तुम्हारा नियन्ता कौन हो सकता है? अतः तुम अपने वैरी के सिर पर पैर रखकर सीता के साथ आनन्दपूर्वक विहार करो।

कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः।
प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम्॥ ३॥

जब कुम्भकर्ण और महाबली मेघनाद हमारी सहायता करने के लिए खड़े हो जायेंगे तब हम वज्रधारी इन्द्र का भी सामना करने में समर्थ हो जायेंगे।

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः।
तस्य सम्पूजयन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४॥

महापार्श्व के इन वचनों को सुनकर रावण ने उसके वचनों की प्रशंसा करते हुए कहा—

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः।
नैतद्दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम्॥ ५॥

मेरा वेग समुद्र के समान है और मेरी गति वायु के समान है। शायद राम इस बात को नहीं जानता इसीलिए वह मेरे ऊपर आक्रमण कर रहा है।

को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये।
क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छति॥ ६॥

वह कौन है जो गिरिगुहा में सोये हुए और मृत्यु के समान क्रुद्ध सिंह को जागना चाहता है।

क्षिप्रं वज्रोपमैर्बाणैः शतधा कार्मुकाच्युतैः।
राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम्॥ ७॥

मैं अपने धनुष से एक साथ वज्र के तुल्य सौ-सौ बाण छोड़कर राम को वैसे ही भगा दूँगा जैसे हाथी मशाल दिखाकर भगा दिया जाता है।

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः।
उदयन् सविताकाले नक्षत्राणामिव प्रभाम्॥ ८॥

मैं अपनी विशाल वाहिनी=सेना से राम की सेना को ऐसे दबा दूँगा जैसे सूर्य अपने प्रकाश से नक्षत्रों के प्रकाश को दबा देता है।

≺ एकादशः सर्गः ≻ (११)

विभीषण का हितोपदेश और मेघनाद की गर्वोक्ति—

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं
स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि।
विभीषणो राक्षसराजमुख्यं
उवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम्॥ १॥

राक्षसराज रावण की डींग और कुम्भकर्ण के निरर्थक वचनों विभीषण ने रावण से कर्तव्य-बोधक ये वचन कहे—

वृतो हि बह्वन्तरभोगराशि-
श्चिन्ताविषः सुस्मितीक्ष्णदंष्ट्रः।
पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोऽतिकायः
सीतामहाहिस्तव केन राजन्॥ २॥

हे राजन्! वक्षस्थलरूप फनधारी, चिन्तारूपी विष

से युक्त, हास्यरूपी तीक्ष्ण दाँतोंवाले तथा पाँच अंगुलीरूपी पाँच सिरोंवाले सीता रूपी बड़े भारी सर्प को तुम यहाँ क्यों लाये हो ?

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुङ्गवानाम्।
वज्रोपमा वायुसमानवेगा
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ ३॥

जब तक श्रीराम के वज्र के समान भयंकर और वायु के समान वेगवान् बाण राक्षसश्रेष्ठों के सिर नहीं काटते—उससे पूर्व ही तुम सीता को राम को लौटा दो।

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ न राजा
तथा महापार्श्वमहोदरौ वा
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥ ४॥

हे राजन्! क्या कुम्भकर्ण और क्या इन्द्रजित्, क्या महापार्श्व और क्या महोदर, क्या कुम्भ और क्या निकुम्भ तथा अतिकाय इनमें से कोई भी युद्ध-भूमि में श्रीराम के समक्ष खड़ा नहीं रह सकता।

इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य
राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य।
सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि
नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम्॥ ५॥

लङ्कापुरी के, राक्षसों के, रावण के और उसके बन्धु-बान्धुवों के हित के लिए मैं भली-भाँति सोच-विचार कर अपनी यह सम्मति देता हूँ कि हे राक्षसराज! आप सीताजी को श्रीराम को लौटा दें।

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्त-
न्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य।
ततो महात्मा वचनं बभाषे
तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयोधमुख्यः॥ ६॥

बृहस्पति के समान बुद्धिमान् विभीषण की बातों को बड़े दुःख के साथ सुनकर, निशाचर यूथपतियों में मुख्य महाबलवान् मेघनाद बोला—

किं नाम ते तात कनिष्ठवाक्य-
मनर्थकं चैव सुभीतवच्च।
अस्मिन् कुले योऽपि भवेन्न जातः
सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात्॥ ७॥

हे चाचा! आप भीरुओं जैसी निरर्थक बातें क्यों कह रहे हो ? जो पुलस्त्य वंश में उत्पन्न नहीं हुआ वह भी ऐसी बातें न तो कहेगा और न करेगा, (फिर आप पुलस्त्य कुलोत्पन्न होकर भी ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?)

किं नाम तौ राक्षस राजपुत्रा-
वस्माकमेकेन हि राक्षेसन।
सुप्राकृतेनापि रणे निहन्तुं
शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो॥ ८॥

अरे डरपोक विभीषण! उन दोनों राजपुत्रों की शक्ति ही क्या है ? उन दोनों को तो हमारे यहाँ एक साधारण राक्षस ही युद्ध में मार सकता है, फिर तुम इतने भयभीत क्यों हो रहे हो ?

त्रिलोकनाथो ननु देवराजः
शक्रो मया भूमितले निविष्टः
भयार्दिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः
सर्वे तथा देवगणाः समग्राः॥ ९॥

मैं तीनों लोकों के नाथ इन्द्र को पकड़कर पृथिवी पर ले आया था। उस समय सभी देवता मुझसे भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे। क्या यह बात तुम्हें स्मरण नहीं है ?

सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता
दैत्योत्तमानामपि शोकदाता।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो
मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः॥ १०॥

देवताओं के दर्प का दलनकर्ता और बड़े-बड़े दैत्यों को शोक-सन्तप्त करनेवाला मैं क्या उन दोनों राजकुमारों के साथ, जो साधारण मनुष्य हैं, युद्ध

नहीं कर सकूँगा ?

अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महौजसस्तद्वचनं निशम्य।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः॥ ११॥

इन्द्र के समान अजेय एवं महातेजस्वी इन्द्रजित् के इन वचनों को सुनकर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ विभीषण ने गम्भीर अर्थयुक्त ये वचन कहे—

मूढः प्रगल्भोऽविनयोपपन्न-
स्तीक्ष्णस्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च
त्वमिन्द्रजिद्बालतया ब्रवीषि॥ १२॥

हे इन्द्रजित्! तू अत्यन्त अविवेकी, ढीठ, क्रूरस्वभाव, कम-अक्ल, दुरात्मा, बिना सोचे-समझे कार्य करनेवाला, मूर्ख और अत्यन्त दुर्बुद्धि है। तू बच्चों जैसी बातें करता है।

को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशा-
नर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान्।
सहते बाणान् यमदण्डकल्पान्
समक्षमुक्तान् युधि राघवेण॥ १३॥

जब श्रीराम युद्धक्षेत्र में खड़े होकर ब्रह्मदण्ड अथवा कालाग्नि के समान चमचमाते हुए तीक्ष्ण बाणों को छोड़ेंगे तब यमदण्ड के समान उन बाणों को कौन सहन कर सकेगा ?

धनानि रत्नानि विभूषणानि
वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान्।
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं
वसेम राजन्निह वीतशोकाः॥ १४॥

हे राजन्! आप धन, रत्न, आभूषण, उत्तम वस्त्र और रंग-बिरंगी मणियों सहित सीता को श्रीराम को वापस कर दो जिससे हम लोग आनन्दपूर्वक इस लङ्कापुरी में निवास कर सकें।

❮ द्वादशः सर्गः ❯ (१२)

रावण का विभीषण को धिक्कारना और फटकारना—

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम्।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः॥ १॥

जब धर्मात्मा विभीषण ने इस प्रकार के समयोचित, अर्थयुक्त एवं हितकारी वचन कहे तब काल से प्रेरित रावण ने विभीषण से ये अत्यन्त कठोर वचन कहे।

वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धनाशीविषेण वा।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥ २॥

भले ही मनुष्य शत्रु के साथ अथवा क्रुद्ध विषधर-सर्प के साथ रह ले, परन्तु शत्रु के पक्षपाती मित्ररूपी शत्रु के साथ कभी न रहे।

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेत ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा॥ ३॥

हे राक्षस! मैं सब लोकों के जातिवालों के स्वभाव को अच्छी प्रकार जानता हूँ। जाति में जब एक के ऊपर आपत्ति आती है तब दूसरे प्रसन्न होते हैं।

विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ब्राह्मणे दमः।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ज्ञातितो भयम्॥ ४॥

जैसे गोओं में सम्पत्ति, ब्राह्मणों में इन्द्रिय-निग्रह और स्त्रियों में चपलता होती है उसी प्रकार जातिवालों से सदा भय रहता है।

ततो नेष्टमिदं सौम्य तदहं लोकसत्कृतः।
ऐश्वर्येणाभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः॥ ५॥

हे सौम्य! मैंने शत्रुओं को पराजित कर अतुल यश प्राप्त किया है, तीनों लोकों में मेरा सम्मान है और ऐश्वर्य से मैं भरपूर हूँ—मेरा यह उत्कर्ष तुम्हें अच्छा नहीं लगता।

यथा पुष्करपर्णेषु पतितास्तोयबिन्दवः।
न श्लेषमुपगच्छन्ति तथाऽनार्येषु सौहृदम्॥ ६॥

जैसे कमल पत्र जल की बूँदे नहीं ठहरतीं वैसी ही अनार्य पुरुषों के साथ मैत्री की स्थिति है।

यथा मधुकरस्तर्षाद्रसं विन्दन्न तिष्ठति।
तथा त्वमपि तत्रैव तथाऽनार्येषु सौहृदम्॥ ७॥

जिस प्रकार भौंरे फूलों का रस पान करके भी वहाँ नहीं ठहरते उसी प्रकार अनार्य लोग काम निकल जाने पर मैत्री का ध्यान नहीं रखते।

यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वे रजः।
दूषयत्यात्मनो देहं तथाऽनार्येषु सौहृदम्॥ ८॥

जैसे हाथी पहले जल में स्नान कर फिर सूँड में धूल भरकर उससे अपने शरीर को गन्दा कर लेता है वैसा ही परिणाम अनार्यों की मित्रता का होता है अर्थात् अनार्य पहले स्नेह दर्शाकर फिर उसे नष्ट कर डालते हैं।

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसनम्॥ ९॥

हे विभीषण! तूने जैसी बातें कही हैं, यदि वैसी बातें कोई दूसरा कहता तो मैं उसे इसी क्षण मरवा डालता, परन्तु तू मेरा भाई है, अतः 'हे कुलकलङ्क! तुझे धिक्कार है'—ऐसा कहकर ही मैं तुझे छोड़ देता हूँ।

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः।
अब्रवीच्च तदा वाक्यं भ्रातरं राक्षसाधिपम्॥ १०॥

जब न्यायवादी विभीषण को रावण ने इस प्रकार धिक्कारा और फटकारा तब विभीषण ने अपने भाई राक्षसराज रावण से कहा—

स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन् ब्रूहि मांयद्यदिच्छसि।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः।
इदं तु परुषं वाक्यं न क्षमाम्यहितं तव॥ ११॥

हे राजन्! आपको मेरे विषय में भ्रान्ति है। आप जो चाहें कह सकते हैं। बड़े भाई होने के नाते आप पितृतुल्य एवं पूज्य हो, परन्तु आप धर्मपथ पर आरूढ़ नहीं हैं, अतः मैं आपके इन कठोर और अप्रिय वचनों को नहीं सहूँगा।

सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागतः॥ १२॥

हे दशानन! मैंने आपकी हितकामना से सुनिश्चित रूप से आगे होनेवाली विपत्ति-बोधक बात कही थी (सु+नि+इतं), परन्तु जिसके सिर पर काल सवार हो वे अनीतिज्ञ पुरुष ऐसी बातों को ग्रहण नहीं करते।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १३॥

हे राजन! सदा चिकनी-चुपड़ी बातें कहने वाले मनुष्य तो बहुत मिलते हैं, परन्तु अप्रिय हितकारी एवं न्याययुक्त बात कहने और सुननेवाले मनुष्य बिरले ही होते हैं।

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः।
न नश्यन्तमुपेक्षेयं प्रदीप्तं शरणं यथा॥ १४॥

सब प्राणियों का संहार करनेवाले काल के पाश में बँधे हुए आपको नष्ट होते देखकर मुझसे रहा नहीं गया, क्योंकि जलते हुए घर को देखकर कौन चुप-चाप बैठ सकता हैं अर्थात् कोई नहीं, इसीलिए मैंने आपसे ये बातें कहीं।

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता॥
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना॥ १५॥

हे भाई! जो कुछ भी हो आप पूज्य हैं। मैंने आपके हित की भावना से जो कुछ भी कहा है उसे क्षमा करना। आपका कल्याण हो, मैं अब जाऊँगा। मेरे न रहने से आप सुखी हों।

≺ त्रयोदशः सर्गः ≻ (१३)

विभीषण का राम की शरण में जाना—

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः॥ १॥

रावण का छोटा भाई विभीषण रावण से इस प्रकार के कठोर वचन कहकर कुछ ही देर में वहाँ जा पहुँचा जहाँ लक्ष्मण-सहित श्रीराम डेरा डाले हुए थे।

उत्तरं तीरमासाद्य स उवाच विभीषणः।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य सर्वान् वानरयूथपान्॥ २॥

समुद्र के उत्तर-तट पर पहुँचकर महामति विभीषण ने सुग्रीव तथा सब वानर-यूथपतियों की ओर देखकर कहा—

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः॥ ३॥

रावण नामक एक दुराचारी राक्षस राक्षसों का राजा है। मैं उसका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है।

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम्।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता॥ ४॥

वह जटायु को मारकर जनस्थान से सीता का अपहरण कर लाया था। बेचारी सीता विवश और दीन होकर राक्षसियों के पहरे में कैद है।

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः॥ ५॥

मैंने रावण को कितनी ही बार और कितनी ही युक्तियों से समझाया है कि तुम सीता को श्रीराम को लौटा दो।

स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम्॥ ६॥

परन्तु मृत्युरूपी काल से प्रेरित रावण ने मेरी हितकारी बात को उसी प्रकार नहीं माना जिस प्रकार मरणासन्न रोगी औषध नहीं लेना चाहता।

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥ ७॥

उसने मुझसे अत्यन्त कठोर वचन कहे हैं और नौकरों की भाँति मेरा अपमान किया है, अतः मैं अपने पुत्र और स्त्री आदि को छोड़कर राम की शरण में आया हूँ।

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥ ८॥

आप सब लोगों को शरण देनेवाले महात्मा राम से शीघ्र मेरे बारे में निवेदन कर दीजिए कि विभीषण आपकी शरण में आया है।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत्॥ ९॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव शीघ्रतापूर्वक गये और क्रुद्ध होकर लक्ष्मण समक्ष श्रीराम से कहने लगे—

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः॥ १०॥

रावण का छोटा भाई विभीषण चार राक्षसों को साथ लेकर आपकी शरण में आया है।

मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परन्तप॥ ११॥

हे शत्रुसंतापक! वानरों और शत्रुओं के अनुग्रह तथा निग्रह के लिए मन्त्रणा में, सेना की व्यूहरचना में, सेना-सञ्चालन में तथा शत्रुसेना का वृत्तान्त जानने के लिए दूत नियत करने में सावधान हो जाइए। तभी आपका कल्याण होगा।

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम्।
अनु प्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः॥ १२॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह रावण का भेदिया है। निश्चय ही यह हम लोगों से हिल-मिलकर हम लोगों में भेदभाव उत्पन्न कर देगा।

अथवा स्वयमेवैष छिद्रसामाद्य बुद्धिमान्।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित्प्रहरेदपि॥ १३॥

अथवा यह बुद्धिमान् विभीषण हमारे अन्दर घुसकर जब कहीं कोई छिद्र- दोष, त्रुटि, कमी देखेगा तब यह स्वयं हमारे सैनिकों पर आक्रमण कर देगा।

प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्राताऽमित्रस्य वै प्रभो।
आगतश्च रिपोः पक्षात्कथमस्मिंश्च विश्वसेत्॥ १४॥

स्वामिन्! एक तो यह प्रकृति से राक्षस, दूसरे शत्रु का भाई, तीसरे शत्रु के पक्ष से आया है, अतः इस पर विश्वास कैसे किया जा सकता है?

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि विभीषणम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर॥ १५॥

युक्त व्यवहार करनेवालों में श्रेष्ठ राम! यह विभीषण रावण का भेजा हुआ ही यहाँ आया है, अतः मैं तो इसे दण्ड देना ही उचित समझता हूँ।

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमुपस्थितः।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि राघव॥ १६॥

हे राघव! यह छद्मवेषधारी राक्षस पहले आपके मन में अपनी ओर से विश्वास उत्पन्न कर, अवसर हाथ लगने पर आपके ऊपर प्रहार करने के लिए रावण द्वारा भेजा गया है और यह कपट-बुद्धि से यहाँ आया है।

वध्यतामेष दण्डेन तीव्रेण सचिवैः सह।
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवस्ततो मौनमुपागमत्॥ १७॥

मेरे विचार में तो इसे इसके चारों मन्त्रियों सहित कठोर दण्ड देकर मार डालना चाहिए। सुग्रीव श्रीराम से ऐसा कहकर मौन हो गये।

सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महायशाः।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान्हरीन्॥ १८॥

सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर महायशस्वी राम अपने समीप बैठे हुए हनुमान् आदि प्रमुख वानरों से बोले—

यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति।
वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि तत् श्रुतम्॥ १९॥

कपिराज सुग्रीव ने रावण के छोटे भाई विभीषण के सम्बन्ध में जो युक्तियुक्त और मतलब की बातें कही हैं वे सब आप लोगों ने भी सुनी हैं।

सुहृदा ह्यर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सता।
समर्थेनापि संदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता॥ २०॥

मित्रों की शाश्वत ऐश्वर्य-वृद्धि के लिए बुद्धिमान् उत्तम विचारक और हितैषी को चाहिए कि संदेह उपस्थित होने पर अथवा संकट पड़ने पर वह अपने मित्रों को कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराए, अतः आप सब लोग इस विषय में अपनी-अपनी सम्मति दें।

इत्येवं परिपृष्टास्ते मतिमानङ्गदोऽग्रतः।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः॥ २१॥

श्रीराम के ऐसा पूछने पर सबसे पूर्व महामति अङ्गद ने विभीषण की परिस्थिति का विवेचन करते हुए अपनी सम्मति दी।

शत्रोः सकाशात्सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्य एव हि।
विश्वासयोग्यः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः॥ २२॥

हे राजन्! विभीषण शत्रु के पास से आ रहा है, अतः उस पर संदेह होना स्वाभाविक है। यह सहसा विश्वास करने योग्य नहीं है। (शनैः-शनैः परखकर ही इसे अपने में मिलाना चाहिए।)

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत्।
क्षिप्रमस्मिन्नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम्॥ २३॥

तत्पश्चात् शरभ ने कुछ सोचकर यह युक्तियुक्त बात कही—हे नरकेसरी! लङ्का में गुप्तचर भेजकर इसके सम्बन्ध में पता लगाना चाहिए।

जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम्॥ २४॥

तदनन्तर दीर्घदर्शी जाम्बवान् ने शास्त्रानुसार[1] सोच-विचार कर यह युक्तियुक्त और दोषरहित बात

---

१. बन्दर और भालू वेदादि शास्त्रों को नहीं पढ़ सकते। यहाँ जाम्बवान् ने '**शास्त्रबुद्ध्या**'—शास्त्रानुसार बात कही है। इससे यह स्पष्ट है कि जाम्बवान् भालू नहीं था।

कही—

बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद्विभीषणः।
अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम्॥ २५॥

यह विभीषण हमारे कट्टर-शत्रु और पापी राक्षस के पास से अनुपयुक्त समय और स्थान पर आया है, अतः इससे सर्वथा सावधान रहना ही उचित है।

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान्सचिवोत्तमः।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु॥ २६॥

तत्पश्चात् सर्व-शास्त्रविशारद, मन्त्रियों में श्रेष्ठ हनुमान् ने संक्षेप से, किन्तु स्पष्टार्थ-बोधक मधुर वचनों में कहा—

न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः॥ २७॥

हे राजन! जब यह बोल रहा था तब मुझे इसके स्वर में कोई दुष्ट भावना नहीं जान पड़ी। इसकी मुखाकृति भी हर्षित जान पड़ती है, अतः मुझे तो इस पर कोई सन्देह नहीं है।

उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
बालिनश्च वधं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्॥ २८॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः।
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते त्वस्य संग्रहः॥ २९॥

विभीषण आपके शत्रु पर आक्रमण करने के उद्योग को और रावण के मिथ्याचार को देखकर तथा आपके द्वारा बाली का वध और सुग्रीव के राज्याभिषेक को सुनकर, रावण-वध के पश्चात् लङ्का का राज्य पाने के लोभ से भली-भाँति सोचविचार कर आपके पास आया है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए विभीषण को अपने साथ मिला लेना ही उचित है।

➤ चतुर्दशः सर्गः ➤ (१४)

राम का मन्त्रियों से विचार-विमर्श के पश्चात् विभीषण को अभय प्रदान करना—

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम्॥ १॥

अब सर्वशास्त्रवेत्ता दुर्जेय श्रीराम हनुमानजी की बातों को सुनकर अति प्रसन्न हुए और अपने हृदय की बात कहने लगे—

ममापि तु विवक्षाऽस्ति काचित्प्रति विभीषणम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः॥ २॥

हे वानरो! विभीषण के विषय में मुझे भी कुछ कहना है जिसे मैं कल्याण में स्थित आप सब लोगों के कर्णगोचर करना चाहता हूँ।

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम्॥ ३॥

मेरा कहना यह है कि जो मित्रभाव से आया है उसका त्याग कभी न करना चाहिए भले ही उसमें दोष भी हों, क्योंकि शिष्टजनों का यही अनिन्दित कर्त्तव्य है।

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः॥ ४॥

श्रीराम के वचनों को सुनकर उनकी व्याख्या और विचार-विमर्श के पश्चात् वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने अपनी पहली बातों का अनुमोदन करते हुए पहले से भी बढ़कर बात कही—

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत्।
का नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत्॥ ५॥

यह राक्षस दुष्ट हो अथवा श्रेष्ठ—इस बात का विचार निरर्थक है। जो संकट पड़ने पर अपने भाई का परित्याग कर दे तब ऐसा कौन होगा जिसका संकट पड़ने पर वह साथ न छोड़ दे?

वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य च।
इति होवाच काकुत्स्थो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्॥ ६॥

वानरराज सुग्रीव के इन वचनों को सुनकर और सब वानरों की ओर देख श्रीराम ने पुण्यलक्षणोंवाले लक्ष्मणजी से कहा—

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः॥ ७॥

शास्त्रों का अध्ययन और वृद्धों की सेवा किये बिना कोई व्यक्ति ऐसी बात नहीं कह सकता जैसी बात सुग्रीव ने कही है।

अस्ति सूक्ष्मतरं किञ्चिद्यदत्र प्रतिभाति मे।
प्रत्यक्षं लौकिकं वापि विद्यते सर्वराजसु॥ ८॥

परन्तु इस विषय में मुझे अत्यन्त सूक्ष्म बात भान हो रही है। वह प्रत्यक्ष है, लोकसिद्ध है और सब राजाओं में पाई जाती है।

अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः॥ ९॥

वह सूक्ष्म बात यह है कि—शत्रु दो प्रकार के होते हैं—एक तो अपने कुलवाले, दूसरे आस-पास के देशों में रहनेवाले। ये दोनों ही प्रकार के शत्रु विपत्ति के समय आक्रमण किया करते हैं। अतः सम्भव है कि विभीषण रावण को संकट में देख उसका संहार कराने के लिए यहाँ आया हो।

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥ १०॥

हे तात! सब भाई भरत जैसे, सब पुत्र मेरे समान पिता के आज्ञाकारी और सब मित्र आप जैसे नहीं होते।

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥ ११॥
स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम्।
कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः॥ १२॥

सुनते हैं कि शरण में आये हुए शत्रु को किसी कबूतर ने यथाविधि सत्कार कर उसे अपने शरीर का मांस खिलाया था। यह अतिथि एक बहेलिया था जिसने उसकी कबूतरी को पकड़ रखा था।जब कबूतर ने शरण में आये हुए शत्रु का आतिथ्य सत्कार किया तब मुझे शरण में आये हुए विभीषण का त्याग नहीं करना चाहिए।

एष दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्॥ १३॥

शरण में आये हुए की रक्षा न करने में महान् दोष है। शरणागत की रक्षा न करना दुःखों का मूल है, अपयश का कारण है और शक्ति तथा पराक्रम का नाशक है।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ १४॥

मेरा व्रत है कि जो मेरी शरण में आकर कह दे कि—"मैं आपकी शरण में हूँ"—मैं उसे प्राणिमात्र से अभय प्रदान कर देता हूँ।

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥ १५॥

हे कपिश्रेष्ठ सुग्रीव! वह विभीषण हो अथवा रावण मैंने उसे अभय प्रदान कर दिया है, अतः तुम उसे यहाँ ले आओ।

❮ पञ्चदशः सर्गः ❯ (१५)

विभीषण का राज्याभिषेक—

राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः।
पादयोः सचिवैः सह रामस्य निपपात सः॥ १॥

श्रीराम द्वारा अभय प्रदान किये जाने पर रावण का छोटा भाई विभीषण विनम्र भाव से अपने चारों मन्त्रियों सहित श्रीराम के चरणों में गिर पड़ा।

तं रामः समुत्थाप्य परिष्वज्य विभीषणम्।
उवाच मधुरं वाक्यं सखा मम भवान् इति॥ २॥

राम ने विभीषण को उठाकर अपने गले लगाया और मधुर शब्दों में बोले—''आज से तुम मेरे मित्र हो।''

अब्रवीच्च तदा रामं वाक्यं तत्र विभीषणः।
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम्॥ ३॥

तब विभीषण ने श्रीराम से युक्तियुक्त, धर्म-संगत और तत्काल मन को प्रसन्न करनेवाले ये वचन कहे--

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः॥ ४॥

राजन्! मैं रावण को छोटा भाई हूँ और उसके द्वारा अपमानित हूँ। आप दु:खी प्राणियों के आश्रय हैं, अतः मैं आपकी शरण में आया हूँ।

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि वै।
भवद्गतं च मे राज्यं जीवितं च सुखानि च॥ ५॥

मैंने लङ्कानगरी को, अपने मित्रों को और समस्त धन-सम्पत्ति को तिलाञ्जलि दे दी है। अब तो मेरा राजपाट, जीवन और सुखादि सब कुछ आपके ही अधीन है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम्॥ ६॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर राम ने कहा—हे विभीषण! तुम मुझे लङ्कावासी राक्षसों के बलाबल का ठीक-ठीक वृत्तान्त सुनाओ।

एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमपचक्रमे॥ ७॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीराम के ऐसा पूछने पर विभीषण ने रावण के सैन्यबल का विस्तार-पूर्वक वर्णन करना आरम्भ किया।

अवध्यः सर्वभूतानां देवदानवरक्षसाम्।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः॥ ८॥

हे राजकुमार! परमात्मा की कृपा से रावण देव, दानव और राक्षस आदि जातियों से अवध्य है।

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान्।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि॥ ९॥

रावण से छोटा और मुझसे बड़ा मेरा मझला भाई कुम्भकर्ण अत्यन्त बलवान्, महातेजस्वी और युद्ध में इन्द्र का साम्मुख्य- मुकाबला करनेवाला है।

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि वा श्रुतः।
कैलासे येन संग्रामे मणिभद्रः पराजितः॥ १०॥

हे राम! रावण के सेनापति प्रहस्त ने, जिसके सम्बन्ध में शायद आपने सुना हो, कैलास के राजा मणिभद्र को युद्ध में पराजित किया था।

बद्धगोधाङ्गुलित्राणस्त्ववध्यकवचो युधि।
धनुरादायान्तर्धानगतः शत्रुन्हन्तीन्द्रजित्॥ ११॥

रावण का पुत्र इन्द्रजित् गोह के चमड़े के दास्ताने पहन, अभेद्य कवच धारण कर और धनुष हाथ में लेकर अन्तर्धान होकर शत्रुओं को मारा करता है।

महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः।
अनीकस्थास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि॥ १२॥

इनके अतिरिक्त रावण के सेनापति महोदर, महापार्श्व और अकम्पन आदि राक्षस ऐसे हैं जो युद्ध में लोकपालों जैसा पराक्रम प्रदर्शित किया करते हैं।

विभीषणस्य वचः श्रुत्वा रामो दृढपराक्रमः।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

दृढ़ पराक्रमी राम विभीषण की बातें सुन और उन सब पर मन-ही-मन विचार-विमर्श कर कहने लगे—

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सबान्धवम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमिते॥ १४॥

मैं प्रहस्त और बन्धु-बन्धुवों सहित दशग्रीव को मारकर तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा, मै यह सत्य बात तुमसे कहता हूँ।

रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन् विमोक्ष्यते॥ १५॥

रावण अपने प्राण बचाने के लिए चाहे रसातल में चला जाये, चाहे पाताल में चला जाये और चाहे ब्रह्मा जी के पास ही क्यों न चला जाये अब वह मुझसे बच नहीं सकता।

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रबलबान्धवम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे॥ १६॥

मैं अपने तीनों भाइयों की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं युद्ध में पुत्र, सेना और बन्धु-बन्धुओं सहित रावण का वध किये बिना अयोध्या में प्रवेश नहीं करूँगा।

श्रुत्वा नु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
शिरसाऽवन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवोपचक्रमे॥ १७॥

कल्याणकारी कर्म करनेवाले राम के इस वचन को सुनकर धर्मात्मा विभीषण ने सिर से उनकी पाद-वन्दना करके (उनके चरणों में नमस्कार करके) यह कहना आरम्भ किया—

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम्॥ १८॥

हे राजन्! रावण की आक्रमणकारी सेना के आते ही मैं उसमें घुस राक्षस सैनिकों का वध करने और लङ्का को विध्वंस करने में आपकी प्राणपण से सहायता करूँगा।

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय॥ १९॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम्।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद॥ २०॥

ऐसा कहते हुए श्रीराम ने विभीषण को अपनी छाती से लगा लिया और फिर प्रसन्न होकर लक्ष्मण से कहा—हे मानदाता लक्ष्मण! जाओ समुद्र से जल ले आओ और उससे महामति विभीषण को तुरन्त राक्षसों के राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त कर दो। मैं इन पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम्।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं रामशासनात्॥ २१॥

श्रीराम का आदेश पाकर लक्ष्मणजी ने प्रमुख वानरों की उपस्थिति में राजकीय आदेश से विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया।

तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधुसाध्विति चाब्रुवन्॥ २२॥

श्रीराम के इस अनुग्रह को देखकर वानर लोग तत्काल हर्षनाद करते हुए 'वाह-वाह', 'बहुत अच्छा किया'— कहने लगे।

❮ षोडशः सर्गः ❯ (१६)

गुप्तचर शार्दूल और दूत शुक का आगमन—

ततो निविष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम्।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान्॥ १॥

जिस समय सुग्रीव की सेना समुद्र-तट पर पड़ाव डाले हुए पड़ी थी उस समय रावण का गुप्तचर पराक्रमी शार्दूल वहाँ आया और उसने सेना की देखभाल कर ली अथवा भेद ले लिया।

तां दृष्ट्वा सर्वतोऽव्यग्रां प्रतिगम्य स राक्षसः।
प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत्॥ २॥

पूर्णरूपेण सावधान उस सेना को देखकर वह राक्षस शार्दूल वापस लौटा और जल्दी से लङ्का में पहुँचकर रावण से बोला—

एष वै वानरर्क्षौघो लङ्कां समभिवर्तते।
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः॥ ३॥

हे राजन्! वानर और ऋक्षों का सेना-प्रवाह लंका के समीप आ पहुँचा है। यह सैन्य-प्रवाह दुष्प्रवेश्य और असंख्य है तथा दूसरे समुद्र जैसा जान पड़ता है।

पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
उत्तमायुधसम्पन्नौ सीतायाः पदमागतौ॥ ४॥

महाराज दशरथ के दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण जो उत्तम आयुधों से सुसज्जित हैं, सीता का उद्धार

करने के लिए आये हैं।

शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
उवाच सहसा व्यग्रः शुकं नाम रक्षस्तदा॥ ५॥

शार्दूल के इन वचनों को सुनकर राक्षसराज रावण व्याकुल होकर शुक नामक राक्षस से बोला—

सुग्रीवं ब्रूहि गत्वा त्वं राजानं वचनात् मम।
यथा सन्देशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा॥ ६॥

हे शुक! तुम वानरराज सुग्रीव के पास जाओ और उससे मेरी ओर से निर्भयतापूर्वक, परन्तु मधुर एवं सुनने योग्य वाणी से यह संदेश कहना—

त्वं वै महाराज कुलप्रसूतो
महाबलश्चर्क्षरजः सुतश्च।
न कश्चिदर्थस्तव नास्त्यनर्थः
तथा हि मे भ्रातृसमो हरीश॥ ७॥

हे महाराज! तुम कुलीन और बलवान् हो। ऋक्षराज के पुत्र और ब्रह्मा के पौत्र होने के कारण मेरे भाई के समान हो, अतः तुम्हें निष्कारण मेरे साथ वैर करना उचित नहीं। श्रीराम की सहायता करने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा और उनकी सहायता न करने से कोई हानि नहीं होगी।

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम्॥ ८॥

हे सुग्रीव! यदि मैंने महामति राजपुत्र राम की पत्नी का हरण कर लिया तो इससे तुम्हें क्या प्रयोजन? आप अपनी राजधानी किष्किन्धा को लौट जाओ।

न हीयं हरिभिर्लङ्का शक्या प्राप्तुं कथञ्चन।
देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः॥ ९॥

देव और गन्धर्व भी जब इस लंका को नहीं जीत सकते फिर मनुष्यों और वानरों की तो बात ही क्या है?

स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम्।
सर्वमुक्तं यथाऽऽदिष्टं रावणेन दुरात्मना॥ १०॥

रावण का आदेश पाकर शुक समुद्र के ऊपर आकाश में उड़ता हुआ[१] समुद्र के तट पर सुग्रीव के पास पहुँचा और दुरात्मा रावण का सन्देश ज्यों-का-ज्यों निवेदन कर दिया।

तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमाप्लुत्य वानराः।
प्रापद्यन्त दिवं क्षिप्रं लोप्तुं हन्तुं च मुष्टिभिः॥ ११॥

राक्षस शुक जब रावण का संदेश सुना रहा था तब वानरों ने उछलकर उसे पकड़ लिया और उसे घूँसों से मारने लगे।

वानरैः पीड्यमानस्तु शुको वचनमब्रवीत्।
न दूतान् घ्नन्ति काकुत्स्थ वार्यन्तां साधु वानराः॥ १२॥

वानरों द्वारा पीड़ित होने पर शुक बोला—हे साधु! हे काकुत्स्थ! दूतों को मारा नहीं जाता, अतः इन वानरों को रोकिए।

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तु परिदेवितम्।
उवाच मा वधिष्टेति घ्नतः शाखमृगर्षभान्॥ १३॥

शुक के गिड़गिड़ाहटपूर्ण वचनों को सुनकर श्रीराम ने उसे मार डालने के लिए उद्यत वानर- यूथपतियों से कहा—इस दूत को मत मारो।

अन्तरिक्षस्थितो भूत्वा स तु वचनमब्रवीत्।
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः॥ १४॥

वानरों से छूटकर आकाश में ठहरे-ठहरे वह पुनः कहने लगा—हे सुग्रीव! लोकों को रुलानेवाले रावण के पास जाकर मैं क्या कहूँ?

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा
प्लवङ्गमानामृषभो महाबलः।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य
चारं शुकं दीनमदीनसत्त्वः॥ १५॥

जब शुक ने वानरश्रेष्ठ महाबली सुग्रीव से इस

---

१. पाठक ध्यान रखें जहाँ इस प्रकार के वचन हैं वहाँ यह गमन वायुयान के द्वारा ही होता है। आजकल अंग्रेजी में भी He flew to London—ऐसा प्रयोग होता है।

प्रकार कहा तब स्वाभिमानी सुग्रीव ने दीनता को प्राप्त राक्षसदूत शुक से कहा-

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो
न चोपकर्ताऽसि न मे प्रियोऽसि
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धः
स मेऽसि बालीव वधार्ह वध्यः॥ १६॥

तुम रावण को यह संदेश देना—हे रावण! तुम न तो मेरे मित्र हो, न दया के पात्र हो, न तुम मेरे उपकर्ता हो और न मेरे प्रिय ही हो प्रत्युत् श्रीराम के शत्रु होने के कारण मेरे भी शत्रु हो और बन्धु-बान्धवों सहित बाली के समान मार डालने योग्य हो।

ततोऽब्रवीद् बालिसुतस्त्वङ्गदो हरिसत्तमः।
नायं दूतो महाराज चारकः प्रतिभाति मे॥ १७॥

जब सुग्रीव अपना संदेश दे चुके तब कपिश्रेष्ठ बालिपुत्र अङ्गद ने कहा—महाराज! मुझे तो यह दूत नहीं अपितु गुप्तचर प्रतीत होता है।

तुलितं हि बलं सर्वमनेनात्रैव तिष्ठता।
गृह्यतां मागमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते॥ १८॥

इसने इतनी देर यहाँ ठहरकर हमारी समस्त सेना और व्यूह का रहस्य ताड़ लिया है। मुझे तो उचित प्रतीत होता है कि इसे पकड़ लिया जाये और लङ्का न जाने दिया जाये।

ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्प्लुत्य वलीमुखाः।
जगृहुस्तं बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत्॥ १९॥

तब कपिराज सुग्रीव की आज्ञा पाकर अनाथ की तरह विलाप करते हुए उस शुक को वानरों ने उछलकर पकड़ लिया और बाँध दिया।

शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः सम्प्रपीडितः।
व्याक्रोशत महात्मानं रामं दशरथात्मजम्॥ २०॥

जब उन प्रचण्ड पराक्रमी वानरों ने उसे मारना पीटना आरम्भ किया तब वह दशरथनन्दन श्रीराम का नाम लेकर चिल्लाने लगा और कहने लगा—

यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम्।
एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम्।
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम्॥ २१॥

जिस दिन मैं उत्पन्न हुआ था और जिस दिन मरूँगा—इस बीच में मैंने जो पाप किये हैं यदि मैं इस प्रकार मारा गया तो वे सब पाप आपको लगेंगे।

नाघातयत्तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवनम्।
वानरानब्रवीद्रामो मुच्यतां दूत आगतः॥ २२॥

उसका ऐसा करुणापूर्ण विलाप सुनकर राम ने उसकी रक्षा की और वानरों से कहा—यह दूत बनकर आया है, अतः इसे छोड़ दो, मारो मत।

◀ सप्तदशः सर्गः ▶ (१७)

राम का समुद्र पर पुल बनाकर ससैन्य पार उतरना—

अथाब्रवीत् हनुमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम्।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम्॥ १॥

अब सुग्रीव और हनुमान् ने विभीषण से पूछा—हे मित्र! यह तो बताओ कि हम इस गम्भीर एवं विशाल सागर से किस प्रकार पार हों?

एवमुक्तस्तु धर्मज्ञः प्रत्युवाच विभीषणः।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति॥ २॥

जब दोनों वानरश्रेष्ठों ने इस प्रकार कहा तब धर्मज्ञ विभीषण बोले—महाराज राम समुद्र की शरण में जायें यही उपाय है।[१]

एतद् विभीषणेनोक्तं राघवस्याप्यरोचत।
ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः॥ ३॥

१. राम की शरण में आने पर विभीषण को लंका का राज्य मिल गया अतः विभीषण को यही उपाय सर्वश्रेष्ठ लगा।

अद्य मे मरणं वाऽथ तरणं सागरस्य वा।
इति रामो मतिं कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः॥ ४॥

विभीषण का यह कथन राम को भी पसन्द आया, अतः वे समुद्र के किनारे कुश बिछाकर और यह दृढ़ संकल्प करके—'आज या तो मैं समुद्र से पार हो जाऊँगा अथवा अपने प्राण त्याग दूँगा'—लेट गये।

तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले।
नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्त्रो व्यतिक्रमुः॥ ५॥

सावधानी से नियमपूर्वक पृथिवी पर कुशों की चटाई पर लेटे-लेटे राम को तीन दिन और तीन रात्रि व्यतीत हो गईं।

न च दर्शयते मन्दस्तदा रामस्य सागरः।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः॥ ६॥

यद्यपि श्रीराम ने समुद्र का यथाविधि सत्कार कर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया तथापि वह मूर्ख श्रीराम के समक्ष प्रकट नहीं हुआ।[१]

समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः।
समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्ष्मणम्॥ ७॥

श्रीराम को समुद्र की मूर्खता पर बड़ा क्रोध आया और मारे क्रोध के उनके नेत्र लाल हो गये।

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः।
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि॥ ८॥

हे लक्ष्मण! शान्ति से यश एवं कीर्ति प्राप्त नहीं होती और न शान्त रहने से युद्ध में विजय प्राप्त होती है अतः—

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्।
सागरं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः॥ ९॥

हे लक्ष्मण! तुम मेरा धनुष और सर्प के समान विषैले मेरे बाण तो उठा लाओ। मैं समुद्र का जल सूखा डालूँगा जिससे वानर पैदल ही समुद्र पार चले जायें।

अब्रवीद्वानरश्रेष्ठः समुत्थाय नलस्तदा।
अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे वरुणालये॥ १०॥

श्रीराम को क्रुद्ध देख वानरश्रेष्ठ नल खड़ा हुआ और बोला—मैं इस विशाल सागर पर पुल निर्माण कर दूँगा।

ततोऽतिसृष्टा रामेण सर्वतो हरियूथपाः।
अभिपेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः॥ ११॥

'ततः'-नल की बात सुनकर राम ने सब ओर फैले हुए वानरों को सेतु-निर्माण के कार्य में नियुक्त किया। तब तो सहस्रों वानर प्रसन्न हो महावन की ओर दौड़ पड़े।

ते नगान्नगसङ्काशाः शाखामृगगणर्षभाः।
बभञ्जुर्वानरास्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम्॥ १२॥

वे विशालकाय वानरयूथपति पर्वत-शिखरों और वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर समुद्र-तट पर लाकर उनका ढेर लगाने लगे।

हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च॥ १३॥

उन विशालकाय एवं महाबली वानरों ने हाथी जैसे भारी भरकम पत्थरों और पर्वत-शिखरों को तोड़-तोड़कर यन्त्रों द्वारा लाना आरम्भ किया।

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तथा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः॥ १४॥

नल ने घोरकर्मा वानरों की सहायता से नदीपति समुद्र के ऊपर पुल का निर्माण किया।[२]

---

१. यहाँ आदि कवि ने समुद्र का मानवीयकरण (Personification) करके चित्रण किया है। समुद्र जड़ है। वह न बोल सकता है, न उत्तर दे सकता है। बात को चमत्कारिक ढंग से कहने और राम का अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए ही कवि ने आलंकारिक वर्णन किया है।

२. लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि नल और नील को ऐसा वरदान प्राप्त था कि वे जिस पत्थर को छूकर पानी में छोड़ेंगे वे डूबेंगे नहीं, अतः पुल का निर्माण करते हुए नल और नील समुद्र में पत्थरों को छोड़ते जाते थे। वरदान के कारण वे डूबते नहीं थे इस प्रकार पुल का निर्माण हो गया। यह प्रवाद सर्वथा मिथ्या और कपोल-कल्पित है। वाल्मीकीय रामायण से इसका समर्थन नहीं होता।

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये।
शुशुभे सुभगः श्रीमान् स्वातीपथ इवाम्बरे॥ १५॥

मगरों के घर समुद्र पर नल द्वारा निर्मित यह सेतु ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे आकाश में आकाश-गङ्गा।

तदचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं रोमहर्षणम्।
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम्॥ १६॥

उस अचिन्तनीय,[१] अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी सेतु की रचना को सभी प्राणियों ने आश्चर्य के साथ देखा।

विशालः सुकृतः श्रीमान् सुभूमिः सुसमाहितः।
अशोभत महासेतुः सीमन्त इव सागरे॥ १७॥

नल द्वारा निर्मित वह पुल खूब लम्बा-चौड़ा था। वह बड़ा दृढ़ था, सीधा था, नीचा-ऊँचा न होकर समान चौरस था और उसमें गढ़े भी नहीं थे। वह समुद्र के बीच में ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे स्त्रियों के सिर की माँग।

ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः।
परेषामभिघातार्थमतिष्ठत्सचिवैः सह॥ १८॥

सेतु के निर्मित हो जाने पर विभीषण हाथ में गदा लेकर अपने चारों मन्त्रियों सहित समुद्र के पार शत्रुओं को मारने के लिए जा खड़े हुए।

अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सलक्ष्मणः।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः॥ १९॥

फिर धर्मात्मा, धनुर्धारी श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव को साथ लिये हुए वानरी सेना के आगे-आगे चले।

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके॥ २०॥

नल के द्वारा निर्मित उस सेतु से वह सम्पूर्ण वानर सेना पार उतर गई। उस पार पहुँच सुग्रीव ने उनको फल मूलों से परिपूर्ण समुद्र-तट पर ठहरा दिया।

➤ अष्टादशः सर्गः ➤ (१८)

रावण द्वारा शुक[२] और सारण को भेजना—

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ॥ १॥

जब दशरथनन्दन श्रीराम वानर-सेना सहित समुद्र के इस पार आ गये तब रावण ने शुक और सारण नामक अपने मन्त्रियों से कहा—

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम्।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम्॥ २॥

देखो, सम्पूर्ण वानर-सेना दुस्तर समुद्र के पार उतर आई और राम को समुद्र के ऊपर पुल बाँधना भी एक अभूतपूर्व कार्य है।

सागरे सेतुबन्धं तु न श्रद्दध्यां कथञ्चन।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम्॥ ३॥

परन्तु समुद्र पर पुल बाँध लेने से मुझे राम के ऊपर किसी प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। हाँ, मुझे यह अवश्य जान लेना चाहिए कि राम के साथ वानर-सेना कितनी है।

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः॥ ४॥

अतः तुम लोग छिपकर वानर-सेना में जाओ और वहाँ जाकर देखो कि वानर-सेना कितनी है? उसकी शक्ति कैसी है? और उसके सेनापति कौन-कौन हैं?

---

१. समुद्र के ऊपर पुल का निर्माण करना सचमुच अचिन्त्य एवं अद्भुत (A marvellous task) कर्म था।

२. सोलहवें सर्ग में जिस शुक की चर्चा है वह दूत था। यहाँ जिस शुक को भेजा है यह रावण का मन्त्री है, [Ambassador] यह दूत नहीं गुप्तचर [C.I.D.] है।

मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मताः।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः॥ ५॥

राम और सुग्रीव के मन्त्री कौन से हैं जिनका वे दोनों आदर करते हैं। सेना के आगे कौन रहते हैं? उन आगे रहनेवालों में भी वास्तव में शूरवीर वानर कौन-से हैं? इन सब बातों का पता लगाओ।

रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः॥ ६॥

तुम लोग इसका भी ठीक ठीक पता लगाना कि राम और लक्ष्मण क्या करना चाहते हैं? उनका पराक्रम कैसा है? और वे किन हथियारों से लड़ते हैं।

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम्॥ ७॥

ऐसी आज्ञा पाकर, शुक और सारण—दोंनों वीर राक्षसों ने वानर का रूप बनाया और वानरी सेना में जा घुसे।

तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ।
तौ ददर्श महातेजाः प्रच्छन्नौ च विभीषणः॥ ८॥

वे दोनों राक्षस आपना-अपना वास्तविक रूप छिपाकर उस सेना के अक्षोभ्य सागर को देख ही रहे थे कि इतने में तेजस्वी विभीषण ने उन्हें पहचान लिया।

आचचक्षेऽथ रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ।
मन्त्रिणौ राक्षसेन्द्रस्य लङ्कायाः समनुप्राप्तौ॥ ९॥

विभीषण शुक और सारण को पकड़कर श्रीराम के पास ले गये और कहा—ये दोनों राक्षसराज रावण के मन्त्री हैं ओर गुप्तचर बनकर लङ्का से यहाँ आये है।

तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तदा।
कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः॥ १०॥

श्रीराम को देखकर वे दोनों बहुत व्यथित हुए, यहाँ तक कि वे अपने जीवन से भी निराश हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर डरते-डरते श्रीराम से कहा—

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ।
परिज्ञातुं बलं कृत्स्नं तवेदं रघुनन्दन॥ ११॥

हे सौम्य! हम दोनों रावण के भेजे हुए यहाँ आये हैं। हे रघुनन्दन! हम आपकी सैन्य-शक्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने आये हैं।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः॥ १२॥

सब प्राणियों के कल्याण में रत रहनेवाले दशरथनन्दन राम उनकी बात सुनकर मुस्कराये और बोले—

यदि दृष्टं बलं कृत्स्नं वयं वा सुपरीक्षिताः।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्॥ १३॥

यदि आप लोगों ने हमारी सेना की संख्या जान ली है और हम लोगों के बल-वीर्य की जाँच-पड़ताल कर ली है तथा रावण की आज्ञानुसार सब कार्य पूर्ण कर चुके हो तो तुम प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ।

अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन भूयः संदर्शयिष्यति॥ १४॥

यदि कुछ देखना और जानना शेष रह गया हो तो फिर देख सकते हो अथवा यदि तुम चाहो तो विभीषण तुमको सब कुछ भली-भाँति दिखा देंगे।

न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ वा न दूतौ वधमर्हथः॥ १५॥

यद्यपि इस समय तुम बन्धन में हो तथापि तुम्हें प्राणदण्ड नहीं दिया जायेगा, क्योंकि शस्त्ररहित गिरफ्तार किये गये दूतों का वध नहीं किया जाता।

प्रच्छन्नौ च विमुञ्चैतौ चारौ रात्रिंचरावुभौ।
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षिणौ॥ १६॥

हे विभीषण! यद्यपि ये वेश बदलकर आये हैं, शत्रु के गुप्तचर हैं, और हमारा भेद लेने आये हैं तथापि इन दोनों राक्षसों को छोड़ दो।

प्रविश्य नगरीं लङ्कां भवद्भयां धनदानुजः।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम॥ १७॥

(विभीषण से यह कहकर राम ने उन गुप्तचरों से

कहा—) हे राक्षसचरो! लङ्का में जाकर आप लोग कुबेर के छोटे भाई राक्षसराज रावण से जो कुछ मैं कहता हूँ उसे ज्यों-का त्यों कह देना।

यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि।
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः॥ १८॥

उससे कहना—हे रावण! जिस बल-बूते पर तूने मेरी सीता का हरण किया है अब उस बल को अपनी सेना और भाई-बन्दों सहित मुझे दिखला।

श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया॥ १९॥

हे रावण! कल प्रातःकाल तुम परकोटों और मुख्य द्वारों सहित लङ्कापुरी को और सम्पूर्ण राक्षसी सेना को मेरे बाणों द्वारा नष्ट हुआ देखोगे।

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।
जयेति प्रतिनन्द्यैतौ राघवं धर्मवत्सलम्।
आगम्य नगरीं लङ्कमुब्रूतां राक्षसाधिपम्॥ २०॥

जब श्रीराम ने शुक और सारण—दोनों राक्षसों को ऐसी आज्ञा दी तब उन्होंने 'जय हो'—ऐसा कहकर धर्मवत्सल राम का अभिनन्दन किया और लंका नगरी में पहुँचकर राक्षसराज रावण से बोले—

विभीषणगृहीतौ तु वधार्हौ राक्षसेश्वर।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा॥ २१॥

हे राक्षसेश्वर! हमें मार डालने के लिए विभीषण ने हमें बन्दी बना लिया था, परन्तु अमित तेजस्वी धर्मात्मा राम ने हमें देखते ही छोड़ दिया।

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः।
लोकपालोपमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः॥ २२॥
रामो दाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणश्च विभीषणः।
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः॥ २३॥

दशरथनन्दन श्रीराम, शोभा-सम्पन्न लक्ष्मण, विभीषण और महातेजस्वी एवं इन्द्र के समान पराक्रमी सुग्रीव—ये चारों श्रेष्ठजन एक ही स्थान पर एकत्र हैं। ये लोकपालों की भाँति शूरवीर हैं। शस्त्र-विद्या में निपुण हैं और बड़े पराक्रमी हैं।

एते शक्ताःपुरीं लङ्का सप्राकारां सतोरणाम्।
उत्पाट्य संक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः॥ २४॥

केवल ये चारों ही परकोटे और सिंहद्वारों सहित सारी लंका को उखाड़कर फेंक देने में समर्थ हैं। शेष वानर भले ही बैठे रहें।

यादृशं तस्य रामस्य रूपं प्रहरणानि च।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः॥ २५॥

फिर जिस प्रकार राम का रूप है और जैसे उनके हथियार हैं उन्हें देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि अकेला राम ही लंका को नष्ट कर देगा। शेष तीन—लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण की सहायता की भी उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी।
बभूव दुर्धर्षतरा सेन्द्रैरपि सुरासुरैः॥ २६॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव से रक्षित वह वानर सेना इन्द्र सहित देवताओं और दानवों से भी अजेय बनी हुई है।

प्रहृष्टरूपा ध्वजिनी वनौकसां
महात्मनां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम्।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ २७॥

हे राजन्! वानर-सेना में प्रसन्नता छाई हुई है वे सब तुरन्त युद्ध करने के लिए इच्छुक हैं। आप अपना क्रोध शान्त कीजिए और सीताजी को दशरथनन्दन श्रीराम को लौटाकर उनके साथ शत्रुता को समाप्त कीजिए।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

रावण द्वारा शुक और सारण की भर्त्सना—

तद्वचः पथ्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम्।
निशम्य रावणो राजा प्रत्यभाषत सारणम्॥ १ ॥

सारण के हितकर और दीनता-रहित वचनों को सुनकर राक्षसराज रावण बोला—

यदि मामभियुञ्जीरन् देवगन्धर्वदानवाः।
नैवं सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि॥ २ ॥

यदि देवता, गन्धर्व और दानव सब मिलकर भी मेरे ऊपर आक्रमण करें अथवा समस्त लोक भी मेरे विरुद्ध हो जायें तो भी मैं भयभीत होकर सीता को नहीं लौटाऊँगा।

त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिर्निर्जितो भृशम्।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीताया साधु मन्यसे॥ ३ ॥

हे सौम्य! तुम वानरों से पीड़ित होने के कारण संत्रस्त हो गये हो इसीलिए आज ही सीता को लौटा देना अच्छा समझते हो।

को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति।
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः॥ ४॥
आरुरोह ततः श्रीमान् प्रासादं हिमपाण्डुरम्।
ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्छितः॥ ५ ॥

परन्तु मुझे यह तो बताओ कि संसार में ऐसा कौन-सा शत्रु है जो मुझे युद्ध में जीत सके। इस प्रकार के कठोर वचन कहकर क्रोध-मूर्छित वह रावण उन दोनों गुप्तचरों के साथ (राम की सेना को देखने के लिए) अपने श्वेत प्रासाद के ऊपर चढ़ गया।

पश्यमानः समुद्रं च पर्वतांश्च वनानि च।
ददर्शापरिमेयं च वानराणां महद् बलम्॥ ६ ॥

उस राजप्रासाद से समुद्र, पर्वत और वनों को देखते हुए रावण ने असंख्य एवं शूरवीर वानरों की सेना को देखा।

आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम्।
एषां वानरमुख्यानां के शूराः के महाबलाः॥ ७॥

उस सेना का अवलोकन कर रावण ने सारण से पूछा—इन प्रमुख वानरों में कौन शूरवीर हैं, और कौन अत्यन्त बलशाली हैं?

के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः।
केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः॥ ८॥

कौन कौन से वानर अत्यन्त उत्साहित होकर सेना के आगे रहते हैं और वानर-सेना की चारों ओर से रक्षा कौन करते हैं? सुग्रीव किसकी सुनते हैं अर्थात् किसको अधिक मानते हैं? इस सेना में यूथपति कौन कौन हैं?

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः।
आचचक्षेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यांस्तत्र वनौकसः॥ ९॥

राक्षसराज रावण के इन वचनों को सुनकर मुख्य-मुख्य वानरों को जाननेवाले सारण ने मुख्य-मुख्य वानरों के नाम, धाम और पराक्रम का वर्णन किया।

सारणेन समाख्यातांस्तान् दृष्ट्वा हरियूथपान्।
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं स्वं विभीषणम्॥ १०॥

सारण के बतलाने पर रावण ने वानरयूथपतियों को देखकर राम के समीप बैठे हुए अपने भाई विभीषण को देखा।

लक्ष्मणं च महावीर्यं भुज रामस्य दक्षिणम्।
सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम्॥ ११॥
हनुमन्तं च विक्रान्तं जाम्बवन्तं चैवाङ्गदम्।
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं च प्लवगर्षभम्॥ १२॥

महापराक्रमी एवं श्रीराम की दक्षिण भुजारूपी लक्ष्मण को, समस्त वानर-यूथपतियों को, भीम पराक्रमी सुग्रीव को, विक्रमी हनुमान् को, दुर्जेय जाम्बवान् को, बालीपुत्र अङ्गद को और कपिश्रेष्ठ सुषेण, कुमुद, नील और नल को भी रावण ने देखा।

किञ्चिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ॥ १३॥

सारी सेना और सेना के प्रमुख वीरों को देखकर रावण मन ही मन कुछ उद्विग्न हुआ और जब शुक और सारण ने अपना कथन समाप्त किया तब रावण ने क्रोध में भरकर न दोनों की भर्त्सना की।

अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धः परुषं वचः॥ १४॥

शुक और सारण विनम्रतापूर्वक सिर झुकाये खड़े थे, परन्तु रावण क्रोध में भरकर उन्हें कठोर वचन कहने लगा—

हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसकौ।
यदि पूर्वोपकारैस्तु न क्रोधो मृदुतां व्रजेत्॥ १५॥

शत्रुपक्ष की प्रशंसा करनेवाले तुम दोनों को मैं अवश्य प्राण-दण्ड देता, परन्तु तुम्हारे पूर्वकृत उपकारों का स्मरण करके मेरा क्रोध शान्त हो जाता है।

अपध्वंसत गच्छध्वं सन्निकर्षादितो मम।
न हि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम्॥ १६॥

जाओ, मेरी आँखों के सामने से हट जाओ। खबरदार! फिर कभी मेरे सामने मत आना। मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता, क्योंकि मुझे तुम्हारे पूर्व उपकारों का स्मरण बना हुआ है।

एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तावुभौ शुकसारणौ।
रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ॥ १७॥

रावण के इस प्रकार धिक्कारने पर वे दोनों बहुत लज्जित हुए और 'रावण की जय हो'—ऐसा कह और प्रणाम कर वहाँ से चले गये।

अब्रवीत्तु दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम्।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारान्नीतिविशारदान्।
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान्॥ १८॥

शुक और सारण के चले जाने पर रावण ने पास बैठे हुए महोदर को आदेश दिया—तुम शीघ्र ही मेरे समक्ष नीतिविशारद गुप्तचरों को उपस्थित करो। महोदर ने 'जो आज्ञा' कहकर चरों को तुरन्त उपस्थित होने की आज्ञा दी।

ततश्चाराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात्।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषः॥ १९॥

रावण की आज्ञा पाते ही गुप्तचर तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और 'जय हो'—ऐसा आशीर्वाद दे हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षथ॥ २०॥

राक्षसराज रावण ने उन गुप्तचरों को आदेश दिया—तुम लोग यहाँ से राम के पास जाओ और पता लगाओ कि राम किस समय क्या करना चाहता है?

मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः॥ २१॥

राम के जो अन्तरङ्ग मन्त्री हैं और प्रीतिवश उसके साथ आये हैं वे कौन-कौन हैं उनके कार्यों की भी टोह लगाना। इनके अतिरिक्त अन्य बातों का भी चुपके-चुपके पता लगाकर चले आना।

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः स लक्ष्मणः॥ २२॥

वे गुप्तचर 'जो आज्ञा' कहकर प्रसन्न होते हुए राक्षसराज रावण की प्रदक्षिण कर वहाँ पहुँचे जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीराम ठहरे हुए थे।

ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ॥ २३॥

सुवेल पर्वत के निकट पहुँचकर और अपना वेश बदलकर उन्होंने सुग्रीव और विभीषण सहित राम-लक्ष्मण को देखा।

प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविक्लवाः।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः॥ २४॥
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः॥ २५॥

उस वानर-सेना को देख ये लोग भय से व्याकुल हो गये। इतने में वहाँ उपस्थित धर्मात्मा राक्षसेन्द्र विभीषण ने उन राक्षसों को पहचान लिया और उन्हें

डाँटा-डपटा, फिर विभीषण ने उनमें से शार्दूल को पकड़वा लिया, क्योंकि वह बहुत दुष्ट था।

मोचितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवङ्गमैः।
आनृशंस्येन रामस्य मोचिता राक्षसाः परे॥ २६॥

वानर तो उसे मारे डाल रहे थे, परन्तु राम ने उसे छुड़वा दिया। इसी प्रकार अन्य राक्षस चरों को भी श्रीराम की दया ने छुड़वा दिया।

वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः॥ २७॥

उन पराक्रमी और फुर्तीले वानरों से कुट-पिट कर वे राक्षस चर लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए अधमरे से हो किसी प्रकार लंका में पहुँचे।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

रावण का सीता को राम का नकली सिर और धनुष दिखाना—

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयत्॥ १॥

लंका में वापस आकर रावण के उन चरों ने, सुवेल पर्वत के समीप जा श्रीराम की अक्षुब्ध सेना का जो कुछ हाल देखा था, वह सब रावण को सुना दिया।

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्।
जातोद्वेगोऽभवत्किञ्चित्सचिवानिदमब्रवीत्॥ २॥

चरों द्वारा यह समाचार पाकर कि महाबली राम सुवेल पर्वत के निकट पहुँच गया है रावण कुछ घबराया और अपने मन्त्रियों से बोला—

मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इति राक्षसाः॥ ३॥

हे राक्षसो! मेरे समस्त नीतिकुशल मन्त्री तुरन्त मेरे सामने उपस्थित हों, क्योंकि अब मन्त्रणा करने का समय आ पहुँचा है।

तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन् द्रुतम्।
ततः स मन्त्रयामास सचिवैः राक्षसैः सह॥ ४॥

रावण का आदेश पाकर समस्त मन्त्री तुरन्त वहाँ आकर उपस्थित हो गये। तब रावण ने उन राक्षस-मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा की।

मन्त्रयित्वा स दुर्धर्षः क्षमं यत्समनन्तरम्।
विसर्जयित्वा सचिवान् प्रविवेश स्वमालयम्॥ ५॥

सम्प्रति क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध मे मन्त्रणा करने के पश्चात् रावण ने मन्त्रियों को विदा किया और स्वयं अपने अन्तःपुर में चला गया।

ततो राक्षसमाहूय विद्युज्जिह्वं महाबलम्।
मायाविदं महामायः प्राविशद्यत्र मैथिली॥ ६॥

अन्तःपुर में पहुँचकर रावण ने गूढ़ माया रचनेवाले मायावी विद्युज्जिह्व को बुलवाया और उसे अपने साथ ले सीता के पास जाने की इच्छा प्रकट की।

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः।
मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम्॥ ७॥

चलते समय रावण ने मायाविशारद विद्युज्जिह्वा राक्षस से कहा—हे निशाचर! हम दोनों आज माया की सहायता से जनकपुत्री सीता को धोखा देंगे।

शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर।
त्वं मां समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः॥ ८॥

अतः जिस समय में सीता के पास होऊँ उस समय तुम राम का बनावटी सिर और बाण सहित एक बड़ा धनुष लेकर मेरे पास आना।

एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः।
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम्॥ ९॥

रावण के ऐसा कहने पर राक्षस विद्युज्जिह्व ने कहा—'बहुत अच्छा'। इस पर रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और पारितोषिक रूप में उसे एक आभूषण प्रदान किया।

ततोऽशोकवनिकायां सीतादर्शनलालसः।
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः॥ १०॥

तदनन्तर महाबली राक्षसराज रावण सीता से मिलने की अभिलाषा से अशोकवाटिका में पहुँचा।

ततो दीनामदीनार्हां ददर्श धनदानुजः।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले॥ ११॥
भर्तारमेव ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम्।
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरितस्ततः॥ १२॥

वहाँ पहुँचकार कुबेर के लघुभ्राता रावण ने दुःख पाने के अयोग्य सीता को दुःखी देखा। सीता शोक के कारण सिर झुकाए हुए भूमि पर बैठी थी। वह निरन्तर अपने पति के ध्यान में मग्न थी। भयंकर और क्रूर राक्षसियाँ उसे चारों ओर से घेरे हुए थीं।

उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन्।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम्॥ १३॥

ऐसी सीता को देख और उसके समीप जाकर रावण प्रसन्नता-पूर्वक अपना नाम सुनाता हुआ ढिठाई के साथ सीता से बोला—

सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमुपाश्रित्य वल्गसे।
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः संरे हतः॥ १४॥

हे भद्रे! मैंने तुझे बहुत समझाया, परन्तु जिसके भरोसे तू मेरा निरादर करती रही, खर का घातक वह तेरा पति राम युद्ध में मारा गया।

छिन्नं ते सर्वतो मूलं दर्पस्ते विहतो मया।
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि॥ १५॥

अब तो मैंने तुम्हारे आश्रय की जड़ ही काट दी है और तेरा अभिमान चूर-चूर कर डाला है। हे सीते! अब तो तुम्हें मेरी पत्नी बनना ही पड़ेगा।

अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि।
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा॥ १६॥

हे अभागिनी! हे मृतपतिके! हे मूढे! हे पण्डित-मानिनि! अब तुम वृत्रासुर-वध के समान अपने पति के दारुण-वध का वृत्तान्त सुन।

समायातः समुद्रान्तं मां हन्तुं किल राघवः।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः॥ १७॥

सुग्रीव की एक विशाल सेना को साथ लेकर राम मुझे मारने के लिए समुद्र के इस पार आया था।

संनिविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम्।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे॥ १८॥

जिस समय सूर्य अस्त हो रहा था उस समय उसने विशाल सेना से समुद्र के उत्तर तट को घेर कर वहाँ पड़ाव डाला।

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम्।
सुखसुप्तं समासाद्य चारितं प्रथमं चरैः॥ १९॥
तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः॥ २०॥

मार्ग चलने की थकावट से आधी रात के समय जब राम की सेना बेखबर पड़ी सो रही थी तब पहले से ही नियुक्त मेरे गुप्तचरों ने वहाँ जाकर उनकी सेना का पता लगाया, फिर रात्रि में मेरी बड़ी भारी सेना लेकर प्रहस्त ने उन पर आक्रमण किया और रामचन्द्र की सेना तथा राम-लक्ष्मण को रात्रि में ही मार डाला।

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना॥ २१॥

सर्वप्रथम शत्रुसैन्य को कुचलनेवाले प्रहस्त ने बड़ी फुर्ती के साथ सोते हुए राम का सिर एक बड़ी तलवार से काट डाला।

विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया।
दिशः प्रव्राजितः सर्वैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह॥ २२॥

तत्पश्चात् झपटकर विभीषण को अच्छे प्रकार कसकर बाँध लिया गया। तब लक्ष्मण बचे हुए सब वानरों को साथ लेकर भाग गया।

सुग्रीवो ग्रीवया शेते भग्नया प्लवगाधिपः।
निरस्तहनुकः शेते हनुमान् राक्षसैर्हतः॥ २३॥

वानरराज सुग्रीव गर्दन टूट जाने से रणभूमि में मरा पड़ा है। हनूमान् की ठोड़ी तोड़ दी गई इस प्रकार वह भी राक्षसों द्वारा मारा जाकर रणक्षेत्र में सो

रहा है।

जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा॥ २४॥

जाम्बवान् कूदकर भाग जाना चाहता था, परन्तु राक्षसों ने पट्टिशों की मार से उसकी जाँघें तोड़ डालीं इस प्रकार वह भी कटे हुए वृक्ष की भाँति वहाँ मरा पड़ा है।

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ निहतौ वानरर्षभौ।
निश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परिप्लुतौ॥ २५॥

वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए, रोते हुए और रक्त से लथपथ होकर मारे गये।

अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः।
पतितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतिताङ्गदः॥ २६॥

अङ्गद भी राक्षसों द्वारा चलाये गये अनेक बाणों से क्षत-विक्षत होकर मारा गया। उसका बाजूबन्द सहित हाथ भूमि पर पड़ा है और उसके सब अङ्गों से रुधिर बह रहा है।

हरयो मथिता नागै रथजातैस्तथाऽपरे।
शायिता मृदिताश्चाश्वैर्वायुवेगैरिवाम्बुदाः॥ २७॥

अनेक वानर हाथियों के पैरों के नीचे कुचले गये, बहुत-से रथों की चपेट में आकर मारे गये, बहुत से सोते हुए कुचले गये। जैसे वायु के वेग से बादल अदृश्य हो जाते हैं वैसे ही राक्षसी-सेना के आक्रमण से सब वानर अदृश्य हो गये हैं।

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः॥ २८॥

इस प्रकार तेरा पति सेना-सहित मेरी सेना द्वारा मारा गया। उसका रक्त से भीगा और धूल से सना यह सिर तुझे दिखलाने के लिए लाया गया है।

ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसाधिपः।
सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत्॥ २९॥

सीता से यह कहकर परम दुर्धर्ष राक्षसराज रावण ने सीता से सुनाते हुए एक राक्षसी से कहा—

राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं त्वमानय।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम्॥ ३०॥

तुम जाकर क्रूरकर्मा विद्युज्जिह्व को बुला लाओ जो स्वयं युद्धभूमि से राम के सिर को लेकर आया है।

विद्युज्जिह्वस्ततो गृह्य शिरस्तत्सशरासनम्।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः॥ ३१॥

राक्षसी द्वारा बुलाये जाने पर विद्युज्जिह्व उस सिर तथा धनुष को लिये हुए रावण के सामने आ खड़ा हुआ और सिर झुकाकर उसे प्रणाम किया।

तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम्।
विद्युज्जिह्वं महाज्जिह्वं समीपपरिवर्तिनम्॥ ३२॥

तब लम्बी जीभवाले विद्युज्जिह्व को जो पास ही खड़ा हुआ हाव-भाव बदल रहा था, रावण ने कहा—

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु॥ ३३॥

दशरथनन्दन राम के सिर को शीघ्र ही सीता के सामने प्रस्तुत कर दो जिससे यह बेचारी पति की अन्तिम अवस्था को अच्छे प्रकार देख ले।

एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम्।
उप निक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्त्रधीयत॥ ३४॥

रावण के ऐसा आदेश देने पर उसने प्रियदर्शन राम का कटा हुआ सिर सीता क सामने रख दिया और स्वयं वहाँ से तुरन्त चल दिया।

रावणश्चापि चिक्षेप भास्करं कार्मुकं महत्।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं सीतामिदमुवाच च॥ ३५॥

उधर रावण ने भी त्रिलोकी में विख्यात राम के देदीप्यमान महाधनुष को सीता के सामने रखकर कहा—

इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमायुतम्।
इह प्रहस्तेनानीतं हत्वा तं निशि मानुषम्॥ ३६॥

यह तेरे राम का डोरी-सहित धनुष है। रात्रि के समय उस मनुष्य को मारकर प्रहस्त इसे लाया था।

स विद्युज्जिह्वेन सहैव तच्छिरो
धनुश्च भूमौ विनिकीर्य रावणः।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीं
ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा॥ ३७॥

रावण विद्युज्जिह्व द्वारा लाये गये राम के कटे हुए मस्तक और धनुष को सीता के सामने पृथिवी पर रख, यशस्विनी, विदेह पुत्री सीता से बोला- -अब तू मेरी वशवर्तिनी हो जा—मेरी पत्नी बन जा।

◀ एकविंशः सर्गः ▶ (२१)

सीता का विलाप और सरमा राक्षसी का उसे सान्त्वना प्रदान करना—

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा विललापायतेक्षणा।
हा हताऽस्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत॥ १॥

विशालनेत्रा सीता उस कटे सिर को देखकर विलाप करते हुए कहने लगी—हे महाबाहो! हे वीरव्रतधारी! हाय मैं मारी गई।

दुःखाद् दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः॥ २॥

दुःख के पश्चात् दुःख प्राप्त कर मैं तो पहले ही शोकसागर में डूबी हुई थी। आप मेरा उद्धार करने को उद्यत हुए सो आप भी मारे गये।

साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम्॥ ३॥

हे रावण! राम के पश्चात् मुझे भी मारकर राम के ऊपर डाल दे और इस प्रकार पति को पत्नी से मिलाकर—यह उत्तम काम और कर डाल।

इति सा दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा।
भर्तुः शिरो धनुस्तत्र समीक्ष्य च पुनः पुनः॥ ४॥
एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसाः।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः॥ ५॥

दुःख से सन्तप्त विशालनेत्रा सीता पति के कटे हुए सिर और धनुष को देखकर इस प्रकार विलाप कर ही रही थी कि इतने में रावण की सेना का एक राक्षस वहाँ आया और रावण के समीप हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम्॥ ६॥
अमात्यैः सहितैः सर्वैः प्रहस्तः समुपस्थितः।
तेन दर्शनकामेन अहं प्रस्थापितः प्रभो॥ ७॥

'आर्यपुत्र! आपकी जय हो'—ऐसा कहकर उसने रावण का अभिवादन किया और रावण को प्रसन्न कर उसने निवेदन किया—हे प्रभो! सेनापति प्रहस्त सब मन्त्रियों सहित उपस्थित हैं। वे आपके दर्शन करना चाहते हैं, इसीलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।

नूनमस्ति महाराज राजभावात्क्षमान्वितम्।
किञ्चिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु॥ ८॥

महाराज कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य आ पड़ा है जिसमें आपकी आज्ञा अपेक्षित हैं, अतः आप उन्हें दर्शन दीजिए।

एतत् श्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम्।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ॥ ९॥

उस राक्षस की इन बातों को सुनकर रावण अशोकवाटिका को छोड़कर मन्त्रियों से मिलने के लिए चल दिया।

स तु सर्वं समर्थ्यैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः।
सभां प्रविश्य विदधो विदित्वा रामविक्रमम्॥ १०॥

मन्त्रियों के परामर्श से सब कार्यों का निश्चय कर रावण सभा में गया और वहाँ श्रीराम के बल विक्रम के सम्बन्ध में सोच-विचार कर, उसने आवश्यक प्रबन्ध करवाया।

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मकमुत्तमम्।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम्॥ ११॥

उधर रावण के अशोकवाटिका से प्रस्थान करते ही राम का कटा हुआ वह सिर और धनुष भी गायब[१] हो गया।

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रण दुःखिताम्।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी॥ १२॥

अत्यन्त दुःखी सीता को राक्षसराज द्वारा धोखे में डाली हुई देखकर मृदुभाषिणी सरमा[२] ने सीता को आश्वासन प्रदान किया।

समाश्वसिहि वैदेही माभूत्ते मनसो व्यथा।
न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः॥ १३॥

हे सीते! धैर्य धारण कर। तू अपने मन को दुःखी मत कर। सदा सावधान रहनेवाले राम को कोई सोते हुए नहीं मार सकता।

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः।
न हतो राघवः श्रीमान् सीते शत्रुनिबर्हणः॥ १४॥

हे सीते! शत्रु-सैन्य को मार भगानेवाले तथा अचिन्त्य बल-पराक्रम से युक्त शत्रुहन्ता श्रीराम मारे नहीं गये।

न त्वेव वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः॥ १५॥

जिस प्रकार देवश्रेष्ठ इन्द्र द्वारा रक्षित देवताओं को कोई मार नहीं सकता उसी प्रकार श्रीराम द्वारा रक्षित और वृक्षरूपी आयुधों से लड़नेवाले वानरों को भी कोई मार नहीं सकता।

अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि॥ १६॥

भ्रष्ट-बुद्धि तथा भ्रष्ट-कर्मवाले और प्राणिमात्र के विरोधी, मायावी क्रूर रावण ने तुझे धोखे में डालने के लिए यह छल-प्रपञ्च रचा था।

शोकस्ते विगतः सर्वः कल्याणं त्वामुपस्थितम्।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं प्रीतिकरं शृणु॥ १७॥

हे सीते! अब तो तेरा सारा शोक नष्ट हो गया और हर्ष का समय उपस्थित हो गया है। अब तुझे निश्चय ही विजय लक्ष्मी प्राप्त होगी। अब तू एक अत्यन्त प्रिय बात सुन।

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः।
सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः॥ १८॥

मैंने स्वयं देखा है कि परिपूर्ण मनोरथ श्रीराम लक्ष्मण-सहित समुद्र-तट पर ठहरे हुए हैं और उनकी सेना उन्हें घेरे हुए उनकी रक्षा कर रही है।

रावणं समरे हत्वा न चिरादेव मैथिलि।
त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम्॥ १९॥

हे मैथिली! युद्ध में रावण को मारकर श्रीराम शीघ्र ही तुझे प्राप्त कर सुखी होंगे।

➤ द्वाविंशः सर्गः ➤ (२२)

माल्यवान् का रावण को समझाना और रावण का अपने बल-पराक्रम की डींग हाँकना—

अथ तान् सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः।
सभां सन्नादयन् सर्वामित्युवाच महाबलः॥ १॥

(अब आदि-कवि अशोकवाटिका से जाने पश्चात् रावण के सभाभवन का वर्णन करते हैं) महाबलवान् रावण समस्त मन्त्रियों को सम्बोधित कर सभाभवन को गुँजाता हुआ कहने लगा—

१. पाठक चकित न हों। यह सिर और धनुष—जैसा कि पूर्व सर्ग के वर्णन से स्पष्ट है, ऐन्द्रजालिककौतुक—बाजीगरी का तमाशा ही था। आज भी पी० सी० सरकार जैसे व्यक्ति अपने कार्यों से लोगों को चमत्कृत कर देते हैं।

२. गोविन्दराज टीकाकार के अनुसार सरमा विभीषण की पत्नी थी।

तरणं सागरस्यास्य विक्रमं बलसञ्चयम्।
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तत् मया श्रुतम्॥ २॥
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान्।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम्॥ ३॥

आप लोगों ने राम के समुद्र के पार उतरने, उसके पराक्रम और सैन्य-संग्रह के सम्बन्ध में जो कुछ कहा वह सब मैंने सुना, परन्तु मैं यह भी तो जानता हूँ कि आप भी युद्ध में सच्चा पराक्रम दिखानेवाले हैं। मुझे आश्चर्य है कि इस समय आप लोग राम को महापराक्रमी समझ एक-दूसरे का मुँह ताक रहे हैं।

ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः।
रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत्॥ ४॥

रावण की बात सुनकर उसका नाना महाबुद्धिमान् माल्यवान् राक्षस बोला—

विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन्नयानुगः।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे॥ ५॥

हे राजन्! जो राजा चौदह विद्याओं में निष्णात होकर नीतिशास्त्रानुसार कार्य करता है वह बहुत समय तक प्रजा पर शासन करता हुआ ऐश्वर्य भोगता है और शत्रुओं को अपने वश में रखता है।

सन्दधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह।
स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते॥ ६॥

जो राजा समय के अनुसार शत्रु के साथ सन्धि और विग्रह करके अपने को शक्तिशाली बनाता है वही महान् ऐश्वर्य को भोगता है।

हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा सन्धिः समेन च।
न शत्रुमवन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम्॥ ७॥

राजा को उचित है कि जब वह अपने को शत्रु से दुर्बल या समान बल समझे तब शत्रु से सन्धि कर ले। शत्रु कैसा भी हो उसे तुच्छ कभी न समझना चाहिए। हाँ, यदि स्वयं शत्रु से बलवान् हो तो युद्ध करना चाहिए।

तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण।
यदर्थमभियुक्ताः स्म सीता तस्मै प्रदीयताम्॥ ८॥

हे रावण! उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार इस समय मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है कि तुम राम के साथ सन्धि कर लो, जिस सीता के लए राम ने लङ्का पर आक्रमण किया है उस सीता को तुम उन्हें लौटा दो।

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः॥ ९॥

दुष्टात्मा रावण को माल्यवान् की ये हितभरी बातें भी अच्छी नहीं लगीं, क्योंकि उसके सिर पर तो मौत सवार थी।

स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः।
अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत्॥ १०॥

वह क्रोध में भरकर. भौंहें टेढ़ी कर तथा आँखें तरेर कर माल्यवान् से बोला—

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रं गतं मम॥ ११॥

शत्रु का पक्ष लेकर, मेरी हितकामना की बुद्धि से तुमने जो कठोर और अहितकारी बातें कही हैं उनका मेरे कानों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम्।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनालयम्॥ १२॥

आप एक साधारण दीन-हीन मनुष्य को जिसका आश्रय एकमात्र कुछ वानर हैं, जो पिता द्वारा परित्यक्त है और वनवासी है—किसलिए शक्तिशाली समझ रहे हो?

रक्षसामीश्वरं मां च देवतानां भयङ्करम्।
हीनं मां मन्यसे केन ह्यहीनं सर्व विक्रमैः॥ १३॥

राक्षसों के राजा, देवताओं को भी भय प्रदाता, सब प्रकार से पराक्रमी मुझे—आप किसलिए हीन समझते हैं?

आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम्।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम्॥ १४॥

हे माल्यवान्! कमलहीन लक्ष्मी की भाँति सीता का जनस्थान से अपहरण कर अब मैं उसे राम के

भय से कैसे लौटा सकता हूँ ?

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः॥ १५॥

मैं क्या करूँ—यह मेरा स्वाभाविक दोष है—'चाहे मेरे दो टुकड़े हो जायें, परन्तु मैं किसी के सामने झुक नहीं सकता।' स्वभाव का बदलना बड़ा कठिन है।

यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम्॥ १६॥

यदि राम ने किसी प्रकार समुद्र पर पुल बाँध भी दिया तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है जिससे तुम डर रहो हो ?

स तु तीर्त्वार्णवं रामः सह वानरसेनया।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन् प्रतियास्यति॥ १७॥

मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि वानर-सेना सहित समुद्र पार करके राम जीता-जागता यहाँ से वापस नहीं लौट सकेगा।

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम्।
व्रीडतो माल्यवान्वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत॥ ८॥

रावण का क्रोध में भरकर ऐसी बातें कहते हुए देखकर माल्यवान् ने जाना कि यह रुष्ट हो गया है, अतः माल्यवान् लज्जित हुआ और फिर उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

चिन्तयेत् मनसा तस्य दुष्कर्मपरिपाकजम्।
पापं नाशयति ह्येनं स्वस्य राष्ट्रस्य राक्षसैः॥ १९॥

उसने अपने मन-ही मन में सोचा अब रावण के अपने दुष्कर्मों का परिपाक-समय निकट आ गया है। पाप इसका, इसके राज्य का और समस्त राक्षसों का नाश करनेवाला है।

जयाशिषा च राजानं वर्धयित्वा यथोचितम्।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम्॥ २०॥

'महाराज की जय हो'—ऐसा कह, रावण को आशीर्वाद प्रदानकर तथा उसे सन्तुष्ट कर उससे आज्ञा लेकर माल्यवान् अपने घर को चला गया।

विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो
विधानमाज्ञाप्य पुरष्य पुष्कलम्।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो
विवेश चान्तः पुरमृद्धिमत् महत्॥ २१॥

माल्यवान् के जाने के पश्चात् रावण ने लङ्का की सुरक्षा के लिए आदेश देकर, मन्त्रियों को भी विदा कर और उनके जयसूचक आशीर्वाद से सम्मानित हो, धन-जन-परिपूर्ण अपने विशाल अन्तःपुर में प्रवेश किया।

≺ त्रयोविंशः सर्गः ≻ (२३)

राम का सुवेल पर्वत पर चढ़कर लङ्का का निरीक्षण करना—

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ १॥
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम्।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा॥ २॥

(समुद्र पार कर राम की सेना सुवेल पर्वत के निकट ठहर गई थी। अब आदि-कवि पुनः राम की गतिविधियों को वर्णन आरम्भ करते हैं।)

सुवेल पर्वत की रमणीयता को देखकर लक्ष्मण सहित राम सुवेल पर्वत पर चढ़ने की इच्छा कर कपिराज सुग्रीव और धर्मज्ञ, अनुरक्त, उचित परामर्श देनेवाले एवं कार्य की रीति जाननेवाले राक्षसराज विभीषण से मधुर शब्दों में कहने लगे—

सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम्।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम्॥ ३॥

आओ, हम सब विविध प्रकार की धातुओं से परिपूर्ण इस रमणीय पर्वतराज सुवेल पर चढ़ चलें

और आज की रात वहीं व्यतीत करें।

लङ्का चालोकयिष्योमो निलयं तस्य रक्षसः।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना॥ ४॥

इस पर्वत पर चढ़कर हम लोग उस दुष्टात्मा रावण की निवास-स्थली लङ्का को भी देखेंगे, जो अपने प्राण गँवाने के लिए मेरी पत्नी को हर लाया है।

तस्मिन् मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम्॥ ५॥

उस राक्षसधम का नाम लेते ही मुझे क्रोध आ जाता है, क्योंकि इस नीच के अपराध के कारण मुझे अनेक राक्षसों का वध देखना पड़ेगा।

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशंगतः।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति॥ ६॥

मृत्यु के वशीभूत होकर पाप तो एक व्यक्ति करता है, परन्तु उस एक नीच के अपराध से सारे कुल का नाश हो जाता है।

एवं संमन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत्॥ ७॥

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए और रावण पर क्रुद्ध होते हुए श्रीराम रंग-बिरंगी चोटियोंवाले सुवेल पर्वत पर वास करने के लिए चढ़ गये।

पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः॥ ८॥

पराक्रमशाली लक्ष्मण भी बाण-सहित बड़े धनुष को हाथ में लिये हुए सावधानतापूर्वक श्रीराम के पीछे-पीछे चले।

तमन्वारोहत्सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः।
हनुमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च॥ ९॥
एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः।
अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः॥ १०॥

उनके पीछे सुग्रीव और मन्त्रियों-सहित विभीषण चले जाते थे, फिर हनुमान्, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद और बहुत सारे शीघ्रगामी वानर सैकड़ों की संख्या में उस पर्वत पर चढ़ गये जहाँ श्रीराम थे।

ते त्वदीर्घेण कालेन गिरमारुह्य सर्वतः।
ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम्॥ ११॥

थोड़ी ही देर में उस पर्वत पर चढ़कर उन वानरों ने लंका को देखा जो ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाश को छू रही है।

◀ चतुर्विंशः सर्गः ▶ (२४)

सुग्रीव एवं रावण की मुठभेड़—

स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन्।
त्रिकूटशिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा।
ददर्श लङ्कां सुन्यस्तां रम्यकाननशोभिताम्॥ १॥

थोड़ी देर सुवेल पर्वत पर विश्राम कर जब इन लोगों ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तब इन्होंने रमणीय त्रिकूट पर्वत के शिखर पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, सुन्दर रीति से बसाई गई और रमणीक वनों से सुशोभित लंका को देखा।

तस्यां गोमुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम्।
श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम्॥ २॥

उस लंका के शिखर पर दुर्धर्ष रावण बैठा हुआ था। उसके ऊपर विजय सूचक छत्र तना हुआ था और चँवर डुलाये जा रहे थे।

दर्शनाद्राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः।
क्रोधवेगेन संयुक्तः पुप्लुवे गोपुरस्थले॥ ३॥

रावण को देखते ही सुग्रीव क्रुद्ध होकर सहसा उठ खड़े हुए और उस फाटक पर जा पहुँचे जहाँ रावण बैठा था।

स्थित्वा मुहूर्तं सम्प्रक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना।
तृणीकृत्य च तद्रक्षः सोऽब्रवीत्परुषं वचः॥ ४॥

वहाँ पहुँच सुग्रीव कुछ देर तक निर्भय होकर

रावण को टकटकी बाँधकर देखते रहे, फिर रावण को तिनके के समान तुच्छ समझकर उससे कठोर वचन कहने लगे—

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा॥ ५॥

हे राक्षस! मैं त्रिलोकीनाथ श्रीराम का मित्र और सेवक हूँ। राजेन्द्र श्रीराम के प्रताप से तू आज मुझसे बचकर नहीं जा सकेगा।

इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयित्वाऽपतद् भुवि॥ ६॥

ऐसा कहकर सुग्रीव छलाँग लगाकर रावण के ऊपर जा पहुँचे और रावण के सिर से उसका मुकुट उतारकर पृथिवी पर फेंक दिया।

समीक्ष्य तूर्णमायान्तमाबभाषे निशाचरः।
सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि॥ ७॥

सुग्रीव को शीघ्रतापूर्वक अपने ऊपर आक्रमण करते देख रावण ने कहा=सुग्रीव! जब तक तू मेरी दृष्टि से ओझल था तभी तक तू सुग्रीव था अब तुम हीनग्रीव=गर्दन-रहित हो जायेगा।

इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत्तले।
कन्दुवत्स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः॥ ८॥

ऐसा कहकर रावण उठा और सुग्रीव को दोनों हाथों से पकड़कर भूमि पर दे मारा। सुग्रीव ने भी गेंद की भाँति उछलकर और रावण का पकड़कर भूमि पर पटक दिया।

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ
परस्परं शोणितदिग्धदेहौ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ
परस्परं शाल्मलिकिंशुकौ यथा॥ ९॥

लड़ते-लड़ते उन दोनों के शरीर पसीने और रुधिर से तरबतर हो गये। कभी वे एक-दूसरे से लिपट जाते थे और कभी दोनों कुछ काल के लिए चेष्टा रहित हो जाते थे। रक्त से स्नात वे दोनों सेमल और ढाक के वृक्षों जैसे दिखाई देते थे।

मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारै-
ररत्निघातैश्च कराग्रघातैः।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं
महाबलौ वानरराक्षसेन्द्रौ॥ १०॥

महाबली वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज रावण एक दूसरे को घूँसों से, थपेड़ों से और कोहनियों की मार से मार-मारकर बेदम करते हुए युद्ध कर रहे थे।

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः।
आरब्धमुपसम्पेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः॥ ११॥

लड़ते-लड़ते रावण ने कुछ मायाजाल रचना चाहा जिसे वानरराज सुग्रीव तुरन्त ताड़ गये।

उत्पपात तदाकाशं जितकाशी जितक्लमः।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः॥ १२॥

तब पूरा दम रखनेवाले और थकावट-रहित सुग्रीव ने ऊपर की ओर छलाँग लगाई। रावण भौचक्का-सा देखता-का-देखता रह गया।

इति स सवितृसूनुस्तत्र तत्कर्म कृत्वा
पवनगतिरनीकं प्राविशत्सम्प्रहृष्टः।
रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षं
तरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानो हरीन्द्रः॥ १३॥

सूर्यपुत्र सुग्रीव लंका में यह अद्भुत कर्म कर, हर्षित होते हुए पवन-गति से अपनी सेना में प्रविष्ट हुए। वहाँ वानरयूथपतियों से सम्मानित हो उन्होंने राजकुमार राम को इस मल्लयुद्ध का वृत्तान्त सुनाकर हर्षित किया।

➤ पञ्चविंशः सर्गः ➤ (२५)

अङ्गद का दौत्यकर्म—

अथ तस्मिन्निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः।
सुग्रीवं सम्परिष्वज्य तदा वचनमब्रवीत्॥ १॥

लक्ष्मण के ज्येष्ठभ्राता राम ने सुग्रीव के शरीर पर युद्ध के चिह्न देख उन्हें अपने गले से लगाकर कहा—

असम्मन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम्।
एवं साहसकर्माणि न कुर्वन्ति जनेश्वराः॥ २॥

हे मित्र! तुमने मुझसे परामर्श किये बिना ही जो अद्भुत साहस एवं पराक्रम का कार्य किया है राजाओं को ऐसा साहसिक कार्य करना उचित नहीं।

संशये स्थाप्य मां चेदं बलं च सविभीषणम्।
कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय॥ ३॥

हे साहसप्रिय! हे वीर! मुझे, विभीषण को तथा समस्त वानर-सेना को चिन्ता में डाल तुमने यह साहसिक=जोखिम का कार्य किया है।

इदानीं मा कृथा वीर एवं विधमचिन्तितम्।
त्वयि किञ्चित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम॥ ४॥

हे वीर! इस प्रकार बिना सोचे-समझे फिर कोई कार्य मत कर डालना। यदि तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो जाता तो मैं सीता को लेकर क्या करता?

भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः॥ ५॥

हे विशालबाहो! यदि तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति आ जाती तो मैं भरत से, लक्ष्मण से तथा शत्रुहन्ता लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न से और अपने शरीर से ही क्या करता अर्थात् ये सब मेरे लिए व्यर्थ हो जाते।

त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः
हत्वाऽहं रावणं युद्धेऽभिषिच्य च विभीषणम्॥ ६॥
भरते राज्यमावेश्य त्यक्ष्ये देहं महाबल।
तमेवंवादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत॥ ७॥

हे महाबली! जब तक तुम नहीं लौटे थे तब तक मैंने अपने मन में यही निश्चय कर रखा था कि युद्ध में रावण को मारकर और विभीषण को राज्यसिंहासन पर बैठाकर तत्पश्चात् अयोध्या में जा और वहाँ भरत को राजगद्दी पर बैठा अपना शरीर त्याग दूँगा। ऐसा कहते हुए राम से सुग्रीव ने कहा--

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम्।
मर्षयामि कथं वीर जानन्पौरुषमात्मनः॥ ८॥

हे वीर! आपकी स्त्री का हरण करनेवाले रावण को देखकर और अपनी शक्ति को जानकर मैं अपने आपको कैसे रोक सकता था?

इत्येवं वादिनं वीरमभिनन्द्य स राघवः।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रात् महाबलः॥ ९॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर उनकी प्रशंसा करते हुए श्रीराम उस सुवेल पर्वत के शिखर से तुरन्त नीचे उतर आये।

अवतीर्य च धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः॥ १०॥

धर्मात्मा श्रीराम ने उस पर्वत से नीचे उतरकर शत्रु से कभी परास्त न होनेवाली अपनी सेना का निरीक्षण किया।

सन्नह्य तु ससुग्रीवः कपिराजबलं महत्।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत्॥ ११॥

तत्पश्चात् सुग्रीव तथा राम ने कपिश्रेष्ठों की उस सेना को उत्साहित कर और युद्ध का उचित समय जान युद्ध की आज्ञा प्रदान की।

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता **वृतः।**
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम्॥ १२॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीराम विजय मुहूर्त में विशाल वानर-सेना को साथ ले और आप सबसे आगे रहकर हाथ में धनुष लिये हुए लंकापुरी की ओर प्रस्थानित हुए।

तं विभीषणसुग्रीवौ हनुमाञ्जाम्बवान्नलः।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा॥ १३॥

उनके पीछे-पीछे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, नल, ऋक्षराज, नील और लक्ष्मण चले।

ततः पश्चात् सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम्।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम्॥ १४॥

उनके पीछे ऋक्ष और वानरों की विशाल सेना दूर तक भूमि को घेरकर राम के पीछे-पीछे चल रही थी।

तौ तु दीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदुररिन्दमौ॥ १५॥

शत्रु-नाशक राम-लक्ष्मण दोनों भाई चलते चलते बहुत देर बाद रावण की नगरी लंका के समीप पहुँचे।

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः।
यथानिवेशं सम्पीड्य न्यविशन्त वनौकसः॥ १६॥

श्रीराम का आदेश पाकर, देवताओं के लिए भी दुष्प्रवेश्य उस लंकापुरी को चारों ओर से घेरकर, वानर सैनिक अपने-अपने अधिकृत स्थानों पर डट गये।

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम्।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च॥ १७॥

लंका के उत्तर द्वार को, जो पर्वत-शिखर के समान ऊँचा था, लक्ष्मण-सहित धनुर्धारी राम घेर कर खड़े हो गये और साथ ही वानरी सेना की रक्षा भी करने लगे।

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः।
अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान्॥ १८॥

वानर-सेनापति नील महापराक्रमी मैन्द और द्विविद को साथ ले लंका के पूर्व-द्वार मर जा खड़ा हुआ।

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च॥ १९॥

अङ्गद ने ऋषभ, गवाक्ष, गज और गवय नामक राक्षसों को साथ ले दक्षिण-द्वार को जा घेरा।

हनुमान् पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान् कपिः।
प्रमाथिप्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः॥ २०॥

महाबलवान् वानर-श्रेष्ठ हनुमान् प्रमाथि, प्रघस आदि प्रमुख वीरों के साथ पश्चिम-द्वार पर जा डटा।

मध्ये च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णश्वसनोपमैः॥ २१॥

मध्य में वानरराज सुग्रीव स्वयं खड़े हुए। उनके साथ गरुड़ और वायु के समान पराक्रमी वानर थे।

राघवः सन्निवेश्यैवं सैन्यं स्वं रक्षसां वधे।
सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धमङ्गदं चेदमब्रवीत्॥ २२॥

राक्षसों का वध करने के लिए अपनी सेना को इस प्रकार स्थापित कर श्रीराम ने अपने मन्त्रियों के साथ दूत-प्रेषण के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर अङ्गद को बुलाकर उससे कहा—

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः॥ २३॥

हे सौम्य! तुम लङ्का के परकोटे को लाँघकर बिना खटके रावण के समीप जाओ और निर्भय होकर उसे मेरी ओर से यह संदेश दो—

बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम।
मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तद्विदर्शय॥ २४॥

अरे राक्षसाधम! जिस बलबूते पर तूने मुझे धोखा देकर और आश्रम से दूर हटाकर सीता का अपहरण किया था, अब तू उस बल को दिखा।

अराक्षसमिमं लोकं कर्ताऽस्मि निशितैः शरैः।
न चेच्छरणमभ्येषि मामुपादाय मैथिलीम्॥ २५॥

यदि तू मेरी शरण में आकर मैथिली को मुझे नहीं सौंपेगा तो स्मरण रख मैं इस लोक को अपने पैने बाणों से राक्षसों से शून्य कर दूँगा।

युध्यस्व मा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस।
मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः पूतो भविष्यसि॥ २६॥

हे राक्षस! अब तू अपने शौर्य और धैर्य का सहारा लेकर मेरे साथ युद्ध कर, मेरे बाणों से मारा जाकर ही तू अपने पापकर्मों से छूटकर पवित्र होगा।

यद्याविशसि लोकांस्त्रीन् पक्षिभूतो मनोजवः।
मम चक्षुष्पथं प्राप्य न जीवन् प्रतियास्यसि॥ २७॥

यदि तू पक्षी का रूप धारण करके तीनों लोकों में भी छिपता फिरेगा तो भी तू मेरी दृष्टि से ओझल होकर प्राण नहीं बचा सकेगा।

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदैहिकम्।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम्॥ २८॥

मैं तुझसे हितकारी बात कहता हूँ कि तू अपनी मरणोत्तर क्रियाओं (स्नान आदि) को स्वयं ही कर ले (क्योंकि पीछे तुम्हें चुल्लू भर पानी देनेवाला भी कोई नहीं बचेगा) और लङ्का को जी भरकर अच्छी प्रकार देख ले, क्योंकि अब तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है।

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट्॥ २९॥

पुण्यकर्मा श्रीराम ने जब तारा-तनय अङ्गद को रावण के लिए यह संदेश दिया तब वह मूर्तिमान् अग्नि की भाँति आकाश-मार्ग से प्रस्थित हुआ।

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम्।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह॥ ३०॥

कान्तिमान अङ्गद थोड़ी ही देर में रावण के भवन में जा पहुँचा। वहाँ उसने रावण को सावधानचित्त हो मन्त्रियों के सहित बैठे हुए देखा।

ततस्तस्याविदूरे स निपत्य हरिपुङ्गवः।
तद्रामवचनं सर्वं श्रावयामास सामात्यम्॥ ३१॥

वानरश्रेष्ठ अङ्गद रावण के समीप ही नीचे उतर पड़ा और समस्त मन्त्रियों-सहित रावण को उसने राम का सम्पूर्ण सन्देश कह सुनाया।

दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
बालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः॥ ३२॥

अङ्गद ने कहा—मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीराम का दूत हूँ। मैं बाली का पुत्र हूँ और मेरा नाम अङ्गद है। शायद तुमने मेरा नाम सुना हो।

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव॥ ३३॥

कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले श्रीराम ने तुमसे कहा है—अरे नृशंस! अब तू अपने महल से बाहर निकलकर युद्ध कर और अपना पौरुष प्रकट कर।

हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम्।
निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि॥ ३४॥

मैं मन्त्रियों, पुत्रों और बन्धु बान्धवों सहित तुझे मारने के लिए आया हूँ, क्योंकि तेरे मारे जाने पर तीनों लोक भय-रहित हो जाएँगे।

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि।
न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यति॥ ३५॥

यदि तुम मेरी शरण में आकर सीता को मुझे नहीं लौटाओगे तो तुम्हारे मारे जाने पर लंका का सारा ऐश्वर्य विभीषण को मिलेगा।

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः॥ ३६॥

वानरश्रेष्ठ अङ्गद ऐसे कठोर वचन कह ही रहा था कि राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

ततः स रोषताम्राक्षः शशास सचिवांस्तदा।
गृह्यतामेष दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत्॥ ३७॥

क्रोध से अपने ताँबे जैसी लाल आँखें करके उसने अपने मन्त्रियों को बार-बार आदेश दिया—इस दुर्बुद्धि वानर को पकड़ लो और मार डालो।

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निसमतेजसः।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः॥ ३८॥

तब दहकते हुए अङ्गारों के समान तेजस्वी रावण के वचनों को सुनकर चार भयंकर राक्षसों ने उठकर अङ्गद को पकड़ लिया।

ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान्।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा॥ ३९॥

महापराक्रमी अङ्गद ने राक्षसों को अपना बल दिखलाने के लिए उन्हें अपने को पकड़ लेने दिया।

स तान् बाहुद्वये सक्तानादाय पतगानिव।
प्रासादं शैलसङ्काशमुत्पपाताङ्गदस्तदा॥ ४०॥

पक्षियों की भाँति दोनों बाहुओं में लटके हुए उन चारों राक्षसों को लेकर अङ्गद छलाँग मारकर एक ऊँची अटारी पर चढ़ गया।

तेऽन्तरिक्षाद्विनिर्धूतास्तस्य वेगेन राक्षसाः।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः॥ ४१॥

राक्षसराज रावण के देखते-देखते वे चारों राक्षस

अङ्गद की छलाँग के वेग से कम्पायमान होकर भूमि पर गिर पड़े।

भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः।
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसम्॥ ४२॥

उस राजभवन की अटारी को ध्वस्त कर और लंका में सबको अपना नाम सुना अङ्गद ने भयंकर नाद किया और आकाश-मार्ग से उड़ चले।[1]

व्यथयन् राक्षसान् सर्वान् हर्षयंश्चापि वानरान्।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः॥ ४३॥

इस प्रकार वह राक्षसों को व्याकुल और वानरों को हर्षित करता हुआ वानरों के मध्य में विराजमान श्रीराम के पास पहुँच गया।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

राक्षसों और वानरों का भयंकर युद्ध
[General Fight.]

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा॥ १॥

अङ्गद के कृत्य से कुपित होकर रावण ने अपनी समस्त सेना को तुरन्त बाहर निकलकर युद्ध करने की आज्ञा दी।

एतत् श्रुत्वा ततो वाक्यं रावणस्य मुखोद्गतम्।
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः॥ २॥

रावण के मुख से युद्ध की आज्ञा सुनकर राक्षसों ने सहसा बड़े जोर से गर्जना की।

निष्पतन्ति तदा सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः॥ ३॥

इस गम्भीर गर्जन के पश्चात् रावण की आज्ञा पाकर राक्षस-सेना वानरों पर इस प्रकार टूट पड़ी जैसे पूर्णमासी के दिन महासागर की तरंगें किनारों से टकराती हैं।

ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः॥ ४॥

उस समय वानर-सेना ने भी चारों ओर से नाद गुँजाया कि उससे मलयाचल की कन्दराएँ और शिखर भी प्रतिध्वनित हो उठे।

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम्।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत॥ ५॥

थोड़ी ही देर में दोनों ओर से परस्पर आक्रमण करनेवाली राक्षसों और वानरों की सेनाओं में घोर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा।

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं बालिपुत्रेण राक्षसः।
अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेन यथाऽन्धकः॥ ६॥

बालिपुत्र अङ्गद का महातेजस्वी इन्द्रजित् के साथ वैसा ही युद्ध हुआ जैसा महादेव के साथ अन्धक का हुआ था।

प्रजङ्घेन च सम्पातिर्नित्यं दुर्मर्षणो रणे।
जम्बुमालिनमारब्धो हनुमानपि वानरः॥ ७॥

रण में अत्यन्त दुर्धर्ष सम्पाति नामक वानर प्रजङ्घ राक्षस से भिड़ गया और हनुमान् जम्बुमाली नामक राक्षस से युद्ध करने लगे।

सङ्गतः सुमहाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः।
समरे तीक्ष्णवेगेन मित्रघ्नेन विभीषणः॥ ८॥

रावण का छोटा भाई विभीषण अत्यन्त क्रुद्ध हो

---

१. लोक में ऐसी मिथ्या धारणा फैली हुई है कि अङ्गद ने रावण के दरबार में अपना पाँव जमाकर यह घोषणा की कि यदि कोई मेरे पाँव को भूमि पर से उठा देगा तो राम सीता को हार जायेंगे और वे बिना युद्ध के वापस लौट जायेंगे। यह धारणा सर्वथा मिथ्या और कपोलकल्पित है। वाल्मीकीय रामायण से इस धारणा की पुष्टि नहीं होती।

प्रचण्ड वेग से पित्रघ्न नामक राक्षस के साथ जूझने लगा।

तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समुयध्यत॥ ९॥

महाबली गज तपन नामक राक्षस के साथ और महातेजस्वी नील राक्षस निकुम्भ के साथ युद्ध करने लगे।

वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन समागतः।
सङ्गतः समरे श्रीमान् विरूपाक्षेण लक्ष्मणः॥ १०॥

वानरराज सुग्रीव प्रघस के साथ भिड़ गये और श्रीमान् लक्ष्मण विरूपाक्ष के साथ लड़ने लगे।

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः॥ ११॥

दुर्जेय अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप—ये चार राक्षस श्रीराम के साथ मोर्चा लेने लगे।

वानराश्चापरे भीमा राक्षसैरपरैः सह।
द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्धाय बहुभिः सह॥ १२॥

इसी प्रकार अन्य बहुत-से भयंकर वानर सहसा दूसरे राक्षसों के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने लगे।

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम्॥ १३॥

एक-दूसरे को जीतने की इच्छा रखनेवाले वीर राक्षसों और वानरों का वह महान् युद्ध अत्यन्त रोमाञ्चकारी था।

हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रभूताः केशशाद्वलाः।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसुस्त्रुः शोणितापगाः॥ १४॥

युद्ध करते-करते वानर और राक्षसों के शरीरों से रक्त की नदियाँ बह निकलीं जिनमें उन वीरों के केश सिवार घास=काई की भाँति और शरीर काष्ठसमूह की भाँति दीख पड़ते थे।

आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम्॥ १५॥

इन्द्रजित् ने अत्यन्त क्रुद्ध हो शत्रुसैन्य-संहारी वीर अङ्गद के ऊपर गदा का ऐसा भीषण प्रहार किया जैसे इन्द्र दैत्यों पर वज्र से प्रहार करते हैं।

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम्।
जघान गदया श्रीमानङ्गदो वेगवान् कपिः॥ १६॥

तब महावेगवान् अङ्गद ने भी अपनी गदा से मेघनाद के घोड़ों और सारथि-सहित उसके स्वर्ण-विभूषित रथ को चकनाचूर कर डाला।

सम्पातिस्तु त्रिभिर्बाणैः प्रजङ्घेन समाहतः।
निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि॥ १७॥

उधर जब प्रजङ्घ ने सम्पाति के तीन बाण मारे तब सम्पाति ने अश्वकर्ण वृक्ष के आघात से प्रजङ्घ को यमलोक भेज दिया।

जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनुमन्तं स्तनान्तरे॥ १८॥

रथारूढ़ महाबली जम्बुमाली ने क्रुद्ध हो रथ में रखी हुई एक शक्ति से हनुमान् की छाती को विदीर्ण कर डाला।

तस्य तं रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा॥ १९॥

तब पवनपुत्र हनुमान्‌जी उसके रथ पर चढ़ गये और थप्पड़ों से उसका कचूमर निकालकर उसके रथ को भी तोड़-फोड़ डाला।

भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा।
ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः।
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निर्बिभेद जघान च॥ २०॥

प्रघस नामक राक्षस शीघ्रतापूर्वक पैने-पैने बाणों से सुग्रीव को घायल कर रहा था और एकसा युद्ध कर रहा था मानो सारी वानरी सेना को निगल ही जायेगा। यह देख वानरराज सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती के साथ सप्तपर्ण के एक वृक्ष से उसे घायल कर जान से मार डाला।

प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम्।
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः॥ २१॥

महाविकराल राक्षस विरूपाक्ष को लक्ष्मणजी ने पहले तो बाण-वृष्टि से अत्यन्त पीड़ित किया और

अन्त में एक ही बाण से उसका काम तमाम कर दिया।

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्बिभिदुः शरैः॥ २२॥
तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि निशितैः शरैः।
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः॥ २३॥

दुर्जेय अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुसघ्न और यज्ञकोप नामक चार राक्षस श्रीराम के ऊपर बाण-वर्षा कर रहे थे। श्रीराम ने कुपित हो अग्निशिखा के तुल्य भयंकर चार पैने बाणों से इन चारों के सिर काट डाले।

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः।
द्वन्द्वे विमृदितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः॥ २४॥

इस प्रकार शूरवीर वानरों ने उन राक्षस वीरों को द्वन्द्व-युद्ध में वैसे ही परास्त किया जैसे देवताओं ने दैत्यों को हराया था।

➤ सप्तविंशः सर्गः ➤ (२७)

इन्द्रजित् का राम-लक्ष्मण को शरबन्ध में बाँधना—

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम्।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी॥ १॥

वानर और राक्षसों में इस प्रकार घोर युद्ध होते-होते सूर्यास्त हो गया और वानर तथा राक्षसों की प्राण-संहारिणी रात्रि उपस्थित हो गई।

अन्योऽन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम्।
संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम्॥ २॥

तब परस्पर वैर बाँधे हुए और एक-दूसरे को परास्त करने की इच्छा रखनेवाले उन भयंकर राक्षसों और वानरों का रात्रि-युद्ध होने लगा।

जहि दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिंस्तमसि शुश्रुवे॥ ३॥

'मारो' 'काटो' 'इधर आ, भागता क्यों है'— आदि बातें कहते हुए उन लोगों का भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ता था।

राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चापि निःस्वनैः।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतरा तदा॥ ४॥

राक्षसों के नाद से और वानरों की गर्जना से वह भयंकर रात्रि और भी भयंकर हो गई।

इन्द्रजित् तं रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः।
अङ्गदेन महाकायास्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५॥

उस भयंकर द्वन्द्व युद्ध में अङ्गद के द्वारा सारथि और घोड़ों के मारे जाने पर विशालकाय इन्द्रजित् अपने रथ को त्यागकर वहीं अदृश्य हो गया।

सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्कशः।
अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोचाशनिवर्चसः॥ ६॥

तब रण-कर्कश और पापी रावण-पुत्र मेघनाद ने अदृश्य होकर छिपे-छिपे वज्र के समान तीखे बाण छोड़ने आरम्भ किये।

स रामं लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः॥ ७॥

राक्षस मेघनाद ने क्रोध में भरकर उन सर्प के समान भीषण बाणों से, युद्ध में राम और लक्ष्मण को बींध डाला।

अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ८॥

तत्पश्चात् उस कपट-योद्धा इन्द्रजित् ने चालाकी से अपने आपको सभी सैनिकों की दृष्टि से ओझल रखते हुए दोनों भाई राम और लक्ष्मण को शर-बन्ध से बाँध दिया।

ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन्निशिताञ्शरान्।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः॥ ९॥

फिर मर्मस्थलों को जाननेवाले इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण के मर्मस्थलों में पैने-पैने बाण मार कर

बार-बार विजय गर्जना की।

तौ संप्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीमती॥ १०॥

मर्मस्थलों के बिंध जाने से व्याकुल होकर महाधनुर्धारी तथा पृथिवीपालक श्रीराम और लक्ष्मण पृथिवी पर गिर पड़े।

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ॥ ११॥

वे दोनों वीरोचित शय्या पर पड़े हुए थे। उनके शरीर रक्त से लथपथ हो रहे थे। उनके सारे शरीर में बाण गड़े हुए थे, अतः वे दोनों अत्यन्त पीड़ित और व्याकुल हो रहे थे।

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमावृतौ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः॥ १२॥

श्रीराम और लक्ष्मण को शरजाल में फँसा हुआ देख विभीषण-सहित समस्त वानर अत्यन्त दुःखी हुए।

रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत्॥ १३॥

श्रीराम और लक्ष्मण के समस्त अङ्गों और प्रत्यङ्गों को बाणों से विद्ध देखकर सुग्रीव भी बहुत डरे।

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः।
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम्॥ १४॥

तब भय से संत्रस्त, शोक से व्याकुल नेत्रवाले, आँसुओं से भरपूर मुखवाले, अत्यन्त दीन एवं उदास वानरराज सुग्रीव से विभीषण ने कहा—

अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगी निगृह्यताम्।
एवं प्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः॥ १५॥

हे सुग्रीव! डरो मत, रोना-धोना बन्द करो। इस प्रकार के युद्धों में किसी एक की विजय निश्चित नहीं होती।

सशेषभाग्यताऽस्माकं यदि वीर भविष्यति।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ॥ १६॥

हे वीर! यदि हम लोगों का कुछ भी सौभाग्य शेष होगा तो ये दोनों महाबलवान् महात्मा मूर्छा त्यागकर उठ बैठेंगे।

न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमनुवर्तितुम्।
तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम्॥ १७॥

हे वानरराज! यह समय कायरता दिखाने का नहीं है, अतः तुम सब कार्यों को नष्ट करनेवाली कायरता को त्याग दो।

सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम्।
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम्॥ १८॥

सत्यधर्म में स्थित मनुष्यों को अकालमृत्यु का भय नहीं होता, अतः तुम स्वयं धैर्य धारण करो और अपने सैनिकों को भी धीरज बँधाओ।

इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत्॥ १९॥

इधर विभीषण सुग्रीव को इस प्रकार सान्त्वना प्रदान कर रहे थे उधर मायावी इन्द्रजित् अपनी समस्त सेना को साथ ले लङ्का में प्रविष्ट हो अपने पिता के पास पहुँचा।

तत्र रावणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ॥ २०॥

इन्द्रजित् ने हाथ जोड़कर सिंहासन पर विराजमान अपने पिता रावण को राम-लक्ष्मण के मारे जाने का प्रिय संवाद कह सुनाया।

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ॥ २१॥

राक्षसों के मध्य में विराजमान रावण अपने शत्रुओं के मारे जाने का शुभ समाचार सुनकर उछल पड़ा और हर्षित होकर मेघनाद को अपनी छाती से लगा लिया।

➤ अष्टाविंशः सर्गः ➤ (२८)

सीता को विमान में बैठाकर मूर्च्छित राम-लक्ष्मण का दर्शन कराना और त्रिजटा का उसको धैर्य प्रदान करना—

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम्।
आजुहाव ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा॥ १॥

रावण ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र मेघनाद को विदा किया और सीता की रक्षा करनेवाली राक्षसियों को अपने पास बुलवाया।

राक्षस्यस्त्रिजटा चैव शासनात्समुपस्थिताः।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः॥ २॥

रावण का आदेश पाते ही त्रिजटा-सहित सभी राक्षसियाँ उसके पास उपस्थित हुईं। तब राक्षसराज अत्यन्त हर्षित हो उन राक्षसियों से कहने लगा—

हताविन्द्रजिताऽऽख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
पुष्पकं च समारोप्य दर्शयध्वं हतौ रणे॥ ३॥

तुम जाकर सीता से कहो कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को युद्ध में मार डाला है, फिर उसे पुष्पक विमान में बैठाकर रण भूमि में मरे हुए उन दोनों भाइयों को दिखलाओ।

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठति।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निरस्तो रणमूर्धनि॥ ४॥

जिसके बल के गर्व से गर्वित होकर मुझे कुछ नहीं समझती उसका पति अपने भाई लक्ष्मण सहित युद्ध में मारा गया।

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली।
मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता॥ ५॥

अब वह मैथिली निःशंक एवं निर्भय होकर तथा श्रीराम से मिलने की आशा छोड़कर और आभूषणों से अलंकृत होकर मेरे पास चली आयेगी।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः।
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम्॥ ६॥

दुष्टात्मा रावण के इन वचनों को सुनकर और "बहुत अच्छा" कहकर वे राक्षसियाँ वहाँ गईं जहाँ पुष्पक-विमान रखा था।

ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया।
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन्॥ ७॥

रावण की आज्ञा से वे राक्षसियाँ पुष्पक-विमान को लेकर अशोकवाटिका में बैठी हुई सीताजी के पास पहुँचीं।

ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह।
जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ॥ ८॥

तत्पश्चात् त्रिजटा-सहित सीता को पुष्पक विमान में बैठा वे राक्षसी सीता को राम-लक्ष्मण का दर्शन कराने के लिए ले चलीं।

विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम्॥ ९॥

त्रिजटा-सहित पुष्पक-विमान में बैठी हुई सीता ने युद्धभूमि में जाकर देखा कि वानरों की प्रायः सब सेना मार डाली गई है।

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पयोः।
लक्ष्मणं चापि रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ॥ १०॥

तत्पश्चात् सीता ने देखा कि राम और लक्ष्मण दोनों भाई शरशय्या पर पड़े सो रहे हैं। वे वीर संज्ञाहीन=बेहोश हैं और बाणों से पीड़ित हैं।

शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ।
दुःखार्ता सुभृशं सीता सुचिरं विललाप ह॥ ११॥

उन दोनों वीर भाइयों को शरशय्या पर पड़े देखकर सीता अत्यन्त दुःखी हो, उच्च स्वर से बहुत देर तक विलाप करती रही।

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि भर्ताऽयं तव जीवति॥ १२॥

तब विलाप करती हुई सीता से त्रिजटा राक्षसी ने कहा—तुम दुःखी मत होओ। तुम्हारे पति मरे नहीं, जीवित हैं।

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च।
यथेमौ जीवितौ देवि भ्रातरो रामलक्ष्मणौ॥ १३॥

हे देवि! मैं अपने कथन के समर्थन में तुम्हें स्पष्ट और पूर्व-अनुभूत कारण बतलाती हूँ जिससे तुम्हें निश्चय हो जायेगा कि राम-लक्ष्मण जीवित हैं।

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः।
दिव्यं त्वां धारयेन्नैवं यद्येतौ गतजीवितौ॥ १४॥

हे वैदेहि! यदि ये दोनों भाई मर गये होते तो यह दिव्य पुष्पक-विमान तुम्हें बैठाकर नहीं उड़ाता (क्योंकि यह विधवाओं को अपने ऊपर नहीं चढ़ाता।)[१]

हतवीरप्रधाना हि हतोत्साहा निरुद्यमा।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले॥ १५॥

जिस सेना का प्रमुख-वीर मारा जाता है उस सेना का उत्साह समाप्त हो जाता है, सैनिक उद्यमहीन हो जाते हैं। नायक-विहीन सेना युद्धभूमि में ऐसे डगमगाने लगती है जैसे नाविक-रहित नाव जल में डगमगाने लगती है।

इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना तपस्विनी।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या, निवेदितौ॥ १६॥

हे तपस्विनी! यह सेना उद्वेग रहित होकर, सावधानता-पूर्वक राम-लक्ष्मण की रक्षा कर रही है, इसीलिए मैंने तुमसे स्नेहपूर्वक यह निवेदन किया है कि ये दोनों जीवित हैं।

इदं च सुमहच्चिह्नं शनैः पश्यस्व मैथिली।
निःसंज्ञावप्युभावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति॥ १७॥

हे सीते! तनिक सावधानतापूर्वक इस चमत्कार को तो देखो कि यद्यपि ये दोनों बाणों की चोट से मूर्छित पड़े हैं तथापि इनके मुखमण्डल की कान्ति ज्यों की-त्यों बनी हुई है।

त्यज शोकं च मोहं च दुःखं च जनकात्मजे।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम्॥ १८॥

हे जनकनन्दिनी! तुम राम और लक्ष्मण के सम्बन्ध में शोक, मोह- उलटी समझ और मनोव्यथा को त्याग दो, ये अभी मर नहीं सकते।

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा।
कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति मैथिली॥ १९॥

देव-कन्या के समान सीता त्रिजटा की इन बातों को सुन, हाथ जोड़कर बोली—हे त्रिजटा! तुम्हारा वचन सत्य हो।

विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम्।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता॥ २०॥

तत्पश्चात् त्रिजटा मन के समान द्रुतगामी पुष्पक-विमान को लौटाकर दुःखियारी सीता को लंका में ले गई।

◀ एकोनत्रिंशः सर्गः ▶ (२९)

गरुड़ वैद्य द्वारा राम-लक्ष्मण का स्वस्थ होना—

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ।
निःश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ॥ १॥

घोर बाण-बन्धन में बँधे हुए और सर्प की भाँति फुंकारते हुए दोनों दशरथ-पुत्र रक्त से लथपथ पड़े हुए थे।

सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः॥ २॥

महाबली सुग्रीव प्रमुख वानरश्रेष्ठों-सहित उन दोनों वीरों को चारों ओर से घेरकर उनकी रक्षा कर रहे थे और शोक में डूबे हुए थे।

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान्।
स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः सन्दानितोऽपि सन्॥ ३॥

१. बीसवीं शताब्दी को विज्ञान का युग बताया जाता है, परन्तु वैज्ञानिक अब तक ऐसा विमान नहीं बना पाएँ हैं।

इतने ही में वीर्यवान् दृढ़गात्र और बल-सम्पन्न श्रीराम नागपाश से जकड़े हुए होने पर भी सचेत हुए।

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं विषण्णं गाढमर्पितम्।
भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः॥ ४॥

उठते ही रुधिर से तर, दीन-वदन और बाणों से जकड़े हुए अपने भाई लक्ष्मण को देखकर वे आतुर हो रोने लगे—

किं नु मे सीतया कार्यं किं कार्यं जीवितेन वा।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम्॥ ५॥

जब मैं अपने भाई को युद्ध में पराजित हो अचेत पड़ा देख रहा हूँ तब मैं सीता को लेकर क्या करूँगा और स्वयं जीवित रहकर भी क्या करूँगा?

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः॥ ६॥

इस संसार में खोजने पर सीता के समान स्त्री भले मिल जाए, परन्तु लक्ष्मण के समान भाई, सहायक और चतुर योद्धा नहीं मिल सकता।

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः॥ ७॥

यदि सुमित्रा के आनन्द को बढ़ानेवाले लक्ष्मण मर गये तो मैं इन वानरों के सामने ही अपने प्राण दे दूँगा।

किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किन्नु कैकेयीम्।
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम्॥ ८॥

अयोध्या लौटकर मैं पुत्रदर्शनाभिलाषिणी माता सुमित्रा से कौसल्या और कैकेयी से क्या कहूँगा?

धिङ् मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ।
लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासुवत्॥ ९॥

मुझ पापी एवं अनार्य को धिक्कार है जिसके लिए लक्ष्मण मृतक के समान शर-शय्या पर पड़ा सो रहा है।

त्वं नित्यं सविषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण।
गतासुर्नाद्य शक्नोषि मामार्तमभिभाषितुम्॥ १०॥

हे लक्ष्मण! जब मैं घबराता था तब तुम मुझे धैर्य प्रदान करते थे, परन्तु अब मैं अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ तब तुम निर्जीव से होकर मुझसे बातचीत क्यों नहीं करते?

येनाद्य निहता युद्धे राक्षसा विनिपातिताः।
तस्यामेव क्षितौ वीरः स शेते निहतः शरैः॥ ११॥

हे वीर! तुमने जिस संग्राम-भूमि पर बहुत-से राक्षस मार कर सुला दिये थे उसी भूमि पर तुम शत्रु द्वारा बाणों से घायल होकर स्वयं पड़े सो रहे हो।

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥ १२॥

हे तेजस्विन्! जिस प्रकार वन में आने के समय तुम मेरे पीछे-पीछे आये थे उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे यमालय को चलूँगा।

यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा च परन्तपः।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा॥ १३॥

(इस प्रकार विलाप करते हुए राम सुग्रीव से बोले—) हे परन्तप सुग्रीव! मित्र को मित्र के लिए और सुहृद को सुहृद के लिए जो करना चाहिए था अधर्म से डरनेवाले आपने वह सब कर दिया।

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ॥ १४॥

हे कपिश्रेष्ठ! आपने मेरे लिए सब मित्रोचित कार्य किया। अब मैं आपको विदा करता हूँ। जिसकी जहाँ जाने की इच्छा हो वह वहाँ चला जाए।

शुश्रुवुस्तस्य ते सर्वे वानराः परिदेवनम्।
वर्तयाञ्चक्रुरश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः॥ १५॥

श्रीराम को ऐसा विलाप सुनकर वानर रो पड़े और रोते-रोते उनके नेत्र लाल हो गये।

ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः।
अजगाम गदापाणिस्त्वरितो यत्र राघवः॥ १६॥

इतने में ही विभीषण समस्त सेना को यथास्थान स्थापित कर और हाथ में गदा लिये हुए श्रीराम के पास आ पहुँचे।

विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम्।
लक्ष्मणस्य च धर्मात्मा बभूव व्यथितेन्द्रियः॥ १७॥

राम और लक्ष्मण के शरीरों को बाणों से बिंधा हुआ देखकर धर्मात्मा विभीषण अत्यन्त व्याकुल हुए।

जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे प्रमृज्य च।
शोकसम्पीडितमना रुरोद विललाप च॥ १८॥

तब विभीषण ने हाथ में जल लेकर उन दोनों भाइयों की आँखों को धोया और फिर शोकाकुल होकर वे स्वयं भी रोने और विलाप करने लगे।

इमौ तो सत्त्वसम्पन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ।
इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः॥ १९॥

वे विलाप करते हुए बोले—देखो, इन बलवान् पराक्रमी और युद्धप्रिय दोनों भाइयों की कूटयुद्ध करनेवाले राक्षसों ने क्या गति बना डाली है।

भ्रातुपुत्रेण मे तेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ॥ २०॥

मेरे भाई के दुष्ट पुत्र ने राक्षसी कपटबुद्धि से इन सीधे-सादे पराक्रमी लोगों को धोखा दिया है।

ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया।
तावुभौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ॥ २१॥

जिनके बलबूते पर मैंने अपनी मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आशा की थी वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ अपने शरीर का नाश करने के लिए पृथिवी पर पड़े सो रहे हैं।

एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम्।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम्॥ २२॥

इस प्रकार विलाप करते हुए विभीषण का आलिंगन कर महाबली सुग्रीव ने उनसे कहा—

राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्काया नात्र संशयः।
रावणः सह पुत्रेण स्वकामं नेह लप्स्यते॥ २३॥

हे धर्मज्ञ! आपको निश्चय ही लंका का राज्य प्राप्त होगा। रावण और उसके पुत्र इन्द्रजित् का मनोरथ कभी भी सफल नहीं हो सकता।

न रुजा पीडितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे॥ २४॥

श्रीराम और लक्ष्मण को यह चोट विशेष हानिकारक नहीं होगी। ये दोनों मूर्छा से जाग कर सपरिवार रावण का वध करेंगे।

एतस्मिन् काले गरुडं वैनतेयं महाबलम्।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम्॥ २५॥

(सुग्रीव और विभीषण में इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था कि) थोड़ी ही देर में अग्नि के समान देदीप्यमान विनता-पुत्र वैद्यराज गरुड़ को वानरों ने वहाँ उपस्थित देखा।

ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्दितः।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे॥ २६॥

वैद्यराज गरुड़ ने उन दोनों राजकुमारों को देख उनका अभिनन्दन किया, फिर उनके अङ्गों का अपने हाथ से स्पर्श कर उन दोनों के चन्द्रतुल्य मुखों को सहलाया।

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः॥ २७॥

गरुड़जी के स्पर्श[1] से उन दोनों के घाव भर गये तथा उन दोनों के शरीर पहले के समान सुन्दर रंगवाले और चिकने हो गये।

तावुत्थाप्य महावीर्यौ गरुडो वासवोपमौ।
उभौ तौ सस्वजे हृष्टौ रामश्चैनमुवाच ह॥ २८॥

फिर इन्द्र के समान महाबलवान् दोनों भाइयों को उठाकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर गरुड़जी ने

---

१. हस्त-स्पर्श द्वारा रोगों को दूर करने का निर्देश संसार की प्राचीनतम पुस्तक अथर्ववेद में है। देखिए—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥

—अथर्व० ४।१३।६

ऐ रोगी! मेरा यह हाथ सौभाग्यदायक है और मेरा यह दूसरा हाथ उससे भी अधिक लाभकारी है। मेरा यह हाथ समस्त रोगों को शमन करनेवाला है और यह दूसरा हाथ सुख-शान्ति के स्पर्शवाला है।

उन्हें अपने गले लगाया। तब श्रीराम ने उनसे कहा—

भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत्।
आवामिह व्यतिक्रान्तौ पूर्ववद्बलिनौ कृतौ॥ २९॥

आपके अनुग्रह से हम मेघनाद द्वारा उत्पन्न की हुई घोर विपत्ति से छूट गये हैं और आपके प्रयत्न से हमारे शरीरों में पहले जैसा ही बल-पराक्रम आ गया है।

यथा तातं दशरथं यथाऽजं च पितामहम्।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति॥ ३०॥

इस समय आपको देखकर मुझे वैसी ही प्रसन्नता हो रही है जैसी कि पितामह महाराज अज और पिता महारज दशरथ को मिलकर होती।

को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः॥ ३१॥

रूपसम्पन्न, दिव्य पुष्प-माला धारण किये हुए तथा सुगन्धित चन्दनादि लगाये हुए, निर्मल वस्त्र धारण किये हुए और आभूषणों से अलंकृत[१] आप कौन हैं?

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः।
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः॥ ३२॥

राम के ऐसा पूछने पर महातेजस्वी एवं महाबलवान् विनता-पुत्र गरुड़जी ने कहा—हे काकुत्स्थ! मैं तुम्हारा बाहर विचरनेवाले प्राण के समान प्रिय मित्र हूँ।

इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः।
सहसा युवयोः स्नेहात्सखित्वमनुपालयन्॥ ३३॥

मैं तुम लोगों के पाशबद्ध होने के वृत्तान्त को सुनकर तुम दोनों के प्रति स्नेह होने के कारण अपने मित्रधर्म का पालन करने के लिए दौड़ा हुआ यहाँ आया हूँ।

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात्।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि॥ ३४॥

मैंने आपको इस महादारुण बाण-बन्धन से मुक्त कर दिया है। अब आप लोगों को प्रमादरहित होकर, सदा ही अत्यन्त सावधानी के साथ युद्ध-सम्बन्धी कार्य करना चाहिए।

एवमुक्त्वा ततो रामं परिष्वज्य च वीर्यवान्।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा॥ ३५॥

राम से ऐसा कहकर और उनका आलिंगन करके महापराक्रमी गरुड़ वायु के समान वेग से आकाश-मार्ग से चले गये।

विरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः।
सिंहनादांस्तदा नेदुर्मृदङ्गाश्चाप्यनादयन्॥ ३६॥

श्रीराम और लक्ष्मण को नीरोग एवं स्वस्थ देखकर वानर-यूथपति सिंहनाद करने लगे और मृदङ्गों को बजाने लगे।

◀ त्रिंशः सर्गः ▶ (३०)

राम-लक्ष्मण के स्वस्थ होने का वृत्तान्त जानकर रावण का धूम्राक्ष को युद्ध के लिए भेजना और हनुमान् द्वारा उसका वध—

तेषां सुतुमुलं शब्दं वानराणां तरस्विनाम्।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः॥ १॥

महापराक्रमी उन गर्जते हुए वानरों का वह तुमुल नाद राक्षसों-सहित रावण ने भी सुना।

१. इस गरुड़ के विषय में लोगों में ऐसी मिथ्या धारणा फैली हुई कि यह पक्षी था, परन्तु इस वर्णन को देखकर गरुड़ के पक्षी होने का खण्डन हो जाता है। पक्षी न माला धारण करते हैं और न चन्दन लगाते हैं। पक्षी वस्त्र भी नहीं पहनते हैं और न आभूषण धारण करते हैं। अगले ही श्लोक में गरुड़ अपने आपको राम का प्रिय सखा कह रहा है, अतः यह स्पष्ट है कि गरुड़ पक्षी नहीं था, अपितु एक पीयूष-पाणि वैद्य था।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा स निनदं भृशम्।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत्॥ २॥

उस स्पष्ट और गम्भीर ध्वनि को बारम्बार सुन मन्त्रियों के बीच बैठा हुआ रावण बोला—

यथाऽसौ सम्प्रहृष्टानां वानराणां समुत्थितः।
बहूनां सुमहानादो मेघानामिव गर्जताम्॥ ३॥
व्यक्तं सुमहति प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः।
तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे वरुणालयः॥ ४॥

यह जो गर्जते हुए मेघों के समान अत्यन्त प्रसन्न बहुत से वानरों का महानाद सुनाई पड़ रहा है इससे नि:सन्देह ऐसा प्रतीत होता है कि रामदल में अवश्य ही कोई महाप्रसन्नता की बात हुई है, क्योंकि इनके महानाद से समुद्र भी क्षुब्ध हो उठा है।

तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे॥ ५॥

वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण तो तीखे तीरों के बन्धन से जकड़ दिये गये थे, अतः यह महानाद मेरे हृदय में शंका उत्पन्न कर रहा है।

एतत्तु वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः॥ ६॥

राक्षसराज रावण मन्त्रियों से ऐसा कहकर पास बैठे हुए राक्षसों से बोला—

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां वनचारिणाम्।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम्॥ ७॥

तुम लोग जाओ और तुरन्त पता लगाओ कि ऐसे शोक के समय में वानरों के इस प्रकार हर्षित होने का कारण क्या है?

तथोक्तास्तेन सम्भ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य ते।
ददृशुः पलितां सेनां सुग्रीवेण महात्मनाः॥ ८॥

इस प्रकार रावण की आज्ञा पाकर वे घबराये हुए राक्षस परकोटे की दीवार पर जा चढ़े और वहाँ से सुग्रीव के द्वारा रक्षित वानर-सेना को देखा।

तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः प्रेक्ष्य राक्षसाः॥ ९॥

उन्होंने देखा कि वे दोनों भाग्यशाली राम और लक्ष्मण उस भयानक शर-बन्धन से मुक्त होकर उठ बैठे हैं। इस दृश्य को देखकर वे राक्षस बहुत दुःखी हुए।

सन्त्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते।
विषण्णवदना घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः॥ १०॥

वे भयभीत होकर परकोटे की दीवार से नीचे उतरे और अत्यन्त उदास होकर रावण के पास पहुँचे।

तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य निशाचराः।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः॥ ११॥

रावण के समीप जा उन वाक्-पटु राक्षसों ने मुँह लटकाकर रावण को वहाँ का समस्त अप्रिय संवाद यथावत् कह सुनाया।

यौ ताविनद्रजिता युद्धे निबद्धौ रामलक्ष्मणौ।
विमुक्तौ शरबन्धेन तौ दृश्येते रणाजिरे॥ १२॥

उन्होंने कहा—महाराज! जिन राम-लक्ष्मण को इन्द्रजित् ने युद्धभूमि में शर-बन्धन से जकड़ दिया था, वे दोनों भाई इस समय समरभूमि में शर-बन्धन से मुक्त दिखाई पड़ रहे हैं।

तत् श्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विषण्णवदनोऽब्रवीत्॥ १३॥

महाबली राक्षसराज रावण उनके ये वचन सुन चिन्ताग्रस्त एवं शोकाकुल हो गया। उसका चेहरा फीका पड़ गया। वह बोला—

तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम्॥ १४॥

यदि मेरे शत्रु शर-बन्धन में बँधकर भी उससे मुक्त हो गये हैं तो मुझे अपनी राक्षसी सेना के जीवित रहने में भी सन्देह है।

निष्फलाः खलु संवृत्ताः शराः पावकतेजसः।
आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां मम जीवितम्॥ १५॥

आश्चर्य है जिन अस्त्रों ने युद्ध में अनेक बार शत्रु का संहार किया था आज वे ही अग्नि के समान तेजस्वी अस्त्र मेरे दुर्भाग्य से निष्फल हो गये और

उन बाणों ने शत्रु को जीवन-दान दे दिया।

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा।
अब्रवीद्राक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम्॥ १६॥

ऐसा कहकर क्रोध में भरे रावण ने सर्प की भाँति फुंकारते हुए, राक्षसों के मध्य में बैठे हुए धूम्राक्ष को आदेश दिया—

बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमैः।
त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः॥ १७॥

तुम भयंकर पराक्रमी राक्षसों की विशाल सेना लेकर समस्त वानरों-सहित राम को मार डालने के लिए शीघ्र प्रस्थान करो।

एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता।
कृत्वा प्रणामं संहृष्टो निर्जगाम नृपालयात्॥ १८॥

जब महामति रावण ने धूम्राक्ष को ऐसा आदेश दिया तब वह राक्षसराज को प्रणाम कर प्रसन्न होता हुआ राजभवन से निकला।

अभिनिष्क्रम्य तद् द्वारमारुह्य च रथोत्तमम्।
स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः।
प्रहसन्पश्चिमद्वारं हनुमान्यत्र यूथपः॥ १९॥

राजभवन के द्वार पर आ महाबली धूम्राक्ष एक सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर और राक्षस-सेना को साथ लेकर अट्टहास करता हुआ लंका के पश्चिम द्वार से बाहर निकला जहाँ हनुमान् ने मोर्चा संभाला हुआ था।

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम्।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः॥ २०॥

भीषण पराक्रमी धूम्राक्ष को नगर से बाहर आते देखकर युद्धाभिलाषी सब वानर अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंह गर्जना करने लगे।

तेषां सुतुमुलं युद्धं सञ्जज्ञे हरिरक्षसाम्।
अन्योऽन्यं पादपैर्घोरं निघ्नतां शूलमुद्गरैः॥ २१॥

तब उन वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध हुआ जिसमें वे एक-दूसरों पर वृक्षों और शूल तथा मुद्गरों से प्रहार करने लगे।

सैन्य तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः।
क्रोधेन कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम्॥ २२॥

उस युद्ध में वानरों द्वारा अपनी सेना को तितर-बितर होते देख राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष ने युद्ध करते हुए उन वानरों का नाश करना आरम्भ किया।

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं वीक्ष्य मारुतिः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्॥ २३॥

धूम्राक्ष द्वारा वानरी सेना को नष्ट एवं पीड़ित होते देख हनुमान्जी अत्यन्त कुपित हुए, अतः वे एक बड़ी भारी शिला को उठाकर दौड़े।

धूम्राक्षस्य शिरो मध्ये गिरिशृङ्गमपातयत्।
स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः।
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः॥ २४॥

हनुमान् ने उस पर्वत-शिखर को धूम्राक्ष के सिर पर दे मारा। उस पर्वत-शिखर के आघात से धूम्राक्ष के समस्त अङ्ग भङ्ग हो गये और वह टूटे पर्वत की भाँति सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा।

धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः॥ २५॥

धूम्राक्ष को मरा हुआ देख, मरने से बचे हुए राक्षस, भयभीत हो वानरों से मार खाते हुए लङ्का के अन्दर जा घुसे।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

अङ्गद द्वारा वज्रदंष्ट्र का वध—

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
अब्रवीद्राक्षसं शूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम्॥ १॥

राक्षसराज रावण धूम्राक्ष के मारे जाने का समाचार सुन महाबली वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस से बोला—

गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह॥ २॥

हे वीर! तुम अपने साथ राक्षसों की विशालवाहिनी लेकर जाओ और दशरथनन्दन राम का तथा वानर-सेना सहित सुग्रीव का वध करो।

तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः॥ ३॥

रावण की आज्ञा पा, राक्षस-सेनापति मायावी वज्रदंष्ट्र 'बहुत-अच्छा' ऐसा कहकर और बहुत-सी सेना को साथ लेकर बड़ी शीघ्रता से युद्ध के लिए निकल पड़ा।

निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः।
तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत॥ ४॥

वज्रदंष्ट्र के नेतृत्व में यह राक्षसी सेना लङ्का से दक्षिणी फाटक से बाहर निकली जहाँ वानर यूथपति अङ्गद थे। जिस समय यह सेना बाहर निकली उस समय बहुत-से अपशकुन हुए।

तांस्तु निष्क्रमतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः।
प्रणेदुः सुमहानादान् पूरयंश्च दिशो दश॥ ५॥

उधर तिनके के समान शत्रुओं को अनायास जीतनेवाले वानरों ने उन राक्षसों को लङ्का से बाहर निकलते देखकर ऐसी सिंह-गर्जना की कि उस ध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं।

युद्धं प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह।
घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवध काङ्क्षिणाम्॥ ६॥

बस फिर क्या था, एक-दूसरे को मार डालने की इच्छा रखनेवाले महाबली एवं भयंकर वानरों तथा राक्षसों में घमासान युद्ध होने लगा।

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतञ्जगतीतले॥ ७॥

देखते-ही-देखते अत्यन्त उत्साहपूर्वक लड़नेवाले राक्षस योद्धाओं के रक्त में सने हुए सिर धड़ से अलग होकर भूमि पर पड़े हुए दिखाई देने लगे।

जानुभिश्च हताः केचिद्भिन्नदेहाश्च राक्षसाः।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः॥ ८॥

युद्ध दुर्मद वानरों ने अनेक राक्षसों के घुटने तोड़ डाले, बहुतों के शरीरों को विदीर्ण कर डाला और अनेक शिला वृष्टि से चूर्ण कर डाला।

वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन् हरीन्।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः॥ ९॥

अपनी सेना की यह दुर्दशा देख वज्रदंष्ट्र ने युद्ध में भीषण बाण-वृष्टि कर वानरों को भयभीत कर डाला ओर वानरों का संहार करने के लिए पाशधारी यम की भाँति रणभूमि में विचरने लगा।

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा बालिसुतस्तदा।
क्रोधेन च वज्रदष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत॥ १०॥

तब बालिपुत्र अङ्गद ने वानरों को छिन्न-भिन्न होते देख अपनी और घूरते हुए वज्रदंष्ट्र को क्रोध में भरकर देखा।

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ सङ्गतौ हरिराक्षसो।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव॥ ११॥

फिर तो अङ्गद और वज्रदंष्ट्र दोनों ही आपस में भिड़ गये। वे दोनों अत्यन्त क्रुद्ध हो सिंह और मतवाले हाथी के समान पैंतरे बदलते हुए युद्ध क्षेत्र में घूमने लगे।

जघ्नतुश्च तदाऽन्योन्यं निर्दयं जयकाङ्क्षिणौ।
व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ॥ १२॥

वे दोनों जय की अभिलाषा से दया छोड़कर एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। प्रहारों के कारण उन दोनों के शरीरों पर जो घाव हो गये थे उनसे वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे फूलों से लदे हुए पलाश=ढाक के वृक्ष।

निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः।
निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य बालिसूनुर्महाबलः॥ १३॥

थोड़ी ही देर में बालिपुत्र कपिश्रेष्ठ अङ्गद ने वज्रदंष्ट्र की पैनी और चमचमाती हुई तलवार छीनकर उसी

से उसके बड़े सिर को धड़ से काट डाला।

वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः।
त्रस्ता प्रत्यपतंल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः॥ १४॥

वज्रदंष्ट्र को मरा हुआ देख राक्षस लोग भय से मोहित हो गये और संत्रस्त हाकर वानरों से मार खाते हुए लंका में जा घुसे।

≺ द्वात्रिंशः सर्गः ≻ (३२)

हनुमान् द्वारा अकम्पन का वध—

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा बालिपुत्रेण रावणः।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमवस्थितम्॥ १॥

वज्रदंष्ट्र के वध का समाचार सुनकर रावण ने हाथ जोड़कर खड़े हुए सेनाध्यक्ष से कहा—

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशास्त्रास्त्रकोविदम्॥ २॥

सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में प्रवीण अकम्पन के सेनापतित्व में दुर्जेय एवं भीम पराक्रमी राक्षस शीघ्र प्रस्थान करें।

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः।
बलं सन्त्वरयामास तदा लघुपराक्रमः॥ ३॥

रावण की आज्ञा पाकर महाबली और पराक्रम दिखाने में फुर्तीले सेनाध्यक्ष ने सेना को तुरन्त प्रस्थान करने का आदेश दिया।

मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः।
राक्षसैः संवृतो भीमैस्तदा निर्यात्यकम्पनः॥ ४॥

तब सेनाध्यक्ष की आज्ञा पाकर मेघ के समान डील-डौलवाले, मेघ की भाँति काले रंगवाले और मेघ के समान गर्जना करनेवाले अकम्पन ने भयंकर राक्षसों को अपने साथ ले युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

तदा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः।
बभूव सुमहानादः क्षोभयन्निव सागरम्॥ ५॥

जब अकम्पन ने राक्षसों के साथ युद्ध के लिए कूच किया तब ऐसा भीषण शब्द हुआ कि समुद्र भी खलबला उठा।

तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः।
द्रुमशैलप्रहाराणां योद्धुं समवतिष्ठताम्॥ ६॥

उस शब्द से, लड़ने के लिए हाथों में वृक्षों और शिलाओं को लेकर खड़े हुए वानरों की सेना भी एक बार तो भयभीत हो गई।

तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे हरिरक्षसाम्।
रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तजीविनाम्॥ ७॥

फिर तो राम और रावण के लिए अपने प्राणों को हथेली पर रखे हुए वानर और राक्षसों में भयंकर युद्ध होने लगा।

ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं व्यपगतं रजः।
शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुन्धरा॥ ८॥

यह युद्ध इतना भयानक था कि रुधिर की धारा से युद्धभूमि की धूलि दब गई और लोथों से रणभूमि पट गई।

एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः।
मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम्॥ ९॥
ते तु वृक्षैर्महावेगा राक्षसानां चमूमुखे।
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरियूथपाः॥ १०॥

इतने में ही कुमुद, नल, मैन्द और द्विविद—ये वीर वानर क्रुद्ध होकर बड़े वेग से लड़ने लगे। उन वानरश्रेष्ठ महावीर वानर-यूथपतियों ने बिना विशेष परिश्रम के अनायास ही सेना के अग्रभाग में स्थित बड़े-बड़े राक्षसों का कचूमर निकाल डाला।

तद् दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः।
हरीन्भ्यहनत्क्रोधाच्छरजालैरकम्पनः॥ ११॥

वानरश्रेष्ठों की इस वीरता को देखकर अकम्पन भी क्रोध में भरकर बहुत-से बाणों को छोड़ता हुआ वानरों को मारने लगा।

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्‌धुमाहवे।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एव विदुद्रुवुः॥ १२॥

अकम्पन ने उस समय ऐसी मार काट मचाई कि उसके बाणों से पीड़ित होकर वानर लोग भाग खड़े हुए। युद्ध करना तो एक ओर रहा कोई उसके सामने खड़ा भी न हो सका।

तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनवशं गतान्।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः॥ १३॥

अपनी वानर सेना को अकम्पन के बाणों से विवश और मृत्यु के मुख में जाते देख महावीर हनुमान् अकम्पन का सामना करने के लिए आगे बढ़े।

तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे प्लवगयूथपाः।
समेत्य समरे वीराः संहृष्टाः पर्यवारयन्॥ १४॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् अकम्पन का सामना करने के लिए आगे बढ़ते देख अन्य वानरगण भी पुनः एकत्र हो गये और प्रसन्न हो हनुमान्‌जी की सहायता के लिए उनके साथ हो लिये।

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम्।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह॥ १५॥

उधर अकम्पन ने, पर्वत के समान अचल हनुमान् को अपने सम्मुख खड़ा देख, उन पर ऐसी बाण-वृष्टि की जिस प्रकार इन्द्र जल की वर्षा करते हैं।

अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्शरीरे पतिताञ्शितान्।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः॥ १६॥

अपने शरीर में पैने-पैने बाणों के लगने की कुछ भी परवाह न कर महाबली हनुमान् ने अकम्पन के वध का निश्चय किया।

स प्रहस्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ १७॥

अकम्पन को मारने का निश्चयकर महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान् अट्टहास करते हुए और पृथिवी को कँपाते हुए अकम्पन पर झपटे।

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम्।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्रोध च ननाद च॥ १८॥

वीर अकम्पन, राक्षसों को संत्रस्त करनेवाले हनुमान् को अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने ऊपर झपटते हुए देख बहुत क्रुद्ध हुआ और भयंकार गर्जना की।

स चतुर्दशभिर्बाणैः शितैर्देहविदारणैः।
निर्बिभेद हनूमन्तं महावीर्यमकम्पनः॥ १९॥

फिर महाबली अकम्पन ने पैने और शरीर को विदीर्ण करनेवाले चौदह बाण मार कर हनुमान्‌जी को घायल कर दिया।

ततस्तु वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम्।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्॥ २०॥

वीर हनुमान् ने भी एक वृक्ष उखाड़ लिया और बड़े जोर के साथ उसे राक्षसश्रेष्ठ अकम्पन के सिर पर दे मारा।

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च॥ २१॥

क्रोध से भरे महाबली, वानरश्रेष्ठ हनुमान् द्वारा वृक्ष के प्रहार से घायल हो वह राक्षस पृथिवी पर गिर पड़ा और मर गया।

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः॥ २२॥

जब राक्षसों ने देखा कि उनका सेनापति भूमि पर मरा पड़ा है तब वे राक्षस ऐसे काँप उठे जैसे भूकम्प होने पर वृक्ष काँप उठते हैं।

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः।
लङ्कामभिययुस्त्रस्ता वानरैस्तैरभिद्रुताः॥ २३॥

उन पराजित राक्षसों ने अपने-अपने हथियार पटक दिये और वानरों द्वारा खदेड़े जाकर वे सब भयभीत होकर लङ्का की ओर भाग गये।

तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः।
समेत्य हरयः सर्वे हनूमन्तमपूजयन्॥ २४॥

उन महाबली राक्षसों के भागकर लङ्का में घुस जाने पर सब वानर एकत्र हो एक स्वर से हनुमान् की प्रशंसा करने लगे।

सोऽपि प्रहृष्टस्तान् सर्वान् हरीन् प्रत्यभ्यपूजयत्।
हनुमान् सत्त्वसम्पन्नो यथार्हमनुकूलतः॥ २५॥

महावीर हनुमान् ने भी प्रसन्न हो उन सभी वानरों की सराहना करते हुए कहा कि मैंने आप लोगों की सहायता से ही यह विजय प्राप्त की है। फिर उन्होंने वानर वीरों को गले लगाया और उनके साथ यथायोग्य बातचीत कर उनको उत्साहित किया[१]।

◀ त्रयत्रिंशः सर्गः ▶ (३३)

सेनापति प्रहस्त का वध—

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः।
किञ्चिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत॥ १॥

अकम्पन के वध का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण क्रुद्ध हुआ, परन्तु फिर उदास होकर और मुँह लटकाकर अपने मन्त्रियों की ओर निहारने लगा।

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च।
उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम्॥ २॥

रावण ने थोड़ी देर सोचा, फिर अपने मन्त्रियों से परामर्श कर विपत्तिकाल में अपने हितैषी और युद्धविशारद प्रहस्त से कहा—

स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः॥ ३॥

तुम सेना साथ लेकर तथा रथ में सवार होकर विजय-प्राप्ति के लिए शीघ्र वहाँ जाओ जहाँ वानर सैनिक मोर्चा लगाये हुए हैं।

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः।
आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः सज्जकल्पितम्॥ ४॥

रावण के ऐसा आदेश देने पर सेनापति प्रहस्त एक अलंकृत एवं दिव्य रथ पर आरूढ़ हुआ।

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महताऽवृतः॥ ५॥

रथ पर सवार हो और रावण की आज्ञा ले प्रहस्त बड़ी भारी सेना-सहित तुरन्त लङ्का से निकला।

प्रहस्तं त्वभिनिर्यान्तं प्रख्यातबलपौरुषम्।
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाऽभ्यवर्तत॥ ६॥

उधर प्रसिद्ध बल-पौरुषवाले प्रहस्त को युद्ध के लिए निकलते देख वानरगण वृक्ष, शिला आदि नाना प्रकार के आयुध ले, उससे लड़ने के लिए तैयार हो गये।

तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत्।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवृष्टिं च वर्षताम्॥ ७॥

दोनों सेनाएँ आपस में एक-दूसरे के साथ भिड़ गईं और दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। दोनों ही ओर के योद्धा एक-दूसरे पर शिलाओं और बाणों की वर्षा करने लगे।

बहवो राक्षसा युद्धे बहून् वानरयूथपान्।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून्॥ ८॥

इस युद्ध में राक्षसों ने बहुत से वानर-यूथपतियों को और वानरों ने बहुत-से राक्षसों को मार डाला।

वानरा राक्षसाः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः।
विवृत्तनयनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत्॥ ९॥

वानर और राक्षस क्रोध में भरकर वीरमार्ग (युद्ध में पीठ न दिखाना) का अनुसरण करते हुए और युद्ध-कौशल प्रदर्शित करते हुए आँखें निकालते हुए और निडर होकर बड़ी निष्ठुरता के साथ युद्ध कर रहे थे।

---

१. यहाँ आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने एक विजयी वीर सेनापति द्वारा अपनी विजयिनी सेना के योद्धाओं के प्रति विजय के पश्चात् करणीय कर्तव्य का पालन कराया है।

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः॥ १०॥

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत—प्रहस्त के ये चारों मन्त्री वानरों को बुरी तरह मार रहे थे।

तेषामापततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान्।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम्॥ ११॥

जिस समय ये चारों वानरों को खदेड़-खदेड़ कर मार रहे थे उस समय द्विविद ने एक भारी शिला के प्रहार से नरान्तक को मार डाला।

दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः स विपुलद्रुमम्।
राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत्॥ १२॥

उधर कपिश्रेष्ठ दुर्मुख ने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर बड़ी फुर्ती के साथ युद्ध करते हुए समुन्नत को पीस डाला।

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम्।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि॥ १३॥

तेजस्वी जाम्बवान् ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो एक बड़ी भारी शिला उठाकर महानाद की छाती में दे मारी (जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये)।

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान्।
वृक्षेणाभिहतो मूर्ध्नि प्राणान् सनत्याजयद्रणे॥ १४॥

कपिवर वीर्यवान् तार ने एक बड़े वृक्ष से कुम्भहनु के सिर पर प्रहार किया जिससे कुम्भहनु ने भी समर-भूमि में प्राण त्याग दिये।

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम्॥ १५॥

वानरों द्वारा राक्षसों के भीषण संहार को देखकर रथ में आरूढ़ प्रहस्त क्रुद्ध हो उठा और हाथ में धनुष लेकर वानरों का विनाश करने लगा।

ततः सृजन्तं बाणौघान् प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम्।
ददर्श तरसा नीलो विनिघ्नन्तं प्लवङ्गमान्॥ १६॥

रथारूढ़ प्रहस्त को बड़े वेग से बाणों की वृष्टि के द्वारा वानर-सेना का संहार करते हुए वानर-सेनापति नील ने देखा।

ततः स चापमुद्गृह्य प्रहस्तस्य महाबलः।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः॥ १७॥

तब नील युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा और प्रहस्त के हाथ से उसके धनुष को छीनकर महाबली नील ने उसे तोड़ डाला तथा बार-बार सिंह-गर्जना की।

विधनुस्तु कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे॥ १८॥

जब नील ने राक्षस सेनापति प्रहस्त को धनुषरहित कर दिया तब प्रहस्त एक भयानक मुसल हाथ में लेकर कूद पड़ा।

तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ।
स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ॥ १९॥

अन्त में दोनों बलवान् सेनापति एक-दूसरे के शत्रु होकर और मतवाले हाथियों की भाँति लड़ते-लड़ते लहू-लुहान हो गये।

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः।
प्रहस्तः परमायत्तस्य सुस्राव शोणितम्॥ २०॥

लड़ते-लड़ते प्रहस्त ने नील के ललाट में बड़े जोर से मुसल का प्रहार किया जिससे नील के सिर से रुधिर की धारा बह निकली।

ततः शोणितदिग्धाङ्गः स प्रगृह्य महाशिलाम्।
तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः॥ २१॥

तब रक्त से लथपथ नील ने भी एक बड़ी शिला उठाकर उस युद्धाभिलाषी और मुसल से लड़नेवाले प्रहस्त के सिर पर दे मारी।

नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा॥ २२॥

कपिश्रेष्ठ नील द्वारा फेंकी गई उस शिला के प्रहार से प्रहस्त का सिर चकनाचूर हो गया।

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ २३॥

उस शिला के प्रहार से प्रहस्त निर्जीव, कान्तिहीन, बलहीन एवं निश्चेष्ट होकर जड़ कटे हुए वृक्ष की

भाँति सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा।

हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महद् बलम्।
रक्षसामप्रहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह॥ २४॥

नील द्वारा प्रहस्त के मारे जाने पर राक्षसों की कभी विचलित न होनेवाली महती सेना उदास होकर लङ्कापुरी की ओर चल दी।

➤ चतुस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३४)

रावण का स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान, हनुमान् का पराक्रम और राम द्वारा रावण का पराभव—

संख्ये प्रहस्तं निहितं निशम्य
शोकार्दितः क्रोधपरीतचेताः।
उवाच तत्रैर्ऋतयोधमुख्या-
निन्द्रो यथा चामरयोधमुख्यान्॥ १॥

युद्ध में प्रहस्त के मारे जाने का समाचार सुन रावण शोकाकुल और क्रुद्ध हो अन्य सेनापतियों से इस प्रकार बोला जैसे देवराज इन्द्र अपने प्रमुख योद्धा देवताओं से बोलते हैं—

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसूदनः।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः॥ २॥

हे राक्षसो! जिन शत्रुओं ने इन्द्र का मानमर्दन करनेवाले सेनापति प्रहस्त को उसके अनुयायी सैनिकों और हाथियों सहित मार डाला उन शत्रुओं को तुच्छ नहीं समझना चाहिए।

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन्।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम्॥ ३॥

अब मैं स्वयं शत्रुबल का विचार न कर उस अद्भुत रणक्षेत्र में उन शत्रुओं को मारने तथा विजय प्राप्त करने के लिए जाऊँगा।

अद्य तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम्।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः॥ ४॥

आज मैं उस वानर-सेना को तथा लक्ष्मण-सहित राम को अपने बाणों से उसी प्रकार दग्ध कर दूँगा जैसे दहकती हुई अग्नि वन का भस्म कर डालती है।

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं
रथं तुरङ्गोत्तमराजियुक्तम्।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं
समारुरोहामरराजशत्रुः॥ ५॥

ऐसा कहकर आभूषणों की जगमगाहट से और स्वरूप से देदीप्यमान इन्द्र का शत्रु रावण, उत्तम घोड़ों से युक्त तथा अग्नि के समान चमचमाते रथ पर आरूढ़ हुआ।

स शंखभेरीपणवप्रणादै-
रास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादैः।
पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमान
स्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः॥ ६॥

उस समय तुरही, शंख और ढोल बजने लगे। वीरों ने ताल ठोकीं और अपनी प्रशंसा कर सिंहनाद किया। ऐसे वातावरण में सुन्दर स्तुतियों द्वारा प्रशंसित हो रावण ने युद्ध-यात्रा आरम्भ की।

तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डं
चालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठ-
मुवाच कस्येदमक्षोभ्यसैन्यम्॥ ७॥

राक्षसों की उस प्रचण्ड सेना को युद्ध के लिए आते हुए देख, युद्ध के लिए उत्सुक हो सर्प के समान भुजाओंवाले श्रीराम ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से पूछा—यह निडर एवं अचल सेना किसकी है?

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं
विभीषणः शक्रसमानवीर्यः।



राम-रावण युद्ध

शशंस रामस्य बलप्रवेकं
महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम्॥ ८॥

श्रीराम के इन वचनों को सुन इन्द्र के समान पराक्रमी विभीषण उन महाधैर्यवान् राक्षसश्रेष्ठों की सेना का परिचय देते हुए कहने लगे—

योऽसौ नवार्कोदितताम्रचक्षुः
आरुह्य घण्टानिनदप्रणादम्।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा
महोदरो नाम स एष वीरः॥ ९॥

यह जो प्रातःकालीन सूर्य के समान, लाल-लाल नेत्रोंवाला, हाथी पर सवार हो घण्टा बजाता हुआ और बड़ा कर्कश शब्द करता हुआ चला आ रहा है यह महा धैर्यवान् महोदर नामक वीर है।

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डं
आरुह्य सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशम्।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं
पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः॥ १०॥

जो विविध प्रकार के स्वर्णाभूषणों से भूषित, सन्ध्याकालीन मेघ अथवा पर्वत के समान ऊँचे घोड़े पर सवार हो, देदीप्यमान प्रास को उठाये चला आ रहा इस वज्र के समान वेगवान् वीर का नाम पिशाच है।

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य
विद्युत्प्रभं किङ्करवज्रवेगम्।
वषेन्द्रमास्थाय गिरिप्रकाशं
अयाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी॥ ११॥

जो अपने हाथ में वज्र से भी अधिक वेगवान और विद्युत् की भाँति दीप्तिमान् पैना त्रिशूल लिये हुए, पर्वत के समान ऊँचे वृषभश्रेष्ठ पर चढ़ा हुआ आ रहा है—यह यशस्वी त्रिशिरा है।

असौ स जीमूतनिकाशरूपः
कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः।
समाहितः पन्नगराजकेतुः
विस्फारयन् भाति धनुर्विधुन्वन्॥ १२॥

यह जो मेघ के समान रूपवाला है, जिसकी छाती मांसल, विशाल और सुन्दर है तथा जो सावधान होकर नागराज से चिह्नित ध्वजा लहराता हुआ और धनुष को टंकारता हुआ चला आ रहा है, यह कुम्भ है।

असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो
नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता
रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति॥ १३॥

जो मुकुट धारण किये हुए है तथा जिसका मुखमण्डल चमचमाते हुए कुण्डलों से अलंकृत है, जिसका शरीर हिमालय अथवा विन्ध्याचल की भाँति भयंकर है, जो इन्द्र तथा यम के दर्प का भी दलनकर्ता है, जो सूर्य की भाँति देदीप्यमान हो रहा हे—यही राक्षसों का राजा रावण है।

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमम्।
अहो दीप्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः॥ १४॥

सेना का परिचय प्राप्त कर श्रीराम ने शत्रुसंहारक विभीषण से कहा—वाह! सचमुच राक्षसराज रावण अत्यन्त कान्तिमान् और महान् प्रतापी है।

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः।
न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजः समावृतम्॥ १५॥

किरण-समूह के साथ चमकनेवाले सूर्य की भाँति रावण को कोई देख भी नहीं सकता। तेज के कारण रावण का रूप भी स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता।

दिष्ट्याऽयमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसम्भवम्॥ १६॥

मेरे सौभाग्य से यह दुष्टात्मा आज मेरे सम्मुख आया है, अतः आज मैं सीताहरण का क्रोध इस पर निकालूँगा।

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान्।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम्॥ १७॥

ऐसा कहकर महापराक्रमी राम धनुष ले और उत्तम बाण निकाल लक्ष्मण को पीछे कर खड़े हो

गये।

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
व्यदारयद्वानरसागरौघम्।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥ १८ ॥

इधर राम विभीषण से बातें कर रहे थे उधर महाधैर्यवान् रावण ने वानर-सेना का विध्वंस आरम्भ कर दिया। रावण को वानर-सेना पर आक्रमण करते देख कपिराज सुग्रीव रावण की ओर झपटे।

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
महाहिकल्पं शरमन्तकाभम्।
समाददे राक्षसलोकनाथः
चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥ १९ ॥

सुग्रीव को अपनी ओर झपटते हुए देख, राक्षसराज रावण ने सर्प के आकारवाले, काल के समान एक तीखे बाण को अपने धनुष के ऊपर रखकर और क्रुद्ध हो सुग्रीव के ऊपर छोड़ दिया।

स सायकार्तो विपरीतचेताः
कूजन् पृथिव्यां निपपात वीरः।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ २० ॥

उस बाण के आघात से कपिराज सुग्रीव विकल हो आर्तनाद करते हुए धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़े। उनको धरती पर मूर्छित पड़ा देख, राक्षस-सेना ने प्रसन्न हो गर्जना की।

ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं
प्रच्छादयामास स बाणजालैः।
ते वध्यमानाः पतिताः प्रवीरा
नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ॥ २१ ॥

सुग्रीव को घायल कर रावण ने बाणवृष्टि से समस्त वानर-सेना को ढक दिया। रावण के बाणों की चोट से घायल होकर बहुत-से प्रसिद्ध वीर धराशायी हो गये और बहुत-से रावण के भय तथा बाणों की चोट के कारण दुःख-भरे स्वर से चिल्लाने लगे।

तमालोक्य महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः।
निवार्य शरजालानि प्रदुद्राव स रावणम्॥ २२ ॥

इस स्थिति को देख महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान् रावण के चलाये हुए बाणों को हटा उसके ऊपर टूट पड़े।

रथं तस्य समासाद्य भुजमुद्यम्य दक्षिणम्।
त्रासयन् रावणं धीमान् हनुमान् वाक्यमब्रवीत्॥ २३ ॥

महामति हनुमान् रावण के रथ के ऊपर चढ़ गये और दाहिना हाथ उठा उसे धमकाते हुए यह वचन बोले—

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः।
विधमिष्यति ते देहाद्भूतात्मानं चिरोषितम्॥ २४ ॥

देख, पाँच अँगुलियोंवाला मेरा यह दाहिना हाथ उठा हुआ है। यह तेरे शरीर में बहुत दिनों से रहनेवाले प्राण का बाहर निकाल देगा।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः।
संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत्॥ २५ ॥

भयंकर पराक्रमी रावण हनुमान् के इन वचनों को सुन क्रोध के मारे लाल-लाल नेत्र कर उससे बोला—

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि।
ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर॥ २६ ॥

हे वानर! तु निःशङ्क होकर मुझ पर वार करो जिससे तुम्हें चिर-स्थायी कीर्ति प्राप्त हो। पीछे मैं भी तेरा पराक्रम जान तुझे मार डालूँगा।

रावणस्य वचः श्रुत्वा सायुसूनुर्वचोऽब्रवीत्।
प्रहतं हि मया पूर्वमक्षं स्मर सुतं तव॥ २७ ॥

रावण की इन बातों को सुनकर पवनपुत्र हनुमान् ने कहा—मेरा पराक्रम जानने के लिए मेरे द्वारा मारे गये अपने पुत्र अक्षकुमार का स्मरण कर लो।

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान्॥ २८ ॥

हनुमान् के ऐसा कहने पर महातेजस्वी राक्षसराज रावण ने पवनपुत्र हनुमान् की छाती में एक चपेटा मारा।

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः।
स्थित्वा मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः।
आजघानाभिसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम्॥ २९॥

उस तल प्रहार से हनुमान्‌जी बार-बार चक्कर खाने लगे। थोड़ी देर पश्चात् तेजस्वी एवं महाबुद्धिमान् हनुमान् ने सावधान होकर देवताओं के शत्रु उस रावण के अत्यन्त कुपित होकर एक थप्पड़ जमाया।

ततस्तलेनाभिहतो वानरेण महात्मना।
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः॥ ३०॥

महाबली हनुमान् के थप्पड़ के आघत से रावण उसी प्रकार कम्पायमान हो गया जिस प्रकार भूकम्प के समय पर्वत चलायमान हो जाते हैं।

अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः॥ ३१॥

थोड़ी देर पश्चात् सावधान हो महातेजस्वी रावण ने कहा—बहुत सुन्दर! हे वानर! मेरा शत्रु होने पर भी तेरा बल-वीर्य प्रशंसनीय है।

रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत्।
धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण॥ ३२॥

रावण के ऐसा कहने पर पवनपुत्र हनुमान् बोले—अरे रावण! मेरे बलवीर्य को धिक्कार है जो तू मेरा थप्पड़ खाकर भी अभी तक जीवित है।

सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे।
ततस्त्वां मामिका मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम्॥ ३३॥

अरे प्रहार के तारतम्य को न जाननेवाले दुर्बुद्धे! तू क्यों वृथा मेरी प्रशंसा करता है? अब एक बार तू पुनः मेरे ऊपर चोटकर, फिर मेरा यह घूँसा तुझे यमराज के पास भेज देगा।

ततो मारुतवाक्येन क्रोधस्तस्य तदाज्वलत्।
संरक्तनयनो यत्नात् मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम्॥ ३४॥
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान्।
हनुमान् वक्षसि व्यूढे सञ्चचाल पुनः पुनः॥ ३५॥

हनुमान् के इन जले कटे वचनों को सुन रावण का क्रोध भड़का और उसने लाल-लाल नेत्र कर दाहिने हाथ का घूँसा हनुमान् की छाती में दे मारा हनुमान् जी की विशाल छाती में घूँसे की चोट लगने से वे बार-बार मूर्छित होने लगे।

विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम्।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे॥ ३६॥

महाबली हनुमान् को मूर्छित होते देख, रावण ने मेघ के समान गड़गड़ाते हुए रथ को हँकवा लक्ष्मण के ऊपर आक्रमण किया।

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो
विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम्।
अभ्येहि मामेव निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हः॥ ३७॥

रावण को अपने ऊपर झपटते और अपना विशाल धनुष टंकारते देख प्रबल प्रतापी लक्ष्मण ने उससे कहा—हे राक्षसेन्द्र! मेरे पास आओ और मुझसे लड़ो! क्योंकि तुम इन वानरों से लड़ने योग्य नहीं हो।

स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं
ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा।
आसाद्य सौमित्रिमवस्थितं तं
कोपान्वितो वाक्यमुवाच रक्षः॥ ३८॥

लक्ष्मण की बातों और घोष-परिपूर्ण उनकी प्रत्यञ्चा की टंकार का भयंकर शब्द सुनकर रावण पास खड़े हुए लक्ष्मण से क्रोधयुक्त यह वचन बोला—

दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं
प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः।
अस्मिन् क्षणे यास्यसि मृत्युदेशं
संसाद्यमानो मम बाणजालैः॥ ३९॥

हे लक्ष्मण! मरने के समय विपरीत बुद्धि हो जाने के कारण ही तुम सौभाग्यवश मेरे सामने आये

हो। अब तुम इसी क्षण मेरी शर-वृष्टि के आघात से यमलोक पहुँचोगे।

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो
जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणि:
आगच्छ किं मोघविकत्थनेन॥ ४०॥

रावण के इन वचनों को सुन और उसके बल-पराक्रम की कुछ भी परवाह न कर लक्ष्मणजी बोले—हे राक्षसेन्द्र! मैं तेरे बल-पराक्रम को जानता हूँ। आ और मेरे साथ युद्ध कर। व्यर्थ की बक-झक से क्या लाभ?

स एवमुक्त: कुपित: ससर्ज
रक्षोधिप: सप्त शरान् सुपुङ्खान्।
तांल्लक्ष्मण: काञ्चनचित्रपुङ्खै:
चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारै:॥ ४१॥

लक्ष्मणजी की इस फटकार को सुन राक्षसराज रावण ने कुपित हो सात सुन्दर पुंख लगे हुए बाण लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़े। लक्ष्मणजी ने भी स्वर्ण-भूषित पुंख लगे हुए और अत्यन्त पैनी धारवाले बाणों से उन सातों बाणों का काट डाला।

स लक्ष्मणश्चाशु शराञ्शिताग्रान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान्।
सन्धाय चापे ज्वलनप्रकाशान्
ससर्ज रक्षोधिपतेर्वधाय॥ ४२॥

रावण के बाणों को काटकर लक्ष्मणजी ने धनुष को चढ़ा, इन्द्र के वज्र के समान वेगवान् और अग्नि के समान देदीप्यमान बाण रावण का वध करने के लिए छोड़े।

स तान् प्रचिच्छेद राक्षसेन्द्र:
छित्त्वा च तांल्लक्ष्मणमाजघान।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण
स्वयम्भुदत्तेन ललाटदेशे॥ ४३॥

राक्षसराज रावण ने उन समस्त बाणों का काटकर ब्रह्म-प्रदत्त एवं प्रलयकालीन अग्नि के तुल्य प्रचण्ड एक बाण लक्ष्मणजी के मस्तक में मारा।

स लक्ष्मणो रावणसायकार्त:
चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्
चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रो:॥ ४४॥

उस बाण के आघात से लक्ष्मणजी व्याकुल हो गये और जिस हाथ से उन्होंने धनुष पकड़ा हुआ था वह भी कुछ ढीला पड़ गया, परन्तु थोड़ी ही देर में स्वस्थ होकर लक्ष्मण ने इन्द्रशत्रु रावण का धनुष काट डाला।

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथि: शिताग्रै:।
स सायकार्तो विचचाल राजा
कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद॥ ४५॥

उसके धनुष को काटकर लक्ष्मणजी ने रावण के तीन पैने-पैने बाण ऐसे मारे कि उनके आघात से वह व्याकुल होकर मूर्छित हो गया, फिर बड़ी कठिनाई से वह होश में आया।

स कृत्तचाप: शरताडितश्च
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्त:।
चिक्षेप शक्तिं स्वयम्भुप्रदत्तां
सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथ:॥ ४६॥

धनुष के कट जाने और लक्ष्मणजी के छोड़े बाणों के आघात से रावण का सारा शरीर चरबी मिले रक्त से तरबतर हो गया। अन्त में प्राण बचाने को कोई उपाय न देख राक्षसराज रावण ने लक्ष्मण को लक्ष्य करके ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त शक्ति छोड़ी।

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रै:
जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पै:।
तथापि सा तस्य विवेश शक्ति:
बाह्वन्तरं दाशरथेर्विशालम्॥ ४७॥

उस शक्ति को अपने ऊपर आते देख लक्ष्मणजी

ने अग्नितुल्य अनेक बाण चला उसे काटकर गिरा देना चाहा, परन्तु वह शक्ति लक्ष्मणजी की विशाल छाती पर आ ही लगी।

स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सन्
मुहुः प्रजज्वाल रघुप्रवीरः।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य
जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥ ४८॥

शक्ति-सम्पन्न लक्ष्मणजी उस शक्ति के आघात से घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनको मूर्छित हो पृथिवी पर पड़ा देख रावण झपटा और उसे अपनी दोनों भुजाओं[१] से पकड़ा।

परं दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यामप्रभुर्लङ्घनेऽभवत्॥ ४९॥

देवताओं के कण्टक रावण ने दानवदर्पहारी लक्ष्मणजी को दोनों भुजाओं[२] में दबाकर उठाना चाहा, परन्तु उन्हें उठाने में वह असमर्थ रहा।

अथ वायुसुतः क्रुद्धो रावणं समभिद्रवत्।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना॥ ५०॥

लक्ष्मणजी को गिरते और रावण को उन्हें उठाने का प्रयत्न करते देख हनुमान्जी क्रुद्ध हो तुरन्त वहाँ पहुँचे और क्रोध में भरकर वज्र के समान एक घूँसा रावण की छाती में मारा।

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामपतद् भूमौ चचाल च पपात च॥ ५१॥

उस घूँसे की चोट से राक्षसराज रावण चक्कर खाकर घुटने के बल भूमि पर गिर पड़ा।

हनुमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम्।
आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्॥ ५२॥

रावण को परास्त कर तेजस्वी हनुमान् रावण द्वारा घायल किये गये तेजस्वी लक्ष्मण को अपनी दोनों भुजाओं में दबा श्रीराम के पास ले आये।

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे।
आददे निशितान्बाणाञ्जग्राह च महाद्धनुः॥ ५३॥

उधर महातेजस्वी रावण ने भी उस महायुद्ध में सचेत होने पर अपना विशाल धनुष उठाया और पैने-पैने बाण छोड़ना आरम्भ किया।

निपातितमहावीरां द्रवन्तीं वानरीं चमूम्।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत्॥ ५४॥

रावण के हाथों अपने अनेक वानरवीरों का मारा जाना तथा वानर-सेना को भागते देख, श्रीराम रावण की ओर झपटे।

ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम्।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह॥ ५५॥

रावण के समीप जा राम ने धनुष की डोरी का वज्र के समान भयंकर शब्द किया और, फिर गम्भीर वाणी से राक्षसराज रावण से कहा—

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
क्व नु राक्षसशार्दूल गतो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ५६॥

अरे राक्षस-शार्दूल! खड़ा रह! खड़ा रह! तू इस प्रकार मेरा अप्रिय कार्य कर अथवा मुझे चिढ़ा कर कहाँ जाकर मुझसे बच सकता है।

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महावीर्यः।
आजघान शरैस्तीक्ष्णैः कालानलशिखोपमैः॥ ५७॥

राम के इन वचनों को सुनकर महाबली राक्षसराज रावण ने श्रीराम के ऊपर कालाग्नि के समान तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया।

---

१. रावण के दस सिर और बीस भुजाएँ बताई जाती हैं, परन्तु यह धारणा मिथ्या है। हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि रावण के एक सिर और दो भुजाएँ ही थीं, फिर भी कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि जब रावण युद्ध करता था, तब उसके दस सिर और बीस भुजाएँ हो जाती थीं। यहाँ रावण युद्धक्षेत्र में है, फिर भी आदि-कवि ने उसकी दो भुजाओं का ही वर्णन किया है। श्लोक में **भुजाभ्याम्** पद दो ही भुजा होना सिद्ध करता है।

२. यहाँ भी '**बाहुभ्याम्**' पद है—दो बाहु।

तस्याभिचङ्क्रम्य रथं सचक्रं
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम्।
ससारथिं साशनिशूलखड्ग
रामः प्रचिच्छेद शरैः सुपुङ्खैः॥ ५८॥

तब राम ने भी रावण के सम्मुख सुन्दर फरवाले बाणों से रावण के रथ के पहिये, ध्वजा, छत्र, बड़ी पताका, वज्र, शूल और तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा उसके रथ के घोड़ों और सारथि को भी मार डाला।

अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान
बाणेन वज्राशनिसन्निभेन।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे
वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः॥ ५९॥

जैसे महाबली इन्द्र ने सुमेरु पर्वत को विदीर्ण कर डाला था वैसे ही श्रीराम ने वज्र और विद्युत् के समान एक बाण को रावण की सुन्दर एवं विशाल छाती में मारा।

यो वज्रपाताशनिसन्निपातान्
न चुक्षुभे नापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तः
चचाल चापं च मुमोच वीरः॥ ६०॥

जो रावण बड़े-बड़े वज्रों के आघात से भी न तो कभी घबराया था और न विचलित हुआ था वही रावण आज श्रीराम के बाण की चोट से अत्यन्त पीड़ित हो विचलित हो गया और उसके हाथ से धनुष भी छूट गया।

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः
समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम्।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा॥ ६१॥

जब श्रीराम ने राक्षसराज रावण को मूर्छित देखा तब उन्होंने एक चमकता हुआ अर्ध-चन्द्राकार बाण छोड़कर रावण के सूर्य के समान देदीप्यमान मुकुट को काट गिराया।

तं निर्विषाशीविषसन्निकाशं
शान्तार्चिषं सूर्य मिवाप्रकाशम्।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूट-
मुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम्॥ ६२॥

उस समय रावण की अवस्था ठीक वैसी ही थी जैसी विषहीन सर्प की अथवा शान्त हुई किरणों से युक्त प्रकाश-रहित सूर्य की होती है। वह कान्तिहीन हो गया। उसके समस्त किरीट कट गये। ऐसे रावण से समर-भूमि में श्रीराम ने कहा—

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात्परिश्रान्त इव व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि॥ ६३॥

हे राक्षसेन्द्र! तूने मेरे प्रधान वीरों पर आक्रमण कर बड़ा भयंकर कार्य किया है। तुम युद्ध करते-करते थक गये हो। ऐसा समझकर मैं तुम्हें अपने बाणों से जान से नहीं मारता।

गच्छानुजानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंरराज लङ्काम्।
आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं द्रक्ष्यसि मे रथस्थः॥ ६४॥

हे निशाचर! अब तू चला जा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि युद्ध करते-करते तू थक गया है। अब तू लङ्का में जाकर अपनी थकावट दूर कर और कल दूसरे रथ में बैठकर तथा दूसरा धनुष लेकर आना और फिर मेरा बल देखना।[१]

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो
निकृत्तचापः स हताश्वसूतः।

---

१. यहाँ श्रीराम का आर्य-शील दर्शनीय है। राम चाहते तो रावण का काम तमाम कर सकते थे, परन्तु रावण को रथ और अस्त्र-शस्त्रों से विहीन देखकर राम ने रावण का वध करना उचित नहीं समझा।

शरार्दितः कृत्तमहाकिरीटो
विवेश लङ्कां सहसा स राजा॥ ६५॥

जिसका दर्प और हर्ष नष्ट हो चुका था, जिस का धनुष टूट गया था, जिसके रथ के घोड़े और सारथि मार डाले गये थे, जो बाणों से घायल था जिसका मुकुट भी काट दिया गया था—ऐसा रावण राम द्वारा फटकारा जाकर तुरन्त लङ्का में चला गया।

❮ पञ्चत्रिंशः सर्गः ❯ (३५)

रावण का कुम्भकर्ण को युद्ध के लिए कहना—

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः॥ १॥

लङ्का में प्रविष्ट होकर भी रावण राम के बाणों के भय से व्याकुल हो गया। उसका गर्व चूर हो गया था, अतः उसका मन बहुत दुःखी हुआ।

स पराजितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम्।
ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाबलः॥ २॥

महाबली रावण ने अपनी पराजय और प्रहस्त का मारा जाना देख भयंकरी राक्षसी सेना को आज्ञा दी—

द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम्।
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम्।
सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कामोपहतचेतनः॥ ३॥

(वानर लोग लङ्का में न घुस जायें) अतः राक्षस नगर के द्वार पर पहरा दें और परकोटों की दीवारों पर चढ़कर नगर की निगरानी करें तथा गहरी नींद में पड़े सोते हुए[1] कुम्भकर्ण को जगाओ क्योंकि काम के वशवर्ती होने के कारण उसकी बुद्धि मारी गई है, इसीलिए वह मजे में बेखटके सोया करता है।

कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः।
स तु संख्ये महाबाहुः ककुदः सर्वरक्षसाम्॥४

वह मूढ़ कुम्भकर्ण ग्राम्यसुख (स्त्री-पुत्रादि के सुख) में अनुरागी रहकर सोया ही करता है। वह महाबलवान् युद्ध करने में सब राक्षसों से श्रेष्ठ है।

रामेण हि निरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन् सुदारुणे।
भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते॥ ५॥

इस दारुण संग्राम में मैं जो राम के द्वारा परास्त हो गया हूँ, कुम्भकर्ण के जागने पर मेरी पराजय का वह शोक दूर हो जाएगा।

किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि।
ईदृशे व्यसने प्राप्ते यो न साह्याय कल्पते॥ ६॥

यदि ऐसी विपत्ति के समय भी इन्द्र के समान पराक्रमी कुम्भकर्ण मेरी सहायता नहीं करेगा तो मैं

---

१. कुम्भकर्ण के सम्बन्ध में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह छह मास तक सोया करता था और एक दिन जागा करता था, परन्तु महर्षि वाल्मीकि की कृति का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से इस बात की पुष्टि नहीं होती। उपर्युक्त तीसरे और चौथे श्लोक से ही इस मिथ्या धारणा का खण्डन हो जाता है। कुम्भकर्ण के सोने का तात्पर्य इतना ही है कि वह काम के वशीभूत होकर अपने स्त्री-पुत्रों में ही आसक्त रहता था। राज्यकार्य की घटनाओं का पता होने पर भी वह उनमें कोई रुचि नहीं लेता था—बस यही उसका सोना था।

प्रथम विश्वयुद्ध १९१४ से १९१८ तक लड़ा गया। यह युद्ध किसी ग्राम का अथवा एक देश का नहीं था, अपितु सारा संसार इस युद्ध में उलझा हुआ था, परन्तु वेदों पर महान् परिश्रम करनेवाले मैकडानल को इस युद्ध का, जो एक-दो दिन नहीं पाँच वर्ष तक चला, ज्ञान नहीं था। ठीक इसी प्रकार कुम्भकर्ण भी अपने परिवार के साथ क्रीड़ासक्त रहता था, राजकार्यों की ओर कोई ध्यान नहीं देता था—बस यही उसका सोना था और इसी निद्रा से रावण उसे उठाना चाहता था।

उसे लेकर क्या करूँगा?

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः।
जग्मुः परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम्॥ ७॥

राक्षसराज रावण के इन वचनों को सुन वे राक्षस अत्यन्त व्याकुल होते हुए कुम्भकर्ण के घर गये।

शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन्।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरुवाच ह॥ ८॥

कुम्भकर्ण के घर में पहुँच, उसको शीश झुका और प्रणाम कर, वे राक्षस उसे चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। तब रावण के मन्त्री यूपाक्ष ने हाथ जोड़कर कहा—

वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता।
सीताहरणसन्तप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम्॥ ९॥

सीता-हरण से सन्तप्त राम, हम लोगों के भय का मुख्य कारण बन रहे हैं। उनकी सेना के पर्वताकार वानरों ने लङ्कापुरी को घेर लिया है।

एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी।
कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः॥ १०॥

पहले एक ही वानर ने लङ्का में प्रविष्ट होकर लङ्का को जला डाला था और हाथियों और सैन्य सहित राजकुमार अक्ष को मार डाला था (अब तो उस जैसे अनेक वानर लङ्का को घेरे हुए हैं।)

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः।
मृतेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यतेजसा॥ ११॥

औरों की तो बात ही क्या—देवताओं के शत्रु स्वयं पुलस्त्यनन्दन राक्षसराज रावण भी सूर्य के समान तेजस्वी श्रीराम के हाथों से मरते-मरते भाग आये हैं, क्योंकि राम ने दया करके उससे कहा—अरे मुर्दे! भाग जा! इस समय मैं तुझे छोड़े देता हूँ।

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराजयम्।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत्॥ १२॥

यूपाक्ष द्वारा अपने भाई रावण के पराजय का वृत्तान्त सुनकर, कुम्भकर्ण त्योरी चढ़ाकर यूपाक्ष से बोला—

सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम्।
राघवं च रणे हत्वा पश्चाद्द्रक्ष्यामि रावणम्॥१३

हे यूपाक्ष! मैं आज युद्धक्षेत्र में श्रीराम को एवं लक्ष्मण-सहित सारी वानरी सेना को मारकर, फिर रावण के दर्शन करूँगा।

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम्।
महोदरो नैर्ऋतयोधमुख्यः
कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे॥ १४॥

कुम्भकर्ण के इन गर्वयुक्त और क्रोधपूर्ण वचनों को सुनकर राक्षस योद्धाओं में प्रधान महोदर हाथ जोड़कर बोला—

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च।
पश्चादपि महाबाहो शत्रून् युधि विजेष्यसि॥ १५॥

हे महाबाहो! पहले आप रावण की बातें सुन लें और उनके कथन में जो गुण-दोष हों उन पर विचार कर लें तत्पश्चात् आप शत्रु से युद्ध कर उसे पराजित करें।

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः।
कुम्भकर्णो महातेजाः सम्प्रतस्थे महाबलः॥ १६॥

महोदर के इन वचनों को सुन महातेजस्वी एवं महाबली कुम्भकर्ण, उन राक्षसों को साथ लिये हुए वहाँ से चलने के लिये तैयार हुआ।

भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोगणसमन्वितः।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम्॥ १७॥

जब कुम्भकर्ण राक्षसों को साथ ले अपने भाई रावण के राजमहल की ओर प्रस्थानित हुआ तब उसके पैर की धमक से पृथिवी भी कांप-सी रही थी।

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम्॥ १८॥

भाई के गृह में प्रवेश कर और राजभवन की ड्योढ़ी को लाँघकर उसने देखा कि उसका बड़ा भाई उद्विग्न हो पुष्पक विमानवत् ऊँची एक सेज पर

बैठा हुआ है।

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम्।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत्॥ १९॥

जब रावण ने कुम्भकर्ण को आते हुए देखा तब वह प्रसन्न होकर जल्दी से उठा और कुम्भकर्ण को अपने समीप लिवा लाया।

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत्॥ २०॥

महाबली कुम्भकर्ण सेज के ऊपर बैठे हुए अपने भाई की चरण-वन्दना करके बोला—कहिए, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः।
शंस कस्माद्भयं तेऽस्ति कोऽद्य प्रेतो भविष्यति॥ २१॥

हे राजन्! आपने मुझे आदर-पूर्वक कैसे स्मरण किया है? बताइए आपको किससे भय उत्पन्न हो गया है और कौन मेरे हाथों से मृत्यु के मुख में जाएँगा।

भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम्।
ईषत्तु परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत्॥ २२॥

कुपित बैठे हुए कुम्भकर्ण से रावण कुछ-कुछ कुपित हो और आँखें तरेरकर बोला—

अद्य ते सुमहान् कालः शयानस्य महाबल।
सुखितस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम्॥ २३॥

हे बलशालिन्! तुम्हें ग्राम्यसुख (स्त्री-पुत्र के मोह) में बेसुध पड़े बहुत दिन हो गये इसी से तुम्हें यह भी पता नहीं कि मुझे राम से भय उत्पन्न हो गया है।

एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली।
समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति॥ २४॥

दशरथ का पुत्र महाबली राम, सुग्रीव को साथ ले वानर-सेना सहित समुद्र को पार कर लङ्का में आ पहुँचा है और हमारे कुल का नाश कर रहा है।

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्यवपद्य माम्।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम्॥ २५॥

मेरा समस्त ऐश्वर्य नष्ट हो चुका है, अतः तुम कृपा कर मेरी रक्षा करो। साथ ही इस लंकापुरी को भी जिसमें अब केवल बूढ़े और बच्चे ही रह गये हैं, नष्ट होने से बचाओ।

भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरुकर्म सुदुष्करम्।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित्परंतप॥ २६॥

हे महाबाहो! आप अपने भाई के लिए इस अत्यन्त कठिन कार्य का करो। हे परन्तप! मैं आज तक पहले कभी भी किसी भाई के सामने ऐसा नहीं गिड़गिड़ाया।

◀ षट्त्रिंशः सर्गः ▶ (३६)

कुम्भकर्ण और रावण का वार्तालाप तथा कुम्भकर्ण का युद्ध के लिए प्रस्थान—

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम्।
कुम्भकर्णो बभाषेऽथ वचनं प्रजहास च॥ १॥

राक्षसराज रावण के उस रोने और गिड़गिडाने को सुनकर कुम्भकर्ण अट्टहास करता हुआ बोला—

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये।
हितेष्वनभिरक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया॥ २॥

हे राजन्! पहले विचार-विमर्श करते समय हम लोगों को जो दोष दिखाई दिये थे वे ही दोष तब तुम्हारे सामने उपस्थित हो गये हैं, उस समय तुमने अपने हितैषियों की उन बातों को पसन्द नहीं किया था।

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः॥ ३॥

जिस प्रकार महापातकियों को नरक में गिरना पड़ता है उसी प्रकार सीता-हरण रूपी पाप का फल तुम्हें शीघ्र ही मिल गया।

प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम्।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः॥ ४॥

महाराज! इस पाप को करने से पूर्व आपने भली-भाँति विचार नहीं किया। अपने बल के अहंकार से आपने इस कुकर्म के दुष्टपरिणाम की ओर ध्यान नहीं दिया।

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ॥ ५॥

जो राजा राजपद पर आरूढ़ होकर प्रथम करने योग्य कार्यों को पीछे और पीछे करने योग्य कार्यों को पहले करता है—वह राजनीति और अनिति का नहीं जानता।

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत्।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव॥ ६॥

जो काम देश और काल को विचारे बिना किये जाते हैं वे समस्त कार्य दूषित होने के कारण वैसे ही विपरीत फल देनेवाले होते हैं जैसे मन्त्र से असंस्कारित अग्नि में डाली हुई आहुतियाँ इष्टफल-दात्री नहीं होतीं।

त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपश्यति।
सचिवैः समयं कृत्वा स सम्यग्वर्तते पथि॥ ७॥

जो राजा तीन[१] प्रकार के कर्मों को करने से पूर्व, पाँच[२] विषयों में अपने मन्त्रियों से परामर्श कर एक सिद्धान्त निश्चित कर लेता है वही समाज में श्रेष्ठ और नीति-मार्ग पर चलनेवाला माना जाता है।

यथागमं च यो राजा समयं विचिकीर्षति।
बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति॥ ८॥

जो राजा नीतिशास्त्र का उल्लंघन न करके नीतिशास्त्र के अनुसार आचरण करता है, जो मन्त्रियों के साथ विचार कर तथा अपने हितैषी मित्रों के साथ परामर्श कर किसी कार्य को करने का निश्चय करता है वही राजा नीतिवान् कहलाता है।

धर्ममर्थं च कामं च सर्वान् वा रक्षसां पते।
भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः॥ ९॥

हे राक्षसराज! जो राजा धर्म, अर्थ और काम को पृथक्-पृथक् अथवा तीनों में से दो-दो (धर्मार्थ, अर्थ-कर्म, कामार्थ) को अथवा सबको यथा समय करता है अर्थात् प्रात:काल करने योग्य कार्य को प्रातः, मध्याह्न में करने योग्य कार्य का मध्याह्न में और सायंकाल करने योग्य कार्य को सायंकाल में करता है वही राजा नीतिज्ञ कहलाता है।

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम्॥ १०॥

धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में जो श्रेष्ठ है (अर्थात् धर्म) उसको जानकर भी जो धर्मानुसार आचरण नहीं करता वह चाहे राजा हो अथवा राजा के सदृश कोई बड़ा आदमी हो—उसका बहुत-सा शास्त्र सुनना व्यर्थ ही है।

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं काले च विक्रमम्।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ॥ ११॥
काले धर्मार्थकामान्यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह।
निषेवेतात्मवाँल्लेके न स व्यसनामाप्तुयात्॥ १२॥

हे राजन्! समय के अनुसार शत्रु के पास जाकर उसे द्रव्य देना (दान) वैरी के साथ समीचीन भाषण (साम) शत्रु के मित्रों में फूट डालना (भेद) और शत्रु को दण्ड देना तथा पहले कहे गये पाँच योग और दोनों नीति-अनीति तथा धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों की मन्त्रणा मन्त्रियों के साथ जो जितेन्द्रिय राजा उचित समय पर किया करता है उसे संसार में कभी दु:ख प्राप्त नहीं होता।

हितानुबन्धमालोच्य कार्याकार्यमिहात्मनः।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः स हि जीवति॥ १३॥

राजा का उचित है कि अर्थतत्त्वज्ञ (सब बातों में

१. तीन कर्म:—उत्तम, मध्यम, अधम अथवा सन्धि, विग्रह और तटस्थता।
२. पाँच विषय अथवा योग:—१ कार्य आरम्भ करने के उपाय २. स्वकीय जनबल और धनबल ३. देश और काल ४. आपत्ति का निवारण और ५. कार्य की सफलता।

ऊँच-नीच को समझनेवाले) मन्त्रियों से अपने हित के कार्यों के सम्बन्ध में कर्तव्याकर्तव्य का विचार कर निश्चय करे। जो राजा ऐसा करता है, वही इस संसार में टिक सकता है।

यो हि शत्रुमभिज्ञाय नात्मानमभिरक्षति।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान् स्थानाच्च व्यवरोप्यते॥ १४॥

जो राजा शत्रु को तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करता वह बड़े भारी अनर्थ को प्राप्त होकर स्थानभ्रष्ट हो जाता है।

यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।
तदेव नो हितं कार्यं यदिच्छसि च तत्कुरु[१]॥ १५॥

हे रावण! तुम्हारी स्त्री मन्दोदरी ने और मेरे छोटे भाई विभीषण ने पहले ही जो सलाह दी थी वही हम लोगों के लिए कल्याणकारक थी। जब उसको ही तुमने नहीं माना तब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।

तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम्।
भ्रुकुटिं चैव सञ्चक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत॥ १६॥

कुम्भकर्ण के इस भाषण को सुन, रावण ने भौंहें टेढ़ी कीं और क्रोध में भरकर बोला—

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा काले युक्तं विधीयताम्॥ १७॥

हे कुम्भकर्ण! मैं तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता हूँ और आचार्य के तुल्य मान्य हूँ, फिर तू मुझे क्या सिखाता है? और इस प्रकार व्यर्थ बोलने से क्या लाभ होगा? इस समय तो समयानुरूप कार्य करना चाहिए।

विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा।
नाभिपन्नमिदानीं यद्व्यर्थास्तस्य पुनः कथाः॥ १८॥

मैंने चित्त की भ्रान्ति से, अज्ञानवश अथवा अपने बलवीर्य के अहंकार से जो तुम्हारी बात नहीं मानी उसकी बार-बार चर्चा करना व्यर्थ है।

अस्मिन् काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विधीयताम्।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि॥ १९॥

अब तो इस समय जो करना उचित है वह करो। जो बात बीत गई वह बीत गई, उसके लिए पछताना व्यर्थ है।

यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाऽधिगच्छसि।
ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु॥ २०॥
स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्यवपद्यते।
स बन्धुर्योपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते॥ २१॥

हे कुम्भकर्ण! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम है और तुम्हें अपने पराक्रम के ऊपर भरोसा है तो मुझसे जो भूल हुई है उसे तुम अपने पराक्रम से सम्भाल लो। देखो, मित्र वही है जो विपत्ति में पड़े दीन-दुःखी पर दया करता है और भाई वही है जो कुमार्गगामी बन्धु की भी सहायता करे।

तमथैवं ब्रुवाणं तु वचनं धीरदारुणम्।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह॥ २२॥

'आप जैसा चाहें वैसा करें'—इस प्रकार कुम्भकर्ण द्वारा कही गई बुद्धियुक्त बात के उत्तर में जब रावण ने ऐसे कठोर वचन कहे, तब कुम्भकर्ण ने यह समझकर कि रावण रुष्ट हो गया है, धीरे-धीरे ये मधुर वचन कहे—

अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्य ते।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि॥ २३॥

हे राक्षसराज! अब आप सन्ताप को त्याग दीजिए और अपने क्रोध को शान्त कर स्वस्थ हो जाइए।

अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थां गतं मया।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव॥ २४॥

राजन्! सुख-दुःख की सभी अवस्थाओं में मुझे तुम्हारे हित की बात अवश्य कहनी चाहिए इसी से मैंने बन्धु-भाव और भ्रातृस्नेह से प्रेरित होकर ये सब

---

१. इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि कुम्भकर्ण को लंका में होनेवाली घटनाओं का पता रहता था, परन्तु यह सोचकर कि रावण करेगा तो अपने मन की ही—वह राजकार्यों में कोई भाग नहीं लेता था—बस कुम्भकर्ण इसी रूप में सोता था।

बातें आपसे कही थीं।

सदृशं यत्तु कालेऽस्मिन् कर्तुं स्निग्धेन बन्धुना।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे॥ २५॥

परन्तु हे राजन्! इस समय एक हितैषी भाई का जो कर्तव्य है वह मैं करूँगा। तुम देखना कि आज रणक्षेत्र में मैं तुम्हारे शत्रुओं का कैसा विनाश करता हूँ।

अद्य रामस्य तद् दृष्ट्वा मयाऽऽनीतं रणाच्छिरः।
सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता॥ २६॥

हे महाबाहो! आज तुम संग्राम-भूमि से मेरे द्वारा लाये गये राम के कटे हुए सिर को देखकर हर्षित होना और सीता दुःखी हो।

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन् राक्षसाधिपः॥ २७॥

बुद्धिमान् कुम्भकर्ण के ऐसा कहने पर रावण अट्टहास करता हुआ बोला—

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च॥ २८॥

हे कुम्भकर्ण! मेरे हितसाधन में तत्पर और बल-विक्रम में तुम्हारे समान मेरा शुभचिन्तक और कोई नहीं है, अतः अब तुम शत्रु को मारने और विजयश्री प्राप्त करने के लिए प्रस्थान करो।

इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कुम्भकर्णः समुद्यतः॥ २९॥

महाबली कुम्भकर्ण इस प्रकार प्रोत्साहित किये जाने पर हर्षित हो राजाज्ञा से युद्धयात्रा करने के लिए तैयार हो गया।

आदाय निशितं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम्।
कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत्॥ ३०॥

शत्रु के रक्त से रञ्जित एक पैने शूल को ले, महातेजस्वी कुम्भकर्ण रावण से बोला—

गमिष्याम्यहमेकाकी निष्ठत्विह बलं महत्।
अद्य तान् क्षुभितान् क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान्॥ ३१॥

मैं अकेला ही युद्ध के लिए प्रस्थान करूँगा, अपनी विशाल सेना को तुम यहीं रहने दो। मैं आज क्रुद्ध हो उन चञ्चल वानरों को खा डालूँगा।

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः।
वानरा हि महात्मानः शीघ्राः सुव्यवसायिनः॥ ३२॥

कुम्भकर्ण के इन वचनों को सुन रावण ने कहा— आप सेना-सहित और हाथ में शूल और मुद्गर लेकर आगे जाओ, क्योंकि वानर लोग बड़े बुद्धिमान्, वेगवान् और दृढ़ निश्चयवाले हैं। (ऐसा न हो कि तुम्हें निहत्था देख वे तुम्हारा ही काम तमाम कर दें।)

अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम्।
आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः॥ ३३॥

यह कह और आसन से उठ महातेजस्वी रावण ने मणियों की एक माला कुम्भकर्ण के गले में पहना दी।

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
प्रणम्य शिरसा तस्मै सम्प्रतस्थे महाबलः॥ ३४॥

महाबली कुम्भकर्ण न रावण को गले लगाया, फिर उसकी प्रदक्षिणा कर तथा सिर झुकाकर प्रणाम कर वहाँ से प्रस्थानित हुआ।

➤ सप्तत्रिंशः सर्गः ➤ (३७)

कुम्भकर्ण को देख वानर-सेना का पलायन और अङ्गद का उन्हें रोकना—

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान्।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः॥ १॥

पर्वत के समान विशाल डील-डौलवाला महावीर कुम्भकर्ण लंका के परकोटे की दीवार को लाँघ बड़ी शीघ्रता से लंका के बाहर निकला।

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवः॥ २॥

इन्द्र, यम और वरुण से भी अवध्य भयंकर नेत्रोंवाले कुम्भकर्ण को आते देख वानर लोग भागने लगे।

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम्।
सविस्मयमिदं रामो विभीषणमुवाच ह॥ ३॥

विशाल शरीरधारी कुम्भकर्ण को और अपनी भागती हुई सेना का देख श्रीराम अत्यन्त विस्मित होते हुए विभीषण से बोले—

कोऽसौ पर्वतसङ्काशः किरीटी हरिलोचनः।
लङ्काया दृश्यते वीर सविद्युदिव तोयदः॥ ४॥

पर्वत के समान डील डौलवाला, मुकुटधारी, पीले नेत्रोंवाला और दामिनीयुक्त मेघ की भाँति लंका का यह कौन-सा वीर दिखाई पड़ रहा है।

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥ ५॥

जब अक्लिष्टकर्मा राजकुमार श्रीराम ने विभीषण से इस प्रकार पूछा तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने श्रीराम से कहा—

येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान्॥ ६॥

जिसने युद्ध में यमराज और इन्द्र को भी पराजित कर दिया यह वही विश्रवा मुनि का पुत्र प्रतापी कुम्भकर्ण है।

किरीटिनं महाकायं काञ्चनाङ्गदभूषणम्।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवः॥ ७॥

उधर तो श्रीराम और विभीषण में ये बातें हो रही थीं इधर उस मुकुटधारी, विशालकाय, सुवर्ण के बाजूबन्द पहने, भयंकर नेत्रोंवाले कुम्भकर्ण को अपनी ओर आते देख वानरों की वह विशाल सेना भाग खड़ी हुई।

तांस्तु विप्रद्रुतान् दृष्ट्वा बालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत्।
नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम्॥ ८॥

वानरों को भागते देख बालिपुत्र अङ्गद ने नल, नील, गवाक्ष और महाबलवान् कुमुद से कहा—

आत्मानमत्र विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च।
क्व गच्छत भयस्त्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा[१]॥ ९॥

हे वानरो! तुम लोग अपने पराक्रम को और अपने उच्चकुलों को भूलकर तथा भयभीत हो साधारण वानरों की तरह कहाँ भागे जा रहे हो?

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका॥ १०॥

हे सौम्य स्वभाववालो! वाह! वाह!! लौटो! लौटो!! क्या तुम अपने प्राण बचाना चाहते हो? अरे यह कोई लड़नेवाला राक्षस थोड़े ही है। यह तो तुम लोगों को डराने के लिए एक बनावटी पुरुष खड़ा किया गया है।

स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ।
निरायुधानां द्रवतामसङ्गतिपौरुषाः॥ ११॥
दारा ह्युपहसिष्यन्ति स वै घातस्तु जीविनाम्।
कुलेषु जाताः सर्वे स्म विस्तीर्णेषु महत्सु च॥ १२॥

इस प्रकार भागकर प्राण बचाने से क्या लाभ? आप सब अपनी-अपनी जगह लौट आओ। हे प्रतिम-गतिवान् पुरुषार्थ-युक्त वानरो! तुम यदि अपने हथियारों को फेंककर और रणक्षेत्र से भागकर अपने प्राण बचाओगे तो तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी इस कायरता पर हँसेंगी और उनका वह हँसना ही तुम्हारे लिए मरने के समान होगा, फिर तुम लोग तो उच्च और कीर्तियुक्त कुलों में उत्पन्न हुए हो।

---

१. जो लोग हनुमान् आदि को पूँछवाला बन्दर समझते हैं वे तनिक इस श्लोक को देखें। यहाँ वानरों को कुलीन कहा गया है। क्या बन्दरों के कुल होते हैं? एक बात और, यहाँ अङ्गद ने वानरों को **'प्राकृता हरयो यथा'** कहकर साधारण वानरों से भिन्न बताया है, अतः हनुमान् आदि बन्दर नहीं थे।

क्व गच्छथ भयत्रस्ता हरयः प्राकृता यथा।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत॥ १३॥

हे वानरो! तुम भयभीत हो साधारण वानरों की भाँति कहाँ भागे जाते हो? तुम लोग अपने विपुल पराक्रम को भूलकर भयभीत हो गये हो, अतः तुम निश्चय ही अनार्य हो।

विकत्थनानि वो यानि तदा वै जनसंसदि।
तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि महान्ति च॥ १४॥

लोगों के सामने उस समय तुमने अपनी उग्रता दिखाते हुए जो बड़ी बड़ी डींगें हाँकी थीं—वे सब इस समय कहाँ चली गईं?

भीरुप्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम्॥ १५॥

युद्ध में कायर योद्धा की बड़ी निन्दा सुनी जाती है। जो वीर युद्धक्षेत्र से भागकर अपने प्राण बचाता है उसके जीने को धिक्कार है, अतः तुम लोग भय त्यागकर उस मार्ग का अनुसरण करो जिसका शूर लोग अनुसरण करते हैं।

शयामहेऽथ निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः।
दुष्प्रापं ब्रह्मलोकं वा प्राप्नुमो युधिसूदिताः॥ १६॥

यदि हम लोगों ने भागकर अपने प्राण बचाये तो कितने दिन को—जीवन तो थोड़े ही दिनों का है। यदि हम युद्ध में मारे गये तो हमें उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी जो हरेक को मिलना दुर्लभ है।

न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन् गमिष्यति।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा॥ १७॥

श्रीराम की दृष्टि के सामने पड़ यह कुम्भकर्ण उसी प्रकार जीता हुआ नहीं लौटेगा जैसे जलती हुई आग को देखकर पतङ्ग वापस नहीं लौटता, अपितु जलकर समाप्त हो जाता है।

पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान् रक्षामहे वयम्।
एकेन बहवो भग्ना यशोनाशं गमिष्यति॥ १८॥

यदि हम लोगों ने भागकर प्राण बचाये तो लोग कहेंगे कि अकेले कुम्भकर्ण ने बहुत-से बलवानों को भगा दिया, इससे कीर्ति पर धब्बा लग जायेगा।

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा।
नैष्ठिकीं बुद्धिमासाद्य सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः॥ १९॥

अङ्गद के इन उत्साहपूर्ण वचनों को सुनकर वे विशाल शरीरधारी वानर लौट आये और 'विजय प्राप्त करेंगे अथवा अपने प्राणों की आहुति दे देंगे'—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लड़ने की अभिलाषा करने लगे।

प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः॥ २०॥

वे सब वानर अपने प्राणों को हथेली पर रख प्रसन्न होते हुए आगे बढ़े और अपने जीवन की आशा त्याग कर घोर युद्ध करने लगे।

स कुम्भकर्णः संक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
अर्दयन् सुमहाकायः समन्ताद्व्याक्षिपद्रिपून्॥ २१॥

उधर बलवान् एवं विशाल-काय कुम्भकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो और हाथ में गदा उठाकर शत्रुओं को मारकर छितराने लगा।

➤ अष्टात्रिंशः सर्गः ➤ (३८)

लक्ष्मण का पराक्रम और राम द्वारा कुम्भकर्ण का वध—

ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा विनायकाः।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विस्वरं भृशम्॥ १॥

जब कुम्भकर्ण ने वानरों के अनेक यूथपतियों को मार डाला तब सेनापति के बिना कुम्भकर्ण के द्वारा मारे जाते हुए वे वानर भयभीत हो बड़े जोर से आर्त्तनाद करने लगे।

तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः परमबलार्दनः।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः॥ २॥

उस समय शत्रु की सेना का मर्दन और शत्रु के पुर को जीतनेवाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मण क्रुद्ध हो युद्ध करने लगे।

स कुम्भकर्णस्य शराञ्शरीरे सप्त वीर्यवान्।
निचखानाददे बाणान्विससर्ज च लक्ष्मणः॥ ३॥

महापराक्रमी लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में एक साथ सात बाण मारे तत्पश्चात् और बाण भी छोड़े।

पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः।
सावज्ञमेवं प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनम्॥ ४॥

कुम्भकर्ण उन बाणों के आघात से पीड़ित हुआ, परन्तु उसने उस अस्त्रजाल को अपने शरीर से बाहर निकाल फेंका (विशेष=विगत शेषं चकार) और फिर लक्ष्मण का तिरस्कार करते हुआ घटाटोप मेघ के समान गर्ज कर बोला—

अन्तकस्यापि क्रुद्धस्य भयदातारमाहवे।
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया॥ ५॥

हे लक्ष्मण! युद्ध में क्रुद्धकाल को भी भयभीत करनेवाले मुझ निर्भीक के साथ युद्ध कर तुमने अपनी वीरता प्रदर्शित कर दी।

प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः को मे युद्धप्रदायकः॥ ६॥

जब मैं हथियार हाथ में ले साक्षात् काल की भाँति रणभूमि में आता हूँ उस समय जो मेरे सामने खड़ा भी रह सके वह भी प्रशंसा का पात्र है, फिर जो मेरे साथ युद्ध करे उसका तो कहना ही क्या है।

एरावतगजारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः।
नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन॥ ७॥
अद्य त्वयाहं सौमित्रे सत्त्वधैर्यबलोत्साहैः।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम्॥ ८॥

समस्त देवताओं से घिरा हुआ और एरावत हाथी पर आरूढ़ महाराज इन्द्र भी आज तक कभी युद्ध में मेरे सामने खड़ा नहीं रह सका, परन्तु हे सुमित्रानन्दन! तुमने अपने पराक्रम, धैर्य, बल और उत्साह से मुझे सन्तुष्ट कर दिया है, अतः अब मैं तुम्हारी अनुमति ले श्रीराम के पास जाना चाहता हूँ।

इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम्।
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव॥ ९॥

जब कुम्भकर्ण ने प्रशंसायुक्त ये चुभती हुई बातें कहीं तब लक्ष्मणजी ने मुस्कराकर उत्तर देते हुए कहा—

यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राह पौरुषम्।
तत्सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः॥ १०॥

हे वीर! तुम्हारा यह कथन कि तुममें ऐसा पुरुषार्थ है कि देवताओं सहित इन्द्र भी तुम्हारा सामुख्य नहीं कर सकता—सत्य ही है, क्योंकि आज मैंने स्वयं तुम्हारे पराक्रम को देखा है।

एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवापरः।
मनोरथो रात्रिचर तत्समीपे भविष्यति॥ ११॥

हे निशाचर! वह देखो, दूसरे पर्वत के समान अचल एवं अटल दशरथनन्दन श्रीराम खड़े हैं उनके समीप पहुँच कर तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायेगा। (उनके द्वारा तुम मारे जाओगे)

इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः।
राममेवाभिदुद्राव दारयन्निव मेदिनीम्॥ १२॥

यह सुन और तिरस्कार-पूर्वक लक्ष्मणजी को वहीं छोड़ महाबली कुम्भकर्ण पृथिवी को कम्पायमान करता हुआ श्रीराम की ओर दौड़ा।

पुरस्ताद्राघवस्यार्थे गदायुक्तो विभीषणः।
अभिदुद्राव वेगेन भ्राता भ्रातरमाहवे॥ १३॥

इतने में श्रीराम की ओर लड़ने के लिए हाथ में गदा लिये हुए विभीषण अपने भाई से लड़ने के लिए दौड़े।

विभीषणं पुरो दृष्ट्वा कुम्भकर्णोऽब्रवीदिदम्।
प्रहरस्व रणे शीघ्रं क्षत्रधर्मे स्थिरो भव॥ १४॥

विभीषण को अपने समक्ष उपस्थित देख कुम्भकर्ण बोला—तुम मेरे ऊपर प्रहार कर क्षात्रधर्म का पालन करो।

भ्रातृस्नेहं परित्यज्य राघवस्य प्रियं कुरु।
अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः॥ १५॥

इस समय भ्रातृस्नेह का परित्याग कर तुम श्रीराम को प्रसन्न करनेवाला कार्य करो। हे वत्स! तुमने श्रीराम के पास आकर वस्तुतः हमारा ही कार्य किया है।

त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता।
नास्ति धर्माभिरक्तस्य व्यसनं तु कदाचन॥ १६॥

समस्त राक्षसों में अकेले तुम्हीं ने सत्य और धर्म की रक्षा की है और जो धर्म में रत हैं उन्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता।

सन्तानार्थं त्वमेवैकः कुलस्यास्य भविष्यसि।
राघवस्य प्रसादात्त्वं रक्षसां राज्यमाप्स्यसि॥ १७॥

सन्तानोत्पत्ति कर इस कुल की परम्परा बनाये रखने के लिए अकेले तुम्हीं जीवित रहोगे और सब मारे जायेंगे। श्रीराम की कृपा से तुम्हीं राक्षसों के राजा बनोगे।

न वेद्मि संयुगे शक्तः स्वान् परान् वा निशाचर।
रक्षणीयोऽसि मे वत्स शीघ्रं मार्गादपक्रम॥ १८॥

हे विभीषण! इस समय मैं युद्ध में आसक्त हो रहा हूँ, अतः मुझे अपने और पराये का कोई ज्ञान नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम बचे रहो, अतः तुम मेरे मार्ग से हट जाओ।

एवमुक्तो वचस्तेन कुम्भकर्णेन धीमता।
विभीषणो महाबाहुः कुम्भकर्णमुवाच ह॥ १९॥

जब महामति कुम्भकर्ण ने इस प्रकार की बातें कीं तब महाबली विभीषण ने कहा—

गदितं मे कुलस्यार्थे रक्षणार्थमरिन्दम।
न श्रुतं सर्वरक्षोभिस्ततोऽहं राममागतः॥ २०॥

हे शत्रुसंहारक! मैंने तो इस कुल की रक्षा के लिए सबको बहुत समझाया था, परन्तु जब किसी ने भी मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया तो मैं विवश हो राम के पास चला आया।

एवमुक्त्वाश्रुपूर्णाक्षः गदापाणिर्विभीषणः।
एकान्तमाश्रितो भूत्वा चिन्तयामास सुस्थितः॥ २१॥

ऐसा कहकर और आँखों में आँसू भर गदा हाथ में लिये हुए विभीषण एक ओर चले गये और स्थिर होकर विचार करने लगे।

तमापतन्तं धरणीधराभ-
मुवाच रामो युधिकुम्भकर्णम्।
आगच्छ रक्षोऽधिप मा विषाद-
मवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः॥ २२॥

पर्वत के समान कुम्भकर्ण को अपनी ओर आते देख युद्ध भूमि में खड़े हुए राम बोले—हे राक्षसपति! विषाद मत करो, चले आओ। मैं हाथ में धनुष लिये हुए तुम्हारे स्वागत के लिए खड़ा हूँ।

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम्।
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत्॥ २३॥

इन वचनों से यह जानकर कि यह राम है महातेजस्वी कुम्भकर्ण ने बड़े जोर से अट्टहास किया और फिर राम से बोला—

नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च।
न बाली न च मारीचः कुम्भकर्णोऽहमागतः॥ २४॥
पश्य मे मुद्गरं घोरं सर्वकालायसं महत्।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया॥ २५॥

हे राम! तुम मुझे विराध मत समझ लेना। मैं न तो कबन्ध हूँ, न खर, न बाली और न मारीच ही हूँ। मैं कुम्भकर्ण हूँ। मेरे इस लोह-निर्मित भयंकर मुद्गर को देख लो। पूर्वकाल में मैंने इसी से देवताओं और दानवों को परास्त किया था।

दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मेऽनघ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृढपौरुषविक्रमम्॥ २६॥

हे इक्ष्वाकुशार्दूल! हे निष्पाप! पहले तुम्हीं मेरे ऊपर वार कर बल-प्रदर्शित करो, फिर तुम्हारा पुरुषार्थ और पराक्रम देखने के पश्चात् मैं तुम्हारा भक्षण करूँगा।

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
रामः सुपुङ्खान् विससर्ज बाणान्।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगै-
र्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः॥ २७॥

कुम्भकर्ण के इन वचनों को सुन श्रीराम ने बढ़िया फरोंवाले बाणों से उस पर प्रहार किया, परन्तु वज्र के समान वेगवान् उन बाणों के प्रहार से भी वह देवताओं का शत्रु कुम्भकर्ण न तो विचलित हुआ और न व्यथित हुआ।

स वारिधारा इव सायकांस्तान्
पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः।
जघान रामस्य शरप्रवेगं
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम्॥ २८॥

इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्ण ने जल-वृष्टि की भाँति उस बाण-वृष्टि को अपने शरीर में सोख लिया वह अपना मुद्गर घुमा-घुमा कर श्रीराम द्वारा चलाये हुए बाणों को रोक रहा था।

वायव्यमादाय ततो वरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।
समुद्गरं तेन जघान बाहुं
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद॥ २९॥

अपनी बाण-वृष्टि को व्यर्थ देख श्रीराम ने अस्त्रों में श्रेष्ठ वायव्यास्त्र को ले कुम्भकर्ण के ऊपर छोड़ा। वह अस्त्र कुम्भकर्ण की उस भुजा में लगा जिसमें मुद्गर था और उस भुजा को काट गिराया भुजा के कटते ही कुम्भकर्ण बड़े जोर से गर्जा।

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहुः
महेन्द्रकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः।
उत्पाटयामास करेण वृक्षं
ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम्॥ ३०॥

कुम्भकर्ण का वह कटा हुआ बाहु उस समय ऐसा दिखाई पड़ता था मानो इन्द्र द्वारा शृंग कटा हुआ पहाड़ हो। अब कुम्भकर्ण ने बचे हुए हाथ से एक वृक्ष उखाड़ा और उसे लिये हुए श्रीराम की ओर झपटा।

स तस्य बाहुं सहसालवृक्षं
समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम्।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो
बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन॥ ३१॥

श्रीराम ने भी सुवर्ण-चित्रित ऐन्द्रास्त्र से कुम्भकर्ण की उस भुजा को भी काट डाला जिसमें वह साल वृक्ष को उठाये हुए था और जो बड़े फनधारी, सर्प के समान जान पड़ती थी।

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्तं सहसा नदन्तम्।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षस्य॥ ३२॥

जब श्रीराम ने देखा कि दोनों भुजाओं के कट जाने पर भी वह राक्षस गर्जता हुआ चला ही आ रहा है तब उन्होंने दो अर्ध-चन्द्राकार बाण मारकर युद्ध भमि में उसके दोनों पाँवों का भी काट डाला।

अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रै
रमः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः।
स पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं
चुकूज कृच्छ्रेण मुमोह चापि॥ ३३॥

फिर श्रीराम ने स्वर्ण की फरवाले पैने बाणों से उसका मुख भर दिया। बाणों से मुख भर जाने के कारण वह कुछ बोल भी न सका, कुछ अस्पष्ट शब्द करता हुआ वह मूर्छित हो गया।

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं
स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय॥ ३४॥

अब श्रीराम ने सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान, ब्रह्मदण्ड और कालदण्ड की भाँति भयंकर, शत्रुनाशकारी, अत्यन्त पैना और सुन्दर फर लगा हुआ ऐन्द्रास्त्र लेकर उसे कुम्भकर्ण के ऊपर छोड़ा।

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन्।

सधूमवैश्वानरदीप्तदर्शनो
जगाम शक्राशनिवीर्यविक्रमम्॥ ३५॥

श्रीराम के हाथ से छूटा हुआ वह बाण अपने प्रकाश से दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ और धूमरहित अग्नि के समान दिखाई देता हुआ इन्द्र के वज्र के समान पराक्रमी उस राक्षस कुम्भकर्ण की ओर चला।

स तन्महापर्वतकूटसन्निभं
निवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम्।
चकर्त रक्षोधिपतेः शिरस्तया
यथैव वृत्रस्य पुरं पुरन्दरः॥ ३६॥

उस बाण ने कुम्भकर्ण के पर्वतशिखर के समान विशाल, दाँत निकले हुए और दो हिलते हुए कुण्डलो से सुशोभित मस्तक को उसी प्रकार काट डाला जिस प्रकार वृत्रासुर का सिर इन्द्र के वज्र ने काट डाल था।

प्रहर्षमीयुर्बहवस्तु वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः।
अपूजयन् राघवमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले दुरासदे॥ ३७।

उस भयंकर और बलवान् शत्रु के मारे जाने प समस्त वानर वीरों के मुख खिले हुए कमल क भाँति प्रसन्न हो गये। उस समय वे सब वाञ्छि विजय को प्राप्त करनेवाले श्रीराम की प्रशंसा कर लगे।

➤ एकोनचत्वारिंशः सर्गः ➤ (३९)

कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण का विलाप, इन्द्रजित् का रावण को धैर्य प्रदान कर युद्ध के लिए प्रस्थान और राम-लक्ष्मण तथा प्रमुख वानर वीरों को अधमरा करना—

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन्॥ १॥

महाबली श्रीराम द्वारा कुम्भकर्ण को मरा हुआ देख, बचे हुए राक्षसों ने यह समाचार राक्षसराज रावण को सुनाया।

तं श्रुत्वा निहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसन्तप्तो विललाप मुमोह च॥ २॥

युद्ध में महाबली कुम्भकर्ण के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण शोक-सन्तप्त होकर मूर्छित हो गया और विलाप करने लगा।

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल।
त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम्॥ ३॥

हे वीर! हे शत्रुओं के दर्प-दलनकर्ता! महाबली कुम्भकर्ण! तुम मेरे दौर्भाग्य से मुझे छोड़ यमलोक चले गये।

मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां सन्त्यज्य गच्छसि॥ ४

हे महाबली! तुम मेरे और बन्धुओं के काँटे व निकाले बिना (राम का वध किये बिना) केव शत्रुसैन्य को पीड़ित कर और मुझे छोड़ कहाँ जा हो?

इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे दक्षिणो भुजः।
पतितोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात्॥ ५।

हे वीर! निश्चय ही अब मैं इस संसार में क का नहीं रहा, क्योंकि मेरी वह दाहिनी भुजा जिस बल पर मैं सुर और असुर—किसी से नहीं डरता थ काटकर गिरा दी गई है।

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः॥ ६।

अब मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं और सी को लेकर भी मैं क्या करूँगा? कुम्भकर्ण के बि अब मुझे जीवित रहने की भी इच्छा नहीं है।

यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम्।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम्॥ ७॥

यदि मैं युद्ध में अपने भाई के हत्यारे राम को नहीं मारता तो मेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है, व्यर्थ के जीवन से लाभ की क्या ?

अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम।
न हि भ्रातॄन् समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे॥ ८॥

मैं आज ही उस स्थान को जाऊँगा जहाँ मेरा भाई गया है, क्योंकि मैं अपने भाइयों को छोड़ एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रहना चाहता।

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं
शोकार्णवे सम्परिपुप्लुवानम्।
रथर्षभो राक्षसराजसूनुः
तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे॥ ९॥

रावण को इस प्रकार उदास और शोकसागर में डूबा हुआ देख राक्षसराज का पुत्र महारथी इन्द्रजित् बोला—

न तात मोहं प्रतिगन्तुमर्हसि
यत्रेन्द्रजिज्जीवति राक्षसेन्द्र।
पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन
मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम्॥ १०॥

हे तात! हे राक्षसेन्द्र! जब इन्द्रजित् जीवित है तब आप इतने दुःखी क्यों होते हैं। आज आप लक्ष्मण-सहित राम के समस्त अङ्गों को मेरे बाणों के द्वारा क्षत-विक्षत हुआ देखोगे।

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रु-
रापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः।
समारुरोहानिलतुल्यवेगं
रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम्॥ ११॥

इस प्रकार कहकर इन्द्र का शत्रु और विशिष्ट पराक्रमी इन्द्रजित् रावण से आज्ञा माँग वायु के समान तीव्र वेगवाले रथ पर सवार हुआ। इस रथ में उत्तम नस्ल के खर जुते हुए थे और शत्रुओं को (सम्= आधि) विशेष पीड़ा पहुँचानेवाले अस्त्र-शस्त्र रखे हुए थे।

तमास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम्।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिन्दमः॥ १२॥

वह महातेजस्वी एवं शत्रुहन्ता इन्द्रजित् सूर्य के समान देदीप्यमान रथ पर सवार होकर झटपट उधर चल पड़ा जहाँ युद्ध हो रहा था।

ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम्।
निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया॥ १३॥

मेघनाद के प्रस्थान करने के पश्चात् घोड़ों, रथों, ध्वजाओं तथा पताकाओं से सुशोभित राक्षसी सेना भी सिंहनाद करती हुई युद्ध करने के लिए निकल पड़ी।

ते शरैर्बहुभिश्चित्रैः तीक्ष्णवेगैरलङ्कृतैः।
तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानराञ्जघ्नुराहवे॥ १४॥

रणभूमि में पहुँच वे राक्षस वानरों के साथ युद्ध करते हुए वानरों को विविध प्रकार के अद्भुत बाणों, पैने-पैने और वेगवान् सुन्दर तोमरों तथा अंकुशों से मारने लगे।

स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि।
रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान् विचकर्त ह॥ १५॥

राक्षसों से घिरा हुआ इन्द्रजित् भी युद्ध में बन्दूक, बाण गदा मुसल आदि के द्वारा वानरों को घायल करने लगा।

ततः पावकसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः।
वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः॥ १६॥

इस प्रकार युद्ध करते हुए इन्द्रजित् ने अग्नि की भाँति प्रज्ज्वलित और विषधर सर्प की भाँति भयंकर बाणों से रणभूमि में वानरी सेना को वेध डाला।

अष्टादशशरस्तीक्ष्णैः स विद्ध्वा गन्धमादनम्।
विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम्॥ १७॥

मेघनाद ने गन्धमादन को अट्ठारह बाणों से बींधकर दूर खड़े नल को भी नौ बाणों से बींध डाला।

सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः।
पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे॥ १८॥

मैन्द को भी सात बाण मारकर उसके मर्मस्थलों को विदीर्ण कर डाला। इसी प्रकार उस युद्ध में इन्द्रजित् ने पाँच पैने बाण मारकर गज नामक वानर को भी घायल कर डाला।

जाम्बवन्तं तु दशभिः नीलं त्रिंशद्भिरेव च।
सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा॥ १९॥
अन्यानपि तथा मुख्यान् वानरान् बहुभिः शरैः।
अर्दयामास संक्रुद्ध कालाग्निरिव मूर्च्छितः॥ २०॥

अत्यन्त कुपित हो कालाग्नि के समान मूर्च्छित मेघनाद ने जाम्बवान् को दस और नील को तीस बाण मारकर तथा सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद और द्विविद को तथा अन्य प्रधान वानरयूथपतियों को बहुत-से बाण मार-मारकर व्याकुल कर डाला।

ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः
सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः।
ततस्तु ताविन्द्रजिदस्त्रजालैः
बभूवतुस्तत्र तथा विशस्तौ॥ २१॥

वानरयूथपतियों को घायल करने के पश्चात् इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण पर सूर्य की किरणों के समान चमकते हुए बाणों की वृष्टि की। इन्द्रजित् की उस शरवृष्टि से वे दोनों भाई मृतक के समान हो गये।

ततस्तदा वानरसैन्यमेवं
रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन।
विषादयित्वा सहसा विवेश
पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम्॥ २२॥

इस प्रकार उस दिन के युद्ध में श्रीराम, लक्ष्मण और वानरी सेना को परास्त कर इन्द्रजित् सहसा रावण द्वारा रक्षित लङ्का में चला गया।

➤ चत्वारिंशः सर्गः ➤ (४०)

जाम्बवान् के आदेश से हनुमान् का हिमालय से दिव्य ओषधियों का लाना और उन ओषधियों की गन्ध से राम-लक्ष्मण और वानरों का स्वस्थ होना—

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे
मुमोह सैन्यं हरिपुङ्गवानाम्।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तः
न चापि किञ्चित्प्रतिपेदिरे ते॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मण के इस प्रकार मूर्छित हो जाने पर वानरयूथपतियों की सेना भी किंकर्तव्य-विमूढ हो गई यहाँ तक कि सुग्रीव, नील, अङ्गद और जाम्बवान् जैसे प्रधान वानर भी यह न समझ पाये कि क्या किया जाए।

ततो विषण्णं समवेक्ष्य सैन्यं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः।
उवाच शाखामृगराजवीरान्
मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालः॥ २॥

उस समय बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण ने वानरसेना को विषाद में पड़े हुए देखकर सुग्रीव आदि वानरों को धैर्य प्रदान करते हुए कहा—भाइयो! डरो मत! यह समय दुःखी होने का नहीं है।

विभीषणवचः श्रुत्वा हनुमांस्तमथाब्रवीत्।
एतस्मिन्निहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम्।
यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहे॥ ३॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर हनुमान् बोले—वीर वानरों की इस घायल एवं प्रताड़ित सेना में जो-जो वानर अभी जीवित हैं, आओ हम चलकर उन्हें धैर्य प्रदान करें।

तावुभौ युगपद्वीरौ हनुमद्राक्षसोत्तमौ।
उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षेविचेरतुः॥ ४॥

ऐसा निश्चय कर वे दोनों वीर—हनुमान् और

विभीषण मिलकर और हाथों में मशाल लेकर रात्रि में रणभूमि में घूमने लगे।

सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम्।
गवाक्षं च सुषेणं च वेगदर्शिनमाहुकम्॥ ५॥
मैन्दं नलं ज्योतिमुखं द्विविदं पनसं तथा।
एतांश्चान्यांस्ततो वीरौ ददृशाते हतान् रणे॥ ६॥

समरभूमि में घूमते हुए उन दोनों ने देखा कि सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, गवाक्ष, सुषेण, वेगदर्शी, आहुक, मैन्द, नल, ज्योतिमुख, द्विविद, पनस--ये सब तथा अन्य बहुत से वानर रणभूमि में आहत पड़े हैं।

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम्।
मार्गते जाम्बवन्तं स्म हनुमान् सविभीषणः॥ ७॥

समुद्र के समान अपार वानर-सेना को बाणों से मथित देख विभीषण और हनुमान् जाम्बवान् को खोजने लगे।

स्वभावजराया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम्।
प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम्॥ ८॥
दृष्ट्वा तमुपसङ्गम्य मौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्।
कश्चिदार्यशरैस्तीक्ष्णैः प्राणा न ध्वंसितास्तव॥ ९॥

स्वाभाविक धैर्यादि से तथा जरा अवस्था से युक्त, ज्ञान से वृद्ध और सैकड़ों बाणों से आहत अतएव बुझी हुई अग्नि के समान प्रजापति के पुत्र जाम्बवान् को देख और उनके समीप जा विभीषण ने कहा—हे आर्य! इस दारुण बाण-वर्षा से तुम्हारे प्राणों का तो संहार नहीं हुआ?

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः।
कृच्छ्रादभ्युद्गिरन् वाक्यमिदं वचनमग्रवीत्॥ १०॥

ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवान् विभीषण के वचन सुन, बड़ी कठिनाई से और कराहते हुए ये वचन बोले—

नैर्ऋतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाऽभिलक्षये।
पीड्यमानः शितैर्बाणैर्न त्वां पश्यामि चक्षुषा॥ ११॥

हे राक्षसेन्द्र! हे महाबली! मैं तुम्हें तुम्हारे कण्ठस्वर से पहचान सका हूँ। (मैं मरा तो नहीं, परन्तु) पैने बाणों से मेरा शरीर ऐसा बिंधा हुआ है कि मैं आँखों से तुम्हें देख भी नहीं सकता।

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत।
हनुमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित्॥ १२॥

हे सुव्रत! जिनको प्राप्त कर अञ्जना पुत्रवती हुई हैं और पवनदेव सुपुत्रवान् हुआ है—वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् तो जीवित हैं?

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात्पृच्छसि मारुतिम्॥ १३॥

जाम्बवान् की यह बात सुनकर विभीषण बोले-- आपने राजकुमारों की कुशल-मङ्गल न पूछकर सबसे पहले हनुमान्जी की कुशलता के विषय में पूछा है—इसका क्या कारण है?

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे।
आर्य सन्दर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः॥ १४॥

हे आर्य! आपने जैसा स्नेह हनुमान्जी के प्रति प्रकट किया है ऐसा स्नेह आपने न तो कपिराज सुग्रीव के सम्बन्ध में प्रकट किया, न अङ्गद और न राम-लक्ष्मण के प्रति—इसका कारण क्या है?

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान् वाक्यमब्रवीत्।
शृणु नैर्ऋतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम्॥ १५॥

विभीषण की बात सुनकर जाम्बवान् ने कहा-- हे राक्षसराज! मैंने सबसे पूर्व हनुमान् का कुशल-समाचार क्यों पूछा—इसका कारण बताता हूँ, सुनो—

तस्मिन् जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि वयं हताः॥ १६॥

यदि हनुमान् जीवित हैं तो सारी सेना मारी जाकर भी जीवित ही है और यदि हनुमान्जी मर गये तो हम सब जीते हुए भी मरे ही हुए हैं।

धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत्॥ १७॥

यदि पवन के समान वेगवान् और अग्नि के समान बलवान् हनुमान् जीवित हैं तो मुझे मरे हुओं के भी जीवित होने की आशा है।

ततो वृद्धमुपागम्य नियमेनाभ्यवादयत्।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनुमान् मारुतात्मजः॥ १८॥

जाम्बवान् की इन बातों को सुनकर पवनपुत्र हनुमान् वृद्ध जाम्बवान् के पास गये और उनके दोनों चरण पकड़ नियमानुसार (अपना नाम लेकर) उनको प्रणाम किया।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं तदा विव्यथितेन्द्रियः।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते स्मर्क्षपुङ्गवः॥ १९॥

उस समय घावों से अत्यन्त व्याकुल होने पर भी ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवान् ने हनुमान् के वचनों को सुनकर अपना पुनर्जन्म हुआ माना।

ततोऽब्रवीन्महातेजा हनुमन्तं स जाम्बवान्।
आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि॥ २०॥

तत्पश्चात् परमतेजस्वी जाम्बवान् ने हनुमान्‌जी से कहा—हे वानरशार्दूल! आओ और वानरों के प्राण बचाओ।

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम्।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनुमन् गन्तुमर्हसि॥ २१॥

हे हनुमन्! तुम समुद्र के ऊपर-ही-ऊपर आकाश में बहुत लम्बा मार्ग तय करके पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर जाओ।

ततः काञ्चनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम्।
कैलासशिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन॥ २२॥

हे शत्रुसंहारक! हिमालय से आगे तुम्हें स्वर्णमय और बहुत ऊँचा ऋषभ नामक पर्वतश्रेष्ठ दिखाई देगा, वहीं से तुम्हें कैलास पर्वत की चोटी भी दिखाई पड़ेगी।

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम्॥ २३॥

हे वीर! इन्हीं दोनों पर्वत-शिखरों के मध्यवर्ती प्रदेश में तुम अनुपम छटावाले, अत्यन्त चमकीले तथा सर्व प्रकार की जड़ी बूटियों से युक्त औषध पर्वत को देखोगे।

तस्य वानरशार्दूल चतस्त्रो मूर्ध्नि सम्भवाः।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयनतो दिशो दश॥ २४॥

हे वानरकेसरी! उस पर्वत शिखर पर तुम्हें चार अत्यन्त चमकीली बूटियाँ—जिनकी चमक से दशों दिशाएँ प्रकाशित रहती हैं—दिखाई देंगी।

मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि।
सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा॥ २५॥

उन चारों के नाम हैं—१. मृतसञ्जीवनी, २. विशल्यकरणी, ३. सावर्ण्यकरणी और ४. सन्धान करणी।*

ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज॥ २६॥

हे हनुमन्! इन चारों ओषधियों को लेकर तुम शीघ्र यहाँ लौट आओ। हे पवनपुत्र! इन ओषधियों को लाकर तुम वानरों के प्राणों को बचाकर इन्हें आश्वासन प्रदान करो।

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमान् हरिपुङ्गवः।
आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतक्लमः॥ २७॥

जाम्बवान् के इन वचनों को सुन वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ने बड़ी तेजी के साथ आकाशमार्ग से गमन किया।

स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्वातरंहसा।
ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः॥ २८॥

पवन के समान तीव्रगामी वायुपुत्र हनुमान् जाम्बवान् की बातों को ध्यान में रख थोड़ी ही देर में हिमालय के निकट जा पहुँचे।

---

* १. मृतसञ्जीवनी—मरे को जिलानेवाली।
२. विशल्यकरणी—घावों को अच्छा करनेवाली।
३. सावर्ण्यकरणी—घावों का रंग बदल कर पूर्ववत् कर देनेवाली।
४. सन्धानकरणी—घाव भरने पर खाल को जोड़कर एक-सा करनेवाली और हड्डी आदि को जोड़नेवाली।

कैलासमुग्रं हिमवच्छिलां च
तथर्षभं काञ्चणशैलमग्र्यम्।
सन्दीपसर्वौषधिसम्प्रदीप्तं
ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम्॥ २९॥

वहाँ विचरण करते हुए हनुमान् ने कैलास शिखर को, उसके समीप ही हिमवत्-शिला नामक स्थान को, ऋषभपर्वत को, सुवर्णमय शृंगयुक्त पर्वत अर्थात् सुमेरु को तथा ओषधियों के प्रकाश से प्रकाशित पर्वतराज ओषधिपर्वत को देखा।

स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं
स काञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम्।
विकीर्णकूटज्वलिताग्रसानुं
प्रगृह्य वेगात् सहसोन्ममाथ॥ ३०॥

(जब हनुमान् उन ओषधियों को नहीं पहचान पाये[१]) तब उन्होंने उस प्रदेश के समस्त चमकनेवाले पौधों तथा पौधों पर चढ़नेवाली बेलों को पकड़ा और जोर से झटका देकर स्वर्णिम पत्रपुष्पों एवं जड़ों सहित उखाड़ लिया।

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात
जगाम वेगाद् गरुडोग्रवेगः।
तं वानराः प्रेक्ष्य विनेदुरुच्चैः
स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद॥ ३१॥

इस प्रकार उस प्रदेश के समस्त ओषधि-खण्ड को उखाड़ कर हनुमान्जी आकाश में जा पहुँचे और गरुड़ के समान तीव्र वेग से लंका की ओर चले। जब ये उड़ते हुए लंका के समीप पहुँचे तब इन्हें देखकर वानरों ने बड़े जोर से गर्जना की। हनुमान् ने भी उन वानरों को देख हर्षित होकर सिंहनाद किया।

ततो महात्मा निपपात तस्मिन्
शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाऽभिवाद्य
विभीषणं तत्र से सस्वजे च॥ ३२॥

तत्पश्चात् महाबलवान् हनुमान् आकाश से उस शैल–पर्वत पर उतर आये जहाँ वानर सेना पड़ाव डाले हुए थी। वानर-सेना में पहुँच हनुमान्जी ने वृद्ध वानरों को सिर झुकाकर प्रणाम किया और विभीषण को गले लगाया।

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ
तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम्।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्या-
वुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः॥ ३३॥

उन दिव्य ओषधियों की गन्ध सूँघने से उन दोनों राजपुत्रों—राम और लक्ष्मण के तथा अन्य वानर-वीरों के घाव भर गये और वे सभी उठ बैठे।

◀ एकचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४१)

राम और मेघनाद=इन्द्रजित् का युद्ध—
विशल्यौ तु महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी वरे॥ १॥

घावों के भर जाने पर महाबली राम और लक्ष्मण—दोनों ने सावधान हो अपने-अपने श्रेष्ठ धनुषों को उठाया।

---

१. हनुमान् में जहाँ अनेक गुण थे वहाँ इनमें एक दोष भी था—विस्मृति-दोष। ये बात को भूलते बहुत जल्दी थे। रामायण में इनके भुलक्कड़पन के कई प्रसङ्ग हैं। जब बाली मारा गया तब तारा को आश्वासन देते हुए हनुमान् ने तारा से अङ्गद को राजगद्दी पर बैठाने की बात कह दी। जब राम ने हनुमान् को अपने आगमन की सूचना देने के लिए भरत के पास भेजा तब उन्होंने कहा था कि तुम भरत के हाव-भाव देखकर उसकी सूचना मुझे देना, परन्तु हनुमान् यह सब कुछ भूलकर भरत के पास नन्दिग्राम में ही ठहरा रहा। प्रस्तुत प्रसङ्ग में भी वह बूटियों की पहचान ही भूल गया, अतः उसने जड़-सहित अनेक चमकनेवाली बूटियों को उखाड़ लिया।

ततो विस्फारयामास रामश्च धनुरुत्तमम्।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः॥ २॥

जब श्रीराम ने अपने श्रेष्ठ धनुष को चिल्ला चढ़ाकर टंकार की तब उससे राक्षसों के दिल को दहलानेवाला तुमुल नाद गूँज उठा।

तुमुलं ज्याशब्दं श्रुत्वा रावणः समितिञ्जयः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो दन्तान् कटकटापयन्॥ ३॥

धनुष की डोरी के उस तुमुल नाद को सुनकर समर-विजयी रावण अत्यन्त कुपित हुआ और दाँत पीसने लगा।

कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन्।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम्॥ ४॥

क्रुद्ध होकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए? अन्त में उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने पुत्र इन्द्रजित् को युद्ध करने का आदेश दिया।

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः॥ ५॥

हे वीर! तुम बल में राम और लक्ष्मण दोनों से बढ़कर हो, अतः प्रत्यक्ष अथवा छिपकर जैसे भी सम्भव हो महाबलवान् राम और लक्ष्मण दोनों का वध कर डालो।

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः।
आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः॥ ६॥

रावण के ऐसा कहने और उत्साहित करने पर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मेघनाद युद्धभूमि में पहुँचा।

स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ॥ ७॥

युद्धभूमि में पहुँच, इन्द्रजित् ने देखा कि राम और लक्ष्मण तीन फनवाले[१] सर्प की भाँति वानरों के बीच में खड़े हैं तथा वे दोनों वीर राक्षसों का नाश करने के लिए बाण चला रहे हैं।

इमौ ताविति सञ्चिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम्।
सन्ततानेषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ ८॥

उन दोनों को पहचान कर मेघनाद ने अपने धनुष पर चिल्ला चढ़ाया और उन दोनों पर उसी प्रकार शर वृष्टि करने लगा जैसे मेघ जल की वर्षा करते हैं।

यदा तौ शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः॥ ९॥

जब राम और लक्ष्मण दोनों के शरीर बाणों से बिंध गये तब उन दोनों ने दिव्यास्त्रों को धनुष पर चढ़ाकर छोड़ना आरम्भ किया।

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ।
तमस्त्रैः सूर्यसङ्काशैर्नैव पस्पर्शतुः शरैः॥ १०॥

महाबलवान् उन दोनों भाइयों ने इतने अस्त्र छोड़े कि आकाश ढक गया, परन्तु सूर्य के समान जाज्वल्यमान वे अस्त्र मेघनाद के शरीर को नहीं छू सके। (क्योंकि वह आकाश में तिरोहित होकर कूट युद्ध कर रहा था।)

स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसा वृताः॥ ११॥

मायावी इन्द्रजित् ने धूम्रास्त्र द्वारा धुआँ प्रकट कर सभी दिशाओं को अन्धकारमय कर रखा था। उस समय समस्त दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो उनमें कुहरा छाया हुआ हो।

नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते॥ १२॥

न तो इन्द्रजित् की प्रत्यञ्चा का शब्द सुनाई पड़ता था, न रथ के पहियों का, न घोड़ों की टाप का और न उसके घूमने-फिरने का शब्द सुन पड़ता था, न ही उसकी शक्ल दिखाई देती थी।

लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम्॥ १३॥

ऐसी स्थिति देख लक्ष्मणजी ने अत्यन्त कुपित

१. इनकी पीठ पर दो-दो तरकस बँधे हुए थे अतः मस्तकों सहित दोनों भाई तीन फनवाले सर्प जैसे दिखाई देते थे।

हो श्रीराम से कहा—हे भाई! में तो अब समस्त राक्षसों का संहार करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ता हूँ।

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि॥ १४॥

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण से श्रीराम कहने लगे—एक राक्षस के पीछे पृथिवी भर के समस्त राक्षसों का वध करना उचित नहीं है।

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्
पलायन्तं प्रमत्तं वा न त्वं हन्तुमिहार्हसि॥ १५॥

अपने साथ न लड़नेवाले, युद्ध छोड़कर भागे हुए और उन्मत्त—इनको मारना उचित नहीं है।

अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यावो महाबल।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान्॥ १६॥

हे बलशालिन्! हम दोनों इसी को मारने के लिए यत्नवान् होकर विषधर सर्प जैसे महावेगवान् अस्त्रों को छोड़ेंगे।

➤ द्वाचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४२)

इन्द्रजित् द्वारा बनावटी सीता का वध—

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः।
स निवृत्याहवात्तस्मात् संविवेश पुरं ततः॥ १॥

महात्मा श्रीराम के मन की बात ताड़कर (अर्थात् राम मेरे वध के लिए कोई अमोघ अस्त्र छोड़ेंगे) इन्द्रजित् झटपट युद्ध बन्दकर लङ्का में घुस गया।

सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां नरस्विनाम्।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगाम महाद्युतिः॥ २॥

परन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् यह स्मरण कर कि मेरे रणभूमि से चले आने के कारण वीर राक्षस मारे जायेंगे, क्रोध से लाल-लाल नेत्र कर वह तेजस्वी शूर पुनः युद्धभूमि में जाने के लिए बाहर निकला।

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा॥ ३॥

बाहर निकलकर जब उसने राम और लक्ष्मण को लड़ने के लिए उद्यत देखा (तब इनसे जीतना कठिन है—ऐसा सोचकर) उसने एक माया रची अर्थात् एक चाल चली।

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं ततः।
बलेन महताऽऽवृत्य तस्या वधमरोचयत्॥ ४॥

उस माया-चाल के अनुसार इन्द्रजित् ने एक बनावटी सीता को रथ में बिठाया और उस रथ को राक्षसी सेना से घिरवा कर उस बनावटी सीता के वध का निश्चय किया।

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा दुर्मतिः।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ॥ ५॥

वह दुर्बुद्धि शत्रुपक्ष=रामदल को धोखा देने के लिए ही ऐसा विचार निश्चित कर उस मायामयी सीता का वध करने के लिए वानरों के सम्मुख पहुँचा।

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं नगर्याः काननौकसः।
उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः॥ ६॥

उसे लङ्का से बाहर निकलता हुआ देख, वानरगण क्रोध में भर और शिलाएँ हाथ में लिये हुए लड़ने की इच्छा से कूदते हुए आगे बढ़े।

तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः।
कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतां परामृशत्॥ ७॥

अपने ऊपर आक्रमण के लिए तैयार उस वानर-सेना को देखकर इन्द्रजित् क्रोध से पागल हो गया और म्यान से तलवार खींचकर सीताजी के केशों को पकड़ लिया।

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास रावणिः।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे॥ ८॥

इन्द्रजित् उन वानरों के सामने ही उस हा राम! हा राम!! कहकर रोती-चिल्लाती और रथ पर बैठी हुई बनावटी सीता को मारने लगा।

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा रामस्य महिषीं प्रियाम्।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं हनुमान् रावणात्मजम्॥ ९॥

श्रीराम की प्राणप्रिया सीता के जूड़े को खींचा जाता देख क्रोध में भर हनुमान्‌जी रावणात्मज मेघनाद से कठोर वचन बोले—

ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः।
धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी॥ १०॥

ब्रह्मर्षिकुल में उत्पन्न होकर भी तू राक्षसयोनि में उत्पन्न होनेवालों के से कर्म कर रहा है, ऐसे पापाचारी, नीच बुद्धिवाले तुझको धिक्कार है।

अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण।
किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हन्तुमिच्छसि॥ ११॥

अरे निर्दयी! ऐसा असज्जनोचित कर्म! क्या तुझमें तनिक भी दया नहीं? इसने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू इसको मारना चाहता है।

सीतां हत्वा त्वं न चिरं जीविष्यसि कथञ्चन।
वधार्हकर्मणाऽनेन मम हस्तगतो ह्यसि॥ १२॥

सीता को मारकर तू बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। हे वध कर देने योग्य! इस हत्याकर्म के कारण तू बच नहीं सकता, क्योंकि अब तू मेरे दृष्टि-पथ में आ चुका है।

इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति॥ १३॥

ऐसा कहकर क्रोध से भरपूर हनुमान् आयुधधारी वानरों को साथ लिये हुए इन्द्रजित् के ऊपर झपटे।

आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम्।
रक्षसां भीमवेगानामनीकेन न्यवारयत्॥ १४॥

उस महापराक्रमी वानर-सेना को अपने ऊपर आक्रमण करते देख इन्द्रजित् ने प्रचण्ड वेगवती राक्षसी सेना द्वारा उसे रोक दिया।

स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम्।
हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित् प्रत्युवाच ह॥ १५॥

मेघनाद ने स्वयं भी सहस्रों बाणों से वानर सेना को विक्षुब्ध कर कपिश्रेष्ठ हनुमान् को उत्तर देते हुए कहा—

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः।
तां हनिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः॥ १६॥

अरे! तू, सुग्रीव और राम जिस सीता के लिए यहाँ आया है मैं आज तेरे देखते-देखते उसका वध करूँगा।

इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम्॥ १७॥

हे वानर! इसका वध करने के पश्चात् मैं राम और लक्ष्मण का, तेरा और सुग्रीव का तथा उस दुष्ट विभीषण का भी वध करूँगा।

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत्[१]॥ १८॥

हे वानर! जो तू कहता हे कि स्त्री-वध नहीं करना चाहिए उसके सम्बन्ध में मेरा यही कहना है

१. महाभारत में यह श्लोक इस प्रकार है—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्या स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम्॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत्॥

—महा० द्रोण० १४३।६७-६८

यहाँ महर्षि व्यास ने वाल्मीकि के श्लोक को प्रायः शब्दशः उद्धृत किया है। इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि वाल्मीकीय रामायण की रचना महाभारत से बहुत पूर्व हो चुकी थी।

जो पाश्चात्य लेखक और उनका अन्धानुकरण करनेवाले भारतीय वाल्मीकीय रामायण को महाभारत के पश्चात् की रचना मानते हैं वे तनिक आँखे खोलकर देखें।

रामायण महाभारत से पूर्व—बहुत पूर्व लिखी गई थी—यह संदर्भ इसके लिए एक अकाट्य, अछेद्य और अभेद्य प्रमाण है।

कि जिस कार्य के करने से शत्रु को दुःख हो, वह कार्य अवश्य ही करना चाहिए।

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं तदा।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम्॥ १९॥

ऐसा कहकर इन्द्रजित् ने स्वयं तीखी धारवाली तलवार से रोती हुई नकली सीता को काट डाला।

यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्ना तेन तपस्विनी।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना॥ २०॥

उसने तपस्विनी सीता के शरीर में तलवार बायें कन्धे से दाहिनी कोख तक जिस प्रकार यज्ञोपवीत पहना जाता है, उस प्रकार मारी। बड़े नितम्बोंवाली वह सुन्दरी सीता कटते ही भूमि पर गिर पड़ी।

तामिन्द्रजित् स्वयं हत्वा हनुमन्तमुवाच ह।
एषा विशस्ता वैदेही विफलो वः परिश्रमः॥ २१॥

अपने हाथ से सीता का काम तमाम कर इन्द्रजित् हनुमान्‌जी से कहने लगा—लो! यह सीता मार डाली गई, अब तुम लोगों का परिश्रम निरर्थक है।

➤ त्रिचत्वारिंशः सर्गः ➤ (४३)

हनुमान् का राम के पास जाकर सीता के मारे जाने का समाचार देना—

हनुमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम्।
स निवार्य परानीकमब्रवीत्तान् वनौकसः॥ १॥

इस युद्ध में हनुमान्‌जी ने क्रूरकर्मा राक्षसों का भीषण संहार किया। शत्रुसैन्य को भगाकर हनुमान्‌जी ने वानरों से कहा—चलो, अब वापस लौट चलें।

यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा।
इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च॥ २॥
तौ यत्प्रतिविधास्येते तत् करिष्यामहे वयम्।
इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान्॥ ३॥

"जिनके लिए हम लड़ रहे थे वे जनकनन्दिनी ही मारी गईं। चलो, अब यह संवाद श्रीराम और सुग्रीव को कह सुनायें, फिर वे जैसा कहेंगे वैसा किया जायेगा"—यह कहकर हनुमान्‌जी ने समस्त वानरों को लौटाया।

शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः सन्न्यवर्तत।
ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः॥ ४॥
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यनिकुम्भिलाम्।
निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित्॥ ५॥

वानरों से ऐसा कह हनुमान्‌जी निर्भय हो शनैः शनैः सेना-सहित लौट पड़े। हनुमान् को श्रीराम के पास जाते देख वह दुष्टात्मा इन्द्रजित् यज्ञ करने के लिए निकुम्भिला देवी के मन्दिर में पहुँचा और वहाँ पहुँचकर अग्नि में हवन करने लगा।

हनुमान् हरिसैन्येन सन्निकर्षं महायशाः।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥ ६॥

उधर महायशस्वी हनुमान्‌जी समस्त वानर-सेना को लिये हुए तुरन्त श्रीराम के पास पहुँचे और दुःखी होकर कहने लगे—

समरे युद्ध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां पुरः।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः॥ ७॥

भगवन्! युद्धभूमि में लड़ते समय, हम लोगों की आँखों के सामने रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने रोती हुई सीता को मार डाला।

उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः॥ ८॥

हे शत्रुनाशक! उस सीता वधरूपी कार्य को देख मेरा चित्त पागल-सा हो गया है और मैं दुःखी हो उस वृत्तान्त को आपकी सेवा में निवेदन करने आया हूँ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ९॥

हनुमान् के मुख से सीता के वध का समाचार

सुनकर राम शोक से मूर्छित हो, जड़ से कटे वृक्ष की भाँति धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े।

तं भूमौ देवसङ्काशं पतितं प्रेक्ष्य राघवम्।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः॥ १०॥

देवतुल्य श्रीराम को भूमि पर गिरते देख प्रधान-प्रधान वानर चारों ओर से भागे और उन्हें घेरकर खड़े हो गये।

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वार्थसंयुतम्॥ ११॥

इतने में अत्यन्त दुःखी लक्ष्मण ने श्रीराम को अपनी दोनों भुजाओं में भर गले से लगाया और फिर शोक से पीड़ित राम से यह युक्तियुक्त वचन बोले--

अद्य तु विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम्।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव॥ १२॥

हे वीर! निश्चय ही इन्द्रजित् ने बड़ा दुःखदायी काम कर डाला है, परन्तु मैं अपने पुरुषार्थ से इस दुःख को दूर कर दूँगा, अतः हे राघव! अब आप उठिए।

≺ चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ≻ (४४)

विभीषण द्वारा बनावटी सीता का रहस्योद्घाटन और राम का लक्ष्मण को इन्द्रजित् से युद्ध करने के लिए भेजना—

राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले।
निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः॥ १॥

भ्रातृवत्सल लक्ष्मणजी श्रीराम को समझा ही रहे थे कि इतने में विभीषण सेनाओं को अपने-अपने मोर्चों पर नियत कर वहाँ पहुँचे।

व्रीडितं शोकसन्तप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत्॥ २॥

श्रीराम को लज्जित और शोकसन्तप्त देख विभीषण ने अन्तर्वेदता से व्याकुल और उदास होकर पूछा—यह क्या बात है।

विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरात्।
लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः॥ ३॥

तब लक्ष्मणजी ने विभीषण, सुग्रीव तथा अन्य वानरों की ओर देख और आँखों में आँसू भरकर थोड़े शब्दों कहा—

हतामिन्द्रजिता सीतामिह श्रुत्वैव राघवः।
हनुमद्वचनात् सौम्य ततो मोहमुपागतः॥ ४॥

हे सौम्य! हनुमान् के मुख से इन्द्रजित् द्वारा सीता के वध का समाचार सुनकर श्रीराम मूर्छित हो गये हैं।

कथयन्तं तु सौमित्रिं सन्निवार्य विभीषणः।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत्॥ ५॥

लक्ष्मणजी यह बात कह ही रहे थे कि विभीषण उन्हें बीच में ही रोककर चेतनाशून्य श्रीराम से यह पक्की और सच्ची बात कहने लगे—

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तं च हनुमता।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम्॥ ६॥

हे नरेन्द्र! हनुमान्‌जी ने दुःखी होकर आपसे जो बात कही है मैं उसे उसी प्रकार अनहोनी और असम्भव मानता हूँ जैसे कोई कह दे कि समुद्र सूख गया है।

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति॥ ७॥

हे महाबाहो! मैं सीता के विषय में दुरात्मा रावण के अभिप्राय हो भली-भाँति जानता हूँ। वह सीता का वध कभी नहीं करेगा। (किसी दूसरे को करने भी नहीं देगा।)

याच्यमानस्तु बहुशो मया हितचिकीर्षुणा।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत् कृतवान् वचः॥ ८॥

मैंने रावण की हितकामना से उससे अनेक बार प्रार्थना की कि सीता को छोड़ दीजिए, परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी।

वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः।
चैत्यं निकुम्भिलां नाम यत्र होमं करिष्यति॥ ९॥

इन्द्रजित् ने वानरों को धोखा देने के लिए बनावटी सीता का वध किया है। बनावटी सीता के वध द्वारा वानरों को भ्रम में डाल वह निकुम्भिला देवी के मन्दिर में बैठकर हवन करेगा।

हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः।
दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः॥ १०॥

जब वह हवन करने के पश्चात् युद्ध करने के लिए निकलता है तब वह युद्ध में देवों सहित इन्द्र से भी दुर्जेय हो जाता है।

तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता।
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे॥ ११॥

उसने निश्चय ही वानरों को धोखा देने के लिए यह चाल चली है। उसने यह विचार कर कि ''ऐसा करने से वानरों का उत्साह मन्द हो जायेगा और वे मेरे यज्ञ में विघ्न न डाल सकेंगे''—यह चाल चली है।

संसैन्यस्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते।
त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्यासन्तापमागतम्॥ १२॥

उसका हवन समाप्त होने से पूर्व ही ससैन्य हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए। हे नरशार्दूल! आप इस वृथा सन्ताप को त्याग दीजिए।

इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः॥ १३॥

आप अपने चित्त को स्वस्थ कर और सावधान हो यहीं विराजें और वानर-सेनापतियों सहित लक्ष्मण को हम लोगों के साथ भेज दें।

एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति॥ १४॥

यह पुरुषसिंह लक्ष्मण पैने-पैने बाण चलाकर उसके यज्ञकार्य में विघ्न डालेंगे और जब वह यज्ञकार्य को अधूरा छोड़ उठ खड़ा होगा तभी वह मारने योग्य होगा।

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत्॥ १५॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर शत्रु के पुरों को जीतनेवाले श्रीराम धैर्य धारणकर कीर्तियुक्त लक्ष्मणजी से बोले—

यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः।
हनुमत्प्रमुखश्चैव यूथपैः सहलक्ष्मणः॥ १६॥
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलविशारदम्॥ १७॥

तुम कपिराज की समस्त सेना को तथा हनुमानादि प्रमुख यूथपतियों को और ऋक्षों की सेना सहित जाम्बवान् को अपने साथ लेकर जाओ और उस मायावी रावणात्मज इन्द्रजित् को मारो।

अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः।
अभिज्ञस्तस्य देशस्य पृष्ठतोऽनुगमिष्यति॥ १८॥

अपने चारों मन्त्रियों-सहित महात्मा विभीषण, जो उस स्थान को जानते हैं, तुम्हारे पीछे-पीछे जायेंगे।

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमत्यद्भुतपराक्रमः॥ १९॥
सन्नद्धः कवची खड्गी सशरो वामचापधृत्।
रामपादावपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्॥ २०॥

राम के आदेश को सुनकर अद्भुत पराक्रमी लक्ष्मणजी ने विभीषण को अपने साथ ले युद्ध की सामग्री ली। उन्होंने कवच धारण किया, कमर में तलवार बाँधी, पीठ पर तीरों से भरा तरकस लटकाया और बायें हाथ में धनुष धारणकर श्रीराम के चरणों का स्पर्श कर वे हर्षित होते हुए बोले—

अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम्।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव॥ २१॥

आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण रावण-पुत्र इन्द्रजित् के शरीर को विदीर्ण कर लंका में वैसे ही

जाकर गिरेंगे जैसे हंस पुष्करिणी में जाते हैं।

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः।
विधमिष्यन्ति भित्वा तं महाचापगुणच्युताः॥ २२॥

आज मेरे महाधनुष की डोरी से छूटे हुए बाण उस भयानक राक्षस के शरीर को छेदकर ध्वस्त कर डालेंगे।

स एवमुक्त्वा द्युतिमान् वचनं भ्रातुरग्रतः।
स रावणिवधाकांक्षी लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ॥ २३॥

अपने बड़े भाई से इस प्रकार के वचन कहकर तेजस्वी लक्ष्मण इन्द्रजित् के वध की अभिलाषा से वहाँ से तुरन्त चल दिये।

स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद् व्यूहमाश्रितम्॥ २४॥

लम्बा मार्ग तय करने के पश्चात् मित्रों को आनन्द देनेवाले लक्ष्मण ने दूर से ही देखा कि इन्द्रजित् की सेना व्यूह बनाये हुए मोर्चे पर डटी हुई है।

स तं प्राप्य धनुष्पाणिर्राजपुत्रः प्रतापवान्।
अङ्गदेन च वीरेण तस्थौ वायुसुतेन च॥ २५॥

हाथ में धनुष धारण किए हुए प्रतापी राजकुमार लक्ष्मणजी उस राक्षस सेना के समीप पहुँच कर वीर अङ्गद और पवनपुत्र हनुमान् के साथ वहाँ ठहर गये।

⮜ पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ⮞ (४५)

इन्द्रजित् और हनुमान् की मुठभेड़—

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत्॥ १॥

जब लक्ष्मणजी शत्रु-सैन्य के समीप जाकर स्थित हो गये उस समय विभीषण ने शत्रुपक्ष के लिए अहितकर और स्वपक्ष के लिए हितकर ये बातें कहीं—

यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते।
एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिः पादपायुधैः॥ २॥

मेघ के समान काली यह जो राक्षस-सेना खड़ी हुई दिखाई दे रही है, वानरों को वृक्षरूपी आयुधों को लेकर शीघ्र ही इसके साथ भिड़ जाना चाहिए।

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन् परान्।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत् कर्म समाप्यते॥ ३॥

हे लक्ष्मण! तुम इन्द्र के वज्र और सूर्य के समान देदीप्यमान तीरों की मार से, इस सेना को, इन्द्रजित् का यज्ञ पूर्ण होने से पूर्व ही तित्तर-बित्तर कर डालो।

जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम्।
रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम्॥ ४॥

हे वीर! दुरात्मा, मायावी, परम-अधार्मिक, निष्ठुर कर्म करनेवाले और समस्त लोकों को भय देनेवाले इन्द्रजित् को भी तुम यमलोक पठाओ।

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति॥ ५॥

विभीषण के इन वचनों को सुनकर शुभलक्षणों से युक्त लक्ष्मणजी ने इन्द्रजित् के ऊपर बाणों की वृष्टि आरम्भ कर दी।

ऋक्षाः शाखामृगाश्चापि द्रुमाद्रिनखयोधिनः।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम्॥ ६॥

उधर वृक्षों, पत्थरों और नखों से लड़नेवाले ऋक्ष और वानरों ने भी वहाँ खड़ी हुई उस राक्षस सेना पर धावा किया।

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः।
रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत॥ ७॥

जब विशाल शरीरधारी तथा महाबली प्रमुख ऋक्ष और वानरों ने राक्षसों से युद्ध करना आरम्भ किया तब राक्षस अत्यन्त भयभीत हुए।

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम्।
उदतिष्ठत दुर्धर्षस्तत्कर्मण्यननुष्ठिते॥ ८॥

जब मेघनाद ने सुना कि वानर लोग राक्षसी सेना

का विध्वंस कर रहे हैं तब दुर्जेय इन्द्रजित् उस यज्ञकर्म को अधूरा छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं स राक्षसः॥ ९॥

क्रोध में भरा हुआ इन्द्रजित् वृक्षों के झुरमुट से बाहर निकला और पहले से ही जुते हुए अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रथ पर सवार हो गया।

स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष मारुतिः।
क्षयमेष हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः॥ १०॥

रथ पर आरूढ़ होकर उसने सारथि को आदेश दिया कि मेरा रथ वहाँ ले चलो जहाँ हनुमान् राक्षसों का संहार कर रहा है, क्योंकि यदि मैंने थोड़ी देर भी उसकी उपेक्षा की तो वह मेरे सब राक्षसों को मार डालेगा।

इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स वानरः।
वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे॥ ११॥

इन्द्रजित् के ऐसा कहते ही सारथि ने वह रथ जिसमें दुर्धर्ष इन्द्रजित् बैठा हुआ था, हाँककर वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ हनुमान्‌जी लड़ रहे थे।

सोऽभ्युपेत्य शरान् खड्गान् पट्टिशांश्च परश्वधान्।
अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्ध्नि स राक्षसः॥ १२॥

वहाँ पहुँचकर दुर्जेय राक्षस इन्द्रजित् ने हनुमान्‌जी के सिर पर तलवारों, पट्टिशों, फरसों और बाणों की वर्षा की।

तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः।
रोषेण महताऽऽविष्टो वाक्यं चेदुवाच ह॥ १३॥

हनुमान्‌जी उसके उन भयंकर शस्त्रों के प्रहार को सहकर और अत्यन्त रोष में भरकर, उससे यह वचन बोले—

युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते।
वायुपुत्रं समासाद्य जीवन्न प्रतियास्यसि॥ १४॥

अरे दुर्बुद्धि रावण के पुत्र! यदि तुझे वीर होने का गर्व है तो आ और मेरे साथ युद्ध कर। अब तू पवनपुत्र के सामने पड़कर, जीता हुआ लौटकर नहीं जाने पायेगा।

बाहुभ्यां प्रतियुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः॥ १५॥

यदि तेरे शरीर में बल हो तो आकर मुझसे मल्लयुद्ध कर (कुश्ती लड़)। हे दुर्बुद्धे! यदि तू मेरे बल को सह गया तो मैं तुझे बलवान् राक्षस समझूँगा।

हनुमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम्।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः॥ १६॥
यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः।
स एष रथमास्थाय हनुमन्तं जिघांसति॥ १७॥

उधर हनुमान् को मारने के लिए इन्द्रजित् को धनुष उठाये देखकर विभीषण ने लक्ष्मणजी से कहा—हे लक्ष्मण! देखो, जिस रावण-पुत्र मेघनाद ने इन्द्र को परास्त किया है, वही रथ में चढ़ा हुआ हनुमान् को मारना चाहता है।

तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुविदारणैः।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि॥ १८॥

अतः हे लक्ष्मण! अब तुम कनेर वृक्ष के पत्तों के आकारवाले, शत्रु को विदीर्ण करनेवाले और शत्रु को नष्ट करनेवाले भयंकर बाणों से इन्द्रजित् का वध करो।

❮ षट्चत्वारिंशः सर्गः ❯ (४६)

इन्द्रजित् और विभीषण का वाग्युद्ध—

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः।
धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम ह॥ १॥

ऐसा कहकर और हर्षित होकर विभीषणजी धनुर्धारी लक्ष्मणजी को साथ लिये हुए शीघ्रता से उधर चले जहाँ मेघनाद और हनुमान् थे।

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् रावणात्मजः।
इन्द्रजित्कवची धन्वी सध्वजः प्रत्यदृश्यत॥ २॥

थोड़ी ही देर में उन्हें अग्नि के समान वर्णवाले एवं ध्वजयुक्त रथ पर आरूढ़, कवच धारण किये हुए और धनुष हाथ में लिये हुए, रावण-पुत्र इन्द्रजित् दिखाई दिया।

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम्।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे॥ ३॥

उसे देख तेजस्वी लक्ष्मण उस अजेय रावणात्मज इन्द्रजित् से बोले—हे राक्षस! मैं तुझे युद्ध के लिए आमन्त्रित करता हूँ। आ, और सावधान होकर मेरे साथ युद्ध कर।

एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम्॥ ४॥

महातेजस्वी एवं मनस्वी इन्द्रजित् लक्ष्मण के वचनों को सुन और विभीषण को उनके साथ देख, उससे कठोर वचन कहने लगा—

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस॥ ५॥

अरे विभीषण! तुम इसी कुल में उत्पन्न हुए, यहीं बड़े हुए और मेरे पिता के साक्षात् भाई हो। हे राक्षस! मेरे चाचा होकर भी, तुम अपने पुत्र के साथ द्रोह क्यों कर रहे हो?

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण॥ ६॥

अरे दुर्मते! ओ धर्म को दूषित करनेवाले! तनिक देख तो, न तो तू इन लोगों की बिरादरी का है, न इनका मित्र है, न जातिवाला है, इनका साथ देने से किसी मर्यादा की रक्षा भी नहीं होती, ये और तुम एक माँ से उत्पन्न भी नहीं हो तथा इनका साथ देना और अपने सहोदर के साथ वैर करने से कोई धर्म भी नहीं होता (फिर तू ऐसा काम क्यों कर रहा है?)

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः॥ ७॥

हे दुर्बुद्धे! तुमने स्वजनों का परित्याग कर अपने सहोदर के शत्रु की दासता स्वीकार की है—तुम्हारे इस पतन के कारण तुम शोचनीय हो और श्रेष्ठ पुरुष, तुम्हारे इस कृत्य की निन्दा करते हैं।

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम्।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः॥ ८॥

"कहाँ तो अपने लोगों के साथ घुल-मिल कर रहना और कहाँ नीच परायों के आश्रय में रहना" परन्तु तुम्हारी बुद्धि पर तो पत्थर पड़े हैं, अतः अपनी बुद्धि की मन्दता से तुम इस महान् अन्तर को नहीं जान सकते।

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः॥ ९॥

भले ही परजन में गुण-ही-गुण हों और स्वजन में दोष-ही-दोष क्यों न हों, फिर भी गुणवान् परजन की अपेक्षा निर्गुण स्वजन ही श्रेयस्कर है, क्योंकि अपना अपना ही है और पराया पराया ही है।

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।
स स्वपक्षे क्षयं प्राप्ते पश्चात्तैरेव हन्यते॥ १०॥

जो आत्मीयजनों का पक्ष त्यागकर शत्रुपक्ष का आश्रय लेता है वह अपने पक्ष के (अर्थात् आत्मीय जनों के) नष्ट होने पर पीछे उन पर-पक्षवालों द्वारा ही मारा जाता है।

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे॥ ११॥

जब भतीजे ने ऐसा कहा तब उसकी बातों का उत्तर देते हुए विभीषण ने कहा—जब तू मेरे स्वभाव को ही नहीं जानता तब तू व्यर्थ ही क्यों बक-बक करता है?

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात्।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम्॥ १२॥
गुणोऽयं प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम्।
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे॥ १३॥

हे असाधुस्वभाव राक्षसपुत्र! अपने चाचा के गौरव

का विचारकर तुम्हें ऐसे कठोर वचनों का परित्याग कर देना चाहिए। यह ठीक है कि मैं क्रूरकर्मा राक्षसों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, परन्तु मनुष्यों का जो सर्वप्रधान गुण—धार्मिक वृत्ति, मुझमें है वह और राक्षसों में नहीं है। इस शील के कारण न तो मुझे निष्ठुर कर्म करना पसन्द है और न अधर्म में ही मेरी रुचि है।

धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा॥ १४॥

हे इन्द्रजित्! जो धर्मरूपी शील से पतित है वह निश्चय ही पापी है। ऐसे पापी को त्याग देने से मनुष्य को वैसा ही सुख प्राप्त होता है जैसे विषधर साँप को हाथ से छोड़ देने से प्राप्त होता है।

हिंसापरस्वहरणे परदाराभिमर्शनम्।
त्याज्यमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं यथा॥ १५॥

जो हिंसक हो, पर धन छीननेवाला हो और पर-स्त्री का अपहरण करनेवाला हो—ऐसे दुराचारी को जलते हुए घर की भाँति त्याग देना ही नीतिज्ञों का मत है।

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥ १६॥

दूसरों का धन छीनना, पराई स्त्रियों पर हाथ डालना और मित्रों के ऊपर सन्देह करना—ये तीनों पापकर्म नाश करनेवाले हैं।

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः।
अभिमानश्च कोपश्च वैरित्वं प्रतिकूलता।
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः॥ १७॥

महर्षियों का क्रूरतापूर्ण वध, सभी देवों, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ झगड़ा, अभिमान, क्रोध, वैर, और दूसरों के कार्य में बाधा डालना—ये समस्त दोष मेरे बड़े भाई अर्थात् तुम्हारे पिता में हैं और ये समस्त दोष जीते-जी उसके ऐश्वर्य को नष्ट करनेवाले हैं।

गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः।
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव॥ १८॥

जैसे मेघ पर्वत को ढक लेते हैं, वैसे ही इन दोषों ने उसके गुणों को छिपा दिया है। इन्हीं के कारण मैंने अपने भाई और तुम्हारे पिता को त्याग दिया है।

अतिमानी च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि॥ १९॥

हे राक्षस! तू अभी निरा छोकरा है, तू बहुत अभिमानी है और इसीलिए अत्यन्त असभ्य भी है। इस समय तेरे सिर पर काल सवार है, अतः तू जो चाहे सो मुझसे कह ले।

युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह।
हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षये॥ २०॥

अब तू रणभूमि में नरदेव लक्ष्मण के साथ युद्ध कर और युद्ध में मारा जाकर यमलोक में पहुँचकर देवों को सन्तुष्ट करना। (अर्थात् तेरे मरने पर ऋषि-मुनि सभी सन्तुष्ट होंगे।)

सप्तचत्वारिंशः सर्गः (४७)

लक्ष्मण और इन्द्रजित् का घोर युद्ध और इन्द्रजित् के सारथि का वध—

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः।
उवाचैनं समारब्धः सौमित्रिं सविभीषणम्॥ १॥
तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम्।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम्॥ २॥

विभीषण की बातों को सुनकर इन्द्रजित् अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उत्तेजित होकर विभीषण-सहित लक्ष्मण से तथा वानर-सेनापतियों से बोला—तुम लोग आज मेरे पराक्रम को देखो। आज मैं तुम सबको यमलोक पठा दूँगा।

क्षिपतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य मे युधि।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः॥ ३॥

जब मैं संग्राम में फुर्ती के साथ बाणों की वृष्टि करूँगा और बादल की तरह गर्जना करूँगा तब तुममें ऐसा कौन है जो मेरे सामने खड़ा रह सके?

रात्रियुद्धे मया पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः।
शायितौ स्थो मया भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ॥ ४॥

अरे लक्ष्मण! उस दिन रात्रि के युद्ध में मैंने वज्र के समान तीरों से समस्त वानरी सेना सहित तुम दोनों भाइयों को मूर्छित कर भूमि पर सुला दिया था।

स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं यत् मां योद्धुं व्यवस्थितः॥ ५॥

मैं समझता हूँ तू उसे भूल गया। और भूल क्यों न जायेगा, क्योंकि तुम लोग तो अब यमराज के अतिथि बननेवाले हो इसीलिए तुम लोग क्रुद्ध हुए विषधर के समान मुझसे लड़ने के लिए आये हो।

एतत् श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं लक्ष्मणस्तदा।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत्॥ ६॥

इन्द्रजित् की इस प्रकार की डींगों को सुनकर लक्ष्मणजी ने बिना किसी भय के क्रोध में भरकर इन्द्रजित् से कहा—

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया।
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान्॥ ७॥

हे राक्षस! किसी दुष्कर कार्य को न कर जीभमात्र हिलाकर कह देना तो सरल है, परन्तु उसे करके दिखाना कठिन होता है। बुद्धिमान् वही है जो काम करने की बात कहकर उसे करके दिखा दे।

स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित्।
वचो व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते॥ ८॥

तू तो डींग हाँकनेवाला निषिद्ध वक्ता है, तू कुछ नहीं कर सकता। अरे दुर्बुद्धे! हमें परास्त करने के जिस काम को कोई नहीं कर सकता उसे तू वाणी से कहकर अपने को कृतार्थ समझता है।

अन्तर्धानगतेनाजौ यस्त्वयाऽऽचरितस्तदा।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः॥ ९॥

उस दिन रात्रि के युद्ध में तुमने छिपकर जो करतूत की थी वह तो चोरों का आचरण था, वीर लोग ऐसा मार्ग नहीं अपनाते।

यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽहं तव राक्षस
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे॥ १०॥

हे राक्षस! जैसे मैं तेरे बाणों की मार के भीतर तेरे सामने खड़ा हूँ उसी प्रकार तू भी मेरे बाणों की मार के भीतर खड़ा रहकर अपना पराक्रम दिखा, व्यर्थ डींगें हाँकने से क्या लाभ?

एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः
ससर्ज निशितान् बाणानिन्द्रजित्समितिञ्जयः॥ ११॥

लक्ष्मणजी ने जब इन्द्रजित् को ऐसा ताना दिया तब युद्ध-विजयी महाबली इन्द्रजित् ने अपना भयंकर धनुष पकड़ा और लक्ष्मण पर तीखे बाण बरसाने आरम्भ किये।

स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः
शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान् विधूम इव पावकः॥ १२॥

बाणों के लगने से लक्ष्मणजी घायल हो गये और उनके शरीर से रक्त बहने लगा, फिर भी कान्तिमान् लक्ष्मण बिना धुएँ की अग्नि के समान सुशोभित हो रहे थे।

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याधिगम्य च।
विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

कुछ देर के पश्चात् इन्द्रजित अपने पुरुषार्थ का फल देख बड़े जोर से गर्जकर यह वचन बोला—

पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः
आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तगाः॥ १४॥

हे लक्ष्मण! आज मेरे धनुष से छूटे हुए पैने बाण जो तेरा वध करनेवाले हैं, तेरे जीवन को समाप्त कर देंगे।

अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया॥ १५॥

हे लक्ष्मण! जब तू मेरे द्वारा मारा जाकर प्राण-रहित हो जायेगा जब तेरी लोथ पर गीदड़, बाज और गिद्धों के झुण्ड के-झुण्ड टूटकर पड़ेंगे।

क्षत्रबन्धुः सदानार्यो रामः परमदुर्मतिः।
भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति हतं मया॥ १६॥

दुर्बुद्धि, क्षत्रियाधम और अनार्य राम आज ही तुझ जैसे सेवक भाई को मेरे हाथों से मरा हुआ देखेगा।

इति ब्रुवाणं संरब्धं परुषं रावणात्मजम्।
हेतुमद्वाक्यमत्यर्थं लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह॥ १७॥

क्रोध में भरकर इस प्रकार कठोर वचन कहते हुए रावण-पुत्र इन्द्रजित् से लक्ष्मणजी ने ये युक्तियुक्त एवं सारगर्भित वचन कहे—

वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मासि राक्षस।
अथ कस्माद्वदस्येतत् सम्पादय सुकर्मणा॥ १८॥

अरे निशाचर! अरे दुर्बुद्धे! मैं जानता हूँ कि तू निर्दयी है, परन्तु अपनी बकवास को बन्द कर। इस बकवास से लाभ भी क्या है? तू जो कहता है उसे करके दिखा।

अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस।
कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्दध्यां तव कत्थनम्॥ १९॥

अरे राक्षस! बिना कुछ किये बक-बक करने से क्या लाभ? कुछ करके दिखा जिससे मुझे तेरे कथन पर विश्वास हो।

अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किञ्चिदप्यनवक्षिपन्।
अविकत्थन् वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषाधम॥ २०॥

मैं न तो तुझसे कठोर वचन कहूँगा, न तुझे धिक्कारूँगा आरै न अपनी बड़ाई ही करूँगा, परन्तु हे पुरुषाधम! देखना, मैं तेरा वध करूँगा।

इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णपूरिताञ्शितान्।
निजघान महावेगाल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि॥ २१॥

ऐसा कहकर और पाँच पैने नाराचों का धनुष पर रखकर तथा रोदे को कान तक खींचकर, लक्ष्मण ने उन्हें बड़े जोर से इन्द्रजित् की छाती में मारा।

स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः।
सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम्॥ २२॥

उन बाणों की चोट से घायल होकर इन्द्रजित् ने भी क्रोध में भरकर बड़ी सावधानी से तीन बाण मारकर लक्ष्मणजी को घायल किया।

स बभूव तदा भीमो नरराक्षससिंहयोः।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः॥ २३॥

तब तो इन दोनों नरसिंह और राक्षससिंह में बड़ा भयानक युद्ध होने लगा। एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से वे दोनों तुमुल संघर्ष करने लगे।

तयोरथ महान् कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः॥ २४॥

उन दोनों को लड़ते-लड़ते बहुत समय व्यतीत हो गया, परन्तु उन दोनों में से न तो किसी ने पीठ दिखाई और न किसी ने थकावट ही अनुभव की।

न ह्यादानं न सन्धानं धनुषो वा परिग्रहः।
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः॥ २५॥
न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम्।
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात्॥ २६॥

वे दोनों अपना हस्तलाघव दिखाते हुए ऐसी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि यह भी दिखाई नहीं देता था कि उन्होंने कब तरकस से बाण निकाला, कब उसे रोदे पर रक्षा, कब उन्होंने दाहिने-बायें हाथ में (घुमा-फिरा कर) धनुष पकड़ा, कब कान तक रोदा तानकर बाण छोड़ा, कब धनुष टूटने पर दूसरा धनुष लिया, कब वे मुट्ठी बाँधते थे और कब लक्ष्य=निशाना बेधते थे।

ताभ्यामुभाभ्यां तरसा विसृष्टैर्विशिखैः शितः।
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसावृतम्॥ २७॥

उन दोनों वीर योद्धाओं द्वारा छोड़े गये पैने-पैने बाणों से आकाश ढक-सा गया और चारों ओर अन्धेरा-सा छा गया।

अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान्।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान्॥ २८॥

इस प्रकार जब लड़ते-लड़ते पर्याप्त समय हो गया तब लक्ष्मणजी ने चार बाण मारकर इन्द्रजित् के रथ के काले रंग के और सुवर्ण आभूषणों से भूषित चारों घोड़ों को मार डाला।

ततोऽपरेण भल्लेन सूतस्य विचरिष्यतः।
लाघवाद्राघवः श्रीमान् शिरः कायादपाहरत्॥ २९॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने एक भल्ल नामक बाण से समर-भूमि में रथ पर घूमते हुए इन्द्रजित् के सारथि का सिर बड़ी सफाई के धड़ से अलग कर दिया।

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथेः।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः॥ ३०॥

घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर इन्द्रजित् रथ से कूद पड़ा और बाणों की वर्षा करता हुआ लक्ष्मण पर झपटा।

◀ अष्टाचत्वारिंशः सर्गः ▶ (४८)

लक्ष्मण और इन्द्रजित् का घोर युद्ध और इन्द्रजित् का वध—

स हताश्वो महातेजा राक्षसानिदमब्रवीत्।
तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो राक्षसोत्तमाः॥ १॥

घोड़ों के मारे जाने पर इन्द्रजित् राक्षसों से बोला—हे राक्षसश्रेष्ठो! रात्रि हो जाने के कारण सब ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छाया हुआ है, अतः इस समय अपना और पराया नही जान पड़ता।

धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगम्॥ २॥

आप लोग वानरों को धोखा देने के लिए दृढ़तापूर्वक लड़ो। मैं दूसरे रथ में बैठकर थोड़ी ही देर में युद्धभूमि में लौटकर आता हूँ।

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा॥ ३॥

ऐसा कहकर और वानरों को धोखा देकर शत्रुनाशक इन्द्रजित् दूसरा रथ लेने के लिए लङ्कापुरी में चला गया।

प्रासासिशरसम्पूर्णं रथमारुह्य भूषितम्।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम्॥ ४॥

लङ्का में पहुँचकर वह एक सुन्दर सजे हुए रथ में सवार हुआ जिसमें प्रास, तलवारें और बाण रखे हुए थे। उस रथ में बैठ ओर शीघ्रगामी घोड़ों को हँकवा वह वहाँ पहुँचा जहाँ विभीषण-सहित लक्ष्मणजी थे।

ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम्।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः।
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः॥ ५॥

लक्ष्मण, विभीषण और अन्य वानरगण इन्द्रजित् को दूसरे रथ में बैठा देख उस बुद्धिमान् की फुर्ती पर बड़े विस्मित हुए।

रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान्।
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७॥

अब इन्द्रजित् भी क्रोध में भरकर युद्ध करता हुआ सैकड़ों सहस्त्रों वानर-यूथपतियों को बाण मार-मारकर गिराने लगा।

ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमाः।
सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः॥ ७॥

उस प्रचण्ड पराक्रमी इन्द्रजित् के नाराचों से मारे जाने पर वानरगण लक्ष्मणजी की शरण में गये, जैसे प्रजागण प्रजापति की शरण में जाते हैं।

ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ ८॥

जब संग्राम-कोप से प्रज्ज्वलित लक्ष्मणजी ने अपने हाथ की फुर्ती दिखाते हुए इन्द्रजित् का धनुष काट डाला।

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं चक्रे त्वरन्निव।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत॥ ९॥

इन्द्रजित् ने दूसरा धनुष लेकर उस पर शीघ्रता से रोद चढ़ाया, परन्तु लक्ष्मणजी ने तीन बाण मारकर उसे भी काट डाला।

अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः।
विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः॥ १०॥

इस प्रकार उसके दूसरे धनुष को भी काट लक्ष्मणजी ने विषधर सर्प के समान विषैले पाँच बाण इन्द्रजित् की छाती में मारकर उसे घायल कर दिया।

जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम्।
स लक्ष्मणं समुद्दिश्य ववर्ष शरवर्षाणि॥ ११॥

तब इन्द्रजित् ने भी एक दृढ़ प्रत्यञ्चा-डोरीवाला उत्तम धनुष ले और लक्ष्मण को निशाना बनाकर उस पर बाण-वृष्टि आरम्भ की।

तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा।
सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः।
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा॥ १२॥

शत्रुहन्ता लक्ष्मणजी उसके छोड़े हुए बाणों का अपने बाणों द्वारा बीच में ही काट डालते थे। लड़ते-लड़ते रथियों में श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मण ने सीधे पोरुओंवाले भल्ल नामक एक पैने बाण से इन्द्रजित् के सारथि का सिर काट डाला।

असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः।
मण्डलान्यभिधावन्ति तदद्भुतमिवाभवत्॥ १३॥

घोड़े सधे एवं शिक्षित होने के कारण सारथि के न रहने पर भी भड़के नहीं, अपितु वे मण्डलाकार चक्कर काटने लगे। यह भी एक अद्भुत बात थी।

अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः।
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन्रणे॥ १४॥

अब दृढ़ पराक्रमी लक्ष्मणजी ने क्रुद्ध होकर घोड़ों को भी बाणों से घायलकर उन्हें युद्धभूमि में भड़का दिया।

अमृष्यमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो बली।
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम्॥ १५॥

रावण-तनय बलवान् इन्द्रजित् ने असहनशील लक्ष्मण के इस कार्य को सहन न कर उसे दस बाण मारकर घायल किया।

स तथा ह्यर्दितो बाणै राक्षसेन महामृधे।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः॥ १६॥

उस महायुद्ध में इन्द्रजित् द्वारा उन बाणों से घायल हो लक्ष्मणजी ने भी पाँच बाण मारकर उसे घायल कर दिया।

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ।
अन्योऽन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमविक्रमौ॥ १७॥

इस प्रकार भयंकार विक्रमशाली, महाबलवान् एवं विशाल धनुर्धारी वीर लक्ष्मण और इन्द्रजित् पैने-पैने बाणों से एक-दूसरे को घायल करने लगे।

ततः समरकोपेन संयुक्तो रावणात्मजः।
विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे॥ १८॥

लड़ते-लड़ते समरकोप से युक्त इन्द्रजित् ने विभीषण के सुन्दर मुख पर तीन बाण मारकर उसे घायल कर दिया।

तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान्।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः॥ १९॥

तब महातेजस्वी विभीषण ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो अपनी गदा के प्रहार से इन्द्रजित् के घोड़ों को मार डाला।

स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह॥ २०॥

रथ का सारथि तो पहले ही मर चुका था अब घोड़ों के भी मर जाने पर इन्द्रजित् रथ से नीचे कूद पड़ा और उस महातेजस्वी ने एक शक्ति अपने चाचा विभीषण के ऊपर छोड़ी।

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधा साऽपतद्भुवि॥ २१॥

उस शक्ति का विभीषण की ओर आते देख सुमित्रा

के आनन्द को बढ़ानेवाले लक्ष्मण ने उसे बीच में ही पैने बाणों से काट डाला जिससे उसके दस टुकड़े होकर वह भूमि पर गिर पड़ी।

ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः।
आग्नेयं सन्दधे दीप्तं सलोकं संक्षिपन्निव॥ २२॥

उस शक्ति को व्यर्थ जाते देख समर विजयी महातेजस्वी इन्द्रजित् ने शत्रु-सैन्य-सहित लक्ष्मण का संहार करने के लिए देदीप्यमान आग्नेयास्त्र को धनुष पर चढ़ाया।

सौरेणास्त्रेण तद्वीरो लक्ष्मणः प्रत्यवारयत्।
तयोः सुतुमुलं युद्धं सम्बभूवाद्भुतोपमम्॥ २३॥

उधर लक्ष्मणजी ने सौर्य-अस्त्र चलाकर उस आग्नेयास्त्र को व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करते हुए उन दोनों में भयंकर एवं अद्भुत युद्ध हुआ।

अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम्।
सन्धाय धनुषि श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत्॥ २४॥

अन्त में लक्ष्मणजी ने युद्ध में कभी भी व्यर्थ न जानेवाले ऐन्द्रास्त्र नामक उत्तम बाण का अपने श्रेष्ठ धनुष पर रखा और रोदे को कान तक खींचते हुए कहा—

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम्॥ २५॥

यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्मात्मा, सत्यवादी एवं अद्वितीय पराक्रमी हों तो यह बाण इन्द्रजित् का वध करे।

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम्।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति॥ २६॥

ऐसा कहकर वीर लक्ष्मण ने उस सीधे जानेवाले बाण को कान तक खींचा और युद्ध में इन्द्रजित् के ऊपर छोड़ दिया।

तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले॥ २७॥

उस बाण ने इन्द्रजित् के सिर का शिरस्त्राण (Steel Helmet) तथा बहुमूल्य चमकते हुए कुण्डलों-सहित धड़ से अलग कर पृथिवी पर गिरा दिया।

पतितं तमभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः।
वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः॥ २८॥

इस प्रकार इन्द्रजित् को मरा हुआ जान राक्षसों की महती सेना विजयी वानरों द्वारा खदेड़ी जाकर चारों दिखाओं में भाग खड़ी हुई।

तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम्।
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम्॥ २९॥

उस अनुपम बलवाले राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित् को मरा हुआ देखकर विभीषण, हनुमान् और ऋक्षसेना के सेनापति जाम्बवान् जय-जयकार कहकर लक्ष्मणजी की प्रशंसा करने लगे।

➤ एकोनपञ्चाशः सर्गः ➤ (४९)

लक्ष्मण की प्रशंसा एवं चिकित्सा—

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
आजगाम ततस्तीव्रं यत्र सुग्रीवराघवौ॥ १॥

शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण जिनका सारा शरीर युद्ध में घायल होने के कारण रक्तरञ्जित हो गया था, अब शीघ्रता से वहाँ पहुँचे जहाँ सुग्रीव-सहित श्रीराम विराजमान थे।

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा॥ २॥

श्रीराम के समीप पहुँच लक्ष्मणजी ने श्रीराम की प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम किया और उनके समीप खड़े हो गये मानो इन्द्र के पास उसका छोटा भाई

खड़ा हो।

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः॥ ३॥

तत्पश्चात् विभीषण ने हर्षित हो महाबलवान् लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् के शिर छेदन का वृत्तान्त राम को सुनाया।

श्रुत्वा तत्तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे रामो वाक्यमुवाच ह॥ ४॥

महापराक्रमी श्रीराम, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् के मारे जाने का समाचार सुन, अत्यन्त हर्षित हो लक्ष्मणजी से बोले—

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्मणा सुकृतं कृतम्।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय॥ ५॥

हे लक्ष्मण! तुम धन्य हो! तुम्हारे इस उत्तम कर्म को देखकर मैं अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ हूँ। इन्द्रजित् के मारे जाने से अब हमारी जीत सुनिश्चित है।

स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम्।
लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान्॥ ६॥

श्रीराम ने ऐसा कह शोभा बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी का सिर सूँघा और लज्जित होते हुए लक्ष्मण को बलात् अपनी गोद मे बैठा लिया।

उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावमीडितम्।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत॥ ७॥

श्रीराम ने लक्ष्मणजी को अपनी गोद में बैठाकर उनका गाढ़ आलिंगन किया और बार-बार उन्हें स्नेह भरी दृष्टि से निहारा।

शल्यसम्पीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम्।
रामस्तु दुःखसन्तप्तस्तदा निःश्वसितो भृशम्॥ ८॥

बाणों की चोट से पीड़ित, घाव खाये हुए और हाँफते हुए लक्ष्मणजी देख श्रीराम भी दुःखी और सन्तप्त हुए तथा बारम्बार दीर्घ निःश्वास लेने लगे।

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन्।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः॥ ९॥

पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम ने पुनः लक्ष्मण का सिर सूँघा और उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए उन्हें सान्त्वना प्रदान कर उनसे कहने लगे- -

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि॥ १०॥

इस कठिन कार्य को कर तुमने परम कल्याणकारी कर्म किया है। युद्ध में इन्द्रजित् के मारे जाने से मैं रावण को भी मरा हुआ ही समझता हूँ।

रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे।
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः॥ ११॥

हे वीर! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आज तुमने युद्ध में क्रूर रावण की दाहिनी भुजा को, जो उसका आश्रय था काट डाला।

विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे।
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद्विनिपातितः॥ १२॥

इस युद्ध में हनुमान् और विभीषण ने भी बड़ा भारी काम किया है तभी वह वीर तीन दिन रात में किसी प्रकार मारा जा सका है।

स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च लक्ष्मणम्।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत्॥ १३॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणजी को सान्त्वना प्रदान करते हुए और एक बार फिर उन्हें हृदय से लगा कर श्रीराम ने प्रसन्न हो वैद्यराज सुषेण[१] को बुलाकर उनसे कहा—

सशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः।
यथा भवति सुस्वस्थास्तथा त्वं समुपाचर॥ १४॥

१. गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने 'रामचरितमानस' में सुषेण को रावण का गृहचिकित्सक (Family Doctor) बताया है, परन्तु यह बात महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य से मेल नहीं खाती। पन्द्रहवें श्लोक में सुषेण के लिए 'हरियूथपः' विशेषण का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि सुषेण सुग्रीव की सेना के सेनापति थे और साथ ही उत्तमकोटि के चिकित्सक भी। महात्मा तुलसीदास की कल्पना इतिहास विरुद्ध होने के कारण कपोलकल्पित एवं मिथ्या है।

हे महाप्राज्ञ! मित्रवत्सल लक्ष्मणजी बाणों की चोट से पीड़ित हैं, अतः आप ऐसा उपाय करो जिससे इनकी पीड़ा दूर हो कर ये स्वस्थ हो जायें।

एवमुक्तस्तु रामेण महात्मा हरियूथपः।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधिम्॥ १५॥

जब श्रीराम ने वानरयूथपति महात्मा सुषेण से इस प्रकार कहा तब सुषेण ने लक्ष्मणजी को एक उत्तम ओषधि का नस्य दिया।

स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तथा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च॥ १६॥

उस नस्य को सूँघते ही लक्ष्मणजी के घावों में बाणों की जो नोकें गड़ी थीं वे अपने आप बाहर निकल पड़ीं। उनके घाव पुर हो गये और उनकी पीड़ा भी दूर हो गई।

विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सां स तदाकरोत्॥ १७॥

लक्ष्मण की चिकित्सा के पश्चात् सुषेण ने श्रीराम की आज्ञानुसार विभीषण आदि मित्रों और प्रमुख वानरों की चिकित्सा की।

➤ पञ्चाशः सर्गः ➤ (५०)

पुत्रवध से पागल हो रावण का सीता को मारने के लिए उद्यत होना और मन्त्री सुपार्श्व का उसे रोकना—

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितं हतम्।
आचचक्षुरवज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः॥ १॥

(युद्ध छोड़कर भागे हुए राक्षसों से) इन्द्रजित् के मारे जाने का वृत्तान्त सुन रावण के मन्त्रियों ने स्वयं सत्यता का निश्चय कर, वह समस्त वृत्तान्त रावण का कह सुनाया।

युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः॥ २॥

महाराज! युद्ध में लक्ष्मणजी ने विभीषण की सहायता से हम लोगों के देखते-देखते आपके कान्तिमान् पुत्र इन्द्रजित् को मार डाला।

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित्॥ ३॥

जो वीर वीर के साथ टक्कर लेकर युद्ध में कभी पराजित नहीं हुआ था, उसी देवेन्द्रविजेता आपके शूरवीर पुत्र इन्द्रजित् को लक्ष्मण ने यमलोक भेज दिया।

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम्।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं चाविशत् महत्॥ ४॥

युद्ध में अपने पुत्र इन्द्रजित् के मारे जाने का दारुण और अति भयंकर वृत्तान्त सुन, रावण एक साथ महामूर्छा में पड़ गया।

उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः।
पुत्रशोकार्दितो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः॥ ५॥

बहुत देर के पश्चात् जब रावण की मूर्छा भङ्ग हुई और वह सचेत हुआ तब राक्षसश्रेष्ठ रावण पुत्रशोक से व्याकुल, व्यथित और दुःखी हो विलाप कर कहने लगा—

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महारथ।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः॥ ६॥

हा राक्षस-सेना के प्रमुख सेनापति! हा मेरे पुत्र! हा महारथि! तूने तो इन्द्र तक को जीता था, फिर तू आज लक्ष्मण के वश में कैसे आ गया?

यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप।
मातरं मां च भार्यां च क्व गतोऽसि विहाय नः॥ ७॥

हे शत्रुओं के तपानेवाले! युवराजपद को, लंका को, राक्षसों को, अपनी माता को, अपनी भार्या को और हम सबको छोड़ तू कहाँ चला गया?

मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम्।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे॥ ८॥

हे वीर! अवस्था के अनुसार मेरे मरने पर तुम्हें मेरा अन्त्येष्टि-कर्म करना था, परन्तु यहाँ तो उल्टी ही बात हो रही है।

स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः॥ ९॥

हा! तुम सुग्रीव को और लक्ष्मण-सहित राम को जीवित छोड़ और मेरे काँटे को निकाले बिना ही हम सबको छोड़, कहाँ चले गये?

एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम्।
आविवेश महान् कोपः पुत्रव्यसनसम्भवः॥ १०॥

इस प्रकार विलाप करते-करते राक्षसराज रावण पुत्र के मारे जाने के कारण अत्यन्त क्रोध में भर गया।

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद्वधम्॥ ११॥

शूरवीर रावण पुत्र की मृत्यु से सन्तप्त हो क्रोध के वशीभूत हो गया। (क्रोधवश उससे और कुछ तो करते-धरते बन न पड़ा, हाँ) बहुत सोच-विचार के पश्चात् उसे सीताजी का वध करना ही उचित प्रतीत हुआ।

वैदहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्।
इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत्॥ १२॥
उद्धृत्य गुणसम्पन्नं विमलाम्बरवचर्सम्।
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः॥ १३॥

'मैं क्षत्रियाधम राम की अनुगामिनी सीता का वध करूँगा'—यह कहकर रावण ने पुष्पमालाओं से अलंकृत और निर्मल आकाश की भाँति चमकती हुई तलवार उठा ली। तत्पश्चात् वह अपनी पत्नियों और मन्त्रियों को साथ ले बड़ी फुर्ती के साथ राज भवन से निकला।

रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः।
संक्रुद्धः खड्गमादाय जगाम यत्र मैथिली॥ १४॥

उस समय रावण पुत्रवध के शोक से व्याकुल और क्रोध में भरा हुआ था, अतः वह नँगी तलवार लिये हुए सहसा वहां जा पहुँचा जहाँ सीताजी थीं।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यो बुद्धिमाञ्शुचिः।
सुपार्श्वो नाम मेधावी राक्षसो राक्षसेश्वरम्॥ १५॥
निवार्यमाणं सचिवैरिदं वचनमब्रवीत्।
कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि॥ १६॥

इसी बीच में उचित अवसर देख रावण के बुद्धिमान्, शुद्ध-चरित्र और मेधावी मन्त्री सुपार्श्व ने, अन्य मन्त्रियों के रोकने पर भी राक्षसश्रेष्ठ रावण से कहा—हे दशग्रीव! तुम साक्षात् कुबेर के भाई होकर भी क्रोध के वशवर्ती हो, धर्म को त्यागकर सीता का वध क्यों करना चाहते हो?

वेदविद्या व्रतस्नातः स्वकर्मनिरतः सदा।
स्त्रियाः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर॥ १७॥

हे राक्षसराज! आपने यथाविधि वेद का अध्ययन किया है तथा आप अपने क्षात्रधर्म में सद तत्पर रहते हैं, फिर हे वीर! आप स्त्री-वध को कैसे उचित समझते हैं?

मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव।
त्वमेव तु सहास्माभी राघवे क्रोधमुत्सृज॥ १८॥

हे राजन्! तुम इस सुन्दर मैथिली को क्षमा करो और हम लोगों के साथ चलकर अपना यह क्रोध राम के ऊपर उतारो।

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम्।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः॥ १९॥

आज कृष्ण पक्ष (चैत्र कृष्णपक्ष) की चतुर्दशी है। आज आप युद्ध की पूर्ण तैयारी कीजिए और कल अमावास्या को सेना को साथ ले विजय के लिए दुर्ग से बाहर निकलिए।

शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम्॥ २०॥

आप शूर हैं, बुद्धिमान् हैं, महारथी हैं अतः

(कल) आप उत्तम रथ में आरूढ़ होकर तथा हाथ में तलवार लेकर युद्धभूमि में चलिए और वहाँ दशरथनन्दन राम का काम तमाम कीजिए, फिर सीता आपको स्वयमेव ही मिल जायेगी।

स तद् दुरात्मा सुहृदा निवेदितं
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः॥ २१॥

मन्त्री सुपार्श्व के इन धर्मयुक्त वचनों का मानकर दुरात्मा एवं बलवान् रावण अपने भवन का लौट गया और वहाँ से अपने हितैषियों के साथ पुनः सभाभवन में गया।

◀ एकपञ्चाशः सर्गः ▶ (५१)

रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान—

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन॥ १॥

सुपार्श्व द्वारा सीता-वध से रोके जाने पर उदास तथा परमदुःखी रावण राजसभा में जा सिंहासन पर बैठ गया और क्रोध सिंह की भाँति श्वास लेने लगा।

सन्दश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः।
उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः॥ २॥
महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम्।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया॥ ३॥

दाँतो से अपने ओष्ठों को चबाकर और क्रोध के मारे लाल-लाल आँखें कर वह अपने समीप खड़े हुए, महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष राक्षसों से बोला—जाओ, मेरी आज्ञा से सब सैनिकों से कह दो कि सब लोग तैयार होकर शीघ्र कूच करें।

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः।
अनुप्रयान्तु मां सर्वे येऽवशिष्टा निशाचराः॥ ४॥

मेरा रथ भी शीघ्र तैयार करो और जल्दी से मेरा धनुष भी ले आओ। जो राक्षस बचे हुए हैं वे सब मेरे पीछे-पीछे चलें।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद्वचः।
बलाध्यक्षान् स्थितांस्तत्र बलं सन्त्वर्यतामिति॥ ५॥

रावण के इस आदेश को सुनकर महापार्श्व ने वहां उपस्थित सेनापतियों से कहा—सेना को शीघ्र तैयार होने का आदेश दो।

बलाध्यक्षस्तु संरब्धा राक्षसांस्तान् गृहाद्गृहात्।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः॥ ६॥

उन फुर्तीले सेनापतियों ने सारी लङ्कापुरी में घूम-फिरकर और क्रोध में भरकर (क्रोध में इसलिए कि अनेक राक्षस भय के कारण बुलाने पर भी घर से बाहर नहीं निकलते थे) घर-घर में जा और राक्षसों को राजाज्ञा सुनाकर शीघ्र तैयार होकर निकलने के लिए प्रेरित किया।

ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः।
नदन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः॥ ७॥

तब थोड़ी ही देर में भयानक आकृतिवाले और भयंकर शरीरधारी राक्षस हाथों में विविध प्रकार के हथियार लिये हुए तथा सिंहनाद करते हुए अपने-अपने घरों से निकले।

एतस्मिन्नन्तरे सूतः स्थापयामास तं रथम्।
दिव्यास्त्रवरसम्पन्नं नानालङ्कारभूषितम्॥ ८॥

इसी बीच सारथि रावण का रथ ले आया जो दिव्य एवं उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से अलंकृत और आभूषणों से विभूषित था।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रावणो राक्षसेश्वरः।
द्रुतं दूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम्।
आरुरोह रथं भीमं दीप्यमानं स्वतेजसा॥ ९॥

उस रथ को देखकर राक्षसराज रावण एकदम उठा और उस पर सवार हो गया। वह रथ तीव्रगामी था उस पर सारथि सवार था और आठ घोड़े जुते हुए

थे तथा अपनी छटा से वह भयानक रूप में चमक रहा था।

ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद्दारयन्निव मेदिनीम्॥ १०॥

रथ पर आरूढ़ होकर और राक्षसों को साथ लिये हुए रावण अपने महाबल से भूमि को विदीर्ण सा करता हुआ चला।

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा॥ ११॥

रावण की आज्ञा पा महापार्श्व, महोदर विरूपाक्ष और दुर्धर्ष भी अपने-अपने रथों में बैठकर प्रस्थानित हुए।

ते तु हृष्टा विनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम्।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः॥ १२॥

ये सब-के-सब विजयाभिलाषी सैनिक हर्ष के विजय नाद गुँजाते हुए, भूमि को विदीर्ण करते हुए तथा भयजनक सिंहनाद करते हुए लङ्का से रण के लिए निकल पड़े।

तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम्।
वानराणमपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत॥ १३॥

उन महाबली राक्षसों के रथ की गड़गड़ाहट सुनकर वानर सेना भी युद्ध के लिए डट गई।

तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम्।
अन्योन्यमह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम्॥ १४॥

फिर तो वानरों और राक्षसों का घमासान युद्ध होने लगा। दोनों और के योद्धा क्रोध में भरकर विजय की अभिलाषा से एक-दूसरे को ललकारने लगे।

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत्॥ १५॥

तब रावण ने क्रोध में भरकर अपने स्वर्ण-विभूषित बाणों से वानर-सेना का भीषण संहार किया।

निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः।
केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रविवर्जिताः॥ १६॥

रावण के चलाये बाणों से किसी वानर का तो सिर कटकर धड़ से अलग जा गिरा, किसी का हृदय विदीर्ण हो गया और किसी के दोनों कान ही कट गये।

निरुच्छ्वासा हताः केचित् पार्श्वेषु दारिताः।
केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विवर्जिताः॥ १७॥

किन्हीं वानरों की श्वास बन्द हो जाने के कारण वे गिरकर मर गये। किन्हीं की कोखें विदीर्ण हो गईं, किन्हीं के सिर कट गये और किन्हीं की आँखें फूट गईं।

➤ द्विपञ्चाशः सर्गः ➤ (५२)

सुग्रीव द्वारा विरूपाक्ष का वध—

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम्।
आससाद ततो युद्धे राघवं त्वरितस्तदा॥ १॥

राक्षसराज रावण बड़ी फुर्ती के साथ वानर-सेना का नष्ट करता हुआ शीघ्र ही रणक्षेत्र में वहां जा पहुँचा जहाँ श्रीराम थे।

सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रवतो रणे।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः॥ २॥

उधर जब सुग्रीव ने देखा कि वानर लोग रावण द्वारा मारे जाकर युद्धभूमि से भाग रहे हैं तब वे सुषेण को सैन्य शिविर में नियतकर, स्वयं लड़ने के लिए तैयार हुए।

आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम्।
सुग्रीवोऽभिमुखः शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः॥ ३॥

अपने समान शूरवीर सुषेण को सैन्य शिविर में नियत कर, सुग्रीव हाथ में वृक्ष लेकर रावण का सामना करने के लिए चल दिये।

स नर्दन् युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान्।
पातयन् विविधांश्चान्याञ्जगामोत्तमराक्षसान्॥ ४॥

सुग्रीव रणभूमि में बड़े जोर से गर्जते हुए तथा प्रमुख राक्षसों को मार कर गिराते हुए, चले जाते थे।

अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु पतत्सु निनदत्सु च॥ ५॥
विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत्॥ ६॥

जब धनुर्धारी और दुर्जेय विरूपाक्ष ने देखा कि सुग्रीव के प्रहारों से राक्षसों का विनाश हो रहा है तथा वे चिल्ला-चिल्लाकर भूमि पर गिर रहे हैं तब वह अपना नाम सुनाकर रथ से नीचे उतरा और हाथी पर सवार हुआ।

स तं द्विरदमारुह्य विरूपाक्षो महारथः।
विनदन् भीमनिर्ह्लादं वानरानभ्यधावत॥ ७॥

विरूपाक्ष हाथी पर सवार होकर भयंकर सिंहनाद करता हुआ वानरों के ऊपर झपटा।

सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे।
स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् सम्प्रहर्षयन्॥ ८॥

उसने वानर-सेना के सम्मुख जा सुग्रीव के ऊपर भयंकर बाणवृष्टि की। इस प्रकार डरे हुए राक्षसों को हर्षित करते हुए विरूपाक्ष ने उन्हें पुनः युद्ध में प्रवृत्त किया।

स तु विद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा।
चुक्रोश स महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे॥ ९॥

वानरराज सुग्रीव जब तीखे बाणों से बिंध गये तब उन्होंने क्रोध में भरकर भीषण सिंहनाद किया और उस राक्षस को मारने का निश्चय किया।

ततः पादपमुद्धृत्य शूरः सम्प्रधनो हरिः।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तु महागजम्॥ १०॥

विरूपाक्ष के वध का निश्चय कर सुग्रीव ने एक पेड़ उखाड़ा और झपटकर उस हाथी के सिर पर दे मारा जिस पर विरूपाक्ष बैठा हुआ था।

स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च॥ ११॥

सुग्रीव के वृक्ष के प्रहार की चोट से वह गजराज एक धनुष अर्थात् चार हाथ पीछे हट गया और चिंघाड़ता हुआ बैठ गया।

गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान्।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम्॥ १२॥

हाथी को बेकार हुआ जान पराक्रमी विरूपाक्ष उस हाथी से नीचे कूद पड़ा और अपने शत्रु सुग्रीव के सामने आ डटा।

स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्।
विरूपाक्षाय चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम्॥ १३॥

तब सुग्रीव ने भी क्रोध में भरकर एक पर्वताकार बड़ी शिला उठाई और उस विरूपाक्ष के ऊपर दे मारा।

स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा॥ १४॥

राक्षसश्रेष्ठ विरूपाक्ष ने जब उस शिला को अपनी ओर आते देखा तब वह पराक्रमी पैंतरा बदलकर उसका वार बचा गया और सुग्रीव के ऊपर तलवार से प्रहार किया।

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः।
मुहूर्तमभवद्वीरो विसंज्ञ इव वानरः॥ १५॥

उस महाबली विरूपाक्ष की तलवार की चोट से वानरराज सुग्रीव एक मुहूर्त के लिए मूर्छित-से हो गये।

स तदा सहसोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे।
मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि॥ १६॥

जब वे सावधान हुए तब उन्होंने इस महायुद्ध में सहसा उछलकर और मुट्ठी बाँधकर विरूपाक्ष की छाती में बड़े जोर से एक घूँसा मारा।

मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे।
कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत्॥ १७॥

घूँसे के प्रहार से प्रताड़िता हो विरूपाक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने सेना के सम्मुख खड़े सुग्रीव पर पुन: तलवार का वार किया जिससे उसका कवच कट गया और वह घुटनों के बल नीचे गिर पड़ा।

स समुत्थाय पतितः सुग्रीवो वानरेश्वरः।
ततो न्यपातयत् क्रोधाच्छङ्खदेशे महत्तलम्॥ १८॥

घुटने टेके हुए वानरराज सुग्रीव ने सहसा उठकार और क्रुद्ध होकर एक चपेटा विरूपाक्ष के माथे पर मारा।

महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ।
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं च समुद्वमन्॥ १९॥

उस वज्र के समान चपेटे के प्रहार से विरूपाक्ष ने रक्त की वमन की और रक्त से लथपथ तथा निष्प्राण होकर वह भूमि पर गिर पड़ा।

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं
महाबलं तं हरिपार्थिवेन।
बलं समस्तं कपिराक्षसाना-
मुन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव॥ २०॥

वानरराज सुग्रीव द्वारा विरूपाक्ष का मारा जाना देख वानरों और राक्षसों की सेनाएँ यथाक्रम हर्ष और विषाद से गङ्गा की भाँति तरङ्गित हो उठीं।

➤ त्रिपञ्चाशः सर्गः ➤ (५३)

सुग्रीव द्वारा महोदर का वध—

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे।
सरसीव महाधर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः॥ १॥

उस समय उस भयंकर युद्ध में परस्पर प्रहार से मारे गये सैनिकों के कारण दोनों ओर की सेनाएँ वैसे ही क्षीण हो गईं जैसे ग्रीष्म-ऋतु में छोटी-छोटी तलैयाँ क्षीण हो जाती हैं।

स्वबलस्य विघातेन विरूपाक्षवधेन च।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः॥ २॥

अपनी सेना का संहार और विरूपाक्ष का मारा जाना देख राक्षसराज रावण दुगुना क्रुद्ध हो उठा।

उवाच च समीपस्थं महोदरमरिन्दमम्।
अस्मिन् काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता॥ ३॥

तब उसने अपने पास खड़े हुए शत्रुनाशक महोदर से कहा—हे महाबाहो! इस समय मेरी विजय की आशा तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है।

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम्।
भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम्॥ ४॥

हे वीर! शत्रुसेना का नाश कर आज अपना पराक्रम प्रकट करो। स्वामी का खाया हुआ नमक हलाल करके दिखाने का यही अवसर है, अत: जाओ और भली-भाँति युद्ध करो।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः।
प्रविवेशारिसेनां तां पतङ्ग इव पावकम्॥ ५॥

रावण के ऐसा कहने पर राक्षसेन्द्र महोदर ''बहुत-अच्छा'' शत्रुसेना में उसी प्रकार कूद पड़ा जैसे पतंगा आग में कूद पड़ता है।

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः॥ ६॥

रावण के उत्साहित करने पर अपने बाल का आश्रय ले महाबली एवं महातेजस्वी महोदर ने वानर-सेना में घुसकर भयंकर नर-संहार किया।

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्दिता भृशम्।
दिशो दश द्रुताः केचित् केचित् सुग्रीवमाश्रिताः॥ ७॥

महोदर की मार से समस्त वानर पीड़ित हुए, अत: उनमें से कुछ तो इधर-उधर भाग गये और कुछ सुग्रीव की शरण में पहुँचे।

प्रभग्नां समरे दृष्ट्वा वानराणां महाचमूम्।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम्॥ ८॥

जब सुग्रीव ने देखा कि युद्ध में वानरों की विशाल सेना बुरी तरह पिट गई है तब सुग्रीव ने समीप स्थित महोदर पर धावा बोला।

स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि।
गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः॥ ९॥

क्रुद्ध सुग्रीव को पृथिवी पर एक परिघ पड़ा दिखाई दिया (जिसे उन्होंने उठा लिया) उधर महोदर ने भी क्रुद्ध होकर एक गदा उठा ली।

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ॥ १०॥

इस प्रकार सुग्रीव परिघ और महोदर गदा लेकर लड़ने के लिए आमने-सामने हुए। वे दोनों साँड़ों की भाँति हुँकार करते हुए और बिजलीवाले बादलों की भाँति गरजते हुए एक-दूसरे से लड़ने लगे।

ततो भग्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ॥ ११॥

जब उन दोनों के वे आयुध टूट गये तब प्रदीप्त अग्नि की भाँति तेज एवं बल से युक्त वे दोनों योद्धा मुक्कों से एक-दूसरे पर पिल पड़े।

जघ्नतुस्तौ तदाऽन्योन्यं नेदतुश्च पुनः पुनः।
तलैश्चान्योन्यमाहत्य पेततुर्धरणीतले॥ १२॥

इस घमासान युद्ध में वे दोनों एक-दूसरे पर घूँसों का प्रहार करते हुए बार-बार सिंहनाद करते थे और थपेड़ों से एक-दूसरे को मार-मारकर धरती पर गिरा रहे थे।

उत्पेततुस्ततस्तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम्।
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ॥ १३॥

वे दोनों तुरन्त फिर उठ खड़े होते थे और एक-दूसरे पर प्रहार करने लगते थे। वे अपनी भुजाओं में भरकर एक-दूसरे को पटक देते थे, परन्तु उनमें हार कोई भी नहीं रहा था।

जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परन्तपौ।
आजहार ततः खड्गमदूरपरिवर्तिनम्॥ १४॥

शत्रुनाशक दोनों ही वीर जब इस प्रकार बाहुयुद्ध करते-करते थक गये तब उन दोनों ने पास पड़ी तलवारें को उठा लिया।

उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शास्त्रविशारदौ।
दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं सम्परीयतुः॥ १५॥

शस्त्र चलाने में निपुण वे दोनों योद्धा हर्षित हो तलवार उठाये हुए दक्षिण और वामवर्ती मण्डलाकार पैंतरेबाजी दिखाने लगे।

अथ शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः।
महावर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः॥ १६॥

इतने में अवसर पा अपने परक्रम को सराहनेवाले, शूरवीर दुष्ट महोदर ने सुग्रीव के महाकवच पर तलवार का वार किया।

लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः।
जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपहितं शिरः॥ १७॥

जब महोदर अपनी तलवार को खींचने लगा तब कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने शिरस्त्राण-सहित कुण्डलों से विभूषित महोदर के सिर को अपनी तलवार से काट गिराया।

निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले।
तद्बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न तिष्ठते॥ १८॥

उसके कटे हुए सिर का धरती पर पड़ा देखकर रावण की सेना वहाँ ठहर न सकी।

हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः।
चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः॥ १९॥

महोदर को समाप्त कर सुग्रीव समस्त वानरों सहित गर्जे। उस गर्जना का सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ और श्रीराम हर्षित हुए।

◀ चतुष्पञ्चाशः सर्गः ▶ (५४)

अङ्गद द्वारा महापार्श्व का वध—

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात् संरक्तलोचनः।
अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास सायकैः॥ १॥

महोदर के मारे जाने पर महाबलवान् राक्षस महापार्श्व क्रोध में भरकर और बदले में वह अङ्गद की भयंकर सेना को बाणों से विक्षुब्ध करने लगा।

स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि सर्वशः।
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः॥ २॥

वह मुख्य-मुख्य वानरों के शरीरों से उनके सिरों को बाण से काट-काटकर वैसे ही गिरा रहा था जैसे वायु डालियों से फलों को गिराती है।

तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः।
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः॥ ३॥

महापार्श्व की बाणवर्षा से पीड़ित वे वानर लोग मारे विषाद के निस्तेज होकर युद्ध से विमुख हो गये।

निरीक्ष्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम्।
जग्राह परिघं घोरमायसं क्रोधमूर्च्छितः॥ ४॥

महापार्श्व द्वारा अपनी सेना को पीड़ित देख अङ्गद ने क्रोध में भरकर एक लोहे का परिघ उठा लिया।

द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवान्।
महापार्श्वस्य चिक्षेप वधार्थं बालिनः सुतः॥ ५॥

बालिपुत्र अङ्गद ने उस परिघ को दोनों हाथों से पकड़ और जोर से घुमा महापार्श्व के वध के लिए उसके ऊपर फेंका।

स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः।
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्रं चाप्यपातयत्॥ ६॥

बड़े वेग से छूटे हुए उस परिघ ने उस राक्षस के हाथ से बाण सहित उसका धनुष गिरा दिया और उसके सिर की टोपी को भी उड़ा दिया।

तं समासाद्य वेगेन बालिपुत्रः प्रतापवान्।
तलेनाभ्यहनत् क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले॥ ७॥

तत्पश्चात् बालिपुत्र प्रतापी अङ्गद ने उसके समीप पहुँच, क्रुद्ध हो उसकी कनपटी में जहाँ कुण्डल लटक रहा था, एक थप्पड़ जमाया।

स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः।
करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम्॥ ८॥

तब महाप्रतापी और वेगवान् महापार्श्व को भी बड़ा क्रोध आया और उसने झपटकर एक फरसा उठाया।

तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम्।
राक्षसः परमः क्रुद्धो बालिपुत्रे न्यपातयत्॥ ९॥

उस तेल से साफ किये हुए, निर्मल और हीरे के समान दृढ़ फरसे को महापार्श्व ने क्रुद्ध होकर अङ्गद पर दे मारा।

तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपादितम्।
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम्॥ १०॥

अङ्गद ने, उस राक्षस द्वारा अपने बायें कन्धे पर किये गये फरसे के प्रहार को क्रोध में भरकर पैंतरा बदलकर निष्फल कर दिया।

स वीरो वज्रसङ्काशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः।
संवर्तयत्सुसंक्रुद्धः पितृतुल्यपराक्रमः॥ ११॥
राक्षसस्य स्तनाभ्यासे मर्मज्ञो हृदयं प्रति।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत्॥ १२॥

तत्पश्चात् पिता के समान पराक्रमी वीर अंगद ने क्रोध में भरकर अपना वज्र जैसा मुक्का जोर से घुमाया और मर्मस्थलों को पहचाननेवाले उस वीर ने वह घूँसा उस महापार्श्व की छाती में इतनी जोर से जमाया कि वह इन्द्र के वज्र जैसा पड़ा।

तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे।
पफाल हृदयं चाशु स पपात हतो भुवि॥ १३॥

उस घूँसे के प्रहार से, उस महायुद्ध में उस राक्षस का हृदया फट गया और वह निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

तस्मिन्निपतिते भूमौ तत् सैन्यं संप्रचुक्षुभे।
अभवच्च महान् क्रोधः समरे रावणस्य तु।
वानराणां च हृष्टानां सिंहनादश्च पुष्कलः॥ १४॥

महापार्श्व के भूमि पर गिरते ही उसकी सेना भाग खड़ी हुई। तब समार में रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, परन्तु वानरों ने प्रसन्न होकर तुमुल नाद किया।

◀ पञ्चपञ्चाशः सर्गः ▶ (५५)

राम-रावण का घोर युद्ध, लक्ष्मण का पराक्रम और रावण की शक्ति से उसका मूर्छित होना—

महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा तु राक्षसौ।
तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले॥ १॥
आविवेश महान् क्रोधो रावणं तं महामृधे।
सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह॥ २॥

उस महासमर में महोदर तथा महापार्श्व नामक दोनों राक्षसों और महाबली विरूपाक्ष को मरा हुआ देख रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और अपने सारथि को रथ हाँकने का आदेश देते हुए यह कहा—

निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च।
दुःखमेषोऽपनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ॥ ३॥

आज मैं राम और लक्ष्मण को मारकर अपने मारे गये मन्त्रियों के और लङ्कापुरी के घेरे जाने के दुःख को दूर कर दूँगा।

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान्।
नादयन् प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यवर्तत॥ ४॥

ऐसा कह रथ में आरूढ़ महारथी रावण अपने रथ की घरघराहट से दशों दिशाओं को प्रति ध्वनित करता हुआ शीघ्र राम के सम्मुख जा पहुँचा।

स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम्।
लक्ष्मेणन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा॥ ५॥

वहाँ पहुँचकर रावण ने देखा कि युद्ध में कभी परास्त न होने वाले राम युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं। उनके समीप उनके छोटे भाई लक्ष्मण ऐसे खड़े हुए हैं जैसे विष्णु के साथ इन्द्र।

स संख्ये राममासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राघवोपरि॥ ६॥

युद्ध में राम को देखकर रावण के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये ओर वह श्रीराम के ऊपर भीषण बाणवृष्टि करने लगा।

शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः।
दृष्ट्वैवापततः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम्॥ ७॥

रावण के धनुष से होती हुई बाणवृष्टि को शीघ्रता से अपने ऊपर आते देख श्रीराम ने बड़ी फुर्ती से भल्ल नामक बाण निकाले।

ताञ्शरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः।
दीप्यमानान् महाघोरान् क्रुद्धानाशीविषानिव॥ ८॥

श्रीराम ने रावण के उन देदीप्यमान महाभयानक और क्रुद्ध सर्प के समान विकराल बाणों का अपने पैने भल्ल नामक बाणों से काट गिराया।

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तदा।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरैरभिववर्षतुः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीराम रावण पर और रावण राम पर बड़ी फुर्ती के साथ विविध प्रकार के पैने-पैने बाणों की वर्षा करने लगे।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा॥ १०॥

इसी बीच में शत्रुघाती महाबली लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर सात बाण हाथ में लिये।

तैः सायकैर्महावेगैः रावणस्य महाद्युतिः।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा॥ ११॥

उन बाणों के प्रहार से महाकान्ति सम्पन्न लक्ष्मणजी ने रावण की मनुष्य-शिर चिह्नित ध्वजा के अनेक टुकड़े कर डाले।

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः॥ १२॥

तत्पश्चात् महाबलवान् श्रीमान् लक्ष्मणजी ने राक्षसराज रावण के सारथि का चमचमाते कुण्डलों से भूषित सिर काट डाला।

तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम्।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैः तदा॥ १३॥

फिर लक्ष्मणजी ने हाथी की सूँड के समान आकारवाला राक्षसराज रावण का धनुष भी पाँच पैने बाण मारकर काट डाला।

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान्।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः॥ १४॥

इतने में विभीषण ने कूदकर रावण के नीलमेघ के समान नीले रंगवाले और पर्वत के समान डील-डौलवाले घोड़ों को अपनी गदा से मार डाला।

हताश्वाद्वेगवान् वेगादवप्लुत्य महारथात्।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः॥ १५॥

घोड़ों के मारे जाने पर लघुविक्रम रावण बड़ी फुर्ती के साथ उस रथ से कूद पड़ा और अपने भाई विभीषण पर बड़ा क्रोध किया।

ततः शक्तिं महाशक्तिर्दीप्तां दीप्ताशनीमिव।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥ १६॥

क्रुद्ध होकर प्रतापी राक्षसेन्द्र रावण ने प्रदीप्त वज्र के समान चमचमाती हुई एक विपुल शक्ति सपन्न बर्छी विभीषण के ऊपर फेंकी।

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः।
अथोदतिष्ठत् सन्नादो वानराणां तदा रणे॥ १७॥

लक्ष्मणजी ने तीन बाण मार कर उस शक्ति=बर्छी को बीच में ही काट डाला। यह देखकर समर-भूमि में वानरों ने महान् हर्षनाद किया।

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं ववचनमब्रवीत्॥ १८॥

जब रावण ने देखा कि लक्ष्मण ने विभीषण को बचा लिया है तब वह लक्ष्मण के सामने जाकर उससे बोला—

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते॥ १९॥

हे सराहनीय बलशाली लक्ष्मण! तूने इस शक्ति से विभीषण को बचा दिया, अतः मैं भी उसे छोड़ अब यह शक्ति तेरे ऊपर छोड़ता हूँ।

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षण।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति॥ २०॥

मेरे हाथ से छूटी हुई यह रक्त-चिह्नित (रक्त से सनी) रक्त तेरे हृदय को चीरकर तेरे प्राण निकाल कर ले जायेगी।

इत्युक्त्वा विपुलां शक्तिं कालेनापि दुरासदाम्।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम्॥ २१॥
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च॥ २२॥

ऐसा कहकर उस शक्ति को जो मयदानव की बनाई हुई थी, जो कभी व्यर्थ न जानेवाली और काल के लिए भी दुर्धर्ष थी, जो शत्रु का विनाश करनेवाली और अपनी चमक से अग्नि की भाँति प्रदीप्त हो रही थी, रावण ने क्रोध में भरकर लक्ष्मण को लक्ष्य करके फैंका और बहुत जोर से गर्जना की।

सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमास्वना।
शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि॥ २३॥

भयंकर वेग से फेंकी हुई और वज्र के समान सनसनाती हुई वह शक्ति बड़े जोर से, रणक्षेत्र में डटे हुए लक्ष्मण को लगी।

न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महारसि।
शक्त्या निर्भिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः॥ २४॥

महावेगवाली वह शक्ति लक्ष्मण की छाती में

लगी जिससे उनका हृदय फट गया और वे पृथिवी पर गिर पड़े।[१]

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः।
भ्रातृस्नेहात् महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत्॥ २५॥

लक्ष्मणजी की यह अवस्था देखकर समीप खड़े हुए महातेजस्वी श्रीराम भ्रातृ-स्नेहवश बहुत उदास हो गये।

स मुहूर्तमनुध्याय बाष्पव्याकुललोचनः।
बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः॥ २६॥

कुछ समय तक तो वे आँखों में आँसू भरे हुए सोचते रहे कि इस समय क्या किया जाए, फिर वे युगान्तकालीन अग्नि की भाँति क्रोध से भड़क उठे ओर युद्ध करने के लिए उत्साहित हुए।

न विषादस्य कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य राघवः।
चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः॥ २७॥

श्रीराम ने सोचा की यह समय विषाद करने का नहीं है। ऐसा सोचकर रावण के वध का निश्चय कर वे प्रचणड युद्ध करने में प्रवृत्त हुए।

अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं चैव राघवः।
लक्ष्मणं परिवार्येह तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः॥ २८॥

युद्ध में प्रवृत्त होने का निश्चय कर श्रीराम ने सुग्रीव और हनुमान् का सम्बोधित करके कहा—हे वानरश्रेष्ठो! तुम सब लक्ष्मण को घेरकर खड़े रहो।

अस्मिन् मुहूर्ते न चिरात् सत्यं प्रतिशृणोमि वः।
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्ष्यथ वानराः॥ २९॥

हे वानरो! मैं तुम लोगों के समक्ष प्रतिज्ञा-पूर्वक सत्य-सत्य कहता हूं कि तुम लोग शीघ्र ही इस संसार का रावण या राम से रहित देखोगे।

राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम्।
वैदेह्याश्च परामर्शो रक्षोभिश्च समागमम्॥ ३०॥
प्राप्तं दुःखं महद्घोरं क्लेशं च नियोपमम्।
अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे॥ ३१॥

देखो! राज्य का नाश, वन का वास, दण्डक वन में मारे-मारे फिरना, सीता का हरण और राक्षसों का समागम—इन सबसे मुझे बड़ा दुःख और नरक के समान क्लेश हुआ है। आज युद्ध में रावण को मारकर मैं इन सब क्लेशों से मुक्त हो जाऊँगा।

अद्य कर्म करष्यामि यल्लोकाः सचराचराः।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति॥ ३२॥

आज मैं वह काम करूँगा कि जब तक यह संसार रहेगा तब तक देवताओं सहित चर और अचर—सब उसका बखान करते रहेंगे।

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः।
आजघान दशग्रीवं रणे रामः समाहितः॥ ३३॥

ऐसा कहकर श्रीराम ने सावधान हो उस युद्ध में रावण के सुवर्ण से भूषित सात बाण मारे।

अथ प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः।
अभ्यवर्षत्तदारामं धराभिरिव तोयदः॥ ३४॥

तब रावण ने भी श्रीराम के ऊपर चमचमाते नाराच और मुसलों की ऐसी वृष्टि की जैसे बादल धाराप्रवाह रूप से जल की वर्षा करते हैं।

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभिः
महात्मना दीप्तधनुष्मताऽर्दितः।
भयात् प्रदुद्राव समेत्य रावणो
यथाऽनिलेनाभिहतो बलाहकः॥ ३५॥

अन्त में महापराक्रमी श्रीराम के धनुष से छूटे हुए बाणों की मार से पीड़ित हो मृत्यु के भय से भयभीत होकर रावण उसी प्रकार भाग खड़ा हुआ, जिस प्रकार पवन के वेग से बादल भागते हैं।

---

१. 'रामचरित-मानस' में बाबा तुलसीदासजी की यह कल्पना कि लक्ष्मणजी इन्द्रजित् की शक्ति से मूर्छित हुए थे इतिहास-विरुद्ध है, अतः मिथ्या है। महर्षि वाल्मीकि राम के समकालीन थे, अतः उनके द्वारा वर्णित घटना ही सत्य एवं प्रामाणिक है।

षट्पञ्चाशः सर्गः (५६)

राम का विलाप और लक्ष्मण की चिकित्सा—

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना।
परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः॥ १॥

(रावण का युद्ध में परास्त करने के पश्चात्) दुरात्मा रावण द्वारा अपने भाई को मारा गया देख श्रीराम अत्यन्त दुःखी और विकल हो विलाप करने लगे—

न हि युद्धेन मे कार्यं नेव प्राणैर्न सीतया।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु॥ २॥

वे कहने लगे—समरभूमि में धूल में पड़े हुए और मरे हुए लक्ष्मण को देख मुझे अब न तो युद्ध से ही कोई प्रयोजन है, न सीता से और न ही अब मुझे अधिक जीने की इच्छा है।

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥ ३॥

स्त्रियाँ और मित्र तो सब स्थानों पर मिल सकते हैं, परन्तु मुझे ऐसा कोई स्थान दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर[1] भाई मिल सके।

इत्येवं विलपन्तं तं शोकविह्वलितेन्द्रियम्।
राममाश्वासयन् वीरः सुषेणो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

इस प्रकार विलाप करते हुए शोक से व्याकुलेन्द्रिय श्रीराम को सान्त्वना प्रदान करते हुए सुषेण कहने लगे—

न मृतोऽयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि श्यावं न निष्प्रभम्॥ ५॥

हे महाबाहो! यह शोभा बढ़ानेवाले लक्ष्मण मरे नहीं हैं, क्योंकि न तो इनके शरीर की आकृति ही बिगड़ी हैं और न इनके मुखमण्डल का रंग ही काला पड़ा है और न ये निस्तेज हुए हैं।

सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्याभिलक्ष्यते।
मा विषादं कृथा वीर सप्राणोऽयमरिन्दमः॥ ६॥

इनका मुखमण्डल प्रसन्न और आभायुक्त है। हे वीर! आप दुःखी न हों। यह शत्रुहन्ता लक्ष्मण मरे नहीं, अपितु जीवित हैं।

एवमुक्त्वा तु वाक्यज्ञः सुषेणो राघवं वचः।
समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम्॥ ७॥

वाक्यज्ञ सुषेण श्रीराम से ऐसा कहकर समीप खड़े हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी से बोले—

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतम्।
पूर्वं ते कथितो योऽसो वीर जाम्बवता शुभः॥ ८॥
दक्षिणे शिखरे तस्य जातमोषधिमानय।
सञ्जीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ ९॥

हे सौम्य! हे वीर! तुम यहाँ से शीघ्र जाओ और जाम्बवान् ने जिस पर्वत का पता तुम्हें पहले बताया था उस ओषधि-पर्वत पर जाकर उस पर्वत के दक्षिण-शिक्षर पर उगनेवाली बूटियों को महात्मा लक्ष्मण के जीवनार्थ यहाँ ले आओ।

इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम्।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्तां महौषधिम्॥ १०॥

सुषेण के ऐसा कहने पर हनुमान्‌जी उस ओषधि-पर्वत पर गये, परन्तु वहाँ जाकर उन बूटियों को न पहचान सकने के कारण वे चिन्तित हो गये।

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरेः॥ ११॥

तब अमित पराक्रमीशाली पवनपुत्र हनुमान् को सहसा यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस पर्वतशिखर[2] (ओषधि-समूह) को ही उखाड़कर ले चलें।

---

१. राम और लक्ष्मण एक माता से उत्पन्न नहीं हुए थे, परन्तु इन दोनों में परस्पर अत्यधिक स्नेह था। लक्ष्मणजी राम के बाहर विचरनेवाले प्राण ही थे। आदिकवि ने सहोदर का प्रयोग 'सहोदर के समान' का भाव प्रकट करने के लिए किया प्रतीत होता है।

२. हनुमान्‌जी पहाड़ का उठाकर नहीं लाये थे। न पहाड़

इति सञ्चिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलः।
फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः।
आपपात गृहीत्वा तु लङ्कां प्राप्तवान् वानरः॥ १२॥

ऐसा निश्चय कर महाबली हनुमान्‌जी उस पर्वत-शिखर पर पहुँच और विविध प्रकार के पुष्पित वृक्षों को उखाड़ तथा उन्हें लेकर आकाश-मार्ग से उड़ चले और लङ्का में जा पहुँचे।

ततः संक्षोदयित्वाप तामोषधीं वानरोत्तमः।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतेः॥ १३॥

हनुमान् के उन ओषधियों को लेकर लंका में पहुँचने पर कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उन जड़ी-बूटियों को पीसा और कान्तिमान् लक्ष्मणजी को सुँघाया।

सशल्यस्तां समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठत् महीतलात्॥ १४॥

शस्त्रपीड़ा से युक्त शत्रुघाती लक्ष्मण उन ओषधियों को सूँघते ही शस्त्रपीड़ा से रहित होकर नीरोग हो गये और तुरन्त पृथिवी पर से उठ खड़े हुए।[१]

तमुत्थितं ते हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम्।
साधु साध्विति सुप्रीताः सुषेणं प्रत्यपूजयन्॥ १५॥

लक्ष्मणजी को पृथिवी पर से उठा देख समस्त वानरगण "धन्य! धन्य!" कहकर सुषेण की प्रशंसा करने लगे।

एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा।
सस्वजे स्नेहगाढं च बाष्पपर्याकुलेक्षणः॥ १६॥

उधर शत्रुसंहारक श्रीराम ने आँखों में आँसू भरे हुए, "आओ, आओ," ऐसा कहकर, अत्यन्त स्नेह के साथ लक्ष्मणजी को छाती से लगाया।

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा।
दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात् पुनरागतम्॥ १७॥

लक्ष्मणजी का आलिंगन कर श्रीराम ने उनसे कहा—हे वीर! मृत्यु के मुख से लौटे हुए तुम्हें मैं अपने सौभाग्य से ही पुनः देख रहा हूँ।

न हि मे जीवितेनार्थः सीतया चापि लक्ष्मण।
को हि मे विजयेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते॥ १८॥

हे लक्ष्मण! यदि तुम यमलोक सिधार जाते तो मुझे अपने जीवन से, सीता से और रावण पर विजय प्राप्त करने से क्या प्रयोजन रह जाता?

इत्येवं वदतस्तस्य राघवस्य महात्मनः।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्॥ १९॥

जब महात्मा श्रीराम ने ऐसा कहा तब खिन्न मन लक्ष्मण ने धीमे स्वर से ये वचन कहे—

तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं वक्तुमिहार्हसि॥ २०॥

हे सत्यपराक्रमी! पहले एक प्रतिज्ञा कर (रावण

का उखाड़ना सम्भव है और न उसका लाना। जब हनुमान्‌जी ओषधियों की पहचान भूल गये तब उन्होंने वहाँ से अनेक प्रकार की बहुत सारी जड़ी-बूटियाँ उखाड़ लीं और उन्हें ले आये। यहाँ कवि ने बात को सीधे-सादे शब्दों (अभिधावृत्ति) से न कहकर लक्षणावृत्ति से कहा है। घर में बच्चे शोर कर रहे हों तो कहते हैं—'अरे तुम ने तो घर को सिर पर उठा रखा है।' वस्तुतः घर सिर पर तो नहीं होता। ऐसी ही बात यहाँ है। हनुमान्‌जी पर्वत-शिखर नहीं ओषधि-समूह उठाकर लाये थे।

१. इस प्रसङ्ग में हनुमन्नाटककार ने एक बहुत सुन्दर कल्पना की है जिसे लिखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। जब लक्ष्मणजी स्वस्थ होकर उठ बैठे तब श्रीराम ने पूछा—कहो लक्ष्मण! तुम्हें कैसी वेदना हुई? इस पर लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम्॥

—हनुमन्नाटक १३। ३८

मैं तो इस वेदना को किंचिन्मात्र ही जानता हूँ भली-भाँति तो श्रीराम ही जानते हैं, क्योंकि वेदना तो राम को ही हुई थी, हम तो केवल व्रणी=घायल ही हुए थे। कैसा आदर्श एवं अद्भुत भ्रातृप्रेम है!

का वध कर विभीषण को लङ्का का राज्य देना) पश्चात् पुरुषार्थहीन लोगों की भाँति ऐसी बात कहना आपके लिए उचित नहीं है।

न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां साधवोऽनघ।
लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम्॥ २१॥

हे निष्पाप! श्रेष्ठ पुरुष जो प्रतिज्ञा एक बार कर लेते हैं, फिर वे उसे भङ्ग नहीं करते। महत्त्व इसी में है कि जो प्रतिज्ञा की जाये उसका पालन किया जाये अथवा बड़प्पन की पहचान यह है प्रतिज्ञा का पालन[1] किया जाए।

नैराश्यमुपगन्तुं ते तदलं मत्कृतेऽनघ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय॥ २२॥

हे निष्पाप! मेरे कारण आपको निराश होना उचित नहीं था, अब मैं भी स्वस्थ हो गया हूँ, अत: अब आप रावण का वध कर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिए।

➤ सप्तपञ्चाशः सर्गः ➤ (५७)

राम-रावण का युद्ध और रावण के सारथि का रावण को घबराया देख युद्धभूमि से बाहर ले जाना—

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः।
सन्दधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान्॥ १॥

लक्ष्मणजी के इन वचनों को सुन संहारक एवं पराक्रमी श्रीराम ने धनुष हाथ में ले उस पर बाण चढ़ाया।

अथान्यं रथमारुह्य रावणो राक्षसाधिपः।
अभ्यद्रवत काकुत्स्थमाजघान च तं शरैः॥ २॥

उधर रावण भी इसी बीच दूसरे रथ पर आरूढ़ हो श्रीराम के ऊपर झपटा और उन्हें अपने बाणों से घायल किया।

दीप्तपावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः।
निर्बिभेद रणे रामो दशग्रीवं समाहितः॥ ३॥

इस युद्ध में श्रीराम ने भी बड़ी सावधानी से सुवर्णभूषित एवं प्रज्ज्वलित अग्नि की भाँति देदीप्यामान बाणों से रावण को घायल किया।

भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः।
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवाः॥ ४॥

परन्तु देव, गन्धर्व और दानव (जो उस युद्ध के दर्शक थे) सब यही कहते थे कि भूमि पर खड़े[2] श्रीराम और रथारूढ़ रावण का यह युद्ध बराबरी का नहीं है।

देवतानां वचः श्रुत्वा शतक्रतुरनन्तरम्।
प्रेषयामास रामाय रथं मातलिसारथिम्॥ ५॥

देवताओं की बात सुनकर इन्द्र ने अपने सारथि मातलि सहित अपना रथ श्रीराम के लिए भेजा।

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः।
प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः॥ ६॥

हाथ में चाबुक लिये हुए रथ पर सवार इन्द्र के सारथि मातलि ने श्रीराम के समीप पहुँच हाथ जोड़कर

---

१. इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बहुत ही सुन्दर लिखा है—
"जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए अर्थात् जैसे किसी ने किसी को कहा कि "मैं तुमको या तुम मुझसे अमुक समय में मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूँगा" इसको वैसी ही पूरा करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी नहीं करेगा, इसलिए सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए।
—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

२. इस प्रसंग में गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक सुन्दर कल्पना की है। राम को रथ-विहीन देखकर विभीषण अधीर हो उठे और उन्होंने पूछा—

श्रीराम से कहा—

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण॥ ७॥

हे काकुत्स्थ! हे महापराक्रमी महाराज! हे शत्रुदमनकारिन्! आपकी विजय-प्राप्ति के लिए देवराज इन्द्र ने यह रथ भेजा है।

आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम्।
मया सारथिना राजन्महेन्द्र इव दानवान्॥ ८॥

हे वीर! मेरे सारथ्य में देवराज इन्द्र जिस प्रकार दानवों का नाश करते हैं उसी प्रकार आप भी इस रथ पर सवार होकर निशाचर रावण का विनाश कीजिए।

इत्युक्तः सम्परिक्रम्य जयाय रथमस्त्रवित्।
आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन्॥ ९॥

मातलि के ऐसा कहने पर अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता श्रीराम अपनी विजय के लिए उस रथ की परिक्रमा कर (परिक्रमा का उद्देश्य रथ की देखभाल करना था) उस पर आरूढ़ हुए। उस समय श्रीराम अपनी विजय-कान्ति से सब लोगों को आह्लादित करने लगे।

तद् बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः॥ १०॥

तत्पश्चात् महाबाहु श्रीराम और राक्षसराज रावण का ऐसा अद्भुत एवं भयंकर युद्ध हुआ कि देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गये।

ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धावुभौ तौ रामरावणौ।
शरान्धकारे समरे नोपलक्षयतां तदा॥ ११॥

दोनों वीर श्रीराम और रावण क्रोध में भर परस्पर एक-दूसरे के ऊपर इस प्रकार बाण-वर्षा करने लगे कि उन बाणों के छा जाने से समरभूमि में व्याप्त अन्धकार में वे दोनों एक-दूसरे को देख नहीं पाते थे।

ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः॥ १२॥

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

हे नाथ! आपके पास न रथ है, न शरीर की रक्षा करनेवाला कवच है और न जूते ही हैं, फिर आप उस बलवान् रावण को कैसे जीत सकेंगे?

यह सुन श्रीराम ने कहा—जिस रथ से विजय प्राप्त होती है वह रथ तो दूसरा ही है। कौन-सा है वह रथ? लीजिए, अवलोकन कीजिए—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म सन्तोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

राम ने कहा—शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं, सत्य और सदाचार उसकी दृढ़ ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम=इन्द्रिय निग्रह और परोपकार— ये चार उसके घोड़े हुए हैं। ईश्वर-भजन ही उस रथ का चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और श्रेष्ठ विज्ञान ही कठिन धनुष है। निर्मल=पाप-रहित और अचल=स्थिर मन तरकस के समान हैं। शम=मन का वश में होना, अहिंसा आदि यम और शौच आदि नियम बहुत सारे बाण हैं।

ब्राह्मणों और गुरुओं का पूजन ही अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो संसार का कोई शत्रु उसे जीत नहीं सकता।

उस समय दशरथनन्दन शूरवीर श्रीराम ने क्रोध में भरकर अट्टहास करते हुए रावण से ये कठोर वचन कहे—

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम।
हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान्॥ १३॥

अरे राक्षसाधम! हम लोगों के अनजाने तू विवशा मेरी पत्नी को जनस्थान से उठा लाया अतः शूरवीर तो तू नहीं है।

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शक।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे॥ १४॥

अरे पर-स्त्रियों पर हाथ डालनेवाले! अरे अनाथ स्त्रियों के समक्ष अपनी वीरता दिखानेवाले! कायरों का काम करके भी तू अपने आपको शूरवीर समझता है।

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित।
दर्पान्‌ मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे॥ १५॥

अरे मर्यादा तोड़नेवाले! ओ निर्लज्ज! अरे दुश्चरित्र! गर्व के कारण अपने हाथों अपनी मृत्यु को लाकर भी तू अपने को वीर समझता है।

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
श्लाघनीयं यशस्यं च कृतं कर्म महत्त्वया॥ १६॥

वाह! शूरवीर, बलवान् और कुबेर का छोटा भाई होकर भी तूने यह कार्य तो सराहनीय और बड़ा भारी किया है। इससे तेरी यशःपताका खूब फहरायेगी।

दिष्ट्याऽसि मम दुष्टात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम्॥ १७॥

आज सौभाग्यवश तू मुझे दिखाई पड़ा है, अतः आज ही मैं पैने-पैने बाणों से मारकर तुझे यमलोक भेज देता हूँ।

इत्येवं संवदन्वीरो रामः शत्रुनिर्बहणः।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत्॥ १८॥

इस प्रकार शत्रुनाशक श्रीराम समीप स्थित रावण से ये कठोर वचन कहकर उसके ऊपर बाणों की वृष्टि करने लगे।

हरिणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत्॥ १९॥

वानरों की पत्थर-वर्षा और श्रीराम की बाण-वर्षा से रावण घबरा गया।

सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं समीक्ष्य तम्।
शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत्॥ २०॥

रावण की ऐसी अवस्था देख उसका सारथि बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे उसके रथ को हाँककर समर-भूमि के बाहर ले गया।

◀ अष्टपञ्चाशः सर्गः ▶ (५८)

रावण द्वारा सारथि की भर्त्सना—

स तु मोहात् सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत्॥ १॥

जब रावण की घबराहट दूर हुई और वह सचेत एवं सावधान हुआ तब मृत्यु से प्रेरित रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। क्रोध के मारे लाल-लाल नेत्र कर वह सारथि से बोला—

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम्।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा॥ २॥

किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च।
त्वया शत्रोः समक्षं मे रथोऽयमपवाहितः॥ ३॥

क्या तूने मुझे वीर्यहीन, अशक्त, पुरुषार्थहीन, कायर, निर्बल और निस्तेज समझा? मेरा अनादर कर और मेरा अभिप्राय जाने बिना ही तू शत्रु के सामने से मेरा रथ क्यों हटा लाया?

त्वयाऽद्य हि ममानार्य चिरकालसमार्जितम्।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः॥ ४॥

अरे नीच! आज तूने मेरा बहुत दिनों का उपार्जित

यश, पराक्रम, तेज और विश्वास (लोगों का विश्वास कि रावण रण में पीठ नहीं दिखाता) सभी कुछ नष्ट कर डाला।

यस्त्वं रथमिमं मोहान्न चोद्वहसि दुर्मते।
सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः॥ ५॥

अरे दुर्मते ! मेरे कहने पर भी मोह से तू इस रथ को शत्रु के सामने नहीं ले जा रहा है इससे मुझे अपना यह अनुमान सत्य दिखाई देता है कि शत्रु ने तुझे घूँस दी है।

न हि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः।
रिपूणां सदृशं चैतन्न त्वयैतत् स्वनुष्ठितम्॥ ६॥

तूने आज मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है ऐसा व्यवहार कोई हितैषी सुहृद् कदापि नहीं कर सकता। तेरा यह व्यवहार तो शत्रुओं जैसा है। तुझे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं था।

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नोपैति मे रिपुः।
यदि वाऽध्युषितो वाऽसि स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः॥ ७॥

यदि तू मेरा सच्चा हितैषी है और यदि तुझे मेरे द्वारा अपने ऊपर किये गये अनुग्रहों (पुरस्कारादि प्रदान) का स्मरण हो तो जब तक शत्रु मेरा पीछा करता हुआ यहाँ नहीं पहुँचता उससे पहले ही मेरे रथ को वहाँ लौटा ले चल।

एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना।
अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः॥ ८॥

जब बुद्धिहीन रावण ने अपने हितैषी सारथि को इस प्रकार डाँटा-डपटा और कठोर वचन कहे तब सारथि ने अत्यन्त विनय के साथ ये वचन कहे—

न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया॥ ९॥

हे राजन्! न तो मैं भयभीत हुआ हूँ, न मेरी बुद्धि ही मारी गई हे, न मैंने शत्रुओं से घूँस खाई है, न मैं पागल हूँ, न स्नेह-रहित हूँ और नही मैं आपके उपकारों को भूला हूँ।

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा प्रियमित्यप्रियं कृतम्॥ १०॥

मैंने तो आपके हित के लिए और आपके यश की रक्षा के लिए स्नेहयुक्त मन से उत्तम कार्य ही किया है, परन्तु (यह मेरा दुर्भाग्य है कि इस अच्छे कार्य को भी) आप इसे बुरा समझते हैं।

श्रूयतां त्वभिधास्यामि यन्निमित्तं मया रथः।
नदीवेग इवाभोगे संयुगे विनिवर्तितः॥ ११॥

ऊँचे प्रदेश से गिरनेवाली नदी के वेग के समान आपके रथ को रणभूमि से यहाँ लाने का कारण मैं बताता हूँ, आप सुनिए—

श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा।
नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रहर्षं वोपधारये॥ १२॥
रथोद्वहनखिन्नाश्च ते इमे रथवाजिनः।
दीना धर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव॥ १३॥

हे वीर! जब मैंने देखा कि घोर युद्ध करते-करते आप थक गये हैं और आपके भीतर से मुख पर प्रसन्नता लानेवाला हर्ष विदा हो चुका है तथा रथ को खींचते-खींचते घोड़े भी खिन्न, दीन और गर्मी के कारण ऐसे सुस्त पड़ गये हैं जैसे बादलों से ढक जाने पर सूर्य की किरणों, तब मैंने यहाँ चले आना ही ठीक समझा।

न मया स्वेच्छया वीर रथोऽयमपवाहितः।
भर्तृस्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं विभो॥ १४॥

हे वीर! मैं अपने मन से समर भूमि से रथ को नहीं लाया। मैंने तो यह कार्य अपने स्वामी के स्नेह-अधीन होकर ही किया है।

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन।
तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा॥ १५॥

हे वीर! हे अरिनाशन! अब आप जैसी आज्ञा करेंगे मैं तदनुसार ही कार्य करूँगा जिससे मैं तुम्हारे ऋण से उऋण हो जाऊँ।

सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम्॥ १६॥

सारथि के इस उत्तर से सन्तुष्ट हो युद्ध का इच्छुक रावण उसकी प्रशंसा कर उससे कहने लगा –

रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं कुरु।
नाहात्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः॥ १७॥

हे सारथि! तुम मेरा यह रथ शीघ्र राम के सामने ले चलो, क्योंकि अब तो रावण शत्रु को मारकर ही वापस लौटेगा।

एवमुक्त्वा ततस्तुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः।
ददौ तस्मै शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम्।
श्रुत्वा रावणवाक्यं तु सारथिः संन्यवर्तत॥ १८॥

ऐसा कहकर राक्षसराज रावण सारथि पर प्रसन्न हुआ और उसे पुरस्कार रूप में हाथ में पहनने का एक सुन्दर आभूषण (अगूँठी अथवा कड़ा) प्रदान किया। रावण का ओदश पाकर सारथि ने रथ लौटाया।

➤ एकोनषष्टितमः सर्गः ➤ (५९)

राम-रावण का घोर युद्ध और रावण का वध—

तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशमापन्ततं रथं रिपोः।
विस्फारयन् वै वेगेन बालचन्द्रनतं धनुः।
उवाच मातलिं रामः प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः॥ १॥

शत्रु के उस मेघ-समान रथ को अपनी ओर आते देख श्रीराम ने द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति झुके हुए अपने धनुष को बड़े जोर से टंकारा और अपने सारथि से कहा—मेरे रथ को शत्रु के रथ के सामने ले चलो।

प्रत्यादिष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः।
प्रचोदयमास रथं सुरसारथिसत्तमः॥ २॥

राम का आदेश पाकर देवताओं के सारथियों में श्रेष्ठ मातलि ने अपना रथ हाँका।

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा।
सुमहद् द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम्॥ ३॥

जब दोनों के रथ आमने-सामने पहुँच गये तब उन दोनों महारथियों अर्थात् राम और रावण का समस्त प्राणियों को भयभीत करनेवाला क्रूर महायुद्ध प्रारम्भ हुआ।

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम्।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समतिष्ठत॥ ४॥

उस समय राक्षसों और वानरों की महती सेना हाथ में आयुधों को लिये हुए निश्चेष्ट खड़ी थी।

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः शरान् सन्धाय वीर्यवान्।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम्॥ ५॥

लड़ते-लड़ते बलवान् रावण ने क्रोध में भरकर श्रीराम के रथ की ध्वजा को लक्ष्य बनाकर बहुत से बाण छोड़े।

ते शरास्तमनासाद्य पुरन्दररथध्वजम्।
रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले॥ ६॥

वे बाण इन्द्र के अद्भुत शक्तिवाले रथ का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके और निष्फल होकर पृथिवी पर गिर पड़े।

ततो रामोऽभिसंक्रुद्धश्चापमायम्य वीर्यवान्।
रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम्॥ ७॥
महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा।
जगाम स महीं छित्वा दशग्रीवध्वजं शरः॥ ८॥

तब श्रीराम ने भी क्रुद्ध होकर अपने धनुष पर एक बाण का सन्धान किया और रावण के रथ की ध्वजा को लक्ष्य बना एक पैना बाण छोड़ा। वह महाविषधर सर्प के समान असह्य और अपनी दमक से चमकनेवाला बाण रावण के रथ की ध्वजा को काटकर पृथिवी में जा घुसा।

ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः सुमहाबलः।
सम्प्रदीप्तोऽभवत् क्रोधादमर्षात् प्रदहन्निव॥ ९॥

अपने रथ की ध्वजा को कटा हुआ देख महापराक्रमी रावण क्रोध और असहनशीलता से अग्नि की भाँति भड़क उठा।

स रोषवशमापन्नः शरवर्षं महद्वमन्।
रामस्य तुरगान् दीप्तैः शरैर्विव्याध रावणः॥ १०॥

फिर क्रोध के वशीभूत हो रावण भीषण शरवृष्टि करने लगा। और अपने चमचमाते बाणों से उसने श्रीराम के रथ में जुते हुए घोड़ों को घायल किया।

व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे।
प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे सायकाञ्शितान्।
स मुमोच ततो बाणान् रावणस्य हयान् प्रति॥ ११॥

युद्ध में प्रवृत्त हो रावण को ऐसी तत्परता दिखलाते हुए देख श्रीराम ने भी हँसते-हँसते बड़े पैने बाण धनुष पर रखे और रावण के घोड़ों के ऊपर छोड़ दिये।

रावणस्य हयान् रामो यान् रामस्य रावणः।
जघ्नतुस्तौ तथाऽन्योऽन्यं कृतानुकृतकारिणौ॥ १२॥

इस प्रकार रावण के घोड़ों को श्रीराम और राम के घोड़ों को रावण घायल करके एक-दूसरे से बदला ले रहे थे।

एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम्।
मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥ १३॥

इस प्रकार उन दोनों महाक्रुद्ध योद्धाओं का वह युद्ध बड़ा ही अद्भुत था। एक मुहूर्त भर तो ऐसा युद्ध हुआ कि देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गये।

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम्॥ १४॥

"जिस प्रकार आकाश की उपमा आकाश ही है और सागर की उपमा स्वयं सागर ही है। इसी प्रकार राम-रावण के युद्ध की उपमा राम-रावण का युद्ध ही है"—दर्शकगण ऐसा कहते हुए राम और रावण का युद्ध देख रहे थे।

ततः क्रुद्धो महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः।
सन्धाय धनुषा रामः क्षुरमाशीविषोपमम्॥ १५॥
रावणस्य शिरोच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्।
तस्यैव सदृशं चान्द्रावणस्योत्थितं शिरः॥ १६॥

तत्पश्चात् रघुवंश की कीर्ति को बढ़ानेवाले बलवान् श्रीराम ने क्रोध में भरकर छुरे की धार के समान पैना एक सर्पाकार बाण अपने धनुष क ऊपर रखकर छोड़ा। उस शिर के कटते ही ठीक उसी आकार-प्रकार का दूसरा सिर रावण के कन्धों पर निकल आया।

एवमेकशतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम्।
न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये॥ १७॥

श्रीराम ने एक ही आकार-प्रकार के रावण के सौ[१] सिर काट डाले, किन्तु फिर भी न तो रावण के सिरों का अन्त ही हुआ और न वह मरा ही।

अथ संस्मारयामास राघवं मातलिस्तदा।
विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो॥ १८॥

अब इन्द्र के सारथि मातलि ने श्रीराम को स्मरण कराते हुए कहा—राजन्! आप इसके वध के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिए।

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम्॥ १९॥

जब मातलि ने श्रीराम को ब्रह्मास्त्र का ध्यान दिलाया तब उन्होंने उस प्रदीप्त ब्रह्मास्त्र को निकाला जो फुँकारें मारते हुए सर्प की भाँति शब्द करता था।

---

१. रावण के दश शिर बताये जाते हैं, परन्तु यह स्थल रावण के सौ शिर होना सिद्ध कर रहा है। हम पहले ही सिद्ध कर आये हैं कि रावण के एक सिर, दो हाथ और दो ही पैर थे। दश अथवा सौ सिर बनावटी हैं। रावण कितना मायावी था यह पाठक देख ही चुके हैं। रावण ने राम का नकली सिर और बाण बनवाकर सीता को भी असमञ्जस में डाल दिया था। जो सीता बारह वर्ष महलों में और तेरह वर्ष वनवास में राम के साथ रही वह भी यह नहीं पहचान पाई कि यह सिर नकली है, इसी प्रकार इन्द्रजित् ने बनावटी सीता का वध कर वानरों को मोहित कर दिया था। इन घटनाओं से पता लगता है कि रावण के दस अथवा सौ सिर वास्तविक नहीं थे, अपितु बनावटी थे।

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम्॥ २०॥

श्रीराम ने अत्यन्त क्रुद्ध हो धनुष को कान तक खींचा और समस्त मर्मस्थलों को विदीर्ण करनेवाले उस बाण को बड़े वेग के साथ रावण क ऊपर छोड़ दिया।

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः शरः।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ २१॥

शरीर का नाश करनेवाले, महावेग से छूटे हुए उस बाण ने दुरात्मा रावण का हृदय विदीर्ण कर डाला।

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम्।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात्॥ २२॥

ब्रह्मास्त्र के आघात से रावण के प्राण-पखेरुओं के उड़ते ही बाण-सहित धनुष उसके हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा।

गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः।
पपात स्यन्दनाद् भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा॥ २३॥

प्राणों के निकलते ही महावेगवान् तथा महाप्रतापी राक्षस राज रावण रथ से भूमि पर ऐसे लुढ़क पड़ा जैसे इन्द्र द्वारा वज्र से मारा गया वृत्र लुढ़क पड़ा था।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः।
हथनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः॥ २४॥

रावण का भूमि पर पड़ा देख, युद्ध में मरने से बचे राक्षस, रक्षक के मारे जाने से भयभीत हो, इधर-उधर भाग गये।

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम्॥ २५॥

उधर विजयी वानरों ने अत्यन्त हर्षित हो हर्षनाद किया और राम की जय और रावण के वध के नारे लगाये।

◀ षष्टितमः सर्गः ▶ (६०)

विभीषण का विलाप और राम का उन्हें धैर्य प्रदान करना—

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं रामनिर्जितम्।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः॥ १॥

श्रीराम द्वारा पराजित अपने भाई रावण को निष्प्राण हो भूमि पर चिर-निद्रा में सोते देख शोक से व्याकुल विभीषण विलाप करते हुए कहने लगे—

वीरविक्रान्त विख्यात विनीत नयकोविद।
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि॥ २॥

हे वीर! हे विख्यात पराक्रमी! हे विद्या-सुशिक्षित! हे नीतिविशारद! आप उत्तम सेजों पर सोनेवाले होकर आज मृतक हो भूमि पर पड़े क्यों सो रहे हो?

निक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ[1] भुजावङ्गदभूषितौ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा॥ ३॥

बाजूबन्दों से सुशोभित आपकी दोनों लम्बी भुजाएँ चेष्टाहीन होकर फैली हुई हैं और सूर्य की भाँति देदीप्यमान आपका मुकुट भी अलग पड़ा हुआ है।

गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता॥ ४॥

हा! आपके मारे जाने से सुनीतिज्ञों की मर्यादा नष्ट हो गई, शरीरधारी धर्म का नाश हो गया (रावण वैदिक-कर्मकाण्डी था)। आपके मारे जाने से एक सुप्रसिद्ध बलवान् संसार से उठ गया और वीरों का आश्रय समाप्त हो गया।

---

१. **'दीर्घौ', 'निश्चेष्टौ'**—भुजाओं के इन द्विवचनात्मक विशेषणों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि रावण के युद्ध में भी दो ही भुजाएँ थीं, बीस नहीं।

किं शेषमिह लोकस्य हतवीरस्य साम्प्रतम्।
रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु॥ ५॥

हे राक्षसशार्दूल! इस रण में आपके मारे जाकर धूल में लेटने से, इस लङ्का में अब रह ही क्या गया?

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम्।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम्॥ ६॥

जब विभीषण इस प्रकार युक्तियुक्त स्पष्टार्थ बोधक वचनों से युक्त विलाप कर रहे थे तब शोक से व्याकुल विभीषण को समझाते हुए श्रीराम कहने लगे—

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥ ७॥

यह प्रचण्डपराक्रमी राक्षसराज रावण सामर्थ्यहीन होकर नहीं मारा गया है। इसका युद्धोत्साह तो बढ़ा चढ़ा था, इसे मृत्यु का भय भी नहीं था। यह तो दैववश ही मारा गया है।

नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्ममवस्थिताः।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥ ८॥

जो लोग क्षात्रधर्म में स्थित रहते हुए अपनी विजय की आकांक्षा रखते हुए समर भूमि में प्राण त्यागते हैं—वे साधारण जनों की भाँति शोक करने के योग्य नहीं होते।

इयं हि पूर्वैः सन्दिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः॥ ९॥

(पीठ न दिखाकर) समर में मारे जाने की प्रशंसा मनु-आदि भी करते चले आये हैं और वीर लोग भी ऐसी मृत्यु की प्रशंसा करते हैं। जो वीर युद्ध में मारा जाता है वह निश्चय ही शोक करने योग्य नहीं होता।

तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः।
यदिहान्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय॥ १०॥

हे विभीषण! "जो जन्मा है वह एक दिन अवश्य मरेगा"—इस तत्त्व को जानकर अब शोक का परित्याग करो और आगे जो करना है उसे करो।

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥ ११॥

जब तक मनुष्य जीवित होता है तभी तक उसके साथ वैर रहता है। मरने पर वैर भी समाप्त हो जाता है। यह मर चुका है और हमारा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है, अब तो यह जैसा तुम्हारा भाई था वैसा ही मेरा भी है, अतः इसका सम्मानपूर्वक दाह-संस्कार करो।

➤ एकषष्टितमः सर्गः ➤ (६१)

रावण-वध पर स्त्रियों का विलाप और रावण का अन्त्येष्टि-संस्कार—

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्षिताः॥ १॥

महाबली श्रीराम के हाथों रावण के मारे जाने का समाचार सुनकर शोक से पीड़ित राक्षसियाँ (रावण की स्त्रियाँ) अन्तःपुर से बाहर निकलीं।

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव॥ २॥

युद्धक्षेत्र में पहुँच और अपने पति को रणभूमि की धूल में पड़ा देख, वे उसके शरीर पर वैसे ही धड़ाम से गिर पड़ीं जैसे कटी हुई वन-लता धड़ाम से गिर पड़ती है।

बहुमानात् परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह।
चरणौ काचिदालिङ्ग्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च॥ ३॥

उनमें से कोई बड़े आदर के साथ उससे लिपट गई, कोई उसके पैरों से लिपटकर और कोई उसके कण्ठ को पकड़कर रोने लगी।

उद्धृत्य च भुजौ काचिद् भूमौ स्म परिवर्तते।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचित् मोहमुपागमत्॥ ४॥

कोई अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर भूमि पर लोटने लगी और कोई उस वध किये हुए रावण का मुख देखकर मूर्छित हो गई।

काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम्॥ ५॥

कोई उसके सिर को अपनी गोद में रख और उसके मुख को देख-देखकर रोने लगी और आँसुओं से उसका मुख ऐसे भिगोने लगी जैसे ओस की बूँदें कमल को भिगोती हैं।

एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्यदेवयन्॥ ६॥

इस प्रकार शोक से पीड़ित वे सब रावण को भूमि पर पड़ा हुआ देख बड़े जोर से चिल्लाकर रोने और विलाप करने लगीं—

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः।
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम्॥ ७॥
भयं येन महद्दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः।
एवं वदन्त्यो बहुधा रुरुदुस्तस्य ताः स्त्रियः॥ ८॥

जिसने इन्द्र और यम को भी युद्ध में संत्रस्त कर दिया था, जिसने गन्धर्वों, ऋषियों और बड़े-बड़े देवताओं को भी भयभीत कर दिया था, वही आज युद्ध में मारा जाकर रणभूमि में पड़ा सो रहा है। इस प्रकार विविध प्रकार से विलाप करती हुई वे स्त्रियाँ रो रही थीं।

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत्॥ ९॥

कल्पनातीत काम करनेवाले श्रीराम के हाथों अपने पति रावण को मरा हुआ देख पटरानी मन्दोदरी दुःखी हो विलाप करने लगी—

ननु राम महाभाग तव वैश्रवणानुज।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः॥ १०॥

हे महाभाग! हे कुबेर के छोटे भाई! हे जगद्विख्यात! जब तुम क्रोध करते थे तब इन्द्र भी तुम्हारे सम्मुख खड़े होने से भयभीत होता था।

ऋषयश्च महोदेवा गन्धर्वाश्च यशस्विनः।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः॥ ११॥

हे जगद्विख्यात! ऋषि, ब्राह्मण, प्रसिद्ध गन्धर्व और बड़े-बड़े चारण तुम्हारे क्रुद्ध होने पर दशों दिशाओं में भाग जाते थे।

स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः।
न व्यपत्रपसे राजन् किमिदं राक्षसर्षभ॥ १२॥

ऐसे पराक्रमी आप आज राम नामक साधारण मनुष्य के द्वारा संग्राम में पराजित होकर क्यों नहीं लजाते? हे राजन्! हे राक्षसश्रेष्ठ! इसका क्या कारण है?

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया।
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः॥ १३॥

मैं तो समझती हूँ कि आपने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके तीनों लोकों पर विजय पाई थी, अतः आपकी इन्द्रियों ने उस वैर का स्मरण कर अब तुम्हें परास्त किया है।

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया।
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता॥ १४॥

मैंने आपसे पहले ही कहा था कि आप श्रीराम से वैर मत करो, परन्तु आपने मेरी बात नहीं मानी। आज आपको उसी का फल मिला है।

वसुधायाश्च वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो॥ १५॥

सीता पृथिवी से भी बढ़कर क्षमाशील, समस्त सम्पदाओं की अधिष्ठात्री देवी और पतिव्रता है। हे स्वामिन्! निश्चय ही आप उस पतिव्रता की तप रूप अग्नि से भस्म हो गये।

सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः।
तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः॥ १६॥

संसार में बिना कारण के कोई भी नहीं मरता सो यह सीता ही आपकी मृत्यु का कारण बनी है।

मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति।
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे॥ १७॥

सीता तो अब आनन्दपूर्वक श्रीराम के साथ विहार करेगी और हतभाग्य मैं अब घोर शोक-सागर में गिर गई।

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम्॥ १८॥

हा! मेरे हृदय को धिक्कार है जो आपके मरने पर भी शोक से पीड़ित हो यह फटकर सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाता।

इत्येवं विलपन्त्येव बाष्पव्याकुललोचना।
स्नेहावस्कन्नहृदया देवी मोहमुपागमत्॥ १९॥

इस प्रकार विलाप करती हुई और आँखों से आँसू बहाती हुई मन्दोदरी स्नेह के कारण घबराकर मूर्छित हो गई।

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रियश्चैता निवर्तय॥ २०॥

उधर मन्दोदरी आदि विलाप कर रही थीं इधर इसी बीच श्रीराम ने विभीषण से कहा—अब तुम स्त्रियों को समझा-बुझाकर लङ्का में भेज दो और अपने भाई का अन्त्येष्टि-संस्कार करो।

तं प्रश्रितस्ततो रामं श्रुतवाक्यो विभीषणः।
विमृश्य बुद्धया धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः।
रामस्यैवानुवृत्यर्थमुत्तरं प्रत्यभाषत॥ २१॥

श्रीराम के ऐसे वचन सुन धर्मात्मा विभीषण ने श्रीराम के हृदयगत विचारों को जानने के लिए कुछ देर सोच-विचार कर, नम्रतापूर्वक और धर्मार्थयुक्त ये वचन कहे—

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा।
नाहमर्होऽस्मि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम्॥ २२॥

महाराज! अपने धर्मव्रत का परित्याग करनेवाले, क्रूर, अत्याचारी, मिथ्यावादी और पर-स्त्रीगामी इस रावण का अन्त्येष्टि-संस्कार करना मुझे उचित नहीं है।

भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात्॥ २३॥

रावण यद्यपि बड़ा होने के कारण मेरा पूज्य है, परन्तु वह इस योग्य नहीं कि मैं उसका अन्त्येष्टि-संस्कार करूँ, क्योंकि यह भाई रूप में मेरा शत्रु था और सदैव सबकी बुराई करने में लगा रहता था।

नृशंस इति मां कामं वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि।
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः॥ २४॥

हे राम! इसका अन्तिम-संस्कार न करने पर संसार के लोग पहले मुझे निष्ठुर और हृदयहीन कहेंगे, परन्तु इस रावण के बड़े-बड़े दुर्गुणों को सुन, वे ही लोग मेरे इस कार्य की प्रशंसा करेंगे (सब यही कहेंगे—ऐसे दुष्ट का अन्त्येष्टि संस्कार न करना ही अच्छा था)।

तत् श्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः।
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्॥ २५॥

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, वाक्यविशारद श्रीराम विभीषण के इन वचनों को सुन परमप्रसन्न हुए और वाक्य चतुर विभीषण से बोले—

तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावाच्च मे जितम्।
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर॥ २६॥

राक्षसेश्वर! आपकी सहायता से मैंने रावण पर विजय प्राप्त की है, अतः अब मुझे भी आपका प्रिय कार्य करना है (आपको राजसिंहासन पर बैठाना है) अतः जो बात तुम्हारे लिए उचित और हितकर होगी वह भी मैं तुमसे अवश्य कहूँगा।

अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः।
तेजस्वी बलवाञ्शूरः संयुगेष्वपराजितः॥ २७॥

यद्यपि यह रावण पापी और मिथ्यावादी था तथापि यह बलवान्, तेजस्वी और शूरवीर था और युद्ध में कभी पराजित नहीं होता था (अतः आपको इसका संस्कार करना ही चाहिए)।

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥ २८॥

जब तक मनुष्य जीवित होता है तभी तक उसके साथ वैर रहता है मरने पर वैर भी समाप्त हो जाता है। यह मर चुका है और हमारा प्रयोजन भी पूरा हो गया है, अब तो यह जैसा तुम्हारा भाई था ऐसा ही मेरा भी है[1], अतः अब तुम इसका सम्मानपूर्वक अन्त्येष्टि-संस्कार करो।

त्वत्सकाशाद्दशग्रीवः संस्कारं विधिपूर्वकम्।
प्राप्तुमर्हति धर्मज्ञ त्वं यशोभाग्भविष्यसि॥ २९॥

हे धर्मज्ञ! तुम्हारे हाथ से रावण का विधिपूर्वक दाह-संस्कार होने से तुम यश के भागी बनोगे।

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः।
संस्कारेणानुरूपेण योजयामास रावणम्॥ ३०॥

श्रीराम के इन उदार वचन को सुन विभीषण शीघ्रतापूर्वक अपने भाई की मद-मर्यादा के अनुरूप उनके अन्तिम-संस्कार की तैयारी में लग गये।

चितां चन्दनकाष्ठानां पद्मकोशीरसंवृताम्।
ब्राह्मया संवेशयाञ्चक्रू राज्ञो वै पश्चिमः क्रतुः॥ ३१॥

चन्दन, पद्मक, खस आदि सुगंधित लकड़ियों की चिता बनाई गई और रावण के मृतक शरीर को उस पर रख वैदिक विधि से उसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया।

◀ द्विषष्टितमः सर्गः ▶ (६२)

विभीषण का राज्याभिषेक—

अब्रवीच्च तदा रामः समीपपरिवर्तितम्।
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्॥ १॥

अन्त्येष्टि-संस्कार के पश्चात् श्रीराम ने अपने समीप बैठे हुए महापराक्रमी और तेज से देदीप्यमान लक्ष्मणजी से कहा—

विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय।
अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम्॥ २॥

हे सौम्य! अब तुम लंका में जाकर मेरे स्नेही, भक्त और पूर्वोपकारी विभीषण को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करो।

एष मे परमः कामो यदीमं रावणानुजम्।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम्॥ ३॥

हे सौम्य! यह मेरी परम कामना है कि मैं रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्का के राजसिंहासन पर अभिषिक्त देखूँ।

एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना।
तथेत्युक्त्वा तु संहृष्टः सौवर्णं घटमाददे॥ ४॥
तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान्।
आदिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलिलानये॥ ५॥

जब महात्मा श्रीराम ने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी ने "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर एक सुवर्णकलश उठाया और उसे शीघ्रगामी और महापराक्रमशाली श्रेष्ठ वानरों के हाथ में देकर कहा—इसमें समुद्र का जल ले आओ।

अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते महाबलाः।
आगतास्तज्जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः॥ ६॥

वे महाबली वानर अत्यन्त शीघ्रता से वहां से गये और समुद्र का जल लेकर तुरन्त ले आये।

---

१. यह है राम का आदर्श! राम रावण के मरने के पश्चात् विभीषण से उसका अन्त्येष्टि-संस्कार कराते हैं और सारे वैर-विरोध को भुला देते हैं, परन्तु आज राम के वंशज क्या कर रहे हैं? राम का गुणगान करनेवाले प्रतिवर्ष रावण का बुत बनाकर उसे जलाते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ क्या यह कृत्य श्रीराम के आदर्श के अनुरूप है? यदि नहीं तो यह निन्दनीय कर्म शीघ्र समाप्त होना चाहिए। क्या राम-लीला रचानेवाले ठेकेदार इस ओर ध्यान देंगे?

ततस्तु तं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यसिञ्चद्विभीषणम्॥ ७॥

तब लक्ष्मणजी ने कलश को लेकर लङ्का में जा विभीषण को राजसिंहासन पर बिठा समुद्र-जल से उनका अभिषेक किया।

लंकायां रक्षसां मध्यं राजानं रामशासनात्।
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृदयगणसमावृतम्।
अभ्यषिञ्चत् स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणम्॥ ८॥

श्रीराम के आदेशानुसार धर्मात्मा लक्ष्मण ने, लङ्का में, वहाँ के राक्षसों की उपस्थिति में सुहृदों से घिरे हुए शुद्धात्मा विभीषण का वैदिक-मन्त्रों से राजतिलक किया[१]।

तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता यं चास्य राक्षसाः।
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्॥ ९॥

राक्षसेन्द्र विभीषण को लङ्का के राज्यासन पर अभिषिक्त हुआ देख विभीषण के मन्त्री, और विभीषण के भक्त राक्षस लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

स तद्राज्यं महत् प्राप्य रामदत्तं विभीषणः।
प्रकृतीः सान्त्वयित्वा च ततो राममुपागमत्॥ १०॥

उधर विभीषण श्रीराम द्वारा प्रदत्त इस महान् राज्य का प्राप्त कर प्रजा को धैर्य एवं सान्त्वना प्रदान कर (लक्ष्मणजी को साथ लिये हुए) श्रीराम के पास पहुँचे।

ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं पार्श्वतः स्थितम्।
अब्रवीद्राघवो वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम्॥ ११॥

विभीषण के वहाँ पहुँचने पर श्रीराम ने अपनी बगल में खड़े पर्वत के समान डील-डौलवाले वीर हनुमान् से कहा—

अनुमान्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां विजयेनाभिनन्द्य च॥ १२॥
वैदेह्यै मां कुशलिनं ससुग्रीवं सलक्ष्मणम्।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च मया हतम्॥ १३॥

हे सौम्य! तुम महाराज विभीषण से आज्ञा माँगकर लङ्कापुरी में जाओ और मेरी विजय का संवाद सुनाकर सीता को आनन्दित करो। हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! मेरा, लक्ष्मण का और सुग्रीव का कुशल-समाचार सुनाकर सीताजी से यह भी कह देना कि मैंने रावण को मार डाला है।

प्रियमेतदुदाहृत्य मैथिल्यास्त्वं हरीश्वर।
प्रतिगृह्य च संदेशमुपावर्तितुमर्हसि॥ १४॥

हे हरीश्वर! तुम सीताजी को यह प्रिय संवाद सुना और उनका संदेशा लेकर यहाँ लौट आओ[२]।

---

१. इस सर्ग में वर्णित विभीषण के राज्याभिषेक से यह बात तो निर्विवाद स्पष्ट है कि श्रीराम का लंका पर आक्रमण करने का उद्देश्य राज्य-लिप्सा नहीं था। उन्होंने यह आक्रमण राज्यविस्तार की दृष्टि से न करके केवल सीताजी के उद्धार के लिए किया था।

लोक में एक प्रवाद बहुत प्रचलित है कि लंका की रमणीकता, उसके वैभव और सौन्दर्य को देखकर लक्ष्मणजी का मन मचल गया और उन्होंने श्रीराम से प्रार्थना की कि आप अयोध्या जाकर क्या करेंगे—आप यहीं रहें। इस पर श्रीराम ने जो उत्तर दिया था वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने कहा था—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

हे लक्ष्मण! यह स्वर्णमयी लंका मुझे पसन्द नहीं है, क्योंकी माता और मातृभूमि—ये दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं।

यह श्लोक हमें रामायण के किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं हुआ। हो सकता है हमारे देखने में त्रुटि रह गई हो। यह श्लोक रामायण में हो अथवा न हो इससे यह तो स्पष्ट है कि राम ने लंका पर जो आक्रमण किया था उसका कारण राज्य-लिप्सा नहीं था।

२. यहाँ श्रीराम का आदर्श-शील दर्शनीय है। वे हनुमान् को स्वयं जाने की आज्ञा नहीं देते, अपितु विभीषण से पूछकर लंका में प्रविष्ट होने के लिए कहते हैं।

➤ त्रिषष्टितमः सर्गः ➤ (६३)

हनुमान् का सीता को श्रीराम का संदेश देना—

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान् मारुतात्मजः।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः॥ १॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी इस प्रकार राम का आदेश पाकर जब लङ्का में पहुँचे तब राक्षसों ने उनका खूब आदर-सत्कार किया।

प्रविश्य च महातेजा रावणस्य निवेशनम्।
ददर्श मृजया हीनां सातङ्कामिव रोहिणीम्॥ २॥
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम्।
निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च॥ ३॥

महातेजस्वी हनुमान् ने रावण की अशोक-वाटिका में प्रविष्ट होकर देखा कि स्नानादि-रहित मैली-कुचैली, मृगी के समान भयभीत एवं उदास तथा राक्षसियों से घिरी हुई सीताजी एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। यह देख हनुमान्‌जी चुपचाप उनके समीप गये और शीश झुका, विनम्र हो प्रणाम कर खड़े हो गये।

दृष्ट्वा तमागतं देवी हनूमन्तं महाबलम्।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रमुदाऽभवत्॥ ४॥

महाबली हनुमान् को आया देख सीताजी थोड़ी देर तो चुपचाप रहीं तत्पश्चात् उन्हें पहचान कर वे प्रसन्न हो गईं।

सौम्यं दृष्ट्वा मुखं तस्या हनुमान् प्लवगोत्तमः।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ५॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी सीता के सौम्य=प्रसन्न मुख को देखकर उन्हें श्रीराम का समस्त सन्देश सुनाने लगे—

वैदेही कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः।
कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुररिन्दमः॥ ६॥

हे वैदेही! सुग्रीव और लक्ष्मण-सहित श्रीराम कुशलपूर्वक हैं। शत्रुहन्ता एवं सफल मनोरथ श्रीराम ने शत्रु को मारकर आपसे कुशल-संवाद कहा है।

विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणस्य नयेन च॥ ७॥

हे देवि! श्रीराम ने वानरों को साथ ले, विभीषण की सहायता और लक्ष्मण के नीति-चातुर्य से रावण को मार दिया।

प्रियमाख्यामि ते देवि त्वां तु भूयः सभाजये।
दिष्ट्या जीवसि धर्मज्ञे संयुगे जयेन मम॥ ८॥

हे देवि! मैं आपको प्रिया संदेश सुनाकर पुनः पुनः आनन्दित कर रहा हूँ (पुनः पुनः इसलिए कि एक बार पहले भी हनुमान्‌जी उन्हें संदेश दे चुके थे) वह संदेश कौन-सा है? (श्रीराम ने कहा है—) हे पातिव्रत्यधर्मज्ञे! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम जीवित हो अन्यथा मेरी विजय व्यर्थ हो जाती। अपने पराक्रम से हमने युद्ध में विजय प्राप्त की है।

लब्धो नो विजयः सीते स्वस्था भव गतव्यथा।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चेयं वशीकृता॥ ९॥

हे सीते! हमने लङ्का पर विजय पा ली है। रावणरूपी शत्रु मार दिया गया और लङ्का जीत ली गई है, अतः तुम अपने मन की व्यथा को दूर कर प्रसन्न हो जाओ।

सम्भ्रमश्च न गन्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये।
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम्।
तदाश्वसिहि विश्वस्ता स्वगृहे परिवर्तसे॥ १०॥

अब रावण के महल में रहते हुए भी आपको घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि लङ्का का राज्य अब विभीषण को सौंप दिया गया है, अतः अब तुम निश्चिन्त हो जाओ और ऐसा समझो कि तुम अपने ही घर में हो।

एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मे व्यवस्थिता।
अब्रवीत् परमप्रीता हर्षगद्गदया गिरा॥ ११॥

जब हनुमान्‌जी ने इस प्रकार कहा तब पातिव्रत

धर्म में स्थित सीता ने हर्ष के मारे गद्‌गद वाणी से अन्यन्त हर्षित होकर कहा—

न हि पश्यामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दातुं भवेत् समम्॥ १२॥

हे वानर! हे सौम्य! मुझे सारी पृथिवी पर कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं देती जो तुम्हारे समान प्रिय संवाद सुनानवाले को दी जा सके।

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम्॥ १३॥

सोना, चाँदी, विविध प्रकार के रत्न अथवा त्रिलोकी का राज्य भी इस प्रिय एवं सुखद संवाद को सुनाने के बदले में उचित पुरस्कार नहीं हो सकता।

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः।
गृहीतप्राञ्जलिर्वाक्यं सीतायाः प्रमुखे स्थितः॥ १४॥

जब सीता ने इस प्रकार कहा तब सीता के सम्मुख खड़े हुए हनुमान् ने हाथ जोड़कर यह उत्तर दिया—

भर्तुः प्रियहिते युक्तं भर्तुर्विजयकांक्षिणि।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हसि भाषितुम्॥ १५॥

हे पति के प्रियहित में तत्पर रहनेवाली! हे पति का विजय चाहनेवाली! इस प्रकार के स्नेह भरे वचन आपके ही योग्य हैं—आप ही कह सकती हैं।

तवैतद्वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च।
रत्नौघाद्विविधाच्चापि देवराज्याद्विशिष्यते॥ १६॥

हे सौम्ये! आपके ये सारयुक्त और स्नेहसिक्त वचन केवल विविध प्रकार के रत्नों से ही नहीं, अपितु स्वर्ग के राज्य से भी कहीं अधिक बढ़-चढ़कर मूल्यवान हैं।

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा॥ १७॥

(मुझे तो एक ही पुरस्कार चाहिए, वह क्या?) हे देवि! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं इन सब राक्षसियों को जो पहले आपको डराती-धमकाती थीं, मार डालूँ।

घातैर्जानुप्रहारैश्च दशनानां च पातनैः।
भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा॥ १८॥
नखैः शुष्कमुखीभिश्च दारणैर्लङ्घनैर्हतैः।
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः॥ १९॥

मैं इन राक्षसियों को घुटनों से रगड़कर मारना चाहता हूँ, दाँतों से इन्हें काटना चाहता हूँ, इनके बालों को नोच-नोच कर उखाड़ना चाहता हूँ, और इनके नाक-कानों को खाना चाहता हूँ। आपको सतानेवाली इन सूखे मुखवाली राक्षसियों का नखों से विदीर्ण कर तथा ऊपर उछाल-उछाल कर और भूमि पर पटक-पटककर मार डालना चाहता हूँ।

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा।
उवाच धर्मसहितं हनुमन्तं यशस्विनी॥ २०॥

जब हनुमान्‌जी ने जनकनन्दिनी सीताजी से इस प्रकार कहा तब यशस्विनी (यशस्विनी इसलिए कि उनमें बदला लेने की भावना नहीं थी) सीता जी ने हनुमान् से ये धर्मयुक्त वचन कहे—

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम॥ २१॥

हे वानरश्रेष्ठ! राजसेवा वश पराश्रित अतएव उसकी आज्ञा का पालन करनेवाली दासियों पर भला कौन क्रोध करेगा?

भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च।
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते॥ २२॥

मैंने यह सब दुःख विपरीत भाग्य-दोष से और पूर्वजन्म में किये हुए दुष्कृत्यों के कारण पाया है, क्योंकि अपना किया हुआ ही भोगा जाता है।

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन्।
हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम॥ २३॥

हे वानरोत्तम! इन राक्षसियों न रावण की आज्ञा से ही मुझे सताया था, अब उसके मर जाने पर ये भी मुझे नहीं डाँटती-डपटतीं।

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः
ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम॥ २४।

इस विषय में क्षमा ही उचित है। हे कपे! एक प्राचीन कथा[१] है कि एक शिकारी व्याघ्र के भय से एक वृक्ष पर चढ़ गया जिस पर एक रीछ पहले ही बैठा था। उस समय रीछ ने व्याघ्र को जो श्लोक सुनाया था, मैं वह श्लोक तुम्हें सुनाती हूँ—सुनो!

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणः॥ २५॥

दूसरे के बुरे काम देखकर उसके प्रति बुरा बर्ताव करना उचित नहीं। प्रत्येक मनुष्य को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आचार ही श्रेष्ठ पुरुषों का आभूषण है।

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।
कार्यं करुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥ २६॥

हे वानर! चाहे कोई पापी हो या धर्मात्मा अथवा वध करने योग्य ही क्यों न हो, परन्तु आर्यजन को उस पर दया ही करनी चाहिए, क्योंकि अपराध किससे नहीं होता?

एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीं यशस्विनीम्॥ २७॥

जब सीताजी ने इस प्रकार कहा तब वाक्य-चतुर हनुमान्‌जी ने प्रत्युत्तर में रामपत्नी यशस्विनी सीताजी से कहा—

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी यशस्विनी।
प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः॥ २८॥

हे देवि! ठीक है, आप सही हैं। अन्ततः हैं तो आप श्रीराम की ही यशस्विनी धर्मपत्नी। अच्छा, अब मैं श्रीराम के पास लौटना चाहता हूँ, अतः आप मुझे प्रत्युत्तर में अपना संदेश दीजिए।

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा।
अब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं वानरोत्तम॥ २९॥

जब हनुमान्‌जी ने ऐसा कहा तब जनकनन्दिनी सीता ने हनुमान्‌जी से कहा—हे वानरोत्तम! आप उन्हें मेरा यह संदेश पहुँचा दीजिए कि मैं अपने पति के दर्शन करना चाहती हूँ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः।
हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महाद्युतिः॥ ३०॥

सीताजी का यह कथन सुन महाकान्तिमान् पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने सीताजी को हर्षित करते हुए कहा—

पूर्णचन्द्राननं रामं द्रक्ष्यस्यार्ये सलक्ष्मणम्।
स्थिरमित्रं हतामित्रं शचीव त्रिदशेश्वरम्॥ ३१॥

हे आर्ये! लक्ष्मण तथा मित्रों सहित उन पूर्णिमा के चन्द्र समान मुखवाले श्रीराम के दर्शन आप आज ही इस प्रकार करेंगी जिस प्रकार शची ने अपने पति देवराज इन्द्र के दर्शन किये थे।

तामेवमुक्त्वा राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम्।
आजगाम महावेगो हनुमान् यत्र राघवः॥ ३२॥

साक्षात् लक्ष्मी की भाँति शोभायमान सीताजी से इस प्रकार कहकर महावेगवान् हनुमन्‌जी श्रीराम के पास लौट आये।

---

१. कथा इस प्रकार है—किसी वन में कोई शिकारी व्याघ्र से भयभीत होकर एक वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक रीछ पहले से ही चढ़ा हुआ था। उस वृक्ष के पास जाकर व्याघ्र ने रीछ से कहा—यह शिकारी प्रतिदिन जंगल के प्राणियों का वध करता है, अतः तुम इसे नीचे गिरा दो। व्याघ्र के ऐसा कहने पर रीछ ने कहा यह मेरी शरण में आया है, अतः मैं इसे नहीं गिरा सकता, ऐसा करने से महान् अधर्म होगा। व्याघ्र से ऐसा कहकर और उस शिकारी को भी आश्वासन प्रदान कर रीछ सो गया। रीछ के सो जाने पर व्याघ्र ने शिकारी से कहा—तू इस सोये हुए रीछ को गिरा दे। मैं इससे अपना उदर भर लूँगा और तुझे छोड़ दूँगा। व्याघ्र की प्रेरणा पर उस शिकारी ने रीछ को गिरा दिया, परन्तु वृक्षों पर चढ़ने आदि का अभ्यास होने के कारण उसने दूसरी शाखा पकड़ ली और वह गिरने से बच गया। तब व्याघ्र ने रीछ से कहा, 'यह अपराधी है, अतः तू इसे गिरा दे।' रीछ ने "मैं अपराधी की रक्षा करूँगा" ऐसा कहकर उसकी रक्षा की। इसी अवसर पर रीछ ने व्याघ्र से यह श्लोक कहा—

न परः पापमादत्ते................

चतु:षष्टितमः सर्गः (६४)

सीता का सन्देश पाकर राम का उन्हें अपने पास बुलवाना—

तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः।
रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम्॥ १॥

वहाँ पहुँचकर महामति हनुमान् ने धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कमलनयन श्रीराम को प्रणाम करके कहा—

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः।
तां देवीं शोकसन्तप्तां मैथिलीं द्रष्टुमर्हसि॥ २॥

राजन्! जिसके लिए यह इतना विशाल आयोजन (सेतु-बन्धन एवं युद्ध) किया गया और जो इस समस्त आयोजन का फलस्वरूप हैं उन शोकसन्तप्त सीताजी का अब आपको दर्शन करना चाहिए।

सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा।
मैथिली विजयं श्रुत्वा तव हर्षमुपागमत्॥ ३॥

राजन्! शोक से व्याकुल और रोती हुई सीता आपकी विजय का समाचार सुनते ही हर्षित हो गई।

पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तथा।
भर्तारं द्रष्टुमिच्छामि कृतार्थं सहलक्ष्मणम्॥ ४॥

पूर्व-कालीन परिचय के कारण सीताजी ने मेरे कथन पर विश्वास किया और यह कहा कि मैं सफल-मनोरथ लक्ष्मण सहित अपने पति का दर्शन करना चाहती हूँ।

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः।
अगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः॥ ५॥

जब हनुमान्जी ने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीराम को इस प्रकार सीता का सन्देश सुनाया तब उनकी आँखें कुछ डबडबा उठीं वे सहसा सीता के ध्यान में मग्न हो गये।

दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मेदिनीमवलोकयन्।
उवाच मेघसङ्काशं विभीषणमुपस्थितम्॥ ६॥

फिर दीर्घ निःश्वास छोड़कर और पृथिवी को देखते हुए श्रीराम पास में ही उपस्थित मेघ के समान सुखप्रद विभीषण से बोले—

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम्।
इह सीतां शिरः स्नातामुपस्थापय मा चिरम्॥ ७॥

हे विभीषण! सीताजी को उबटन आदि से सिर सहित स्नान कराकर तथा दिव्याभूषणों से अलंकृत करके शीघ्र यहाँ ले आओ।

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः।
प्रविश्यान्तः पुरं सीतां स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत्॥ ८॥

श्रीराम के ऐसा आदेश देने पर विभीषण तुरन्त अपने अन्तःपुर में गये और अपनी स्त्रियों द्वारा सीता को अपने आने का समाचार दिया।

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः श्रीमान् विनीतो राक्षसेश्वरः॥ ९॥

तत्पश्चात् राक्षसराज श्रीमान् विभीषण ने महाभागा सीता के समीप जाकर तथा विनम्र भाव से हाथ जोड़कर कहा—

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति॥ १०॥

हे देवि! आपका कल्याण हो। आपके पति आपके दर्शन करना चाहते हैं, अतः आप उत्तम उबटन आदि लगवाकर स्नान कर लो और दिव्याभूषणों से अलंकृत होकर पालकी पर सवार हो लो।

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसाधिप॥ ११॥

जब विभीषण ने यह सन्देश दिया तब सीताजी ने कहा—हे राक्षसेश्वर! मैं तो बिना स्नान किये ही अपने स्वामी के दर्शन करना चाहती हूँ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः।
यदाह राजा भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि॥ १२॥

सीताजी के इस कथन को सुन विभीषण ने कहा—हे देवि! आपके स्वामी महाराज राम ने जो आज्ञा दी है आपको उसी के अनुसार करना चाहिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली भर्तृदेवता।
भर्तृभक्तिव्रता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत॥ १३॥

विभीषण की बात सुन पति को ही अपना आराध्य देव माननेवाली पतिव्रता सती सीता ने पतिभक्ति-वश उत्तर दिया—''बहुत अच्छा''।

ततः सीतां शिरः स्नातां युवतीभिरलङ्कृताम्।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम्॥ १४॥
आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम्।
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः॥ १५॥

सीता के अनुमति प्रदान करने पर युवतियों ने सीताजी को सिर सहित स्नान कराया और बहुमूल्य आभूषणों और वस्त्रों से उसे समलंकृत किया। इस प्रकार तैयार हो जाने पर विभीषण ने उन्हें एक अत्यन्त सुन्दर पालकी में, जो बहुमूल्य पर्दों से ढकी हुई थी, सवार कराया, फिर उस पालकी की रक्षा के लिए बहुत-से राक्षसों का नियुक्त कर पालकी को श्रीराम के निकट लिवा ले चले।

सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वापि ध्यानमास्थितम्।
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत्॥ १६॥

वहाँ पहुँच और श्रीराम को ध्यानमग्न देखकर भी विभीषण ने अत्यन्त हर्षित हो और प्रणाम कर उन्हें सीताजी के आगमन की सूचना दी।

तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम्।
रोषं हर्षं च दैन्यं च त्रयं राघवमाविशत्॥ १७॥

राक्षसराज रावण के गृह में बहुत समय तक रही हुई सीता के आगमन का संवाद सुन श्रीराम के मन में क्रोध, हर्ष और ग्लानि[१] तीनों एक साथ प्रविष्ट हो गये।

ततः पार्श्वगतं दृष्ट्वा सविमर्शं विचारयन्।
विभीषणमिदं वाक्यं प्रहृष्टो राघवोऽब्रवीद्॥ १८॥

सीता को समीप आई हुई जान, उनके विषय में सोच-विचार कर श्रीराम ने प्रसन्न होकर विभीषण से कहा—

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत।
वैदेही सन्निकर्षं मे शीघ्रं समुपगच्छतु॥ १९॥

हे राक्षसेश्वर! हे सौम्य! सदा हमारे विजय की कामना में रत रहनेवाले मित्र! सीता को शीघ्र हमारे पास भेजो।

स तद्वचनमाज्ञाय राघवस्य विभीषणः।
तूर्णमुत्सारणे यत्नं कारयामास सर्वतः॥ २०॥

श्रीराम की आज्ञा पाकर विभीषण ने उस स्थान से शीघ्र ही सब मनुष्यों को हटाने का प्रबन्ध किया।

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रजर्झरपाणयः।
उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात् परिचक्रमुः॥ २१॥

चोगा-पगड़ी पहने हुए तथा हाथ में जर्झर करती हुई बेत की छड़ी लिये हुए रक्षक लोग चारों और घूम-घूम कर उन पुरुषों—ऋक्ष, वानर और राक्षसों को वहाँ से हटाने लगे।

उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान्।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः॥ २२॥

ऋक्षों, वानरों और राक्षसों को वहां से बल-पूर्वक हटाये जाते तथा उन सबको घबराया हुआ देख श्रीराम के मन में उनके प्रति दया उमड़ पड़ी और उन्होंने क्रुद्ध होकर (क्रुद्ध इसलिए कि विभीषण ने यह कार्य श्रीराम की आज्ञा के बिना किया था) विभीषण को ऐसा करने से रोका।

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः।
निवर्तयैनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम॥ २३॥

(विभीषण को रोकते हुए श्रीराम ने कहा—) मेरी अवहेलना कर (बिना मेरी आज्ञा के) आप इन लोगों को क्यों सता रहे हैं? अपने लोगों को मना कर दो कि वे इन लोगों को न सतायें, क्योंकि ये सब मनुष्य तो मेरे अपने, मेरे घर के लोगों जैसे ही हैं।

---

१. क्रोध इसलिए कि रावण ने उसे इतना नीचा दिखाया, हर्ष इसलिए कि अन्ततः वह विजयी हो गये और ग्लानि इसलिए कि वह पति होकर भी अपनी भार्या की रक्षा न कर सके।

तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषण।
सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्‌गणवृतं स्थितम्॥ २४॥

हे विभीषण! तुम इन लोगों को बिना हटाये शीघ्र ही सीता को मेरे पास ले आओ जिससे मेरे ये सभी सुहृद्‌गण सीता के दर्शन कर सकें।

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः।
रामस्योपानयत् सीतां सन्निकर्षं विनीतवत्॥ २५॥

श्रीराम के इस आदेश को सुन विभीषणजी मन-मन-मन कुछ सोचते-विचारते, नम्रता-पूर्वक सीताजी को श्रीराम के समीप ले आये।

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साऽभ्यवर्तत॥ २६॥

उस समय सीता लज्जा के कारण सिकुड़ती हुई-सी मानो अपने अङ्गों में घुसी जाती थीं और विभीषण उनके पीछे पीछे आ रहे थे—ऐसी स्थिति में वह सीता श्रीराम के समीप पहुँची।

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना॥ २७॥

वहाँ पहुँचकर अपने पति को देवता समझनेवाली सीता बिना कुछ बोले विस्मय, हर्ष और स्नेह से अपने पति के सौम्य मुख को निहारती रही और इस प्रसन्नता में उसका मुख सौम्यतर बन गया।

❮ पञ्चषष्टितमः सर्गः ❯ (६५)

राम द्वारा सीता को ग्रहण करने से अस्वीकार—

तां तु पार्श्वेस्थितां प्रह्वां रामः सम्प्रक्ष्ये मैथिलीम्।
हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुपचक्रमे॥ १॥

लज्जा के कारण सिर झुकाए सीता को अपने निकट खड़ी देख श्रीराम ने अपने हृदयान्तर्गत क्रोध को प्रकट करना प्रारम्भ किया।

एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा मया रणे।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम्॥ २॥

वे कहने लगे—हे भद्रे! मैंने युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुम्हें पुनः प्राप्त कर लिया। पुरुषार्थ से जो कुछ किया जा सकता था वह मैंने कर दिखाया।

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता।
अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धृतौ॥ ३॥

अब मेरे क्रोध का अन्त हो गया है। रावण ने तुम्हारा अपहरण कर मुझे जो नीचा दिखाया था उसका बदला भी मैंने ले लिया है। मैंने तिरस्कार और तिरस्कार करनेवाला शत्रु दोनों को एक साथ उखाड़ फेंका है।

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञत्वात् प्रभवामीह चात्मनः॥ ४॥

आज लोगों ने मेरा पराक्रम देख लिया। आज मेरा सारा परिश्रम सफल हो गया। आज मैं रावण का वध करके तुम्हें पाने की प्रतिज्ञा से पार हो गया और आज मैं स्वतन्त्र हो गया।

यां त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन राक्षसा।
दैवसम्पादितो दोषी मानुषेण मया जितः॥ ५॥

मेरी अनुपस्थिति में चञ्चल चित्त रावण तुम्हारा अपहरण कर तुम्हें पञ्चवटी से यहाँ ले आया था। उस देवकृत अपमान को मैंने अपने प्रयत्न से दूर कर दिया।

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता।
तत्कृतं सकलं सीते मयेदं मानकाङ्क्षिणा॥ ६॥

हे सीते! देखो, अपना अपमान दूर करने के लिए मनुष्य को जो कुछ करना उचित है वह सब मैंने रावण को मारकर कर दिखाया।

विदितश्चास्तु ते भद्रे योऽयं रणपरिश्रमः।
स तीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः॥ ७॥

परन्तु हे भद्रे! तुम्हें यह भी जान लेना चाहिए कि मैंने इष्ट-मित्रों के बल-पराक्रम से युद्ध में जो विजय प्राप्त की है, यह परिश्रम तुम्हारे लिए नहीं किया है।

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वशः।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिरक्षता॥ ८॥

रावण को मारकर मैंने अपने चरित्र की रक्षा की है और अपनी बदनामी को बचाया है तथा अपने विख्यात वंश के अपयश को धो डाला है।

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा॥ ९॥

हे सीते! मुझे तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है, अतः तुम मेरे समक्ष खड़ी हुई मेरे लिए उसी प्रकार असह्य हो रही हो जिस प्रकार नेत्ररोग से पीड़ित मनुष्य को सामने रखा हुआ दीपक असह्य जान पड़ता है।

तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया॥ १०॥

हे जनकदुलारी! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली पड़ी हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि जिधर तुम्हारी इच्छा हो तुम उधर चली जाओ। मुझे तुमसे अब कोई प्रयोजन नहीं है।

कः पुमान् हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लेखेन चेतसा॥ ११॥

हे सीते! ऐसा कौन तेजस्वी पुरुष होगा जो उच्चकुल में उत्पन्न होकर दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को सुहृद् समझकर (अपनी समझकर) फिर स्वीकार कर लेगा?

रावणाङ्कपरिभ्रष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन् महत्॥ १२॥

रावण की गोद में बैठने के कारण भ्रष्ट और उसकी कुदृष्टि से देखी हुई तुमको—इतने बड़े कुल में उत्पन्न होकर, मैं भला किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूँ?

यदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः॥ १३॥

जिस कीर्ति के लिए मैंने तुम्हारा उद्धार किया था वह मुझे प्राप्त हो गई। अब मुझे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जा सकती हो।

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत् कृतबुद्धिना।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथा सुखम्॥ १४॥
सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मना॥ १५॥

हे भद्रे! मैंने यह बात सोच-विचार कर ही तुमसे कही है। लक्ष्मण, भरत, वानरेन्द्र सुग्रीव अथवा राक्षसेन्द्र[1] विभीषण में से जिसके यहाँ रहना तुम पसन्द करो अथवा जहाँ तुम्हें सुख मिलने की आशा हो तुम वहाँ रह सकती हो।

➤ षट्षष्टितमः सर्गः ➤ (६६)

सीता की अग्नि-परीक्षा—

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम्।
राघवेण सरोषेण भृशं प्रव्यथिताऽभवत्॥ १॥

जब श्रीराम ने क्रुद्ध होकर इस प्रकार के कठोर और रोमाञ्चकारी वचन कहे तब सीताजी अत्यन्त व्यथित हुईं।

---

१. यहाँ श्रीराम सीता को वानरेन्द्र सुग्रीव अथवा राक्षसराज विभीषण के यहाँ जाने के लिए कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि राक्षस और वानर भी मनुष्य ही थे। यदि सुग्रीव आदि पूँछवाले जंगली बन्दर होते तो राम सीता को उनके यहाँ रहने की बात कदापि नहीं कहते, क्योंकि बन्दर के साथ मनुष्य का निर्वाह कैसा? फिर 'समानप्रसवात्मिका जाति' जाति का लक्षण ही 'समान प्रसववाला' है, अतः सुग्रावी और विभीषण आदि मनुष्य ही थे।

ततो बाष्पपरिक्लिष्टं प्रमार्जन्ती स्वमाननम्।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्॥ २॥

तब आसुँओं से भरे अपने मुख को पोंछती हुई सीता गद्गद वाणी से धीरे-धीरे अपने पति से यह बोली—

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव॥ ३॥

हे वीर! तुम ऐसी अनुचित, कर्णकटु और रूखी बातें मुझसे उसी प्रकार क्यों कह रहे हो जैसे गँवार मनुष्य अपनी गँवार स्त्री से कहा करते हैं?

न तथाऽस्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे॥ ४॥

हे महाबाहो! आपने मुझे जैसा समझ रखा है मैं वैसी नहीं हूँ। मैं अपने पातिव्रत धर्म की शपथ खाकर कहती हूँ, मेरे ऊपर विश्वास करो

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्कसे।
परित्यजेमां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता॥ ५॥

गँवार स्त्रियों के चरित्र से सारी-की-सारी स्त्री जाति के ऊपर सन्देह करना उचित नहीं है। यदि आप मेरे स्वभाव से परिचित हैं तो मेरे चरित्र के सम्बन्ध में अपने मन को संदेह को दूर कर दो।

यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति॥ ६॥

हे स्वामिन्! जिस समय रावण ने मुझे पकड़ा था उस समय उसने मेरा शरीर अवश्य स्पर्श किया था, परन्तु तब मैं विवश थी, मेरी इच्छा से उसने मेरा शरीर नहीं छुआ था। इसमें मेरा कोई दोष नहीं। यह तो भाग्यवश ही हुआ।

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी॥ ७॥

मेरे अधीन तो मेरा अपना मन है, वह आपमें ही लगा रहता है (उसे कोई छू नहीं सकता)। मेरा शरीर पराधीन था। उस अवस्था में परवशा मैं क्या कर सकती थी?

सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद।
यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम्॥ ८॥

हे मानप्रद! इतने दिनों साथ रहने पर भी, साथ-ही-साथ पालन और पोषण होने पर भी यदि आप मेरे भावों को नहीं जान पाये तो में सदा के लिए ही मार डाली गई।

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥ ९॥

हे नरशार्दूल! तुमने तो ओछे मनुष्यों की भाँति क्रोध के वशीभूत होकर मुझे भी साधारण स्त्रियों के समान समझ लिया।

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्॥ १०॥

विवाह के समय तुमने मेरा जो हाथ पकड़ा था उसका भी कोई प्रमाण नहीं माना और आपके प्रति मेरी भक्ति और मेरे शील की ओर से भी आपने अपना मुँह फेर लिया।[१]

एवं ब्रुवाणा रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी।
अब्रवील्लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरं स्थितम्॥ ११॥

ऐसा कहकर रोती और आँसू बहाती हुई सीता गद्गद होकर लक्ष्मणजी से, जो उस समय उदास हो, एकाग्र मन से कुछ सोच रहे थे बोली—

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे॥ १२॥

हे लक्ष्मण! इस मिथ्यापवाद से पीड़ित हो मैं अब जीना नहीं चाहती, अतः तुम मेरे लिए चिता तैयार करो, क्योंकि ऐसे रोग की एकमात्र यही औषध है।

---

१. यहाँ माता सीता की निर्भीकता दर्शनीय है। अपनी अनुचित भर्त्सना का उन्होंने कैसा सुन्दर समाधान किया है। इस कथन में ऐसी कोई भी लचर युक्ति नहीं है जिसका खण्डन किया जा सके।

अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जलसंसदि।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्॥ १३॥

मेरे गुणों से अप्रसन्न होकर सब लोगों के समक्ष मेरे पति ने मेरा परित्याग कर दिया है, अत: अब मेरे लिए यही उचित है कि मैं अग्नि में भस्म हो जाऊँ।

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा।
अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत॥ १४॥

जब सीताजी ने शत्रुसंहारक लक्ष्मणजी से ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी ने क्रोध में भरकर श्रीरामचन्द्रजी के मुख की ओर (उनका अभिप्राय जानने के लिए) देखा।

स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान्॥ १५॥

श्रीराम की मुखाकृति से लक्ष्मण ने जान लिया कि उनका भी यही अभिप्राय है, अत: महापराक्रमी श्रीराम के आदेशानुसार उन्होंने चिता बनाकर तैयार कर दी।

अधोमुखं तदा रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम्।
उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम्॥ १६॥

चिता तैयार होने पर सीताजी ने नीचे की ओर मुख किये हुए धीरे-धीरे श्रीराम की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् वे धधकती हुई अग्नि के निकट आईं।

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥ १७॥

सीताजी ने विद्वानों और ब्राह्मणों को प्रणाम कर अग्नि के पास खड़े होकर तथा हाथ जोड़कर यह कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ १८॥

जिस प्रकार मेरा तन श्रीराम की ओर से कभी चलायमान नहीं हुआ उसी प्रकार सब लोगों के साक्षी अग्निदेव सब प्रकार से मेरी रक्षा करें।

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः॥ १९॥

मन, वचन और कर्म से यदि मैं सर्वधर्मज्ञ श्रीराम को छोड़ अन्य किसी को पतिरूप में न जानती होऊँ तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें।

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
उद्यतोऽभूत् प्रवेष्टुं तं निस्सङ्गेनान्तरात्मना॥ २०॥

ऐसा कहकर चिता की परिक्रमा कर तथा अपने शरीर की तनिक भी परवाह न कर सीता अग्नि में कूदने के लिए उद्यत हुई।

जनः स सुमहांस्त्रसतो बालवृद्धसमाकुलः।
ददर्श मैथिलीं तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम्॥ २१॥

उधर जब वहाँ उपस्थित बालक और बूढ़ों ने सीताजी को अग्नि में प्रविष्ट होते (प्रविष्ट होने के लिए उद्यत देखा) देखा तब वे सब भयभीत हो गये।

तदा प्रीतमना रामो प्रविशन्तीं हुताशनम्।
वारयित्वा तु वैदेहीमुवाच हरिराक्षसान्॥ २२॥

सीताजी को अग्नि में कूदने के लिए तैयार देख श्रीराम ने प्रसन्न होकर (उनकी शुद्धता के कारण) उन्हें ऐसा करने से रोका और फिर वे वहाँ उपस्थित वानर और राक्षसों से कहने लगे—

अवश्यं त्रिषु लोकेषु न सीता पापमर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा॥ २३॥

निश्चय ही सीताजी तीनों लोकों में शुद्ध एवं पवित्र हैं, परन्तु यह सौभाग्यवती बहुत दिनों तक रावण की अशोकवाटिका में रही हैं।

बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि॥ २४॥

यदि मैं सीताजी की शुद्धता की परीक्षा न कराता तो सब लोग यही कहते कि महाराज दशरथ के पुत्र राम बड़े कामी और मूर्ख हैं।

अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिवर्तिनीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्॥ २५॥

मैं जानता हूँ कि सीता मुझमें अनन्य अनुराग रखती है, सीताजी मुझे छोड़कर अपने मन में अन्य किसी को स्थान नहीं दे सकतीं।

अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा।
न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥ २६॥

सीता मुझमें ही अनन्यरूप से अनुरागवती है—मुझसे अभिन्न है जैसे प्रभा सूर्य से। मैं भी इन्हें वैसे ही नहीं त्याग सकता जैसे यशस्वी पुरुष अपनी कीर्ति को नहीं त्याग सकता।

◀ सप्तषष्टितमः सर्गः ▶ (६७)

पुष्पक-विमान द्वारा श्रीराम के प्रस्थान की तैयारी—

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोत्थितमरिन्दमम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः॥ १॥

रावण-वध, विभीषण-राज्याभिषेक और सीता की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् जब वह रात्रि व्यतीत हुई और प्रातःकाल हुआ जब शत्रुनाशक श्रीराम सुखपूर्वक उठे। उस समय विभीषण हाथ जोड़ तथा ''आपकी जय हो''—ऐसा कहकर बोले—

स्नानानि चाङ्गरागानि वस्त्राण्याभरणानि च।
चन्दनानि च दिव्यानि माल्यानि विविधानि च॥ २॥
प्रतिगृह्णीष्व तत्सर्वं मदनुग्रहकाम्यया।
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थ प्रत्युवाच विभीषणम्॥ ३॥

आपके स्नान के लिए उत्तम अङ्गराग (उबटन) विविध प्रकार के वस्त्र और आभूषण तथा विविध प्रकार के दिव्य चन्दन एवं भाँति-भाँति की पुष्प-मालाएँ आई हैं। आप इन वस्तुओं का ग्रहण कर मेरे ऊपर कृपा करें। विभीषण के ऐसा कहने पर श्रीराम ने कहा—

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखेचितः।
सुकुमारो महाबाहुः कुमारः सत्यसंश्रयः॥ ४॥
तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च॥ ५॥

हे मित्र! सुख पाने योग्य, धर्मात्मा, सुकुमार, महाबाहु, सत्यवक्ता राजकुमार भरत मेरे कारण अयोध्या में कष्ट पा रहा है। उस धर्मात्मा कैकेयीनन्दन भरत को देखे बिना स्नान करना, वस्त्र और अलंकार धारण करना मुझे अच्छा नहीं लगता।

एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम्।
अयोध्यामागतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः॥ ६॥

हे विभीषण! अब तो आप सोच-विचार कर कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मैं तुरन्त अयोध्यापुरी में पहुँच जाऊँ, क्योंकि जिस मार्ग से हम लोग अयोध्या से यहाँ तक आये हैं वह मार्ग तो बड़ा दुर्गम है।

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज॥ ७॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर विभीषण ने कहा—हे राजकुमार! मैं आपको एक ही दिन में अयोध्या पहुँचा दूँगा।

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम्।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा॥ ८॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्।
त्वदर्थे पालितं चैतत्तिष्ठत्यतुलविक्रम॥ ९॥

आपका कल्याण हो सूर्य के समान देदीप्यमान पुष्पक नामक विमान, जिसे मेरा भाई रावण कुबेर को युद्ध में जीतकर बलात् छीन लाया था, जो यथेच्छ चलनेवाला, दिव्य और उत्तम है, हे अतुल पराक्रमी! वही विमान आपकी सेवा के लिए उपस्थित है।

तदिदं मेघसङ्काशं विमानमिह तिष्ठति।
तेन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः॥ १०॥

देखिए, मेघ के समान आकाश में उड़नेवाला यह विमान यहाँ उपस्थित है। इस विमान में बैठकर आप बिना किसी कष्ट के अयोध्या पहुँच जाओगे।

अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान्।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम्॥ ११॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि॥ १२॥

हे प्राज्ञ! यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ, यदि मेरे उपकार आपको स्मरण हैं, यदि मेरे ऊपर आपका स्नेह है तो आप भाई लक्ष्मण और भार्या वैदेही के साथ आज के दिन यहीं निवास कीजिए जिससे मैं आपका जी भरकर सत्कार कर लूँ, फिर आप चले जाना।

प्रीतियुक्तस्य मे राम ससैन्यः ससुहृद्गणः।
सत्क्रियां विहितां तावद् गृहाण त्वं मयोद्यताम्॥ १३॥

हे राम! प्रीतियुक्त मैंने मन लगाकर आपके आतिथ्य के लिए जो सामग्री तैयार की है कृपया आप सेना और मित्रों सहित मेरी उस आतिथ्य-सामग्री को ग्रहण कीजिए।

प्रणयाद् बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते॥ १४॥

हे राघव मैंने यह बात स्नेह, आदर और मित्रता के नाते कही है। मैं आपका सेवक हूँ, अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, आपको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ।

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम्।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषां चोपशृण्वताम्॥ १५॥

जब विभीषण ने ऐसी प्रार्थना की तब श्रीराम ने, वहाँ उपस्थित राक्षसों और वानरों को सुनाते हुए, विभीषण का उत्तर दिया—

पूजितोऽहं त्वया सौम्य साचिव्येन परन्तप।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च॥ १६॥

हे सौम्य! हे शत्रुसन्तापक! आपकी सहायता से ही मेरा यथेष्ट सत्कार हो चुका। इसके अतिरिक्त आपके पौरुष और उत्तम सौहार्दयुक्त व्यवहार से भी आपने मेरा सब प्रकार से सत्कार कर दिया।

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥ १७॥

हे राक्षसराज! इस समय मैं आपकी प्रार्थना को स्वीकार नही कर सकूँगा, क्योंकि मेरा मन भाई भरत से मिलने के लिए व्याकुल हो रहा है।

अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण।
मन्युर्न खलु कर्तव्यस्त्वरितं त्वानुमानये॥ १८॥

हे सौम्य! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए। हे विभीषण! मैं आपके द्वारा सत्कृत हो चुका। मेरी इस शीघ्रता के लिए तुम दुःखी अथवा क्रुद्ध मत होना। यह मेरी आपसे प्रार्थना है।

उपस्थापय मे क्षिप्रं विमानं राक्षसेश्वर।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्विदिह सम्मतः॥ १९॥

हे राक्षसेश्वर! अब तुम विमान को शीघ्र यहाँ मँगवा दो, क्योंकि जब यहाँ का सारा कार्य पूर्ण हो चुका और मेरे वनवास की अवधि भी समाप्त हो चुकी तब मेरा यहाँ रहना क्योंकर सम्भव हो सकता है?

एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
विमानं सूर्यसङ्काशमाजुहाव त्वरान्वितः॥ २०॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर राक्षसराज विभीषण ने वह सूर्य के समान देदीप्यमान विमान तुरन्त वहां मँगवा दिया।

❮ अष्टषष्टितमः सर्गः ❯ (६८)

विभीषण द्वारा वानरों का सत्कार और सभी का अयोध्या जाने के लिए विमान में आरूढ़ होना—

दृष्ट्वा तु पुष्पकं तत्र विनीतो राक्षसेश्वरः।
अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम्॥ १॥

पुष्पक विमान को वहाँ आया हुआ देख राक्षसराज विभीषण ने विनम्रता-पूर्वक बड़ी शीघ्रता से कहा— हे राघव! आज्ञा दीजिए कि अब मैं और क्या करूँ?

तमब्रवीत् महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम्॥ २॥

महातेजस्वी श्रीराम ने कुछ सोचकर और लक्ष्मण के साथ परामर्श करके स्नेहपूर्वक विभीषण से कहा—

कृतप्रयत्नकर्माणो विभीषण वनौकसः।
रत्नैरर्थैश्च विविधैर्भूषणैश्चापि पूजय॥ ३॥

हे विभीषण! इन सभी वानरों ने इस युद्ध में बड़े-बड़े प्रयत्न और कर्म किये हैं—वीरता दिखाई है, अतः इन्हें रत्न, धन और विविध प्रकार के आभूषणों से सम्मानित कीजिए।

सहैभिरजिता लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः॥ ४॥

हे राक्षसराज! इन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक प्राण भय को त्यागकर, (अपने प्राणों को हथेली पर रखकर) और युद्ध से मुख न मोड़कर—पीठ न दिखाकर युद्ध किया। इन्हीं लोगों की सहायता से यह दुर्धर्ष और दुर्जेय लङ्का विजित हुई है।

त इमे कृतकर्माणः पूज्यन्तां सर्ववानराः।
धनरत्नप्रदानेन कर्मैषां सफलं कुरु॥ ५॥

कार्य सिद्ध करनेवाले इन समस्त वानरों को धन और रत्नों द्वारा पुरस्कृत कर आपको इनका परिश्रम सफल करना चाहिए।

एवं सम्मानिताश्चैते मानार्हा मानद त्वया।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः॥ ६॥

हे मानप्रद! आप कृतज्ञ हैं। यदि सम्मान करने योग्य ये वानर आप द्वारा पुरस्कृत हो जायेंगे तो ये समस्त वानरयूथपति प्रसन्न हो जायेंगे।

हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे।
त्यजन्ति नृपतिं सैन्याः संविग्नास्तं नरेश्वरम्॥ ७॥

हे विभीषण! जो राजा सेना को दान-मान आदि से उत्साहित नहीं करता केवल सैनिकों को युद्ध में कटवाना ही जानता है, ऐसे राजा का उसकी सेना उदास हो युद्ध में साथ नहीं देती।

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः।
रत्नार्थैः संविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत्॥ ८॥

जब श्रीराम ने विभीषण से ऐसा कहा तब विभीषण ने उन समस्त वानर-यूथपतियों को उनकी पद मर्यादा के अनुसार रत्न और धन आदि प्रदान कर सम्मानित किया।

ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रत्नैरर्थैश्च यूथपान्।
आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम्॥ ९॥

वानर-यूथपतियों को रत्नों और धन से यथोचित सत्कृत हुआ देख श्रीराम उस श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ हुए।

अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता॥ १०॥

लजीली एवं यशस्विनी सीता को गोद में उठा, भाई लक्ष्मण सहित धनुर्धारी एवं पराक्रमी श्रीराम उस विमान में जा बैठे।

अब्रवीच्च विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान्।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम्॥ ११॥

विमान में बैठ चुकने के पश्चात् श्रीराम ने समस्त वानरों, महाबली सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण का अभिनन्दन करते हुए कहा—

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरोत्तमाः।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत॥ १२॥

हे वानरश्रेष्ठो! आप सबने यह मित्र-कार्य पूरा कर दिया। अब मैं आप सबको विदा करता हूँ आप अपने-अपने स्थान को लौट जाएँ (अथवा जहाँ चाहें चले जाएँ)।

यत्तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा।
किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः॥ १३॥

हे सुग्रीव! एक स्नेही एवं हितैषी मित्र को जैसा बर्ताव करना उचित था वैसा ही आपने मित्र-धर्म से डरकर किया है। अब आप अपनी सेना को साथ ले यहाँ से शीघ्र किष्किन्धा को लौट जाइए।

स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः॥ १४॥

हे विभीषण! आप भी मेरे द्वारा प्रदत्त लङ्का के

राज्य में निवास कीजिए। इन्द्र-सहित समस्त देवताओं की भी यह शक्ति नहीं है कि वे आपको टेढ़ी दृष्टि से देख सकें।

अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम।
अभ्यनुज्ञातमिच्छामि सर्वांश्चामन्त्रयामि वः॥ १५॥

मैं भी अब अपने पिता की राजधानी अयोध्या को जाऊँगा, अतः मैं आप सबसे अनुज्ञा और विदाई चाहता हूँ।

एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः।
ऊचुः प्राञ्जलयो रामं राक्षसश्च विभीषणः॥ १६॥

श्रीराम ने जब इस प्रकार कहा, तब महाबली उन सभी वानरों और राक्षसराज विभीषण ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा- -

अयोध्यां गन्तुमिच्छामः
सर्वान्नयतु नो भवान्।
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं
कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरेणागमिष्यामः
स्वान् गृहान् नृपतेः सुत॥ १७॥

हम सब लोगों की इच्छा आपके साथ अयोध्या चलने की है, अतः आप हम लोगों को भी अपने साथ ले चलिए। हे राजकुमार! वहाँ हम आपका राज्याभिषेक देख तथा माता कौसल्या को प्रणाम कर तुरन्त अपने घरों को लौट आयेंगे।

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः।
अब्रवीद्राघवः श्रीमान् ससुग्रीवविभीषणान्॥ १८॥

जब वानरों और विभीषण ने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा श्रीमान् राम ने सुग्रीव और विभीषण से कहा—-

प्रियात् प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः॥ १९॥
क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं वानरैः सह।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण॥ २०॥

अहो! तब तो मुझे प्रिय से बढ़कर प्रिय पदार्थ की प्राप्ति हो गई यदि मैं आप जैसे मित्रों के साथ यात्रा करूँ और फिर अयोध्यापुरी में पहुँच आप सब के साथ आनन्दमग्न हो सकूँ। अच्छा सुग्रीव! अब अपनी वानर-सेना सहित तुरन्त इस विमान पर सवार हो जाइए। हे राक्षसेन्द्र विभीषण! आप भी अपने मन्त्रियों को साथ ले विमान पर आरूढ़ हो जाओ।

ततस्तत्पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः॥ २१॥

तब श्रीराम की अनुमति से वानरों सहित सुग्रीव और मन्त्रियों सहित विभीषण हर्षित हो पुष्पक-विमान में जा बैठे।

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम्॥ २२॥

उन सबके सवार हो जाने पर कुबेर का वह उत्तम वाहन श्रीराम की आज्ञा पा, आकाश में उड़ चला।

❮ एकोनसप्ततितमः सर्गः ❯ (६९)

पुष्पक-विमान द्वारा स्थानों का निरीक्षण करते हुए अयोध्या की ओर गमन—

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम्।
हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम्॥ १॥

श्रीराम की आज्ञा पाकर हंसों से युक्त वह उत्तम विमान बड़ा शब्द करते हुए उड़कर आकाश में पहुँचा।

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम्॥ २॥

उस समय श्रीराम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर चन्द्रमुखी सीता से कहना आरम्भ किया—

कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम्।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा॥ ३॥

हे वैदेहि! कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित इस लङ्का नगरी को देखो। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित यह ऐसी दीख रही है मानो कैलास शिखर के ऊपर बनी हुई है।

एतदायोधानं पश्य मांसशोणितकर्दमम्।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत्॥ ४॥

देखो, यह समरभूमि है जहाँ पर असंख्य राक्षसों और वानरों का वध हुआ है और जहाँ पर माँस और रक्त की कीचड़ हो रही है।

एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम्॥ ५॥

हे वरानने! यह समुद्र का वह तट (दक्षिणी तट) है, जहाँ हम लोग समुद्र को पार करके उस रात टिके थे।

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलार्णवे।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः॥ ६॥

हे विशालाक्षि! खारे जल से पूर्ण इस समुद्र पर मेरे द्वारा बँधवाये गये इस पुल को देखो। सेतु-बन्धन का यह दुष्कर कार्य नल ने तुम्हारे ही लिए किया था।

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सेतुबन्ध इति ख्यातम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः॥ ७॥

यह समुद्र का दूसरा किनारा=उत्तर-तट दिखाई दे रहा है जो सेतुबन्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यह वह स्थान है जहाँ पर सर्वव्यापक देवों-के-देव महादेव परमात्मा ने हमारे ऊपर कृपा की थी (जिसके सहाय और प्रेरणा से हम समुद्र पर पुल बाँधकर तुझे ले आये) यही वह स्थान है जहाँ पर राक्षसेश्वर विभीषण मुझसे आकर मिले थे।

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र बाली मया हतः॥ ८॥

हे सीते! देखो, यह चित्र विचित्र उद्यानों से युक्त किष्किन्धा नगरी है। यह रमणीक पुरी सुग्रीव की राजधानी है। यहीं पर मैंने बाली को मारा था।

अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां बालिपालिताम्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा॥ ९॥

बाली द्वारा पालित किष्किन्धा पुरी को देख, सीता ने सुग्रीव के साथ श्रीराम के प्रणय-बन्धन का विचारकर नम्रतापूर्वक श्रीराम से कहा—

सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप।
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वयाऽनघ॥ १०॥

हे राजन्! हे निष्पाप! मेरी इच्छा है कि मैं सुग्रीव की तारा प्रमुख प्रिय स्त्रियों एवं वानर सेनापतियों की स्त्रियों को साथ लेकर सहभाव पूर्वक आपकी राजधानी अयोध्यापुरी में प्रवेश करूँ।

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम्।
एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः॥ ११॥
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह।
ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान्॥ १२॥
स्वदारसहिताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया।
तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल॥ १३॥

जब सीता ने ऐसी इच्छा प्रकट की तब राम ने कहा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। किष्किन्धा पहुँचकर राम ने विमान को वहाँ ठहरा दिया और सुग्रीव की ओर देखकर उनसे कहा—हे वानरराज! तुम समस्त वानरश्रेष्ठों से कह दो कि वे सब अपनी-अपनी स्त्रियाँ को साथ लेकर सीता के साथ अयोध्या चलें और हे महाबली! तुम भी अपनी समस्त स्त्रियों को साथ लेकर अयोध्या चलो।

अभित्वरस्व सुग्रीव गच्छामः प्लवगेश्वर।
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा॥ १४॥

वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः।
प्रविश्यान्तः पुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत्॥ १५॥

हे वानरराज! इस कार्य को शीघ्र कर डालो, क्योंकि हमें यहाँ से अभी चल देना है। जब अमित तेजस्वी श्रीराम ने सुग्रीव से यह कहा तब श्रीमान् वानरराज सब वानरों को साथ ले शीघ्र ही अपने अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ पहुँच उन्होंने तारा को सम्बोधित करते हुए कहा—

प्रिये त्वं सह नारीभिर्वानराणां महात्मनाम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया॥ १६॥
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः॥ १७॥

हे प्रिये! श्रीराम की आज्ञा से और सीताजी की प्रसन्नता के लिए तुम वानर-सेनापतियों की स्त्रियों को साथ लेकर तुरन्त हमारे साथ चलो। हम तुम्हें अयोध्या के दर्शन करायेंगे और महाराज दशरथ की सभी स्त्रियों को भी दिखलायेंगे।

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना।
आहूय चाब्रवीत् सर्वा वानराणां तु योषितः॥ १८॥

सर्वाङ्गसुन्दरी तारा ने सुग्रीव के इन वचनों को सुन समस्त वानर स्त्रियों को बुलाकर उनसे कहा—

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः।
मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च॥ १९॥

महाराज सुग्रीव ने आज्ञा दी है कि आप भी अपने पतियों के साथ अयोध्या चलें। अयोध्या-दर्शन से मैं भी आपके साथ प्रसन्नता लाभ कर लूँगी।

प्रवेशं चापि रामस्य पौरजानपदैः सह।
विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च॥ २०॥

वहाँ पहुँचकर हम भी पुरवासियों और जनपद-वासियों के साथ श्रीराम के अयोध्या प्रवेश तथा महाराज दशरथ की सब रानियों के ऐश्वर्य को देखेंगी।

तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः।
नेपथ्यं विधिपूर्वेण कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादर्शनकाङ्क्षया॥ २१॥

तारा की आज्ञा पाकर वे सब स्त्रियाँ वस्त्रालंकार आदि से यथाविधि समलंकृत होकर आ गईं और विमान की प्रदक्षिणा कर सीता के दर्शन की अभिलाषा से झटपट उस पर चढ़ गईं।

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः।
ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत्॥ २२॥

तब वह विमान तारा आदि वानर-स्त्रियों को लेकर ऊपर उठा और आगे चल पड़ा। उस विमान को आकाश में उड़ता देख और ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँच श्रीराम ने पुनः सीता से कहा—

दृश्यतेऽसौ महान् सीते सविद्युदिव तोयदः।
ऋष्यमूको गिरिश्रेष्ठः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः॥ २३॥

हे सीते! यह पर्वतश्रेष्ठ महान् ऋष्यमूक दीख रहा है। इसमें सुवर्णादि चमकनेवाली धातुएँ पर्याप्त मात्रा में है, इसीलिए यह विद्युत्वाले बादल की भाँति दिखाई देता है।

अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं बालिनो मया॥ २४॥

इसी स्थान पर सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता हुई थी और यहीं मैंने बाली को मारने की प्रतिज्ञा की थी।

एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः॥ २५॥

यह रंग-बिरंगे फूलों से लदे वृक्षों से पूर्ण, वनों के बीच में पम्पा सरोवर दिखाई दे रहा है यहीं पर मैंने तुम्हारे वियोग से अत्यन्त दुःखी होकर विलाप किया था।

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया॥ २६॥

इसी सरोवर के तट पर धर्मचारिणी शबरी से मेरी भेंट हुई थी और इसी जंगल में मैंने विशाल भुजाओं वाले कबन्ध को मारा था।

दृश्यते च जनस्थाने सीते श्रीमान् वनस्पतिः।
यत्र युद्धं महद्वृत्तं तव हेतोर्विलासिनि।
रावणस्य नृशंसस्य जटायोश्च महात्मनः॥ २७॥

हे सीते! यह देखो, यह जटायु का निवास-स्थान—शोभायमान वटवृक्ष है। हे विलासिनी! यहीं पर तुम्हारे लिए महात्मा जटायु के साथ रावण का घोर युद्ध हुआ था।

खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः॥ २८॥

और यह वह स्थान है जहाँ पर मैंने अपने सीधे जानेवाले बाणों से खर, दूषण और महाबली त्रिशिरा का वध किया था।

एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने॥ २९॥

हे सुन्दरी! यह हमारा आश्रम-स्थान=पञ्चवटी है। हे शुभदर्शने! इस आश्रम में हमारी पर्णकुटी अब भी वैसी ही मनोहर और सुन्दर बनी हुई है।

एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शिवा।
अगस्त्यस्याश्रमो ह्येष दृश्यते पश्य मैथिलि॥ ३०॥

यह मनोहर और निर्मल जलवाली गोदावरी नदी है और हे मैथिली! यह अगस्त्य का आश्रम दिखाई पड़ रहा है।

वैदेही दृश्यते चात्र शरभङ्गाश्रमो महान्।
अस्मिन् देशे महकायो विराधो निहतो मया॥ ३१॥

हे वैदेही! यह शरभङ्ग का विशाल आश्रम दिखाई दे रहा है। इसी स्थान पर मैंने विशाल शरीरधारी विराध नामक राक्षस को मारा था।

एतेहि तापसावास दृश्यन्ते तनुमध्यमे।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरप्रभः।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी॥ ३२॥

हे तनुमध्यमे! (पतली कमरवाली) ये तपस्वियों के आश्रम दिखाई दे रहे हैं। इन्हीं में कुलपति अत्रि रहते हैं जो कि सूर्य एवं अग्नि के समान तेजस्वी हैं। यहीं पर धर्मचारिणी और तपस्विनी अनुसूया से तुम्हारी भेंट हुई थी।

असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते।
यत्र मां कैकेयीपुत्र प्रसादयितुमागतः॥ ३३॥

हे सुन्दर शरीरवाली! देखो, यह पर्वतराज चित्रकूट शोभायमान हो रहा है जहाँ कैकेयीपुत्र भरत मुझे मनाने के लिए आया था।

एषा सा यमुना दूराद् दृश्यते चित्रकानना।
भरद्वाजाश्रमो यत्र श्रीमानेष प्रकाशते॥ ३४॥

यह रंग-बिरंगे पुष्पों से युक्त वृक्षों से भरे वनों के मध्य बहती हुई यमुना दूर से ही दिखाई दे रही है। इसके समीप ही महर्षि भरद्वाज का शोभायमान आश्रम दिखाई दे रहा है।

एषा त्रिपथा गङ्गां दृश्यते वरवर्णिनि।
नानाद्विजगणाकीर्णा सम्प्रपुष्पितकानना॥ ३५॥

हे वरवर्णिनी! यह त्रिपथगामिनी गङ्गा है जिसके दोनों तटों पर विविध प्रकार के पक्षियों से युक्त और पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण वन शोभायमान हो रहे हैं।

श्रृङ्गवेरपुरं चैतद् गुहो यत्र समागतः।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी॥ ३६॥

आगे देखो, यह ऋङ्गवेरपुर है, यहीं पर गुह से मेरा समागम हुआ था। हे सीते! यह देखो, वह सरयू नदी है जिसके तट पर इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न राजाओं द्वारा किये हुए यज्ञों के स्मारक स्वरूप पत्थर के खम्भों की पंक्ति-की-पंक्ति खड़ी हैं।

नानातरुशताकीर्णा सम्प्रपुष्पितकानना।
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या राजधानी पितुर्मम॥ ३७॥

विविध प्रकार के शतशः पुष्पित वृक्षोंवाले उद्यानों से शोभित, यह मेरे पिता की राजधानी अयोध्यापुरी दिखाई दे रही हैं।

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः।
उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं शुभदर्शनाम्॥ ३८॥

श्रीराम के मुख से अयोध्यापुरी का नाम सुनते ही समस्त वानर और विभीषण उचक-उचक कर उस सुन्दर अयोध्यापुरी को देखने लगे।

➤ सप्ततितमः सर्गः ➤ (७०)

भरद्वाज के आश्रम में—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥ १॥

वनवास के चौदह वर्ष पूरे हो जाने पर चैत्रशुक्ल पञ्चमी के दिन श्रीराम भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे और उन्हें यथाविधि प्रणाम किया।

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम्।
शृणोषि कच्चिद्भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे॥ २॥

प्रणाम के पश्चात् श्रीराम ने तपोधन भरद्वाज मुनि से पूछा—भगवन्! अयोध्यापुरी में सब लोग कुशल-पूर्वक तो हैं? दुर्भिक्षादि से वहाँ किसी को कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

कच्चिच्च युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः।
एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत्॥ ३॥

भरतजी प्रजा का पालन तो भली-भाँति करते है? मेरी सब माताएँ तो जीवित हैं? श्रीराम के इस प्रकार पूछने पर महामुनि भरद्वाज अत्यन्त प्रसन्न हो मुस्कराते हुए बोले—

पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे॥ ४॥

हे राम! यथाविधि स्नान न करने के कारण शरीर में मैल लपेटे, जटाजूटधारी तथा तुम्हारी खड़ाओं को अपने आगे रखे हुए, भरत तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे घर में सब कुशल-पूर्वक हैं।

त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम्।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम्॥ ५॥
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितुर्वचनकारिणम्।
दृष्ट्वा तु करुणापूर्वं ममासीत् समितिञ्जय॥ ६॥

हे रघुनन्दन! पहले जब तुम वल्कल वस्त्र पहनकर महावन में प्रविष्ट हुए थे, उस समय लक्ष्मण और सीता आपके साथ थी, राज्य से आप हटा दिये गये थे, केवल धर्म में मन लगाये हुए थे, पैदल चल रहे थे और सर्वस्व त्याग कर पिता की आज्ञापालन में निरत थे—हे समर-विजयी! तुम्हारी उस समय की दशा देखकर मेरा मन बड़ा दुःखी हुआ था।

साम्प्रतं सुसमृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम्।
समीक्ष्य विजितारिं त्वां मम प्रीतिरनुत्तमा॥ ७॥

परन्तु इस समय आपको सफल-मनोरथ, इष्ट-मित्रों और स्वजनों से युक्त तथा शत्रु को जीतकर लौटा हुआ देख मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव।
यत्त्वया विपुलं जनस्थानवधादिकम्॥ ८॥

हे राम! जनस्थान में निवास करते हुए तुमने जो बहुत-से सुख और दुःख भोगे वे सब मुझे ज्ञात हैं।

मारीचदर्शनं चैव सीताया हरणं तथा।
सुग्रीवेण च ते सख्यं यच्च बाली हतस्त्वया॥ ९॥
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः।
यथा विनिहतः संख्ये रावणो देवकण्टकः॥ १०॥
सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल।
सम्पतन्ति च मे शिष्याः प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः॥ ११॥

मारीच का कपटी हिरन के रूप में आपके आश्रम में आना और रावण का सीता का अपहरण करना, सीता को खोजते हुए सुग्रीव के साथ आपकी मित्रता और तत्पश्चात् आपके द्वारा बाली का मारा जाना, फिर पुत्र, भाई-बन्धु, मन्त्री, सेना और हाथी घोड़ों तथा रथों की सेना सहित देवकण्टक रावण का युद्ध में मारा जाना—ये सभी बातें, हे धर्मवत्सल! अपने तप के प्रभाव से मुझे विदित हैं। मेरे कथा-कुशल शिष्य प्रतिदिन आश्रम से इधर-उधर और अयोध्या नगरी में भी जाते हैं। उनके द्वारा मुझे सब वृत्तान्त ज्ञात होते रहते हैं।

वसार्घ्यं प्रतिगृह्णीष्व श्वश्चायोध्यां गमिष्यसि।
तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृमात्मजः।
बाढमित्येव संहृष्टो निशां तां सुखमाऽवसत्॥ १२॥

अब आप आज मेरा आतिथ्य स्वीकार कर यहीं निवास कर, अयोध्या के लिए कल प्रस्थान करना। राजकुमार राम ने भरद्वाज की आज्ञा को शिरोधार्य कर और अत्यन्त आनन्दित होकर कहा—"बहुत अच्छा।" फिर भोजनादि के पश्चात् राम उस रात्रि में सुखपूर्वक वहीं रहे।

➤ एकसप्ततितमः सर्गः ➤ (७१)

राम का अपने आगमन की सूचना देने के लिए हनुमान् को भरत के पास भेजना—

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः।
चिन्तयित्वा हनुमन्तमुवाच प्लवगोत्तमम्।
अयोध्यां त्वरितो गच्छ त्वमितो वनगोचर॥ १॥

दूर से अयोध्या को देखकर ज्यों ही श्रीराम भरद्वाज के आश्रम में उतरे त्यों ही उन्होंने कुछ विचार किया—(विचार यह था कि आज वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। यदि आज भरत को मेरे पहुँचने का सन्देश नहीं मिला तो वह चित्रकूट में की हुई अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अग्नि में प्रविष्ट हो जायेगा) मन-ही-मन में यह सोचकर और फिर कुछ निश्चय करके वे कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी से बोले—हे वनवासी! तुम यहाँ से शीघ्र अयोध्या जाओ।

कुशलं भरतं ब्रूहि राजपुत्रं यशस्विनम्।
जानीहि कुशलं कच्चिदिक्ष्वाकुकुलमन्दिरे॥ २॥

वहाँ जाकर तुम यशस्वी राजकुमार भरत को मेरा कुशल-समाचार कहना और यह भी देखना कि राजमहल में सब कुशलपूर्वक तो हैं।

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम्।
निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम॥ ३॥

मार्ग में शृंगवेरपुर पहुँचकर तुम गहन वनों के जानकार वनवासी निषादराज गुह को मेरी ओर से कुशल-संवाद देते जाना।

श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम्।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा॥ ४॥

मेरा कुशल-संवाद, नीरोगता और वन के कष्टों की समाप्ति की बात सुनकर वह प्रसन्न हो जायेगा, क्योंकि वह मेरा आत्मा के समान प्रिय मित्र है।

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः॥ ५॥

मेरा कुशल-संवाद सुन हर्षित हुआ गुह तुम्हें अयोध्या पहुँचने का सरल मार्ग और भरत का सब हाल-चाल बता देगा।

भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम्॥ ६॥

तब तुम अयोध्या में पहुँचकर मेरी ओर से भरत को कुशल-संवाद देना और कहना कि मैंने भार्या और लक्ष्मण सहित पिताजी की आज्ञा का पालन कर दिया है।

उपयान्तं च मां सौम्य भरतस्य निवेदय।
सह राक्षसराजेन हरीणां प्रवरेण च॥ ७॥

हे सौम्य! कुशल-संवाद के पश्चात् भरत से यह भी निवेदन करना कि मैं राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीव को साथ लेकर नगर के समीप पहुँच गया हूँ।

एतत् श्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्तदा।
स च ते वेदितव्यः स्यात् सर्वं यच्चापि मां प्रति॥ ८॥

इन बातों को सुनकर भरत की आकृति से (हर्ष या शोक) क्या प्रकट होता है, अथवा उनकी मेरे प्रति कैसी भावना है ये सब बातें तुम जान लेना।

सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसङ्कुलम्।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः॥ ९॥
सङ्गत्या भरतः श्रीमान् राज्यार्थी चेत्स्वयं भवेत्।
प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नामखिलां रघुनन्दनः॥ १०॥

सभी प्रकार के इष्ट पदार्थों से परिपूर्ण तथा हाथी-घोड़ों और रथों से भरा-पूरा पिता-पितामहों का राज्य पाकर किसका मन नहीं बदल जाता? बहुत दिनों तक राज्य करने से यदि श्रीमान् भरत अब स्वयं ही राज्य करने के अभिलाषी हो तो वे ही समस्त पृथिवी का पालन करें।

तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर।
यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि॥ ११॥

हे हनुमन्! मेरे अयोध्या में पहुँचने से पूर्व ही तुम भरत के मानसिक विचारों का भेद लेकर शीघ्र लौट आओ।

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः।
मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ॥ १२॥

जब श्रीराम ने पवनपुत्र हनुमान् को ऐसी आज्ञा दी तब वे मनुष्य का रूप धारण कर तुरन्त अयोध्या की ओर चल पड़े।

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान्।
स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत्॥ १३॥

पराक्रमी हनुमान् मार्ग में शृङ्गवेरपुर पहुँच गुह से मिला और हर्षित होकर मधुर वाणी से उन्हें यह समाचार दिया।

सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः।
ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत्॥ १४॥

हे गुह! आपके मित्र सत्य-पराक्रमी राम ने अपना तथा सीता और लक्ष्मण का कुशल-संवाद तुमसे कहा है।

पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यद्यैव राघवम्॥ १५॥

भरद्वाज मुनि के आदेशानुसार आज पञ्चमी की रात वे उनके आश्रम में निवास कर, फिर उनकी आज्ञा ले वहाँ से प्रस्थान कर कल यहीं आपसे भेंट करेंगे।

एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
उत्पपात महावेगो वेगवानविचारयन्॥ १६॥

गुह को यह शुभ संवाद देकर महातेजस्वी, वेगवान् हनुमान् प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो और मार्ग की थकान की परवाह किये बिना आकाश-मार्ग से उड़ चले।

स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः।
आससाद द्रुमान् फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपगान्॥ १७॥

वहाँ से बड़ी तेजी के साथ चलते हुए और बहुत दूर जाकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् नन्दिग्राम के समीपवर्ती विविध प्रकार के पुष्पित वृक्षों से युक्त एक उपवन में जा पहुँचे।

स्त्रीभिः सपुत्रैर्वृद्धैश्च रममाणैरलंकृतान्।
सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान्॥ १८॥

उन वृक्षों के नीचे वृद्ध और अलंकृत स्त्रियाँ अपने पुत्र एवं पौत्रों के साथ आनन्द-विहार कर रहे थे। उस उपवन में लगे हुए वे वृक्ष ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे देवराज इन्द्र के नन्दन-कानन में लगे हुए वृक्ष शोभायमान होते हैं।

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्॥ १९॥

यह नन्दिग्राम अयोध्या से एक कोस के अन्तर पर था, यहीं हनुमान्‌जी ने चीर और काले मृगचर्म को पहने हुए, शरीर से कृश=दुबले-पतले, उदास मन और तपस्वियों जैसे रहन-सहनवाले भरत को देखा।

जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम्।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम्॥ २०॥

हनुमान्‌जी ने देखा कि भरतजी के सिर पर जटाजूट है, उबटन आदि न लगने से शरीर साफ नहीं है और भाई के वियोगजन्य दुःख से वे दुःखी हैं। उन्होंने अपने मन और वाणी को अपने वश में किया हुआ है तथा वे ब्रह्मर्षि के समान तेजस्वी हैं।

पादुके ते पुरस्कृत्य शासन्तं वे वसुन्धराम्।
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात्॥ २१॥

हनुमान् ने यह भी देखा कि भरतजी श्रीराम की चरण-पादुकाओं को अपने सम्मुख रख पृथिवी का शासन कर रहे हैं और प्रजा के चारों वर्णों की सब प्रकार के उत्पातों से रक्षा कर रहे हैं।

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः॥ २२॥

उनके समीप ही कषायवस्त्रधारी, कार्यकुशल एवं ईमानदार मन्त्री, पुरोहित और सेनाध्यक्ष बैठे हुए हैं।

न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलम्॥ २३॥

जब धर्मवत्सल भरतजी ने कषायवस्त्र और काले मृग का चर्म धारण कर रखा था तब उनके पार्श्ववर्ती जनों ने भी (मुनिवेषधारी राजा की सेवा में रहकर) अन्य प्रकार के (राजसी) वस्त्र पहनकर उनके पास रहना उचित नहीं समझा, अतः वे भी कषायवस्त्र पहने हुए थे।[१]

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम्।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान् मारुतात्मजः॥ २४॥

उन्हें देख पवनपुत्र हनुमान्जी ने देह धारण किये धर्म की दूसरी मूर्ति के समान, धर्मज्ञ भरत से हाथ जोड़कर कहा—

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम्।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत्॥ २५॥

राजन्! आप रात-दिन जिस दण्डकारण्यवासी और चीर-जटाधारी राम की चिन्ता में डूबे रहते हैं उन श्रीराम ने आपके लिए अपना कुशल-संवाद भेजा है।

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्।
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः॥ २६॥

हे देव! मैं आपको यह प्रिय संवाद सुना रहा हूँ—थोड़ी ही देर में आपकी राम के साथ भेंट होगी, अतः इस अत्यन्त दारुण शोक को त्याग दीजिए।

निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम्।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः॥ २७॥

श्रीराम रावण का वध कर, सीता को प्राप्त कर और वनवास की अवधि पूर्ण कर अपने बलवान् मित्रों को साथ लिये हुए आ रहे हैं।

एवमुक्तो हनुमता भरतो भ्रातृवत्सलः।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहं जगाम ह॥ २८॥

हनुमान्जी के मुख से श्रीराम के आने का समाचार सुनकर भ्रातृवत्सल भरतजी हर्ष के कारण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः।
हनुमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम्॥ २९॥
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य सम्भ्रमात्।
सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरश्रुबिन्दुभिः॥ ३०॥

फिर थोड़ी देर पश्चात् भरतजी उठ बैठे और उन्होंने सावधान होकर प्रीति में भर, आनन्दपूर्वक हनुमान्जी को गले लगा लिया तथा आनन्दाश्रुओं से उनके शरीर को तर कर दिया। तत्पश्चात् वे प्रियवादी हनुमान्जी से बोले—

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्॥ ३१॥

मेरे स्वामी राम को महाविकट वन में गये हुए बहुत वर्ष हो गये, किन्तु आज मैं उनके प्रत्यागमन का सुखदायक संवाद सुन रहा हूँ।

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥ ३२॥

"यदि मनुष्य जीवित रहे तो सौ वर्ष पश्चात् भी उसे आनन्द प्राप्त होता है"—आज मुझे यह कल्याणदायिनी कहावत सत्य प्रतीत हो रही है।

---

१. इस श्लोक का अनुवाद यूँ भी हो सकता है—धर्मवत्सल भरतजी को कषाय वस्त्र और काले मृग का चर्म धारण किये हुए देख पुरवासी प्रजाजन भी बढ़िया भोग भोगने का विचार तक नहीं करते।

राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समागमः।
कस्मिन् देशे किमश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः॥ ३३॥

अच्छा यह तो बताओ - श्रीराम की वानरों के साथ मित्रता कैसे हुई ? उनके साथ कहाँ और किस प्रयोजन के लिए मित्रता हुई ? यह सब वृत्तान्त ठीक-ठीक कहो।

स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः।
आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने॥ ३४॥

जब तपस्वियों के बैठने योग्य आसन (चटाई) पर बैठकर भरतजी ने हनुमान् से यह पूछा तब उन्होंने श्रीराम के जीवन की उन सब घटनाओं का वर्णन किया जो वनवास की अवधि में घटी थीं।

◀ द्विसप्ततितमः सर्गः ▶ (७२)

राम का स्वागत-समारोह तथा राम-भरत-मिलाप—

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा॥ १॥

श्रीराम के आगमन का यह परमानन्ददायक समाचार सुनकर सत्यपराक्रमी भरत ने प्रसन्न हो शत्रुनाशक शत्रुघ्न को आज्ञा दी—

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च।
सुगन्धमाल्यैर्विविचित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः॥ २॥

हे शत्रुघ्न! नगर के प्रमुख स्थानों और यज्ञशालाओं को अद्भुत सुगन्धों और पुष्पमालाओं से, मनुष्य पवित्र होकर, सजाएँ।

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा।
विष्टीरनेकसाहस्त्रीश्चोदयामास वीर्यवान्॥ ३॥
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च।
स्थलानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम्॥ ४॥

भरतजी के आदेश को सुनकर शत्रुनाशक शत्रुघ्न ने सहस्रों कुली और कारीगरों को आज्ञा दी कि नन्दिग्राम से अयोध्या के बीच की सड़क को ठीक करो। जहाँ-कहीं रास्ता ऊबड़-खबड़ हो वहाँ उसे भर दें और जहाँ टीले हों उन्हें छील कर एक-सा कर दें।

सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा।
ततोऽभ्यवकिरन् त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वशः॥ ५॥

तत्पश्चात् बर्फ के समान शीतल जल से सड़क पर छिड़काव करें तथा सड़कों पर फूल और लाजा (धान की खील) बिखेर दें।

समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे।
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति॥ ६॥

पुरियों में उत्तम अयोध्यापुरी की सब सड़कों पर झण्डियां लगा दी जायें और सूर्योदय से पूर्व ही नगरी के समस्त भवनों को समलंकृत कर दिया जाए।

राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गनाः।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः॥ ७॥
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः।
मत्तैर्नागसहस्त्रैश्च शातकुम्भविभूषितैः॥ ८॥

(उपर्युक्त तैयारी हो जाने और प्रातःकाल सूर्योदय हो जाने पर) रानियाँ, अमात्य, सैनिक, सैनिकों की स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, प्रधान वैश्य तथा अन्य श्रेणियों के प्रमुख लोग, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुमन्त्र आदि मन्त्री स्वर्णाभूषणों से भूषित सहस्रों (सहस्र का अर्थ होता है बहुत-से **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्** निघण्टु ३/१) मदमाते हाथियों पर सवार होकर निकले।

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः।
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम्॥ ९॥
शुक्ले च बालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते।
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः॥ १०॥
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः।
प्रत्युद्ययौ ततो रामं महात्मा सचिवैः सह॥ ११॥

धर्म के मर्मज्ञ भरतजी अपने सिर पर श्रीराम की चरण-पादुकाएँ रखे हुए, श्वेत पुष्पमालाओं से सुशोभित श्वेत छाता और राजाओं के योग्य सोने की दण्डी का सफद चँवर लिये हुए, उपवास के कारण कृश शरीरवाले, दीन तथा कषायवस्त्र और काले मृग का चर्म पहने हुए, भाई का आगमन सुन अति प्रसन्न हुए और मन्त्रियों को साथ लिये हुए श्रीराम के स्वागत के लिए पैदल ही चल दिये।

ततो हर्षसमुद्भतो निःस्वनो दिवमस्पृशत्।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते॥ १२॥

थोड़ी ही देर में स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध—सब ने एक साथ हर्ष के मारे आकाश को निनादित कर दिया कि देखो ''राम आ गये, राम आ गये।''

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे॥ १३॥

तब सब लोग हाथी, घोड़ों तथा रथों से उतरकर पृथिवी पर खड़े हो गये और विमान में बैठे हुए श्रीराम की ओर वैसे ही देखने लगे जैसे आकाश-स्थित चन्द्रमा को देखते हैं।

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम्।
हंसयुक्त महावेगं निष्पपात महीतले॥ १४॥

उधर श्रीराम की आज्ञा पा हंसों से युक्त और अत्यन्त तीव्रगामी वह श्रेष्ठ विमान पृथिवी पर उतरा।

आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः।
राममासाद्य मुदितः प्रणतश्चाभ्यवादयत्॥ १५॥

विमान के नीचे उतरने पर श्रीराम ने भरत को उस विमान में बैठा लिया। राम को प्राप्त कर भरतजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और नम्रतापूर्वक उन्होंने श्रीराम को प्रणाम किया।

तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम्।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे॥ १६॥

चिर काल के पश्चात् भरत को देखकर राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने भरतजी को अपनी गोद में बैठाकर उनका आलिङ्गन किया।

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः।
अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत्॥ १७॥

तत्पश्चात् भरतजी ने हर्षित होते हुए और अपना नाम उच्चारण करते हुए लक्ष्मण और सीताजी को प्रणाम किया।

अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम्।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः॥ १८॥
त्वमस्माकं चतुर्णां भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्॥ १९॥

लक्ष्मण और सीता को अभिवादन करने के पश्चात् धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महातेजस्वी राजकुमार भरत ने वानरराज सुग्रीव को गले लगाकर कहा—हे सुग्रीव! हम चार भाई हैं, आप हमारे पाँचवें भाई हुए, क्योंकि उपकार करना मित्र का और अपकार करना शत्रु का लक्षण=चिह्न है।

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत्।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम्॥ २०॥

तत्पश्चात् भरतजी ने विभीषण से स्नेहसिक्त वचन कहे—हे विभीषण! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हारी सहायता से श्रीराम ने यह कठिन कार्य पूर्ण कर डाला।

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम्।
सीतायाश्चरणौ पश्चाद्विनयादभ्यवादयत्॥ २१॥

तदनन्तर शत्रुघ्न ने श्रीराम और लक्ष्मण को प्रणाम किया और विनय-भाव से सीता के चरण-स्पर्श किये।

रामो मातरमासाद्य विषण्णां शोककर्शिताम्।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन्॥ २२॥

श्रीराम ने अपनी दुःखिया और शोक से सन्तप्त

माता के समीप जा उनके चरणों में शीश झुका उन्हें प्रणाम कर उनके मन को आह्लादित किया।

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत्॥ २३॥

तत्पश्चात् सुमित्रा और यशस्विनी (कैकेयी की दृढ़ता से ही ऋषियों को सुख मिला, रावण मारा गया और राम को यश मिला) कैकेयी को प्रणाम कर अन्य सब मातृसदृश पूजनीय स्त्रियों को प्रणाम कर वे वसिष्ठजी को प्रणाम करने गये।

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन्॥ २४॥

दूसरी ओर नगर के निवासियों ने हाथ जोड़कर श्रीराम का अभिनन्दन करते हुए कहा—"हे कौसल्यानन्दवर्धन! हे महाबाहो! आपका स्वागत हो।"

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः।
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः॥ २५॥

जिस समय नागरिक लोग सहस्रों अञ्जलियाँ बाँधे हुए खड़े थे उस समय राम ने देखा मानो सहस्रों कमलपुष्प खिले हुए हैं।

पादुके तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥ २६॥

इस स्वागत-सत्कार के पश्चात् धर्मज्ञ भरत ने राम की वे दोनों पादुकाएँ स्वयं अपने हाथों में पकड़ी और श्रीराम के दोनों चरणों में पहना दीं।

अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।
एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥ २७॥

तदनन्तर वे हाथ जोड़कर बोले—हे राजन्! अपने इस समस्त राज्य को, जो मेरे पास इतने दिनों से धरोहर के रूप में रखा था—अब आप सम्भालिए।

अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः।
यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥ २८॥

हे राम! आज मेरा जीवन कृतार्थ हुआ और मनोरथ सफल हुआ, क्योंकि आज मैं अयोध्यानाथ को पुनः अयोध्या में लौटकर आया हुआ देख रहा हूँ।

अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं पुरं बलम्।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया॥ २९॥

आप अपने कोश, धान्यशाला और गृहसेना का निरीक्षण कीजिए। आपके प्रताप से मैंने इन सबको दशगुणा अधिक बढ़ा दिया है।

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम्।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः॥ ३०॥

भ्रातृवत्सल भरत को इस प्रकार कहते हुए देखकर राक्षसराज विभीषण और वानरों की आँखों से आँसू निकल पड़े।

ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम्॥ ३१॥

उस समय श्रीराम ने अत्यन्त हर्षित हो भरतजी को अपनी गोद में बिठा लिया और उसी विमान द्वारा सेनापतियों सहित भरत के आश्रम की ओर चल दिये।

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले॥ ३२॥

आश्रम में पहुँच श्रीराम सेनापतियों सहित विमान से नीचे उतरे और भूमि पर खड़े हो गये।

◀ त्रिसप्ततितमः सर्गः ▶ (७३)

राम की शोभायात्रा एवं अयोध्या में आगमन—

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयानन्दवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १॥

नन्दिग्राम में पहुँचने पर कैकेयी के आनन्द को बढ़ानेवाले भरतजी ने हाथ जोड़कर सत्यपराक्रमी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम से कहा—

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम॥ २॥

हे महाराज! आपने मेरी माता को सन्तुष्ट करने के लिए जो राज्य मुझे प्रदान किया था अब उस राज्य को मैं पुनः आपको समर्पित करता हूँ।

धुरमेकाकिना न्यस्तामृषभेन बलीयसा।
किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे॥ ३॥

जैसे अकेले ही ढोने में समर्थ बलवान् बैल के बोझ को एक बछड़ा नहीं ढो सकता, वैसे ही मैं भी इस राज्यभार को उठाने में असमर्थ हूँ।

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन्।
दुर्बन्धमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम्॥ ४॥

जिस प्रकार जल के प्रबल वेग से टूटे हुए बाँध को बाँधना कठिन है, उसी प्रकार चारों और से खुले हुए राज्य के छिद्रों को बन्द करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्महे राम तव मार्गमरिन्दम॥ ५॥

हे शत्रुदमनकारी राम! जैसे घोड़े की चाल को गधा अथवा हंस की चाल को कौआ नहीं चल सकता उसी प्रकार मैं भी आपके पथ का अनुसरण नहीं कर सकता।

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु सर्वतः।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम्॥ ६॥

इसलिए हे राम! मैं चाहता हूँ कि मध्याह्न काल में प्रखर किरणों के साथ तपते हुए सूर्य के समान प्रतापी आपको आज सारा संसार राज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ देखे।

यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा।
तावत्त्वमिह सर्वस्य स्वामित्वमनुवर्त्तय॥ ७॥

जब तक यह ज्योतिष-चक्र घूमता है (सूर्य-चन्द्र विद्यमान हैं) और जब तक यह भूमि स्थिर है तब तक आप समस्त पृथिवी के राजा होकर इस सब भूमण्डल का पालन करो।

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे॥ ८॥

शत्रु के पुरों को जीतनेवाले श्रीराम भरतजी के वचनों को सुन और ''ऐसा ही होगा''—कहकर एक सुन्दर आसन पर बैठ गये।

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्युपासत॥ ९॥

तब शत्रुघ्न की आज्ञा से फुर्तीले, निपुण और हल्के हाथ से क्षौरकर्म (हजामत) करनेवाले नाई श्रीराम का क्षौरकर्म करने के लिए उनके समीप उपस्थित हुए।

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे॥ १०॥

सबसे पहले भरतजी ने, फिर महाबली लक्ष्मण ने तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण ने स्नान किया।

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनो रामस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्॥ ११॥

सबके पीछे श्रीराम ने बाल कटवाकर स्नान किया, फिर उत्तम माला धारण की, चन्दन लगाया और बहुमूल्य वस्त्र पहने। उस समय वे अपने शरीर की कान्ति से दमकने लगे।

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान्।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः॥ १२॥

तदनुवीर्यवान्, कान्तिमान् एवं इक्ष्वाकुकुल-वर्धन शत्रुघ्नजी ने श्रीराम और लक्ष्मण को हार आदि आभूषण पहनाये।

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वाः दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्॥ १३॥

उधर महाराज दशरथ की मनस्विनी स्त्रियों ने अपने हाथों से सीताजी के सब अङ्गों में सुन्दर आभूषण पहनाए, अथवा उसका मनोहर शृंगार किया।

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला॥ १४॥

पुत्रवत्सला कौसल्याजी ने हर्षित हो समस्त वानर-पत्नियों का शृङ्गार स्वयं किया।

ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः।
योजयित्वाऽभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम्॥ १५॥

यह सब तैयारी हो चुकने पर शत्रुघ्न की आज्ञा से सुमन्त्र नामक सारथि एक सर्वाङ्ग सुन्दर रथ को जोड़कर ले आया।

अर्कमण्डलसङ्काशं दिव्यं दृष्ट्वा रथोत्तमम्।
आरुरोह महाबाहू रामः सत्यपराक्रमः॥ १६॥

सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान दिव्य और श्रेष्ठ रथ को उपस्थित देख सत्यपराक्रमी महाबाहु श्रीराम उस पर आरूढ़ हुए।

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ॥ १७॥

इन्द्र के समान कान्तिमान् सुग्रीव और हनुमान् भी नहा-धोकर, उत्तम वस्त्र धारण किये हुए और कानों में कुण्डल पहने हुए श्रीराम के साथ चले।

वराभरणसम्पन्ना ययुस्ताः शुभकुण्डलाः।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नागरमुत्सुकाः॥ १८॥

समस्त आभूषणों से अलंकृत और सुन्दर कुण्डल पहने हुए सीताजी और सुग्रीव की स्त्रियाँ (सुग्रीव तथा वानर-सेनापतियों की स्त्रियाँ) नगर को देखने की उत्कण्ठा से उनके पीछे-पीछे हो लीं।

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि सम्पर्यवीजयत्॥ १९॥

उस समय भरतजी ने घोड़ों की रास अपने हाथ में पकड़ी, शत्रुघ्न ने श्रीराम के ऊपर छत्र ताना और लक्ष्मणजी उनके सिर पर चँवर डुलाने लगे।

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निस्वनैः।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम्॥ २०॥

श्रीराम की यह भव्य शोभा-यात्रा शंख-घोषों और दुन्दुभि-नादों के साथ अटारियों की पंक्तियों से शोभित अयोध्यापुरी की ओर प्रस्थानित हुई।

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम्।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा॥ २१॥

इस शोभा-यात्रा (जलूस) को देखने के इच्छुक नगर-निवासियों ने अपनी कान्ति से देदीप्यमान, रथ पर आरूढ़ महारथी राम को देखा।

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम्॥ २२॥

इन लोगों ने राम का जयकार गुँजाया। श्रीराम ने हाथ के संकेत से उनका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् वे सब भाई के साथ जा रहे श्रीराम के पीछे हो लिये।

वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद् बलम्।
द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंवृतः।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश ह॥ २३॥

श्रीराम वानरों के अद्भुत-अद्भुत कर्म और राक्षसों का बल—इन सब बातों का वर्णन करते हुए (अयोध्यावासियों को सुनाते हुए) हृष्ट-पुष्ट और सन्तुष्ट जनों से परिपूर्ण अयोध्या पुरी में प्रविष्ट हुए।

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम्॥ २४॥

उस समय पुरवासियों ने अपने-अपने घरों पर पताकाएँ लगाई हुई थीं। नगर में होते हुए और उसकी शोभा को निहारते हुए राम अपने पिता के रम्यमहल में पहुँचे।

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः।
कौसल्यां च सुमित्रां कैकेयीमभिवादयत्॥ २५॥

पिता के भवन के पास पहुँच और उसमें प्रवेश कर श्रीराम ने कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी को प्रणाम किया।

अथाब्रवीद्राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम्।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः॥ २६॥

अभिवादन आदि के पश्चात् श्रीराम ने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भरतजी से अर्थयुक्त मधुर वाणी में कहा—

यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैडूर्यसङ्कीर्णं सुग्रीवाय निवेदय॥ २७॥

हे भरत! तुम सुग्रीव को मेरे उस विशाल एवं श्रेष्ठ भवन में ठहराओ जिसमें अशोकवाटिका है तथा जिसमें मोती, पन्ने आदि मणियाँ जड़ी हुई हैं।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः।
पाणौ गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम्॥ २८॥

श्रीराम के उस आदेश को सुनकर सत्यपराक्रमी भरतजी सुग्रीव का हाथ पकड़कर उन्हें उस भवन में लिवा ले गये।

ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः॥ २९॥

फिर शत्रुघ्न की आज्ञा से नौकर-चाकर तेल के दीपक, पलङ्ग और बिस्तरे लेकर शीघ्र वहां पहुँचे।

➤ चतुःसप्ततितमः सर्गः ➤ (७४)

राम का राज्यभिषेक, सुग्रीव आदि की विदाई और रामराज्य का वर्णन—

अथ रामाभिषेकाय शत्रुघ्नः सचिवैः सह।
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत्॥ १॥

सबके ठहरने आदि की व्यवस्था और राज्याभिषेक की तैयारी हो जाने पर शत्रुघ्न ने पुरोहित श्रेष्ठ वसिष्ठजी तथा सुहृदों से श्रीराम का राज्याभिषेक करने के लिए निवेदन किया।

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे सहसीतं न्यवेशयत्॥ २॥

तब कर्मठ और वृद्ध वसिष्ठजी ने अन्य ब्राह्मणों को साथ लेकर सीता-सहित श्रीराम को एक रत्नजटित चौकी पर बैठाया।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा॥ ३॥

जिस प्रकार आठ वसुओं ने जल से इन्द्र देव का अभिषेक किया था उसी प्रकार उस समय वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियों ने निर्मल सुगन्धित जल से श्रीराम का अभिषेक किया।

अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा॥ ४॥

जिस प्रकार आठ वसुओं ने जल से इन्द्र देव का अभिषेक किया था, उसी प्रकार उस समय वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियों ने निर्मल सुगन्धित जल से श्रीराम का अभिषेक किया।

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टाः सनैगमैः॥ ५॥

सबसे पहले ऋत्विक ब्राह्मणों ने तत्पश्चात् कन्याओं ने, फिर मन्त्रियों ने, सैनिकों ने और सबके अन्त में महाजनों ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम का अभिषेक किया।

किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः॥ ६॥

तत्पश्चात् महात्मा वसिष्ठ ने श्रीराम के सिर पर राजकुमुट पहनाया, फिर ऋत्विजों ने उन्हें विविध प्रकार के आभूषणों से अलंकृत किया।

छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः॥ ७॥

उस समय शत्रुघ्न ने सुन्दर श्वेत राजछत्र पकड़ा, फिर एक ओर वानरराज सुग्रीव ने श्वेत चँवर पकड़ा और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण चन्द्रमा के समान श्वेत चँवर डुलाने लगे।

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा।
ददौ शतं वृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः॥ ८॥

राज्याभिषेक हो जाने पर श्रीराम ने एक लाख घोड़े, एक लाख ओसर गौएँ तथा अन्य गौएँ और एक सौ साँड ब्राह्मणों को दिये।

त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः॥ ९॥

तत्पश्चात् श्रीराम ने तीस करोड़ अशर्फियाँ और बहुमल्य वस्त्र तथा आभूषण ब्राह्मणों को दान में दिये।

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम्।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन् मनुजर्षभः॥ १०॥

तदनु पुरुष श्रेष्ठ राम ने सूर्य की किरणों के समान दमकती हुई, मणियों से जड़ी सोने की एक दिव्य माला सुग्रीव को प्रदान की।

वैडूर्यमणिचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते।
बालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ॥ ११॥

फिर धृतिमान् श्रीराम ने चन्द्रमा के समान प्रभावान् और वैडूर्य मणियों से चित्रित दो बाजूबन्द बालिपुत्र अङ्गद को दिये।

मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम्।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्॥ १२॥

राम ने उत्तम मणियों से जटित मोतियों का एक अनुपम हार जो चन्द्रकिरणों के समान उज्ज्वल था, सीताजी को दिया।

अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे॥ १३॥

सीताजी ने दो निर्मल दिव्य वस्त्र तथा बढ़िया आभूषण हनूमान्जी के उपकारों का स्मरण कर उन्हें प्रदान किये।

अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी।
अवैक्षत हरीन्सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहः॥ १४॥

तत्पश्चात् जनकनन्दिनी सीता अपने गले से एक हार उतारकर वानर-सेनापतियों और राम की ओर बारम्बार देखने लगीं।

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम्।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि॥ १५॥

सीताजी के मन के अभिप्राय को जानकर श्रीराम ने कहा—हे सौभाग्यवती! हे भामिनि! तुम जिस पर प्रसन्न हो यह हार उसे दे डालो।

पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि सर्वशः।
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षण॥ १६॥

राम की अनुमति मिल जाने पर सीताजी ने पुरुषार्थ, विक्रम, बुद्धि आदि समस्त गुणों से सम्पन्न हनुमान्जी को वह हार दे दिया।

हनुमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाऽचलः॥ १७॥

उस हार को पहन हनुमान्जी वैसे ही सुशोभित हुए जैसे चन्द्रकिरणों से चमचमाते हुए श्वेत मेघों के द्वारा पर्वत शोभायमान होते हैं।

रामोऽपि सस्वजे स्नेहाद्वाक्यमेतदुवाच ह।
एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥ १८॥

श्रीराम ने भी हनुमान् का आलिङ्गन किया और स्नेहपूर्वक यह कहा—हे वानर! तुम्हारे एक ही उपकार पर मैं अपने प्राण समर्पित कर सकता हूँ। तुम्हारे बचे हुए उपकारों के लिए तो हम सदा ऋणी ही बने रहेंगे।

मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥ १९॥

हे वानर! तुमने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं वे सब मेरे अङ्गों में जीर्ण हो जायें, क्योंकि मनुष्य आपत्तियों में ही उपकार के पात्र हुआ करते हैं। बिना विपत्ति पड़े उपकार किया नहीं जा सकता और मैं यह नहीं चाहता कि तुम पर कभी विपत्ति पड़े।

ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः।
सर्वान् कामगुणान् वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिप॥ २०॥

तत्पश्चात् महाराज राम ने द्विविद, मैन्द और नील को उनके गुणों को विचारकर उनके मनोरथों के अनुसार पुरस्कार दिये।

सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरेश्वराः।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः॥ २१॥

इनके अतिरिक्त और जो वृद्ध एवं प्रमुख वानर थे उन सबका भी श्रीराम ने वस्त्रों और आभूषणों से यथोचित सत्कार किया।

यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम्॥ २२॥

वे सब वानर अपने मनोरथों के अनुसार रत्नादि से सत्कृत हो हर्षित होते हुए अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

आजानुलम्बबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान्।
लक्ष्मणानुचरो रामः पृथिवीमन्वपालयत्॥ २३॥

उधर घुटनों तक लम्बी भुजाओंवाले, विशाल वक्षस्थलवाले प्रतापी श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ पृथिवी का शासन करने लगे।

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः॥ २४॥

धर्मात्मा श्रीराम ने राजसिंहासन पर बैठकर अपने सुहृदों और भाई-बन्धुओं के साथ विविध प्रकार के यज्ञ किये।

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥ २५॥

राम के राज्य में न तो विधवाओं का करुणक्रन्दन था, न सर्पों का भय था (अथवा न सर्प जैसी प्रवृत्तिवाले शठों और हिंसको का भय था) और न रोगों का भय था।[१]

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥ २६॥

राज्य भर में चोरों, डाकुओं और लुटेरों का कहीं नाम तक नहीं था। दूसरे के धन को लेने की बात तो दूर रही, कोई छूता तक नहीं था[२] और राम के शासन काल में किसी वृद्ध ने किसी बालक का मृतक-संस्कार[३] नहीं किया (अर्थात् बालमृत्यु नहीं होती थी।)

सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम्॥ २७॥

रामराज्य में सब अपने-अपने वर्णानुसार धर्म-कृत्यों में तत्पर रहते थे, अतः सब लोग सदा सुप्रसन्न रहते थे। राम दुःखी होंगे इस विचार से प्रजाजन परस्पर एक-दूसरे को दुःख नहीं देते थे।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास ने राम-राज्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भव सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीति।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं।
पुरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

२. श्रीराम के राज्य में वेद का निम्न आदर्श क्रिया रूप में प्रचलित था—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

—यजु० ४०। १

प्रभु-प्रदत्त पदार्थों को ही त्यागपूर्वक भोगो। लालच मत करो। सोचो, यह धन किसका है।

३. वेद का निम्न आदर्श भी राम-राज्य में साकार रूप में दृष्टिगोचर होता था—

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम्।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूँषि कल्पयैषाम्॥

—अथर्व० १२। २। २५

जैसे दिन अनुक्रम से होते हैं (अर्थात् रात्रि के पश्चात् दिन) जैसे ऋतुएँ एक-दूसरे के पीछे क्रमानुसार आती हैं, इसी प्रकार हे भगवन्! आप मनुष्यों के जीवनों का ऐसा निर्माण करो कि जो पीछे आया है वह पहले न मरे। पुत्र पिता से पीछे आया है, अतः वह पिता के पश्चात् मरे।



राजतिलक

आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः।[१]
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति॥ २८॥

रामराज्य में मनुष्यों की आयु दीर्घ होती थी (सहस्र बहुनाम निघण्टु) और मनुष्य बहुत पुत्रों से युक्त होते थे। सभी अयोध्या-निवासी रोग और शोक से रहित दीख पड़ते थे।

नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः।
काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः॥ २९॥

रामराज्य में वृक्ष सदा फूलते और फलते रहते थे। उनकी शाखाएँ लम्बी होती थीं। वर्षा यथा-समय होती थी और सुखस्पर्शी मन्द समीर=वायु चला करती थी।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः॥ ३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—कोई भी लोभी एवं लालची न था। सब लोग अपना-अपना काम करते हुए अपने कार्यों से सन्तुष्ट रहा करते थे।

आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः॥ ३१॥

श्रीराम के राज्य में सारी प्रजा सत्यपरायण थी, झूठ से सदा दूर रहती थी। सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त थे और सब लोग धर्मपरायण होते थे।[२]

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमान् राम ने ग्यारह सहस्र वर्ष अर्थात् लगभग तीस वर्ष[३] तक अपने भाइयों के साथ राज्य किया।

धन्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्॥ ३३॥

यह आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि प्रणीत है,[४]

---

१. यह तो हुआ महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित राम-राज्य। अब तनिक 'केशव' जी द्वारा वर्णित रामराज्य की छटा देखिए—

सब के कलप द्रुम के वन हैं सब के वर बारन गाजत हैं।
सब के घर शोभित देव सभा सब के जय दुन्दुभि बाजत है॥
निधि-सिद्धि विशेष अशेषन सौं सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि 'केशव' श्री रघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं।

भावै जहाँ व्यभिचारी वैदे रमै परनारी,
द्विजगण दण्डधारी चोरी पर पीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मान भंग,
सिंधुहि उलंघि जाति कीरति शरीर की।
मूलै तो अधोगतीन पावत हैं 'केशौदास,'
मीचु ही सों है वियोग इच्छा गंग नीर की।
बन्ध्या बासनानि जानु विधवा सुबाटिका हीं,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुवीर की॥

२. **सहस्र** का अर्थ हजार नहीं होता। किसी भी व्यक्ति के एक सहस्र पुत्र होना असम्भव है। यहाँ सहस्र का अर्थ निश्चित रूप से अनेक है।

३. **शतायुर्वै पुरुषः**—सामान्यतः मनुष्य की आयु सौ वर्ष है। विशेष अवस्थाओं में यह आयु अधिक-से-अधिक चार सौ वर्ष हो सकती है। मनुष्य की सहस्रों वर्ष की आयु होना असम्भव है। जहाँ ऐसी लम्बी-चौड़ी आयु का उल्लेख हो वहाँ मीमांसा-दर्शन के अनुसार वर्ष का अर्थ एक दिन लेना चाहिए। इस हिसाब से राम ने लगभग तीस वर्ष राज्य किया जो उचित भी है। कैसे? देखिए। पच्चीस वर्ष की अवस्था में श्रीराम का विवाह हुआ। विवाह पश्चात् बारह वर्ष वे घर पर रहे। जब सैंतीस वर्ष की अवस्था में उनका राज्याभिषेक होने लगा। तब उन्हें चौदह वर्ष के लिए वनों में जाना पड़ा इस प्रकार इक्यावन वर्ष की अवस्था में उनका राज्याभिषेक हुआ। तीस वर्ष तक उन्होंने राज्य किया तत्पश्चात् अपनी कुल-परम्परा के अनुसार ८१ वर्ष की अवस्था में वे राजपाट त्याग कर वनों में चले गये।

इस विषय में अधिक जानकारी के लिए मद्रचित 'मर्यादा-पुरुषोत्तम राम' पढ़िये।

४. इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि यह और आगे के श्लोक किसी सम्पादक द्वारा लिखे गये हैं। उपयोगी होने के कारण यहाँ दिये जा रहे हैं। महर्षि-वाल्मीकि का काव्य तो ३१वें श्लोक पर ही समाप्त हो गया है।

अत: यह आर्ष=ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ है। यह सब कवियों की काव्य-रचना होने से पूर्व बनाया था। इस ग्रन्थ के स्वाध्याय करनेवाले को यह ग्रन्थ (ग्रन्थ की शिक्षाएँ और तदनुसार आचरण) धन्यताकृत-कृत्यता, यश और आयु को देनेवाला है और राजाओं को विजय प्रदान करानेवाला है।

यः पठेच्छृणुयाल्लोके नरः पापाद्विमुच्यते।
पुत्रकामस्तु पुत्रान् वै धनकामो धनानि च।
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामस्य चेष्टितम्॥ ३४॥

इस संसार में जो मनुष्य इस ग्रन्थ को पढ़ता या सुनता है वह पापों से छूट जाता है। (श्रीराम आदि के आदर्श जीवन की घटनाओं को पढ़ और सुनकर पाप करने की प्रवृत्ति छूट जाती है)। राम के जीवन की घटनाओं की इच्छावाले को धन की प्राप्ति होती है। (पुत्रेष्टि-यज्ञ के द्वारा पुत्र की और उत्साह के द्वारा निरन्तर उद्योग से धन की प्राप्ति सम्भव है।)

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः॥ ३५॥

जिस प्रकार श्रीराम से कौसल्या, लक्ष्मणजी से सुमित्रा और भरत से कैकेयी पुत्रवती थीं, उसी प्रकार इस काव्य-श्रवण से स्त्रियाँ पुत्रवती होती हैं।

शृणोति य इदं काव्यमार्षं वाल्मीकिना कृतम्।
श्रद्दधानो जितक्रोधी दुर्गाण्यतितरत्यसौ॥ ३६॥

जो व्यक्ति महर्षि वाल्मीकि रचित इस आर्षकाव्य को श्रद्धापूर्वक और क्रोध-रहित होकर सुनता है वह बड़ी-बड़ी आपत्तियों से पार हो जाता है (राम की आपत्तियों को सुनकर उसे अपनी आपत्तियाँ तुच्छ जान पड़ती हैं।)

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिः
आख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः॥ ३७॥

यह काव्य आयु, आरोग्यता और यश को बढ़ानेवाला है। यह भाइयों में प्रेम उत्पन्न करनेवाला, सद्बुद्धि देनेवाले और शुभप्रद है। सज्जनों को उचित है कि वे इस तेजवर्धक और कामनाओं की सिद्धि करनेवाले आख्यान को नियमपूर्वक पढ़ें।

॥ इति युद्धकाण्डम्॥

—o—

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थस्वामीनां शिष्येण परमहंस जगदीश्वरानन्द सरस्वतीस्वामिनानूदितो भगवतीभाष्येण समलंकृतः समाप्तश्चायं ग्रन्थः॥

युद्धकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	७४
श्लोक-संख्या	१६७८
टिप्पणियाँ	५३